उदयपुर राज्य का इतिहास

दूसरी जिल्द

ग्रंथकर्त्ता

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

मुद्रक

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर

विक्रम संवत् १९८८

प्रथम संस्करण ५०० } { मूल्य सजिल्द ११)
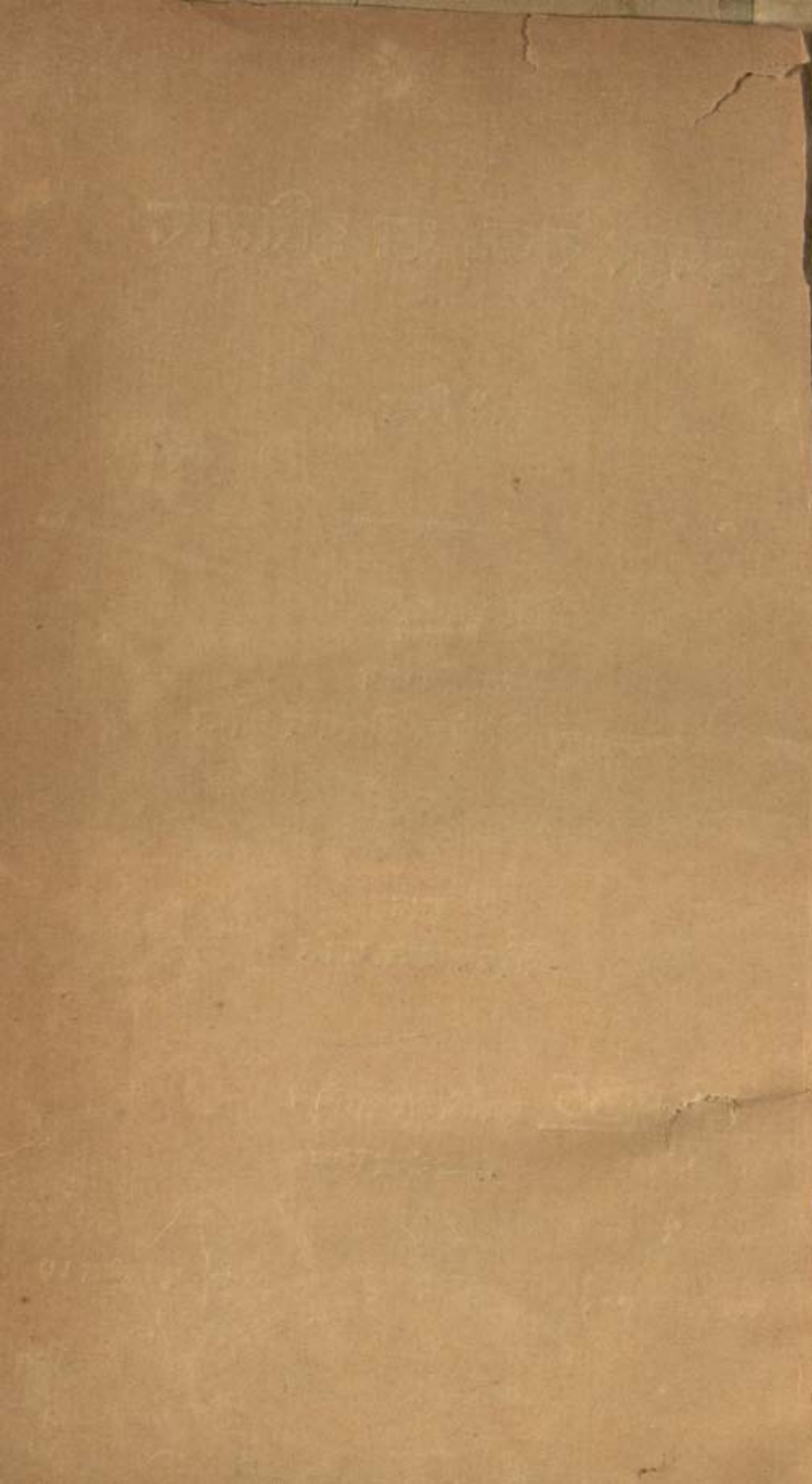
महाराणा राजसिंह (प्रथम)

क्षत्रिय-कुल-तिलक

हिन्दू-धर्म के रक्षक

वीरपुङ्गव

महाराणा राजसिंह

की

पवित्र स्मृति को

सादर

समर्पित

भूमिका

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि राजपूताने में इतिहास की जागृति हो रही है और कितने एक राज्यों के छोटे-बड़े इतिहास प्रकाशित भी हुए हैं, परन्तु उनका निर्माण या तो कर्नल टॉड के बृहद्ग्रन्थ 'राजस्थान' या ख्यातों के आधार पर ही हुआ है। उनमें एक भी पुस्तक प्राचीन लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों, संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों, फ़ारसी तवारीख़ों, भाषा के ऐतिहासिक काव्यों, पुराने फ़रमानों, निशानों, पट्टे-परवानों, पत्रव्यवहारों तथा अब-तक के शोध से ज्ञात हुई बातों के आधार पर सप्रमाण लिखी गई हो ऐसा पाया नहीं जाता। किसी भी राज्य के वास्तविक इतिहास के लिए बरसों का परिश्रम और शोध तथा उल्लिखित सामग्री का संग्रह नितान्त आवश्यक है। हमने जहां तक हो सका इसी शैली का अनुसरण करके इस इतिहास को स्वतन्त्ररूप से लिखा है और हमें प्रसन्नता है कि यूरोप और भारत के विद्वानों ने इसके प्रकाशन पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है, एवं हिन्दू यूनिवर्सिटी आदि विश्वविद्यालयों तथा अन्य शिक्षाविभागों ने इसे उच्चकोटि की शिक्षा में इतिहास-विषय की पाठ्यपुस्तकों में स्थान दिया है। पंजाब यूनिवर्सिटी ने तो उदयपुर राज्य के इतिहास को हिन्दी की सर्वोच्च परीक्षा 'हिन्दी-प्रभाकर' में स्थान दिया है।

इस जिल्द में उदयपुर राज्य के इतिहास के ६ से ११ तक अध्याय हैं, जिनमें पहले तीन में महाराणा कर्णसिंह से वर्तमान समय तक का इतिहास और अन्तिम तीन अध्यायों में क्रमशः मेवाड़ के सरदारों और प्रसिद्ध घरानों, राजपूताने से बाहर के गुहिलवंशियों के राज्यों तथा मेवाड़ की संस्कृति का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यदि इस पुस्तक से राजपूताने के इतिहास पर कुछ भी नवीन प्रकाश पड़ा तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

इस जिल्द के प्रणयन में जिन जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई और जिनके नाम स्थान स्थान पर उद्धृत किये गये हैं, उनके कर्त्ताओं के हम अनु-

गृहीत हैं। उदयपुर निवासी पुरोहित देवनाथ ने अपने यहां की इतिहास की सामग्री का हमें उपयोग करने दिया तथा इतिहासप्रेमी ठाकुर कन्हैयासिंह भाटी ने राजपूताने से बाहर के कुछ गुहिलवंशी राज्यों के इतिहास की सामग्री संग्रह करने में सहायता दी, जिनके लिए वे दोनों हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

अजमेर.
वसंतपंचमी
१९८८

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

विषय-सूची

छठा अध्याय

महाराणा कर्णसिंह से महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) तक

विषय — पृष्ठांक

सातवां अध्याय

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) से महाराणा भीमसिंह तक

विषय				पृष्ठाङ्क

विषय | पृष्ठाङ्क

आठवां अध्याय

महाराणा जवानसिंह से वर्तमान समय तक

विषय पृष्ठाङ्क

विषय	पृष्ठाङ्क

विषय			पृष्ठाङ्क

विषय | पृष्ठाङ्क

नवां अध्याय

मेवाड़ के सरदार और प्रतिष्ठित घराने

विषय				पृष्ठाङ्क

विषय	पृष्ठाङ्क

दसवां अध्याय

राजपूताने से बाहर के गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

ग्यारहवां अध्याय

मेवाड़ की संस्कृति

चित्रसूची

उदयपुर राज्य के इतिहास में दिये हुए पुस्तकों के संक्षिप्त नाम-संकेतों का परिचय

ई० एँ० ...इंडियन ऐंटिक्वेरी

ए० ई० ...एपिग्राफ़िया इंडिका

क; आ० स० इं
क; आ० स० रि } कनिंगहाम की 'आर्कियालॉजिकल् सर्वे की रिपोर्ट.

ज०ए०सो०बंगा०
बंगा०ए०सो०ज० } जर्नल ऑफ़ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल.

ज० बंब०ए०सो०
बंब० ए०सो०ज० } जर्नल ऑफ़ दी बॉम्बे ब्रैंच ऑफ़ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी.

टॉड; राज०
टॉ; रा० } टॉड-कृत 'राजस्थान' (ऑक्सफ़ोर्ड संस्करण)

ना० प्र० प० ...नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)

फ़्ली; गु० इ० ...फ़्लीट—संपादित 'गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स'.

बंब० गै० ...बंबई गैज़ेटियर.

हिन्दी० टा० रा०
हिं० टॉ० रा० } हिन्दी टॉड-राजस्थान (खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर का संस्करण)

ग्रन्थकर्त्ता-द्वारा रचित तथा सम्पादित ग्रन्थ आदि ।

स्वतन्त्र रचनाएं— मूल्य

(१)	भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय संस्करण)	रु० २५)
(२)	सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—प्रथम भाग	रु० १०)
(३)	सिरोही राज्य का इतिहास	अप्राप्य
(४)	बापा रावल का सोने का सिक्का	॥)
(५)	वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह ...	॥=)
(६)	* मध्यकालीन भारतीय संस्कृति ...	३)
(७)	राजपूताने का इतिहास—पहला खंड ...	अप्राप्य
(८)	राजपूताने का इतिहास—दूसरा खंड ...	अप्राप्य
(९)	राजपूताने का इतिहास—तीसरा खंड ...	अप्राप्य
(१०)	राजपूताने का इतिहास—चौथा खंड ...	प्रेस में
(११)	उदयपुर राज्य का इतिहास—पहली जिल्द ...	अप्राप्य
(१२)	उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरी जिल्द ...	रु० ११)
(१३)	† भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री ...	॥)
(१४)	‡ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र	।)
(१५)	‡ राजस्थान-ऐतिहासिक-दन्तकथा, प्रथम भाग ('एक राजस्थान निवासी' नाम से प्रकाशित)	अप्राप्य
(१६)	× नागरी अंक और अक्षर	

———

* प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी-द्वारा प्रकाशित । इसका उर्दू अनुवाद भी उक्त संस्था ने प्रकाशित किया है ।

† काशी-नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित ।

‡ खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर से प्राप्त ।

× हिन्दी-साहित्य सम्मेलन-द्वारा प्रकाशित ।

सम्पादित

	मूल्य
(१७) * अशोक की धर्मलिपियां—पहला खंड (प्रधान शिलाभिलेख)	रु० ३)
(१८) * सुलैमान सौदागर	,, १।)
(१९) * प्राचीन मुद्रा	,, ३)
(२०) * नागरीप्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) नवीन संस्करण भाग १ से १२ तक प्रत्येक भाग	,, १०)
(२१) कोशोत्सव स्मारक संग्रह	,, ३)
(२२-२३) ‡ हिन्दी टॉड राजस्थान—पहला और दूसरा खंड (इनमें विस्तृत सम्पादकीय टिप्पणी-द्वारा टॉडकृत राजस्थान की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियां शुद्ध की गई हैं)	
(२४) जयानक प्रणीत 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' सटीक	(प्रेस में)
(२५) जयसोमरचित 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्'—हिन्दी अनुवादसहित	(प्रेस में)

---

* काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित ।

‡ खड्गविलास प्रेस (बांकीपुर) द्वारा प्रकाशित ।

उदयपुर राज्य का इतिहास

दूसरी जिल्द

छठा अध्याय

महाराणा कर्णसिंह से महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) तक

महाराणा कर्णसिंह

महाराणा कर्णसिंह का जन्म वि० सं० १६४० माघ सुदि ४[1] (ई० स० १५८४ ता० ७ जनवरी) को और राज्याभिषेक वि० सं० १६७६ माघ सुदि २[2] (ई० स० १६२० ता० २६ जनवरी) को हुआ। बादशाह जहांगीर ने ता० १७ असफ़न्दारमज़ सन् जुलूस १४ (वि० सं० १६७६ फाल्गुन सुदि २=ई० स० १६२० ता० २५ फरवरी) को महाराणा अमरसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर कर्ण-सिंह के लिए राणा की पदवी का फ़रमान और राज्यतिलक के उपलक्ष्य में

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १६० ।

(२) वही; भाग २, पृ० २६१ ।

कर्नल टॉड ने महाराणा कर्णसिंह के राज्याभिषेक का संवत् वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२१) लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४२७), जो शायद राज्याभिषेकोत्सव का संवत् हो।

खिलअत, हाथी, घोड़ा आदि के साथ राजा कृष्णदास[1] को महाराणा अमरसिंह की मृत्यु की मातमपुरसी करने और महाराणा कर्णसिंह के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में मुबारिकबादी देने के लिए उदयपुर भेजा[2]। बादशाह जहांगीर से वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में संधि होने के बाद महाराणा अमरसिंह ने उदासीन होकर राज्य का सब काम कुंवर कर्णसिंह को सौंप दिया था और वस्तुतः उसी समय से वह राज्य कार्य करने लग गया था। बादशाह जहांगीर के पास कुछ समय तक रहने, दक्षिण में जाने तथा दिल्ली आदि में अन्य राजाओं से मिलने के कारण उसका अनुभव बहुत बढ़ गया था। उसके राज्य काल से पूर्व सुलह हो जाने से राज्य में शान्ति स्थापित हो गई थी और लड़ाई झगड़े बन्द हो गये थे। इसलिए उसको अपने राज्य काल में लगातार युद्धों के कारण उजड़े हुए देश को फिर आबाद करने, उसके व्यापार और कृषि को समृद्ध करने, उदयपुर शहर की आबादी बढ़ाने और राजमहलों आदि के बनवाने का अवसर मिला।

बहुत वर्षों तक निरन्तर युद्ध रहने के कारण राज्य व्यवस्था भी शिथिल हो गई थी, इसलिए अब उसमें सुधार करना आवश्यक था। महाराणा कर्ण-

राज्य में सुधार

सिंह ने राज्यव्यवस्था में सुधार किया और राज्य के अलग अलग परगने स्थिर कर गांवों में पटेल, पटवारी और चौकीदार नियत किये। अपनी प्रजा के सुख और सुबीते का सब प्रकार से प्रबन्ध किया[3]। उसके इन सुधारों तथा उत्तम व्यवस्था से वह प्रजा, जो पिछले युद्धों के कारण दूसरे राज्यों में चली गई थी, पीछी आकर अपने अपने गांवों में बसने लगी, जिससे राज्य में व्यापार और कृषि की बहुत उन्नति हुई और राज्य की आय दिन दिन बढ़ती ही गई।

---

(१) राजा किशनदास (कृष्णदास) बादशाह अकबर के समय फीलखाने (हस्तिशाला) और अस्तबल का दारोगा था और उसका मन्सब ३०० का था। जहांगीर ने उसको १००० का मन्सब और राजा का ख़िताब दिया। फिर उसका मन्सब २००० तक बढ़ाकर सन् १६ जुलूस में उसे दिल्ली का फ़ौजदार बनाया।

(२) तुज़ुके जहांगीरी का अलेग्ज़ैण्डर राजर्स का किया हुआ अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० १२३-२४।

(३) वीरविनोद, भाग २, पृ० २६६।

सिरोही के राव राजसिंह के समय देवड़ा पृथ्वीराज (सूजावत) का बल बढ़ता गया और वह मुल्क को लूटने लगा। राव राजसिंह महाराणा कर्णसिंह का भानजा था, इसलिए उसने अपने कुंवरपदे के समय सिरोही का यह विरोध देखकर राव राजसिंह व देवड़ा पृथ्वीराज में मेल कराने की इच्छा से उन दोनों को उदयपुर बुलाया और दोनों को आपस में मेलजोल रखने की सलाह देकर वहां से विदा किया। फिर भी उन दोनों में विरोध दिन दिन बढ़ता ही गया और पृथ्वीराज उसको मारने की घात में लग गया। महाराणा कर्णसिंह ने सीसोदिया पर्वतसिंह को राजसिंह के सहायतार्थ सिरोही भेजा। एक दिन पृथ्वीराज ने अपने कुंवर नाहरखान, चांदा आदि सहित राव राजसिंह के महलों में अचानक पहुंच कर उसको मार[1] डाला। उस समय उसने राव राजसिंह के पुत्र अखैराज को भी, जो दो वर्ष का था, मारना चाहा, परन्तु उसकी धाय ने उसे बचा लिया। इतने में सीसोदिया पर्वतसिंह, देवड़ा रामा, खंगार आदि राव के साथी एकट्ठे होकर पृथ्वीराज का पीछा करने लगे, पर वह पालड़ी गांव में चला गया[2]। यह समाचार सुनते ही महाराणा ने सैन्य भेजकर बालक अखैराज को सिरोही की गद्दी पर बिठाने और पृथ्वीराज आदि को देश से निकालने में सहायता दी[3]।

सिरोही के राव अखैराज की सहायता करना

शाहज़ादे खुर्रम ने वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में अपने पिता बादशाह जहांगीर से विद्रोह[4] किया और दक्षिण से मांडू में आकर सैन्य सहित

(१) यह घटना वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में हुई।

(२) नैणसी की हस्तलिखित ख्यात; पत्र ३६, पृ० १।

(३) अखेराजं सिरोहीशं चक्रे शत्रुजितं बलात् ॥ १२ ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५)।

(४) शाहज़ादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी और उसको वह अपना उत्तराधिकारी भी बनाना चाहता था, परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले वर्षों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतली सा हो गया था, जिससे जो वह चाहती, वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़ग़न से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था, जिसको वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी। इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगी और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा। उन्हीं

शाहज़ादे ख़ुर्रम का महा-राणा के पास जाना

आगरे की ओर बढ़ा, जहां के अमीरों की सम्पत्ति छीनता हुआ वह मथुरा की तरफ़ गया। फिर आगे बढ़नेपर वह बिलोचपुर की लड़ाई में शाही सेना से हारा[1] और भागते समय आंबेर के पास पहुंच कर उसे लूटा[2]। फिर वहां से उदयपुर में महाराणा के पास आया, क्योंकि इन दोनों में परस्पर स्नेह था। ऐसी जनश्रुति है कि वह पहले कुछ दिन देल-वाड़े की हवेली में ठहरा, फिर जगमन्दिर में। कुछ समय तक वहां रहकर मेवाड़ की सेना के अध्यक्ष कुंवर भीमसिंह के साथ वह बड़ी सादड़ी में, जहां उसने एक दरवाज़ा बनवाया, ठहरता हुआ, मांडू को पहुंचा। विदा होते समय उसने महाराणा से भाईचारे में पगड़ी बदली। ख़ुर्रम की यह पगड़ी उदयपुर में अब तक सुरक्षित है[3]।

फ़ारसी तवारीख़ों में शाहज़ादे का बिलोचपुर से हारकर आंबेर को लूटते हुए मांडू जाने का उल्लेख तो मिलता है, परन्तु उदयपुर में, जो मांडू जाते हुए रास्ते में पड़ता था, ठहरने का नहीं; तो भी उसका उदयपुर में ठहरना निर्विवाद है, क्योंकि इस घटना के अनुमान ५० वर्ष पीछे बने हुए राजप्रशस्ति महाकाव्य में महाराणा कर्णसिंह के सम्बन्ध में लिखा है कि दिल्लीश्वर जहांगीर से विमुख बने हुए उसके पुत्र खुर्रम को कर्णसिंह ने अपने राज्य में ठहराया[4]। जोधपुर की

दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने अधीन कर लिया था, जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने ख़ुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी। तदनुसार बाद-शाह ने उसको बुरहानपुर से कंधार जाने की आज्ञा दी। शाहज़ादा भी नूरजहां के प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा, क्योंकि वह समझता था कि ऐसे प्रपंच के समय यदि मेरा हिन्दुस्तान से बाहर जाना हुआ और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा, तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा। इससे वह बादशाह की आज्ञा न मानकर उसका विद्रोही बन गया।

(१) प्रो० बेनीप्रसाद, हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर; पृ० २५९-६०।

(२) तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० २४८।

(३) इस समय यह पगड़ी विक्टोरिया हॉल के अजायबघर में रक्खी हुई है। वह कुसुम रंग की थी, परन्तु उसका रंग फीका पड़ते पड़ते अब कुछ हल्का पीला सा रह गया है। उसपर ज़री का लपेटा बंधा हुआ है, जिसपर ज़री के फूल थे, जिनमें से अधिकांश गिर गये हैं।

(४) दिल्लीश्वराज्जहांगीरात्तस्य खुर्रमनामकम्।

पुत्रं विमुखतां प्राप्तं स्थापयित्वा निजन्तिके॥ १३॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५)।

ख्यात में लिखा है—'शाहज़ादा खुर्रम, जो दक्षिण के सूबे पर था, बादशाह के विरुद्ध होगया और उसका राज्य छीनने के विचार से पूरब में गया, जहां से उसने आगरे होते हुए उदयपुर आकर राणा से मेल जोल बढ़ाया। राणा ने भीमसिंह को शाहज़ादे के साथ कर दिया[1]।' राजपूताने की अन्य ख्यातों तथा वंशभास्कर[2] में भी विद्रोही खुर्रम के उदयपुर में रहने का उल्लेख है।

जब शाहज़ादे खुर्रम ने बादशाह से बग़ावत की तब से भीमसिंह[3] बराबर उसका साथ देता और उसका विश्वासपात्र सेनापति बनकर बड़ी वीरता से लड़ता रहा। खुर्रम अपनी सेना के साथ मांडू से नर्मदा को पार कर असीरगढ़ और बुरहानपुर होता हुआ गोलकुंडे के मार्ग से उड़ीसा और बंगाल में पहुंचा। वहां ढाका और अकबरनगर आदि की लड़ाइयों में विजय पाकर उसने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इन युद्धों में भी भीमसिंह ने बड़ी वीरता बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर खुर्रम ने उसको दो लाख रुपये इनाम में दिये। इसके बाद शाहज़ादे ने विहार, अवध और इलाहाबाद को जीतने का विचार कर भीम को पटना पर भेजा। वहां का शासक परवेज़ की तरफ़ से दीवान मुख्लिसखां था। राजा भीम के वहां पहुंचते ही वह बिना लड़े ही पटना छोड़कर इलाहाबाद की तरफ़ भाग गया और क़िले पर भीम का अधिकार हो गया। वहां से खुर्रम ने उसको अब्दुल्लाखां के साथ इलाहाबाद की ओर भेजा और स्वयं भी उसके पीछे गया। उसने टौंस नदी के किनारे कम्पत के पास डेरा डाला। उधर से शाहज़ादे परवेज़ की अध्यक्षता में शाही

राजा भीम का शाहज़ादे की सहायता करना

(१) मारवाड़ की हस्तलिखित ख्यात; जि० १, पृ० १२६। मूल ख्यात में महाराणा का नाम अमरसिंह लिखा है, जो अशुद्ध है, क्योंकि खुर्रम ने महाराणा कर्णसिंह के समय अपने पिता से विद्रोह किया था न कि अमरसिंह के समय।

(२) रन इत खुरम बिद्रव बढ्ढि,
कछुदिन करन सरन हु कढ्ढि ॥ ६ ॥
पृ० २४६८।

(३) भीमसिंह महाराणा कर्णसिंह का छोटा भाई था। जहांगीर के समय वह शाही सेवा में रहनेवाली मेवाड़ की सेना का सेनापति भी रहा था। बादशाह ने उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उसको राजा का ख़िताब दिया था (तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० २, पृ० १६२)।

सेना लड़ने को आई। ४०००० शाही सेना ने खुर्रम के सैन्य को तीन तरफ़ से घेर लिया, जिसपर अब्दुल्लाख़ां ने शाहज़ादे खुर्रम को बिना लड़े वहां से लौट जाने की सलाह दी, परन्तु भीम ने उसके विरुद्ध तत्काल शाही सेना पर आक्रमण करने पर ज़ोर दिया, जिसे खुर्रम ने स्वीकार कर लिया[1]।

इस युद्ध में शाहज़ादे खुर्रम की सेना इस प्रकार खड़ी हुई थी—मध्य में शाहज़ादा, दक्षिण पार्श्व में अब्दुल्लाख़ां, वाम पार्श्व में नसरतख़ां और हरावल में राजा भीम तथा शेरख़ां थे। भीम की सहायता के लिए दाईं और बाईं ओर दर्याख़ां तथा पहाड़सिंह (वीरसिंहदेव बुन्देले का दूसरा पुत्र) अपनी अपनी सेना के साथ थे। तोपख़ाने का अध्यक्ष मीर आतिश रूमी आगे भेजा गया। हरावल से अधिक आगे बढ़जाने से शाही सेना की हरावल ने उसपर आक्रमण कर तोपें छीन लीं। तोपख़ाने को शाही सेना के हाथ में गया देखकर दर्याख़ां और पहाड़सिंह दोनों बिना लड़े ही भाग गये, परन्तु राजा भीम उससे निराश न हो कर शाही सेना पर टूट पड़ा[2]।

इसका वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

इस लड़ाई में आंबेर के राजा जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) और जोधपुर के राजा गजसिंह भी परवेज़ के साथ थे। जयसिंह के पास सेना बहुत होने के कारण उसको हरावल में रक्खा और गजसिंह बाईं ओर नदी के किनारे कुछ दूर जाकर खड़ा रहा। सामना होने पर राजा भीम के घोड़ों की बागें उठीं, जिससे परवेज़ की सेना के पैर उखड़ गये। तब भीम ने खुर्रम से कहा कि विजय तो हुई, लेकिन गजसिंह सैन्य सहित सामने खड़ा है, यदि आज्ञा हो, तो उसको लड़ाई के लिए ललकारें। उस समय गजसिंह नदी के किनारे पायजामे का नाड़ा खोल रहा था। उसके साथी कूंपावत गोरधन ने आगे बढ़ के कड़ककर कहा कि परवेज़ की सेना तो भागी जा रही है और आपको नाड़ा खोलने के लिए यही समय मिला है। लघुशंका से निवृत्त होकर गजसिंह ने कहा कि हम भी यही राह देखते थे कि कोई राजपूत हमें कहनेवाला है या नहीं। फिर गजसिंह भी लड़ाई में शामिल हो गया। गजसिंह के अलग रहने का कारण कोई ऐसा बत-

(१) प्रोफ़ेसर बेनीप्रसाद; हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर; पृष्ठ ३६५-६४।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५५५-५६।

लाते हैं कि खुर्रम जोधपुरवालों का भानजा था, इसलिए अंतःकरण से वह उससे लड़ना नहीं चाहता था[1]।

भीम आंबेर और जोधपुर के राजाओं के सैन्य को तितर बितर करता हुआ शाहज़ादे परवेज़ के समीप जा पहुंचा[2]। उसकी इस वीरता के सम्बन्ध में मुन्तखबुल्लुबाब का कर्ता मुहम्मद हाशिम खाफ़ीखां लिखता है—"राजा भीम और शेरखां ने वीरता के साथ शाहज़ादे परवेज़ की सेना के सामने आकर तोपखाने पर इस तेज़ी और उत्साह से आक्रमण किया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजा भीम अपने विश्वासपात्र साथियों समेत सेना की पंक्ति को चीरता हुआ खास सुलतान परवेज के गिरोह तक पहुंच गया। इस समय जो कोई उसके सामने आया, वह तलवार और भालों से मारा गया। परवेज़ की सेना में पहुंचने तक उसके कई वीर मारे गये, तो भी उसका आक्रमण इतना तीव्र था कि ४०००० हज़ार सेना के पांव उखड़ने को ही थे, इतने में महाबतखां ने भीम के सामने एक मस्त हाथी (जटाजूट) भेजने की सलाह दी। राजा भीम और शेरखां ने उस हाथी को भी तलवार और बर्छों के प्रहार से गिरा दिया। प्रत्येक वार जब वह आक्रमण करता, तब दोनों पक्षवाले उसकी प्रशंसा किया करते थे। अंत में कई वीर साथियों सहित महाबतखां भीम के सामने आया। राजा भीम बहुत से घाव लगने के बाद घोड़े से गिर गया। उस समय एक शत्रु उसका सिर काटने के लिए आया, तो उसने जोश में आकर उसको मार डाला। जब तक उसके प्राण बने रहे तब तक उसने अपने हाथ से तलवार न छोड़ी[3] और

(१) ना० प्र० पत्रिका; भाग १, पृ० १८८-८६।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २८७।

(३) खुर्रम (शाहजहां) ने राज्य पाते ही भीम की स्वामिभक्ति और वीरता की क़दर कर उसके बालक पुत्र रायसिंह को राजा का ख़िताब, २००० ज़ात और १००० सवार का मन्सब, २०००० रुपये नक़द, ख़िलअत, जड़ाऊ सरपेच, जमधर, हाथी, घोड़े तथा टोंक और टोडा के इलाक़े जागीर में दिये (मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १४। नागरीप्रचारिणी पत्रिका;-प्राचीन संस्करण-भाग ११, पृ० ४५-७६)। रायसिंह भी कंधार, बलख़, बदख़्शां दक्षिण, मालवा आदि की अनेक लड़ाइयों में बड़ी वीरता से लड़ा, जिससे उसका मन्सब पांचहजारी ज़ात और ५००० सवार तक बढ़ा दिया गया। वह औरंगज़ेब के राज्य के १६वें वर्ष अर्थात् वि० सं० १७३० (ई० स० १६७३) में मर गया। उसके पीछे उसके बेटे पोते राज्य करते रहे, परन्तु औरंगज़ेब ने जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) को वहां का बंदोबस्त करने के

शेरखां भी लड़कर मारा गया[1]"। भीम के इस प्रकार वीरता के साथ काम आने के पश्चात् खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को लौट गया।

वि॰ सं॰ १६८४ कार्तिक वदि अमावास्या (ई॰ स॰ १६२७ ता॰ २८ अक्टोबर) को बादशाह जहांगीर का देहान्त हुआ[2]। उस समय शाहज़ादा खुर्रम दक्षिण में था। यह समाचार सुनते ही वह गुजरात होता हुआ दिल्ली की ओर चला। रास्ते में वह ४ जमादि उल् अव्वल हि॰ स॰ १०३७ (वि॰ सं॰ १६८४ पौष सुदि ६=ई॰ स॰ १६२८ ता॰ २ जनवरी) को गोगून्दे में ठहरा, जहां पर महाराणा ने खुर्रम का स्वागत किया[3] और अपने भाई अर्जुनसिंह को उसके साथ कर[4] वह उदयपुर लौट आया।

शाहजहां का बादशाह होना

राजप्रशस्ति महाकाव्य से पाया जाता है कि महाराणा ने कुंवर पदे[5] में ही

लिए भेजा। उसने क्रमशः वहां अपना दख़ल बढ़ाया और वि॰ सं॰ १७४१ (ई॰ स॰१६८४) में रायसिंह की संतति को वहां से निकाल दिया। इस प्रकार टोंक और टोडा के इलाक़ों पर बादशाही अधिकार हो गया (नागरीप्रचारिणी पत्रिका-प्राचीन संस्करण—भाग ११, पृ॰ ४६)।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ॰ २८८।

(२) जहांगीर के देहान्त के बाद नूरजहां ने अपने दामाद शहरयार को गद्दी पर बिठाने के लिए लाहोर बुलाया, परन्तु उसका भाई आसफ़ख़ां, जो खुर्रम का श्वशुर था और उसे गद्दी पर बिठाना चाहता था, खुसरो के पुत्र दावरबख़्श को गद्दी पर बिठाकर लाहोर गया और नूरजहां तथा शहरयार को क़ैद कर लिया। फिर खुर्रम के पास दक्षिण में दूत भेजकर उसे आगरे बुलाया। खुर्रम ने भी सूचना पाते ही अहमदाबाद, गोगूंदा, अजमेर होते हुए आगरे के लिए प्रयाण किया। इधर आसफ़ख़ां ने उसके आने का समाचार सुनकर दावरबख़्श, शहरयार आदि को मरवा डाला। वि॰ सं॰ १६८४ माघ सुदि १० (ई॰ स॰ १६२८ ता॰ ४ फरवरी) को खुर्रम आगरे पहुंचकर शाहजहां के नाम से गद्दी पर बैठा।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ॰ ४।

(४) *जहांगीरे दिवं याते संगे भ्रातरमर्जुनम्।*

दत्त्वा दिल्लीश्वरं चक्रे सोऽभूत्साहिजहांभिधः ॥ १४ ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५)।

(५) कुंवर कर्णसिंह ने सोरों की यात्रा कब की, यह अनिश्चित है। संभव है कि वह बादशाह के दक्षिणविजय की मुबारकबादी देने गया, उस समय आगरे से सोरों गया हो।

गंगा के किनारे चांदी की तुला कर सोरों के ब्राह्मणों को एक गांव दान किया[1]।

महाराणा के पुण्यकार्य उसने रोहडिया बारहट लक्खा[2] को लाख पशाव और तीन गांव[3] दिये[4]।

कर्णसिंह को देश में शान्ति स्थापित हो जाने के कारण शहर आबाद करने का अच्छा अवसर मिला। उसने जनाना रावला (महल), रसोड़ा (रसोड़े का

महाराणा के बनवाये हुए महल आदि बड़ा महल, कर्णविलास), तोरण पोल, सभा शिरोमणि (बड़ा दरीखाना), गणेश ड्योढ़ी, दिलखुशाल (दिलकुशा) महल के भीतर की चौपाड़, चन्द्रमहल, हस्तिशाला के नीचे का बड़ा दालान आदि बनवाये[5]। उसने उदयपुर का शहरपनाह बनवाना भी प्रारंभ किया[6], परन्तु वह अधूरा ही रह गया।

खुर्रम के स्वागत के पीछे गोगून्दे से उदयपुर लौटने पर महाराणा बीमार

महाराणा की मृत्यु हुआ और उसका देहांत वि० सं० १६८४ के फाल्गुन (ई० स० १६२८ मार्च) में हो गया[7]।

इस महाराणा के सात पुत्र-जगतसिंह, गरीबदास[8], मानसिंह, छत्रसिंह,

(१) स कौमारपदे गंगातीरे रूप्यतुलां ददौ ॥ १० ॥

शूकरक्षेत्रविप्रेभ्यो ग्रामं पूर्वन्तु............॥ ११ ॥

(राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५)।

(२) यह रोहडिया जाति का बारहट नानणपाई गांव (परगना साकड़ी, मारवाड़) का रहनेवाला था। वह बादशाह अकबर के पास भी रहा था। कहते हैं कि बादशाह ने उसे बड़ी जागीर भी दी थी। उसके दो बेटों—नरहरदास और गिरधरदास—के नामों का पता भी उसके यहां के पुराने पट्टों से लगता है। नरहरदास ने प्रसिद्ध 'अवतारचरित्र' की रचना की। लक्खावत बारहटों के कई ठिकाने मारवाड़ में हैं, जिनमें मुख्य गांव टहला, मेड़ता परगने में है।

(३) इन गांवों के नाम मन्सूवा, धरावली और जडाणा थे। मन्सूवा गांव मांडलगढ़ ज़िले का, धरावली फूलिया परगने का और जडाणा भिणाय ज़िले का था (चित्तौड़ के रामपोल दर्वाज़े पर खुदा हुआ वि० सं० १६७८ आश्विन सुदि १२ का दानपत्र)।

(४) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २७०।

(५) वही; भाग २, पृ० २६६-७१।

(६) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४२८।

(७) वीर-विनोद; भाग २, पृ० २६०।

(८) ग़रीबदास बादशाही सेवा में भी रहा था। उसके वंश में केर्या और बांसडे के ठिकाने हैं।

मोहनसिंह, गजसिंह और सूरजसिंह तथा दो कन्याएं[1] थीं।

महाराणा का व्यक्तित्व

कर्णसिंह वीर प्रकृति का राजा हुआ। वह अपने पिता के समय की मुसलमानों के साथ की अनेक लड़ाइयों में लड़ा। जहांगीर से संधि होने के बाद कुंवरपदे में वह बादशाह के दरबार में गया, जहां बादशाह ने उसका बहुत कुछ सम्मान किया। वह शाहज़ादा खुर्रम के साथ दक्षिण[2] में जाकर वहां भी लड़ाइयां लड़ा। शाहजहां का उसके साथ का बर्ताव अच्छा ही रहा। उसके समय राज्य में शान्ति रहने के कारण उसे महल मकानात बनवाने का अवकाश मिला। उसने प्रजा के सुख और शान्ति का प्रयत्न किया। उसके चित्र से पाया जाता है कि उसका रंग गेहुवां, क़द म[illegible]ला, आंखें बड़ी और चेहरा हंसमुख था।

महाराणा जगतसिंह

महाराणा जगतसिंह का जन्म[3] वि० सं० १६६४ भाद्रपद सुदि २ शुक्रवार (ई० स० १६०७ ता० १४ अगस्त) को सूर्योदय से ५८ घड़ी ५ पल गये हुआ था। उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १६८४ के फाल्गुन (ई० स० १६२८ मार्च) में और राज्याभिषेक का उत्सव[4] चैत्रादि वि० सं० १६८५ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६२८

(१) इनमें से एक कन्या का विवाह बीकानेर के स्वामी कर्णसिंह के साथ हुआ (रा० प्र०; सर्ग ५, श्लोक ४२) और दूसरी का बूंदी के राव शत्रुशाल (शत्रुशल्य) के साथ महाराणा जगतसिंह के समय हुआ (वंशभास्कर, पृ० २५५७ पद्य १६)। इस विवाह में शत्रुशाल ने त्याग आदि में बड़ी सम्पत्ति व्यय की।

(२) कर्नल टॉड ने लिखा है कि उसने शीघ्रता के साथ शत्रुओं के मध्य में होते हुए सूरतनगर को लूटा और वहां से बहुतसा लूट का माल ले आया (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४२८), परन्तु हम इस कथन पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि टॉड के अतिरिक्त हमें इस कथन का अन्यत्र कहीं प्रमाण नहीं मिला।

(३) ज्योतिषी चंडू के जन्मपत्रियों के संग्रह में महाराणा की जन्मपत्री विद्यमान है।

(४) मेवाड़ में प्राचीन काल से यही रीति चली आती थी कि राजा की गद्दीनशीनी तो उसके पिता या पूर्वाधिकारी की दाहक्रिया होने के अनन्तर ही हो जाती, परंतु राज्याभिषेकोत्सव पीछे से मुहूर्त के अनुसार निश्चित किये हुए दिन होता था। उस दिन मित्र राजाओं और

ता० २८ अप्रेल) को हुआ[1]।

बादशाह शाहजहां ने महाराणा कर्णसिंह के देहान्त का समाचार सुनकर जगतसिंह को पांच हज़ारी ज़ात, पांच हज़ार सवार का मन्सब, राणा का खिताब, खिलअत, जड़ाऊ धपवा (फूल कटारे सहित), जड़ाऊ तलवार, ख़ासा घोड़ा, ख़ासा हाथी, सोने और चांदी का सामान और फ़रमान राजा वीरनारायण[2] के हाथ भेजे[3]।

देवलिया (प्रतापगढ़) का राज्य कभी स्वतंत्र और कभी महाराणा के अधीन

सरदारों आदि को निमंत्रण दिया जाता था और महाराणा तथा उसकी मुख्य राणी, दोनों सिंहासन-पर बैठते थे। उन दोनों पर राजसभा की उपस्थिति में शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक होता था। अभिषेक की समाप्ति पर सब सरदार और राजा लोग, जो उस समय उपस्थित होते, वे महाराणा को नज़राना देते और महाराणा बैठे बैठे ही सब का नज़राना लेता था। उस समय किसी को ताज़ीम नहीं दी जाती थी।

(१) वर्षे वेदाष्टशास्त्रक्षितिगणनयुते माधवे शुक्लपक्षे
पञ्चम्यां राज्यपीठं कलयति शुभदं श्रीजगत्सिंहभूपे ।.........॥ ४६ ॥

(महाराणा जगतसिंह के समय की १७०६ द्वितीय वैशाख सुदि १५ गुरुवार की उदयपुर के जगदीश-मन्दिर की प्रशस्ति)।

इस प्रशस्ति का संवत् श्रावणादि है; क्योंकि चैत्रादि वि० सं० १७०६ में द्वितीय वैशाख था और उक्त मास की सुदि पूर्णिमा को गुरुवार भी था, इसलिए महाराणा का राज्याभिषेकोत्सव चैत्रादि वि० सं० १६८५ (श्रावणादि १६८४) के वैशाख में होना चाहिये।

(२) वीरनारायण बड़गूजर राजपूत था। उसका पिता ग़रीब होने के कारण जानवर मारकर अपने कुटुम्ब का पालन करता था। उसने एक बार भूल से जंगल में बैठे हुए बादशाह अकबर के शिकारी चीते को मार डाला। जब उसने पास जाकर देखा तो गले में सोने की जंजीर और घंटी होने से चीता बादशाह का मालूम हुआ, तब उसने उसकी सोने की जंजीर तथा घंटी ले ली और चीते को कुएँ में डालकर घर चला गया। शिकारी लोग चीते की लाश को कुएँ में पड़ी हुई देखकर पता लगाते हुए उसके यहां गये और सोने की जंजीर पाने-पर उसे पकड़कर बादशाह के पास ले गये। बादशाह के पूछने पर उसने सारा हाल सच्चा सच्चा कह दिया, जिससे प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे अपनी सेवा में रख लिया। उसका पुत्र वीर-नारायण था, जिसके पुत्र प्रसिद्ध अनीरायसिंह दलन (अनूपसिंह) ने बादशाह जहांगीर की शिकार में जान बचाई थी।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १०-११।

रहा। महावतखां ने बादशाह जहांगीर की अप्रसन्नता के समय देवलिये में ही शरण ली थी। जब वह खानखाना व सिपहसालार बनाया गया, तब से वह देवलिये के रावत जसवन्तसिंह का पक्ष लेने लगा, जिससे उसने मेवाड़ से स्वतन्त्र होना चाहा और वह महाराणा की आज्ञाओं की उपेक्षा करने लगा। फिर उसने महाराणा के मोड़ी गांव के थानेपर हमला करने के लिए मंदसोर के हाकिम जांनिसार को बहकाया। उसकी सहायता के लिए जसवन्तसिंह स्वयं तो न गया, परन्तु उसने अपनी बहुतसी सेना भेज दी। इस लड़ाई में महाराणा के कई राजपूत मारे गये। ऐसे बर्ताव से क्रुद्ध होकर महाराणा ने उसे उदयपुर बुलाया। जसवन्तसिंह मारे जाने के डर से अपने छोटे पुत्र हरिसिंह को देवलिये का काम सौंपकर अपने ज्येष्ठ पुत्र महासिंह और एक हज़ार सैन्य सहित उदयपुर आया और शहर से एक मील दूर चम्पाबाग में ठहरा। महाराणा के बहुत समझाने बुझानेपर भी जब उसने न माना तो महाराणा ने अपने सलाहकारों की सम्मति से उसे मरवाना निश्चय कर राठोड़ रामसिंह (कर्मसेनोत) को सैन्य सहित चम्पाबाग़ में भेजा। उभय पक्ष में लड़ाई हुई, जिसमें जसवन्तसिंह अपने पुत्र महासिंह सहित मारा गया। फिर महाराणा ने राठोड़ रामसिंह को देवलिये भेजकर उस नगर को लुटवाया। यह घटना वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में हुई[1]।

देवलिया का मेवाड़ से अलग होना

महाराणा की इस अनुचित कार्यवाही का परिणाम यह हुआ कि हरिसिंह सीधा बादशाह के पास गया। बादशाह ने उससे सारा हाल सुनने पर देवलिये को मेवाड़ से अलग कर हरिसिंह को दे दिया। इस प्रकार देवलिये (प्रतापगढ़) का राज्य महाराणा के हाथ से निकल गया।

---

(१) जगत्सिंहाज्ञयायातो राठोडो रामसिंहकः।
प्रतिदेवलियां सेनायुक्तो रावतमुद्भटम् ॥ २० ॥
जसवन्तं मानसिंहपुत्रयुक्तं जघान सः।
पुर्यां देवलियायां च लुण्ठनं रचितं जनैः ॥ २१ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५।

वीर-विनोद; भाग २, पृ० ३१८-१६। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र २३, पृष्ठ २। इसका संक्षिप्त उल्लेख गंगाराम कविकृत 'हरिभूषण महाकाव्य;' सर्ग ८, श्लोक ३-८ तक में भी मिलता है।

महाराणा प्रतापसिंह के समय से ही डूंगरपुर बादशाही अधीनता में चला गया था, जिससे वहां के रावल उदयपुर की अधीनता नहीं मानते थे। इसलिए

डूंगरपुर पर सेना भेजना

महाराणा ने अपने मन्त्री अक्षयराज को सेना देकर रावल पुंजा पर, जो उस समय डूंगरपुर का स्वामी था, भेजा। उसके वहां पहुंचने पर रावल पहाड़ों में चला गया। उसने शहर को लूटकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया और महलों के चन्दन के गवाक्ष (झरोखे) को गिरा दिया[1]। इस तरह डूंगरपुर शहर को नष्ट भ्रष्ट कर अक्षयराज लौट आया।

सिरोही का राव अखेराज महाराणा कर्णसिंह के पहले के किये हुए उपकार को भूलकर महाराणा जगतसिंह के विरुद्ध आचरण करने लगा। जिसपर महा-

सिरोही पर सेना भेजना

राणा ने सैन्य भेजकर उसके प्रदेश को लूटा और तोगा-वालीसा (बालेचा) का, जो अखेराज की अधीनता स्वीकार कर चुका था, इलाक़ा छीन लिया[2]।

देवलिया और डूंगरपुर की तरह बांसवाड़े का रावल समरसी भी बादशाही हिमायत के बल पर महाराणा की अधीनता की उपेक्षा करने लगा, जिसपर

(१) देशे वागडनामके नरपतिः श्रीपुंजराजोऽजनि
श्रीमड्डूंगरपूर्वकस्य नगरस्याधीश्वरो दुर्जयः।
केनाप्यत्र न निर्जितो बहुमतिः सत्कोशवांस्तं पुन-
र्यन्मन्त्री कृतवान् पराङ्मुखमहो दग्धं पुरञ्चाकरोत्॥ ५४॥

(जगदीश के मन्दिर की प्रशस्ति—अप्रकाशित)।

जगत्सिंहाज्ञया मंत्री अखेराजो बलान्वितः।
स डूंगरपुरं प्राप्तः पुञ्जानामाथ रावलः॥ १८॥
पलायितः पातितं तच्चन्दनस्य गवाक्षकम्।
लुंठनं डूंगरपुरे कृतं लोकैरलं ततः॥ १९॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५।

(२) अखेराजं सिरोहीशं वश्यं चक्रेऽमहीद्भुवम्।
तोगाख्यवालीसाभूपादखेराजेन खण्डितात्॥ २५॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५।

मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृष्ठ २२३।

बांसवाड़े को अधीन करना

महाराणा ने अपने प्रधान भागचन्द[1] को सेना सहित उस-पर भेजा। समरसी पहाड़ों में भाग गया। भागचंद वहां ६ मास तक रहा और उसके नगर को लूटा। समरसी अपने प्रदेश की यह बरबादी देखकर वहां आया और दो लाख रुपये दण्ड देकर क्षमा मांगी तथा महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली[2]।

महाराणा के देवलिया (प्रतापगढ़), सिरोही, डूंगरपुर और बांसवाड़े पर आक्रमण करने की खबर सुनकर बादशाह नाराज़ हुआ। यह समाचार पाकर

बादशाह शाहजहां को प्रसन्न करने का महाराणा का उद्योग

महाराणा ने झाला कल्याण[3] को वि० सं० १६९० (ई० स० १६३३) में बादशाह के पास भेजा। उसने वहां पहुंच कर महाराणा की तरफ़ से एक हाथी और एक अर्ज़ी पेश की जिससे बादशाह की नाराज़गी दूर हो गई। अनुमान डेढ़ मास बाद बादशाह ने उसे खिलअत और घोड़ा दिया तथा महाराणा के लिए बहुमूल्य खिलअत, सोने चांदी की जीनवाले दो खासा घोड़े, एक हाथी और एक जड़ाऊ कंठी देकर उसे सीख दी[4]।

---

(१) भागचन्द भटनागर जाति के कायस्थ (पंचोली) लछमीदास का पौत्र और सदा-रंग का पुत्र था। महाराणा जगतसिंह ने उसको अपना प्रधान (प्रधानमंत्री) बनाया और उसे ऊंटाला आदि १० गांव, हाथी, घोड़े देकर सम्मानित किया। उसका पुत्र फ़तहचन्द महाराणा राजसिंह का प्रधान रहा। भागचन्द के वंश का विस्तृत वृत्तान्त उदयपुर राज्य के गांव बेड़वास की बावड़ी में लगी हुई वि० सं० १७२५ की मेवाड़ी भाषा की प्रशस्ति में दिया हुआ है।

(२) जगत्सिंहनृपाज्ञातो बांसवालापुरे गतः।
प्रधानो भागचन्दाख्यो रावलः सबलो गिरौ ॥ २७ ॥
गतः समरसीनामा ततो लक्षद्वयं ददौ।
दंडं रजतमुद्राणां भृत्यभावं सदादधे ॥ २८ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५।

बेड़वास की बावड़ी की मेवाड़ी भाषा की प्रशस्ति में इस चढ़ाई का विशेष वर्णन लिखा हुआ है, जिससे भी सहायता ली गई है।

(३) देलवाड़ावालों का पूर्वज।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० ११४-१६।

जहांगीर के साथ की संधि के अनुसार महाराणा को एक हज़ार सवार बादशाही सेवा में भेजना चाहिये था, परन्तु उनके न भेजने के कारण बादशाह की तरफ़ से बड़ा तकाज़ा होने पर महाराणा ने भोपतराम[1] के साथ अपनी सेना दक्षिण में भेज दी,[2] जो वहां की लड़ाइयों में सम्मिलित हुई[3]। महाराणा ने झाला कल्याण को मांडू में बादशाह के पास भेजकर दक्षिण-विजय की बधाई दिलाई[4]।

वि० सं० १७०० (ई० स० १६४३) में बादशाह शाहजहां ख्वाज़ामुइनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए दलबल सहित अजमेर आया, तो महाराणा जगतसिंह ने उसको प्रसन्न करने के लिए अपने ज्येष्ठ कुंवर राजसिंह को अजमेर भेजा। बादशाह के कृष्णगढ़ के पास पहुंचने पर राजसिंह ने जाकर एक हाथी नज़र किया और बादशाह ने उसे जड़ाऊ सरपेच, खिलअत, जड़ाऊ जमधर और सोने की ज़ीनवाला घोड़ा दिया, तथा आगरे जाते समय राजसिंह को खिलअत, तलवार, ढाल, सुनहरी साज के हाथी, घोड़े तथा जड़ाऊ ज़ेवर देकर सीख दी। राणा के वास्ते भी मोतियों की माला, ढाल, तलवार और सुनहरी साज के दो घोड़े दिये[5]।

महाराणा ने अपने पिछले समय में बादशाह जहांगीर के साथ की संधि की शर्त के विरुद्ध चित्तोड़ के क़िले की मरम्मत कराना शुरू किया और उसके पीछे महाराणा राजसिंह ने वह काम जारी रक्खा, जिससे अप्रसन्न होकर शाहजहां ने चित्तोड़ पर फ़ौज भेज दी, जिसका हाल महाराणा राजसिंह के वृत्तान्त में लिखा जायगा।

महाराणा जगतसिंह बड़ा ही दानी था। ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को दान दिया करता था। उसकी दानशीलता के सम्बन्ध में अब तक बहुतसी बातें

---

(१) धरयावदवालों का पूर्वज और महाराणा प्रतापसिंह के तीसरे पुत्र सहसा (सहसमल) का बेटा।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ३२२।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग १, पृ० १०३-४।

(४) वही; भाग १, पृ० ११४।

(५) वही भाग २, पृ० १२७-३०।

महाराणा के पुण्य-कार्य आदि

प्रसिद्ध हैं[1]। उसने सैकड़ों हाथी, हज़ारों घोड़े और गायें तथा सोने चांदी के दान किये, जिनका विस्तृत वर्णन वि० सं० १७०८ (चैत्रादि १७०९) द्वितीय वैशाख सुदि १५ गुरुवार की जगन्नाथराय (जगदीश) के मन्दिर की बड़ी प्रशस्ति तथा 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में मिलता है, जिनमें से मुख्य मुख्य पुण्य-कार्यों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

वह राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होने के समय से ही प्रतिवर्ष एक चांदी की तुला किया करता था[2] और श्रावणादि वि० सं० १७०४ (चैत्रादि १७०५=ई० स० १६४८) से प्रतिवर्ष सुवर्ण की तुला करने लगा[3]। वह अपने जन्मगांठ के दिन बड़े बड़े दान दिया करता था[4]। उसके दिये हुए दानों में मुख्य कल्पवृक्ष[5],

(१) *सिन्धुर दीधा सातसे, हय वर पांच हज़ार।*

एकावन सासण दिया, जगपत जगदातार॥

आशय—जगत के दाता जगतसिंह ने ७०० हाथी, ५ हज़ार घोड़े और ५१ गांव दान किये।

साई करे परेवड़ा, जगपत रे दरबार।

पीछोले पाणी पियां, कण चुग्गां कोठार॥

आशय—हे ईश्वर, हमको कबूतर भी बनावे, तो जगतसिंह के दरबार का कबूतर बनाना ताकि पीछोले में पानी पिया करें और कोठार में अन्न चुगा करें।

जगतो तो जाणे नहीं, मात पिता रो नाम।

तात पिता रटतो रहे, निशदिन योही काम॥

जगतसिंह माता के पिता का नाम (ना ना=इन्कार करना) तो जानता ही नहीं; तात पिता (दा दा=दो दो) ही रटता रहता है। उसका रात दिन यही काम है अर्थात् इन्कार करना तो जानता ही नहीं, किन्तु रातदिन दान किया करता है।

(२) राजप्रशस्ति; सर्ग ५, श्लोक ३४।

(३) वही; सर्ग ५, श्लोक ३५–३६।

(४) वही; सर्ग ५, श्लोक ३७।

(५) जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति; शिला १, श्लो० ११०–११। उक्त कल्पवृक्ष दान के सम्बन्ध में उपर्युक्त श्लोकों में लिखा है कि वह वृक्ष स्फटिक की वेदी पर खड़ा था, उसके मूल में नीलमणि (नीलम), सिरपर वैडूर्यमणि (लहसनिया), स्कन्धपर हीरे, शाखाओं में मरकत (माणिक), पत्तों की जगह विद्रुम (मूंगा), फूलों की जगह मोतियों के गुच्छे और फल रत्नों के बने थे। उसमें पांच शाखायें बनी हुई थीं और उसके नीचे ब्रह्मा, विष्णु, शिव और कामदेव की मूर्तियां बनी थीं। यह दान वि० सं० १७०५ भाद्रपद सुदि ३ के दिन ब्राह्मणों को दिया गया था।

सप्तसागर, रत्नधेनु और विश्वचक्र हैं[1]। काशी के ब्राह्मणों के लिए उसने बहुत सोना भेजा[2]। उसने अपनी जन्मगांठ के दिन कृष्णभट्ट को चित्तोड़ के पास का भैंसड़ा गांव दिया[3]। मधुसूदन भट्ट को आहाड़ गांव में दो हलवाह भूमि दान दी[4]।

उसने वि० सं० १७०४ (चैत्रादि १७०५) में महाकाल और ओंकारनाथ की यात्रा की और वहां (ओंकारनाथ में) ज्येष्ठ वदि अमावास्या को सूर्यग्रहण के समय सुवर्ण-तुला-दान किया[5]।

उसने लाखों रुपये व्यय कर राजमहलों से थोड़ी दूर उत्तर में अपने नाम से जगन्नाथराय (जगदीश) का भव्य विष्णु का पंचायतन[6] मन्दिर बनवाया[7]। यह मन्दिर गूगावत पंचोली कमल के पुत्र अर्जुन की निगरानी और भंगोरा गोत्र के सूत्रधार (सुथार) भाणा और उसके पुत्र मुकुन्द की अध्यक्षता में बना[8]। उक्त मन्दिर की प्रतिष्ठा चैत्रादि वि० सं० १७०९ वैशाखी पूर्णिमा (श्रावणादि १७०८= ई० स० १६५२ ता० १३ मई) गुरुवार को बड़े समारोह और व्यय के साथ हुई। इस अवसर पर हज़ार गायें, सोना, घोड़े आदि और ५ गांव ब्राह्मणों को

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग ५, श्लोक ३७-३८।

(२) जगन्नाथराय की प्रशस्ति; शिला १, श्लोक १०६।

(३) वही; शिला १, श्लोक ११७।

जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति तथा राजप्रशस्ति में ब्राह्मणों को गांव देने का उल्लेख है, चारणों भाटों आदि को नहीं। उनको भी महाराणा ने कई शासन दिये थे, ऐसी प्रसिद्धि है। चारण खेमराज दधवाडिये को वि० सं० १६८९ आषाढ़ वदि ३ को ठीकरिया गांव दिया, जैसा कि उसके ताम्रपत्र से पाया जाता है। इस गांव के दिये जाने के विषय में यह प्रसिद्धि है कि खेमराज ने एक बार कुँवरपदे के समय महाराणा के प्राण बचाये थे।

(४) वही; शिला १, श्लोक ११८।

मेवाड़ में एक हलवाह में ५० बीघा भूमि होना माना जाता है।

(५) जगन्नाथराय की प्रशस्ति; शिला १, श्लोक ६३-८४।

(६) विष्णु के पञ्चायतन मन्दिर में मध्य का मुख्य विशाल मंदिर विष्णु का होता है और मन्दिर के परिक्रमा के चारों कोनों में से ईशान कोण में शंकर, अग्नि में गणपति, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य में देवी के छोटे छोटे मन्दिर होते हैं।

(७) जगन्नाथराय की प्रशस्ति; शिला २, श्लोक १०। शिला ३, श्लोक ३६।

(८) प्रशस्ति का अन्तिम भाग।

दिये गये[1]। मन्दिर-बनानेवाले सूत्रधार भाणा और उसके पुत्र मुकुन्द को सोने और चांदी के गज़ तथा चित्तोड़ के पास का एक गांव मिला[2]। इस मन्दिर की विशाल प्रशस्ति की रचना कृष्णभट्ट ने की[3]। महाराणा ने एकलिंगजी के मन्दिर पर सुवर्ण के कलश और ध्वजदण्ड चढ़ाये[4]। पीछोले में उसने मोहनमन्दिर बनाया[5] और रूपसागर तालाब का निर्माण कराया[6]।

महाराणा की माता जांबुवती ने, जो राठोड़ जसवन्त (महेचा) की पुत्री थी[7], वि० सं० १६६८ में द्वारिका की यात्रा की और वहां चांदी का तुलादान किया[8]। उसने वि० सं० १७०५ में मथुरा और गोकुल की भी यात्रा की। वह दीवाली और अन्नकूट मथुरा में मनाकर सोरों गई। इस यात्रा में उसकी दोहिती नंदकुंवरी (जो बीकानेर के स्वामी कर्ण की पुत्री और रामपुरे के हठीसिंह की स्त्री थी) तथा कुंवर राजसिंह भी साथ थे। वहां पर जांबूवती तथा नंदकुंवरी ने चांदी की तथा राजसिंह ने सोने की तुला की। वहां से लौटते समय प्रयाग में जाम्बूवती ने चांदी की तुला की[9]।

महाराणा ने चित्तोड़ की मरम्मत कराने में पाडलपोल, लक्ष्मणपोल और माला बुर्ज की मरम्मत कराई। जगमन्दिर में ज़नाना महल आदि बनवाकर उसका नाम अपने नाम पर 'जगमन्दिर'[10] रक्खा और उदयसागर के बन्द पर नाले के निकट महल बनवाया।

महाराणा के बनाये हुए महल आदि

---

(१) जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति; शिला २, श्लोक १६-१७।

(२) उसी प्रशस्ति का अन्तिम भाग।

(३) वही; द्वितीय शिला का अन्तिम भाग।

(४) राजप्रशस्ति; सर्ग ५, श्लोक ३०।

(५) वही; सर्ग ५, श्लोक २६।
महाराणा ने अपनी उपपत्नी (पासवान) के पुत्र मोहनसिंह के नाम से यह मन्दिर बनवाकर उसका नाम मोहन-मन्दिर रक्खा।

(६) जगन्नाथराय की प्रशस्ति; शिला २, श्लोक ३४।

(७) राजप्रशस्ति सर्ग ५, श्लोक १६।

(८) वही; सर्ग ५, श्लोक ३१-३२।

(९) वही; सर्ग ५, श्लोक ३८-४४। जगन्नाथराय की प्रशस्ति; शिला ३, श्लोक २७।

(१०) कर्नल टॉड ने जगनिवास का उक्त महाराणा द्वारा बनवाया जाना लिखा है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४३३), जो भूल है। उसे तो महाराणा जगतसिंह दूसरे ने बनवाया था।

१-महाराणा जगतसिंह के समय के शिलालेखों में मुख्य जगन्नाथराय के मन्दिर की प्रशस्ति है, जो मेवाड़ के इतिहास के लिए उपयोगी है।

महाराणा के समय के शिलालेख आदि

२-ओंकारनाथ के मन्दिर के बाहर के भाग में लगी हुई वि० सं० १७०४ आषाढ़ सुदि १५ मंगलवार की है, जिसमें महाराणा की ओंकारनाथ की यात्रा, वहां के सुवर्ण-तुलादान आदि का वर्णन है।

३-वि० सं० १६८५ (श्रावणादि) आषाढ़ वदि का ठीकरिया गांव का ताम्रपत्र।

४—नारलाई (जोधपुर राज्य में) के आदिनाथ के मन्दिर की मूर्ति पर का वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) वैशाख सुदि ८ शनिवार का लेख। इसमें महाराणा जगतसिंह के समय नडुलाई (नारलाई) में उक्त मूर्ति के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

५—नाडोल (जोधपुर राज्य में) के आदिनाथ के मन्दिर की मूर्ति पर का वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) प्रथम आषाढ़ वदि ५ शुक्रवार का लेख। उसमें राणा जगतसिंह के राज्य समय नाडुल (नाडोल) में पद्मप्रभु की मूर्ति की स्थापना किये जाने का उल्लेख है।

६—रूपनारायण के मन्दिर का वि० सं० १७०६ का शिलालेख, जिसमें मेड़तिया राठोड़ चांदा के द्वारा उक्त मन्दिर के जीर्णोद्धार कराये जाने का वर्णन है।

७—उदयपुर के प्रसिद्ध जगन्नाथराय (जगदीश) के मन्दिर के पासवाले धाय के मन्दिर की वि० सं० १७०४ (चैत्रादि १७०५) वैशाख सुदि ३ की मेवाड़ी भाषा की प्रशस्ति। इसमें उक्त महाराणा की धाय नौजूबाई द्वारा उक्त मन्दिर के बनवाये जाने का उल्लेख है।

महाराणा का स्वर्गवास वि० सं० १७०६ कार्तिक वदि ४ (ई० स० १६५२ ता० १० अप्रेल) को उदयपुर में हुआ। उसकी ११ राणियों से उसके ५ कुंवर-संग्रामसिंह[१], राजसिंह, अरिसिंह[२], अजयसिंह[३] और जयसिंह—तथा ४ पुत्रियां[४] हुईं।

महाराणा का देहान्त और उसकी संतति

---

(१) संग्रामसिंह बचपन में ही मर गया।

(२) अरिसिंह के वंश में तीरोली का ठिकाना है। शक्तावतों को हींता मिलने के पहले वहां के जागीरदार भी अरिसिंह के वंशज थे।

(३) अजयसिंह और जयसिंह निस्संतान मरे।

(४) इन चार कुंवरियों में से एक का विवाह बूंदी के राव शत्रुशाल हाड़ा के पुत्र भावसिंह के साथ हुआ था।

महाराणा जगतसिंह ने डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ को अपने अधीन करने का यत्न किया, परन्तु उसमें विशेष सफलता प्राप्त न हुई। बादशाह के साथ उसका सम्बन्ध सामान्यतः ठीक ही रहा, परन्तु उसने अपने अंतिम दिनों में संधि के विरुद्ध चित्तोड़ की मरम्मत कराना आरंभ कर बादशाह को अप्रसन्न कर दिया था। अपने धर्म पर पूर्णरूप से दृढ़ होने के कारण उसने अपने पूर्वजों की संचित की हुई सम्पत्ति को दान पुण्यादि में खूब खर्च किया और लोगों में वह बड़ा दानी कहलाया तथा उसकी ख्याति दूर दूर तक फैली एवं प्रजा में उसका बहुत कुछ आदर रहा। उसका रंग कुछ सांवलापन लिए गेहुंआ, क़द मझोला, आंखें बड़ी, पेशानी चौड़ी और चेहरा हंसमुख था। वह स्वभाव का मिलनसार होने पर भी अपने पासवालों की बातों में आकर कभी कभी अनुचित कार्य भी कर बैठता था। देवलिये के जसवन्तसिंह और उसके पुत्र को मरवाना उसकी अदूरदर्शिता प्रकट करता है। वह वीर राजपूतों[1]

महाराणा का व्यक्तित्व

बुन्दीशशत्रुशल्यस्य भावसिंहाल्यसूनवे।
स्वकन्यां विधिनाभूपो दत्त्वात्रैव ददौ पुनः॥ २९॥

(राजप्रशस्ति; सर्ग ५)।

वीर-विनोद (भा० २, पृ० ३२१) में महाराणा की पुत्री का विवाह शत्रुशाल के साथ होना लिखा है, जो ठीक प्रतीत नहीं होता। एक का विवाह बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह के साथ हुआ था (रा० प्र० सर्ग ६, श्लोक २-३)।

(१) वीर चांपावत बल्लू जोधपुर के महाराज गजसिंह की सेवा में रहता था, परन्तु वहां अपनी तेज़मिज़ाज़ी के कारण टिक न सका और महाराणा जगतसिंह के पास चला आया। कुछ समय बाद अमरसिंह राठोड ने उसे अपने पास बुला लिया। अमरसिंह के साथ बल्लू भी शाही सेवा में रहा। जब अमरसिंह सलाबतखां को मार डालने के पश्चात् अर्जुन गौड़ आदि के हाथ से मारा गया, तब अमरसिंह के कई राजपूत वीर अर्जुन गौड़ को मार डालने की चेष्टा में बड़ी वीरता से लड़कर मारे गये। इस प्रकार मारे जानेवाले राजपूत वीरों में बल्लू भी शामिल था। यह प्रसिद्ध है कि महाराणा जगतसिंह ने ३०००० रुपये देकर दो उत्तम घोड़े लिए थे, जिनमें से एक राठोड़ बल्लू के पास आगरे भेज दिया था। कहते हैं कि यह घोड़ा बल्लू के पास उसी समय पहुंचा, जब कि वह अर्जुन गौड़ से लड़ने को जा रहा था। वह उसी घोड़े पर चढ़कर गया और वीरता से लड़कर काम आया। उस घोड़े की लाल पत्थर की मूर्ति आगरे के क़िले के अमरसिंह के दरवाज़े के निकट खाई के किनारे वेदी पर रखी हुई है। उसका केवल मुंह से लगाकर गर्दन तक का अंश अब शेष रह गया है। उसे लोग अमरसिंह का घोड़ा बतलाते हैं, परन्तु वह बल्लू के घोड़े का स्मारक है। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि वह (बल्लू) महाराणा राजसिंह के

तथा विद्वानों[1] का उचित आदर करता था और बहुमूल्य उत्तम घोड़े रखने का शौक़ीन था।

महाराणा राजसिंह

महाराणा राजसिंह का जन्म मेड़तिया राठोड़ राजसिंह की पुत्री जनादे के गर्भ से वि० सं० १६८६ कार्तिक वदि २ (ई० स० १६२६ ता० २४ सितम्बर)

समय औरंगज़ेब की सेना के साथ की लड़ाई में देबारी के दरवाज़े के पास मारा गया, जहां उसकी छत्री है, परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं है, क्योंकि वह तो शाहजहां के समय आगरे में मारा गया था। देबारी के पास की उक्त छत्री को हमने जाकर देखा तो उसके भीतर की स्मारक शिलापर नीचे लिखे आशय का लेख पाया—

संवत् १७३६ पौष सुदि १४ को बादशाह औरंगज़ेब देबारी आया, जहां राठोड बल्लूदास का पुत्र गोरासंग (गोरासिंह) काम आया। इससे निश्चित है कि देबारी के पास की औरंगज़ेब के साथ की लड़ाई में राठोड बल्लू नहीं, किन्तु उसका पुत्र मारा गया था।

(१) महाराणा जगत्सिंह के लिए वैद्य नारायण के पुत्र कवि विश्वनाथ ने 'जगत्प्रकाश' नामक १४ सर्गों के काव्य की रचना की थी, जिसकी वि० सं० १७०० की लिखी हुई एक प्रति प्रोफ़ेसर पीटर्सन को प्राप्त हुई, जिसका अन्तिम अंश नीचे लिखे अनुसार है—

श्रीमद्राणकवंशमौक्तिकमणिश्रीकर्णदेवात्मज-
क्षोणीमंडलमंडनाभिधजगत्सिंहप्रशंसोज्ज्वले।
सत्काव्येत्र जगत्प्रकाश उदिते श्रीविश्वनाथाभिध-
ज्ञेनापूरि चतुर्दशोतिविशदः सर्गो बुधानां प्रियः ॥ ७२ ॥

इति श्रीमन्महीमंडलाखंडलश्रीचित्रकूटसार्वभौमश्रौतस्मार्त्तधर्मकर्माचारचातुरीनिवारितकलिकालश्रीमद्राणखुमानकुलमौलिमंडनश्रीमत्कर्णदेवात्मजश्रीमन्महाराजाधिराजधर्मावतारसत्तलोकैकदानवीरधीरोदात्तगुणशोभितश्रीमज्जगत्सिंहदेवप्रशंसोज्ज्वले श्रीमद्विद्वद्वृंदवंदनीयपादारविंदश्रीमन्नारायणात्मजश्रीमत्कविनाथविश्वनाथवैद्यकृते श्रीजगत्प्रकाशमहाकाव्ये वंदिस्तुतिर्नाम चतुर्दशः सर्गः ॥

(पीटर पीटरसन् की—संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की—तीसरी रिपोर्ट; पृ० ३२४-२५।

खेद है कि बहुत कुछ उद्योग करने पर भी वह पुस्तक हमें प्राप्त न हो सकी।

को[1] और गद्दीनशीनी वि० सं० १७०६ कार्त्तिक वदि ४ (ई० स० १६५२ ता० १० अक्टोबर) को हुई। उसी वर्ष मार्गशीर्ष के कृष्णपक्ष में एकलिंगजी जाकर वहां पर उसने रत्नों का तुलादान किया[2]। रत्नों के तुलादान का संपूर्ण भारत में अबतक यही एक लिखित उदाहरण मिला है। उक्त संवत् के फाल्गुन वदि २ (ई० स० १६५३ ता० ४ फ़रवरी) को महाराणा का राज्याभिषेकोत्सव हुआ। उसी दिन उसने चांदी का तुलादान किया[3]। बादशाह शाहजहां ने महाराणा

---

(१) शते षोडशकेऽतीते षडशीत्यभिधेब्दके ।
ऊर्जे कृष्णद्वितीयायां जगतसिंहमहीपतेः ॥ २२ ॥
पुत्रः श्रीराजसिंहोऽभूद्वर्षान्तेऽरसी तथा ।
मेड़ताधिपराठोडराजसिंहमहीभृतः ॥ २३ ॥
पुत्री जनादेनाम्नी तत्कुक्षिजाताविमौ सुतौ...॥ २४ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५।

(२) .... *राणा श्रीजगत्–*
सिंहात्मजश्रीराजसिंहनृपतिः प्रीत्यैकलिंगाग्रतो
रत्नैः पूर्णतुलां कृती व्यरचयत् सचित्रकूटाधिपः ॥ १८ ॥

कुछ वर्ष पूर्व इस तुला के तोरण के टुकड़े और शिलालेख एकलिंगजी के मन्दिर के पासवाले नाथों के मन्दिर के सामने एक चबूतरे पर कूड़े करकट के ढेर में से मिले। वह शिलालेख इस समय उदयपुर के विक्टोरिया हॉल में सुरक्षित है। मेवाड़-राज्य के स्वामी एकलिंगजी और महाराणा उनके दीवान माने जाते हैं, इसलिए वहां यह रीति प्रचलित है कि प्रत्येक महाराणा गद्दीनशीनी के पीछे कोई शुभ मुहूर्त पर एकलिंगजी जाता है, जहां पूजन करने के पश्चात् वहां का गुसाईं (मठाधिपति) एकलिंगजी की तरफ़ से दीवान पद के चिह्नस्वरूप तलवार, छत्र, चमर और सिरोपाव उसे देता है। रत्नों का यह तुलादान इसी अवसर पर हुआ होगा।

(३) वर्षे *निध्यम्बरर्षिक्षितिगणनयुते फाल्गुनस्य द्वितीया–*
तिथ्यां कृष्णाख्यपक्षे सकलनृपमणिः श्रीजगत्सिंहपुत्रः ।
राज्यश्रीचिह्नभूतं त्रिजगति सुखदं हेमसिंहासनं सत्
सल्लग्नेऽधिष्ठितोऽभूत् सकलरिपुकुलत्रासदो राजसिंहः ॥१३॥

जगन्नाथराय की प्रशस्ति की तीसरी शिला।

जगत्सिंह के स्वर्गवास का समाचार सुनने पर राजसिंह को राणा का ख़िताब, पांच हज़ारी ज़ात और पांच हज़ार सवारों का मन्सब देकर जड़ाऊ जमधर हाथी घोड़े वग़ैरह उसके लिए भेजे[1]।

ऊपर लिखा जा चुका है कि महाराणा जगत्सिंह ने चित्तोड़ के क़िले की मरम्मत कराना शुरू कर दिया था। राजसिंह ने गद्दी पर बैठते ही मरम्मत का कार्य

बादशाह का चित्तोड़ पर सेना भेजना

बड़ी शीघ्रता से कराना शुरू किया। इसकी ख़बर पाने पर बादशाह शाहजहां ता० २ ज़िलहिज्ज हि० स० १०६४ (वि० सं० १७११ आश्विन सुदि ४=ई० स० १६५४ ता० ४ अक्टोबर) को शाहजहानाबाद (दिल्ली) से ख़्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर रवाना हुआ। मार्ग में से ही उसने अब्दालबेग को चित्तोड़ की मरम्मत देखने के लिए भेजा। उसने लौटकर निवेदन किया कि पश्चिम की तरफ़ के सात दरवाज़ों में से कई दरवाज़ों की तो मरम्मत की गई है और कई नये बनाये गये हैं। बहुत सी जगहों पर, जहां चढ़ना कठिन न था, वहां दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। यह सुनकर बादशाह ने सादुल्लाखां वज़ीर को ३०००० सेना के साथ चित्तोड़ के क़िले को ढाह देने के लिए भेजा[2]। उसके साथ की फ़ौज में १५०० बन्दूकचियों के अतिरिक्त बहुत से अमीर और मन्सबदार शामिल[3] थे। यह समाचार सुनकर राणा ने अपना वक़ील भेजकर दाराशिकोह के द्वारा क्षमा चाही। बादशाह ने युवराज को दरबार में भेजने और क़दीम दस्तूर के मुवाफ़िक़ १००० सवार दक्षिण में रखने की शर्तों पर ज़ोर देकर मुंशी चन्द्रभाण[4] को महाराणा के पास

शते सप्तदशे पूर्णे नवाब्येऽकरोत्तुलाम्।
रूप्यस्य......फाल्गुने कृष्णपक्षके ॥ १ ॥
द्वितीया दिवसे..................॥ २ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ६।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग ३, पृ० ८२।

(२) वही; भाग ३, पृ० १०२-३।

(३) शाहजहांनामा; इलियट्; जिल्द ७, पृ० १०३।

(४) मुंशी चन्द्रभाण पटियाले का रहनेवाला ब्राह्मण था। वह फ़ारसी का बड़ा विद्वान् और शाहज़ादा दाराशिकोह का मुंशी था। उसने फ़ारसी में कई किताबें भी लिखीं। उसके लिखे हुए पत्रों का संग्रह 'इन्शाए ब्राह्मण' नाम से प्रसिद्ध है। उसका देहान्त वि० सं० १७१९ (ई० स० १६६२) में काशी में हुआ था।

भेजा[1]। ता० २५ ज़िलहिज्ज (कार्त्तिक वदि १३=ता० २७ अक्टोबर) को बादशाह अजमेर पहुंचा।

महाराणा ने इस समय लड़ाई करना उचित न समझकर राजपूतों को चित्तोड़ से हटा दिया। सादुल्लाखां चित्तोड़ में १५ दिन रहकर वहां के बुरजों और कंगूरों को गिराकर बादशाह के पास लौट गया[2]।

मुंशी चन्द्रभाण ने उदयपुर पहुंचने पर महाराणा से कहा कि आपके चित्तोड़ के क़िले की मरम्मत के अतिरिक्त बादशाह के आगरे से दूर चले जाने पर उसकी सीमा में सेनासहित जाने, बादशाह को कन्धार और दक्षिण की चढ़ाइयों में तथा अन्य अवसरों पर पूरी सहायता न देने से बादशाह आपपर अप्रसन्न हैं। यद्यपि अपराध बहुत बड़े हैं, तो भी बादशाह उन्हें क्षमाकर केवल यही चाहते हैं कि आप युवराज को तो दरबार में और किसी सरदार को सेना सहित दक्षिण भेज दें[3], तथा अजमेर के निकटस्थ परगनों का प्रबन्ध बादशाह की इच्छा पर निर्भर रहेगा। इसपर महाराणा ने यही कहलाया कि जब सेना चित्तोड़ से लौट जायगी, तब मैं अपने युवराज को शेख़ अब्दुलकरीम के साथ भेज दूंगा[4]।

महाराणा का युवराज को बादशाही सेवा में भेजना

---

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग ३, पृ० १०३। शाहजहांनामा; इलियट्; जि० ७, पृ० १०३। वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४०२।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग ३, पृ० १०४। शाहजहांनामा; इलियट्; जि० ७, पृ० १०४।

(३) महाराणा ने उदयकरण चौहान और शंकरभट्ट को शाहज़ादा औरंगज़ेब से बातचीत करने के लिए दक्षिण में भेजा और अपनी नियत सेना भी माधवसिंह सीसोदिया की अध्यक्षता में भेज दी, जैसा कि शाहज़ादा औरंगज़ेब के दक्षिण से भेजे हुए दो निशानों से पाया जाता है। शाहज़ादे ने भी महाराणा से बातचीत करने के लिए अपने विश्वासपात्र इन्द्रभट्ट को महाराणा के लिए हीरे की अंगूठी और ख़िलअत देकर उसके पास भेजा था। क़िदवी ख़्वाजा के हाथ सामान सहित एक हाथी भी भेजा।

(४) 'इन्शाए ब्राह्मण' में दिये हुए मुंशी चन्द्रभाण के चार पत्र, वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४०३-१२।

राजप्रशस्ति में लिखा है—"राजसिंह ने चन्द्रभान के उदयपुर पहुंचने से पहले मधुसूदन भट्ट और रायसिंह झाला को सादुल्लाखां के पास भेजा। सादुल्लाखां ने महाराणा का यह दोष

बादशाह ने महाराणा के कहलाने पर शेख अब्दुलकरीम को उसके पास भेजा। उसके साथ उसने युवराज को बेदला के राव रामचन्द्र चौहान आदि आठ सरदारों सहित बादशाह की सेवा में भेजा। जब बादशाह अजमेर से लौटता हुआ मालपुरे पहुंचा तब कुंवर भी शाही सेना में उपस्थित हो गया। उस समय तक कुंवर का कोई नाम नहीं रक्खा गया था, इसलिए बादशाह ने उसका नाम सौभाग्यसिंह[1] रक्खा। बादशाह ने उसे मोतियों का सरपेच, जड़ाऊ तुर्रा, मोतियों का हार, बालाबन्द वग़ैरह दिये तथा रामचन्द्र आदि आठों सरदारों को घोड़े और खिलअत दिये। बादशाह ने छः दिन तक उसे अपने पास रक्खा फिर हाथी घोड़े देकर उदयपुर जाने के लिए सीख दी[2]।

महाराणा का शाही मुल्क लूटना

चित्तोड़ की मरम्मत गिराया जाना और अजमेर की तरफ़ के पुर, मांडल, खैराबाद, मांडलगढ़, जहाजपुर, सावर, फूलिया, बनेड़ा, हुरडा तथा बदनौर आदि परगनों का शाही सीमा में मिलाया जाना महाराणा को खटक रहा था और वह बदला लेने का अवसर ढूंढ़ रहा था। संयोगवश उसे ऐसा अवसर भी मिल गया। वृद्ध शाहजहां बीमार पड़ा हुआ अपने अन्तिम दिन गिन रहा था। इधर उसके चारों पुत्रों (दाराशिकोह, औरंगज़ेब, मुराद और शुजा) में से हर एक राज्य पाने का उद्योग कर रहा था। दाराशिकोह बादशाह के पास आगरे में अपना पक्ष पुष्ट करने की कोशिश कर रहा था। शुजा ने बंगाल में सेना तैयार कर आगरे की ओर आने का विचार किया।

बताया कि उसने ग़रीबदास (चाचा) को, जो बादशाह से बिना आज्ञा लिए भाग आया था, अपने पास रख लिया। मधुसूदन ने उत्तर दिया कि राजपूतों के लिए उदयपुर और दिल्ली दोनों स्थान हैं। रावत मेघसिंह तथा शक्तिसिंह पहले उदयपुर से दिल्ली गये फिर वहां से उदयपुर लौट आये थे। इसपर सादुल्लाखां ने पूछा कि तुम्हारी सेना कितनी है? मधुसूदन ने कहा कि २६०००, सादुल्लाखां ने कहा कि बादशाह के पास १००००० सवार हैं। तुम उनका मुकाबला कैसे कर सकते हो? मधुसूदन ने जवाब दिया कि हमारे २६००० ही काफी हैं (राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक ११-२१)"। इन बातों से दोनों में तनातनी बढ़ गई और संभव था कि बादशाह और राणा में संधि न होती, परंतु चन्द्रभान मुंशी ने परस्पर सुलह करा दी।

(१) महाराणा को यह नाम पसन्द नहीं आया, इसलिए उसने उसका नाम सुलतानसिंह रक्खा।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; भाग ३, पृ० १०४–६।

औरंगज़ेब ने शाहज़ादा मुराद को बादशाह बनाने का लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया। दाराशिकोह ने अपने पुत्र सुलतानशिकोह को शुजा को रोकने के लिए बंगाल की तरफ़ भेजकर महाराजा जसवन्तसिंह और क़ासिमखां को, दक्षिण से आते हुए औरंगज़ेब और मुराद के सम्मिलित सैन्य[1] से लड़ने को भेजा। धर्मातपुर (फ़तहाबाद=फ़तियाबाद) में बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें विजय पाकर औरंगज़ेब आगे बढ़ा तथा समूनगर की लड़ाई में विजयी होकर आगरे पहुंचा और अपने पिता को क़ैदकर वि०सं० १७१५ श्रावण सुदि ३(ई०स० १६५८ ता० २३ जुलाई) को मुग़लराज्य का स्वामी बना। इस प्रकार बादशाही सेना को पारस्परिक लड़ाई में लगी हुई देखकर महाराणा ने बादशाही अधिकार में गये हुए अपने परगने पीछे लेने तथा बादशाही मुल्क को लूटने के लिए प्रस्थान किया। सब से पहले उसने मांडलगढ़ पर, जो बादशाह ने किशनगढ़ के राजा रूपसिंह को दे दिया था और जहां उसका किलेदार महाजन राघवदास रहता था, हमलाकर उसे ले लिया। फिर वह वि० सं० १७१५ वैशाख सुदि १० (ई० स० १६५८ ता० २ मई) को चित्तोड़ से चला[2] तथा दरीबा पहुंचा तथा उसे अपने अधिकार में

---

(१) जब औरंगज़ेब बादशाह बनने की इच्छा से दक्षिण से चला, तब से ही महाराणा से सहायता लेने के लिए पत्र-व्यवहार किया करता था। उसके तीन निशानों से पाया जाता है कि रघुनाथ के हाथ महाराणा की अर्ज़ी पहुंचने पर उसने लिखा कि जो बातें आपस में तय हो गई हैं, उनके अनुसार मांडल वग़ैरह चार परगने (जो शाहजहां ने ज़ब्त कर लिए थे) वापस देना मंजूर किया है और कहा कि जिस बड़े काम (बादशाह बनने) का हमने इरादा कर लिया है उसके लिए एक अच्छी सेना किसी अपने निकट सम्बन्धी की अध्यक्षता में शीघ्र रवाना करे। उसने एक तलवार और ख़ास ख़िलअत भेजकर लिखा कि राणाई की तलवार हिन्दुस्तान के बादशाहों की तरफ़ से मिलती है, वह हमने अपनी तरफ़ से भेज दी है। फिर नर्मदा उतरने से पूर्व औरंगज़ेब ने एक और निशान महाराणा के पास भेजा, जिसमें सेना के साथ कुंवर के नर्मदा के इस पार उसकी सेना में सम्मिलित होने का आग्रह किया और महाराणा के लिए जड़ाऊ तुर्रा भी भेजा। नर्मदा की विजय के बाद उसने महाराणा को एक और निशान भेजा, जिसमें उस विजय का वृत्तान्त लिखकर उसे धन्यवाद दिया गया और कुंवर को शीघ्र सेना सहित भेजने का आग्रह कर अपने चार परगनों पर, जो दूसरे जागीरदारों को दिये गये थे, अधिकार करने के लिए लिखा। उसकी इन सेवाओं के बदले में उसे आगे बड़ा पद देने की आशा भी दिलाई और लिखा कि उसका दर्जा महाराणा सांगा से भी बढ़ा दिया जायगा (वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४१९-२४ में प्रकाशित निशान)।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४१४।

कर वह मांडल गया, जिसको अपने अधीन कर वहांवालों से बाईस हज़ार रुपये लिये[1]। इसी तरह बनेड़ा पहुंचकर वहांवालों से २६००० रुपये दण्ड के लिये[2]। फिर महाराणा शाहपुरे गया और वहांवालों से २२००० रुपये जुर्माना लेकर[3] जहाज़पुर[4], सावर, फूलिया[5], केकड़ी आदि को अपने अधिकार में करता हुआ मालपुरे पहुंचा और वहां नौ दिन तक रहकर उसे लूटा। यहां बहुत बड़ी समृद्धि उसके हाथ लगी[6]। टोडे पर आक्रमण करने के लिए फतहचन्द (कायस्थ) को ३००० सेना सहित भेजा तो रायसिंह की माता ने ६०००० रुपये देकर पीछा छुड़ाया[7]। वीरमदेव (सुजानसिंह का भाई और बादशाही नौकर) के नगर को जलाकर उसने भस्म कर दिया[8]। इसके बाद महाराणा ने टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू पर भी आक्रमण कर वहांवालों से दंड लिया[9] तथा चातुर्मास के पूर्व ही वह उदयपुर लौट आया।

जब औरंगज़ेब समूनगर की लड़ाई में विजयी होकर आगरे आया तब सलीमपुर में महाराणा के कुंवर सुलतानसिंह ने अपने चचा अरिसिंह समेत उपस्थित होकर वि० सं० १७१५ आषाढ़ सुदि १ (ई० स० १६५८ ता० २१ जून) के दिन औरंगज़ेब को विजय की बधाई दी। उसने उसे खिलअत, मोतियों की कंठी, सरपेच तथा जड़ाऊ छोगा दिया और महाराणा के लिए भी एक बहुमूल्य जड़ाऊ सरपेच प्रदान किया। अपने पिता

महाराणा और औरंगज़ेब

(१) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ७, श्लोक २२-२६।

(२) वही; सर्ग ७, श्लोक २७।

(३) वही; सर्ग ७, श्लोक २८। शाहपुरे का स्वामी सुजानसिंह (महाराणा अमरसिंह के भाई सूरजमल का पुत्र) चित्तोड़ की चढ़ाई पर सादुल्लाखां के साथ था, इसलिए महाराणा राजसिंह ने शाहपुरे से दंड लिया।

(४) वही; सर्ग ७, श्लोक २१।

(५) वही; सर्ग ७, श्लोक १२।

(६) वही; सर्ग ७, श्लोक ३१-३६।

(७) वही; सर्ग ७, श्लोक २९। टोडे का रायसिंह भी चित्तोड़ के गिराने में सादुल्लाखां के साथ था, इसलिए उसपर भी आक्रमण किया गया था।

(८) वही; सर्ग ७, श्लोक ३०।

(९) वही; सर्ग ७, श्लोक ४२।

शाहजहां को क़ैदकर बादशाहत का काम अपने हाथ में लेने के पश्चात् दारा-शिकोह का पीछा करने के लिए पंजाब जाते हुए औरंगज़ेब ने मथुरा से कुंवर सुलतानसिंह को सरपेच और जड़ाऊ तुर्रा तथा अरिसिंह को जड़ाऊ धुकधुकी देकर कुंवर को विदा किया। कुछ समय बाद ख़िलअत, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की कंठी, सामान सहित घोड़ा देकर अरसी को भी सीख दी[1] और महाराणा के नाम ता० १७ ज़िल्काद हि० स० १०६८ (वि० स० १७१५ भाद्रपद वदि३=ई० स० १६५८ ता० ७ अगस्त) के दिन फरमान भेजा। इस फरमान के द्वारा उसका पद बढ़ाकर छः हज़ार ज़ात व छः हज़ार सवार, जिनमें एक हज़ार सवार दो अस्पा तीन अस्पा[2] मुक़र्रर किया। इस फरमान के साथ पांच लाख रुपये और हाथी व हथिनी इनाम के तौर पर भेजे। बदनोर और मांडलगढ़ के अतिरिक्त डूंगर-पुर, बांसवाड़ा, बसावर और गयासपुर (जो महाराणा जगतसिंह के समय से अलग हो गये थे) भी महाराणा को दिये। उसने इसी फरमान के द्वारा लाल-कुंवर[3] और अरिसिंह को अपने पास बुलाया[4]।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४२४-२५।

(२) मन्सबदारी के नियमानुसार प्रथम श्रेणी के मन्सबदारों के लिए ज़ात और सवारों की संख्या बराबर होती थी। ज़ात से सवारों की संख्या कभी बढ़ती नहीं थी। जब कभी विशेष कारण से मन्सबदार की तरक्की करने की आवश्यकता होती तब उसके सवारों में से कुछ दो अस्पा तीन अस्पा (सह अस्पा) कर दिये जाते, जिससे उसको लाभ हो जाता था, क्योंकि दो अस्पा सवारों का वेतन मामूली से ड्यौढ़ा और तीन अस्पों का दूना मिलता था।

महाराणा का मन्सब पांच हज़ारी से छः हज़ारी कर देने और ५ लाख रुपये इनाम देने तथा डूंगरपुर बांसवाड़ा आदि उसके राज्य में मिला देने आदि से अनुमान होता है कि धर्मात-पुर की लड़ाई के पश्चात् महाराणा ने माधवसिंह सीसोदिया के साथ दक्षिण में भेजी हुई सेना के अतिरिक्त कुछ और भी सेना औरंगज़ेब के सहायतार्थ भेजी होगी, जिसके लिए औरंगज़ेब ने कई बार लिखा था, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं।

(३) महाराणा के कुंवरों में किसी कुंवर का नाम लाल या लालसिंह नहीं था। अनुमान होता है कि यह नाम शायद कुंवर सरदारसिंह का रहा हो, जो शुजा के साथ की लड़ाई में शरीक़ हुआ था। जैसे फ़ारसी तवारीख़ों में महाराणा प्रतापसिंह के लिए 'कीका' शब्द का प्रयोग किया गया है, शायद उसी तरह यहां सरदारसिंह के लिए 'लाल' शब्द का भी प्रयोग हुआ हो। गुजरात मेवाड़ आदि में कीका (कूका) और लाल शब्द पिता की विद्यमानता में या बाल्या-वस्था में पुत्रों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

(४) वीर-विनोद भाग २, पृ० ४२५-३२। यह फ़रमान ऊपर लिखे निशानों के साथ उदयपुर राज्य में विद्यमान है।

शुजा के साथ की लड़ाई में महाराणा का कुंवर सरदारसिंह भी शाही सैन्य में पहले ही पहुंच गया था। उसे भी बादशाह ने मोतियों की कंठी, जड़ाऊ सरपेच और छोगा दिया[1]।

दाराशिकोह पंजाब से भागता हुआ कच्छ और गुजरात हो कर सिरोही पहुंचा, वहां से उसने ता० १ जमादि उल् अव्वल हि० स० १०६६ (वि० सं० १७१५ मांघ सुदि २=ई० स० १६५६ ता० १५ जनवरी) को महाराणा के नाम एक निशान भेजा, जिसमें अपने सिरोही आने का उल्लेख कर लिखा कि हमने अपनी लाज राजपूतों पर छोड़ी है और वस्तुतः हम सब राजपूतों के मेहमान होकर आये हैं। महाराजा जसवन्तसिंह भी उपस्थित होने के लिए तैयार हो गया है[2]। वह (राणा) तमाम राजपूतों का सरदार है। हमें इन दिनों मालूम हुआ कि राणा का बेटा उस (औरंगज़ेब) के पास से चला आया है। ऐसी अवस्था में हम उस उत्तम राजा से आशा करते हैं कि वह हम से मिलकर आला हज़रत (शाहजहां) को क़ैद से छुड़ाने में हमारी मदद करेगा। यह सेवा उस उत्तम राजा के वंशवाले वर्षों और युगों तक याद रक्खेंगे। यदि वह स्वयं न आसके तो किसी रिश्तेदार को दो हज़ार सवारों[3] सहित हमारे पास भेज दे[4]। महाराणा ने दारा के लिखने पर कुछ भी ध्यान नहीं

दाराशिकोह का महाराणा से सहायता मांगना

(१) गते शते सप्तदशे तु वर्षे चतुर्दशाख्ये बहुवाणवर्षी।
सूजाख्यसोदर्यवरेण युद्धं औरंगजेबस्य वितन्वतोऽस्य ॥ ५ ॥
मुदे कुमारं सरदारसिंहं संप्रेषयामास नृपः पुरैव।
औरंगजेबस्य पुरः स्थितोऽसौ रणे कुमारो जयवान् स जातः ॥ ६ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८।

वीरविनोद; भाग २, पृ० ४३२।

(२) जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिंह इस समय दारा की सहायता के लिए तैयार हो गया था, परन्तु जयपुर का महाराजा जयसिंह (मिर्ज़ा राजा) औरंगजेब का सहायक हो गया और उसी के समझाने से जसवन्तसिंह दारा की सहायता करने से रुक गया, जिससे दारा को अजमेर (देवराई) की लड़ाई से हारकर गुजरात भागना पड़ा और औरंगजेब दिल्ली का स्थिररूप से स्वामी हो गया।

(३) फ़ारसी तवारीख़ों में सवार शब्द सेना के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसमें सवार पैदल आदि सबका समावेश होता है।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४३२-३३।

दिया, क्योंकि वह तो पहले से ही औरंगजेब का पक्ष लेता था और जब वह दारा से लड़ने के लिए अजमेर की तरफ़ आ रहा था, उस समय फ़तहपुर में महाराणा की ओर से उसके पास दो तलवार जड़ाऊ सामान समेत और मीना-कारी के कामवाला बर्छा पहुंचाया गया था[1]।

औरंगजेब के भेजे हुए फ़रमान के अनुसार महाराणा ने डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ आदि स्थानों को अपने अधीन करना चाहा, परन्तु वहांवालों ने उसके अधीन रहना पसन्द न किया इसलिए उसने वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) वैशाख वदि ९ (ई० स० १६५९ ता० ५ अप्रेल) को अपने प्रधान फ़तहचन्द[2] को रावत रघुनाथसिंह (सलूंबर का), मोहकमसिंह शक्तावत (भींडर का), सीसोदिया माधवसिंह[3], रावत मानसिंह सारंगदेवोत (कानोड़वालों का पूर्वज), सोलंकी दलपत (देसूरी का), राठोड़ जोधसिंह (ईडर का), रावत रुक्मांगद चौहान और उसका पुत्र उदयकर्ण (कोठारिये का) आदि सरदारों के साथ पांच हज़ार सेना देकर बांसवाड़े पर भेजा। वहां के रावल समरसिंह ने यह देखकर महाराणा को एक लाख रुपया, दस गांव, देशदाण (चुंगी का अधिकार), एक हाथी और एक हथिनी देकर उसकी अधीनता स्वीकार की, जिसपर महाराणा ने उसे दस गांव देशदाण और बीस हज़ार रुपये छोड़ दिये[4]।

महाराणा का बांसवाड़ा आदि को अधीन करना

महाराणा राजसिंह स्वयं बड़े सैन्य के साथ बसावर[5] (बसाड़, मन्दसोर प्रदेश का एक विभाग) पर चढ़ा, जिससे महारावत (हरिसिंह) की हिम्मत टूट गई[6]। महाराणा ने फ़तहचन्द को बांसवाड़े से देवलिये पर भेजा। रावत हरिसिंह भागकर बादशाह (औरंगजेब) के पास चला गया। उसकी माता ने

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४३४।

(२) फ़तहचन्द महाराणा जगत्सिंह के प्रधान भागचन्द का पुत्र था, जिसको महाराणा राजसिंह ने उसके पिता के पदपर पूर्ण सम्मानसहित नियुक्त किया था, जिसका विस्तृत वृत्तान्त उपर्युक्त बेड़वास की प्रशस्ति में लिखा हुआ है।

(३) माधवसिंह सीसोदिया, जो दक्षिण में मेवाड़ की सेना के साथ औरंगजेब के पास गया था।

(४) बेड़वास की प्रशस्ति। राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८, श्लोक १६-२०।

(५) बसावर मन्दसोर प्रदेश का एक विभाग था और देवलियावालों के अधीन था।

(६) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८, श्लोक ६-११।

अपने पौत्र प्रतापसिंह को फ़तहचन्द के पास भेज दिया और पांच हज़ार रुपये सहित एक हथिनी दंड में दी। फ़तहचन्द प्रतापसिंह को महाराणा के पास ले आया[1]। जब हरिसिंह को बादशाह से सहायता न मिली, तब उसने झाला सुलतान (सादड़ीवाला), राव सबलसिंह चौहान[2], रावत रघुनाथ (चूंडावत) और मुहकमसिंह (शक्तावत) को बीच में डालकर महाराणा के चरणों की शरण ली और ५० हज़ार रुपये, एक हाथी तथा एक हथिनी नज़र की[3]। इसी तरह डूंगरपुर के रावल गिरधर ने भी महाराणा की सेवा स्वीकार कर ली[4]।

वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) में किशनगढ़ के राजा रूपसिंह का देहान्त होने पर उसका पुत्र मानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। बादशाह औरंगज़ेब ने उसकी बहिन चारुमती की सुन्दरता का हाल सुनकर उससे शादी करना चाहा। मानसिंह को भी विवश हो कर[5] यह सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ा। चारुमती का

महाराणा का चारुमती से विवाह और बादशाह से बिगाड़

(१) बेडवास की प्रशस्ति और राजप्रशस्तिमहाकाव्य; सर्ग ८, श्लोक २१-२४। राजप्रशस्ति में २०००० रुपया दण्ड देना लिखा है, परन्तु बेडवास की प्रशस्ति में ५००० ही लिखा है।

(२) बेदलेवालों का पूर्वज।

(३) राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८, श्लोक १२-१५।

(४) वही; सर्ग ८, श्लोक ८।

(५) अकबर नामा आदि फ़ारसी तवारीख़ों में जगह जगह लिखा मिलता है कि अमुक हिन्दू राजा ने बादशाह से अर्ज़ किया कि मेरी लड़की बड़ी ख़ूबसूरत है, इसलिए उसे शाही ज़नानख़ाने में दाख़िल होने की इज़्ज़त बख़्शी जावे, परन्तु यह कथन झूठा और केवल ख़ुशामद से भरा हुआ है। किसी हिन्दू राजा ने ख़ुशी से किसी बादशाह को अपनी लड़की देने की इच्छा प्रकट नहीं की। जब इसके लिए उनपर दबाव डाला जाता था, तभी उनको लाचार हो कर राज्य की रक्षा के लिए उस समय की परिस्थिति का विचार कर अपनी लड़कियां बादशाहों को देनी पड़ती थीं। बादशाह जहांगीर ने जयपुर के राजा मानसिंह के बेटे जगतसिंह की पुत्री से विवाह करना चाहा, परन्तु उस लड़की के नाना बूंदी के राव भोज ने उसका विरोध किया, जिसपर उसने काबुल से वापस आकर उसे इस गुस्ताख़ी के लिए दण्ड देने का निश्चय किया, परन्तु उसके लौटने से पूर्व ही उसका (भोज का) देहान्त हो गया, जिससे वह कुछ न कर सका (बंगा० ए० सो० का ई० स० १८८८ का जर्नल; भाग १, पृष्ठ ७५)। यदि राजा लोग अर्ज़ कराकर अपनी लड़कियां बादशाह को देते होते, तो भोज को विरोध करने की कोई आवश्यकता ही न रहती।

पिता परम वैष्णव था, जिससे उस (चारुमती) की भी वैष्णवधर्म में बड़ी रुचि थी। जब उसने यह सुना कि मेरी शादी मुसलमान के साथ होनेवाली है, तब वह अत्यन्त दुखी हुई और उसने अपनी माता तथा भाई से कह दिया कि यदि मेरा विवाह बादशाह के साथ करोगे, तो मैं अपने प्राणों को तिलांजलि दे दूंगी। जब चारुमती ने अपने बचाव का कोई उपाय न देखा तब उसने महाराणा राजसिंह की शरण ली और उसके पास एक अर्ज़ी भेजी, जिसमें अपने दुःख का पूरा हाल लिखते हुए प्रार्थना की कि आप मेरे साथ विवाह कर मेरे धर्म की रक्षा करें। इसपर महाराणा वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६०) में ससैन्य किशनगढ़ पहुंचा और चारुमती से विवाह कर उसे अपने यहां ले आया[1]। देवलिये का रावत हरिसिंह, जो महाराणा से पहले से ही अप्रसन्न था, औरंगज़ेब के पास गया और उसे चारुमती के साथ के महाराणा के विवाह का समाचार सुनाया। बादशाह यह सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और ग्यासपुर तथा बसावर उदयपुर से अलग कर रावत हरिसिंह को दे दिये। बादशाह ने महाराणा को लिखा कि मेरे हुक्म के बिना किशनगढ़ जाकर तुमने शादी क्यों की? इसके उत्तर में महाराणा ने बादशाह के पास उदयकरण चौहान के हाथ एक अर्ज़ी भेजकर लिखा कि राजपूतों का विवाह सदा से राजपूतों के साथ होता आया है और कभी इसके लिए मनाही नहीं हुई। पहले भी महाराणा सांगा ने अजमेर के पास पंवारों के घर विवाह किया था, इसीलिए मैंने आपसे इस विषय में कोई आज्ञा नहीं ली। उसी अर्ज़ी में महाराणा ने बसावर और ग्यासपुर के परगने वापस मिलने की दरख्वास्त भी की थी, परंतु बादशाह ने उसपर कुछ ध्यान न दिया[2]। इस प्रकार महाराणा और बादशाह में विरोध का अंकुर पैदा हुआ।

(१) शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः ।
गत्वा कृष्णगढ़े दिव्यो महत्या सेनया युतः ॥ २९ ॥
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंहनरेश्वरः ।
राठोडरूपसिंहस्य पुत्र्याः पाणिमहं व्यधात् ॥ ३० ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८ ।

राजविलास; विलास ७ ।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४३९-४२ ।

मेवाड़ के दक्षिणी हिस्से का एक विभाग 'मेवल' नाम से प्रसिद्ध है, जहां जंगली मीना[1] जाति की आबादी अधिकतर है। वि० सं० १७१६ (ई० स० १६६२) में मीना लोगों ने सिर उठाया, जिससे महाराणा ने उनपर सैन्य भेजकर उनमें से बहुतों को क़ैद किया, कई एक को मार डाला और उनका बल तोड़ दिया। फिर मानसिंह (सारंगदेवोत) आदि सरदारों को इस विजय के उपलक्ष्य में सिरोपाव आदि देकर इस अभिप्राय से वह प्रदेश उनके अधीन कर दिया कि वे उनको दबाये रक्खें[2]।

मीनों का दमन

सिरोही के राव अखेराज का बड़ा कुंवर उदयभान अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध चलने लगा, जिससे उनमें परस्पर अनबन हो गई, जो दिन दिन बढ़ती ही गई। वि० सं० १७२० (ई० स० १६६३) में एक दिन उदयभान ने अवसर पाकर अपने पिता को क़ैद कर लिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। महाराणा राजसिंह ने जब यह समाचार सुना तब अखेराज के साथ अपनी प्रीति के कारण राणावत रामसिंह[3]

सिरोही के राव अखेराज को क़ैद से छुड़ाना

उक्त अर्ज़ी की नकल उदयपुर राज्य में विद्यमान है, जिसमें किशनगढ़ की राजकुमारी (चारुमती) की शादी के बाबत बादशाह के फ़रमान, उसके उत्तर और रावत हरिसिंह को ग़यासपुर आदि परगने देने तथा उनको वापस करने आदि के विषय की बातों का उल्लेख है।

(१) मीना जाति भील जाति से भिन्न है। इन दोनों जातियों के रीति रिवाज़ आदि में बड़ा अन्तर है और उनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। आजकल के लेखक इन दोनों जातियों की भिन्नता के विषय में अपरिचित होने के कारण मीनों को भी भील कहते हैं; जो भ्रम ही है। तमाम पुराणे दस्तावेज़ों में मीनों को मीना ही लिखा है और राजप्रशस्ति में भी मेवल के मीनों का ही वर्णन है न कि भीलों का। मीने लोग क्षत्रपों के अनुयायियों में से होने चाहिये।

(२) एकोनविंशत्यब्दे शते सप्तदशे गते।
मेवलं देशमतनोत्स्वकीयं तं बलान्नृपः ॥ ३१ ॥
मीनान्निर्जलमीनाभान् रुध्वा बध्वा·········करान्।
खण्डयामासुरधिकं मीनासैन्यं महाभटाः ॥ ३२ ॥
श्रीराणाराजसिंहेन्द्रो मेवलन्त्वखिलं ददौ।
स्वीयराजन्यधन्येभ्यो वासोहयधनानि च ॥ ३३ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८।

(३) यह सम्भवतः महाराणा उदयसिंह के कुंवर वीरमदेव का चौथी पुश्त में होनेवाला उक्त नाम का पुरुष हो, जो आंबा का जागीरदार था।

को सेना के साथ सिरोही भेजा, जिसने उदयभान को निकालकर अखेराज को पीछा गद्दी पर बिठा दिया[1]।

चौहान केसरीसिंह को पारसोली की जागीर मिलना

चौहान बल्लू के, जिसको महाराणा अमरसिंह ने गंगराड का पट्टा दिया था, पौत्र और राव रामचन्द्र के कनिष्ठ पुत्र केसरीसिंह पर बड़ी कृपा होने के कारण महाराणा राजसिंह ने उसको पारसोली का पट्टा और राव का पद देकर अपना सरदार बनाया[2]।

रावत रघुनाथसिंह से सलूंबर की जागीर छीनना

जब से सत्यव्रती चूंडा ने मेवाड़ जैसे राज्य का अपना अधिकार पिता को प्रसन्न करने के लिए अपने छोटे भाई मोकल को दे दिया, तब से मेवाड़ का राज्यप्रबन्ध का कार्य बहुधा चूंडा और उसके वंशजों के अधिकार में चला आता था। इसी स्वार्थ-त्याग के कारण राज्य में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इतना ही नहीं, किन्तु महाराणा के लिए उन्होंने अनेक लड़ाइयों में प्राण भी दिये। महाराणा राजसिंह के समय रघुनाथसिंह चूंडावत महाराणा का मुसाहब था। मुंशी चन्द्रभान जब उदयपुर में आया था, उसने उसकी योग्यता आदि के विषय में बादशाह को बहुत कुछ लिखा था। इसपर स्वार्थी लोग ईर्ष्यावश उसके विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे, जिससे महाराणा ने चूंडा और उसके वंशजों का सारा उपकार भूलकर उसकी सलूंबर की जागीर का पट्टा चौहान केसरीसिंह (पारसोलीवाले) के नाम लिख दिया[3], परन्तु उसको सलूंबर पर

(१) शते सप्तदशेऽतीते विंशत्याढ्यवत्सरे ।
श्रीराजसिंहस्याज्ञातः सिरोहीनगरे गतः ॥ ३४ ॥
राणावतो रामसिंहः ससैन्यो रावमाकुलं ।
पुत्रेणोदयभानेन रुद्धं कृत्वानयद्बलात् ॥ ३५ ॥
अखेराजं तस्य राज्ये स्थापयामास तत्कुटम् ॥ ३६ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८।
मेरा सिरोही राज्य का इतिहास; पृष्ठ २२७।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४४३-४७।

(३) चौहानवंशोत्तमबेदलापुरं स्थितेर्बल्लूराववरस्य तत्सुतः ।
स रामचन्द्रः किल तस्य चात्मजः सत्केसरीसिंह इति द्वितीयकः ॥ ६ ॥
रावो द्वितीयः कृत एष राणाश्रीराजसिंहेन सलूंबरस्य ॥ ७ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग १२।

कभी अधिकार करने का साहस नहीं हुआ[1], क्योंकि ऐसा करने में चूंडावतों से विरोध करना पड़ता था। ऐसा कहते हैं कि रघुनाथसिंह इस बात से अप्रसन्न होकर औरंगज़ेब के पास लाहोर में गया। बादशाह ने उससे सारा हाल सुनकर उसे प्रतिष्ठा के साथ अपने पास रख लिया[2]। उसके चले जानेपर उसके पुत्र रत्नसिंह ने अपने पूर्वजों का कार्यभार अपने हाथ में लिया और औरंगज़ेब के साथ की कई लड़ाइयों में वह महाराणा के लिए बड़ी वीरता से लड़ा[3]।

सिरोही के राव वैरिसाल की सहायता करना

सिरोही के राव वैरीसाल के शत्रु उसको राज्यच्युत करने लगे तब महाराणा ने वि० सं० १७३४ (ई० स० १६७७) में जीलवाड़े की तरफ़ जाते समय उसकी सहायता कर उसको राज्य पर स्थिर किया और उसके बदले में एक लाख रुपया और कोरटा आदि ५ गांव लिये। किसी ने महाराणा का सोने का कलश चुराकर सिरोही पहुंचा दिया, जिसके लिए महाराणा ने वैरीसाल से ५०००० रुपये लिये[4]।

कुंवर जयसिंह का बादशाह की सेवा में जाना

बादशाह महाराणा की पिछली कार्रवाइयों से बहुत अप्रसन्न था, इसलिए उसको दबाने के विचार से वह दलबल सहित ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के बहाने हि० स० १०९० ता० १८ मुहर्रम (वि० सं० १७३५ चैत्र वदि ५=ई० स० १६७९ ता० २० फ़रवरी) को अजमेर पहुंचा। महाराणा ने बादशाह की मन्शा जानने पर अपना वकील उसके पास भेज दिया[5]। बादशाह ने उस समय महाराणा के पास एक फ़रमान भेजकर कुंवर को भेजने के लिए लिखा तो महाराणा ने उत्तर में निवेदन कराया कि हुजूर की तरफ़ से किसी आदमी के आने पर मैं कुंवर को भेज दूंगा, जिस-

---

(१) वि० सं० १९६० में मैं पारसोली के वृद्ध रावत रत्नसिंह से, जो इतिहास का अच्छा ज्ञाता था, पारसोली में मिला। मैंने उससे पूछा कि सलूंबर पर आपके पूर्वजों का अधिकार कितने वर्षों तक रहा, परंतु उत्तर यही मिला कि हमारे पूर्वज के नाम पट्टा तो लिख दिया गया था, परन्तु हमारा अधिकार वहां नहीं हुआ।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४२४।

(३) मान कवि-कृत राजविलास; विलास १०, पद्य ८३; विलास १२, पद्य ६।

(४) राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग २१, श्लो० २८-३१।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगजेबनामा; भाग २, पृ० ८०।
वीरविनोद; भाग २, पृ० ४२२।

पर बादशाह ने शाहज़ादे कामबख़्श के बख़्शी मुहम्मद नईम को जुलूस सन् २२ मुहर्रम ता० २५ (चैत्र वदि ११=ता० २६ फ़रवरी) को फ़रमान[1] देकर कुंवर जयसिंह को लाने के लिए उदयपुर भेजा। फ़रमान में लिखा था कि मैं बख़्शी को भेजता हूं, इस के साथ कुंवर को भेज देना। सलाम से प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद मैं उसे सीख दे दूंगा। इस फ़रमान के पहुंचने पर महाराणा ने अपने कुंवर जयसिंह को चन्द्रसेन झाला[2] और गरीबदास पुरोहित के साथ अजमेर रवाना कर दिया, परन्तु बादशाह वहां से दिल्ली की ओर चल चुका था, इसलिए ये लोग बादशाह के पास उस समय पहुंचे, जब कि वह दिल्ली के निकट पहुंच गया था[3]। नागोर का राव इन्द्रसिंह कुंवर का स्वागत करके उसे बादशाही दरबार में ले गया। बादशाह ने उसे खिलअत, पन्ने और मोतियों की कंठी, उर्वसी, जड़ाऊ पहुंची, तथा एक हथिनी दी। हि० स० १०६० ता० १८ रवि उल् अव्वल (वि० सं० १७३६ प्रथम ज्येष्ठ वदि ४=ई० स० १६७६ ता० १६ अप्रेल) को कुंवर को खिल-अत, मोतियों का सरपेच, कानों के लाल के बाले, जड़ाऊ तुर्रा, सुनहरी सामान सहित अरबी घोड़ा और हाथी देकर घर जानेकी रुखसत दी। इसके साथ महाराणा के लिए खिलअत, जड़ाऊ सरपेच, बीस हज़ार रुपये नक़द और फ़रमान भेजा। कुंवर जयसिंह मथुरा वृन्दावन की यात्रा करता हुआ प्रथम ज्येष्ठ सुदि १५ (ता० १५ मई) के दिन महाराणा के पास पहुंचा[4]।

औरंगज़ेब का हिन्दुओं के मंदिरों और मूर्त्तियों को तुड़वाना

औरंगज़ेब बादशाह होने के पहले से ही मुसलमान धर्म का कट्टर पक्षपाती था और हिन्दू धर्म से बहुत द्वेष रखता था। गुजरात की सूबेदारी के समय उसने अहमदाबाद में चिन्तामण (चिन्तामणि) का मंदिर गिरवाकर उसके स्थान में मस्जिद बनवाई थी[5]। इसके अतिरिक्त गुजरात प्रदेश के और भी कई मंदिर गिरवा

(१) यह फ़रमान उदयपुर में अबतक विद्यमान है।

(२) सुलतान दूसरे का पुत्र और सादड़ीवालों का पूर्वज।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४५५-५६। राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग २२, श्लोक १-४।

(४) वीरविनोद भाग २; पृ० ५६। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ८३। राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग २२, श्लोक ५-६।

(५) बादशाह शाहजहां ने उसके इस कृत्य को अनुचित समझकर मंदिर पीछा बनवाने की आज्ञा दे दी थी (बम्बई गैज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २८०)।

दिये थे। अपने शासन के १२ वें साल[1] (वि० सं० १७२६=ई० स० १६६६) में उसने हिन्दुओं के सब मंदिरों और पाठशालाओं को तोड़ डालने की आज्ञा देकर उनके धर्मसम्बन्धी ग्रन्थों का पठनपाठन आदि रोक दिया। सोमनाथ (काठियावाड़), विश्वनाथ (बनारस), केशवराय (मथुरा) आदि के प्रसिद्ध मंदिर भी उसके हाथ से बचने न पाये। भारत में सम्पूर्ण मंदिरों को नष्ट करने के लिए उसने स्थान स्थान पर अधिकारी नियुक्त किये और उनके कार्य का निरीक्षण करने के लिए एक उच्च अधिकारी भी नियत किया। इस प्रकार हिन्दुओं के हज़ारों मंदिर और हज़ारों मूर्तियां उसकी आज्ञा से तोड़ी गईं, जिससे सब हिन्दू उससे अप्रसन्न हो गये।

महाराणा राजसिंह राजपूत राजाओं का मुखिया होने के कारण इस बात पर अप्रसन्न ही नहीं हुआ, किन्तु उसने बादशाह की इस आज्ञा की अवहेलना भी की। जब औरंगज़ेब ने वल्लभसंप्रदाय की गोवर्धन की मुख्य मूर्तियों को तोड़ने की आज्ञा दी, तब द्वारकाधीश की मूर्ति मेवाड़ में लाई गई और कांकड़ोली में उसकी प्रतिष्ठा कराई गई। इसी तरह गोवर्धन में स्थित श्रीनाथजी की मूर्ति के गोसाई उसे लेकर बूंदी, कोटा, पुष्कर, किशनगढ़ तथा जोधपुर गये, परन्तु जब किसी भी राजा ने औरंगज़ेब के भय से उस मूर्ति को अपने राज्य में रखना स्वीकार न किया, तब गोसाई दामोदर का काका गोपीनाथ चांपासणी (जोधपुर के पास) से महाराणा राजसिंह के पास आया। महाराणा ने उससे कहा कि आप प्रसन्नतापूर्वक श्रीनाथजी को मेवाड़ में ले आवें। मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कटने के बाद औरंगज़ेब श्रीनाथजी की मूर्ति के हाथ लगा सकेगा। फिर वह मूर्ति मेवाड़ में लाई गई और सीहाड़ (नाथद्वारा) गांव में स्थापित की गई। बादशाह चारुमती के विवाह के कारण अप्रसन्न तो पहले ही था और इस बात से अधिक नाराज़ हो गया।

---

(१) औरंगज़ेब ने अपने बाप को क़ैद कर राज्य पर बैठते ही प्रथम वर्ष (वि० सं० १७१५) में यह फ़रमान ज़ारी किया था, कि पुराने बने हुए मन्दिरों को छोड़कर नये बने हुए मन्दिर गिरा दिये जावें और आइन्दा कोई नया मन्दिर न बनाने पावे (औरंगज़ेब का बनारस के विषय का फ़रमान; जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३१९-२०), परन्तु पीछे से धर्म-सम्बन्धी द्वेष अधिक बढ़ जाने के कारण उस फ़रमान के प्रतिकूल उसने नये और पुराने समस्त मन्दिरों को तोड़ने की आज्ञा दे दी।

ता० १ रबि उल् अव्वल हि० स० १०९० (वि० सं० १७३६ वैशाख सुदि ३= ई० स० १६७९ ता० २ अप्रेल) को बादशाह ने तमाम हिन्दुओं से जज़िया[1] नाम

बादशाह का जज़िया जारी कराना

का अपमानजनक कर, जो बादशाह अकबर के समय से बन्द था, फिर लिये जाने की आज्ञा दी। जब यह आज्ञा प्रचलित हुई, तो दिल्ली तथा उसके आसपास के हज़ारों हिन्दू यमुना के किनारे बादशाह के दर्शन के झरोखे के नीचे एकट्ठे हो कर उक्त कर को मुआफ़ कराने के लिए उससे प्रार्थना करने लगे, परन्तु उसने उसपर कुछ भी ध्यान न दिया। जब दूसरे शुक्रवार को बादशाह जुमामसज़िद को नमाज पढ़ने के लिए जाने लगा तब क़िले से मसज़िद तक सड़क पर हिन्दुओं की भीड़ लगजाने के कारण बादशाह को आगे जाने का रास्ता न मिला। बादशाह के बहुत कहने

---

(१) जज़िया मुसलमानों के राज्य में रहनेवाले तमाम विधर्मियों से प्रतिवर्ष लिया जानेवाला एक अपमान-जनक कर था। इस कर के लिए मुसलमान धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को यह आज्ञा दी थी कि जो लोग मुसलमान धर्म स्वीकार न करें, उनसे तबतक लड़ते रहो, जबतक वे नम्रता के साथ जज़िया न दे दें। जब मुहम्मद क़ासिम ने सिन्ध पर अधिकार किया, तब अबुलफ़ास कुतैब बिन मुस्लिम वहां के हिन्दुओं पर जज़िया लगाने का प्रबन्ध करने के लिए भेजा गया। ख़लीफ़ा उमर ने जज़िया देनेवालों के तीन विभाग किये। धनवानों से ४८ दिरम (दम्म=करीब चार आने के मूल्य का चांदी का सिक्का), मध्यम श्रेणीवालों से २४ दिरम और ग़रीबों से १२ दिरम प्रतिवर्ष लिये जाते थे। उस समय तक ब्राह्मणों, स्त्रियों, बच्चों (१६ से कम उमर के) और काम करने में अशक्त पुरुषों से यह कर नहीं लिया जाता था।

फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने इस कर को ब्राह्मणों से भी लेना शुरू कर दिया। बादशाह अकबर ने इसे अन्याय समझ इसका लेना बन्द कर दिया। सौ वर्ष पीछे औरंगज़ेब ने फिर इसे जारी कर सख़्ती के साथ वसूल किया, परंतु उसकी मृत्यु से १३ वर्ष पीछे जब मुगलिया सल्तनत की नींव हिलने लगी तब फ़र्रुख़सियर को लाचार होकर इसे उठाना पड़ा।

ज़ज़िया बहुत सख़्ती से वसूल किया जाता था। 'ज़िम्मी' (जज़िया देनेवाला) को स्वयं कर वसूल करनेवाले अफ़सर के पास नंगे पैर पैदल जाना पड़ता था। अफ़सर तो बैठा रहता और ज़िम्मी को उसके आगे खड़ा रहना पड़ता था। अफ़सर कहता कि अरे ज़िम्मी ? जज़िया दे (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० १, पृ० ४७६-७७; जि० ३, पृ० ३६५, जि० ५, पृ० २१, जि० ७, पृ० २९६ और पृ० ४७१)। इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ३३८-३९। जदुनाथ सरकार; औरंगजेब; जि० ३, पृ० ३०५-८।

पर भी जब वे न हटे, तब उसने हाथियों को आदमियों के ऊपर हूलने की आज्ञा दे दी, जिससे बहुत से आदमी कुचल दिये गये। यह सब होने पर भी धर्मान्ध बादशाह ने 'जज़िया' न हटाया। उसने हिन्दुओं की एक न सुनी और कर बड़ी सख़्ती के साथ वसूल किया जाने लगा। बादशाह उसे वसूल करने पर यहां तक तुल गया कि यदि कोई अफ़सर किसी दूसरे अधिकारी पर बादशाह को अप्रसन्न कराना चाहता, तो उसके लिए बादशाह को यही जतलाना पर्याप्त होता कि वह हिन्दुओं को जज़िया न देने के लिए बहकाता है[1]। मुग़ल साम्राज्य की सारी हिन्दू जनता इस अपमानसूचक कर से बहुत व्यथित हुई और जगह जगह से हिन्दुओं के दुःख की पुकार उठने लगी तथा उनका बादशाह के प्रति विश्वास उठता गया। बादशाह की इसी धर्म सम्बन्धी सख़्ती के कारण भारत के भिन्न भिन्न भागों के राजपूत, सिक्ख, मरहटे आदि सब उसके विरोधी हो गये। जिस मुग़लसाम्राज्य की नींव अकबर ने डाली थी और जिसको जहांगीर और शाहजहां ने सुदृढ़ किया, उसको औरंगज़ेब ने अपनी पक्षपात पूर्ण धार्मिक नीति से हिला दिया। इतना ही नहीं, किन्तु उसे अपने जीते जी ही मुग़ल-साम्राज्य के विनाश के लक्षण दिखाई देने लगे और उसके मर जाने पर तो मुग़लसाम्राज्य की दुर्दशा हो गई।

हिन्दुओं पर जज़िया के लगने की ख़बर पाते ही महाराणा राजसिंह ने उसका घोर विरोध किया और बादशाह के नाम निम्नलिखित आशय का एक पत्र लिखा—

जज़िया का विरोध

"यद्यपि आपका शुभचिन्तक मैं आप से दूर हूं, तो भी आपकी अधीनता और राजभक्ति के साथ आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हूं। मैंने पहले आपकी जो सेवाएं की हैं उनको स्मरण करते हुए नीचे लिखी हुई बातों पर आपका ध्यान दिलाता हूं, जिनमें आपकी और प्रजा की भलाई है। मैंने यह सुना है कि मुझ शुभचिन्तक के विरुद्ध कार्रवाई करने की जो तदबीर हो रही है उसमें आपका बहुत रुपया ख़र्च हो गया है और इस काम में ख़ज़ाना खाली हो जाने के कारण उसकी पूर्ति के लिए आपने एक कर (जज़िया) लगाने की आज्ञा दी है। आप जानते हैं कि

(१) जदुनाथ सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३०१-४ और ३०८-१० (१९१६ ई० का संस्करण)।

आपके पूर्वज स्वर्गीय मुहम्मद जलालुद्दीन अकबरशाह ने ५२ वर्ष तक न्याय-पूर्वक शासन कर प्रत्येक जाति को आराम और सुख पहुंचाया। चाहे वे ईसाई, मूसाई, दाऊदी, मुसलमान, ब्राह्मण और नास्तिक हों, उन सबपर उसकी समान रूप से कृपा रही, जिससे सब लोगों ने उसे 'जगद्गुरु' की उपाधि दी थी। स्वर्गीय नूरुद्दीन जहांगीर ने भी २२ वर्ष तक प्रजा की रक्षा कर अपने आश्रित राजवर्ग को प्रसन्न रक्खा। इसी तरह सुप्रसिद्ध शाहजहां ने भी ३२ वर्ष तक राज्य कर दया और नेकी के कारण यश प्राप्त किया।

"आप के पूर्वजों के ये भलाई के काम थे। इन उन्नत और उदार सिद्धान्तों पर चलते हुए वे जिधर पैर उठाते थे उधर विजय और सम्पत्ति उनका साथ देती थी। उन्होंने बहुत से देश और क़िले अपने अधीन किये। आप के समय में बहुत से प्रदेश आपकी अधीनता से निकल गये हैं और अब अधिक अत्याचार होने से अन्य बहुतसे इलाक़े भी आप के हाथ से जाते रहेंगे। आप की प्रजा पैरों के नीचे कुचली जा रही है और आपके साम्राज्य का प्रत्येक प्रान्त कंगाल हो गया है। आबादी घटती और आपत्तियां बढ़ती जाती हैं। जब ग़रीबी बादशाह और शाहज़ादों के घर तक पहुंच गई है, तो अमीरों का क्या हाल होगा। सेना असन्तोष प्रकट कर रही है, व्यापारी शिकायत कर रहे हैं, मुसलमान असन्तुष्ट हैं, हिन्दू दुःखी हैं और बहुत से लोग तो रात को भोजन तक न मिलने के कारण क्रुद्ध और निराश होकर रात दिन सिर पीटते हैं।

"ऐसी कंगाल प्रजा से जो बादशाह भारी कर लेने में शक्ति लगाता है, उसका बड़प्पन किस प्रकार स्थिर रह सकता है। पूर्व से पश्चिम तक यह कहा जा रहा है कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं के धार्मिक पुरुषों से द्वेष रखने के कारण ब्राह्मण, सेवड़े, जोगी, वैरागी और संन्यासियों से जज़िया लेना चाहता है। वह अपने तैमूर वंश की प्रतिष्ठा का विचार न कर एकान्त-वासी और ग़रीब साधुओं पर ज़ोर दिखाना चाहता है। वे धार्मिक ग्रंथ, जिन पर आपका विश्वास है, आपको यही बतलावेंगे कि परमात्मा मनुष्यमात्र का ईश्वर है, न कि केवल मुसलमानों का। उसकी दृष्टि में मूर्तिपूजक और मुसल-मान समान हैं। रंग का अन्तर उसकी आज्ञा से ही है। वही सबको पैदा करने-वाला है। आपकी मसजिदों में उसी का नाम लेकर नमाज़ पढ़ते हैं और

मन्दिरों में जहां मूर्तियों के आगे घंटे बजते हैं, वहां भी उसी की प्रार्थना की जाती है। इसलिए किसी धर्म को उठा देना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। जब हम किसी चित्र को बिगाड़ते हैं, तो हम उसके निर्माता को अप्रसन्न करते हैं। किसी कवि ने यह ठीक कहा है कि ईश्वरीय कामों की आलोचना मत करो।

"मतलब यह है कि आपने जो कर हिन्दुओं पर लगाया है, वह न्याय और सुनीति के विरुद्ध है क्योंकि उससे देश दरिद्र हो जायगा। इसके अतिरिक्त वह हिन्दुस्तान के क़ानून के खिलाफ़ नई बात है। यदि आपको अपने ही धर्म के आग्रह ने इसपर उतारू किया है तो सबसे पहले रामसिंह से, जो हिन्दुओं का मुखिया है, जज़िया वसूल करें उसके बाद मुझ खैरख्वाह से, क्योंकि मुझ से वसूल करने में आपको कम दिक्कत होगी, परन्तु चींटी और मक्खियों को पीसना वीर और उदारचित्तवाले पुरुष के लिए अनुचित है। आश्चर्य की बात है कि आपको यह सलाह देते हुए आपके मंत्रियों ने न्याय और प्रतिष्ठा का कुछ भी ख़याल नहीं किया"।

इस पत्र की अब तक तीन प्रतियां प्रसिद्धि में आई हैं। एक उदयपुर के राजकीय दफ्तर से, जिसका डब्ल्यू. बी. रोज़ का किया हुआ अनुवाद कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान में प्रकाशित किया है। दूसरी बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह की (कलकत्ते में) और तीसरी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह की लण्डन में है। इन तीनों में से उदयपुरवाली प्रति, जिसको कर्नल टॉड ने महाराणा राजसिंह के पत्र की नक़ल बताया है, सबसे संक्षिप्त है। कलकत्तेवाली प्रति में कुछ वाक्य अधिक हैं और उसमें उसके लेखक का नाम संभाजी दिया है। लंडनवाली प्रति में उससे भी कुछ अधिक वाक्य हैं और उसमें गुजरात के सुलतान अहमद की बेवक़ूफ़ियों का वर्णन तथा बड़ोदे में उसके मारे जाने का उल्लेख भी है[1]। इन तीनों प्रतियों को देखने से अनुमान होता है कि मूल प्रति छोटी ही होगी और उसकी नक़लें अलग अलग जगह पहुंचने के पीछे वह बढ़ाई गई होगी। इस पत्र का लिखनेवाला कौन था, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। ओर्मे का कथन है कि यह पत्र जोधपुर के

(१) मॉडर्नरिव्यू; ई० स० १६०८; जनवरी, पृ० २१-२३।

महाराजा जसवन्तसिंह ने लिखा था[1], परंतु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि जसवन्तसिंह का देहान्त वि० सं० १७३५ पौष वदि १० (ई० स० १६७८ ता० २८ नवम्बर) को हुआ था और जज़िया उसके देहान्त के चार मास पीछे ता० १ रबि उल् अव्वल हि० स० १०६० (वि० सं० १७३६ वैशाख सुदि २=ई० स० १६७६ ता० २ अप्रेल) को लगाया गया था। कलकत्तेवाली प्रति में, जो लण्डन की प्रति से बहुत मिलती जुलती है, सम्भाजी को उसका लेखक बताया है, वह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि जिस समय जज़िया लगाया गया, उस समय शिवाजी राजा था, न कि सम्भाजी। यह भी नहीं माना जा सकता कि शिवाजी के मरने के पीछे शंभाजी ने वह पत्र लिखा हो, क्योंकि वह शिवाजी की तरह प्रबल राजा नहीं किन्तु निर्बल था। उस समय उत्तरीय भारत में महाराणा राजसिंह और दक्षिण में शिवाजी ये ही दो प्रबल हिन्दू राजा थे, जो जज़िये का विरोध कर सकते थे। जब मिर्ज़ा राजा जयसिंह के आग्रह से वि० सं० १७२३ (ई० स० १६६६) में शिवाजी आगरे आया और औरंगज़ेब के दरबार में पांच हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया, तब उसके क्रोध की सीमा न रही, क्योंकि उसने इसमें अपना बड़ा भारी अपमान समझा। फिर जब उसपर पहरा नियत किया गया तब उसने भागने का निश्चय किया। आगरे से भागकर दक्षिण में पहुंचने पर वह औरंगज़ेब का बराबर विरोधी ही रहा और वि० सं० १७२७ (ई० स० १६७०) के पीछे तो बादशाह के अधीनस्थ प्रदेश पर उसने हमला करना शुरू कर दिया। वह स्वतन्त्र राजा था और औरंगज़ेब के जज़िये का प्रभाव उसके राज्य पर कुछ भी नहीं पड़ता था। ग्रांट डफ़ के कथनानुसार औरंगज़ेब ने बुरहानपुरवालों पर ई० स० १६८४ (वि० सं० १७४१) में अर्थात् शिवाजी की मृत्यु के चार वर्ष पीछे जज़िया लगाया था[2]। ऐसी स्थिति में शिवाजी को बादशाह की सेवा में पत्र लिखने की आवश्यकता ही न थी। जैसे कलकत्तेवाले पत्र में शंभाजी का नाम लिखा गया, वैसे ही लण्डनवाले पत्र में शिवाजी का नाम पीछे से लिखा गया होगा। लण्डनवाले पत्र में शिवाजी को औरंगज़ेब का सदा शुभचिन्तक रहने

(१) टॉड; राजस्थान, जि० १, पृ० ४४२, टिप्पण २।

(२) ग्रांट डफ़; हिस्ट्री आफ़ दी मराठाज़; जि० १, पृ० २५२ (ई० स० १६२१ का ऑक्सफर्ड संस्करण)।

वाला लिखा है, परन्तु जज़िया लगने से पूर्व ही वह उसका कट्टर विरोधी और प्रतिस्पर्धी हो गया था। ऐसी स्थिति में शिवाजी जैसा स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता-प्रिय राजा अपने को औरंगज़ेब का सदा शुभचिन्तक लिखे, यह सम्भव नहीं। महाराणा राजसिंह औरंगज़ेब के अधीन था, इसलिए वह बादशाह को शुभचिन्तक लिखे, यह सम्भव है। लण्डनवाली प्रति में सबसे पहले राजसिंह से और उसके बाद मुझ शुभचिन्तक से कर लेने की बात लिखी है, परन्तु उदयपुर और कलकत्तेवाली दोनों प्रतियों में राजसिंह के स्थान में रामसिंह[1] का नाम है, जिसको हिन्दुओं का मुखिया लिखा है, जो ठीक है, क्योंकि उस समय मुग़ल दरबार में रहनेवाले राजाओं में वही मुख्य था। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि वह पत्र महाराणा राजसिंह ने ही लिखा होगा और जब उसकी नक़लें भिन्न भिन्न स्थानों में पहुंची होंगी तब उसमें किसी ने अपनी ओर से कुछ और बढ़ाकर शिवाजी[2] का और किसी ने शंभाजी

---

(१) जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह का पुत्र और उत्तराधिकारी।

(२) प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने लण्डनवाले पत्र में शिवाजी का नाम तथा हुज़ूर के यहां से बिना आज्ञा चले जाने की बात देखकर (जो उदयपुरवाले पत्र में नहीं है) उसको शिवाजी का मानते हुए लिखा है, कि अन्त में पत्र-लेखक औरंगजेब का अनादर करते हुए हिन्दू राजाओं में मुख्य राजा से पहले जज़िया वसूल करने की बात कहता है। हिन्दुओं का यह मुखिया जयपुर का राजा रामसिंह नहीं हो सकता, क्योंकि प्रथम तो हिन्दू लोग राणा के वंशधर उदयपुर के महाराणा के सिवाय किसी अन्य को उच्चकुल का नहीं मानते और दूसरी बात यह है कि जयपुर का घराना सदा से राजभक्त रहा है, जिससे उसने बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया होगा। इसके विरुद्ध उक्त महाराणा से सुलह करते समय चुपचाप उसके राज्य से जज़िया न लेना स्वीकार किया और अपने इस कथन के लिए ओर्मे की पुस्तक का हवाला (ओर्मे; फ्रैग्मैण्ट्स; पृ० १६५) भी दिया है, (मॉडर्न रिव्यू; सन् १९०८, जनवरी, पृ० २३), परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि यह कथन औरंगज़ेब के दरबार में रहनेवाले राजाओं से सम्बन्ध रखता है। जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिंह तो मर चुका था और उसका राज्य बादशाही खालसे में चला गया था। उदयपुर का कोई महाराणा कभी बादशाही दरबार में नहीं गया, ऐसी दशा में उस समय बादशाही दरबार में रहनेवाला मुख्य हिन्दू राजा रामसिंह ही माना जा सकता है। दूसरी भूल यह है कि महाराणा राजसिंह के साथ औरंगज़ेब की सुलह ही नहीं हुई। वह (राजसिंह) बादशाह के साथ की लड़ाई के समय मर गया था और सुलह तो उसके पुत्र जयसिंह ने की थी। उस समय के शाही फ़रमान और शाहज़ादों के निशानों से पाया जाता है कि जज़िये के एवज में पुरमांडल और बदनोर के परगने उस(जयसिंह)ने बादशाह को दिये थे। यही

का नाम दर्ज कर दिया होगा। उसका लिखनेवाला कोई एक पुरुष होना चाहिये। मूल पत्र पहले संक्षिप्त था। फिर उसमें और वाक्य मिलाकर किसीने उसे बढ़ा दिया।

महाराणा के ज़ज़िया का विरोध करने पर औरंगज़ेब उससे बहुत बिगड़ा और मेवाड़ पर चढ़ाई करनेवाला ही था, इतने में उसके क्रोध को बढ़ाने के लिए एक और भी कारण उपस्थित हो गया, जिसका हाल नीचे लिखा जाता है—

अजीतसिंहका महाराणा की शरण में आना

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह पर बादशाह औरंगज़ेब कई कारणों से नाराज़ था, जिससे उसने महाराजा को जमरूद (अफ़ग़ानिस्तान में) के थाने पर नियत किया, जहां वि० सं० १७३५ (ई० स० १६७८) में उसका देहान्त हुआ। उसके साथ के राजपूत उसकी राणियों को लेकर मारवाड़ की तरफ़ चले और मार्ग में लाहोर पहुंचने पर उसकी एक राणी से अजीतसिंह का जन्म हुआ। यह खबर सुनकर औरंगज़ेब ने अपनी पहले की नाराज़गी के कारण मारवाड़ को खालसे कर लिया और अजीतसिंह को सीधा दिल्ली ले आने की आज्ञा दी। इस आज्ञा के अनुसार राठोड़ दुर्गादास आदि सरदार उसे लेकर दिल्ली आये और रूपनगर (किशनगढ़) की हवेली में ठहरे। बादशाह ने कोतवाल को आज्ञा दी कि जसवन्तसिंह की राणियों और बेटे को नूरगढ़ में ले आवे और यदि कोई सामना करे तो उसे सज़ा देवे। यह समाचार ज्ञात होने पर राठोड़ बहुत क्रुद्ध हुए और कितने ही अजीतसिंह को युक्ति पूर्वक वहां से निकालकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गये। पीछे बचे हुए राजपूत राणियों को मारकर[1] मुग़ल सेना से लड़े, कई मरे और कई घायल हुए। जब कोतावल को अजीतसिंह न मिला, तब उसने उसी अवस्था के किसी और लड़के को शहर से प्राप्तकर बादशाह के सुपुर्द किया, जिसने उसका नाम

बात मासिरे आलमगीरी से पाई जाती है (मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८६), परंतु उक्त पुस्तक के कर्ता ने महाराणा राजसिंह के साथ सुलह होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(१) मारवाड़ की ख्यात में राणियों को मारना लिखा है (जि० २ पृ० ३२-३३), परंतु कर्नल टॉड ने अजीत की माता का दिल्ली से उसके साथ निकल आना और महाराणा के पास आना माना है (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४४२), जो ठीक प्रतीत नहीं होता।

मोहम्मदीराज रखा[1]। राठोड़ दिल्ली से अजीतसिंह को साथ लेकर मारवाड़ की तरफ़ गये, परन्तु सम्पूर्ण जोधपुर राज्य पर बादशाह का अधिकार हो जाने से अजीतसिंह के सम्बन्ध की चिन्ता रहने के कारण दुर्गादास, सोनिंग आदि ने महाराणा राजसिंह को अर्ज़ी लिखकर अजीतसिंह को अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करने पर वे अजीतसिंह को महाराणा के पास ले गये और महाराणा को सब ज़ेवर सहित एक हाथी, ११ घोड़े, एक तलवार, रत्नजटित कटार, दस हज़ार दीनार (चांदी का सिक्का) नज़र किये। महाराणा ने उसे १२ गांवों सहित केलवे का पट्टा देकर वहां रक्खा[2] और दुर्गादास आदि से कहा कि बादशाह सिसोदियों और राठोड़ों के सम्मिलित सैन्य का मुक़ाबला आसानी से नहीं कर सकता, आप निश्चिन्त रहिये[3]।

बादशाह ने जसवन्तसिंह के मरते ही मारवाड़ को अपने राज्य में मिलाकर वहां अपने अधिकारी भेज दिये थे[4]। जब बादशाह ने अजीतसिंह के, जिसे वह कृत्रिम समझता था, महाराणा के पास पहुंचने की खबर सुनी तब उसने महाराणा से फ़रमान लिखकर अजीतसिंह को मांगा, परन्तु महाराणा ने उसपर ध्यान न दिया। फिर दो बार फ़रमान भेजकर अपनी आज्ञा का पालन करने के लिए उसने महाराणा को लिखा, परन्तु उसके अजीतसिंह को सौंपना स्वीकार न करने[5] पर बादशाह ने उसपर तुरन्त चढ़ाई कर दी।

औरंगजेब की महाराणा पर चढ़ाई

बादशाह ने हि० स० १०६० ता० ७ शाबान (वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ८= ई० स० १६७६ ता० ३ सितम्बर) को महाराणा से लड़ने के लिए बड़ी सेना के साथ दिल्ली से अजमेर की ओर प्रस्थान किया। उसी दिन उसने शाहज़ादे अकबर को अजमेर में पहले

(१) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० २, पृ० ८५-८६।

(२) मानकवि-कृत राजविलास; विलास ६, पद्य १७१–२०६ (नागरीप्रचारिणी सभा काशी का संस्करण)। इस पुस्तक की रचना का प्रारम्भ महाराणा राजसिंह की विद्यमानता में वि० सं० १७३४ और समाप्ति वि० सं० १७३७ में हुई। टॉ; रा; जि० १, पृ० ४४२। रूपाहेली के ठाकुर राठोड़ चतुरसिंहकृत 'चतुरकुलचरित्र इतिहास'; प्रथम भाग, पृष्ठ १००।

(३) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४६३।

(४) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० २, पृ० ८०।

(५) राजविलास; विलास १०, पद्य २–२४।

पहुंचने के लिए पालम क़सबे से रवाना किया। बादशाह १३ दिन में अजमेर पहुंचा और आनासागर पर के महलों में ठहरा[1]।

महाराणा ने बादशाह के दिल्ली से मेवाड़ पर चढ़ने की खबर पाते ही अपने कुंवरों, सरदारों आदि को दरबार में बुलाकर सलाह की कि बादशाह से कहां और किस प्रकार लड़ना चाहिये। उस समय दरबार में कुंवर जयसिंह, कुंवर भीमसिंह, रावल यशकर्ण (जसवन्तसिंह[2], जसराज), राणावत भावसिंह[3], महाराज मनोहरसिंह[4], महाराज दलसिंह[5], अरिसिंह (महाराणा का भाई) अपने चार पुत्रों--भगवन्तसिंह, सुभागसिंह, फतहसिंह और गुमानसिंह—सहित, राव सबलसिंह चौहान[6], झाला चन्द्रसेन[7], रावत केसरीसिंह[8] अपने पुत्र गंगदास सहित, झाला जैतसिंह[9], पंवार (परमार) वैरिसाल[10], रावत महासिंह[11], रावत रतनसेन[12] (रत्नसिंह), सांवलदास[13], रावत मानसिंह[14], राव केसरीसिंह चौहान[15], महकमसिंह[16], राठोड़ राय दुर्गादास[17], राठोड़ सोनिंग[18], विक्रम

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ४६३।

(२) डूंगरपुर का स्वामी।

(३) शायद यह महाराणा अमरसिंह के पुत्र सूरजमल का तीसरा पुत्र भावसिंह हो।

(४) महाराणा कर्णसिंह के कुंवर ग़रीबदास का पुत्र।

(५) महाराणा कर्णसिंह के छोटे कुंवर छत्रसिंह का पुत्र।

(६) बेदलेवालों का पूर्वज।

(७) बड़ी सादड़ीवालों का पूर्वज।

(८) बानसीवालों का पूर्वज।

(९) देलवाड़े का।

(१०) बीजोलियां वाला।

(११) बेगूंवाले कालीमेघ का पौत्र।

(१२) सलूंबर के रावत रघुनाथसिंह चूंडावत का पुत्र।

(१३) प्रसिद्ध राव जयमल का वंशधर और बदनोर का स्वामी।

(१४) कानोड़वालों का पूर्वज।

(१५) पारसोली का।

(१६) भींडरवाला।

(१७) प्रसिद्ध राठोड़ वीर दुर्गादास आसावत। इसका विस्तृत वृत्तान्त आगे जोधपुर के इतिहास में लिखा जायगा।

(१८) विट्ठलदासोत चांपावत। मारवाड़ के रिड़मल (रणमल) के पुत्र चांपा से राठोड़ों की चांपावत शाखा चली। चांपा का प्रपौत्र, मांडण का पौत्र और गोपालदास का पुत्र

(विक्रमादित्य)[1], रावत रुक्मांगद[2], झाला जसवन्त[3], राठोड़ गोपीनाथ[4], राजपुरोहित ग़रीबदास, मेहचा अमरसिंह[5], खींची रामसिंह, डोड (डोडिया) महासिंह, मंत्री दयालदास[6] और अबू मलिक अज़ीज़ उपस्थित थे[7]।

सरदारों के विचार सुनने के पश्चात् पुरोहित ग़रीबदास ने निवेदन किया कि बादशाह के पास सेना बहुत है, इसलिए उससे बराबरी के तौर पर युद्ध करना नीतिसंगत नहीं है। महाराणा उदयसिंह और प्रतापसिंह बादशाह अकबर के आक्रमण करने पर चित्तोड़ और उदयपुर छोड़कर पहाड़ों में चले गये और समय समय पर दिन या रात को मुग़ल सेनापर छापा मारते और बादशाही प्रदेश को बरबाद करते रहे। जब शाही फ़ौज आती, तब घाटियों में जाकर लड़ते।

विट्ठलदास था। महाराजा जसवंतसिंह के समय उसकी जागीर में ३५००० रुपयों की सालाना आय के पाली आदि ३३ गांव थे। उसके कई पुत्रों में से एक सोनिंग था। वह महाराजा जसवंतसिंह की सेवा में रहा और उसकी मृत्यु के पीछे राठोड़ दुर्गादास के साथ महाराजा अजीतसिंह को लेकर महाराणा राजसिंह के पास आया। अजीतसिंह के मेवाड़ से चले जाने के पश्चात् सोनिंग भी राठोड़ दुर्गादास के साथ राठोड़ों की सेना का मुखिया बनकर लड़ा। फिर संवत् १७३८ में पुनलोता (पूनला) गांव में एकाएक देहांत हो जाने के कारण उसका भाई अजबसिंह उसके स्थान में राठोड़ों का मुखिया बनकर लड़ता रहा। वह भी उसी साल लड़कर मारा गया। पीछे से उसके पुत्र सगतसिंह को बाकरा आदि गांवों की ६००० रुपयों की जागीर मिली थी।

(१) सोलंकी, रूपनगरवालोंका पूर्वज।

(२) कोठारिये का।

(३) गोगूंदे के कान्हसिंह का पुत्र।

(४) बाणेरावबाला।

(५) नीमड़ी का।

(६) महाराणा राजसिंह का मंत्री दयालदास ओसवाल जाति के संघवी (संघपति) तेजा का प्रपौत्र, गजू का पौत्र और राजा का चतुर्थ पुत्र था। उसने राजनगर तालाव के समीप की पहाड़ी पर बड़े व्यय से संगमरमर का आदिनाथ का चतुर्मुख जैनप्रासाद बनवाया था (दयाल करायो देवड़ो, राणे कराई पाळ)। दयालदास का पुत्र सांवलदास था, ऐसा राजनगर में स्थापित की हुई एक मूर्ति पर के वि० सं० १७३२ वैशाख सुदि ७ गुरुवार पुष्य-नक्षत्र के लेख से पाया जाता है। यह आदिनाथ (ऋषभदेव) की मूर्ति इस समय गुजरात में बड़ोदे के समीपस्थ छाणी गांव के जैनमंदिर में स्थापित है। आचार्य जिनविजय; प्राचीन जैन-लेख-संग्रह; भाग २, पृ० ३२६–२७।

(७) यह नामावली राजविलास; विलास १०, पद्य २४–६७ से ली गई है।

इसलिए बादशाह अकबर व उसके सेनापतियों ने सफलता न पाई। महाराणा अमरसिंह भी इसी नीति का अनुकरण कर जहांगीर से लड़ते रहे। इस समय आप भी पहाड़ों की सहायता से विजय प्राप्त करें, घाटियों में शत्रुओं को घेरकर उन्हें भूखों मारें और शाही मुल्क को लूटें[१]।

महाराणा राजसिंह को यह सलाह पसन्द आई, जिससे वह ऊपर लिखे हुए सामन्तों आदि को साथ लेकर पहाड़ों की तरफ़ चल दिया। पहला मुक़ाम उदयपुर से चार कोस दक्षिण में देवीमाता के पहाड़ों में हुआ, जहां पानड़वा, मेरपुर, जूड़ा और जवास के भोमिये सरदार, पालों[२] के मुखियों (पल्लीपति) तथा धनुषबाणवाले पचास हज़ार भीलों सहित, आ मिले। महाराणा ने उनको आज्ञा दी कि दस दस हज़ार के झुंड बनाकर घाटों और नाकों का बन्दोबस्त कर शत्रुओं का रास्ता रोको और उनकी रसद तथा खज़ाना लूटकर हमारे पास पहुंचाओ। वहां से महाराणा नेणवारा (भोमट) में पहुंचा[३]। यहां मेवाड़ और मारवाड़ के सरदारों के परिवार थे, जिनकी रक्षा का भार महाराणा ने स्वयं अपने पर लिया[४]। राजपूत सेना में बीस हज़ार सवार और २५००० पैदल थे[५]। महाराणा ने युद्ध की इस प्रकार व्यवस्था कर उदयपुर आदि नगरों तथा कसबों की प्रजा को पहाड़ों में बुला लिया।

ता० १ शव्वाल (कार्तिक सुदि ३=ता० २७ अक्टोबर) को बादशाह ने अजमेर से तहव्वरखां को ख़िलअत और हाथी आदि देकर मांडल आदि परगनों को ज़ब्त करने के लिए, और हसनअलीखां को ७००० सेना देकर राणा से लड़ने को भेजा। फिर उसने स्वयं भी ता० ७ ज़िल्काद (मार्गशीर्ष सुदि ६=ता० १

(१) महाराणा के पहाड़ों में रहकर लड़ने का एक कारण यह भी था कि बादशाह के साथ यूरोपियन अफ़सरों के संचालन में बहुत बड़ा तोपखाना था, जिससे समान भूमि पर उसका सामना करने में अवश्य हारने की संभावना थी।

(२) भीलों के घर बहुधा पहाड़ों पर या उनके नीचे एक दूसरे से विलग होते हैं, ऐसे अनेक घरों के समुदाय को 'पाल' (पल्ली) कहते हैं और प्रत्येक पाल का मुखिया पल्लीपति (पालवी) कहलाता है।

(३) राजविलास; विलास १०, पद्य ६६–६८।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४६२।

(५) राजविलास; विलास १०, पद्य ८१।

दिसम्बर) को वहां से उदयपुर की ओर प्रस्थान किया[1]। उसके साथ यूरोपियन अफ़सरों की अध्यक्षता में तोपखाना भी था[2]। शाहजादा मुहम्मद आज़म भी बादशाह की सेना में आ पहुंचा[3]।

बादशाह मांडल होता हुआ देबारी पहुंचा और वहीं ठहरा। देबारी के घाटे की रक्षा के लिए जो राजपूत नियत किये गये थे, उनसे युद्ध हुआ, जिसमें राठोड़ गोरासिंह (बल्लूदासोत) आदि कई राजपूत मारे गये और रावत मानसिंह (सारंगदेवोत) आदि सरदार घायल हुए। तत्पश्चात् उक्त घाटे पर औरंगज़ेब का अधिकार हो गया[4]। राजपूतों के पहाड़ों में चले जाने का समाचार सुनकर बादशाह ने हसनअलीखां को बड़े सैन्य के साथ महाराणा का पीछा करने के लिए पहाड़ों में, और शाहज़ादा मुहम्मद आज़म तथा खानेजहां को रुहल्लाखां और इक्का ताजखां के साथ उदयपुर भेजा। उन्होंने उदयपुर को खाली पाया। रुहुल्ला-खां और इक्का ताजखां महलों के आगे बने हुए एक विशाल मन्दिर[5] को, जो उस समय के आश्चर्यजनक मन्दिरों में से एक था और जिसके बनाने में बहुत द्रव्य व्यय हुआ था, गिराने के लिए चले। बीस मांचातोड़[6] रक्षक राजपूत उसके लिए वहीं मरने का निश्चय कर ठहरे हुए थे। उनमें से एक एक व्यक्ति कई आदमियों को मारकर मारा जाता था। फिर दूसरा आता और बहुतों को मारकर काम आ जाता था। इस तरह उन बीसों ने बहुत से मुसलमानों को मारा और वे भी वहीं मारे गये। उन सब के मरने पर मुसलमानों ने मूर्तियों को

---

(१) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा, भाग २, पृ० ८८-८९।

(२) जदुनाथ सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८४।

(३) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा, भाग ३, पृ० ८९-९०। मेवाड़ की लड़ाई में सम्मिलित होने के लिए बादशाह ने शाहज़ादे को बंगाल से ससैन्य बुला लिया था।

(४) राठोड़ बल्लू के पुत्र गोरासिंह की देबारी के पासवाली छत्री के मध्य की स्मारक शिला पर नीचे लिखा लेख खुदा हुआ है—

संवत् १७३६ वर्षे पोस (पौष) सुदी (दि) १४ पातिसाह औरंगसाह देहवारी आया वठे राठोड़ गोरासंग (=गोरासिंह) बलूदासोत काम आया जी (मूललेख से)।

(५) जगदीश का मंदिर, जो उदयपुर में सब से विशाल और प्रसिद्ध है।

(६) लड़कर मरना निश्चय कर किसी स्थानपर खाट डाल कर ठहरे हुए।

तोड़ा[1]। बादशाह उदयसागर तालाब को देखने के लिए गया और उसने वहां के तीन मन्दिरों को गिरवाया[2]।

हसनअलीखां महाराणा का पीछा करने के लिए उदयपुर से पश्चिमोत्तर के पहाड़ी प्रदेश में गया था, परन्तु कई दिनों तक उसका कोई समाचार बादशाह को न मिला, जिससे शाही सेना में भय छा गया और राजपूतों के डर के मारे कोई भी हसनअलीखां का पता लगाने को जाने के लिए तैयार नहीं होता था। अन्त में तुराकी मीर शिहाबुद्दीन कुछ चौकीदारों के साथ चला और हसनअलीखां का पता लगाकर दो दिन के बाद बादशाह के पास आकर उसको खबर दी। उसके इस साहस पर प्रसन्न होकर बादशाह ने उसको इनाम इक्राम दिया और उसकी पदवृद्धि भी की[3]।

बादशाह ने शाहज़ादा मुहम्मद अकबर को चालीस हज़ार रुपये की क़ीमत का सरपेच देकर उदयपुर की लड़ाई पर नियत किया[4]।

हसनअलीखां ने महाराणा का पीछाकर एक जगह उसपर हमला किया, जिसमें महाराणा का अन्न, तम्बू आदि सामान उसके हाथ लगा, जिसे बीस ऊंटों पर लादकर वह बादशाह के पास ले आया और उससे कहा कि उदयपुर के बड़े मन्दिर के अतिरिक्त उसके आसपास के प्रदेश के १७२[5] मन्दिर गिरवा दिये गये हैं। इसपर बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे 'बहादुर आलमगीर शाही' का ख़िताब दिया[6]। ता० १ सफ़र हि० स० १०६१ (वि० सं० १७३६ फाल्गुन

---

(१) मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८७-८८। सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८५।

(२) मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जिल्द ७, पृ० १८८। सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८५।

(३) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८५। देवीप्रसाद, औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ६२।

(४) देवीप्रसाद औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ६२।

(५) इलियट् ने मासिरे आलमगीरी के अनुवाद में १२२ मंदिरों का गिराया जाना लिखा है, मुंशी देवीप्रसाद ने १७२ और सरकार ने १७३।

(६) मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८८। सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८६। देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ६३-६४।

सुदि ३=ई० स० १६८० ता० २२ फरवरी) को बादशाह देबारी से चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ और वहां जाकर ६३ मन्दिर गिरवाये[1]। उदयपुर के पास की लड़ाई बहुत दूर की होने के कारण बादशाह ने अपना सैन्य वहां से हटा लिया[2] और शाहज़ादा अकबर को हसनअलीखां, शुजाअतखां, रज़ीउद्दीन आदि अफ़सरों के साथ चित्तोड़ के क़िले की रक्षा के लिए नियुक्तकर वह अजमेर को लौट गया[3]।

इस समय शाही सेना केवल मेवाड़वालों से ही नहीं लड़ रही थी, किन्तु मारवाड़ को खालसा कर जगह जगह शाही थाने बिठाने के कारण राठोड़ भी मौका पाकर उधर के शाही थानों पर हमला करते थे। प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने इस लड़ाई का वृत्तान्त फ़ारसी तवारीख़ों के आधार पर नीचे अनुसार लिखा है—

"मेवाड़ और मारवाड़ के शाही थाने एक दूसरे से बहुत दूर थे, जिनके बीच में अर्वली की पर्वत-श्रेणी आ गई थी, जिसके सर्वोच्च भाग पर राणा का अधिकार था, जहां से वह अकस्मात् पूर्व या पश्चिम में मुगल सेना पर आक्रमण कर उसका नाश कर सकता था। मुगल सेना को यह सुविधा न थी, क्योंकि चित्तोड़ से मारवाड़ तक जाने के लिए उसे बदनोर, ब्यावर और सोजत होकर लम्बा मार्ग तय करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त महाराणा को एक और सुविधा यह थी कि मेवाड़ का पर्वतीय प्रदेश उदयपुर से पश्चिम में कुम्भलगढ़ तक, और राजसमुद्र से दक्षिण में सलूम्बर तक एक प्रकार से वृत्ताकार अजेय दुर्ग के समान था। उसमें प्रवेश करने के लिए केवल तीन घाटे (नालें, मार्ग) उदयपुर, राजसमुद्र और देसूरी थे[4]।

"बादशाह की अब युद्ध योजना यह थी कि इस सारे पर्वतीय प्रदेश को घेरकर उदयपुर, राजसमुद्र और देसूरी के घाटों से उसमें प्रवेश किया जावे। शाहज़ादा अकबर १२००० सेना के साथ अर्वली के पूर्व से लेकर अजमेर से दक्षिण तक के सब शाही स्थानों की रक्षा के लिए चित्तोड़ ज़िले में नियुक्त

---

(१) मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८८।

(२) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८६।

(३) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १४।

(४) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८६-८७।

किया गया, परन्तु इस बड़े प्रदेश की रक्षा के लिए वह सेना पर्याप्त न थी। उसकी अध्यक्षता में हसनअलीखां और तहव्वरखां थे, जिनकी सहायता के लिए भी उसको अपने पास की सेना भेजनी पड़ती थी, जिससे कभी कभी तो उसके पास केवल २००० सेना रह जाती थी। राजपूत अपने ही देश में लड़ते थे, जिसके कोने कोने से वे परिचित थे और भीलों आदि की भी उनको सहायता मिलती थी। मुग़ल सेना, जिसमें कुछ राजपूत भी थे, उस पहाड़ी प्रदेश से अपरिचित थी और मुग़लों की सेना शुरू से ही कम होने से राजपूत उसपर ग़ालिब हो गये थे।

"बादशाह के अजमेर रवाना होते ही राजपूतों का उत्साह बहुत बढ़ गया। वे पहाड़ों से निकल आये और मुग़लों के थानों पर हमला करने लगे। वे उनके रसद को रोक लेते और मुग़ल सेना से बिछुड़े हुओं को मार डालते थे, जिससे मुग़लों के थाने बहुत ही अरक्षित हो गये थे। अकबर के लिखे हुए पत्रों[1] से पाया जाता है कि राजपूत लोग अपनी शक्ति से शाही सेना को भयभीत करने में इतने समर्थ हो गये थे कि शाही थानों की थानेदारी स्वीकार करने में प्रत्येक अफ़सर आनाकानी करता था। मुग़ल सेना घाटों में प्रवेश करने से इन्कार करती थी। जब से हसनअलीखां का सैन्य उदयपुर से पश्चिम के पहाड़ों में एक पक्ष तक लापता रहा और उसको भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, तब से ही मुग़ल सेना की हिम्मत बिल्कुल टूट गई थी।

"ई० स० १६८० अप्रेल (वि० सं० १७३७ वैशाख) में गोपालदास[2] ने ज़फ़र नगर[3] में पड़ी हुई मुग़ल सेना पर आक्रमण किया, जिससे वहां की शाही सेना का मुख्य स्थान से सम्बन्ध टूट गया। मई मास (ज्येष्ठ) के बीच में राजपूतों

(१) ये पत्र अदबे आलमगीरी में संगृहीत हैं।

(२) फारसी तवारीख़ों में लिखे हुए नाम कुछ के कुछ पढ़े जाते हैं, इसलिए गोपालदास का ठीक ठीक पता नहीं लगता। शायद यह बानसी के रावत केसरीसिंह का पुत्र गंगदास हो, जिसने शाही सैन्य के १८ हाथी छीनकर महाराणा के नज़र किये थे, ऐसा राजविलास से पाया जाता है।

(३) फ़ारसी लिपि की वर्णमाला की अपूर्णता के कारण इस नगर के ठीक नाम का पता नहीं लगता। प्रोफेसर जदुनाथ सरकार को भी इसका ठीक पता न लग सका। उसने हाड़ोती में उसका होना अनुमान किया है (जि० ३ पृ० ३१०), जो संभव नहीं।

ने रात के समय चित्तोड़ के पास शत्रु-सेना पर अचानक हमला कर कुछ आद-मियों को मार डाला। महाराणा पहाड़ों से निकलकर बदनोर तक पहुंच गया, जिससे अकबर को अजमेर से सम्बन्ध टूट जाने की आशंका हुई।

"मुसलमानों पर राजपूतों का भय यहां तक छा गया कि हसनअलीख़ां ने भी बारबरदारी की तकलीफ़ बताकर पहाड़ों में जाने से इन्कार कर दिया। शाही सेना को अपनी रक्षा के लिए अपने पड़ाव के चारों ओर दीवार खड़ी करनी पड़ी। इसी मास के अन्त में राणा ने अकबर पर अचानक हमला कर उसको बहुत हानि पहुंचाई। कुछ दिनों बाद अकबर के सैन्य के लिए बनजारे लोग मालवे से मन्दसोर और नीमच के रास्ते होकर १०००० बैल अन्न के ला रहे थे, उन्हें राजपूतों ने छीन लिया। राजपूतों का ज़ोर दिन दिन बढ़ता ही गया। कुंवर भीमसिंह के सैन्य ने मुग़लों पर अचानक हमला कर कई थानों को नष्ट कर दिया। बादशाह की मेवाड़ को उजाड़ देने की आज्ञा का पालन न हो सका, क्योंकि मुग़ल अफ़सर आगे बढ़ने से इन्कार करते थे और राजपूतों के भय से मुग़ल सेना इधर उधर जा भी नहीं सकती थी, जिसकी शिकायत अकबर ने भी की[1]। मेवाड़ में मुग़ल सेना भूखों मरने लगी और रसद काफ़ी पहरे के साथ अजमेर से ही भेजनी पड़ती थी।

"अकबर का प्रयत्न बिलकुल निष्फल होनेपर बादशाह उससे बहुत नाराज़ हुआ। उसने उसको चित्तोड़ से हटा कर मारवाड़ में भेज दिया और उसके स्थान पर शाहज़ादे आज़म को नियुक्त किया (२६ जून)[2]"।

इस प्रकार शाही फ़ौज का पहला आक्रमण निष्फल हुआ। शाही सेना उदयपुर तक पहुंची और इधर उधर के मन्दिर तोड़े। हसनअलीख़ां पहाड़ों में गया, परन्तु १५ दिन से अधिक उधर ठहर न सका, जिससे बादशाह को उदयपुर से अपनी सेना हटाकर उसका मुख्य स्थान चित्तोड़ के ज़िले में नियत करना पड़ा।

अब बादशाह ने महाराणा से लड़ने की दूसरी योजना की, जिसका

(१) 'अदबे आलमगीरी' में अकबर के संगृहीत पत्र। सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४००-४०१।

(२) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३८६-६२।

वृत्तान्त प्रोफेसर जदुनाथ सरकार के ग्रन्थ के आधार पर नीचे लिखा जाता है—

"अब शाही युद्ध की योजना यह हुई कि शाहज़ादा आज़म चित्तोड़ से देवारी और उदयपुर होता हुआ पहाड़ों में बढ़े, शाहज़ादा मुअज्जम राजनगर[1] से और शाहज़ादा अकबर देसूरी से। पहले दोनों शाहज़ादों के सारे यत्न विफल हुए। अब अकबर की कार्रवाई का विवेचन 'अदबे आलमगीरी' में संगृहीत उसी के १२६ पत्रों के आधार पर किया जाता है।

"अपमानित शाहज़ादा ता० २६ जून (आषाढ़ सुदि १०) को चित्तोड़ से बर के घाटे होता हुआ मारवाड़ की ओर चला। तहव्वरखां उसकी हरावल के साथ आगे रहा। राजपूत उन्हें मौके मौके पर हैरान करने लगे, परन्तु वे हटा दिये गये और ब्यावर में तथा मेड़ते से दक्षिण में, जहां राठोड़ लड़े, कुछ आदमी क़ैद भी किये गये। ता० १८ जुलाई (श्रावण सुदि ३) को वह सोजत में पहुंचा, जो कई महीनों तक उसका मुख्य स्थान रहा।

"मारवाड़ में शाहीसेना को मेवाड़ से अधिक सफलता न मिली, क्योंकि राठोड़ शाही थानों पर हमला करते थे[2]।

"अकबर को यह आज्ञा मिली कि वह अपने मुख्य स्थान सोजत को सुरक्षित कर नाडोल को जावे और वहां से तहव्वरखां की अध्यक्षता में अपने हरावल सैन्य को नारलाई के पासवाले देसूरी के घाटे में होकर मेवाड़ में भेजे और

---

(१) बादशाह औरंगज़ेब की सेना राजसमुद्र की पाल को न तोड़ डाले, इस विचार से महाराणा ने अपने कई सरदारों को उसके रक्षार्थ वहां भेज दिया, परंतु जब उसे ग़रीबदास (कर्णसिंहोत) के पुत्र श्यामसिंह के द्वारा यह पता लगा कि बादशाह मन्दिरों को तुड़वाता है, तालाबों को नहीं, तब उसने वहां उपस्थित सब सरदारों को पत्र लिखवा कर बुला लिया। उक्त पत्र में भूल से बघोल के राठोड़ ठाकुर सांवलदास (केलवावालों का पूर्वज) के काका राठोड़ आनन्दसिंह (अणन्दसिंह) का नाम लिखना रह गया। सब सरदारों ने चलते समय उसे चलने के लिए कहा, परन्तु उसने उत्तर दिया कि मेरा नाम पत्र में नहीं लिखा गया, इसलिए मैं यहीं लड़कर मरूंगा। वह अपने साथियों समेत वहीं रहा और शाही सेना से लड़कर मारा गया, जिसकी संगमरमर की छत्री नौचौकी के दरवाज़े के बाहर महाराणा ने बनवाई, जो अबतक विद्यमान है।

(२) मारवाड़ से सम्बन्ध रखनेवाली लड़ाइयों का वृत्तान्त जोधपुर के इतिहास में लिखा जायगा।

कमलमेर (कुंभलमेरु=कुंभलगढ़) के ज़िले पर आक्रमण करे, जहां महाराणा और हारे हुए राठोड़ थे, और जहां से वे इधर उधर आक्रमण किया करते थे; परन्तु इस आज्ञा को पूर्ण करने में कई महीने बीत गये। मरने के लिए उद्यत राजपूतों का आतङ्क शत्रुदल पर ऐसा छा गया था कि तहव्वरखां नाडोल जाने के लिए आगे बढ़ने से इन्कार कर अपने सैन्य सहित खरवे में ठहर गया और एक महीने पीछे नाडोल पहुंचा, परन्तु उसको राजपूतों का भय पूर्ववत् बना ही रहा। रसद आदि की व्यवस्था कर शाहज़ादा अकबर मार्ग में थाने बैठाता हुआ सोजत से सितम्बर (आश्विन) के अन्त में नाडोल आया, परंतु तहव्वरखां ने पहाड़ों में जाना स्वीकार न किया, जिससे अकबर को अपने उस डरपोक अफ़सर पर आगे बढ़ने के लिये दबाव डालना पड़ा। ता० २७ सितम्बर (आश्विन सुदि १४) को तहव्वरखां देखभाल करने के लिए घाटे के द्वार की ओर चला। महाराणा का दूसरा कुंवर भीमसिंह पहाड़ों से निकल कर उससे लड़ा, जिससे दोनों पक्षों की बहुत हानि हुई[1]। फिर डेढ़ मास से कुछ अधिक समय तक लड़ाई न हुई, जिसका कारण मालूम नहीं हो सका[2]"।

तहव्वरखां पहले ही देसूरी के घाटे में प्रवेश करना नहीं चाहता था, परन्तु जब उसपर दबाव डाला गया तब वह नाडोल से चला और भीमसिंह के साथ की लड़ाई के पीछे तो वह आगे बढ़ने से रुक गया और वहीं ठहर गया। इधर महाराणा राजसिंह का देहान्त वि० सं० १७३७ कार्तिक सुदि १० (ई०स० १६८० ता० २२ अक्टोबर) को हो गया, जिससे लड़ाई कुछ दिनों तक बन्द रही। महाराणा राजसिंह के पीछे उसका कुंवर जयसिंह गद्दी पर बैठा। तदनन्तर फिर लड़ाई शुरू हुई, जिसका वृत्तान्त महाराणा जयसिंह के वृत्तान्त में लिखा जायगा।

महाराणा के साथ की औरंगज़ेब की लड़ाई का जो वर्णन ऊपर किया गया है, वह बहुधा फ़ारसी तवारीख़ों और उनके आधार पर लिखी हुई पुस्तकों से ही लिखा गया है। अब इन लड़ाइयों का थोड़ा सा वृत्तान्त मानकवि-कृत 'राजविलास' तथा 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' से भी नीचे उद्धृत किया जाता है—

---

(१) इस लड़ाई का वृत्तान्त गुजरात के नागर ब्राह्मण ईसरदास ने 'फ़तूहाते आलमगीरी' (पत्र ७८ पृ० २, पत्र ७९, पृ० १) में लिखा है।

(२) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३४२-४४।

बादशाह ने मेवाड़ में प्रवेश कर चित्तोड़, पुर, मांडल, मांडलगढ़, बैराट (बदनोर के पास), भैंसरोड, दशपुर (मन्दसोर), नीमच, जीरन, ऊंटाला, कपासन, राजनगर और उदयपुर में थाने नियत किये[1]। बादशाह देवारी के पास आया, जहां का दरवाजा बन्द कर राजपूतों ने रास्ता रोक लिया था, परन्तु बादशाह ने उसे तोड़कर देवारी में प्रवेश किया और वहां २१ दिन रहा[2]।

शाहज़ादा अकबर तहव्वरखां समेत उदयपुर में आया और वहां से एकलिंगजी की तरफ़ बढ़ा। मार्ग में आंबेरी गांव और चीरवा के घाटे के पास झाला प्रतापसिंह (ककेंट, करगेट का) और भदेसर के बल्लों ने उसपर आक्रमण किया। शाही फ़ौज के दो हाथी प्रतापसिंह के हाथ लगे और दो हाथी, घोड़े तथा ऊंट बल्लों ने छीने, जो सब महाराणा के नज़र किये गये[3]।

उदयपुर के थाने पर कोठारिये के रुक्मांगद के पुत्र उदयभान और अमरसिंह चौहान ने केवल २५ सवारों के साथ आक्रमण कर बहुत से मुसलमानों को मार डाला। उदयभान की इस वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको १२ गांव दिये[4]। इसी तरह राजनगर के थाने पर सबलसिंह पूरावत का पुत्र, मुहकमसिंह (शक्तावत) तथा कई चूंडावत सरदारों ने आक्रमण किया। इसमें इक्कीस राजपूत मारे गये[5]।

हसनअलीखां ३२०० सवारों और ५००० पैदल सेना समेत १२ कोस तक पहाड़ों में गया, परन्तु उसपर रावत महासिंह, रावत रतनसिंह (रघुनाथसिंहोत, सलूंबर का) और राव केसरीसिंह चौहान ने आक्रमण किया। इस युद्ध में परास्त होकर वह बादशाह के पास लौटा और उससे निवेदन किया कि शक्तिशाली हिन्दू जगह जगह झुंड बांधे हुए अपने देश में हैं और वहां हमारे लिए कोई ठहरने का स्थान नहीं है। हम पहाड़ों में जहां जाते हैं वहीं राजपूत हमें

(१) राजविलास; विलास १०, पद्य ११७।

(२) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक १५–१८।

(३) वही; सर्ग २२, श्लोक १६–२२।

(४) राजविलास; विलास १२।

(५) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक १२–१४।

मारते हैं। इसलिए यहां से चित्तोड़ चला जाना चाहिये। इस सलाह के अनुसार बादशाह ने सेना सहित चित्तोड़ को प्रस्थान किया[1]।

महाराणा पहाड़ों से निकल कर नाई गांव में आया और वहां से कोटड़ी (कोटड़ा) पहुंचा। मुसलमानों ने मेवाड़ में मंदिर तोड़े थे, जिसका बदला लेने के लिए कुंवर भीमसिंह को उसने गुजरात पर भेजा[2]। वह ईडर का विध्वंस कर बड़नगर पहुंचा और उसको लूटकर वहांवालों से ४०००० रुपये दण्ड में लिए। तदनन्तर अहमदनगर जाकर दो लाख रुपये का सामान लूटा। देव-मंदिरों को गिराने के बदले में एक बड़ी मस्जिद और तीन सौ छोटी मस्जिदों को तोड़कर वह लौट आया[3]। इसी तरह मन्त्री दयालदास को ससैन्य मालवे पर भेजा। उसने कई स्थानों से पेशकश या दण्ड लिया, कई जगह थाने बिठाये, कई स्थानों को लूटा, कई मस्जिदें गिराईं और वह कई ऊंट सोने से भर कर ले आया[4]।

---

(१) राजविलास; विलास १३।

(२) वीरविनोद में लिखा है—"इस ज़माने का ब्यौरेवार हाल मिलना कठिन है, यद्यपि फ़ारसी तवारीख़ों में सिलसिलेवार हाल मिलता है, परन्तु ख़ुशामद से भरा हुआ है, जैसे कि 'मिराते अहमदी' की पहली जिल्द के ४६२ पृ० में लिखा है कि जिस वर्ष बादशाही ज़बर्दस्त फ़ौज राजपूताने के सरदारों और ख़ासकर राणा के धमकाने व पीछा करने पर मुकर्रर थी, राजपूत लोग घरों को छोड़ कर पारे की तरह उछलते और एक जगह नहीं ठहर सकते थे। दूसरे हज़रत बादशाह थोड़े दिनों के लिए चित्तोड़ में ठहरे थे। उस वक़्त भीमसिंह राणा का छोटा बेटा बादशाही फ़ौज के डर से एक फ़ौज की टुकड़ी के साथ तंग पहाड़ों से निकल कर गुजरात के इलाक़े को भागा और वहां जाकर कमबख़्ती से बड़नगर वग़ैरह कस्बे और गांवों को लूटने के बाद फिर पहाड़ों में चला गया।

"अब सोचना चाहिये कि यदि महाराणा के छोटे कुंवर भीमसिंह डरे होते, तो पहाड़ों को छोड़ कर गुजरात क्यों जाते, फिर डर के मारे तो उधर गये और वहां जाकर गांव और क़स्बा लूटा; तीसरे जिन पहाड़ों से डर कर भागे थे, गांव वग़ैरह लूट कर फिर उन्हीं में आ घुसे। सिर्फ़ इस लिखावट से ही मिराते अहमदीवाले की तरफ़दारी और ख़ुशामद ध्यान में आ जायगी" (भाग २, पृ० ४६९)।

(३) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक २६-२९। राजविलास; विलास १४, पद्य १२-३६। बॉम्बे गेज़ेटियर; जि० १, भाग १, पृ० २८६।

(४) राजविलास; विलास १७।

जब औरंगज़ेब मेवाड़ से अजमेर चला गया तब महाराणा ने राठोड़ सांवलदास (बदनोर का) को ससैन्य बदनोर पर भेजा, जहां शाही सेनापति रुहिल्लाखां १२००० सवारों समेत ठहरा हुआ था। सांवलदास ने जाते ही उसपर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि शत्रुसेना रातों रात अपना सारा सामान छोड़कर भाग निकली और बादशाह के पास अजमेर पहुंची[1]। इसी तरह शक्तावत केसरीसिंह के पुत्र गंगदास ने ५०० सवारों के साथ चित्तोड़ के पास ठहरी हुई शाही सेना पर आक्रमण किया और उसके १८ हाथी, २ घोड़े और कई ऊंट छीनकर महाराणा के नज़र किये, जिसपर महाराणा ने उसको कुंवर की पदवी, सोने के ज़ेवर सहित उत्तम घोड़ा और गांव देकर सम्मानित किया[2]। इसी तरह महाराणा ने अपने कुंवर गजसिंह को बेगूं पर आक्रमण करने के लिये भेजा, जिसने उसको तहस नहस कर डाला[3]।

कुंवर जयसिंह—भगवन्तसिंह (अरिसिंह का पुत्र), चन्द्रसेन झाला, चौहान सबलसिंह, रतनसिंह (चूंडावत, सलूंबर का), कुंवर गंगदास, राठोड़ गोपीनाथ, पंवार वैरिसाल, रावत केसरीसिंह, मुहकमसिंह, चौहान केसरीसिंह, रावत रुक्मांगद, खीची राव रतन[4], रावत मानसिंह (सारंगदेवोत), माधवसिंह चूंड़ावत[5],

---

(१) राजविलास; विलास १६।

(२) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक ३९-४०। राजविलास; सर्ग १४।

(३) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक ४४।

(४) बादशाह अकबर के समय में खीची (चौहान) बड़े शक्तिशाली थे। बादशाह अकबर ने कुंवर मानसिंह (भगवानदासोत) को खीचीवाड़े पर भेजा, जहां खीची रायसल ने मानसिंह से युद्ध किया। इस युद्ध में खीची हारे। बादशाह ने राव पृथ्वीराज कल्याणमलोत (बीकानेरवाले) को गागरौन दिया। उसने उसे अपने अधिकार में करने के लिए खीचियों से लड़ाई की, जिसमें खीची हारे। इसी तरह जहांगीर ने बूंदी के राव रत्नसिंह को मऊ का परगना छीन लेने की आज्ञा दी, जिसपर रत्नसिंह ने खीचियों से लड़कर वहां अपने थाने बिठाये और उनके गांव अपने राजपूतों को बांट दिये। इस लड़ाई में शालिवाहन खीची मारा गया। इसके बाद खीची निर्बल होते गये (मुहणोत नैणसी की ख्यात; पत्र ४६, पृ० १) फिर उधर से कुछ खीची उदयपुर चले गये, जिनको वहां जागीरें मिलीं। खीची रामसिंह और रतनसिंह, जिनकी चर्चा आगे की जायगी, उन्हीं के वंशधर थे।

(५) सुप्रसिद्ध रावत पत्ता का चौथा वंशधर (छोटी शाखा में)।

कान्हा शक्तावत[1], झाला जसवन्तसिंह (गोगून्दे का) और झाला जैतसिंह (देलवाड़े का) आदि सरदारों के साथ—१३००० सवार २० हजार पैदल सेना सहित चित्तोड़ ज़िले में जाकर अकबर की सेना पर रात के समय टूट पड़ा। इस आकस्मिक आक्रमण से मुग़ल सेना का बहुत नुक़सान हुआ। एक हज़ार सिपाही और तीन हाथी मारे गये और अकबर वहां से भागकर अजमेर की तरफ़ चला गया। राजपूतों ने ५० शाही घोड़े, हाथी निशान और नकारा छीन लिया और तंबू तोड़ डाले[2]।

जब अकबर चित्तोड़ को छोड़कर नाडोल में ठहरा, उस समय कुंवर भीमसिंह ने राठोड गोपीनाथ (घाणेराव का) और सोलंकी विक्रम (बीका, रूपनगर का) सहित देसूरी के घाट को पार कर घाणेरा के पास अकबर और तहव्वरखां की १२००० सेना से बड़ा युद्ध किया, जिसमें उक्त दोनों सरदारों ने बड़ी वीरता दिखाई और शत्रु का खज़ाना आदि लूट लिया[3]। ऐसी दशा देखकर बादशाह ने महाराणा से सुलह की बातचीत शुरू की[4], परन्तु दैववशात् उसी समय महाराणा का देहान्त हो गया।

उक्त दोनों पुस्तकों से ऊपर उद्धृत किये हुए इस लड़ाई के वृत्तान्त से स्पष्ट है कि बादशाह औरंगज़ेब को इस चढ़ाई से कुछ भी लाभ न हुआ, बल्कि हानि ही उठानी पड़ी।

महाराणा राजसिंह के शिल्पसम्बन्धी कामों में सबसे अधिक महत्त्व का कार्य राजसमुद्र तालाब है, जिसका संक्षिप्त वर्णन पहिले किया जा चुका है। अब उसके सम्बन्ध की थोड़ी सी और बातें नीचे लिखी जाती हैं—

महाराणा का राजसमुद्र तालाब बनवाना

राजनगर के पास की पहाड़ियों के मध्य में होकर गोमती नाम की नदी गुज़रती थी। उसे रोककर एक विशाल तालाब बनवाने का विचार कर महाराणा अमरसिंह ने बांध बनवाने का काम शुरू कराया, परन्तु नदी के वेग के कारण बांध

(१) शायद यह महाराणा प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह के प्रपौत्रों में से हो। इसके वंशजों के अधिकार में चीताखेड़े की जागीर थी।

(२) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक ३०-३८। राजविलास; विलास १८।

(३) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक ४१-४२। राजविलास; विलास ११।

(४) राजप्रशस्ति; सर्ग २२, श्लोक ४२-४६।

टिक न सका[1]। राजसिंह ने अपने कुंवरपदे के समय विवाह[2] के लिए जैसलमेर जाते समय वहां तालाब बनवाने का मौक़ा देखा, तो उसके अन्दर सोलह गांवों[3] की सीमा आ जाती थी[4]। राज्य पाने के पश्चात् वि० सं० १७१८ मार्गशीर्ष (ई० स० १६६१ नवम्बर) में रूपनारायण के दर्शन को जाते हुए उस मौक़े को फिर देखा और वहां तालाब बनवाने का निश्चय किया[5]।

इस तालाब के बनवाये जाने के विषय में कई बातें प्रसिद्ध हैं। कोई कहते हैं कि विवाह के लिए जैसलमेर जाते समय नदी के वेग के कारण राजसिंह को दो तीन दिन तक वहां रुक जाना पड़ा। इसलिये उसने नदी को रोककर तालाब बनवाने का विचार किया। कोई कहते हैं कि उसने एक पुरोहित, एक राणी, एक कुंवर और एक चारण को मारा था[6], जिनकी हत्या के निवारणार्थ उसने

---

(१) अमर राण इँहि आइके, किन्नौ हौ कमठान।
परि सरिता पय पूर ते, बन्ध्यो नहीं बंधान ॥ ११० ॥

राजविलास; विलास ८।

(२) यह विवाह जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री कृष्णकुंवरि के साथ हुआ था।

(३) धोयन्दा, सनवाड़ (कांकरोली रोड् रेल्वे स्टेशन के निकटवाले सनवाड़ से भिन्न) सिवाली, भिगावदा, मोरचणा, पसूंद, खेड़ी, छापर खेड़ी, तासोल, मंडावर, भांणा, लुहाणा, वांसोल, गुड़ली, कांकरोली और मद्रा। राजप्रशस्ति; सर्ग ६, श्लोक ५-६।

(४) श्रीकुमारपदे पूर्वं राजसिंहो ययौ प्रति।
दुर्गं जेसलमेराल्यं पाणिग्रहकृते तदा ॥ ३ ॥
ग्रामाणां सीम्नि दृष्ट्वा इमां तडागकरणोचितां।
स्वमनः स्थापयामास बद्धुमत्र जलाशयम् ॥ ७ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग ६।

(५) शते सप्तदशे पूर्णे अष्टादशमितेऽब्दके।
मासे मार्गे ययौ द्रष्टुं रूपनारायणं हरिम् ॥ ६ ॥
तदैनां वीक्ष्य वसुधां तडागं बद्धुमुद्यतः।...... ॥ १० ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग ६।

(६) इस विषय में यह प्रसिद्ध है कि कुंवर सरदारसिंह की माता, ज्येष्ठ कुंवर सुलतानसिंह को मरवाकर अपने पुत्र सरदारसिंह को राज्य दिलाने का प्रपन्च रच रही थी। उसके शक दिलाने से महाराणा ने कुंवर सुलतानसिंह को मार डाला। फिर उसने अपने पुत्र सरदारसिंह

ब्राह्मणों से उपाय पूछा तो उन्होंने एक विशाल तालाब बनवाने की सम्मति दी, जिसपर यह तालाब बनवाया गया। कोई कहते हैं कि दुर्भिक्ष के कारण लोगों की सहायता करने के लिए यह बनवाया गया था। संभव है कि अकाल-पीड़ितों को सहायता देने और तालाब के जल से पैदावार बढ़ाने के लिए ही यह बनवाया गया हो[1]।

राजनगर के अलग अलग बाँधों की नींव की खुदाई वि० सं० १७१८ माघ वदि ७ (ई० स० १६६२ ता० १ जनवरी) को प्रारम्भ हुई[2]। बहुत बड़ा काम होने के कारण उसके कई विभाग कर, प्रत्येक विभाग अलग अलग सरदारों आदि को सौंप दिया गया[3]। नींव में पानी बहुत आजाने के कारण कई अरहटों आदि से पानी निकाला गया[4]। श्रावणादि वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) वैशाख सुदि १३ (ई० स० १६६५ ता० १७ अप्रेल) को पुरोहित गरीबदास के ज्येष्ठ पुत्र रणछोडराय के हाथ से पंचरत्न-सहित नींव का पत्थर (आधारशिला) रखवाया गया[5] और चुनाई का काम शुरू हुआ। आगे सिंहस्थ का वर्ष आ

को राज्य दिलाने की इच्छा से महाराणा को विष दिलाने के लिए एक पुरोहित को पत्र लिखा, जिसका भेद खुल जाने पर महाराणा ने पुरोहित और राणी को मार डाला। इसपर कुँवर सरदारसिंह भी स्वयं ज़हर खाकर मर गया। चारण (उदयभाण) ने महाराणा की बुराई में एक कविता सुनाई, जिसपर क्रुद्ध होकर महाराणा ने उसको मार डाला था।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४४६।

(२) अलर्वयोः पर्वतयोरन्तरे गोमतीं नदीम्।
रोद्धुं बद्धुं महासेतुं राजेन्द्रो यत्नमादधे ॥ १३ ॥
पूर्णे सप्तदशाभिधे तु शतके स्वष्टादशाख्येऽब्दके
माघे कृष्णसुपक्षके किल बुधे सत्सप्तमीवासरे ॥ ....१४ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग ६।

(३) वही; सर्ग ६; श्लोक २१।

(४) वही; सर्ग ६; श्लोक २४-३०।

(५) पूर्णे सप्तदशे शतेऽब्द उदिते दिव्यैकविंशत्यभि-
ख्याताख्ये दिवसे त्रयोदशिकया शस्या......शुभे।
वैशाखे सितपक्षके खलु विधोवरि किलैतादृशे
.................................॥ ३४ ॥

जाने के कारण वि० सं० १७२७ (चैत्रादि १७२८) आषाढ़ सुदि ४ (ई० स० १६७१ ता० ३० जून) को, जल काफ़ी न होने से अन्य स्थान से जल पहुंचा कर, नाव का मुहूर्त किया गया[1]। गोमती, ताल (ताली) और केलवा की नदियों का जल उसमें आने लगा[2]। वि० सं० १७३० के भाद्रपद (ई० स० १६७३ अगस्त) में तालाब में आठ हाथ पानी भर गया[3] और वि० सं० १७३१ श्रावण सुदि ५ (ई० स० १६७४ ता० २७ जुलाई) को लाहोर, गुजरात और सूरत के कारीगरों का बनाया हुआ 'जहाज' तालाब में डाला गया[4]। फिर वि० सं० १७३२ माघ सुदि ६ (ई० स० १६७६ ता० १४ जनवरी) को प्रतिष्ठा का कार्य आरम्भ हुआ[5]। अष्टमी को महाराणा ने उपवास किया और देह-शुद्धि प्रायश्चित्तादि कर नवमी को अपने भाइयों, कुंवरों, राणियों, चाचियों, पुत्र-वधुओं, अपने वंश की पुत्रियों, पुरोहित गरीबदास आदि सहित मण्डप में प्रवेश कर वरुणादि देवताओं का पूजन किया। प्रतिष्ठा के लिए तैयार कराये हुए दो मण्डपों के नौ कुंडों में अग्नि स्थापित की गई और हवनादि का कार्य आरंभ हुआ। उस दिन महाराणा ने एकभुक्त रहकर रात्रिजागरण किया[6]। दूसरे दिन से परिक्रमा का काम शुरू हुआ, जिसके लिए पहले से मार्ग समान और कण्टक-रहित

गरीबदासस्य पुरोहितस्य
ज्येष्ठः कुमारो रणछोडरायः ।
महाशिलां पञ्चसुरत्नपूर्णा-
मादौ दधे तत्र पदस्य पूर्त्यै ॥ ३७ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग ६ ।

राजप्रशस्ति में दिये हुए सब संवत् राजकीय (श्रावणादि) संवत् हैं। चैत्रादि उक्त संवत् में वैशाख सुदी १३ को सोमवार नहीं, किन्तु बृहस्पतिवार था। सोमवार तो श्रावणादि उक्त संवत् में था।

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग १०, श्लोक २२-३० ।
(२) वही; सर्ग १२, श्लोक ६ ।
(३) वही; सर्ग १२, श्लोक २५-२७ ।
(४) वही; सर्ग १२, श्लोक ३५-३६ ।
(५) वही; सर्ग १४, श्लोक १३ ।
(६) वही; सर्ग १४, श्लोक २२-२७ और सर्ग १५, श्लोक १४-३७ ।

कर दिया गया था। परिक्रमा के प्रारम्भ में डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह ने महाराणा से निवेदन किया कि महाराणा उदयसिंह उदयसागर की प्रतिष्ठा के दिन परिक्रमा के समय पालकी पर सवार हुए थे, इसलिए आप भी पालकी पर सवार हो जाइये, परन्तु महाराणा ने कोई उत्तर न दिया और नंगे पैर चलना प्रारम्भ किया। इस परिक्रमा में राणियां, राजपरिवार, राजसेवक आदि सब साथ थे। आगे आगे वेदपाठी ब्राह्मण चलते थे। पांच दिन में १४ कोस की यह परिक्रमा समाप्त होनेपर पूर्णिमा के दिन प्रतिष्ठा की पूर्णाहुति हुई[१]। उस दिन राजसिंह ने सोने का तुलादान करते समय अपने पौत्र अमरसिंह को भी अपने साथ तुला में बिठाया। इस तुला में १२००० तोले सोना चढ़ा[२]। उसी दिन सप्तसागर[३] आदि अनेक दान दिये गये[४]। पटराणी (पट्टराज्ञी) सदाकुंवरि ने, जो परमार राव इन्द्रभान (बिजोलियावाले) की पुत्री थी, चांदी की तुला की। पुरोहित गरीबदास ने सोने की, गरीबदास के पुत्र रणछोड़राय, राव केसरीसिंह (पारसोली-वाले), टोड़े के रायसिंह की माता और बारहठ केसरीसिंह ने चांदी की तुलाएं कीं। इस उत्सव में महाराणा ने गरीबदास को घार आदि १२ गांव[५] तथा अन्य ब्राह्मणों को गांव, भूमि, सोना, चांदी तथा सिरोपाव आदि दिये[६]। पंडितों, चारणों, भाटों आदि को ४५२ घोड़े और १३ हाथी तथा सिरोपाव आदि दिये गये[७]। मुख्य शिल्पी को २५००० रुपये दिये[८]। पहले के महाराणाओं ने जिन जिन चारणों,

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग १६, श्लोक ३-९, २७-२८ और सर्ग १७, श्लोक १-६।

(२) वही; सर्ग १७, श्लोक २८-३२।

(३) सप्तसागर दान का वर्णन राजप्रशस्ति में दिया हुआ है, जिसमें लिखा है कि उक्त दान के लिए सुवर्ण के सात कुण्ड बनाये जाते थे। ब्रह्मा का कुण्ड नमक से, विष्णु का दूध से, शिव का घी से, सूर्य का गुड़ से, इन्द्र का धान्य से, रमा का शर्करा से और गौरी का कुण्ड जल से भरा जाता था। यह सातों भरे हुए सुवर्ण-कुण्ड दान किये जाते थे (वही; सर्ग १७, श्लोक १०-१४)।

(४) वही; सर्ग १७, श्लोक ६।

(५) वही; सर्ग १८, श्लोक १-१९।

(६) वही; सर्ग १९, श्लोक २७।

(७) वही; सर्ग २०, श्लोक ४८-४९।

(८) वही; सर्ग २०, श्लोक ३०।

भाटों आदि को शासन दिये थे, उनको भी अलग अलग घोड़े दिये[1]। अपने मित्र और सम्बन्धी राजाओं में से जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह राठोड़, आंबेर के राजा रामसिंह कछवाहा, राव भावसिंह हाड़ा, बीकानेर के स्वामी अनूपसिंह, रामपुरा के चन्द्रावत मुहकमसिंह, जैसलमेर के रावल अमरसिंह, डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह (जो इस समय उपस्थित था) और बांधवेश (रीवाँ के राजा) भावसिंह के पास इस उत्सव के उपलक्ष्य में एक एक हाथी, दो दो घोड़े और ज़रदोज़ी सिरोपाव भेजे[2]। टोड़े के रायसिंह की माता को उसके कुंवरों के लिए एक हथिनी दी[3]। दोसी भीखू प्रधान तथा राणावत रामसिंह को, जो तालाब के काम पर नियत था, एक एक हाथी और सिरोपाव दिये[4]।

इस उत्सव के दर्शनार्थ बाहर से ४६००० ब्राह्मण तथा अन्य लोग आये, जो भोजन, वस्त्रादि से सन्तुष्ट किये गये[5]। इस तालाब के बनवाने में १०५०७६०८ रुपये व्यय हुए[6]। इसके नौचौकी नामक बाँध पर ताकों में पचीस बड़ी बड़ी शिलाओं पर २५ सर्गों का 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' खुदा हुआ है, जो भारत भर में सबसे बड़ा शिलालेख एवं शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इसकी रचना तैलंग जातीय कंठोड़ी कुल के गोसाईं मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ भट्ट ने की थी। काव्य के अन्त में हिन्दी भाषा की कुछ पंक्तियां खुदी हैं, जिनमें इस तालाब के काम के निरीक्षकों और मुख्य मुख्य शिल्पियों के नाम दिये हुए हैं।

---

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग २०, श्लोक ४०-४७।

(२) वही; सर्ग २०, श्लोक १-२६।

(३) वही; सर्ग २०, श्लो० ३६।

(४) वही; सर्ग २०, श्लोक २८-२९।

(५) वही; सर्ग १६, श्लोक २२-२३।

(६) एका कोटिः पञ्चलक्षाणि रूप्य-
मुद्राणां वा सप्तसहस्राणि सप्त।
लग्नान्यस्मिन् षट्शतान्यष्टकं वै
कार्ये प्रोक्तं पद्म एव द्वितीये ॥ २२ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग २१।

महाराणा ने अपने कुंवरपदे के समय 'सर्वऋतुविलास' (सवरत विलास) नामक महल और बावड़ी सहित बाग बनवाया[1]। वि० सं० १७१६ (ई० स० १६५६) में देबारी के घाटे का कोट और दरवाज़ा तैयार कराया[2]। वि० सं० १७२१ (ई० स० १६६४) में उदयपुर में अम्बा माता का मन्दिर बनवाया[3] और वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) में रंगसागर तालाब बनवाया, जो पीछोले में मिला दिया गया है। उक्त तालाब की प्रतिष्ठा कुंवर जयसिंह ने की थी[4]। उसी वर्ष महाराणा ने अपनी माता जनादे (कर्मेती) के, जो मेड़तिया राठोड़ राजसिंह की पुत्री थी, नाम से उदयपुर से पश्चिम के बड़ी गांव के पास जनासागर तालाब बनवाया। उसकी प्रतिष्ठा के समय महाराणा ने चांदी का तुलादान किया और पुरोहित गरीबदास को गुणहंडा और देवपुरा गांव दिये। इस तालाब के सम्बन्ध में कुल ६८८००० रुपये व्यय हुए[5]। राजसिंह ने राजसमुद्र तालाब के साथ ही नौचौकी के पास पहाड़ पर महल[6] तथा कांकरोली के पासवाली पहाड़ी पर द्वारकाधीश का मन्दिर[7] बनवाया और उक्त तालाब के निकट अपने नाम से राजनगर नामक क़स्बा[8] आबाद कराया। एकलिंगजी के पासवाले इन्द्रसर (इन्द्रसरोवर) के जीर्ण बांध के स्थान में उसने नया बाँध बंधवाया[9]।

महाराणा के समय के बने हुए मन्दिर, महल, बावड़ी आदि

महाराणा की राणी रामरसदे ने, जो अजमेर ज़िले के परमार रायसल की प्रपौत्री, जुझारसिंह की पौत्री और पृथ्वीसिंह की पुत्री थी, वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७५) में देबारी के पास 'जया' नाम की बावड़ी बनवाई[10], जिसको

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग ६, श्लोक ६।

(२) वही; सर्ग ८, श्लोक २६-२८।

(३) अम्बामाता की चरण चौकी का शिलालेख।

(४) राजप्रशस्ति; सर्ग ८, श्लोक २१-२२।

(५) वही; सर्ग ८, श्लोक ४६-५० और जनासागर की प्रशस्ति।

(६) राजप्रशस्ति; सर्ग १०, श्लोक ३ और सर्ग १८, श्लोक १६।

(७) वही; सर्ग १०, श्लोक १।

(८) वही; सर्ग १८, श्लोक १६।

(९) वही; सर्ग १०, श्लोक ४०-४२।

(१०) त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति।

अब 'त्रिमुखी बावड़ी' कहते हैं। इसी संवत् में महाराणी चारुमती ने राजनगर में ३०००० रुपये लगाकर एक बावड़ी बनवाई[1]।

यह महाराणा अपने पिता जगत्सिंह की तरह ही दानी था। इसके कितने ही दानों का उल्लेख प्रसंगवशात् ऊपर किया जा चुका है। राजप्रशस्ति में इसके कई प्रकार के अन्य दानों का ब्योरेवार उल्लेख मिलता है, जिनमें मुख्य अपने जन्मदिन, अनेक प्रकार के दान तथा हज़ारों तोले सोना देने, चन्द्रग्रहण के दिन सुवर्ण तुलादान करने, चांदी की कई तुलाएं करने, विश्वचक्र, हेमब्रह्मांड, पंचकल्पद्रुम, स्वर्णपृथ्वी, कामधेनु, हाथी, घोड़े आदि दान करने तथा कई गांव देने का उल्लेख है[2]।

महाराणा की दानशीलता

महाराणा राजसिंह के समय के अब तक १३ शिलालेखादि देखने में आये, जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

महाराणा के समय के शिलालेखादि

(१) वि० सं० १७१३ (चैत्रादि १७१४) ज्येष्ठ वदि १० सोमवार का दानपत्र, जिसमें गंधर्व मोहन को रंगीली गांव दान करने का उल्लेख है।

(२) राणा देवली स्थान में सन्तू की पहाड़ी के स्तंभ पर का वि० सं० १७१६ (चैत्रादि १७१७) वैशाख सुदि १० का लेख। इसमें ५० हाथ दूर बैठी हुई सांभरी को तीर से मारने का वर्णन है। जहां सांभरी मरी वहां स्तंभ खड़ा किया गया।

(३) एकलिंगजी को जानेवाली सड़क पर भवाणा गांव से दक्षिण की एक बावड़ी में वि० सं० १७१७ का लेख है, जिसका आशय यह है कि महाराणा राजसिंह ने पारडा गांव में 'सुन्दर बावड़ी' बनवाने के उपलक्ष्य में वीसलनगरा नागर ब्राह्मण व्यास बलभद्र गोपाल के पुत्र गोविन्दराम व्यास को भवाणा गांव में ७५ बीघा भूमि दान की।

(४) अम्बामाता की चरण चौकी का वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) ज्येष्ठ सुदि १० रविवार का लेख, जिसमें उक्त माता के मन्दिर के सम्बन्ध में भूमिदान का उल्लेख है।

(५) बड़ी के तालाब (जनासागर) की वि० सं० १७२५ (चैत्रादि १७२६)

---

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग १४, श्लो० ११-१२।

(२) वही; सर्ग ६, श्लोक २७-३९; सर्ग ८, श्लोक ४४-४५; सर्ग १०, श्लोक ५-६, २०-२१, ३३-३४; सर्ग १२, श्लोक २६-३० और ३१-३८ आदि।

वैशाख सुदि २ गुरुवार की प्रशस्ति, जिसका संक्षिप्त वर्णन पहले किया जा चुका है।

(६) देवारी के दरवाज़े की उत्तरी शाखा में खुदा हुआ वि० सं० १७३१ श्रावण सुदि ५ का लेख। इसमें उक्त दरवाज़े के किवाड़ बनवाये जाने का उल्लेख है।

(७) बड़ोदा राज्य के बड़ोदा नगर के पासवाले छाणी गांव के जैनमन्दिर में स्थापित आदिनाथ की मूर्ति के आसन पर वि० सं० १७३२ वैशाख सुदि ७ गुरुवार का लेख। इसमें ओसवाल जाति के राजा नामक पुरुष के पुत्र दयालदास-द्वारा मूर्ति स्थापित किये जाने के उल्लेख के अतिरिक्त उसके कुटुम्ब का विस्तृत परिचय भी दिया हुआ है।

(८-११) नौचौकी के बाँध के सामने की पहाड़ी पर मन्त्री दयालदास के बनवाए हुए आदिनाथ के चतुर्मुख जैनप्रासाद की चारों मूर्तियों पर के ४ लेख। संवत् और आशय संख्या ७ के अनुसार ही हैं।

(१२) राजसमुद्र के बाँध पर लगी हुई २५ शिलाओं पर खुदा हुआ 'राजप्रशस्ति महाकाव्य'। इसका परिचय दिया जा चुका है। इसकी कई शिलाओं के अंत में वही संवत् दिया है, जो राजसमुद्र की प्रतिष्ठा का है। इस काव्य के अन्तिम तीन सर्गों में उक्त संवत् के पीछे का—राजसिंह की मृत्यु तथा औरंगज़ेब से जयसिंह के सन्धि करने तक का—वृत्तान्त भी दिया है। यह काव्य अन्य काव्यों के समान कविकल्पना-प्रसूत नहीं है। इसमें संवतों के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। प्रारम्भ के कुछ सर्गों में मेवाड़ का जो प्राचीन इतिहास लिखा गया है वह भाटों की ख्यातों आदि के आधार पर होने के कारण अधिक विश्वास-योग्य नहीं है, तो भी पिछले सर्ग इतिहास के लिए बड़े उपयोगी हैं।

(१३) देवारी के पास की त्रिमुखी बावड़ी की वि० सं० १७३३ वैशाख सुदि २ बुधवार की प्रशस्ति। इसका संक्षिप्त आशय पहले दिया जा चुका है।

वीरवर महाराणा राजसिंह की मृत्यु के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है कि वह बड़े ही वीर स्वभाव का था और अन्त तक औरंगज़ेब की सेना से लड़ाई करना

महाराणा राजसिंह का देहान्त

चाहता था, परंतु एक दिन कुंभलगढ़ जाते हुए वह ओड़ा गांव में ठहरा, जहां किसी ने भोजन में विष मिला दिया,

जिससे भोजन के अनन्तर थोड़े ही समय बाद वि० सं० १७३७ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १६८० ता० २२ अक्टूबर) को एकाएक उसका देहान्त हो गया[1]।

महाराणा की १८ राणियों से ६ कुंवर—सुलतानसिंह, सरदारसिंह, जयसिंह, भीमसिंह[2], गजसिंह[3], सूरतसिंह, इन्द्रसिंह[4], बहादुरसिंह[5] और तख़्त-

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक १-३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७३-७४।

(२) बनेड़ावालों का कथन है कि भीमसिंह और जयसिंह एक ही दिन उत्पन्न हुए और भीमसिंह का जन्म जयसिंह से कुछ घड़ी पूर्व हुआ था, परन्तु महाराणा राजसिंह को जयसिंह के जन्म की सूचना पहले मिली, इसलिए उसने जयसिंह को बड़ा और भीमसिंह को छोटा मान लिया। तदनुसार टॉड ने भी ऐसा ही लिखा और टॉड के आधार पर वीरविनोद आदि में भी यही लिखा गया है, परन्तु यह कथन सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि भीमसिंह महाराणा जयसिंह से सात महीने और चार दिन छोटा था। राजप्रशस्ति में जयसिंह का जन्म वि० सं० १७१० पौष बदि ११ को होना लिखा है (सर्ग ६, श्लोक ४-६)। सुप्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के बृहत् संग्रह में, जिसको उसके वंशज शिवराम ने वि० सं० १७३२ और १७३७ के बीच–अर्थात् महाराणा जयसिंह और भीमसिंह, दोनों की जीवित दशा में–वंशों के अनुसार क्रमबद्ध किया था, उक्त महाराणा का जन्म-दिन वही दिया है, जो राजप्रशस्ति में है। उसी संग्रह में भीमसिंह का जन्म वि० सं० १७११ श्रावण वदि अमावास्या मंगलवार को होना लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद के यहां के जन्मपत्रियों के एक अन्य संग्रह में भी उसका जन्म-दिन वही मिलता है, जो चंडू के संग्रह में है। बनेड़े के मोड़जी नामक ज्योतिषी के यहां से मिली हुई वहां के राजाओं, राणियों और कुँवरों की जन्मपत्रियों में भी भीमसिंह का जन्म-दिन वही है, जो चंडू के संग्रह में है।

भीमसिंह बड़ा वीर था और औरंगज़ेब के साथ की महाराणा राजसिंह की लड़ाइयों में बहुत लड़ा था, परन्तु औरंगज़ेब से महाराणा जयसिंह की सुलह होने पर वह (भीमसिंह) वि० सं० १७३८ के भाद्रपद में बादशाह के पास अजमेर चला गया। बादशाह ने उसे राजा का ख़िताब, मन्सब, बनेड़े की जागीर तथा कई अन्य बाहरी परगने देकर अपनी सेवा में रक्खा। फिर अजमेर से बादशाह जब दक्षिण में गया तब वह भी वहां पहुंचा। हि० स० ११०६ ता० २७ सफ़र (वि० सं० १७५१ कार्तिक वदि १४=ई० स० १६६४ ता० ८ अक्टूबर) को उसका वहीं देहान्त हो गया। उस समय तक उसका मन्सब पांचहज़ारी हो चुका था। उसके वंश में बनेड़ा का ठिकाना तो मेवाड़ में और अमर्ला आदि कई मालवे में हैं।

(३) कुंवर गजसिंह की पुत्री का विवाह महाराणा जयसिंह ने वि० सं० १७४३ में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह के साथ किया। बादशाह औरंगज़ेब उक्त महाराजा को कृत्रिम ही समझता रहा, परन्तु जब मेवाड़ के राजवंश में उसका विवाह हुआ, तभी उसका संशय दूर हुआ (सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३६६)।

(४) गजसिंह, सूरतसिंह और इन्द्रसिंह, तीनों निस्सन्तान मरे।

(५) बहादुरसिंह के वंशजों के अधिकार में भूंणास का ठिकाना है।

महाराणा राजसिंह की सन्तति

सिंह[1] तथा एक पुत्री अजबकुंवरि[2] का होना उदयपुर राज्य के बड़वे की पुस्तक में लिखा है।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा राजसिंह रणकुशल, साहसी, वीर, निर्भीक, सच्चा क्षत्रिय, बुद्धिमान, धर्मनिष्ठ और दानी राजा था। उसने उस समय के सबसे प्रतापी बादशाह औरंगज़ेब के हिन्दुओं पर जज़िया लगाने, मूर्तियां तुड़वाने आदि अत्याचारों का प्रबल विरोध किया। यह विरोध केवल पत्रों तक परिमित न रहा। बादशाह के डर से श्रीनाथजी आदि की मूर्तियों को लेकर भागे हुए गुसाईं लोगों को आश्रय देकर तथा उन मूर्तियों को अपने राज्य में स्थापित कराकर उसने अपनी धर्मनिष्ठा का परिचय भी दिया। बादशाह से सम्बन्ध की हुई चारुमती से उसकी इच्छानुसार उसके धर्म की रक्षा के लिए उसने निर्भयता के साथ विवाह किया; अजीतसिंह को अपने यहां आश्रय दिया और जज़िया कर देना स्वीकार न किया। इन सब बातों के कारण उसे औरंगज़ेब से बहुत लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। इन लड़ाइयों में उसने जो वीरता, रणकुशलता तथा नीतिमत्ता दिखाई वह प्रशंसनीय थी। इन युद्धों में राठोड़ों ने भी पूरी सहायता दी। कई बार बादशाह की सेना परास्त हुई। यदि महाराणा का देहांत बीच में न हो जाता तो संभव था कि मेवाड़ और मारवाड़ के सम्मिलित सैन्य-द्वारा बादशाह पूर्णरूप से पराजित होता। इतना होने पर भी उसमें कुछ अदूरदर्शिता अवश्य थी। उसने शुरू में ही हिन्दुओं के पक्षपाती एवं साधुस्वभाव दाराशिकोह का पक्ष न लेकर हिन्दूविरोधी, कट्टर मुसलमान औरंगज़ेब का पक्ष लिया। यदि महाराणा जोधपुराधीश जसवन्तसिंह के साथ मिलकर दाराशिकोह का पक्ष लेता अथवा वह स्वयं अकेला ही अजमेर की लड़ाई में उसकी सहायता करता तो औरंगज़ेब की बादशाहत स्थिर

---

(१) बाल्यावस्था में ही मर गया।

(२) इसका विवाह बांधवगढ़ (रीवां) के बघेला राजा अनूपसिंह के कुंवर भावसिंह के साथ वि० सं० १७२१ मार्गशीर्ष वदि ८ को हुआ था। रीवांवालों में अपने देश की रीति के अनुसार छुआछूत का विचार अधिक था, जो राजपूताने के राजपूतों में नहीं था; जिससे बरातियों ने भोजन को अस्पृश्य समझा; इसपर भावसिंह ने कहा कि महाराणा के यहां का भोजन हमारे लिये जगदीश का प्रसाद है, जिसके पाने से ही हम पवित्र होते हैं। यह वचन सुनते ही सब बराती प्रसन्नतापूर्वक भोजन करने लगे। महाराणा ने अपने राजपूतों की १८ कन्याओं का विवाह रीवां के बराती राजपूतों से करा दिया (राजप्रशस्ति; सर्ग ८, श्लोक ३७-४३)।

न रहती। महाराणा में क्रोध की मात्रा भी कुछ अधिक थी। किसी कार्य को करने से पहले उसपर वह अधिक विचार न करता था। क्रोध के आवेश में आकर उसने राजकुमार, राणी, पुरोहित और चारण की हत्याएं कर डालीं। इतना होते हुए भी वह बड़ा दानी था। उसने रत्नों का तुलादान किया, जिसका अब तक कोई दूसरा लिखित उदाहरण नहीं मिला। उसने प्रजा के हित का खयाल कर अकाल से उसकी रक्षा करने के लिए विशाल राजसमुद्र बनवाया। उसकी प्रतिष्ठा के अवसर पर भी उसने बहुतसे दान दिये। वह स्वयं कवि[1] तथा विद्वानों का सम्मान करनेवाला[2] था।

---

(१) महाराणा राजसिंह का बनाया हुआ निम्नलिखित एक छप्पय राजसमुद्र की पाल पर महल के झरोखे के पूर्वी पार्श्व में खुदा हुआ है।

> कहां राम कहां लखण, नाम रहिया रामायण।
> कहां कृष्ण बलदेव, प्रगट भागोत पुराणा॥
> वाल्मीक शुक व्यास, कथा कविता न करंता।
> कुण सरूप सेवता, ध्यान मन कवण धरंता॥
> जग अमर नाम चाहो जिके, सुणो सजीवण आखरां।
> राजसी कहे जग राणरो, पूजो पांव कवीसरां॥

आशय—राम और लक्ष्मण अब कहां हैं? उनका नाम रामायण में ही रह गया है। कृष्ण और बलदेव कहां हैं? उनका नाम भागवत पुराण से प्रकट होता है। वाल्मीकि और शुकदेव व्यास यदि कविता में उनकी कथा न करते, तो कौन उनकी सेवा और ध्यान करता? सुनो—सदा जीवित रहनेवाले अक्षरों में राणा जगत्‌सिंह का पुत्र राजसिंह कहता है कि यदि अपना नाम अमर कराना चाहो तो कवीश्वरों के पैरों की पूजा करो।

(२) पं० देवीदास के पुत्र श्रीलालभट्ट ने महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध में १०१ श्लोकों का एक काव्य बनाया। उसमें केवल एक श्लोक को छोड़कर कोई ऐतिहासिक बात नहीं मिलती; सारा ग्रन्थ कविकल्पनामात्र है। वह श्लोक यह है—

> संग्रामे भीमभीमो विविधवितरणे यश्च कर्णोपमेयः
> सत्ये श्रीधर्मसूनुः प्रबलरिपुजये पार्थ एवापरोऽयम्।
> श्रीमान्वाजीन्द्रशिक्षानयविधिकुशलः शाश्वतश्चेतिहासे
> देवोऽयं राजसिंहो जयतु चिरतरं पुत्रपौत्रैः समेतः॥ ३९॥

इस श्लोक से पाया जाता है कि महाराणा बहुत दानी, शूरवीर और इतिहास तथा अश्व-विद्या का ज्ञाता था।
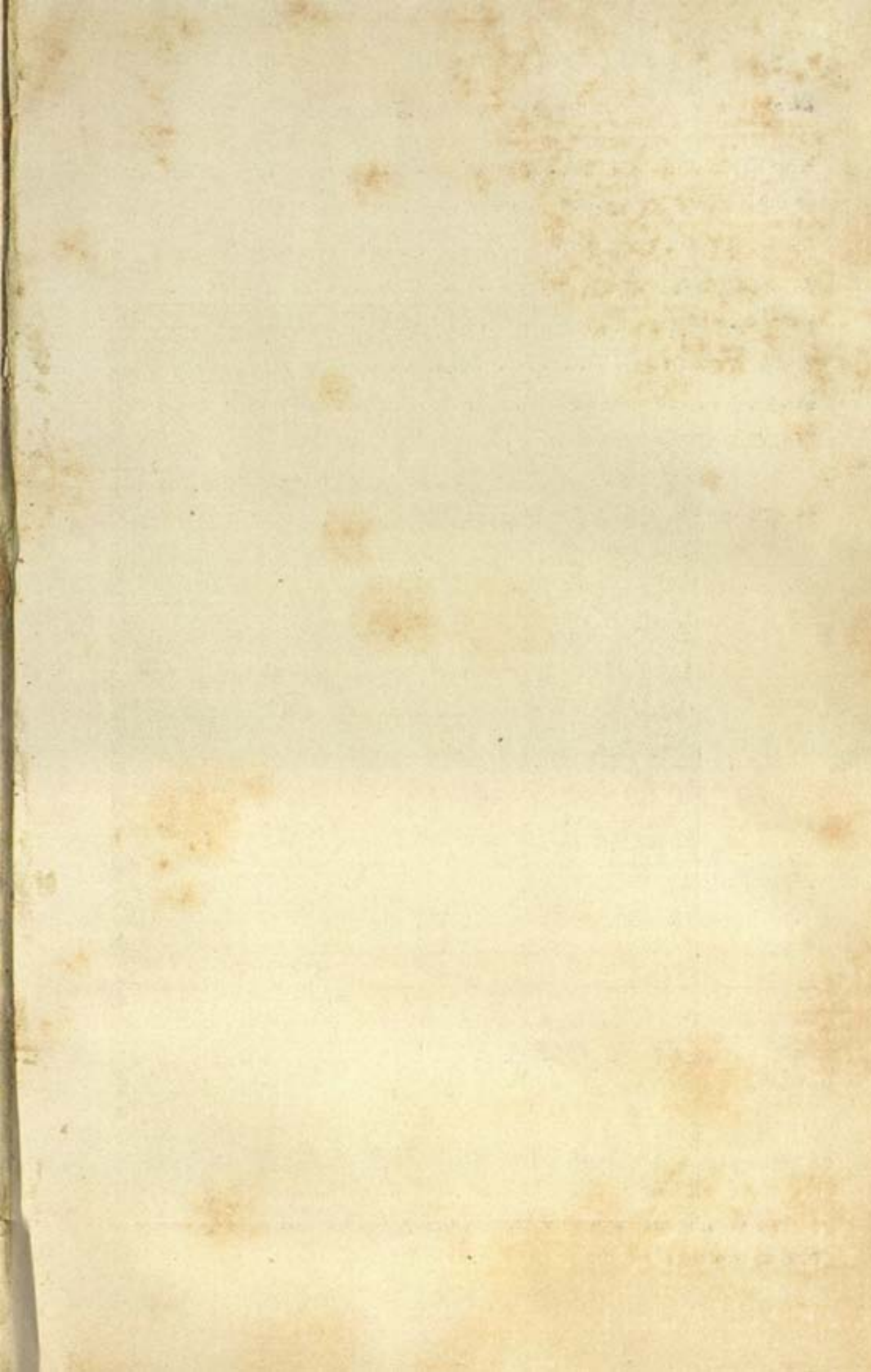
महाराणा जयसिंह

महाराणा का क़द छोटा, आंखें बड़ी, पेशानी चौड़ी, रंग गेहुंवा और स्वभाव कुछ तेज़ तथा कठोर था।

महाराणा जयसिंह

महाराणा जयसिंह का जन्म वि० सं० १७१० पौष वदि ११ (ई० स० १६५३ ता० ५ दिसम्बर) को पंवार इन्द्रभान (बिजोलियावाले) की पुत्री सदाकुंवरि के गर्भ से हुआ[1]। राजसिंह के देहान्त के समय वह कुरज (जिसे राजप्रशस्ति में 'कंडज' लिखा है) गांव में था। वहां उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला और वहीं उसकी गद्दीनशीनी का दस्तूर हुआ[2]।

औरंगजेब के साथ की लड़ाई

जयसिंह के गद्दी बैठने से पूर्व ही भीमसिंह सिसोदिया तथा बीका सोलंकी से परास्त होकर तहव्वरखां देसूरी में रुक गया था। जब बहुत समय तक शाहज़ादा अकबर और तहव्वरखां आगे न बढ़े तब औरंगज़ेब ने रुहुल्लाखां को अकबर के पास उसे आगे बढ़ाने के लिए भेजा। उसके आने पर अकबर ने स्वयं देसूरी जाकर तहव्वरखां

उक्त ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपना परिचय इस तरह दिया है—

श्रीमत्पण्डितदेविदास इति यः श्रीगार्ग्यगोत्रोद्भवो
वासन्ती सुषुवे च यं सुतनयं श्रीलालभट्टाभिधम्।
स श्रीराणसुराजसिंहनृपतेः काव्यं व्यतानीदिदं
भूयाद्भूतलभूषणं.........ख्यातं क्षमामण्डले ॥ १० ॥

इति श्रीलालजीभट्टविरचितं सकलभूपालमालामौलिचञ्चरीकचयचुम्बितचरणारविन्दपीठपार्श्वमहाराजाधिराजश्रीमज्जगत्सिंहनरेशनंदनश्रीराजसिंहप्रभोर्वर्णनम्।

(१) शते सप्तदशे पूर्णे दशाख्याब्दे तु पौषके।
कृष्णैकादशिकायान्तु राजसिंहनरेश्वरात् ॥ ४ ॥
पंवार इन्द्रभानाख्यरावस्य तनया तु या।
सदाकुंवरि नाम्नी तत्कुक्षेर्जातो जगत्प्रियः ॥ ५ ॥
जयसिंहाभिधः पुत्रः.......।............ ॥ ६ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग ६।

(२) वही; सर्ग २३, श्लोक ६–१२।

को ६००० सवारों और ३००० बन्दूकचियों सहित जीलवाड़े की तरफ़ भेजा। महाराणा जयसिंह ने यह सुनकर भीमसिंह और बीका सोलंकी को फिर उसका मुक़ाबला करने के लिए भेजा; उन्होंने उसे वहां आठ दिन तक रोक रक्खा। दोनों पक्षों का बहुत नुक़सान होने पर मुग़ल जीत गये। तहव्वरखां ने आसपास का प्रदेश लूटना शुरू किया और सोमेश्वर तथा कुछ अन्य स्थानों पर थाने बिठलाये[1]। इसके बाद बादशाह से विद्रोही हो जाने के कारण अकबर ने आक्रमण न किया, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

बादशाह ने वि० सं० १७३७ के पौष (ई० स० १६८० दिसम्बर) में राजा उदितसिंह (उद्योतसिंह) भदोरिया[2] को चित्तोड़ का क़िलेदार बनाकर शाहज़ादे आज़म के पास भेजा[3]। इधर दिलावरखां[4] भी मेवाड़ के पहाड़ों में बढ़ा, तो महाराणा ने रावत रत्नसिंह (चूंडावत) को गोगूंदे की घाटी का मार्ग रोकने के लिए भेजा। उसने दिलावरखां को वहां तक आगे बढ़ने दिया। फिर उसे पहाड़ों में घेर लिया, जहां से वह किसी भी प्रकार निकल नहीं सकता था। महाराणा ने झाला वरसा (वरसिंह) को उसके पास भेजा। उसने जाकर उससे कहा कि तुम बादशाह की इतनी बड़ी सेना लेकर यहां आये हो और यहां सरदार रत्नसिंह अकेला है, फिर भी तुम बचकर नहीं निकल सकते; हमारे न रोकने के कारण ही तुम यहां तक आ सके हो। जब दिलावरखां बहुत प्रयत्न करने पर भी वहां से न निकल सका, तब उसने एक ब्राह्मण को १००० रुपया देकर रास्ता बताने को कहा और उसकी सहायता से वह रातों रात घाटी से बाहर चला गया। रावत रत्नसिंह (चूंडावत) ने निकलते हुए उससे लड़ाई की, परन्तु वह हानि सहता हुआ निकल ही गया। इस तरह छल से बचकर वह सीधा शाहज़ादे[5] के पास पहुंचा, और उसने कहा कि राणा ने मेरा पीछा कर

(१) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ३३६-३७। राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक १३-१५।

(२) भदोरिया उदितसिंह चौहान बदनसिंह का पौत्र और महासिंह का पुत्र था। उसका मनसब तीन हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार तक पहुंच गया था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र गोपालसिंह हुआ।

(३) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ६६।

(४) राजप्रशस्ति में दिलेरख़ां नाम दिया है।

(५) राजप्रशस्ति में 'दिल्लीश' पाठ दिया है, जो बादशाह का सूचक नहीं, किन्तु शाहज़ादे आज़म का होना चाहिये, क्योंकि दिलावरख़ां आज़म के सैन्य के साथ था।

बहुतसे सिपाही मार डाले, और भोजन के अभाव से भी वहां चार सौ आदमी रोज़ मरते थे; इसलिए मैं वहां से निकल आया[१]।

मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों ने बादशाह को परास्त करने के लिए शाहज़ादे मुअज़्ज़म को बादशाह से विद्रोही बनाना चाहा और इसके लिए राव केसरीसिंह चौहान, रावत रत्नसिंह (चूंडावत), राठोड़ दुर्गादास और सोनिंग आदि सरदारों ने उससे बातचीत शुरू की, परन्तु अजमेर से मुअज़्ज़म की माता नव्वाबबाई ने उसे राजपूतों से मेल-मिलाप न रखने की सलाह दी, जिससे वह राजपूतों के बहकाने में न आया[२]। तब राजपूतों ने शाहज़ादे अकबर को अपनी तरफ़ मिलाने का प्रयत्न किया। उन्होंने उसे कहा कि राजपूतों को नाराज़ कर औरंगज़ेब अपने सारे राज्य को नष्ट कर रहा है। इस समय तुम्हें चाहिये कि स्वयं बादशाह बनकर अपने पूर्वजों की नीति का अवलम्बन करो और राज्य को स्थिर तथा समृद्ध बनाओ। तहव्वरखां जीलवाड़े में था; उस समय जयसिंह ने राठोड़ दुर्गादास, राव केसरीसिंह आदि को गुप्त रूप से अकबर के पास भेजा। अकबर ने महाराणा को कुछ परगने और अजीतसिंह को जोधपुर देने का वचन दिया, जिसके बदले में उन्होंने उसे सहायता देना स्वीकार किया। ता० २ जनवरी ई० स० १६८१ (वि० सं० १७३७ माघ वदि ८) को अजमेर में बादशाह पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान करने का निश्चय किया गया[३]। अकबर स्वयं भी महाराणा से मिला, जैसा कि राजप्रशस्ति से पाया जाता है[४]।

ता० १ जनवरी ई० स० १६८१ (वि० सं० १७३७ माघ वदि ७) को अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया। इस अवसर पर उसने अपने सरदारों और अमीरों को ख़िताब दिये तथा तहव्वरख़ां को अपना मुख्य मंत्री बनाकर

---

(१) राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक १६-३०।

(२) मुन्तख़बुल्लुबाब; इलियट्; जि० ७, पृ० ३००।

(३) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४०४-५। मुन्तख़बुल्लुबाब; इलियट्; जि० ७, पृ० ३००-३०१। देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १०३, टिप्पण १।

(४) अथाकब्बर आयातो मिलनं कर्तुमुद्यतः।······॥ ३१ ॥

राजप्रशस्ति; सर्ग २३।

उसे सात हज़ारी मन्सब दिया। इसी अवसर पर उसने अपने नाम का सिक्का और खुतबा भी जारी किया[1]।

अकबर के इस आकस्मिक विद्रोह की ख़बर सुनकर औरंगज़ेब बहुत ही घबड़ाया और उसकी स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई, क्योंकि इस समय उसके पास बहुत थोड़ी सेना रह गई थी, जब कि सिसोदियों और राठोड़ों की सेना सहित अकबर का सैन्य ७०००० के क़रीब था। बादशाह ने सब मन्सबदारों और अपने शाहज़ादों को बहुत शीघ्र अजमेर पहुंचने के लिए लिखा। इधर युवा अकबर, जो स्वभावतः सुस्त और विलासी था, अपने बादशाह बनने की खुशी में दिनरात नाचरंग में मस्त रहने लगा। उसने १५ दिनों में केवल १२० मील का सफ़र किया। उसकी प्रत्येक दिन और प्रत्येक घंटे की देरी औरंगज़ेब की विजय की सहायक हुई। अकबर के अजमेर पहुंचने से पहले शिहाबुद्दीनखां सिरोही की तरफ़ से, हामिदखां १६००० सेना समेत तथा शाहज़ादा मुअज़्ज़म अपनी सेना सहित बादशाह के पास पहुंच गये थे। उस(बादशाह)ने अपनी सेना को पूर्णतया सुसज्जित कर ता० १४ जनवरी (माघ सुदि ५) को दोराई (अजमेर के निकट) स्थान में डेरा डाला। इधर अकबर भी आगे बढ़कर कुड़की (अजमेर से दक्षिणपश्चिम में २४ मील दूर) में जा ठहरा। इस समय बहुतसे मुग़ल सरदार अकबर को छोड़कर बादशाह से मिल गये और उसके पास ३०००० राजपूत और कुछ मुग़ल सेना शेष रह गई। ता० १५ जनवरी (माघ सुदि ६) को बादशाह वहां से चार मील दक्षिण में आगे बढ़कर दोराहा (डुमाड़ा) स्थान पर ठहरा और अकबर भी उससे तीन मील दूर आ जमा।

अकबर के बहुतसे अफ़सर बादशाह से जा मिले थे। अब उस(बादशाह)-ने अकबर के मुख्य सेनापति तहव्वरखां को उसके ससुर (बादशाह का सेनापति) इनायतखां के द्वारा ख़त लिखवाकर अपने पास बुलाया और यह धमकी दी कि यदि वह चला आया तो उसका अपराध क्षमा किया जायगा, नहीं तो उसकी स्त्रियां सबके सामने अपमानित की जावेंगी और उसके बाल-

(१) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४०६-७। मुन्तख़बुल्लुबाब; इलियट्; जि० ७, पृ० ३०१। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६४७।

बच्चे कुत्तों के मूल्य पर गुलामों के तौर बेचे जायँगे। इस धमकी से डरकर तहव्वरख़ां सोते हुए अकबर तथा दुर्गादास को सूचना दिये विना ही औरंगज़ेब के पास चला गया, जहां शाही नौकरों ने उसको मार डाला। फिर औरंगज़ेब ने एक जाली पत्र अकबर के नाम इस आशय का लिखा कि तुमने राजपूतों को ख़ूब धोखा दिया है और उन्हें मेरे सामने लाकर बहुत अच्छा काम किया है। अब तुम्हें चाहिये कि उनको अपनी हरावल में रक्खो, जिससे कल प्रातःकाल के युद्ध में उनपर दोनों तरफ़ से हमला किया जा सके। यह पत्र किसी प्रकार राजपूतों के डेरे में दुर्गादास के पास पहुंचा दिया गया। इससे राजपूतों को अकबर पर सन्देह उत्पन्न हो गया और वे उसी रात अकबर का बहुत-सा सामान लूटकर चले गये। अकबर को सवेरे जब यह सारा हाल मालूम हुआ तब अत्यन्त निराश होकर वह राजपूतों के पीछे बहुत तेज़ी से चला। औरंगज़ेब ने तुरन्त उसका पीछा करने के लिए शिहाबुद्दीन को भेजा और शाहज़ादे मुअज़्ज़म को मारवाड़ में उसको पकड़ने के लिए नियुक्त कर, सब सूबेदारों, थानेदारों और ज़मींदारों को भी उसके पकड़ने की आज्ञा लिख भेजी। दो दिन बाद राजपूतों को औरंगज़ेब का छल मालूम हो गया, जिससे वीर दुर्गादास ने उसको अपने शरण में ले लिया[1]।

उधर मेवाड़ में अकबर के साथ महाराणा की मुलाक़ात होते ही राजपूतों ने मांडलगढ़ पर आक्रमण किया, जिसमें वहां का क़िलेदार मारा गया और उसपर महाराणा का अधिकार हो गया[2]।

मंत्री दयालदास ने चित्तोड़ के पास रही हुई शाहज़ादे आज़म की सेना पर रात को आक्रमण किया। यह समाचार सुनकर शाहज़ादे ने अपने सेनापति दिलावरख़ां को उसपर भेजा। दयालदास ने भी युद्ध किया, जिसमें उसके सैन्य की बहुत हानि हुई और वह अपनी स्त्री को (मुसलमानों के हाथ में न पड़े इस विचार से) मारकर वापस लौट गया। राजपूतों का सामान और कुछ राजपूतों सहित दयालदास की लड़की मुसलमानों के हाथ लगी[3]।

---

(१) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४०७-१७।

(२) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १०४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२०।

(३) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १०५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२०।

मेवाड़ पर आई हुई शाही सेना की जो दशा हुई, वह पहले बताई जा चुकी है। औरंगज़ेब के अफ़सरों में से एक भी महाराणा का पीछा करने के लिए

औरंगज़ेब से सुलह

पहाड़ों में जाकर सफलता प्राप्त न कर सका। इतने में अकबर विद्रोही हो गया, जिससे सारी शाही सेना को मेवाड़ छोड़कर अजमेर जाना पड़ा। उधर दक्षिण में मरहटों का ज़ोर बढ़ रहा था, इसलिए बादशाह को उधर जाना आवश्यक हुआ। ऐसी स्थिति में बादशाह ने महाराणा से सुलह करना चाहा। महाराणा ने भी अपने देश को ऊजड़ होने से बचाने के लिए संधि कर लेना उचित समझा।

शाहज़ादे आज़म ने श्यामसिंह[1] को, जो महाराणा कर्णसिंह के पुत्र गरीबदास का बेटा था और शाही सेना में दिलेरखां के पास नियुक्त था, महाराणा के पास सुलह की बातचीत करने के लिए भेजा। उसने महाराणा को समझाया कि अकबर के बाग़ी होने के कारण इस समय अनुकूल शर्तों पर सुलह हो सकती है, यह मौका नहीं चूकना चाहिये। महाराणा ने भी इस सलाह को पसन्द किया और शाहजादा आज़म, दिलेरखां तथा हसनअलीखां की सलाह के अनुसार अर्ज़ी लिखकर, चौहान रुक्मांगद (कोठारिये का), राव केसरीसिंह (पारसोली का) और रावत घासीराम शक्तावत (बावल का) को बादशाह के पास भेजा। उन्होंने बादशाह से बातचीत की। उसने संधि करना स्वीकार कर ता० १४ सफ़र सन् २४ जुलूस (वि० सं० १७३७ चैत्र वदि १=ई० स० १६८१ ता० २३ फ़रवरी) को महाराणा के नाम इस आशय का फ़रमान[2] भेजा कि तुम्हारी अर्ज़ी राव केसरीसिंह, रुक्मांगद और घासीराम के द्वारा मिली। यदि तुम साफ़ दिल से हमारी आज्ञानुसार काम करोगे तो हम भी तुम्हारा अपराध क्षमा कर तुम्हारी दरख़्वास्तें मंज़ूर करेंगे और अपने पंजे के निशान

---

(१) प्रोफ़ेसर सरकार ने श्यामसिंह को बीकानेर का बतलाया है (औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४२१), जो ठीक नहीं है, क्योंकि राजप्रशस्ति के २३वें सर्ग में, जो संधि के समय ही लिखा गया था, श्यामसिंह को राणा कर्णसिंह के द्वितीय पुत्र गरीबदास का बेटा (*राणाश्रीकर्णसिंहस्य द्वितीयस्तनयो बली ॥ ३१ ॥ गरीबदासस्तत्पुत्रः श्यामसिंह इहागतः । कृत्वा मिलनवार्ता····॥ ३२ ॥*) कहा है, जो अधिक विश्वसनीय है।

(२) यह फ़रमान उदयपुर राज्य में विद्यमान है और वीरविनोद; भाग २, पृ० ६५१-५२ में छप चुका है।

के साथ मन्सब का फ़रमान बख़्शेंगे। जब तुम शाहज़ादे आज़म के पास हाज़िर होकर सलाम करोगे तब तुम्हारे साथ वही बर्ताव होगा, जो राणा अमरसिंह के साथ शाहजहां की शाहज़ादगी में हुआ था। इन्हीं दिनों शाहज़ादे आज़म ने हि० स० १०९२ ता० २४ रबि उल्-अव्वल (वि० सं० १७३८ वैशाख वदि १०=ई० स० १६८१ ता० ३ अप्रेल) को एक निशान भेजकर महाराणा को लिखा कि शाहज़ादा अकबर देसूरी की तरफ़ आ रहा है, उसे पकड़ लेना अथवा मार डालना।

उस समय अकबर के साथ राठोड़ दुर्गादास, राठोड़ सोनिंग आदि ससैन्य थे। इसलिए महाराणा ने उनसे कहला दिया कि शाहज़ादे को इधर न लाकर दक्षिण में पहुंचा दो, क्योंकि इधर सुलह की बातचीत हो रही है। इसपर राठोड़ दुर्गादास अकबर को भोमट, डूंगरपुर और राजपीपला के रास्ते से दक्षिण में ले गया, जहां शंभा ने उसे आश्रय दिया[1]।

फिर सुलह की बातचीत होने पर दिलेरखां ने राजसमुद्र पर महाराणा से मिलने का दिन निश्चय कर उसको सूचना दी। तदनुसार महाराणा अपने सरदारों, ७००० सवारों और १०००० पैदलों के साथ राजनगर पहुंचा, तो दिलेरखां, हसनअलीखां, राठोड़ रामसिंह (रतलामवाला) और हाड़ा किशोरसिंह[2] पेशवाई कर उसे शाहज़ादे के पास ले गये। महाराणा ने शाहज़ादे को सलाम कर ५०० मुहरें और सोने-चांदी के सामानवाले १८ घोड़े नज़र किये। शाहज़ादे ने उसे बाईं तरफ़ बिठाया और ख़िलअत, जड़ाऊ तलवार, जमधर (फूल कटार समेत), घोड़ा (सुनहरी सामानवाला) और चांदी के कामवाला हाथी दिया। राणा का ख़िताब और पांच हज़ारी मन्सब बहाल हुआ। रुख़सत के समय महाराणा के साथवालों को १०० ख़िलअत, १० जड़ाऊ जमधर और ४० घोड़े दिये। फिर महाराणा ने दिलेरखां से मिलकर उससे बातचीत की। यह घटना ता० १७ जमादि-उस्सानी (श्रावण वदि ३ = ता० २४ जून) को हुई[3]।

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६५३।

(२) कोटा के राव माधवसिंह का पांचवां पुत्र, जिसने वि० सं० १७४१ में कोटे का राज्य पाया था।

(३) राजप्रशस्ति; सर्ग २३, श्लोक ३४-५१। देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १०१।

इस संधि की मुख्य शर्तें ये थीं कि महाराणा जज़िये के बदले में पुर, मांडल और बदनोर[1] के परगने बादशाह को सौंप दे। बादशाह मेवाड़ से अपना दख़ल उठा ले[2]। महाराणा राठोड़ों को सहायता न दे[3]। सुलह हो जाने पर बादशाह ने सन् जुलूस २४ ता० १२ रज्जब (वि० सं० १७३८ श्रावण सुदि १३ = ई० स० १६८१ ता० १८ जुलाई) को फ़रमान के साथ शाहज़ादे कामबख़्श के बख़्शी मुहम्मद नईम को महाराणा राजसिंह की मातमी तथा जयसिंह की गद्दीनशीनी

मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८६।

राजप्रशस्ति और मासिरे आलमगीरी में परस्पर दिये हुए घोड़ों और हाथियों की संख्या में अन्तर है। हमने उनकी संख्या मासिरे आलमगीरी के अनुसार दी है।

उदयपुर से शाहज़ादे आज़म के नाम का एक ऐसा फ़ारसी का पत्र मिला है, जिसमें महाराणा ने लिखा है कि आपके बादशाह होने पर जो परगने मेवाड़ से अलग हो गये हैं वे सब हमें पीछे मिलें, सात हज़ारी ज़ात व सात हज़ार सवार का मन्सब मिले; जज़िया यदि हिन्दुस्तान-भर में माफ़ न हो तो भी हमारा तो माफ़ किया जाय। यदि हमारे रिश्तेदार और सरदार हमसे रूठकर आपके पास आवें, तो उनपर तवज्जह न की जाय। हमारी और हमारे सरदारों की सेना आपके लिए तैयार रहेगी। दक्षिण में हमारे एक हज़ार सवारों की नौकरी माफ़ कर दी जाय। इनमें से प्रत्येक बात पर शाहज़ादे के हाथ का 'स्वाद' अक्षर लिखा है, जो स्वीकृति का सूचक होना चाहिये (वीरविनोद; भाग २, पृ० ६५६-६१)। इससे अनुमान होता है कि शाहज़ादा आज़म मुअज़्ज़म से छोटा होने पर भी अपने पिता के पीछे बादशाह होने की पेशबन्दी कर रहा था। औरंगज़ेब के मरने पर उसने बादशाह बनने का उद्योग भी किया, जिसमें वह मारा गया।

(१) पुर और मांडल के परगनों की फ़ौजदारी राठोड़ मानसिंह (किशनगढ़वाले) को दी थी। पीछे से बदनोर का परगना भी दलपत (बुन्देला) से उतारकर उसी को दे दिया (देवी-प्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० १२३)।

(२) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ३, पृ० ४२१-२२। मासिरे आलमगीरी; इलियट्; जि० ७, पृ० १८६। आज़म के निशानों आदि से यह भी प्रतीत होता है कि आज़म ने जज़िया छुड़ाने या हज़ार सवारों की नौकरी माफ़ कराने की बातचीत महाराणा से की हो, परन्तु बादशाह ने जज़िया के एवज़ में पुर, मांडल और बदनोर के परगने ले लिये, जिससे महाराणा ने हज़ार सवार नौकरी में भेजने से इन्कार कर दिया।

(३) औरंगज़ेब के साथ महाराणा की संधि होने के पश्चात् सोनिंग आदि राठोड़ महाराजा अजीतसिंह को मेवाड़ से सिरोही इलाक़े में ले गये; वहां वह कुछ वर्षों तक गुप्त रूप से रक्खा गया।

की ख़िलअ़त देकर महाराणा के पास भेजा[1]। इस प्रकार महाराणा से संधि कर औरंगज़ेब ता० ५ रमज़ान (प्रथम आश्विन सुदि ६=ता० ८ सितम्बर) को अजमेर से सीधा दक्षिण की ओर चला[2], जहां वह २५ साल तक दक्षिण की लड़ाइयों आदि में लगा रहा और वहीं उसका देहान्त हुआ।

उपर्युक्त तीन परगने लेने के कारण महाराणा ने दक्षिण में बादशाह को आवश्यकता होने पर भी हज़ार सवार न भेजे। इसपर शाहज़ादे आज़म ने

पुर आदि परगनों का वापस मिलना

ता० २४ शाबान सन् जुलूस २७ (वि० सं० १७४१ द्वितीय श्रावण वदि १०=ई० स० १६८४ ता० २७ जुलाई) को महाराणा के नाम इस आशय का निशान भेजा कि कुछ परगने जज़िये के तौर पर तुमसे ले लिये गये थे, इस विचार से हज़ार सवार की नौकरी माफ़ कर दी गई थी। अब ज़ब्त किये हुए परगने पीछे बख़्शे जाते हैं, अतएव पुराने दस्तूर के मुवाफ़िक एक हज़ार उम्दा सवार अपने किसी रिश्तेदार या विश्वास-पात्र सेवक के साथ जहां तक हो सके जल्दी भेजो, क्योंकि शाही सैन्य इधर उपद्रवियों को सज़ा देने में लगा हुआ है। इसपर भी महाराणा ने एक हज़ार सवार नौकरी में भेजना ठीक न समझा, क्योंकि इससे हज़ार सवार की नौकरी फिर हमेशा के लिए लग जाती थी। बादशाह ने इस विषय में ता० ६ शव्वाल सन् जुलूस ३४ (वि० सं० १७४७ आषाढ़ सुदि १०=ई० स० १६६० ता० ६ जुलाई) को महाराणा के पास वज़ीर असदखां के द्वारा एक फ़रमान[3] भेजा, जिसका आशय नीचे लिखे अनुसार है—

तुम्हारी अर्ज़ी पहुंची, जिससे मालूम हुआ कि यदि हम तुम्हें पुर और बदनोर[4] के परगने पीछे दे दें, तो इन दोनों के एवज़ तुम जज़िया के सम्बन्ध में सालाना एक लाख रुपया चार किश्तों में अजमेर के सरकारी ख़ज़ाने में भेजते रहोगे। इसलिए तुम्हारे मन्सब में एक हज़ार सवार दो अस्पा की तरक्क़ी दी जाती है और ये दोनों परगने बढ़ाये हुए मन्सब की तनख़्वाह में तुम्हें दिये जाते

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६६१-६२। देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ११२।

(२) देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ११२।

(३) ऊपर लिखे हुए निशान तथा फ़रमान उदयपुर राज्य में अब तक विद्यमान हैं।

(४) फ़रमान में मांडल का नाम नहीं है। पुर और मांडल पास पास होने से 'पुर-मांडल' नाम से प्रसिद्ध हैं। इसी से शायद पुर लिखकर मांडल का नाम छोड़ दिया गया हो।

हैं। इसके साथ खिलअत और हाथी भेजकर तुम्हारी प्रतिष्ठा की जाती है। सालाना लाख रुपये देने की ज़मानत अजमेर के दीवान के पास पेश करो। प्रतिवर्ष नियत क़िश्तों पर रुपये जमा कराते रहो[1]।

इस प्रकार महाराणा ने अपने गये हुए परगने पीछे प्राप्त कर लिये और उसका मन्सब छः हज़ारी हो गया।

महाराणा और कुंवर अमरसिंह का परस्पर विरोध

कुंवर अमरसिंह का अपनी स्त्री भटियाणी[2] पर अधिक प्रेम था। उसी की संगति से कुंवर को भी शराब की लत लग गई, जिसकी सिसोदिया खानदान में पहले मनाही थी। प्राचीन रीति के विरुद्ध कुंवर ने अपने रहने के महलों[3] के पास भटियाणी के लिए एक अलग ज़नाना महल बनवाया[4]। इन बातों से महाराणा उससे अप्रसन्न हुआ। कुंवर भी शराब पीने के कारण उच्छृंखल-सा बन गया, जिससे परस्पर विरोध बढ़ता ही गया। महाराणा का गुप्त प्रेम एक कायस्थ की स्त्री से था, जिसके पति को उसने बड़े पद पर नियुक्त कर दिया था। उसकी स्त्री भी पिता-पुत्र के विरोध में आग बढ़ानेवाली हुई। कहते हैं कि महाराणा जयसमुद्र गया हुआ था, उस समय उक्त कायस्थ से कोई झगड़ा हो जाने के कारण उच्छृंखल कुंवर ने एक मस्त हाथी को शहर में छुड़वा दिया, जिसने प्रजा को कुछ नुकसान पहुंचाया। इसकी सूचना उक्त कायस्थ ने महाराणा को दी, जिसपर क्रुद्ध होकर वह उदयपुर आया, परंतु कुंवर उसके आने से पूर्व ही उदयपुर छोड़कर चित्तोड़ चला गया। उसके साथ रावत केसरीसिंह, रावत महासिंह (सारंगदेवोत), महाराज सूरतसिंह (महाराणा जयसिंह का भाई), उदयभान (कोठारिये का), राव सज्जा झाला (देलवाड़े का) और रावत अनूपसिंह थे।

महाराणा के पक्ष में बैरिसाल (बिजोलियावाला), रावत कांधल (सलूंबर का), ठाकुर गोपीनाथ (घाणेराव का) और देसूरी के सोलंकी आदि थे। महाराणा के ससैन्य चित्तोड़ पहुंचने पर कुंवर वहां से निकलकर अपने

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६६५–६६ और ६६६–७२।

(२) यह जैसलमेर के रावल सबलसिंह की पोती थी।

(३) कुंवर या कुंवरपदे के महल उस स्थान पर थे, जहां शंभुनिवास बना हुआ है।

(४) यह महल वहां थे, जहां अब रूपनगर व महासहानी की हवेलियां हैं।

ननिहाल[1] बूंदी चला गया और महाराणा उदयपुर लौट आया। कुंवर बूंदी से रुपयों और एक हज़ार सवार की सहायता लेकर मेवाड़ की तरफ़ लौटा और उदयपुर पर अधिकार कर लिया। वज़ीर असदख़ां के द्वारा कुंवर अमरसिंह बादशाही मदद भी लेना चाहता था, ऐसा उसके लिखे हुए उक्त वज़ीर के नाम के दो पत्रों की नक़लों[2] से पाया जाता है, परन्तु बादशाह के दक्षिण की लड़ाइयों में फंसे हुए होने के कारण उधर से कोई सहायता न मिल सकी। महाराणा उदयपुर छोड़कर केलवाड़े होता हुआ घाणेराव चला गया और राठोड़ गोपीनाथ के पास ठहरा। महाराणा ने राठोड़ दुर्गादास को अपने पास बुला लिया, जिसके साथ बहुतसे राठोड़ सरदार भी आ मिले। इस प्रकार महाराणा की ताक़त बहुत बढ़ गई। इधर कुंवर अमरसिंह भी ससैन्य जीलवाड़े पहुंचा। दोनों पक्षवालों को यह चिन्ता हुई कि परस्पर लड़कर मेवाड़ के कमज़ोर होने से देश में मुसलमानों का दख़ल बढ़ जाने की आशंका है। उधर राठोड़ गोपीनाथ, दुर्गादास और पुरोहित जगन्नाथ[3] आदि पिता-पुत्र के इस कलह को शान्त करने का विचार करने लगे। इधर रावत महासिंह (सारंगदेवोत) और रावत गंगदास (शक्तावत) आदि ने महाराणा से अर्ज़ कराई कि युद्ध में यदि आपका पुत्र मारा गया, तो भी दुःख आपको होगा, अतः कुंवर का अपराध क्षमा किया जाय। महाराणा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अन्त में यह निश्चय हुआ कि कुंवर तीन लाख रुपये वार्षिक आय की जागीर लेकर राजनगर में रहे। महाराणा के राजकार्य में वह किसी प्रकार दख़ल न दे और महाराणा कुंवर के पट्टे में किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न करे। इस प्रकार वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) के अन्त के

---

(१) बूंदी के रावराजा शत्रुसाल की पुत्री गंगाकुंवरी का विवाह महाराणा जयसिंह के साथ हुआ, जिसके गर्भ से कुंवर अमरसिंह का जन्म हुआ था। गंगाकुंवरी का जन्म वि० सं० १७०६ श्रावण सुदि २ मंगलवार को हुआ था। वह अपने पति महाराणा जयसिंह से अवस्था में सवा वर्ष बड़ी थी।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८०-८१।

(३) पुरोहित शंभुनाथ का पूर्वज। उक्त पुरोहित की सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने घाणेराव रहते समय निकोड गांव वि० सं० १७४८ फाल्गुन वदि १२ को उसे प्रदान किया था।

आसपास[1] इस गृहकलह की समाप्ति हुई,[2] परन्तु दोनों के दिल साफ़ न हुए।

पारसोली का राव केसरीसिंह महाराणा राजसिंह का विशेष प्रीतिपात्र था और महाराणा जयसिंह के समय भी उसका सम्मान अच्छा रहा, परन्तु महाराणा

कांधल और केसरीसिंह का मारा जाना

जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बखेड़े में वह कुंवर का मुख्य सहायक बना और संधि के बाद भी वह कुंवर के साथ रहा। इससे महाराणा उससे बहुत अप्रसन्न रहता था और उसको मरवाना चाहता था। सलूंबर का रावत कांधल (रत्नसिंह का पुत्र) महाराणा और कुंवर के बखेड़े में सदा महाराणा के पक्ष में रहा और उसपर पूर्ण विश्वास होने के कारण महाराणा ने केसरीसिंह को मारने के लिए उसे उद्यत किया। महाराणा ने केसरीसिंह को राजनगर से बुलाया और बादशाह के सम्बन्ध की सलाह की। एक दिन महाराणा ने कहा कि गोपीनाथ, केसरीसिंह और कांधल इस बात पर सलाह कर अपनी सम्मति दें। सलाह करने का स्थान थूर का तालाब नियत हुआ। कांधल और केसरीसिंह वहां पहुंचे और गोपीनाथ की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में अवसर पाकर कांधल ने अपना कटार निकालकर उसकी छाती में मारा। केसरीसिंह ने भी गिरते गिरते अपना कटार निकालकर कांधल पर वार किया। इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये।

बांसवाड़े के रावल अजबसिंह के महाराणा की आज्ञा का पालन करने में

बांसवाड़े पर चढ़ाई

टालाटूली करने के कारण महाराणा ने उसपर चढ़ाई की, नगर को तोड़ा और उससे दण्ड लेने के पश्चात् रावल को फिर वहीं स्थापित किया[3]।

---

(१) महाराणा ने रावत महासिंह और रावत गंगदास को वि० सं० १७४८ माघ बदि १३ को परवाना भेजा, जिसका अभिप्राय यह था कि यहां से राव बैरिसाल और पुरोहित रणछोड़राय को तुम्हारे पास भेजा है। ये दोनों जो कहें, वही ठीक समझना और भाला चन्द्रसेन तथा राव सबलसिंह की मार्फ़त अर्ज़ कराना। इस परवाने और पुरोहित जगन्नाथ को दिये हुए निकोड़ गांव के दानपत्र से उपर्युक्त संवत् के अन्त के आसपास सुलह होना पाया जाता है।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४५६-६०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६७३-७८। सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २८०।

(३) वंशपत्रपुरं भङ्क्त्वा जित्वा चाजबरावलम्।
तमेवास्थापयत्तत्र कृत्वा दण्डं यथाविधि ॥ १२७ ॥

अमरसिंहाभिषेक काव्य।

महाराणा जयसिंह ने उदयपुर से डेढ़ मील दूर उत्तर में देवाली गांव के पास एक तालाब बनवाया। उसका बाँध अधिक ऊंचा न होने तथा जल की आय कम होने के कारण उसका जल दक्षिण में दूर दूर तक नहीं फैल सकता था। वर्तमान महाराणा साहब ने उसका सुदृढ ऊंचा तथा नया बाँध बँधवाया और उसमें पर्याप्त जल लाने का प्रबन्ध कर अपने नाम से उसका नाम फ़तहसागर रक्खा है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। महाराणा जयसिंह ने दूसरा तालाब उदयपुर से पांच मील दूर वायव्य कोण में थूर गांव के पास बनवाया, जो थूर का तालाब कहलाता है, और इस समय टूटा हुआ है। इन तालाबों की प्रतिष्ठा वि० सं० १७४४ में हुई थी। महाराणा ने इसी वर्ष उदयपुर से ३२ मील दूर दक्षिण-पूर्व में जयसमुद्र नामक बड़े विशाल तालाब की नींव डाली। इस तालाब का संक्षिप्त वर्णन पहले लिखा जा चुका है। यहां उसके सम्बन्ध का कुछ अन्य विवेचन किया जाता है। गोमती, झामरी, रूपारेल और बगार नामक चार छोटी नदियों का जल एकत्र होकर दो पहाड़ों के बीच के ढेबर नामक नाके में होकर निकलता था, जहां बाँध बाँधने के कारण लोग उसको 'ढेबर' भी कहते हैं। इस तालाब के बनने में दस गांव डूब गये, जिनके चिह्न जल कम होने पर नज़र आते हैं। इस तालाब के कारण सलूंबर के गांवों की बहुतसी भूमि जल में आ गई, परन्तु जल कम होने पर जो ज़मीन (रूण) खेती के लायक निकल आती, उसका हासिल सलूंबरवाले लेते रहे। वि० सं० १७४८ ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६९१ ता० २२ मई) को इस तालाब की प्रतिष्ठा हुई, जिसके उपलक्ष्य में महाराणा ने सुवर्ण का तुलादान किया[१]।

महाराणा के बनवाए हुए तालाब आदि

यह चढ़ाई किस वर्ष हुई, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगा, परन्तु वि० सं० १७४४ और वि० सं० १७५५ के बीच किसी समय होनी चाहिये, क्योंकि रावल अजबसिंह वि० स० १७४४ में गद्दी पर बैठा था।

अमरसिंहाभिषेक काव्य की रचना महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के राज्याभिषेक के उत्सव के समय पल्लीवाल-जातीय व्यास हरराम के पुत्र वैकुण्ठ ने की थी। उसमें कुल १७६ श्लोक हैं। उसकी एक प्रति उदयपुरनिवासी शास्त्री शोभालाल के द्वारा हमें प्राप्त हुई। उसकी मूल प्रति एक पन्सारी की दुकान से मिली थी। उसकी दूसरी प्रति उदयपुर के राजकीय व्यास (कथाभट्ट) पंडित विष्णुराम शास्त्री के संग्रह में देखने में आई।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६६७-६८।

इस तालाब की प्रशस्ति की रचना भी की गई थी, परन्तु वह खुदवाई नहीं गई, जिससे उक्त तालाब के विषय का अधिक हाल मालूम नहीं हो सका। हमें विश्वस्त रूप से उस प्रशस्ति की मूल लिपि का पता लगा, परन्तु बहुत उद्योग करने पर भी वह न मिल सकी।

महाराणा ने जलयन्त्र (फ़ुव्वारे) तथा महल सहित कृष्णविहार नाम का बाग़ बनवाया, जहां वह अपने अन्तःपुर सहित कभी कभी विनोदार्थ जाया करता था[1]।

महाराणा के पुण्यकार्य

जयसमुद्र के बाँध के पहाड़ पर गुम्बज़दार महल भी उसने बनवाया, जिसकी मरम्मत महाराणा सज्जनसिंह ने करवाई। उसने थोड़ी दूरवाली जल में गई हुई पहाड़ी के सिर पर अपनी पंवार राणी के निमित्त ज़नाना महल बनवाया, जिसे लोग भ्रम से 'रूठी राणी' का महल कहते हैं। जयसमुद्र के विस्तार का अनुमान बाँध पर से नहीं, किन्तु इस महल पर से ही होता है। महाराणा ने सिंहस्थ में आबू की यात्रा की[2], सुवर्ण-सीर (सोने का हल) और सुवर्ण तुलादान आदि किये[3] और जयसमुद्र के बाँध पर सुन्दर खुदाई के कामवाला नर्मदेश्वर नामक शिवालय बनवाना शुरू किया, जो उसके समय पूरा न हो सका।

महाराणा की मृत्यु और सन्तति

महाराणा जयसिंह का देहान्त वि० सं० १७५५ आश्विन वदि १४ (ई० स० १६९८ ता० २३ सितम्बर) को हुआ।

जयसिंह के चार पुत्र[4]—अमरसिंह, प्रतापसिंह,[5]

---

(१) अर्थात् कृष्णविहारं यः स्वारामं नामतोपि च।
प्रासादजलायन्त्रादिवनराजिविराजितम् ॥ ८० ॥
चक्रे सान्तःपुरो यत्र खेलनं समये क्वचित्। ······॥ ८१ ॥

अमरसिंहाभिषेक काव्य।

कृष्णविहार (कृष्णविलास) वह स्थान है, जहां इस समय उदयपुर का जेलख़ाना (सेंट्रल जेल) बना हुआ है।

(२) वही; श्लोक १२८।

(३) वही; श्लोक १३१।

(४) जयसिंहसुता जाताश्चत्वारो देवसंनिभाः।····॥ ८७ ॥
अमरश्चाप्युमेदश्च प्रतापस्तखतस्तथा।····॥ ८८ ॥

अमरसिंहाभिषेक काव्य।

(५) इसके वंश में बावलास का ठिकाना है।

उम्मेदसिंह[1] और तख़्तसिंह—तथा चार कुंवरियां थीं।

महाराणा जयसिंह शान्तिप्रिय, दानी, धर्मनिष्ठ और उदार था। वह भी कुछ समय तक बादशाह औरंगज़ेब से लड़ा, परन्तु अपने पिता जैसा वीर न होने के कारण अन्त में उसने सन्धि कर ली। उसके समय राज्य में अव्यवस्था बहुत बढ़ गई और उसका अपने कुंवर अमरसिंह के साथ विरोध रहने तथा उस (महाराणा)के विलासी होने के कारण राज्य का प्रबन्ध बहुत ढीला हो गया। प्रजा में अशान्ति बढ़ गई। यदि औरंगज़ेब को दक्षिण की लड़ाइयों में न जाना पड़ता, तो वह मेवाड़ को और भी हानि पहुंचाता। यह सब होते हुए भी सार्वजनिक कार्यों की तरफ़ उसका बहुत ध्यान था। उसने बहुत बिशाल जय-समुद्र तालाब बनवाया। जयसमुद्र के अतिरिक्त उसने और भी कई तालाब, मंदिर तथा महल बनवाये। भिन्न भिन्न अवसरों पर उसने कई दान भी किये। उसका क़द छोटा, रंग गोरा, और आंखें बड़ी थीं।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा अमरसिंह (दूसरा)

महाराणा जयसिंह के देहान्त का समाचार सुनकर कुंवर अमरसिंह अपने सरदारों के साथ राजनगर से उदयपुर की ओर रवाना हुआ और वहां पहुंचने पर उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १७५५ आश्विन सुदि ४ (ई० स० १६९८ ता० २८ सितम्बर) को हुई। उसका जन्म वि० सं० १७२९ मार्गशीर्ष वदि ५ (ई० स० १६७२ ता० ३० अक्टोबर) बुधवार को सूर्योदय से ११ घड़ी २७ पल गये हुआ[2], और राज्याभिषेकोत्सव अनुमान सवा वर्ष पीछे वि० सं० १७५६ माघ सुदि ५ (ई० स० १७०० ता० १५ जनवरी) सोमवार को हुआ[3]।

---

(१) इसके वंश में कारोई का ठिकाना है।

ई० स० १९१६ की छपी हुई 'चीफ़्स एण्ड लीडिंग फ़ैमिलीज़ इन राजपूताना', पृ० २४ में कारोई और बावलासवालों का महाराणा संग्रामसिंह दूसरे के वंश में होना लिखा है, जो भ्रम ही है।

(२) प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू के यहां के हमारे पासवाले जन्मपत्रियों के संग्रह में महाराणा अमरसिंह (दूसरे) की जन्मपत्री विद्यमान है।

(३) मुन्येकाब्दशतादूर्ध्वमब्दे षट्पञ्चके परे।

माघशुक्लवसन्तस्य पञ्चम्यां विधुवासरे ॥ १७२ ॥

अमरसिंहाभिषेक काव्य।

महाराणा की गद्दीनशीनी होने पर पहले के अनुसार डूंगरपुर के रावल खुमानसिंह, बांसवाड़े के रावल अजबसिंह और देवलिये के रावत प्रतापसिंह ने उपस्थित होकर टीके का दस्तूर पेश नहीं किया, जिससे अप्रसन्न होकर महाराणा ने अपने चाचा सूरतसिंह को सेना देकर डूंगरपुर पर भेजा। इसी तरह उसने देवलिये और बांसवाड़े पर भी सेना भेजी। सोम नदी पर डूंगरपुर के कई चौहान सरदार मारे गये, खुमानसिंह भाग गया और महाराणा की सेना ने शहर को लूटा। अन्त में देवगढ़ के रावत द्वारिकादास (चूंडावत) ने बीच में पड़कर सुलह कराई। खुमानसिंह ने टीके का दस्तूर भेजा और सेना-व्यय के १७५००० रुपये की ज़मानत द्वारिकादास ने दी। रुपया लेने के लिए वहां ५० आदमियों को छोड़कर महाराणां की सेना वापस लौट आई[1]। डूंगरपुर के रावल ने औरंगज़ेब से इसकी शिकायत की और महाराणा से उसको अप्रसन्न कराने के लिए यह भी लिखा कि महाराणा ने मुझे मालपुरे पर आक्रमण करने, चित्तोड़ की मरम्मत कराने व मन्दिर बनाने में शरीक होने के लिए कहा था, परन्तु मेरे इन्कार करने से उसने मुझ पर चढ़ाई कर दी। इसी तरह देवलिया और बांसवाड़ावालों ने भी महाराणा की शिकायत की। इन बातों को सुनकर बादशाह महाराणा पर बहुत क्रुद्ध हुआ। शाही दरबार में रहे हुए महाराणा के वकीलों ने उसको कहा कि डूंगरपुर के रावल का पत्र जाली है। बादशाह ने शुजाअतखां को इसकी जांच करने की आज्ञा दी। वज़ीर असदखां ने, जो महाराणा का मित्र था, उसे (महाराणा को) यह कहलाया कि जब तक शाही टीका न पहुंच जाय, तब तक बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करे। कायस्थ केशवदास ने भी, जो बादशाह का नौकर था, महाराणा को पत्र-द्वारा इसी आशय की सम्मति दी[2]।

महाराणा का डूंगरपुर, बांसवाड़े और देवलिये पर आक्रमण करना

उक्त काव्य में यह भी लिखा है कि प्राचीन रीति के अनुसार किरात (भील) ने अभिषेक के अन्त में राजा के तिलक किया था (श्लोक १३२)।

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ७५५।

(२) वज़ीर असदखां का महाराणा अमरसिंह के नाम तारीख़ १० सफ़र सन् ४३ जुलूस (वि० सं० १७५६ श्रावण सुदि १२ = ई० स० १६९९ ता० २८ जुलाई) का पत्र, और केशवदास का हि० स० ११११ (वि० सं० १७५६ = ई० स० १६९९) का पत्र। ये

मांडल आदि परगनों से राठोड़ों को निकाल देना

महाराणा जयसिंह ने पुर, मांडल और बदनोर के तीन परगने, जज़िये के एवज़ में एक लाख रुपये देना स्वीकार कर, बादशाह से प्राप्त किये थे, परंतु रुपये न देने से ये परगने पीछे ज़ब्त हो गये, जिससे उसकी जीवित अवस्था में ही कुंवरपदे में अमरसिंह ने वे परगने ठेके पर ले लिये थे। फिर बादशाह ने वे परगने राठोड़ सुजानसिंह[1] के पुत्र जुझारसिंह और कर्ण को दे दिये। महाराणा को इनपर राठोड़ों का अधिकार रहना पसन्द न हुआ, इसलिए परस्पर विरोध खड़ा हुआ। राठोड़ जुझारसिंह का भतीजा (कृष्णसिंह का पुत्र) राजसिंह वहां रहकर मेवाड़ के राजपूतों और विशेषतः चूंडावतों से छेड़छाड़ करने लगा। उसने कई चूंडावतों को मारकर पुर के समीप पहाड़ की गुफ़ा-'अधरशिला'-में डाल दिया और वह आमेट के रावत दूलहसिंह के चार भाइयों को पकड़कर ले गया। महाराणा ने यह समाचार सुनकर देवगढ़ के रावत द्वारिकादास और मंगरोप के महाराज जसवन्तसिंह को उसपर आक्रमण करने का इशारा किया। देवगढ़ का रावत तो वहां न गया, परन्तु मंगरोप के जसवन्तसिंह ने अपने भाइयों को साथ लेकर पुर पर आक्रमण किया। राजसिंह ने भी युद्ध में सामना किया, परन्तु वह हारकर मांडल की तरफ़ भाग गया। जसवन्तसिंह ने उसका पीछा कर उसे वहां से भी निकाल दिया। इस बखेड़े में दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये।

जुझारसिंह ने यह सुनकर बादशाह को लिखा कि महाराणा सेना इकट्ठी कर शाही मुल्क पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। इसी तरह महाराणा ने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजकर लिखा कि ये राठोड़ फ़साद किया करते हैं, इसलिए इनसे परगने छीनकर पहले के अनुसार शाही ख़ालिसे में कर लिये जावें। इस तरह दोनों पक्षवालों में अनबन बनी रही और दोनों पक्ष-वाले एक-दूसरे की शिकायत बादशाह के पास पहुंचाते रहे[2]।

दोनों पत्र उदयपुर राज्य में विद्यमान हैं, और वीरविनोद; भाग २, पृ० ७३५-३६ में प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) सुजानसिंह जोधपुर के राजा उदयसिंह के पुत्र माधवसिंह का पौत्र और केसरीसिंह का पुत्र था, जिसके वंश में अजमेर ज़िले में पीसांगण, मेहरूं और जूनिया के इस्तमरारदार हैं।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ७५२-५४ और ७५७-५८।

एक वर्ष तक महाराणा के पास बादशाह की तरफ़ से फ़रमान, खिलअत आदि न आने के कारण वह बादशाह पर अत्यन्त अप्रसन्न हुआ और उसके प्रदेश को लूटने का निश्चय कर सेना इकट्ठी करने लगा। अजमेर के वकायानिगार ने बादशाह के पास खबर पहुंचाई कि महाराणा सेना एकत्र कर रहा है; मालूम नहीं, उसका क्या इरादा है? पन्द्रह हज़ार सेना के साथ महाराणा यात्रा के बहाने अपने ननिहाल बूंदी की तरफ़ चला और वहां पहुंचा। बहुत संभव है कि उसका विचार मालपुरा लूटने का हो, परन्तु बूंदी में बादशाह से विरोध न बढ़ाने की सलाह मिलने पर वह वहां से लौट आया। डूंगरपुर के रावल खुमानसिंह ने महाराणा के ससैन्य बूंदी पहुंचने की सूचना बादशाह को दी। इसपर महाराणा ने लिखा कि मैं तो बूंदी की तरफ़ सिर्फ़ तीर्थयात्रा करने के लिए गया था, जिसके उत्तर में वज़ीर असदखां ने लिखा कि तीर्थ के लिए भी बादशाह से आज्ञा लेकर जाना चाहिये था[1]।

महाराणा का शाही मुल्क को लूटने का विचार

रामपुरे का राव गोपालसिंह दक्षिण में बादशाही सेवा में था। उस समय उसके पुत्र रतनसिंह ने रामपुरे पर अपना अधिकार कर लिया। जब गोपालसिंह ने इसकी शिकायत बादशाह से की, तब रतनसिंह ने बादशाह के क्रोध से बचने और उसकी कृपा संपादन करने के लिए मुसलमान बनकर[2] अपना नाम इस्लामखां तथा रामपुरे का नाम इस्लामपुर रक्खा। बादशाह ने उसी को रामपुरे का ठिकाना दिया। इससे अप्रसन्न होकर गोपालसिंह महाराणा के पास चला आया और शाही इलाकों में लूटमार करने लगा। उसने महाराणा से सहायता मांगी। महाराणा के इशारे से मलका बाजणां के जागीरदार उदयभान शक्तावत[3] ने उसको सहायता दी।

राव गोपालसिंह का मेवाड़ में शरण लेना

(१) वज़ीर असदखां का ता० २६ रबि-उल्-अव्वल सन् ४३ जुलूस (वि० सं० १७५६ आश्विन सुदि १=ई० स० १६९९ ता० १४ सितम्बर) का महाराणा के नाम का पत्र। वीर-विनोद; भाग २, पृ० ७३७।

(२) वह सच्चे दिल से मुसलमान नहीं हुआ था; अपने स्वार्थ के लिए मुसलमानों के सामने मुसलमान और हिन्दुओं के सामने हिन्दू बनता था।

(३) शक्तावत राजसिंह सतखंधा का स्वामी था; इसके दो पुत्र, कल्याणसिंह और कीता हुए। कल्याणसिंह के वंश में पीपल्यावाले हैं। कीता के दो पुत्र, सूरसिंह और उदयभान, थे।

बादशाह ने शाहज़ादे आज़म को महाराणा की सैनिक कार्रवाई का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त किया। इस्लामखां तथा देवलिया के रावत प्रतापसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह ने मालवे के सूबेदार शायस्ताखां को कहा कि राणा अमरसिंह की सेना इस्लामपुर के इलाक़े में आ गई है। शायस्ताखां ने महाराणा के वकील बाघमल से इस विषय में पूछताछ की, जिसके उत्तर में उसने कहा कि महाराणा का विचार बादशाही प्रदेश को लूटने का नहीं है, इस्लामखां और कीर्तिसिंह ने यह झूठी शिकायत की है[1]। रतनसिंह ने महाराणा के नाम अपनी सहायता के लिए बहुत विनयपूर्ण एक लम्बा पत्र लिखा, परन्तु महाराणा ने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया[2]।

महाराणा के सेना न भेजने तथा शाही इलाक़ों में लूटमार करने का इरादा होने के कारण बादशाह उसपर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसके लिए फ़रमान तथा खिलअत न भेजा। महाराणा भी सेना भेजने में टालाटूली करता रहा। जब बादशाह को दक्षिण में सेना की आवश्यकता हुई, तब वज़ीर असदखां ने महाराणा को लिखा कि सेना भेजने पर फ़रमान और परगने मिलेंगे[3]। इसलिए महाराणा ने सेना भेजने का निश्चय किया। शाहज़ादे आज़म के एक सरदार ने महाराणा को उज्जैन के पास सेना भेजने के लिए लिखा[4]। बादशाह ने शाहज़ादे के पास महाराणा के

महाराणा का एक हज़ार सवार भेजना

शूरसिंह के वंश में विनोतावाले हैं। उदयभान को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने मलका बाजयां की अलग जागीर दी थी।

(१) वज़ीर असदख़ां का महाराणा के नाम का पत्र (वीरविनोद; भाग २, पृ० ७४१-४२;-४८)। शायस्ताख़ां की ता० ३ शाबान सन् ४७ जुलूस (वि० सं० १७६० मार्गशीर्ष सुदि ४=ई० स० १७०३ ता० १ दिसम्बर) की रिपोर्ट (वही; भाग २, पृ० ७४८)। टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६३।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७६०-६१।

(३) वज़ीर असदख़ां का ता० १० रमज़ान सन् ४४ जुलूस, (वि० सं० १७५६ फाल्गुन सुदि ११ = ई० स० १७०० ता० १६ फ़रवरी) का महाराणा के नाम का पत्र (वीरविनोद; भाग २, पृ० ७४१)।

(४) सरवाणिया (अब ग्वालियर राज्य में) के बाबा मुहकमसिंह के नाम के महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के वि० सं० १७५७ कार्तिक सुदि ३ (ई० स० १७०० ता० २ नवम्बर) के परवाने से पाया जाता है कि आज़मशाह के पास दक्षिण में भेजी जानेवाली सेना नौलाई (बड़नगर) में एकत्र हो रही थी, जिसमें शामिल होने की आज्ञा मुहकमसिंह को दी गई थी।

लिए टीके का सामान और फ़रमान, जड़ाऊ जमधर, घोड़ा व हाथी भेज दिया[1], परन्तु किसी कारणवश वह सामान महाराणा के पास न भेजा गया। वि० सं० १७५६ (ई० स० १७०२) में महाराणा ने मालवे में शाहज़ादे के पास सेना भेज दी। यद्यपि सवार एक हज़ार से बहुत कम थे, तो भी ज़ुल्फ़िक़ारख़ां ने एक हज़ार सवारों की रसीद लिख दी[2], जिसके बदले में महाराणा को सिरोही और आबूगढ़ की जागीर देने की आज्ञा शायस्ताख़ां ने दी और इसकी सूचना वहां के मुसलमान फ़ौजदारों को भी दे दी गई। महाराणा ने सिर्फ़ सिरोही से सन्तुष्ट न होकर पुर, मांडल और बदनोर तथा दूसरे कई परगने, जो पहले मेवाड़ में थे, देने के लिए भी अर्ज़ी भेजकर बादशाह को लिखा कि सिरोही का परगना केवल एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपये) का है, बाकी दो करोड़ दाम (पांच लाख रुपये) की एवज़ में मुझे और परगने मिलने चाहियें[3]।

सिरोही का इलाक़ा महाराणा के नाम लिखा तो गया, परन्तु उसपर अधिकार नहीं हुआ। सिरोही के देवड़े महाराणा के अधीन नहीं होना चाहते थे। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह ने भी उनकी सहायता की, क्योंकि वह उदयपुर छोड़ने के बाद कई वर्ष तक सिरोही राज्य में रहा था। इस बात से महाराणा और अजीतसिंह के बीच में कुछ मनमुटाव हो गया, परन्तु कुछ समय बाद स्वयं अजीतसिंह ने सविनाखेड़े के गोसाई हरनाथगिरि के चेले नीलकण्ठ-गिरि के द्वारा महाराणा से मेल करना चाहा, जैसा कि महाराजा के उक्त गोसाईं के नाम लिखे हुए पत्रों से पाया जाता है[4]। महाराजा को जोधपुर प्राप्त करने के लिए महाराणा की सहायता आवश्यक थी।

(१) महाराणा के नाम किसी बादशाही नौकर का २६ सफ़र सन् ४४ जुलूस (वि० सं० १७५७ भाद्रपद सुदि १ = ई० स० १७०० ता० ४ अगस्त) का पत्र (वीरविनोद; भाग २, पृ० ७४५-४६)।

(२) ज़ुल्फ़िक़ारख़ां का महाराणा के नाम १२ रबि-उल्-अव्वल सन् ४८ जुलूस (वि० सं० १७६१ आषाढ़ सुदि १३=ई० स० १७०४ ता० ४ जुलाई) का पत्र (वीर-विनोद; भाग २, पृ० ७५१-५२)।

(३) शायस्ताख़ां की ता० ७ ज़िल्काद सन् जुलूस ४७ (वि० सं० १७६० चैत्र सुदि ७= ई० स० १७०३ ता० १४ मार्च) की याददाश्त (वीरविनोद; भाग २, पृ० ७४६ और महाराणा अमरसिंह के पत्र की नक़ल—वही; भाग २, पृ० ७५०-५१)।

(४) वही; भाग २, पृ० ७६४-६५।

ता० २८ ज़िलकाद हि० स० १११८ (वि० सं० १७६३ फाल्गुन वदि १४=ई० स० १७०७ ता० २१ फ़रवरी) को अहमदनगर से दो मील उत्तर-पूर्व में बादशाह औरंगज़ेब का देहान्त हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु के साथ ही साथ मुग़लों का विशाल साम्राज्य भी खण्ड खण्ड होकर जर्जरित हो गया। औरंगज़ेब की हिन्दू-विद्वेषिणी नीति ने चारों तरफ़ हिन्दुओं को उत्तेजित कर दिया। उसके राज्य के अन्तिम दिनों मरहटे, राजपूत आदि स्वतंत्र होना चाहते थे। मरहटों के साथ के दीर्घकाल के युद्ध ने उसके सारे कोष और सैन्यशक्ति को समाप्त कर दिया था, यहां तक कि बहुतसे सैनिक वेतन न पाने से सेना को छोड़ने लगे। उसके निरन्तर युद्धों ने देश के शासन, सभ्यता, आर्थिक जीवन, सैनिक-शक्ति और सामाजिक स्थिति को नष्ट-प्राय कर दिया। देश में खेती और व्यापार का ह्रास हो गया। सारांश यह कि अकबर-द्वारा स्थापित और जहांगीर तथा शाहजहां-द्वारा दृढ़ किया हुआ मुग़ल साम्राज्य औरंगज़ेब के धर्म-द्वेष के कारण उसके शासन-काल में ही जर्जरित हो गया और मुग़लों की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई।

बादशाह औरंगज़ेब का देहान्त और देश की स्थिति

बादशाह औरंगज़ेब के मरने के समय शाहज़ादा मुअज़्ज़म काबुल में था, जहां उसने बादशाह का पद धारण किया और वहां से वह आगरे की तरफ़ चला। उसका छोटा भाई आज़म भी, जो उस समय दक्षिण में था, अपने को बादशाह प्रकट कर ससैन्य आगरे की तरफ़ बढ़ा। धौलपुर और आगरे के बीच में जजाओ के निकट दोनों भाइयों में लड़ाई हुई, जिसमें आज़म मारा गया और शाह आलम बहादुरशाह के नाम से मुअज़्ज़म मुग़ल साम्राज्य का स्वामी हुआ। उक्त दोनों भाइयों के बखेड़े में महाराणा अमरसिंह मुअज़्ज़म के पक्ष में रहा और उसके गद्दी बैठने पर उसने अपने भाई बख़्तसिंह[1] (? तख़्तसिंह) को बधाई का पत्र, १०० मोहरें, १००० रुपये, सुनहरी ज़ीनवाले दो घोड़े, एक हाथी और नौ तलवारें

महाराणा का शाहज़ादे मुअज़्ज़म का पक्ष लेना

(१) फ़ारसी तवारीख़ों में महाराणा के भाई का नाम बख़्तसिंह लिखा मिलता है, जो अशुद्ध है। शुद्ध नाम तख़्तसिंह था। फ़ारसी वर्णमाला के दोष के कारण उस लिपि में लिखे हुए पुरुषों और स्थानों के नामों में ऐसी अनेक अशुद्धियां पाई जाती हैं।

देकर उसके पास भेजा। शाहज़ादा जहांदारशाह उसको शाही दरबार में ले गया, जहां उसने सब चीज़ें बादशाह को भेट कीं[1]।

फिर जब विद्रोही कामबख़्श को सज़ा देने के लिए बादशाह आगरे से आंबेर और मेड़ते होता हुआ अजमेर की तरफ़ चला, तब मार्ग में महाराणा के भाई बख़्तसिंह (? तख़्तसिंह) ने ग्यारह सरदारों सहित बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर एक जड़ाऊ खंजर तथा ५००० रुपये नज़र किये। बादशाह ने महाराणा के लिए एक हाथी और तसल्ली का फ़रमान भेजा। फिर उन सबको खिलअ़तें देकर विदा किया[2]। जब बादशाह अजमेर से चित्तोड़ के रास्ते मालवे को चला तो महाराणा ने अपने प्रतिनिधि-द्वारा २७ मोहरें नज़र कराईं[3]।

महाराजा अजीतसिंह भी बादशाह की मृत्यु का समाचार सुनकर तीन दिन पीछे जोधपुर पर चढ़ा और जफ़रकुलीख़ां को वहां से निकालकर उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। सारी मुग़ल सेना अपना सामान छोड़कर भाग गई, उसके कई एक सैनिक मारे गये और बहुतसे क़ैद किये गये। फिर जोधपुर का क़िला गंगाजल और तुलसीदल से पवित्र किया गया[4],

महाराजा अजीतसिंह और जयसिंह का महाराणा के पास आना

(१) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जिल्द १, पृ० ४५-४६ (प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार-द्वारा सम्पादित)।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि बादशाह और राणा में परस्पर एक गुप्त संधि हुई, जिसकी शर्तें नीचे लिखे अनुसार थीं—

१—चित्तोड़ को उसी स्थिति में रक्खा जाय, जैसा कि शाहजहां के समय में था।

२—गो-वध बन्द कर दिया जाय।

३—शाहजहां के समय में जो ज़िले मेवाड़ के अधीन थे, वे सब पीछे मेवाड़ को सौंप दिये जावें।

४—अकबर के समय की सी धर्मसम्बन्धी स्वतंत्रता दी जाय।

५—जिस किसी को एक पक्ष निकाल दे, उसे दूसरा पक्ष सहायता न दे।

६—दक्षिण में राणा की जो सेना रहती थी, वह अब न रहे (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६०-६१); परन्तु हमें न तो कहीं अन्यत्र उसका उल्लेख मिला, और न मूल संधिपत्र या उसकी नक़ल हमारे देखने में आई।

(२) बहादुरशाहनामा; पृ० ६६-७४। इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ४६।

(३) वही; जि० १, पृ० ४६।

(४) सरकार; औरंगज़ेब; जि० ५, पृ० २६२।

परन्तु उसने बादशाह के पास अपना कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा, जिससे बहादुर-शाह ने उसपर नाराज़ होकर मेहराबख़ां को भेजकर जोधपुर पर पीछा अधिकार कर लिया[1]।

शाहज़ादा मुअज़्ज़म और शाहज़ादा आज़म जब राज्य के लिए परस्पर लड़े, उस समय जयपुर का महाराजा सवाई जयसिंह आज़म के साथ रहा था और उसका छोटा भाई विजयसिंह मुअज़्ज़म के। बहादुरशाह ने उसका बदला लेने के लिए ता० २८ दिसम्बर ई० स० १७०७ (वि० सं० १७६४ माघ वदि १) को जयपुर की ओर प्रस्थान किया। वहां जाकर उसने आंबेर को ख़ालसे कर विजयसिंह को वहां का राजा बनाया। वहां से वह (बहादुरशाह) जोधपुर की ओर चला और ता० २१ फ़रवरी ई० स० १७०८ (वि० सं० १७६४ फाल्गुन सुदि १२) को मेड़ते पहुंचा। महाराजा अजीतसिंह भी ख़ानज़मां के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह को कामबख़्श का विद्रोह शान्त करने के लिए शीघ्र जाना था, इसलिए उसने महाराजा को प्रसन्न करने के विचार से ख़िलअत तथा महाराजा का खिताब, साढ़े तीन हज़ारी ज़ात और तीन हज़ार सवार का मन्सब दिया, परन्तु जोधपुर का राज्य नहीं दिया। उसके कुंवरों को भी बादशाह ने मन्सब दिया। इसके बाद वह विद्रोही कामबख़्श का दमन करने के लिए दक्षिण को चला। राठोड़ दुर्गादास सहित महाराजा अजीतसिंह और सवाई जयसिंह भी अपने राज्य पाने की आशा में बादशाह के साथ ही रहे। वे दोनों इस आशा में मण्डेश्वर, (मण्डलेश्वर, नर्मदा के तट पर) तक बादशाह के साथ रहे, परन्तु जब देखा कि राज्य मिलने की कोई आशा नहीं है और उनपर बादशाह की तरफ़ से निगरानी की जाती है, तब उसे बिना सूचना दिये ही अपने डेरे-डंडे वहीं छोड़कर वे उदयपुर की ओर चले[2] और उन्होंने महाराणा को अपने आने की सूचना दी। महाराणा अमरसिंह वि० सं० १७६५ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १७०८ ता० २६ अप्रेल) को उदयपुर से जाकर उदयसागर की पाल पर ठहरा। दूसरे दिन वह उनके स्वागत के लिए गाडवा गांव तक गया, जहां महाराजा अजीतसिंह, जयसिंह, दुर्गादास और मुकुन्ददास भी पहुंचे।

---

(१) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ४६।

(२) वही; जि० १, पृ० ४६-५० और ६७।

महाराणा पहले अजीतसिंह से मिला, फिर जयसिंह के पास गया। उसने महाराणा के चरण छुए और महाराणा ने उसे छाती से लगाकर कहा कि आप लोगों के आने से मैं पावन हो गया[1]। फिर महाराणा दुर्गादास और मुकुन्ददास से मिला; वहां से शाम को सब उदयपुर पहुंचे। महाराजा अजीतसिंह कृष्णविलास में और जयसिंह सर्वर्तुविलास में ठहराये गये।

महाराणा अमरसिंह के पास अजीतसिंह और जयसिंह के आने की ख़बर पाकर शाहज़ादे मुइज़ुद्दीन जहांदारशाह ने महाराणा के पास ता० १४ सफ़र सन् २ जुलूस (वि० सं० १७६५ ज्येष्ठ वदि १=ई० स० १७०८ ता० २४ अप्रेल) को एक निशान[2] भेजकर लिखा—"अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास जागीर और तनख़्वाह न मिलने के कारण भाग गये हैं। तुम्हें चाहिये कि उन्हें अपने पास नौकर न रक्खो और उन्हें समझा दो कि वे बादशाह के पास अर्ज़ियां भेजें, मैं उनके अपराध क्षमा करा दूंगा और जागीरें भी दिलवा दूंगा"। महाराणा ने उनसे मुआफ़ी की अर्ज़ियां लिखवाकर शाहज़ादे के द्वारा बादशाह के पास भिजवा दीं और उन्हें उदयपुर में ही रक्खा[3]।

महाराणा की कुंवरी का राजा जयसिंह के साथ विवाह होना

महाराणा ने वि० सं० १७६५ आषाढ़ वदि २ (ई० स० १७०८ ता० २५ मई) को अपनी पुत्री चन्द्रकुंवरी का विवाह राजा जयसिंह के साथ किया। इस विवाह के प्रसंग में इन तीनों राजाओं के बीच एक अहदनामा लिखा गया, जिसकी शर्तें निम्नलिखित हैं—

उदयपुर की राजपुत्री सब राणियों में मुख्य समझी जाय, चाहे वह छोटी ही हो।
उदयपुर की राजपुत्री का पुत्र ही युवराज माना जाय।

---

(१) अमर रान अति मोद करि, मिट्यो सनमुख आय।
कूरम तँहँ जयसिंह कहु, चरनन हत्थ चलाय ॥ १२ ॥
पकरि हत्थ हिय लाय तब, कहिय रान अमरेस ॥
भूपति मैं पावन भयो, आवन दुँहुँन असेस ॥ १३ ॥
(वंशभास्कर; पृ० ३०११)।

(२) यह निशान उदयपुर राज्य में विद्यमान है।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७६६-७० और ७७२-७४।

यदि उदयपुर की राजकुमारी से कन्या उत्पन्न हो, तो उसका विवाह मुसलमानों के साथ न किया जाय[1]।

उदयपुर से सम्बन्ध जोड़ने में गौरव समझने और महाराणा की सहायता प्राप्त करने के लिए दोनों राजाओं ने इसपर हस्ताक्षर किये। यह अहदनामा महाराणा के लिए भले ही विशेष गौरव का सूचक माना जाय, तो भी राजपूताने के लिए तो अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुआ; क्योंकि इससे ज्येष्ठ पुत्र को, यदि वह दूसरी राणी से हो, तो अपना राज्याधिकार छोड़ना पड़ता था, जो राजपूतों की रीति और नीति के सर्वथा विरुद्ध था। इसी विवाह के परिणाम-स्वरूप राजा जयसिंह का देहान्त होते ही जयपुर और उदयपुर में परस्पर युद्ध ठन गया और राजपूताने पर मरहटों का प्रभाव बढ़ता गया, जिससे अंत में वह उनके पैरों तले कुचला गया, जिसका वर्णन आगे प्रसंग प्रसंग पर किया जायगा।

जब तक वे राजा उदयपुर में रहे, महाराणा ने उन्हें बड़े स्नेह से रक्खा और अन्त में तीनों ने मिलकर यह स्थिर किया कि अब बादशाह से जोधपुर और जयपुर के राज्यों के मिलने की आशा छोड़कर अपने बाहुबल से ही उन्हें अपने हस्तगत कर लेना चाहिये। इस विचार के अनुसार महाराणा ने अपने दो अधिकारियों की अध्यक्षता में कुछ सेना उन राजाओं के साथ कर उनको विदा किया[2]। इन तीनों राज्यों के सम्मिलित सैन्य ने जोधपुर की ओर प्रयाण किया और उसे जा घेरा। राठोड़ दुर्गादास के बीच में पड़ने से जोधपुर का बादशाही फ़ौजदार मेहराबख़ां कुछ शर्तों पर जोधपुर छोड़कर चला गया[3]।

महाराणा का अजीतसिंह और जयसिंह को सहायता देना

उधर दीवान रामचन्द्र और श्यामसिंह कछवाहा वग़ैरह ने आंबेर से शाही थानेदार हुसैनख़ां को निकाल दिया। इस विषय में शाहज़ादा जहांदारशाह ने महाराणा के नाम ता० २७ रबि-उस्सानी सन् २ जुलूस (वि० सं० १७६५ श्रावण वदि १४ = ई० स० १७०८ ता० ५ जुलाई) को इस आशय का एक निशान भेजा कि अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास की अर्ज़ियां समेत तुम्हारी अर्ज़ी

(१) वही; भाग २, पृ० ७७१। टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६५। वंशभास्कर; पृ० ३०१७-१८।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७७४-७५।

(३) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ६७।

पहुंची, जो हमने बादशाह को नज़र कर दी। हमारी यह इच्छा थी कि इन लोगों के अपराध क्षमा किये जावें, लेकिन इन दिनों अजमेर के सूबेदार शुजाअतखां से मालूम हुआ कि रामचन्द्र आदि जयसिंह के सेवकों ने सैयद हुसैनखां आदि बादशाही नौकरों से लड़ाई की। उन्हें यह हरगिज़ उचित नहीं था कि हमारा उत्तर पहुंचने तक ऐसा निन्दित कार्य करें। यह बहुत बुरी कार्रवाई हुई, इसलिए कुछ समय तक हमने इन अपराधों की मुआफ़ी स्थगित रक्खी है। इनको समझा दो कि अब भी हाथ खेंच लें, रामचन्द्र को निकाल दें और इसके लिए यहां अर्ज़ी भेजें। इसके उत्तर में महाराणा ने लिखा कि आपकी आज्ञा के अनुसार महाराजा जयसिंह को लिख दिया गया है, परंतु वास्तविक बात यह है कि अपने देश की जागीर पाये बिना इन्हें सन्तोष न होगा। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दुस्तान में बड़ा फ़साद उठेगा, इसलिए आप की हितैषिता एवं उपद्रव दूर करने के विचार से आप इन्हें अपने देश में जागीर दिला देवें। इसी आशय का एक पत्र महाराणा ने नवाब आसफ़ुद्दौला को भी लिखा[1]।

सम्मिलित सैन्य ने जोधपुर से आगे बढ़कर आंबेर पर चढ़ाई की और उसपर अधिकार कर लिया, जिसका समाचार बादशाह को ई० स० १७०८ ता० २१ अगस्त (वि० सं० १७६५ आश्विन बदि १) को मिला[2]। इस प्रकार दोनों राज्यों पर उन राजाओं का फिर से अधिकार हो गया।

पुर, मांडल आदि परगनों पर अधिकार करना

वि० सं० १७६६ (ई० स० १७०६) में महाराणा ने राठोड़ ठाकुर जसवन्तसिंह[3] की अध्यक्षता में सेना भेजकर पुर, मांडल आदि परगनों पर चढ़ाई की। बादशाही अफ़सर फ़ीरोज़खां के साथ लड़ाई हुई जिसमें उसे बड़ी भारी हानि के साथ भागना पड़ा, परन्तु जसवन्तसिंह वीरता से लड़ता हुआ मारा गया[4] और उन परगनों पर महाराणा का अधिकार हो गया।

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७७५-७८।

(२) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ६६।

(३) प्रसिद्ध राठोड़ राव जयमल का वंशज और बदनोर के ठाकुर सांवलदास का पुत्र।

(४) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ७०।

जब बादशाह दक्षिण की लड़ाइयों में कामबख़्श को परास्त कर वापस लौटा, तब महाराणा ने इस विचार से कि बादशाह अजीतसिंह तथा जयसिंह

बादशाह का दक्षिण से लौटना

आदि को सहायता देने और पुर, मांडलादि पर अधिकार कर लेने के कारण मुझपर ज़रूर अप्रसन्न हुआ होगा, सेना एकत्र कर पहाड़ों में जाने का विचार किया। बादशाह को यह मालूम होने पर वज़ीर असदख़ां ने महाराणा को ता० ७ मुहर्रम सन् २ जुलूस (वि० सं० १७६५ चैत्र सुदि ८ = ई० स० १७०८ ता० १८ मार्च) को लिखा कि पहले तसल्ली का फ़रमान भेजा जा चुका है; इसलिए ख़तरे की कोई बात नहीं, अपने स्थान पर सानन्द और निर्भय होकर रहो। बादशाह को सिक्खों का विद्रोह दमन करने के लिए शीघ्र पंजाब जाना था, इसलिए उसने महाराणा को उपर्युक्त तसल्ली का ख़त लिखवाकर भिजवाया और स्वयं पूर्व निश्चित चित्तोड़ के मार्ग को छोड़कर मुकन्दरा के घाटे से हाड़ौती में होता हुआ लौट गया[1]।

इन दिनों महाराणा को सेना के व्यय के लिए रुपये की बहुत आवश्यकता हुई। उसने मेवाड़ के जागीरदारों, खालसेवालों तथा शासनिकों (पुण्यार्थ

महाराणा का अपनी प्रजा से धन लेना

ज़मीन पानेवालों) से रुपया वसूल करना चाहा। खालसे की प्रजा, जागीरदारों और अहलकारों ने तो रुपये दे दिये, परंतु ब्राह्मणों, चारणों व भाटों ने रुपया देने से इन्कार किया। जब महाराणा ने उनपर ज्यादा दबाव डाला, तब उनके हज़ारों आदमियों ने आकर धरना दिया। महाराणा भी काले कपड़े पहनकर बाड़ी महल के झरोखे में आ बैठा और उसने कहा कि मैं ज़रूर रुपये वसूल करूंगा। इसपर महाराणा के पुरोहित ने ब्राह्मणों के बदले छः लाख रुपये और खेमपुर के गोरखदास दधिवाड़िये ने चारणों के एवज़ तीन लाख रुपये अपने घर से दे दिये और

कर्नल टॉड ने इस लड़ाई में बदनोर के ठाकुर सांवलदास का मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि राव सांवलदास का देहान्त वि० सं० १७४३ के कार्तिक और १७४४ के ज्येष्ठ के बीच में किसी समय होना सांवलदास और जसवन्तसिंह के नाम के पत्रादि से पाया जाता है। टॉड और वीरविनोद में इस घटना का बादशाह के मरते ही होना लिखा है, परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों के आधार पर इरविन ने इस घटना का ई० स० १७०९ (वि० स० १७६६) में होना माना है।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७८०-८१।

अपनी जातिवालों से दोनों ने कहा कि महाराणा ने तुम्हें छोड़ दिया है। यह सुनकर भाट और भी क्रुद्ध हुए। महाराणा से किसी ने कहा कि भाटों के बिस्तरों में मिठाई और रोटियें विद्यमान हैं। इसपर महाराणा ने उनपर हाथी छुड़वा दिया, जिसके डर से वे सब बिस्तर छोड़कर भाग गये। उनके बिस्तरों में रोटियां और मिठाई मिली। इसपर वे शहर से बाहर निकाल दिये गये; तब वे सब इकट्ठे होकर एकलिंगपुरी को चले। महाराणा ने चीरवे का घाटा रोक लिया। तब उदयपुर से उत्तर की ओर ५ मील दूर आंबेरी की बावड़ी के पास दो हज़ार भाटों ने आत्महत्या कर ली। उनके अधिकार में जो ८४ गांव थे, वे महाराणा ने छीन लिये[1]।

अब देश में शान्ति स्थापित हो गई थी, मुसलमानों का अधिक डर नहीं रहा था। देश में शासन, सुव्यवस्था और प्रबन्ध की आवश्यकता थी। महाराणा ने सब सरदारों के दर्जों का विभाग-सोलह (प्रथम श्रेणी के) और बत्तीस (द्वितीय श्रेणी के)-नियत कर उनकी जागीरें निश्चित कर दीं[2] और जागीरों के नियम बनाकर उन्हें स्थिर कर दिया; परगनों का प्रबन्ध, दरबार का तरीक़ा, सरदारों की बैठक और सीख के दस्तूर क़ायम किये; नौकरी, छटूंद, जागीर आदि के निरीक्षण के नियम बनाये। दफ़्तर और कारखानों की सुव्यवस्था की गई। सरदारों की तलवारबन्दी के नियम भी बने। अपने नाम के खरीते, परवाने और खास रुक्के लिखने का क़ायदा, जो पहले से चला आता था, उसे उसने सुव्यवस्थित किया[3]। अमरशाही पगड़ी, जो अबतक खास खास प्रसंग पर पहनी जाती है, उक्त महाराणा की योजना है।

महाराणा का शासन-सुधार

अमरसिंह ने अन्य महाराणाओं की तरह महल आदि बनाने की तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया; उसने केवल सफ़ेद पत्थर का शिवप्रसन्न अमरविलास नामक

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७७६।

(२) महाराणा अमरसिंह की बादशाह से सुलह होने के पश्चात् सरदारों की जागीरें कभी कभी बदली भी जाती थीं, परन्तु इस प्रथा में प्रजा की हानि देखकर महाराणा अमरसिंह ने जागीरों का बदलना बन्द कर दिया।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७८० और ७८९-९०।

महाराणा के बनवाये हुए महल आदि

एक महल बनवाया, जो इस समय 'बाड़ी महल' के नाम से प्रसिद्ध है। बड़ी पोल के दोनों ओर के दालान, घड़ि-याल और नकारखाने की छत्री भी इसी ने बनवाई[1]।

महाराणा का देहान्त और सन्तति

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का देहान्त[2] वि० सं० १७६७ पौष सुदि १ (ई० स० १७१० ता० १० दिसम्बर) को हुआ। महाराणा के केवल एक कुंवर—संग्रामसिंह—और एक पुत्री चन्द्र-कुंवरी हुई।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा अमरसिंह (दूसरा) वीर, प्रबंधकुशल और विलासी प्रकृति का था। यद्यपि उसके गद्दी बैठने के समय मेवाड़ की स्थिति विशेष अच्छी नहीं थी, तथापि वह बादशाह से समय समय पर विरोध करता ही रहा और अजीतसिंह तथा जयसिंह को अपने यहां रखकर उन्हें सहायता दी। इसके अतिरिक्त उसने मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति को भी सुधारने का स्तुत्य प्रयत्न किया। उसने सरदारों की जागीर और दर्जे स्थिर कर नियम बना दिए। परगनों का प्रबन्ध, दरबार का तरीका, सरदारों की बैठक और सीख के नियम तथा अन्य उपयोगी नियम बनाकर मेवाड़ के राज्यप्रबन्ध को ठीक कर दिया। जब तक उसके बनाये हुए नियम मेवाड़ में स्थिर रहे, तब तक राज्य में शान्ति बनी रही।

वह विद्वानों का सम्मान भी करता था[3]। अच्छे गुणों के होते हुए भी उसने मेवाड़ के राजवंश में शराब का प्रचलन आरंभ किया, जिसका बुरा प्रभाव दिन दिन बढ़ता गया। इसी तरह उसने कुंवरपदे में अपने पिता से विद्रोह कर बदनामी उठाई, परन्तु उसके पिछले सुधार के कार्यों से वह मेवाड़ में एक प्रसिद्ध प्रबन्धकर्ता माना गया। उसका क़द मंझोला, रंग गेहुंआ, आंखें बड़ी और स्वभाव कुछ तेज़ था।

---

(१) वीरविनोद; भाग २ पृ० ७६० ।

(२) महाराणा का देहान्त होने से कुछ ही समय पूर्व बादशाह ने उसके लिए फ़रमान और टीके का दस्तूर भेजा था, परन्तु उसकी मृत्यु का समाचार सुनने पर वे पीछे मंगवा लिये गये।

(३) महाराणा अमरसिंह दूसरे के सम्बन्ध का 'अमरनृपकाव्यरत्न' नामक काव्य पंडित

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा)

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का जन्म वि० सं० १७३७ प्रथम वैशाख वदि ६ (ई० स० १६६० ता० २१ मार्च) शुक्रवार, मूलनक्षत्र की रात्रि को १० घड़ी १५ पल गये हुआ था[1]। राज्याभिषेक वि० सं० १७६७ पौष सुदि १ (ई० स० १७१० ता० १० दिसम्बर) और राज्याभिषेकोत्सव वि० सं० १७६७ (चैत्रादि १७६८) ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १७११ ता० २६ अप्रेल) गुरुवार को हुआ[2]। इस उत्सव के समय जयपुर का महाराजा सवाई जयसिंह भी उपस्थित था।

औरंगज़ेब के मरने के बाद महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने पुर, मांडल आदि परगनों पर अधिकार कर लिया था और उनके फरमान मंगाने का उद्योग भी

हरिदेवसूरी के पुत्र पं० मङ्गल ने बनाया। यह भी ऐतिहासिक न होकर अधिकतर कविकल्पनामात्र है। इस काव्य के अन्त में कवि ने अपना परिचय निम्नलिखित श्लोक में दिया है—

विप्राणां द्युमणिर्गुणाम्बुनिकरो धर्मैककर्ता विभुः
साहित्याम्बुनिधिस्तथाश्रित····कृपासंयुतः ।
वेदान्तागमपारगो निपुणधीस्तर्केषु सर्वेष्वसौ
सूरिश्रीहरिदेवजो विजयते मंत्रांशुमान्मंगलः ॥

इति श्रीभूखण्डाखण्डलसकलनृपवन्दनीयपादपीठश्रीमज्जयसिंहदेवात्मज-श्रीमन्महाराजाधिराजमहाराणामरसिंहनृपप्रबन्धे विद्वज्जनानुचरमङ्गलकृतौ काव्यरत्ने चतुर्थः सर्गः समाप्ति पफाण ।

महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के राज्याभिषेक-सम्बन्धी भी एक काव्य पल्लीवाल जाति के पंडित वैकुण्ठ व्यास ने लिखा, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

(१) मूल जन्मपत्री से

(२) मुन्यङ्गसप्तेन्दुयुताब्दशुक्रमासेऽसिते नागतिथौ गुरौ च ।
पट्टाभिषेकोत्सवसन्मुहूर्ते संग्रामसिंहस्य शुभं तदासीत् ॥ ५० ॥

वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति।

प्रशस्ति में वि० सं० १७६७ दिया है, जो श्रावणादि होने के कारण चैत्रादि १७६८ होता है, जिसमें ज्येष्ठ वदि ५ को गुरुवार था।

बादशाह का पुर, मांडल आदि परगने रणबाज़-खां को देना

हो रहा था, परन्तु वज़ीर मुनीमख़ां ख़ानख़ाना के, जो हिन्दू राजाओं का मददगार था, मरने पर उसके स्थान पर असदख़ां[1] (वकील मुतलक़) का पुत्र ज़ुल्फ़िक़ारख़ां वज़ीर बना। हिन्दू राजाओं का विरोधी होने के कारण उसने शाहज़ादे अज़ीमुश्शान के विरोध करने पर भी पुर मांडल वग़ैरह परगने मेवाती रणबाज़ख़ां को और मांडलगढ़ का परगना नागोर के राव इन्द्रसिंह को जागीर में दिला दिया। अज़ीमुश्शान ने मेवाड़ के वकील को इशारा किया कि परगनों पर उनका अधिकार हरगिज़ मत होने दो, जिसकी सूचना उसने महाराणा को दे दी। नागोर का राव इन्द्रसिंह तो जानता ही था कि ये परगने पहले राठोड़ जुझार-सिंह और कर्णसिंह को दिये गये थे, परन्तु वे वहां अधिक समय तक न रह सके। इसलिए उसने तो जागीर लेने से इन्कार कर दिया। शाहज़ादा मुइज़्ज़ुद्दीन और वज़ीर ज़ुल्फ़िक़ारख़ां के उत्साहित करने से रणबाज़ख़ां शाही सेना की सहायता लेकर उन परगनों पर अधिकार करने के लिए चला। उसके रवाना होने की ख़बर पाते ही महाराणा ने अपने सरदारों को एकत्र कर उनकी सलाह ली। उन्होंने एक मत से लड़ने की सलाह दी, जिसपर महाराणा ने अपनी सेना लड़ाई के लिए भेज दी। इस सेना में नीचे लिखे हुए सरदार आदि थे-

रावत माहव (महासिंह सारंगदेवोत, बाठरड़े का), रावत देवभान (कोठारिये का), सूरजसिंह राठोड़ (लीमाड़े के अमरसिंह का पुत्र), सांगा द्वारावत (देवगढ़ का), देवीसिंह मेघावत[2] (बेगूं का), रावत विक्रमसिंह, रावत सूरतसिंह(रावत

(१) असदख़ां पहले वज़ीर था, परन्तु पीछे से वज़ीर से भी ऊंचे पद 'वक़ील मुतलक़' पर नियुक्त हो गया था।

(२) ऐसी प्रसिद्धि है कि बेगूं का रावत देवीसिंह किसी कारण से युद्ध में न जा सका, इसलिए उसने अपने कोठारी भीमसी महाजन की अध्यक्षता में अपना सैन्य भेजा। राजपूत सरदारों ने उपहास के तौर पर उसे कहा-'कोठारीजी ! यहां आटा नहीं तोलना है'। उत्तर में कोठारी ने कहा—'मैं दोनों हाथों से आटा तोलूं, उस वक़्त देखना'। युद्ध के प्रारंभ में ही उसने घोड़े की बाग कमर से बाँध ली और दोनों हाथों में तलवार लेकर कहा कि सरदारों ! अब मेरा आटा तोलना देखो। इतना कहते ही वह मेवातियों पर अपना घोड़ा दौड़ाकर दोनों हाथों से प्रहार करता हुआ आगे बढ़ा और बड़ी वीरतापूर्वक लड़कर मारा गया। उसके लड़ने के विषय का एक प्राचीन गीत हमें मिला है, जिससे पाया जाता है कि उसने कई शत्रुओं को मारकर वीर-गति प्राप्त की और अपना तथा अपने स्वामी का नाम उज्ज्वल किया।

महासिंह का भाई), रावत मोहनसिंह मानावत, डोडिया हठीसिंह (नवलसिंहोत), पीथल शक्तावत, रावत गंगदास[1] (बानसी का), सूरजमल सोलंकी (रूपनगर का), सज्जा कड़तल (झाला, देलवाड़े का), मधुकर शक्तावत, सामन्तसिंह (सलूंबर के रावत केसरीसिंह का भाई), दौलतसिंह चूंडावत (दौलतगढ़वालों का पूर्वज), रावत पृथ्वीसिंह दूलावत (आमेट का), राठोड़ जयसिंह (बदनोर का), दलपत का पुत्र भारतसिंह (शाहपुरे का), जसकरण कानावत, महता सांवलदास, कान्ह कायस्थ (छीतरोत), राणावत संग्रामसिंह (संबलावत, खैराबाद का[2]) और राठोड़ साहबसिंह (रूपाहेलीवालों का पूर्वज) आदि।

महाराणा की सेना हुरड़ा में ठहरी और रणबाजखां अजमेर से आगे बढ़कर खारी नदी के तट तक पहुंचा, तो राजपूत भी खारी नदी को पारकर उसको हटाते हुए आगे बढ़े और बांधनवाड़े के निकट दोनों सेनाओं में घमसान युद्ध हुआ। दोनों पक्षवाले इस युद्ध में दिल खोलकर लड़े। अन्त में राजपूतों की विजय हुई और रणबाजखां अपने भाई नाहरखां तथा अन्य भाई बेटों सहित मारा गया। दीनदारखां (दिलेरखां) घायल होकर बची-खुची सेना के साथ अजमेर लौटा। उस सेना का सामान मेवाड़ के सरदारों ने लूट लिया[3]। इस युद्ध में रावत

---

(१) यह प्रसिद्धि है कि बानसी का रावत गंगदास इस विचार से अलग जाकर ठहर गया कि जब दोनों पक्षवाले लड़कर थक जायँगे उस समय मैं अपने सैन्य सहित शत्रु पर टूट पड़ूंगा; तो विजय मेरे नाम पर अंकित हो जायगी, परन्तु जब वह लड़ने को चला तो मार्ग भूल गया और उसके पहुंचने के पहले ही युद्ध समाप्त हो चुका था, जिसका उसको पश्चात्ताप हुआ। इस विषय में एक कवि ने कहा—

माहव तो रण में मरै, गंग मरै घर आय।

आशय—माहव (महासिंह) तो युद्ध में मरा और गंगदास को युद्ध में मरने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ, जिससे वह घर में ही मरा।

(२) यह नामावली आशिया मानसिंह-रचित 'माहवजसप्रकास' डिंगल भाषा के रूपक ग्रन्थ से उद्धृत की गई है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति वि० सं० १८६८ की आशिया गोरादान के हाथ की लिखी हुई हमें प्राप्त हुई।

(३) बन्दीमिवोद्गृह्य जयश्रियन्ते म्लेच्छाधिपेभ्योऽथ नृपस्य योधाः।
न्यवर्तयन्नाशु रणप्रदेशादुद्धृत्य सर्वं शिविरादिकं यत्॥ ६१॥

वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति।

रावत महासिंह (सारंगदेवोत)

महासिंह[1] और ठाकुर दौलतसिंह मारे गये तथा राठोड़ जयसिंह, सामन्तसिंह, कुंवर नाहरसिंह (महासिंह का पुत्र), रावत सूरतसिंह आदि अनेक घायल हुए।

रणबाजखां किसके हाथ से मारा गया, इसपर बहुत कुछ मतभेद है, क्योंकि भिन्न भिन्न सरदार अपने अपने पूर्वजों को इस यश के भागी बतलाते हैं। बदनोरवालों का कथन है कि जयसिंह ने उसको मारा और उसकी ढाल, तलवार[2] और नकारा छीन लिया, जो अब तक बदनोर में विद्यमान है। इसके प्रमाण में वे उसी समय के कवि का कहा हुआ एक दोहा भी बतलाते हैं[3]।

कानोड़वालों का कहना है कि रावत महासिंह के हाथ से रणबाज़खां मारा गया। वे भी प्रमाण में इस विषय के कुछ सोरठे पेश करते हैं[4]। इसी तरह बम्बोरा, शाहपुरा और देवगढ़वाले अपने अपने पूर्वजों को इसका यश देते हैं[5], परन्तु जिस वर्ष यह लड़ाई हुई उसी वर्ष के बने हुए 'माहवजसप्रकास' नामक रूपक में महासिंह के हाथ से उसका मारा जाना कई जगह लिखा है[6], जो अधिक विश्वास के योग्य है। महाराणा ने इस घटना के उपलक्ष्य में उसके पुत्र सारंगदेव को बाठरड़े की एवज़ कानोड़ की बड़ी जागीर दी और उसके भाई सूरतसिंह को बाठरड़े की। यदि दूसरे किसी सरदार के हाथ से वह मारा गया होता, तो

---

(१) रावत महासिंह का स्मारक बांधनवाड़े से क़रीब डेढ़ मील दूर बना हुआ है, जिसके प्रति वहां के आस-पास के लोग बड़ी भावना रखते हैं और वहां आकर उसका पूजन करते तथा चढ़ावा चढ़ाते हैं। कानोड़ तथा अन्य ठिकानों की तरफ़ से उसके पुजारी को कुछ भूमि भी मिली हुई है।

(२) इस ढाल के ऊपर के हिस्से में चार खण्डों में अली की प्रशंसा है और भीतर के चार खण्डों में अली, अबूबक्र, हसन और हुसेन की प्रशंसा फ़ारसी लिपि में लिखी गई है। ऊपर और नीचे के किनारे के वृत्त में ईश्वर की महिमा का वर्णन है।

यह तलवार ख़ासी लम्बी है और इसकी मूंठ तथा म्यान पर सुनहरी काम बना हुआ है

(३) *रण मार्यो रणबाजखां, यूँ आखे संसार।*
तिण माथे जैसिंघ दे, तैं वाही तरवार॥

(४) *तें वाही इकधार, मुगलांरे सिर माहवा।*
धज वड हन्दी धार, सात कोस लग सीसवद॥

(५) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६३८-४२।

(६) माहवजसप्रकास; पृ० २०-२४ (हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति)।

उस सरदार को अवश्य कोई बड़ी जागीर या बड़ा इनाम मिलता, परन्तु ऐसा कोई प्रमाण हमको नहीं मिला; अलबत्ता मेड़तियों के कुलगुरु की बही में हमने महाराणा संग्रामसिंह के संवत् १७६७ (चैत्रादि १७६८) ज्येष्ठ सुदि २ (ई० स० १७११ ता० ८ मई) के परवाने की नक़ल देखी, जिसमें महाराणा की तरफ़ से ठाकुर जयसिंह के पास एक हाथी और सिरोपाव भेजे जाने का उल्लेख अवश्य है, परन्तु यह कोई ऐसा बड़ा इनाम नहीं है जिससे यह माना जाय कि उसी ने रणबाज़ख़ां को मारा हो। इसी विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने सामन्तसिंह को बम्बोरे की जागीर दी। यह लड़ाई वि० सं० १७६८ वैशाख सुदि ७ शनिवार (ई० स० १७११ ता० १४ अप्रैल) को हुई[1]। यह ख़बर अजमेर के वाकयानवीस ने बादशाह के पास पहुंचाई, जिसपर महाराणा के टीके का दस्तूर, जो तैयार हो चुका था, रोक दिया गया[2]।

बहादुरशाह अनुमान पौने पांच वर्ष राज्य कर मर गया। उसके शासनकाल में मुग़ल साम्राज्य की अवस्था और भी अवनत हो गई। उसके पीछे जहांदारशाह गद्दी पर बैठा, जिसे मारकर उसका भतीजा मुहम्मद फ़र्रुख़सियर ता० २३ ज़िलहिज्ज हि० स० ११२४ (वि० सं० १७६९ माघ वदि १० = ई० स० १७१३ ता० १० जनवरी) को सैयद बन्धुओं की सहायता से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उस समय सय्यद बन्धुओं ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उदयपुर से अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया और मेवाड़ के वकील बिहारीदास पंचोली की बादशाह के दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा रही। सैय्यद बन्धुओं ने हिन्दू राजाओं को अपना सहायक बनाने के लिए बादशाह से कहकर जज़िया उठवा दिया, परन्तु इनायतुल्ला के हाथ, जो मक्के से हज कर

फ़र्रुख़सियर का जज़िया लगाना

(१) महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की गद्दीनशीनी वि० सं० १७६७ पौष सुदि १ को हुई, जिसके कुछ ही महीनों पीछे यह लड़ाई हुई। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा के भेजे हुए परवानों में सबसे पहला वि० सं० १७६८ ज्येष्ठ सुदि २ का मेड़तियों के कुलगुरु की बही में देखने में आया। इससे स्पष्ट है कि यह लड़ाई ज्येष्ठ सुदि २ से पूर्व हुई होगी। माहवजसप्रकास में महासिंह का वि० सं० १७६८ सप्तमी शनिवार को मारा जाना लिखा है। चैत्रादि वि० सं० १७६८ में ज्येष्ठ सुदि २ के पूर्व शनिवार-युक्त सप्तमी केवल एक ही दिन पड़ती है, जो वैशाख सुदि सप्तमी है। अतएव यह लड़ाई वि० सं० १७६८ वैशाख सुदि ७ को हुई होगी।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ९४२।

लौटा था, वहां के शरीफ़ (हाकिम) ने बादशाह के पास एक पत्र भेजा, जिसमें उसने हदीस (धर्मग्रन्थ) के अनुसार हिन्दुओं पर जज़िया लगाने के लिए ज़ोर दिया था। बादशाह ने सय्यदों के विरोध करने पर भी फिर जज़िया जारी किया और एक फ़रमान अपने हाथ से लिखकर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के पास भेजा, जिसमें लिखा कि हमने प्रजा की भलाई के लिए जज़िया माफ़ कर दिया था, परन्तु शरअ के अनुसार मक्का के शरीफ़ की अर्ज़ी (जज़िया लगाने की) स्वीकार की गई और इस बात की सूचना अपने दोस्त उत्तम राजा (महाराणा) को दी जाती है[1]। लेकिन महाराणा ने इस फ़रमान की कुछ परवाह न की।

इस आज्ञा से फिर हिन्दुस्तान में फ़साद की बुनियाद क़ायम हुई और अन्त में फ़र्रुख़सियर के क़ैद होकर मारे जाने पर जब रफ़ीउद्दरजात बादशाह बनाया गया, तब महाराजा अजीतसिंह, कोटा के महाराव भीमसिंह और सय्यद अब्दुल्लाख़ां आदि की सलाह से उसने जज़िया मुआफ़ कर दिया[2]।

मालवे के मुसलमानों से लड़ाई

मालवे की तरफ़ के पठानों ने मन्दसोर ज़िले के कई गांवों को लूटा और बहुतसे लोगों को क़ैद कर लिया। यह ख़बर पाते ही महाराणा ने अपने सरदारों को उनसे लड़ने के लिए भेजा। कानोड़ का रावत सारंगदेव तथा उसका कुंवर अपने राजपूतों सहित उनसे जा मिले। बड़ी लड़ाई के बाद मुसलमान परास्त होकर भागे, परन्तु इस लड़ाई में सारंगदेव बुरी तरह से घायल हुआ[3] और उसका पुत्र भी ज़ख़्मी हुआ। जब कुंवर महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ, तो महाराणा ने इन पिता-पुत्रों की उत्तम सेवा के उपलक्ष्य में अपने हाथ से उसको बीड़ा देकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई[4]।

(१) यह फ़रमान उदयपुर राज्य में विद्यमान है। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२४-२५।

(२) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० १, पृ० ४०४।

(३) कर्नल टॉड ने मुसलमानों के साथ की इस लड़ाई में कानोड़ के रावत का मारा जाना माना है, जो ठीक नहीं है। वह तो वि० सं० १७९३ (ई० स० १७३६) में, अर्थात् महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के स्वर्गवास से तीन वर्ष पीछे, मरा था। एक ख्यात में इस लड़ाई का मरहटों के साथ होना लिखा है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक मरहटों का मालवे में प्रवेश भी नहीं हुआ था।

(४) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४८०-८१।

रामपुरे के राव गोपालसिंह को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने उसके पुत्र रतनसिंह (इस्लामखां) के विरुद्ध सहायता दी थी । जब रतनसिंह मालवे के सूबेदार अमानतखां के साथ की सारंगपुर के पास की लड़ाई में मारा गया, तब गोपालसिंह ने महाराणा की सहायता से रामपुरे पर कब्ज़ा कर लिया। महाराणा ने रामपुरे का कुछ हिस्सा उसे देकर बाक़ी का इलाक़ा अपने राज्य में मिला लिया, जिसका फ़रमान बिहारीदास पंचोली ने बादशाह फ़र्रुख़सियर से प्राप्त किया। इससे बिहारीदास की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और वह दीवान बनाया गया। गोपालसिंह, उसके पोते संग्रामसिंह तथा उसके सरदारों ने महाराणा को वि० सं० १७७४ भाद्रपद सुदि २ (ई० स० १७१७ ता० २७ अगस्त) को एक इक़रारनामा लिख दिया, जिसमें महाराणा की अधीनता और दूसरे सरदारों की तरह नौकरी करना स्वीकार किया[1]। इस प्रकार रामपुरे का इलाक़ा, जो अकबर के समय से मेवाड़ से अलग हो गया था, फिर मेवाड़ में मिल गया।

रामपुरे का महाराणा के हाथ में आना

महाराजा अजीतसिंह के जोधपुर पर अधिकार करने के बाद दुर्गादास भी उसके साथ वहीं रहने लगा। उस(दुर्गादास)की सच्ची स्वामिभक्ति, वीरता तथा राज्य की उत्तम सेवा के कारण उसकी प्रतिष्ठा राठोड़ सरदारों तथा अन्य राजाओं आदि में बहुत कुछ बढ़ी हुई थी, जिसको सहन न कर महाराजा अजीतसिंह ने बुरे लोगों की बहकावट में आकर अपने और अपने राज्य के रक्षक दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया[2], जिससे महाराजा की बड़ी बदनामी हुई[3]। वह वहां से महाराणा

राठोड़ दुर्गादास का महाराणा की सेवा में आना

यह लड़ाई किस वर्ष हुई, यह अनिश्चित है, परंतु वि० सं० १७७४ से पूर्व इसका होना अनुमान किया जा सकता है।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६२७–६१।

(२) टॉ; रा; जि० २, पृ० १०३३-३४।

(३) महाराज अजमालरी, जद पारख जाणी।
दुर्गो देशां काढ़ियो, गोलां गांगाणी॥

प्राचीन पद्य।

आशय–महाराज अजमाल (अजीतसिंह) की परीक्षा तो तब हुई, जब कि उसने दुर्गा (दुर्गादास) को देश से निकाल दिया और गोलों को गांगाणी जैसी जागीर दी।

की सेवा में आ रहा। महाराणा ने उसे विजयपुर की जागीर और १५००० रुपये मासिक देकर अपने पास बड़े सम्मान के साथ रक्खा और पीछे से उसको रामपुरे का हाकिम नियत किया[1]। वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ५ और ६ (ई० स० १७१७ ता० १३-१४ अक्टोबर) के रामपुरे से लिखे हुए दुर्गादास के पत्र विद्यमान हैं। उक्त समय के पीछे उसका देहान्त वहीं हुआ जिससे उसकी दाह-क्रिया क्षिप्रा नदी के तट पर हुई[2]।

ईडर का मेवाड़ में मिलना

जब महाराजा अजीतसिंह को उसके ज्येष्ठ कुंवर अभयसिंह के लिखने से बख़्तसिंह ने मार डाला और अभयसिंह जोधपुर का राजा हुआ, तब उसके इस कृत्य से बहुतसे सरदार अप्रसन्न होकर उसके भाई अनन्दसिंह और रायसिंह से जा मिले। उन दोनों भाइयों ने उनकी सहायता से सोजत आदि परगनों पर अधिकार कर लिया और वे मुल्क को लूटने लगे[3]। जब उनपर फ़ौजकशी हुई, तो उन्होंने जाकर ईडर पर अधिकार कर लिया, जो बादशाह ने अभयसिंह को दिया था। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) ईडर को अपने अधिकार में करना चाहता था, इसलिए उसने महाराजा जयसिंह की मार्फ़त ईडर को ठेके पर लेना चाहा। जयसिंह ने महाराजा अभयसिंह को सलाह दी कि यह परगना बादशाह की तरफ़ से आपको मिला है, परन्तु अनन्दसिंह और रायसिंह वहां रहकर मारवाड़ को लूटते हैं, इसलिए आप महाराणा को यह

(१) टॉ; रा; जि० २, पृ० १०३४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६२। विजयपुर की जागीर के संबन्ध का हाल बिहारीदास पंचोली के नाम लिखे हुए दुर्गादास के वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ६ के ख़त से पाया जाता है, जो वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६३-६४ में प्रकाशित हो चुका है। रामपुरे में रहते समय दुर्गादास ने वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ५ को महाराणा के नाम की अर्ज़ी में लिखा है कि आपने मुझे रामपुरे पर नियत किया है सो अब आप इस ज़िले के लिए निश्चिन्त रहियेगा (वीरविनोद; भाग २, पृष्ठ ९६२)।

(२) टॉ; रा; जि० २, पृ० १०३४।

अण घर याही रीत, दुर्गो सफरां दागियो।

प्राचीन पद्य।

आशय—इस घराने (जोधपुर राज्य) की ऐसी ही रीति है कि दुर्गादास का दाह भी सफरां (क्षिप्रा) नदी पर हुआ (मारवाड में नहीं)।

(३) मारवाड़ की ख्यात; जि० २, पृ० १२४। वीर-विनोद भाग २, पृ० ९६७।

परगना दे दें तो वे उनको मार डालेंगे। अभयसिंह ने वि० सं० १७८४ (ई० स० १७२७) में उन दोनों भाइयों के मारने की शर्त पर यह परगना महाराणा को दे दिया[1], जिसपर महाराणा ने भींडर के महाराज शक्तावत जैतसिंह की अध्यक्षता में ईडर पर सेना भेजी। अनन्दसिंह और रायसिंह उसकी शरण में आ गये और ईडर पर महाराणा का अधिकार हो गया। महाराज जैतसिंह उन दोनों भाइयों को लेकर महाराणा के पास उपस्थित हुआ, तो महाराणा ने शर्त के अनुसार उनको न मरवाकर ईडर का कुछ इलाक़ा उनको दिया और शेष मेवाड़ में मिला लिया[2]।

माधवसिंह को रामपुरे का परगना मिलना

महाराणा अमरसिंह दूसरे की पुत्री चन्द्रकुंवरी का विवाह महाराजा जयसिंह से इस शर्त पर हुआ था कि यदि उससे कोई पुत्र उत्पन्न होगा, तो वही जयपुर राज्य का स्वामी होगा। वि० सं० १७८४ (ई० स० १७२७) में उससे माधवसिंह पैदा हुआ। उससे पूर्व महाराजा के दो पुत्र-शिवसिंह और ईश्वरीसिंह-उत्पन्न हो चुके थे, इसलिए माधवसिंह के पैदा होने पर इस बात की चिन्ता हुई कि उसको राज्य दिया जाय तो मेरे राज्य में बखेड़ा खड़ा हो जायगा। यदि उसे राज्य न दिया जाय तो उदयपुर से विरोध होगा तथा दूसरी रियासतें भी उदयपुर की सहायक हो जायँगी और राज्य बरबाद हो जायगा। इस बखेड़े की जड़ को उखाड़ने की इच्छा से उसने माधवसिंह को मरवाने का उद्योग किया, परंतु उसमें सफलता न हुई। तब महाराजा ने उदयपुर आकर महाराणा से माधवसिंह को रामपुरे की जागीर दिलाने का उद्योग किया और धायभाई नगराज की मार्फ़त महाराणा को कहलाया कि रामपुरे का बादशाही परगना आपने छीन लिया है, यदि आप वह परगना अपने भानजे को दे दें तो अच्छा होगा, परन्तु पंचोली बिहारीदास ने उसका विरोध किया, जिसपर जयसिंह ने उसके घर जाकर उसको समझाया कि हमारे घर का बखेड़ा मिटाना आपके हाथ है, इसलिए आप इस काम में मेरी सहायता करें। महाराणा ने जयसिंह का लिहाज़

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६७-६८। अभयसिंह का महाराणा के नाम लिखा हुआ वि० सं० १७८५ आषाढ़ वदि ७ का पत्र (वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६९)।

(२) वही; भाग २, पृ० ९६९–७२।

कर[1] रामपुरा माधवसिंह को देना स्वीकार कर लिया और उसके नाम वि० सं० १७८५ (चैत्रादि १७८६) चैत्र सुदि ७ (ई० स० १७२६ ता० २६ मार्च) को एक परवाना लिख दिया, जिसका आशय यह था कि तुम्हें एक हज़ार सवार और एक हज़ार बन्दूकों से साल में छः महीने तक सेवा में रहना होगा और लड़ाई के समय तीन हज़ार सवार तथा तीन हज़ार बन्दूकों से। महाराजा जयसिंह ने कुंवर के नाम से उसकी स्वीकृति लिखकर उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद चन्द्रकुंवरी और माधवसिंह उदयपुर चले आये और महाराजा ईश्वरीसिंह की मृत्यु तक वहीं रहे[2]।

महाराणा का मरहटों से मेल-मिलाप

दिल्ली राज्य की अवनति और मरहटों की उन्नति को देखकर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने मरहटों से अपना मेलजोल बढ़ाने के लिए पीपलिया के शक्तावत बाघसिंह के पुत्र जयसिंह को अपने वकील के तौर छत्रपति शाहू के पास भेजा। शाहू भी मेवाड़ का वंशधर होने के कारण उसके प्रतिनिधि का बहुत सम्मान करता और उसे काका कहता था[3]।

महाराणा के बनवाये हुए महल आदि

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने नाहरमगरे (उदयपुर से १६ मील) के महल, उदयसागर के पास की पहाड़ी में शिकार का मकान, उदयपुर के महलों में चीनी की चित्रशाली (जिसकी दीवारों में पोर्चुगीज़ों की बनाई हुई रंगीन चीनी ईंटें लगी हुई हैं), जगमन्दिर में

---

(१) वंशभास्कर में लिखा है—महाराजा जयसिंह ने उदयपुर आकर महाराणा के साथ बहुत स्नेहयुक्त बर्ताव किया और कहा कि अपने १६ सरदारों के समान मुझे अपना सरदार मानिये। उसने अपने हाथों से महाराणा पर चँवर उड़ाया। एक दिन महाराणा ने कहा कि रामपुरे का राव संग्रामसिंह हमारी आज्ञा नहीं मानता। यह सुनते ही महाराजा ने कहा कि रामपुरा मुझे दे दीजिये, मैं सहर्ष आपकी सेवा करने को तैयार हूं और साथ ही रामपुरे का मुजरा भी किया। इसपर उसके लिहाज़ से महाराणा को रामपुरा उसे देना ही पड़ा (पृ० ३१०८–१०, छन्द ८–१६); परन्तु यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि रामपुरे का परगना महाराणा ने महाराजा को नहीं, किन्तु अपने भानजे माधवसिंह को दिया था, जैसा कि महाराणा के परवाने और महाराजा के दस्तख़तवाले माधवसिंह के इक़रारनामे से पाया जाता है।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ९७३–७७।

(३) वंशभास्कर; पृ० ३२२२–२३, छन्द ४५–४६।

नहर के महल व दोनों दरीखाने, महासती में अपने पिता के दाहस्थान पर विशाल छत्री, सहेलियों की बाड़ी, त्रिपोलिया और अगड़ आदि बनवाये[1]।

महाराणा ने दक्षिणामूर्ति नामक ब्रह्मचारी के कहने पर पीछोला तालाब के पूर्व की ओर दक्षिणामूर्ति शिवालय और देलवाड़े की हवेली के पास शीतला माता का मन्दिर[2] बनवाया। इसी तरह मातृभक्त महाराणा ने अपनी माता देवकुंवरी (बेदला के राव सबलसिंह की पुत्री) के कथनानुसार उदयपुर से पश्चिम पीछोला तालाब के निकट सीसारमा गांव में वैद्यनाथ का विशाल मंदिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि॰ सं॰ १७७२ माघ सुदि १४ गुरुवार (ई॰ स॰ १७१६ ता॰ २६ जनवरी) को हुई[3]। इस अवसर पर राजमाता ने चांदी की चौथी तुला की[4] और प्रतिष्ठा-समारोह में लाखों रुपये व्यय हुए। इस अवसर पर कोटाधीश भीमसिंह[5] और डूंगरपुर का रावल रामसिंह आदि अन्य

महाराणा के पुण्यकार्य

(१) अगड़ हाथियों के लड़ने के स्थान के मध्य में खड़ी की हुई आड़ को कहते हैं। दिल्ली में त्रिपोलिया बनने के बाद और जगह त्रिपोलिया बनवाने तथा बादशाह के सिवाय अन्य राजाओं को अगड़ पर हाथी लड़ाने की मनाई थी। इसलिए इन दोनों बातों की स्वीकृति बिहारीदास पञ्चोली बादशाह से ले आया (वीरविनोद; भाग २, पृ॰ ९९९-९६)। इस समय रावत सारंगदेव (कानोड़ का) बिहारीदास के साथ था, जैसा कि उसके नाम के वि॰ सं॰ १७७२ आषाढ़ सुदि ७ के महाराणा के परवाने से पाया जाता है।

(२) कुंवर जगत्सिंह को शीतला निकली, जिससे वह मन्दिर बनवाया गया था।

(३) संवद्भुजाब्धिमुनिचन्द्रयुताब्दमाघे
शुक्ले विशाखतिथियुग्गुरुवासरे च।
श्री वैद्यनाथशिवसद्मभवां प्रतिष्ठां
देवी चकार किल देवकुमारिकाख्या ॥ १८ ॥

वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रशस्ति; प्रकरण ५।

(४) वही; प्रकरण ५, श्लोक ११। इसके पूर्व राजमाता चांदी की तीन तुलाएं कर चुकी थी।

(५) प्रासादवैवाह्यविधिं दिदृक्षुः
कोटाधिपो भीमनृपोऽभ्यगच्छत्।
रथाश्वपत्तिद्विपनद्धसैन्यो
दिल्लीशसम्मानितबाहुवीर्यः ॥ १५ ॥

वही; प्रकरण ५।

राजा भी उपस्थित हुए थे[1]।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा) अपने पूर्व पुरुषों के समान बड़ा दानी था। उसने दक्षिणामूर्ति नामक दक्षिणी विद्वान् ब्रह्मचारी को एक गांव और सिरोपाव, अपनी राजसभा के वैद्य मंगल को एक गांव, काशीनिवासी शंभु के पुत्र पण्डित दिनकर को वि० सं० १७७० (ई०स० १७१३) में सोना और घोड़े सहित एक गांव, चन्द्रग्रहण के दिन पंडित पुण्डरीक भट्ट को घोड़े सहित गांव तथा यज्ञ के लिए १०००० रुपये, ब्राह्मण देवराम को एक पालकी तथा गांव, ज्योतिषी कमलाकांत भट्ट को तिलपर्वत सहित एक गांव और एकलिंगजी के मन्दिर को हाथी, घोड़े आदि भेट किये[2]। इसी तरह ऋषभदेव (केसरियानाथ) के मन्दिर के भोग के लिए एक गांव दिया[3]।

कविया करणीदान के गीतों से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे लाख पशाव (लक्षप्रसाद) दिया[4]। उसने अपनी माता को मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थों की यात्रा भी कराई[5]। उसने सोने की तीन तुलाएं कीं[6] और जगदीश के मंदिर का,

---

(१) यो डूंगराख्यस्य पुरस्य नाथो
दिदृक्षया रावलरामसिंहः ।
सोऽप्यागमत्तत्र समग्रसैन्यो
देशान्तरस्था अपि चान्यभूपाः ॥ १६ ॥

वैद्यनाथ की प्रशस्ति; प्रकरण ५ ।

(२) वही; तृतीय प्रकरण ।

(३) ऋषभदेव के द्वार के बाहर खड़े हुए दाहिनी तरफ़ के शिलालेख में इस बात का उल्लेख है । उक्त लेख में उक्त गांव के ताम्रपत्र का भी उल्लेख है, परन्तु वह हमें देखने को न मिल सका ।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ९६६ ।

(५) वही; भाग २, पृ० ९६५ ।

(६) हेम्नस्तुलानां त्रितयस्य कर्ता
संग्रामसिंहो वसुधैकभर्त्ता ।
बभूव सर्वार्तिहरः प्रजानां
त्रिनेत्रसेवारसिकोऽन्व····यः ॥ २२ ॥

(राजराजेश्वर के मन्दिर की प्रशस्ति)

जिसका कुछ अंश औरंगज़ेब के समय तोड़ गया था, जीर्णोद्धार कराया[1]।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय के ६ शिलालेख व ताम्रपत्र हमारे देखने में आये, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

महाराणा के समय के शिलालेख आदि

१—ऋषभदेव (केसरियानाथ) के मन्दिर की दिगम्बर सम्प्रदाय की वासुपूज्य की मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ वि० सं० १७६८ मार्गशीर्ष सुदि १ का लेख। उसमें उक्त मूर्ति के बनानेवालों का वंश-परिचय है।

२—उसी मन्दिर की दूसरी दिगम्बर जैनमूर्ति के आसन पर खुदा हुआ उपर्युक्त तिथि का लेख।

३—उदयपुर के दक्षिणामूर्ति नामक शिवालय के दरवाज़े के सामने खुदा हुआ वि० सं० १७७० चैत्र सुदि १५ का लेख। उसमें उक्त मन्दिर के बनाये जाने का वर्णन है।

४—श्रावणादि वि० सं० १७७० (चैत्रादि १७७१) द्वितीय आषाढ़ सुदि १२ मंगलवार का दानपत्र। उसमें दिनकर भट्ट को कोयाखेड़ी गांव दान करने का उल्लेख है।

५—बेदला गांव की सुरतान बावड़ी का लेख। उसमें वि० सं० १७७४ वैशाख सुदि १५ (रविवार) स्वाति नक्षत्र के दिन उक्त बावड़ी की प्रतिष्ठा होने का उल्लेख है। यह बावड़ी बेदला के चौहान सबलसिंह के पुत्र राव सुरतानसिंह ने बनवाई थी।

६—सीसारमा गांव के वैद्यनाथ मन्दिर की वि० सं० १७७५ (चैत्रादि १७७६) ज्येष्ठ वदि ३ की प्रशस्ति। यह प्रशस्ति १३६ श्लोकों के ५ प्रकरणों में समाप्त हुई है और दो बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदी हुई है। इसमें राणा राहप से महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) तक का संक्षिप्त परिचय, राजमाता के द्वारा उक्त मन्दिर के

---

(१) निरन्तरं त्र्यम्बकपादपद्म-
पूजाफलावाप्तसमस्तकामः।
देवालयस्योद्धरणाय बुद्धिं
चक्रे जगन्नाथसुरेश्वरस्य ॥ २३ ॥

राजराजेश्वर के मंदिर की वि० सं० १८१६ (चैत्रादि १८२०) वैशाख सुदि ८ की प्रशस्ति की हस्तलिखित प्रति से।

बनने और उसकी प्रतिष्ठा के उत्सव के अतिरिक्त राजमाता के पिता के वंश का वर्णन आदि बहुतसी बातें हैं[1]।

महाराणा का देहान्त और सन्तति

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का देहान्त वि० सं० १७६० माघ वदि ३ (ई० स० १७३४ ता० ११ जनवरी) को हुआ। उसकी १६ राणियों से चार पुत्र—जगत्सिंह, नाथसिंह[2], बाघसिंह और अर्जुनसिंह[3]—तथा तीन पुत्रियां, सर्वकुंवर, रूपकुंवर और ब्रजकुंवर[4], हुईं।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा संग्रामसिंह वीर, प्रबन्धकुशल, धर्मनिष्ठ, मातृभक्त[5], बुद्धिमान्, सावधान और योग्य शासक था। उसने अपने राज्य का कितना एक गया हुआ प्रदेश फिर अपने अधिकार में कर लिया। अमरसिंह (दूसरे) के बनाए हुए नियमों का विधिवत् पालन कर उसने राज्य को सुव्यवस्थित कर दिया। उसने प्रत्येक सीगे के लिए आयव्यय निश्चित कर पहले की अन्धाधुन्धी को रोक दिया[6]। राज्य के कर्मचारियों,

---

(१) ऊपर लिखे हुए शिलालेखादि के अतिरिक्त उपर्युक्त (केसरियानाथ के मंदिर के बाहरवाला) शिलालेख भी उक्त महाराणा से सम्बन्ध रखता है।

(२) नाथसिंह को बागोर की जागीर मिली, जो इस समय ज़ब्त है। उसके वंश में उदयपुर राज्य में नेतावल और पीलाधर के द्वितीय श्रेणी के सरदार और जयपुर राज्य में गैणोली और भजेड़ा के ठिकाने हैं।

(३) बाघसिंह के वंश में करजाली और अर्जुनसिंह के वंश में शिवरती का ठिकाना है।

(४) इसका विवाह कोटे के महाराव दुर्जनसाल के साथ वि० सं० १७६१ में हुआ था।

(५) महाराणा प्रतिदिन अपनी माता के दर्शन को जाता था, परन्तु वह अपने राज्यप्रबन्ध में अपनी माता की सिफ़ारिश को भी पसन्द नहीं करता था। एक दिन माता ने किसी को जागीर दिलाने का आग्रह किया, जिसको उसने बहुत ही बुरा माना। वहां से लौटने के पश्चात् माता की इच्छानुसार उसने जागीर का पट्टा लिखकर उसके पास भेज दिया, परन्तु उस दिन से अपनी माता के पास जाना छोड़ दिया (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४७८-७६)।

(६) इसके विषय में दो कथाएं प्रसिद्ध हैं। एक दिन कोठारिये के रावत ने महाराणा के जामे का घेर कम होने से बढ़ाने की प्रार्थना की। महाराणा ने उसकी बात स्वीकार कर उक्त रावत की जागीर के दो गांवों पर अधिकार कर लिया। जब उसने इसका कारण पूछा तो महाराणा ने उत्तर दिया कि मेरे प्रत्येक सीगे का आयव्यय निश्चित है। जामे का बढ़ा हुआ ख़र्च पूरा करने के लिए तुम्हारे दो गांव लेने पड़े हैं। इसी तरह एक दिन सरदारों के साथ भोजन करते समय दही के साथ शक्कर न होने से उसने रसोड़े के दारोगे को बुरा-भला कहा, जिसपर उसने

उमरावों और सरदारों पर उसका बहुत रोब था। कोई उसकी आज्ञा के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता था[1]। उसे अपने देश की रक्षा का भी बहुत ध्यान था। वह विद्वानों एवं अपने सरदारों का आदर करता था। उसके सम्बन्ध में कर्नल टॉड ने लिखा है—"उसका राज्यकाल उसके लिए सम्मानप्रद और उसकी प्रजा के लिए लाभदायक था, जिसकी रक्षा के लिए वह लड़ाइयां भी लड़ा था। उसकी राजनीति बहुत ही नियमित थी। यदि वह अपने वंश के पुराने विचारों को छोड़कर मुग़लों के गिरते हुए राज्य से लाभ उठाता, तो उसके राज्य को विशेष लाभ पहुंचता। जैसे वह अपनी प्रजा का प्रीतिपात्र था, वैसे ही बाहरवाले उसका सम्मान करते थे। वह अपनी प्रजा

निवेदन किया कि शकर के लिए जो गांव नियत था, वह तो आपने दूसरों को दे दिया, अब शक्कर का ख़र्च किस गांव की आय से चलाया जाय। इसपर महाराणा ने कहा, तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। फिर उसने दही में शकर मिलाए बिना ही भोजन किया (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४७८)।

(१) सलूंबर के रावत के सम्बन्ध में किसी ने महाराणा के दिल में झूठा शक पैदा करा दिया था। जब रावत मालवे के पठानों पर विजय प्राप्त कर लौटा, उस समय उसने अपने परिवार से मिलने की आज्ञा मांगी, जो महाराणा ने दे दी। जब उसने सलूंबर को प्रस्थान किया, तब महाराणा ने उसकी स्वामिभक्ति की परीक्षा के लिए एक चोबदार को भेजकर कहलाया कि महाराणा ने अभी आपको वापस बुलाया है। चोबदार रावत से पहले ही सलूंबर पहुंच गया और ज्योंही रावत अपने गढ़ के दरवाज़े पर पहुंचा, तो चोबदार ने उसे महाराणा की आज्ञा सुनाई, जिसपर माता, स्त्री आदि से मिले बिना ही वह अपने घोड़े पर सवार होकर तत्क्षण उदयपुर को चला। महाराणा को उसकी स्वामिभक्ति पर पूर्ण विश्वास था, और वह यह भी जानता था कि उसकी हवेली में कोई न होगा और न उसके लिए भोजन आदि का प्रबन्ध होगा। अतएव मध्य रात्रि में उसके नक्कारे की आवाज सुनते ही महाराणा ने उसके और उसके साथियों के लिए तय्यार करवाया हुआ भोजन उसको हवेली पर पहुंचा दिया। दूसरे दिन जब वह दरबार में उपस्थित हुआ, तो महाराणा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ; इतना ही नहीं, किन्तु उसे घोड़ा और रत्नाभरण के अतिरिक्त भूमि भी प्रदान की, जिससे उसे आश्चर्य हुआ और उसने निवेदन किया कि मैंने कौनसी ऐसी सेवा बजाई है, जिसके लिए मुझे यह सम्मान दिया जाता है। फिर चूंडा के वंशधर होने के विचार से उसने उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर कहा कि यदि आपकी सेवा के लिए मुझे अपना सिर भी देना पड़ता, तो भी उसके लिए यह इनाम बहुत अधिक है। यदि आप स्वीकार करें तो मेरी केवल यही अर्ज़ है कि जब मैं और मेरे वंशज हज़ूर की आज्ञा से सलूंबर से यहां आवें, उस समय आपकी पाकशाला से इतना ही भोजन आया करे। महाराणा ने यह प्रार्थना भी स्वीकृत की और उसका पालन होता रहा (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४८१-८२)।

की भलाई और उसकी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए सदा सावधान रहता था। बापा रावल की गद्दी का गौरव बना रखनेवाला वह अन्तिम राजा हुआ। उसके मरने के पीछे मरहटों का ज़ोर बढ़ा"[1]।

महाराणा का क़द छोटा, रंग गेहुवां और बदन भरा हुआ था।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४८२।

सातवां अध्याय

महाराणा जगतसिंह (दूसरे) से महाराणा भीमसिंह तक

महाराणा जगतसिंह (दूसरा)

महाराणा जगतसिंह (दूसरे) का जन्म वि० सं० १७६६ आश्विन वदि १० शनिवार (ई० स० १७०६ ता० १७ सितम्बर), राज्याभिषेक वि० सं० १७९० माघ वदि ३ (ई० स० १७३४ ता० ११ जनवरी) को और राज्याभिषेकोत्सव वि० सं० १७९१ ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १७३४ ता० ३ जून) को हुआ।

फर्रुख़सियर के सात वर्ष राज्य करने के बाद रफ़ीउद्दरजात और रफ़ीउद्दौला नाम-मात्र के बादशाह हुए। अनुमान सात मास में दोनों के मर जाने पर

देश की तत्कालीन स्थिति

मुहम्मदशाह वि० सं० १७७६ (ई० स० १७१९) में मुग़ल राज्य का स्वामी बना। उसके शासनकाल में उसके वज़ीर आसफ़ज़ाह ने हैदराबाद में, सआदतखां ने अवध में, अलावर्दीख़ां ने बंगाल में, और रुहेलों ने रुहेलखण्ड में अपने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थिर कर लिये। इस प्रकार औरंगज़ेब की मृत्यु से २०-२५ वर्ष के भीतर ही मुग़ल साम्राज्य के बहुधा सब अंग-प्रत्यंग विच्छिन्न हो गये और मुहम्मदशाह नाम-मात्र का बादशाह रह गया। उसके समय मरहटों का ज़ोर बहुत बढ़ गया था और दिल्ली के राज्य पर उनकी धाक जम गई थी। ऐसे में नादिरशाह ने दिल्ली पर हमला कर हज़ारों लोगों को क़त्ल किया और वह दिल्ली का ख़ज़ाना तथा तख़्तताऊस लेकर लौटा। सिन्धु से पश्चिम तक का सारा प्रदेश उसने अपने राज्य में मिला लिया। राजपूताने के राजाओं पर भी बादशाह का प्रभाव नाममात्र का रह गया और वे भी समय देखकर अपना राज्य बढ़ाने और मुग़ल राज्य के सञ्चालन में अपनी इच्छानुसार हस्ताक्षेप करने लगे।

दिल्ली के साम्राज्य की दुर्दशा देखकर मरहटों ने दक्षिण से उत्तर की ओर अपना राज्य बढ़ाना चाहा। मालवे का सूबेदार गिरिधर बहादुर, निज़ामुल्मुल्क

मरहटों का मालवे पर अधिकार

आदि के समान मालवे में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था, परंतु उसको वहां के हिन्दू सरदारों की सहायता न होने से उसकी वह इच्छा पूर्ण न हो सकी। सवाई जयसिंह मुग़ल बादशाह की शक्ति उत्तर भारत में क्षीण करने के लिए मरहटों का पद-प्रवेश मालवे में कराना चाहता था। वहां के राजपूत ज़मींदारों ने बादशाही ख़िराज़ देना बन्द कर दिया, परन्तु सूबेदार गिरधर[1] बहादुर ने उनसे ख़िराज़ लेना चाहा, जिससे वे लोग मुग़लों के विरुद्ध मरहटों की सहायता करने को उद्यत हुए। गिरिधर बहादुर के मरने पर उसके पुत्र भवानीराम को राजा का ख़िताब और दो लाख रुपये देकर बादशाह ने मरहटों से मालवे की रक्षा करने को वहां पर नियुक्त किया और सय्यद नरुमुद्दीन, महाराणा के सैन्य (सवाई जयसिंह के द्वारा), दुर्जनसाल और मुहम्मद उमरखां को उसकी सहायतार्थ जाने की आज्ञा दी। चिमनाजी आपा और ऊदाजी पंवार ने सारंगपुर को जीतकर वि० सं० १७८६ (ई० स० १७२६) में उज्जैन को जा घेरा। दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें मरहटे परास्त होकर लौट गये। दूसरे वर्ष मल्हारराव और ऊदाजी पंवार चिकलदा में पहुंचे और बाजीराव आदि की प्रतीक्षा करते रहे। चातुर्मास उन्होंने मालवे में ही बिताया। उस समय तक सवाई जयसिंह ने उधर मुंह तक न किया और उसके सेनापति ज़ोरावरसिंह ने केवल ७०० सवार सहायतार्थ भेजे। भवानीराम धन की अत्यन्त कमी से अधिक सेना नहीं रख सकता था और न उसको कोई सहायता ही मिली। बादशाह ने उसे तसल्ली देने के लिए लिखा कि राजा रामचन्द्र[2], राजा उदितसिंह (ओर्छा का) और सवाई जयसिंह (३०००० सवारों के साथ) तुम्हारी सहायता को आ रहे हैं। इस समय ४००० मरहटों के दूसरे सैन्य ने मालवे पर आक्रमण कर धार आदि को लूटना शुरू किया। तब बादशाह ने जयसिंह को मालवे का सूबेदार बनाकर भवानीराम को उसका नायब बनाया, परन्तु जयसिंह वहां न पहुंचा, इसलिए दयाबहादुर (छबीलाराम नागर का पुत्र) वहां का सूबेदार बनाया गया, जो कार्यकुशल शासक था। उसने सरकारी कर पूरे तौर से वसूल करना शुरू किया, जिससे वहां के ज़मींदार उससे अप्रसन्न हुए। उसका मुख्य शत्रु

(१) यह नागर ब्राह्मण छबीलाराम का भतीजा था।

(२) यह बुन्देले दिलीपसिंह का पुत्र हो।

चौधरी नन्दलाल मण्डलोई था। वह मरहटों से मिला हुआ था और जयसिंह ने भी उसे मरहटों का पक्ष लेने के लिए लिखा। दयाबहादुर ने उसे अपनी तरफ़ मिलाने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह किसी तरह राज़ी न हुआ। वि० सं० १७८८ (ई०स०१७३१) में बाजीराव ने बुरहानपुर से नन्दलाल को सूचित किया कि मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। मरहटा सैन्य नालछा और मांडू में आ ठहरा और दयाबहादुर के कठोर व्यवहार से अप्रसन्न जमींदार आदि भी पेशवा का पक्ष लेने लगे। नीमाड़ से ५००० आदमी नन्दलाल से आ मिले। दयाबहादुर ने माडूं के मार्ग में तीन सुरंगें भरीं और दक्षिण से आते हुए शत्रुओं को रोकने के लिए २५००० सैन्य को नियत्त किया। मरहटों ने नन्दलाल के द्वारा यह हाल मालूम होने पर अपना रास्ता पलट दिया और भैरोंघाट की ओर से प्रवेश किया। वे सुरंगें अकस्मात् उड़ गईं, जिसमें मुग़लों के पक्ष के बहुत से सरदार मारे गये, जिनमें कई नन्द-लाल के रिश्तेदार भी थे। इसके तीन दिन बाद मरहटों ने तरला में दयाबहादुर पर आक्रमण किया, जिसमें वह मारा गया। जयसिंह ने नन्दलाल को इसका अभिनन्दन देकर लिखा कि तुमने मालवे में मुसलमानों को मारा और हिन्दू धर्म की रक्षा कर मेरी इच्छा पूर्ण की है। यह सुनकर बादशाह जयसिंह पर बहुत क्रुद्ध हुआ और मुहम्मदखां बंगश को मालवे पर भेजा। वह मरहटों से लड़ता रहा; कभी मरहटों को निकाल देता और कभी वे पीछे आकर अधिकार कर लेते। उसपर अप्रसन्न होकर बादशाह ने वि० सं० १७८९ (ई० स० १७३२) में जयसिंह को मालवे का सूबेदार बनाया, परन्तु मरहटों ने उसे भी चैन न लेने दिया और मालवे पर उनका प्रभाव बढ़ता गया[1]।

महाराजा जयसिंह ने जब मरहटों का बल अधिक देखा और मालवे की अपनी सूबेदारी में निष्फल होने की संभावना देखी, तब राजपूताना आदि के राजाओं को एकत्र कर उनके सम्मिलित सैन्य के बल से मरहटों को मालवे से निकालना चाहा। जयपुर को भावी गृह-कलह से बचाने के लिए सवाई जयसिंह मालवे और रामपुरे को मिलाकर एक नया राज्य स्थापित करना चाहता था। महाराजा अभयसिंह भी गुजरात

राजपूत राजाओं का एकता का प्रयत्न

(१) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० २, पृ० २४३-४५, (जदुनाथ सरकार द्वारा संपादित और परिवर्धित संस्करण; ई० स० १९२२)।

को मारवाड़ में मिलाकर जोधपुर को विशाल राज्य बनाने के उद्योग में था। महाराणा अपने पड़ोस अर्थात् मालवे में मरहटों की इस बढ़ती हुई शक्ति को रोकना चाहता था। इसी तरह राजपूताने के अन्य राजा भी अपनी रक्षा करने और राज्य को बढ़ाने के लिए उत्सुक थे। इस विचार से हुरड़ा में उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, कोटा, बीकानेर, किशनगढ़, नागोर आदि के राजा एकत्र हुए। वहां कुछ विचार होने के अनन्तर सब राजाओं की सम्मति से एक अहदनामा लिखा गया, जिसमें नीचे लिखी बातें स्थिर हुईं—

१—सब राजा धर्म की शपथ खाकर एक दूसरे के सुख और दुःख के साथी रहें। एक का मान और अपमान सबका मान और अपमान समझा जाय।

२—एक के शत्रु को दूसरा अपने पास न रक्खे।

३—वर्षाऋतु के बाद कार्य शुरू किया जाय, तब सब राजा रामपुरे में एकत्र हों, यदि कोई कारणवश स्वयं न आ सके तो अपने कुंवर को भेज दे।

४—यदि कुंवर अनुभव की कमी से कुछ ग़लती करे, तो महाराणा ही उसको ठीक करें।

५—कोई नया काम भी शुरू हो तो सब एकत्र होकर करें।

यह अहदनामा वि० सं० १७६१ श्रावण वदि १३ (ई० स० १७३४ ता० १७ जुलाई) को लिखा गया। फिर सब राजा अपनी अपनी रियासतों को लौट गये[1]।

उपर्युक्त सन्धि का जो परिणाम होना चाहिये था, वह नहीं हुआ, क्योंकि राजपूत राजाओं के स्वार्थ एक न थे। महाराणा विषयविलास में पड़ा रहता था और उसके सरदारों में पारस्परिक कलह से मेवाड़ को दूसरी तरफ़ ध्यान देने को समय ही नहीं मिला। राजपूत राजा किसी दूसरे को अपना सर्वोपरि मानने से इन्कार करते थे। जब महाराजा जयसिंह ने देखा कि राजपूतों का एकत्र होकर मालवे पर आक्रमण करना कठिन है, तो उसने स्वयं धौलपुर में बाजीराव पेशवा के साथ वि० सं० १७६३ (ई० स० १७३६) में एक सन्धि

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४८२-८३। वंशभास्कर; भाग ४, पृष्ठ ३२२७-२८, वीरविनोद; भाग २, पृ० १२१८-१२२१।

कर्नल टॉड ने इस अहदनामे की तिथि श्रावण सुदि १३ लिखी है और वंशभास्कर में सब राजाओं का कार्तिक सुदि में एकत्र होना लिखा है। यह दोनों बातें ठीक नहीं हैं। अहदनामे की नक़ल में श्रावण वदि १३ लिखी है।

कर पेशवा के बादशाही प्रदेश को न लूटने का वचन देने पर उसे मालवे की नायब सूबेदारी दी[1]। वह नाममात्र को तो मालवे का नायब सूबेदार कहलाया, परन्तु वस्तुतः मालवे का स्वामी वही हुआ।

कुछ समय से शाहपुरे का उम्मेदसिंह महाराणा की आज्ञाओं की उपेक्षा करने लगा था। महाराणा संग्रामसिंह दूसरे के दबाने पर वह शान्त हो गया था, परन्तु उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर उसने फिर सिर उठाया और मेवाड़ के दूसरे जागीरदारों से भी छेड़छाड़ करने लगा तथा अमरगढ़ के रावत को मार डाला[2], जिसपर महाराणा ने शाहपुरे पर चढ़ाई कर दी। महाराणा के इस आक्रमण का हाल सुनकर जयपुर के नीतिज्ञ सवाई जयसिंह ने भी महाराणा की सहायता के लिए कूच किया; यद्यपि उसकी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं थी और न वह बुलाया ही गया था। उसका विचार था कि शाहपुरा छिनजाने पर रामपुरे की तरह वह भी माधवसिंह को दिला दिया जावे, जिसे महाराणा भी शायद अस्वीकार न करें। इस तरह वह कोटा और बूंदी को अपने राज्य में मिलाकर रामपुरे तक अपना राज्य बढ़ाने का प्रपंच रच रहा था। उसके इस अभिप्राय की खबर बेगूं के रावत देवीसिंह को लग गई, जो महाराजा जयसिंह का विरोधी था। उसने शीघ्र ही महाराणा के पास जाकर जयसिंह के इस अभिप्राय की सूचना दी और उससे सावधान रहने के लिए अर्ज की, महाराणा ने यह सुनकर देवीसिंह को शाहपुरे भेजा। वह उम्मेदसिंह को समझाकर महाराणा के पास ले आया तो महाराणा ने एक लाख रुपया तथा फ़ौज का खर्च लेकर उसका अपराध क्षमा किया[3]। इस तरह सवाई जयसिंह का मनोरथ मन में ही रह गया।

महाराणा का शाहपुरे पर आक्रमण

बाजीराव पेशवा को मालवे की नायब सूबेदारी मिलने पर वह अपने राज्य को बढ़ाने के लिए राजपूताने पर नजर डाल रहा था। इतने में जयपुर के महाराजा जयसिंह ने उसे उत्तरी भारत में मुसलमानों की शक्ति क्षीण करने के लिए बुलाया। वह यह निमंत्रण पाकर राजपूताने की तरफ बढ़ा और पहले पहल उदयपुर की ओर

पेशवा का महाराणा के पास आना

(१) इरविन; लेटर मुग़ल्स; जि० २, पृ० २२६।
(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ३१२-१३।
(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२२१-२२।

प्रस्थान किया। महाराणा ने यह खबर सुनकर बाबा तख़्तसिंह[1] को उसका स्वागत करने के लिए लूनावाड़े भेजा। पेशवा ने उदयपुर पहुंचकर आहाड गांव के पास चम्पा बाग में अपना डेरा लगाया। दूसरे दिन वह महाराणा से मिला। उसकी इच्छा महाराणा से प्रतिवर्ष १५०००० रुपये तथा बनेड़े का परगना लेने की थी, जिससे उसने महाराणा का आदर कर कहा कि मुझे तो आप अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों के बराबर समझिये। महाराणा ने उसे खिराज़ में १५०००० रुपये[2] सालाना १० वर्ष तक देना तथा बनेड़े के परगने को अपने पास ठेके के तौर रखकर उसकी आमदनी देना स्वीकार किया। दूसरे दिन उसे जब जगमंदिर दिखाने का विचार हुआ तब उसे किसी ने कहा कि राजपूत आपको वहां ले जाकर मारना चाहते हैं। इसपर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और महाराणा से सात लाख रुपये लेकर चला गया[3]।

एकता का दूसरा प्रयत्न

राजपूत राजाओं के उपर्युक्त एकता के प्रयत्न को निष्फल देखकर सलूंबर के रावत कुबेरसिंह ने राजपूताने के राजाओं को फिर एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न करने के लिए महाराणा को एक पत्र[4] लिखा। महाराणा ने भी दूसरे राजाओं को बुलाने का प्रयत्न किया, परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला, क्योंकि सभी राजाओं का स्वार्थ पृथक् पृथक् था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। मेवाड़ की दशा भी अच्छी नहीं थी। उसे तो अपने अन्दरूनी झगड़ों से ही फ़ुरसत नहीं थी। प्रायः सब सरदारों का आपस में कलह बहुत बढ़ गया था। कोई किसी को मित्र नहीं समझता था। चूंडावतों और शक्तावतों का झगड़ा तो बहुत पहले से चला आ रहा था। चूंडावतों में परस्पर भी द्वेष उत्पन्न हो गया। चूंडावतों का झालाओं तथा चौहानों से भी बिगाड़ पैदा हो गया था। मेवाड़ के राज्यकर्मचारियों का

---

(१) महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का भाई।

(२) टॉड ने १६०००० रुपये लिखा है, परन्तु वंशभास्कर में १५०००० है।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६१-६४। वंशभास्कर; भाग ४, पृ० ३२३५-३७। वीरविनोद; भाग २, पृ० १२२२। वंशभास्कर में सात लाख रुपया लेना लिखा है, परन्तु वीरविनोद में पांच लाख।

(४) यह पत्र अब तक उदयपुर राज्य में विद्यमान है और वीरविनोद में छप चुका है (भाग २, पृ० १२२५)।

भी यही हाल था। महाराणा इस स्थिति को संभालने में अत्यन्त अशक्त था। अपने सरदारों के झगड़ों को शान्त करना तो दूर रहा, किन्तु अपने कुंवर प्रतापसिंह से ही उसका विरोध हो गया, जिसका हाल नीचे लिखा जाता है—

महाराणा और कुंवर में विरोध

महाराजा जयसिंह ने कुछ समय पूर्व बूंदी के राव बुधसिंह को वहां से हटाकर दलेलसिंह को बूंदी का स्वामी बनाया। तब से बुधसिंह अपने ससुराल बेगूं में रहकर महाराणा की सहायता से बूंदी प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा। उसके कुंवर उम्मेदसिंह ने कोटा के स्वामी दुर्जनसाल के द्वारा बूंदी का राज्य पीछा प्राप्त करने के लिए महाराणा से भी कहलाया, जिसपर उसने उसे उदयपुर जाने के लिए सलाह दी। फिर बूंदी का पुरोहित दयाराम उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह को एक जागीर दिलवाने के लिए महाराणा के पास गया और सलूंबर के रावत से इस विषय में सहायता चाही। उसके सहायता न देने पर वह दौलतराम व्यास के पास गया। दौलतराम उसे महाराणा के पास ले गया और उसने दीपसिंह को जागीर देने के लिए प्रार्थना की, परन्तु महाराणा ने इसे स्वीकार न किया। तब निराश होकर वह कुंवर प्रतापसिंह के पास गया, जिसने उसे २५००० रु० सालाना आय का लाखोला का पट्टा लिख दिया। इसपर महाराणा कुंवर से बहुत अप्रसन्न हुआ और उसे दण्ड देने के लिए क़ैद करना चाहा। प्रतापसिंह बहुत बलवान् और हृष्ट पुष्ट व्यक्ति था, उसे क़ैद करना कोई आसान काम न था। महाराणा ने अपने भाई नाथसिंह को, जो बहुत बलिष्ठ था, इस काम के लिए नियुक्त किया। एक दिन महाराणा ने कुंवर प्रतापसिंह को कृष्णविलास महल में बुलाया, जहां कई सरदार बैठे हुए थे। महाराणा के इशारे से महाराज नाथसिंह ने पीछे से आकर उसे पकड़ लिया। फिर महाराणा ने उसे करणविलास महल में नज़र क़ैद रक्खा। यह खबर सुनते ही शक्तावत सूरतसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह, जो कुंवर का पक्षपाती था, हाथ में तलवार लिए वहां आ पहुंचा। महाराणा ने उसके चाचा को उसे रोकने के लिए भेजा, परंतु उम्मेदसिंह ने उसे आते ही मार दिया, तब महाराणा ने उसके पिता सूरतसिंह को उसे मारने के लिए कहा। अपने पिता को आता देखकर उम्मेदसिंह ने अपने हाथ से तलवार फेंक दी, परन्तु उससे पहले ही स्वामिभक्त सूरतसिंह वार कर चुका था, जिससे उम्मेदसिंह मारा गया। महाराणा ने

सूरतसिंह पर प्रसन्न होकर उसे जागीर देना चाहा, परन्तु अपने भाई व पुत्र के मर जाने से उसका दिल टूट चुका था, जिससे उसने जागीर लेने से इन्कार कर दिया[1]। कुंवर प्रतापसिंह ने गद्दी पर बैठते ही उसके पोते और उम्मेदसिंह के पुत्र अखैसिंह को रावत का खिताब और दारू की जागीर देकर अपने उपकार का बदला चुकाया[2]।

फूलिये के परगने पर अधिकार

शाहपुरे का राजा उम्मेदसिंह फूलिये[3] पर अपना अधिकार बताने लगा था और वि० सं० १७९४ (ई० स० १७३७) में महाराजा अभयसिंह के साथ बादशाह के पास जाकर फूलिये की पेशकशी अलग बताने लगा। इसपर महाराणा ने बादशाह के पास अपना वकील भेजकर फूलिये को अपने नाम लिखा लिया[4]।

मरहटों से लड़ाई

वि० सं० १७९८ में मरहटों ने बागड़ में होते हुए मेवाड़ में प्रवेश किया। महाराणा ने यह खबर सुनते ही कानोड के रावत पृथ्वीसिंह (सारंगदेवोत) आदि सरदारों को ससैन्य उनसे लड़ने के लिए भेजा। उन्होंने जाकर मरहटों को वहां से हटा दिया[5]।

माधवसिंह को जयपुर दिलानेका उद्योग

महाराजा जयसिंह ने महाराणा से प्रार्थना कर रामपुरे का परगना माधवसिंह को दिला दिया था, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उस समय माधवसिंह बालक था, इसलिए जयसिंह ने अपने सरदार दौलतसिंह कछवाहे को भेजकर वहां अधिकार कर

(१) वंशभास्कर; पृ० ३३१३-१८। वीरविनोद; भाग २, पृ० १२२७।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२२७।

(३) वही; भाग २, पृ० १२४२।

फूलिये का परगना शाहज़हां ने पुर मांडल आदि के साथ मेवाड़ से छीन लिया था, परंतु वह पीछा मेवाड़ में सम्मिलित हो गया था। औरंगज़ेब ने यह परगना दोबारा छीनकर भारतसिंह को दे दिया था। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने उसको अपने अधीन कर लिया, परन्तु उसकी बादशाही सेवा माफ़ न हुई। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने फूलिये को मेवाड़ में मिला लिया (वीरविनोद; भाग २, पृ० १२४२)।

(४) इस विषय का बादशाही वज़ीर का ता० ५ शाबान सन् २६ जुलूस हि० स० ११५६ (वि० सं० १८०० आश्विन सुदि ६ = ई० स० १७४३ ता० १३ सितम्बर) का लिखा पत्र उदयपुर राज्य में विद्यमान है (वीरविनोद; भाग २, पृ० १२४२-४४)।

(५) महाराणा जगतसिंह का वि० सं० १७९८ का पृथ्वीसिंह के नाम का परवाना।

लिया। माधवसिंह के योग्य होने पर महाराणा ने जयसिंह को लिखा कि अब परगना खाली कर माधवसिंह को दे दो। इसपर जयसिंह ने दौलतसिंह को लिखकर वहां का प्रबन्ध माधवसिंह के सुपुर्द करा दिया[1]।

फिर कुछ दिनों पीछे वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में महाराजा सवाई जयसिंह का देहान्त हो गया और उसका बड़ा कुंवर ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा। यह बात सुनकर महाराणा ने माधवसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहा, परन्तु वह अकेला जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह से लड़ने में असमर्थ था। इसलिए उसने मरहटों से सहायता लेने का निश्चय किया और कोटे के महाराव दुर्जनसाल को सलाह करने के लिए बुलाया। वह नाहर मगरे में महाराणा से मिला, उसने उम्मेदसिंह को ईश्वरीसिंह से बूंदी दिलाने के लिए भी महाराणा से कहा, जिसे महाराणा ने उस समय स्वीकार किया। महाराणा और कोटे का महाराव अपनी अपनी सेनाओं समेत नाहर मगरा से कूच कर जहाज़पुर परगने के जामोली गांव में पहुंचे और वहां ४० दिन तक ठहरे। उधर से महाराजा ईश्वरीसिंह भी सामना करने के लिए अपनी सेना समेत आकर पास ही पंडेर गांव में ठहरा। महाराणा और कोटा की सम्मिलित सेना को देखकर ईश्वरीसिंह ने भेद नीति से काम लिया। उसका प्रधान राजामल खत्री महाराणा के पास गया और कहा कि आप हाड़ों की बात में आकर हमारे से मित्रता का सम्बन्ध क्यों तोड़ते हैं। हमारा आप से तो कोई वैर है नहीं। जब पहले की शर्त के अनुसार माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाने के लिए महाराणा ने उससे कहा तो उसने जवाब दिया कि बादशाह मुहम्मद-शाह ने ईश्वरीसिंह को ज्येष्ठ पुत्र मानकर उसे ही गद्दी का अधिकारी बनाया है। आप को इस समय उसका विरोध कर बादशाह से भिड़ने में अपनी शक्ति नष्ट करना उचित नहीं। माधवसिंह के लिए कोई और इलाक़ा ले लीजिये। इस तरह की बातचीत होने पर माधवसिंह के लिए ५००००० रुपये की आय का टोंक का इलाका लेकर महाराणा ने उससे संधि कर ली। यह समाचार सुनते ही कोटे का महाराव दुर्जनसाल महाराणा से अत्यन्त अप्रसन्न होकर बिना सूचना दिये ही कोटे चला गया[2]।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२२६-३० ।

(२) वंशभास्कर; पृ० ३३२४-२८ और ३३३३-३६।

जिन दिनों महाराणा जामोली में ठहरा हुआ था, उसने कुछ अवकाश देखकर पास के देवली गांव[1] को, जो पहले महाराणा का था और अब सावर के ठाकुर इन्द्रसिंह ने दबा लिया था, छुड़ाना चाहा। ठाकुर इन्द्रसिंह गांव देने को राज़ी हो गया, परन्तु उसका युवा पुत्र सालिमसिंह, जो अभी विवाह कर लौटा ही था और अभी विवाह के वस्त्राभूषण भी न उतारे थे, राज़ी न हुआ और शीघ्र ही अपने वीर राजपूतों को एकत्र कर लड़ने को तैयार हो गया। महाराणा ने यह खबर सुनकर राणावत भारतसिंह (वीरमदेवोत)[2] को तोपखाने के साथ कुछ सेना देकर उससे लड़ने के लिए भेजा। भारतसिंह ने सालिमसिंह को बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न मानी, तब भारतसिंह ने गोलन्दाज़ी शुरू की। तीन दिन तक तोपों और बंदूकों से सामना हुआ, चौथे दिन सालिमसिंह दरवाज़े खोलकर बाहर आया और बड़ी वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। मेवाड़ के ५१ तथा सालिमसिंह के १७ आदमी मरे और भारतसिंह ने देवली पर अधिकार कर लिया। ठाकुर इन्द्रसिंह जामोली में आकर महाराणा के पास उपस्थित हुआ[3]।

महाराणा का देवली पर आक्रमण

महाराणा ने यद्यपि ईश्वरीसिंह से माधवसिंह के लिए टोंक का परगना लेकर संधि कर ली थी, तथापि उसका मन सन्तुष्ट नहीं हुआ, इसलिए दूसरे वर्ष जब ईश्वरीसिंह अपने राज्य को स्थिर करने के लिए मुहम्मदशाह के पास गया हुआ था, तब महाराणा ने बाबा बख़्तसिंह (कारोईवालों का पूर्वज और उम्मेदसिंह का बेटा) और रावत कुबेरसिंह को मल्हारराव हुलकर की सहायता लेने के लिए भेजा। उसने एक करोड़ रुपये लेना स्वीकार कर माधवसिंह को गद्दी पर बिठाने का वचन दिया। महाराणा ने मरहटों की सहायता लेकर जयपुर की ओर प्रस्थान किया। यह समाचार सुनकर जयपुर के सरदार भी मुक़ाबला करने को आये। उन्होंने ईश्वरीसिंह के दिल्ली से आने तक महाराणा को रोकने के अभिप्राय से कहा कि हम

माधवसिंह के लिए महाराणा का उद्योग

(१) वि० सं० १८०० से पूर्व यह गांव पीपलूंद के ठाकुर राणावत हररूप के अधिकार में था। जब राणावतों में आपस का बखेड़ा हुआ, उस समय सावर (अजमेर ज़िले में) के शक्तावत सरदार ने इसे अपने अधीन कर लिया था।

(२) खैराबाद का।

(३) वंशभास्कर; पृ० ३३२८-३४। वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३१।

भी माधवसिंह को चाहते हैं, ईश्वरीसिंह के आने पर उसे गिरफ़्तार करा देंगे, आप व्यर्थ युद्ध न करें। महाराणा उनके इस धोखे में आ गया और युद्ध स्थगित रक्खा। जयपुर के सरदारों ने ईश्वरीसिंह को दिल्ली से शीघ्र बुला लिया। उसके आने पर राजामल खत्री ने मल्हारराव के अतिरिक्त सब मरहटों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया, जिससे महाराणा बहुत असमञ्जस में पड़ा और मरहटों को कुछ रुपये देकर उदयपुर लौट गया[1]।

महाराणा उपर्युक्त युद्ध में सफलता न मिलने से निराश नहीं हुआ। वि० सं० १८०४ कार्तिक सुदि १ (ई० स० १७४७ ता० २३ अक्टोबर) को कोटे का महाराव दुर्जनसाल नाथद्वारे गया और उदयपुर से महाराणा भी माधवसिंह सहित वहां पहुंचा। वहां तीनों ने मिलकर फिर जयपुर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया और मल्हारराव हुल्कर को सहायतार्थ बुलाने के लिए अपने वकील खुमानसिंह को उधर भेजा। उसने इस सहायता के बदले दो लाख रुपये लेना स्थिर किया और अपने बेटे खांडेराव को तोपखाने सहित भेजा। महाराणा की फ़ौज में शाहपुरे का उम्मेदसिंह भी सम्मिलित था। दुर्जनसाल ने इस सेना में स्वयं सम्मिलित न होकर अपने प्रधान को भेजा। यह समाचार सुनकर जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह ने भी हरगोविन्द नाटाणी की अध्यक्षता में मुक़ाबला करने के लिए बनास नदी पर के राजमहल के पास सेना भेजी। इस स्थान पर दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ। इस युद्ध में दोनों तरफ़ का बहुत नुकसान हुआ, विजय ईश्वरीसिंह की हुई[2]। महाराणा अपने सम्पूर्ण सैन्य को लेकर शाहपुरे की तरफ़ चला गया। शाहपुरे पहुंचने पर महाराणा ने दूसरी बार ईश्वरीसिंह पर चढ़ाई करना चाहा, परन्तु खांडेराव हुलकर ने एक प्रबल सेना लेकर जयपुर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया, तब सब सेनाएं अपने अपने इलाक़ों को लौट गईं।

इस पराजय के दूसरे वर्ष महाराणा ने फिर कोटे के राव दुर्जनसाल से संधि कर खांडेराव हुलकर को बुलाया। महाराणा मरहटों के आने पर सम्पूर्ण सैन्य को लेकर खारी नदी के किनारे पहुंचा। महाराजा ईश्वरीसिंह भी अपनी

(१) वंशभास्कर; पृ० ३३७६-८०। वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३२।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४१४। वंशभास्कर; पृ० ३४५५-६१।

सेना लेकर उस नदी के किनारे आ गया। पहले दिन थोड़ी सी लड़ाई हुई, जिसमें मेंगरोप के बावा रत्नसिंह और आर्ज्या के रणसिंह ने वीरता दिखाई, जिसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने दांदूथल व दांदियावास रत्नसिंह को तथा सिंगोली रणसिंह को जागीर में दी। ईश्वरीसिंह ने उम्मेदसिंह को बूंदी और माधवसिंह को टोड़ा देना स्वीकार कर महाराणा से संधि कर ली[1]।

जिस प्रकार महाराणा ने अपनी पहली संधि तोड़ी थी, उसी प्रकार ईश्वरीसिंह ने भी उसके साथ की गई संधि के विरुद्ध टोंक पर पीछा अधिकार कर लिया, जिससे माधवसिंह ने मल्हारराव हुलकर तथा उम्मेदसिंह (बूंदी का) को साथ लेकर जयपुर पर चढ़ाई की। मल्हारराव ने महाराणा से भी सहायता मांगी, परन्तु उसने स्वयं न जाकर ४००० सवारों के साथ शाहपुरे के उम्मेदसिंह, बेगूं के रावत मेघसिंह, देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह (सांगावत), राणावत शंभूसिंह[2] और कायस्थ गुलाबराय को भेजा। जब महाराणा ने ठाकुर शिवसिंह को[3] महाराजा अभयसिंह के पास भेजा, तब उसने भी माधवसिंह की सहायता करना स्वीकार कर दो हज़ार सवारों सहित रींया के ठाकुर मेड़तिया शेरसिंह और ऊदावत कल्याणसिंह को भेजा। वि० सं० १८०५ भाद्रपद वदि ४ (ई० स० १७४८ ता० १ अगस्त) को बगरू गांव के पास दोनों सेनाओं का मुक़ाबला हुआ। ईश्वरीसिंह इस युद्ध में परास्त हुआ। तब उसके मंत्री केशवदास खत्री ने एक मरहटे सेनापति को लालच देकर अपनी तरफ़ मिला लिया और उसके द्वारा मल्हारराव हुलकर को कुछ देकर उससे संधि कर ली। इस संधि के अनुसार ईश्वरीसिंह ने उम्मेदसिंह को बूंदी और माधवसिंह को टोंक के चार परगने भी पीछे दे दिये[4]।

इस तरह मंत्री केशवदास ने ईश्वरीसिंह के राज्य की रक्षा की, परन्तु केशवदास के विरोधी हरगोविन्द नाटाणी आदि ने महाराजा को उसके विरुद्ध

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३७। वंशभास्कर पृ० ३५४८-७३।

(२) शंभूसिंह सनवाड का महाराज तथा खैराबादवाले भारतसिंह का भाई।

(३) रूपाहेलीवालों का पूर्वज। इस सेवा पर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे एक गांव दिया।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३८-३६। वंशभास्कर; पृ० ३५८३-३५२७।

माधवसिंह का जयपुर की गद्दी पर बैठना

बहकाना शुरू किया कि इसी मंत्री ने उम्मेदसिंह को बूंदी और माधवसिंह को टोंक के परगने दिलाये हैं। उनके बहकाने में आकर महाराजा ने केशवदास को विष देकर मरवा दिया और उसको मरते समय कहा कि अब तेरा सहायक हुल्कर कहां है? यह समाचार जब हुल्कर ने सुना तो वह महाराजा पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और ईश्वरीसिंह को दण्ड देने के लिए वि० सं० १८०७ आश्विन सुदि १० (ई० स० १७५० ता० २६ सितम्बर) को ससैन्य चला। ईश्वरीसिंह ने उसे रोकने के लिए बहुत से उपाय किये, परन्तु वह न रुका और जयपुर के पास पहुंचा। इस समय ईश्वरीसिंह का प्रधान हरगोविन्द नाटाणी था। उसकी पुत्री से महाराजा का अनुचित संबन्ध होने के कारण उसकी बहुत कुछ अपकीर्ति हो रही थी, इसी से वह महाराजा से आन्तरिक द्वेष रखता था और उसको नष्ट करना चाहता था। उसने महाराजा से इसका बदला लेने के लिए यह अवसर ठीक समझा। उसने सेना को बिलकुल तैयार न किया और हुल्कर को बुला लिया। जब हुल्कर के बिलकुल पास आने का समाचार मिला, तब महाराजा को अपने मंत्री की कुटिलता का हाल मालूम हुआ। उस समय और कोई उपाय न देखकर उसने विष खाकर आत्मघात कर लिया। दूसरे दिन हुल्कर ने शहर पर अधिकार कर लिया। उधर से माधवसिंह भी यह खबर सुनकर जयपुर पहुंचा, हुल्कर ने उसे जयपुर की गद्दी पर बिठाया[1]। माधवसिंह ने इस उपकार के बदले में हुल्कर को बहुत सा धन तथा टोंक के चार परगने दिये। इनके अतिरिक्त उसने महाराणा के किये हुए सब उपकारों को भूलकर रामपुरे का परगना भी हुल्कर को दे दिया[2]। इस प्रकार रामपुरे का इलाक़ा सदा के लिए मेवाड़ से निकल गया।

सरदारों से मुचलके लिखवाना

महाराणा के समय शासन-प्रबन्ध शिथिल हो जाने के कारण सरदार लोग अपने ठिकानों में मनमानी करने लगे। चोर, डकैतों और पासीगरों को अपने पास रखकर उनसे लूट आदि के माल में से वे चौथा हिस्सा लेने लगे। इससे वे ख़ालिसे तथा बाहरी इलाक़ों

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६५। वंशभास्कर पृ० ३६०५-२१। वीरविनोद; भाग २, पृ० १२४०-४१।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२४१।

के निवासियों को लूटने लगे। इसलिए महाराणा ने वि० सं० १८०३ (ई० स० १७४६) में इस अत्याचार को रोकने के लिए सब सरदारों से इस आशय के मुचलके लिखवाये कि ऐसे लोगों को यदि हम अपने ठिकानों में रक्खें, तो हम अपराधी समझे जावें[1]।

महाराणा जगतसिंह (दूसरे) ने जगनिवास (जगन्निवास) नाम का महल पीछोला तालाब के अन्दर बनवाया[2], जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

महाराणा के बनाए हुए मकान आदि

इस महल की नींव वि० सं० १८०० वैशाख सुदि १० (ई० स० १७४३ ता० २२ अप्रेल) को और प्रतिष्ठा वि० सं० १८०२ माघ सुदि ६ (ई० स० १७४६ ता० २० जनवरी) को हुई। इसकी प्रतिष्ठा में लाखों रुपये व्यय हुए। इस अवसर पर अपने प्रधान देवकरण तथा कई सरदारों को उसने घोड़े दिये। इसकी प्रतिष्ठा का सविस्तर वर्णन कवि नेकराम ने 'जगद्विलास' नामक काव्य में किया है। आहाड़ की महासतियों (राजकीय दग्धस्थान) में अपने पिता की श्वेत पाषाण की विशाल छत्री बनवाई, जिसका गुम्बज़ अधूरा ही रह गया।

महाराणा जगतसिंह के समय के चार शिलालेख देखने में आये, जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है—

महाराणा के समय के शिलालेख

१—हरवेनजी के खुरेवाले शिवालय के मंदिर की वि० सं० १७६० वैशाख सुदि १३ की प्रशस्ति। इसमें सनाढ्य ब्राह्मण हरिवंश (हरवेन) के द्वारा शिवालय, बावड़ी और वाड़ी बनाये जाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति की रचना रूपभट्ट के पुत्र रामकृष्ण ने की थी।

२—गोवर्धनविलास (उदयपुर से दो मील) के माना धायभाई के कुंड की वि० सं० १७६६ चैत्र सुदि १ की प्रशस्ति[3]। इसमें चन्द्रकुंवरि (जिसका विवाह

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३५-३६।

(२) अन्तस्तडागं जगदीशराणो

जगन्निवासप्रतिमप्रभावः।

जगन्निवासाह्लादतुल्यरूपं

जगन्निवासं भुवनं ससर्ज ॥ २७ ॥

वि० सं० १८१६ (चैत्रादि १८२०) वैशाख सुदि ८ की राजराजेश्वर की प्रशस्ति से।

(३) उदयपुर से मिली हुई हस्तलिखित पुस्तकाकार प्रति में प्रतिष्ठा का संवत् १७६६ माघ सुदि १३ लिखा है।

सवाई जयसिंह के साथ हुआ था) की गूजर जाति की धाय भीला के पुत्र माना धायभाई के द्वारा, कुंड और बाग बनाये जाने का उल्लेख है। इस प्रशस्ति की रचना भी उपर्युक्त कवि रामकृष्ण ने की थी।

३—बाईजीराज के कुंड के सामनेवाले पंचोलियों के मंदिर की वि० सं० १८०० वैशाख सुदि ८ की प्रशस्ति। इसमें भटनागर कायस्थ देवजित् (देवजी, जो महाराणा का मंत्री था) के द्वारा विष्णुमंदिर, शिवालय, बावड़ी और धर्मशाला बनाये जाने का वर्णन है। उक्त लेख में देवजित् के वंश का भी विस्तृत परिचय दिया हुआ है। उक्त प्रशस्ति का रचयिता कवि नाथूराम ब्राह्मण था।

४—भटियाणीजी की सराय का वि० सं० १८०७ का शिलालेख, जिसमें महाराणा जगतसिंह की राणी भटियाणी के बनवाये हुए द्वारिकानाथ के मंदिर के लिए भूमिदान का उल्लेख है।

महाराणा जगतसिंह (दूसरे) का देहान्त वि० सं० १८०८ आषाढ़ वदि ७ (ई० स० १७५१ ता० ५ जून) को हुआ[1]। उसकी १४ राणियों से दो कुंवर प्रतापसिंह और अरिसिंह तथा दो पुत्रियां रत्नकुंवर[2] और सूरजकुंवर हुईं।

महाराणा की मृत्यु और सन्तति

महाराणा जगतसिंह रहमदिल, मकान बनवाने का शौक़ीन, विलासी, अदूर-

(१) महाराणा जगतसिंह की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उसके छोटे भाई नाथसिंह, झाला राघवदेव (देलवाड़े का), भारतसिंह, देवगढ़ के जसवन्तसिंह और शाहपुरे के उम्मेदसिंह ने, जिन्होंने कुंवर प्रतापसिंह को क़ैद करने की चेष्टा की थी, यह सोचा कि कुंवर प्रतापसिंह गद्दी पर बैठकर हमें अवश्य दण्ड देगा, इसलिए उसे अभी ज़हर देकर नाथसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहिए। महाराणा को जब इस षड्यंत्र का पता लगा तो उसने अप्रसन्न होकर सब को वहां से अपने ठिकानों में भेज दिया (वंशभास्कर; पृ० ३६३१)।

(२) रत्नकुंवर का विवाह बख़्तसिंह (जो पीछे से जोधपुर का महाराजा हुआ) के कुंवर विजयसिंह के साथ हुआ था। इस विवाह के सम्बन्ध में विजयसिंह ने महाराणा को वि० सं० १७९१ आषाढ़ सुदि १२ को लिखा कि आपने मुझे अपना सेवक बनाया है, मैं आपकी सब बातें स्वीकार करता हूं, मैं आपका बालक हूं। मेरा सिर आपके काम के लिए तैयार है। आपने २०००० राठोड़ों को अपना सेवक बना लिया है। मेरे वंशज आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। इस विवाह से जो पुत्र होगा, वही राज्य का स्वामी होगा और यदि लड़की हुई तो उसका विवाह मुसलमानों से नहीं करूंगा (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४१०, टि० १)।

दर्शी और अयोग्य शासक था। उसके समय में मेवाड़ की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। यदि वह नीतिनिपुण होता तो सब राजपूत राजाओं को एकत्र कर उनका नेता हो सकता था और मरहटों के आक्रमण से राजपूताने की रक्षा कर सकता था, परन्तु उसके विषय-विलास में लिप्त होने, पारस्परिक गृहकलह और उसकी अदूर-दर्शिता से उसने कुछ न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मरहटों ने उसे कर देने पर बाधित किया। उसने ईश्वरीसिंह को परास्त करने के लिए मरहटों जैसे प्रबल शत्रु को बुलाकर वही भूल की, जो महाराणा सांगा ने इब्राहीम लोदी को नष्ट करने के लिए बाबर को बुलाकर की थी। इसका परिणाम मेवाड़ को, जो भोगना पड़ा, वह आगे मालूम हो जायगा। वह योग्य शासक नहीं था। उसके समय सरदारों में परस्पर फूट हो गई थी। राज्य में चोरी डकैती शुरू होने के कारण प्रजा दुखित थी। महाराणा का कुंवर से विरोध हो जाने तथा उसे क़ैद करवाने का फल भी बुरा ही हुआ।

महाराणा का व्यक्तित्व

टॉड ने उसके विषय में लिखा है कि वह ऐश आराम में लिप्त था। उसकी अस्थिर प्रकृति और अपव्यय की आदतों के कारण उस समय की स्थिति में वह राज्य करने के लिए सर्वथा अयोग्य था। मरहटों को दबाने की अपेक्षा वह अपनी हाथियों की लड़ाई को अधिक महत्त्व देता था। उसने घाटियों पर के कई एक विनोदस्थान (शिकारगाह) बनवाए और कई एक आलस्य और व्यसन के साधनरूपी त्यौहार प्रचलित किये, जो अबतक जारी हैं"[1]।

महाराणा का क़द मझोला, रंग गेहुँआ और चेहरा हँसमुख था।

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा)

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) का जन्म वि० सं० १७८१ भाद्रपद वदि ३ (ई० स० १७२४ ता० २७ जुलाई) को हुआ। महाराणा जगतसिंह (दूसरे) का देहान्त होनेपर सलूंबर के रावत जैतसिंह ने कुंवर प्रतापसिंह को क़ैदखाने से निकालकर वि० सं० १८०८ आषाढ़ वदि ७ (ई० स० १७५१ ता० ५ जून) को गद्दी पर बिठाया।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४१५।

प्रतापसिंह ने गद्दी पर बैठते ही नाथसिंह, भारतसिंह आदि पांच सरदारों का अपराध क्षमा कर उन्हें तसल्ली दी और अपने पास बुला लिया।

महाराणा की गुणग्राहकता

उसके लिए प्राण देनेवाले उम्मेदसिंह के पुत्र अखैसिंह को रावत का ख़िताब, ताज़ीम और दारू का परगना देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसके अतिरिक्त उसने अमरचन्द बड़वे को ठाकुर का ख़िताब और ताज़ीम देकर अपना मुसाहब बनाया[1]।

एक दिन महाराणा ने दरबार में विनोद के तौर पर पीठ पर हाथ लगाकर कहा कि काकाजी ने मुझे गिरफ़्तार करते समय मेरी पीठ में घुटना मारा था

महाराणा को राज्यच्युत करने का प्रयत्न

उसका दर्द आज भी बादल होने के समय होता है। उस समय तो किसी ने कुछ न कहा, परन्तु दरबार से रुख़सत होने पर उपर्युक्त पांचों सरदारों को सन्देह हुआ कि कहीं महाराणा हमें मरवा न डालें। महाराजा नाथसिंह डरकर अपने पुत्र भीमसिंह सहित सादड़ी होता हुआ देवलिये पहुंचा। वहां कुछ दिन रहकर उमटवाड़े में गया और वहां अपना व अपने पुत्र का विवाह कर वि० सं० १८०६ श्रावण (ई० स० १७५२ जुलाई) में बूंदी पहुंचा, जहां के रावराजा उम्मेदसिंह ने उसका बहुत स्वागत किया। वहां से वह अपने पुत्र सहित जयपुर के महाराजा माधवसिंह के पास चला गया। उस समय जोधपुर का महाराजा बख़्तसिंह भी माधवसिंह के पास था। दोनों ने उसका स्वागत किया। इसके कुछ ही समय बाद बख़्तसिंह का देहान्त हो गया। माधवसिंह ने नाथसिंह को तसल्ली देकर कहा कि मैं प्रतापसिंह को राज्यच्युत कर आपको गद्दी पर बैठाने में सहायता करूंगा। जिस महाराणा जगतसिंह ने माधवसिंह को गद्दी पर बिठाने के लिए इतना प्रयत्न किया और उसके लिए स्वयं भी बहुत नुकसान उठाया, उसी के पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी से उतारने के लिए माधवसिंह को उद्यत देखकर झलाय के ठाकुर कुशलसिंह ने उसे बहुत मना किया, परन्तु उसने न माना। उपकार का बदला अपकार में देने के अनेक उदाहरण स्वार्थपरायण राजपूतों में प्राचीन काल से अब तक कभी कभी मिल ही जाते हैं। देवगढ़ का जसवन्तसिंह, शाहपुरे का उम्मेदसिंह, सनवाड़ का बाबा भारतसिंह आदि भी नाथसिंह से आ मिले। उन सबने मिलकर

(१) वीरविनोद; भाग २ पृ० १२३६।

मेवाड़ के गांव लूटना प्रारम्भ किया, परन्तु उनको इस प्रयत्न में सफलता न हुई[1]। उसके राज्यकाल में मरहटों ने कई वार मेवाड़ में धावे किये और वे लाखों रुपये ले गये[2]।

महाराणा के निर्बल होने से सरदारों पर उसका प्रभाव नहीं रहा था। सब सरदार अपनी अपनी मनमानी कर रहे थे और खालसे की प्रजा की बहुत दुर्दशा हो रही थी। इस विषय में एक कथा प्रसिद्ध है कि एक दिन महाराणा के सामने एक खेल (अभिनय) किया गया, जिसमें एक किसान को बेगार में गठरी उठाने के लिए कहा गया तो उस(किसान)ने सिपाही को कहा कि मैं तो चूंडावतों की प्रजा हूं। यह सुनकर सिपाही ने डरकर उसे छोड़ दिया। तब सिपाही ने दूसरे किसान को पकड़ा। उसने कहा कि मैं शक्तावतों की प्रजा हूं। सिपाही ने उसे भी डरकर छोड़ दिया। तब उसने तीसरे किसान को गठरी उठाने के लिए कहा। उसने अपने को चौहानों की प्रजा बतलाया, सिपाही ने उसे भी छोड़ दिया। इस तरह उसने क्रमशः कई किसानों को पकड़ा, परन्तु सभी अपने को झाला, राठोड़ आदि की प्रजा बताकर छूट गये। अन्त में एक किसान आया, जिसने अपने को खालसे की प्रजा बताया। सिपाही ने यह सुनते ही उसे जूतियों से मारकर उसके सिर पर बोझा रख दिया। यह अभिनय देखकर महाराणा को इस बात का बहुत दुःख हुआ कि सरदारों की प्रजा तो आराम से रहती है तो हमारी प्रजा पर यह अत्याचार क्यों? उस दिन से उसने प्रजा की अवस्था को सुधारने का प्रयत्न शुरू किया, जिससे थोड़े ही समय में प्रजा की हालत सुधरने लगी[3]।

महाराणा का प्रजाप्रेम

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा) तीन वर्ष से भी कम राज्य करने पाया था कि उनतीस वर्ष की अवस्था में वि० सं० १८१० माघ वदि २ (ई० स० १७५४ ता० १० जनवरी) गुरुवार को उसका देहान्त हो गया। उसके केवल एक ही पुत्र राजसिंह था।

महाराणा की मृत्यु और सन्तति

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३६-३७। वंशभास्कर; पृ० ३६३३-३४।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४९६।

कर्नल टॉड ने उन मरहटों के नाम—सतवा (?), जनकोजी और रघुनाथराव दिये हैं।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० १२३७-३८।

महाराणा राजसिंह (दूसरा)

महाराणा राजसिंह (दूसरे)का जन्म वि० सं० १८०० वैशाख सुदि १३ (ई० स० १७४३ ता० २५ अप्रेल) को, झाला कर्ण[1] की पुत्री बख्तकुंवरी के गर्भ से हुआ। उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १८१० माघ वदि २ (ई० स० १७५४ ता० १० जनवरी) को और राज्याभिषेकोत्सव श्रावणादि वि० सं० १८१२ ज्येष्ठ सुदि ५ उपरान्त (ई० स० १७५६ ता० ३ जून) बुधवार को हुआ[2], उसी दिन उसने सुवर्ण का तुलादान किया[3]। उसी प्रसंग के काव्य

(१) झाला कर्ण काठियावाड़ के अन्तर्गत रणछोड़पुरी (लख्तर) का स्वामी था, राज-राजेश्वर के मन्दिर के श्रावणादि वि० सं० १८१६ (चैत्रादि १८२०) वैशाख सुदि ८ के शिलालेख की, जो खोदा नहीं गया, हस्तलिखित प्रति में कर्ण के पूर्वपुरुषों की नामावली दी है। इस लेख का संक्षिप्त आशय महाराणा अरिसिंह के वृत्तान्त में दिया जायगा।

(२) संवत्भास्करनागभूपरिमितेऽब्दे मासि शुक्रे सिते
पक्षे बाणतिथौ बुधे शुभदिने पुष्यर्क्षयोगे शुभे।
क्षोणीपालशिरोविभूषणमणिज्योत्स्नाञ्चितांघ्रिद्वयः
श्रीमद्राजमृगेन्द्रपार्थिववरः सिंहासने संस्थितः ॥ १ ॥
सिंहासनोपरिगतं सवधूं द्विजेन्द्राः श्रीराजसिंहनृपतिं वृतमाप्तवर्गैः।
श्रीरामचन्द्रमिव सर्वजनाभिरामं चक्रुः सुवर्णकलशैरभितोऽभिषेकम् ॥ ८ ॥

राजसिंहराज्याभिषेक काव्य।

राजसिंह(दूसरे) के बाद शास्त्रानुसार राणीसहित राज्याभिषेकोत्सव के होने का पता नहीं लगता। इस काव्य की रचना भट्ट रूपजित् (रूपजी) के पुत्र सोमेश्वर कवि ने की थी। उसकी एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रति उपर्युक्त कवि के वंशधर उदयपुर राज्य के व्यास (कथाभट्ट) विष्णु-राम शास्त्री के संग्रह से हमें उपलब्ध हुई। उक्त काव्य का कर्त्ता भट्टमेवाड़ा (भट्टमेदपाटीय) ब्राह्मण था। राज्य की तरफ से दी हुई शास्त्री की उपाधि उसके वंश में अब तक चली आती है। उदयपुर के महाराणाओं का राजपूताने के बाहर के राजाओं के साथ का पत्रव्यवहार संस्कृत में होता है, जिसकी रचना इसी वंशवाले करते हैं, जिससे इनको 'संस्कृती' भी कहते हैं, जैसा कि महाराणा भीमसिंह के वि० सं० १८३९ (श्रावणादि) ज्येष्ठ वदि ७ गुरुवार के भट्ट सोमेश्वर के पुत्र पुरुषोत्तम के नाम के परवाने से प्रकट है। उसकी पुष्टि अन्य परवानों से भी होती है।

(३) तुलाधिरूढस्तपते विवस्वान् अतीवलोकैरविषह्यतेजाः।
इतीव राजा स्वयमेव हेम्नस्तुलां तदानीं विधिवच्चकार ॥
(राजसिंहराज्याभिषेक काव्य)

में राज्य के कई अधिकारियों के निम्नलिखित नाम मिलते हैं, प्रधान (मन्त्री) सदाराम, पुरोहित नंदराम, खज़ान्ची जीवनदास, पाकशालाध्यक्ष हिन्दूसिंह, धर्माध्यक्ष लालू, दानाध्यक्ष परमानंद (देवराम के पुत्र शम्भुदत्त का बेटा)। महाराणा के बालक होने के कारण सलूम्बर का रावत जैतसिंह अपनी वंशपरंपरा की रीति के अनुसार राज्य का मुख्य मुसाहब बना।

मेवाड़ की शक्ति प्रतिदिन क्षीण हो रही थी और मरहटों का ज़ोर बढ़ रहा था। वि० सं० १८१६ (ई० स० १७५६) में उनके मल्हारगढ़ की तरफ़ बढ़ने के समाचार

मरहटों का मेवाड़ पर आक्रमण

पाकर महाराणा ने पंचोली काशीनाथ को उनपर ससैन्य भेजा और कानोड़ के रावत जगतसिंह (सारंगदेवोत) आदि को उसकी सहायतार्थ मल्हारगढ़ पहुंचने की आज्ञा दी। उन्होंने वहां पहुंचकर मरहटों को निकाल दिया[1]। महाराणा को बालक देखकर मरहटों के झुण्ड समय समय पर मेवाड़ पर धावे मारने लगे, हर एक धावे में वे बहुत सा रुपया लूटकर ले जाते। महाराणा उनको रोकने में असमर्थ था और उसने चम्बल के निकट के परगने कणजेड़ा, जारड़ा, हिंगलाजगढ़, जामुणिया और बूडसु (बूढ़ा) ठेके पर रखकर उनकी आमदनी उनके पास पहुंचाना स्वीकार कर अपना पीछा छुड़ाया। मरहटों के इन धावों से मेवाड़ की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई[2]।

रावत जैतसिंह का मारा जाना

महाराजा अजीतसिंह को मरवाकर उसका ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा और बख्तसिंह को नागोर की जागीर मिली। कुछ समय बाद इन दोनों भाइयों में अनबन हो गई। वि० सं० १८०६ (ई० स० १७४६) में अभयसिंह के देहान्त होने पर उसका पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। फिर बख्तसिंह ने उसपर चढ़ाई कर जोधपुर पर अपना अधिकार कर लिया, तो रामसिंह ने जयआपा सिंधिया को अपनी सहायता के लिए बुलाया। इधर बख्तसिंह के मरने पर उसका कुंवर विजयसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। मरहटों ने उसपर आक्रमण कर जोधपुर

(१) महाराणा के वि० सं० १८१६ के परवाने तथा उसी सम्वत् के पंचोली जसवन्त-राय के पत्र से।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६६ और ४६७ टिप्पण १। वीरविनोद; भाग २, पृ० १५४०।

को जा घेरा, जिसपर वह मेड़ते होता हुआ नागोर में जा ठहरा। मरहटों ने वहां भी उसका पीछा किया। तब उसने महाराणा राजसिंह (दूसरे) को लिखकर उसके मुसाहब रावत जैतसिंह को समझौता कराने के लिए बुलाया। इसपर महाराणा ने उसे उधर भेजा। ऐसे समय में महाराजा विजयसिंह की इच्छानुसार दो राजपूतों ने जयआपा को छल से मार डाला[1]। इसपर मरहटी सेना ने क्रुद्ध हो कर राजपूतों पर हमला कर दिया, जिसमें जैतसिंह भी अपने सैन्य सहित बड़ी वीरतापूर्वक लड़ता हुआ निरर्थक मारा गया[2]।

महाराणा का रायसिंह को बनेड़ा पीछा दिलाना

महाराणा को बालक देखकर शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने फिर सिर उठाया और राजा सरदारसिंह से बनेड़े का परगना छीन लिया। इसपर वह (सरदारसिंह) महाराणा के पास उदयपुर चला आया। कुछ दिनों बाद उसके वहीं मरने पर महाराणा ने बनेड़े में सेना भेजकर उसके पुत्र रायसिंह को बनेड़ा दिला दिया। महाराणा ने उसकी रक्षा के लिए राठोड़ शिवसिंह (रूपाहेलीवाला) की ज़मानत पर वहां सरकारी तोपखाना और कुछ सेना रक्खी[3]।

महाराणा की मृत्यु

महाराणा राजसिंह (दूसरा) सात वर्ष राज्य कर वि० सं० १८१७ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७६१ ता० ३ अप्रेल) को मर गया[4]।

महाराणा अरिसिंह (दूसरा)

महाराणा राजसिंह के निस्सन्तान[5] मरने से सरदार बहुत चिन्तित हुए और

(१) वंशभास्कर; पृ० ३६२६-३०, ३६४३-५२।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० १५४०।

(३) वही; भाग २, पृ० १५४१।

(४) उक्त महाराणा के समय का वि० सं० १८१२ माघ सुदि ५ का एक शिलालेख उदयपुर में संध्यागिरि के मठ से पश्चिम के एक शिवालय में लगा हुआ है, जिसमें उक्त महाराणा के समय सनावढ जाति के भवाड़ी (तिवाड़ी) देवकरण के पौत्र और मायाराम के पुत्र शिवदास द्वारा शिव और विष्णु के मन्दिरों के बनाये जाने का उल्लेख है।

(५) इस बारे में ऐसी जनश्रुति प्रसिद्ध है कि अरिसिंह ने राज्य प्राप्त करने के लिए राजसिंह को मरवा डाला था, परन्तु इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६७-६८)।

उत्तरक्रिया के पश्चात् वे सब अन्तःपुर की ड्योढ़ी पर उपस्थित हुए। उन्होंने राजसिंह की माता से पुछवाया कि यदि स्वर्गीय महाराणा की झाली राणी के गर्भ हो तो हम सब आपके आधिपत्य में रहकर रियासत का कुल काम करेंगे, परंतु उसने अरिसिंह के भयसे उन्हें कहलाया कि उसके कोई गर्भ नहीं है[1]। तब सबने मिलकर महाराणा जगतसिंह (दूसरे) के छोटे पुत्र अरिसिंह को वि० सं० १८१७ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७६१ ता० ३ अप्रेल) को गद्दी पर बिठाया।

महाराणा अरिसिंह बहुत तेज मिजाज़ और क्रोधी था। 'हरीपूजन'[2] के कुछ दिन पश्चात् वह एकलिंगजी के दर्शन को गया। वहां से लौटते समय घोड़ा दौड़ाता हुआ वह चीरवा के तंग घाटे में पहुंचा, जहां बहुत से सरदार और सवार चल रहे थे। महाराणा ने आगे का मार्ग खाली करने के लिए छड़ीदार आदि नौकरों को आज्ञा दी, परन्तु रास्ता बहुत तंग होने के कारण सहसा वैसा नहीं हो सकता था। इसपर छड़ीदारों ने कुछ सरदारों के घोड़ों की पीठ पर छड़ियां भी मारीं। उस समय तो सब सरदार इस अपमान को सहकर चुपचाप चलते रहे, परन्तु आम्बेरी की बावड़ी के पास पहुंचने पर वे सब महाराणा का साथ छोड़कर वहीं ठहर गये। उन्होंने परस्पर सलाह की कि प्रारम्भ में ही महाराणा का यह बर्ताव है, तो आगे क्या होगा। उस समय राजसिंह की झाली राणी गुलाबकुंवरि के गर्भ होने की बात कुछ कुछ प्रकाश में आ गई थी, इसलिए बेदला के राव रामचन्द्र ने गोगूंदा के जसवन्तसिंह से कहा कि मेरी पुत्री तो महाराणा राजसिंह के साथ सती हो गई। अब तुम्हारी बहिन के गर्भ होना सुना जाता है। यदि हिम्मत हो तो सब कुछ हो सकता है। इस तरह विचार कर सब सरदार उदयपुर में आये और अरिसिंह को राज्य-च्युत करने का उद्योग शुरू किया।

महाराणा को राज्यच्युत करने का प्रयत्न

---

(१) आढ़ा किशन कृत भीम-विलास काव्य; पृ० २२ (हस्तलिखित)।

वस्तुतः झाली राणी के गर्भ था, परन्तु उसे डर था कि ऐसा कह देने से अरिसिंह उसे मरवाने का प्रयत्न करेगा, इसलिए वह इन्कार हो गई, परन्तु पंचोली जसवन्तराय के नाम के स्वयं महाराणा अरिसिंह के वि० सं० १८२५ ज्येष्ठ वदि २ रविवार के रंड्यारड़ी गांव देने के परवाने में महाराणा राजसिंह के कुंअर होने और उसके मर जाने का स्पष्ट उल्लेख है।

(२) मेवाड़ में यह रीति है कि महाराणा गद्दीनशीनी के बाद शोकनिवृत्ति के लिए शहर के बाहर सब्ज़ी का पूजन करने को जाया करते हैं, जिसे 'हरी' की सवारी कहते हैं।

कुछ समय बाद राजमाता झाली से एक पुत्र रत्नसिंह उत्पन्न हुआ, तो राजसिंह और प्रतापसिंह की राणियों ने जसवन्तसिंह से कहलाया कि यह मेवाड़ का स्वामी है, इसकी रक्षा करो। वह उस बालक को अपने यहां ले गया और गुप्त स्थान में रखकर उसकी परवरिश करने लगा। कुछ समय पीछे यह बात प्रसिद्धि में आने लगी[1]।

महाराणा राजसिंह के समय ठेकेपर रक्खे हुए जिन परगनों की आमदनी मरहटों के पास पहुंचाना स्वीकार किया गया था, वह तथा पेशवा का खिराज (डेढ़ लाख रुपया प्रति वर्ष) कुछ वर्षों से न भेजने के

मल्हारराव हुल्कर का मेवाड़ पर आक्रमण

कारण मल्हारराव हुल्कर बहुत क्रुद्ध हुआ और चढ़े हुए रुपये शीघ्र भेजने के लिए उसने लिखा। महाराणा अपनी आर्थिक दशा अच्छी न होने और कहत के कारण समय पर रुपया न पहुंचा सका, जिससे मल्हार-राव मेवाड़ पर आक्रमण करता हुआ ऊंटाले तक आ पहुंचा। तब महाराणा ने कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह और अपने धायभाई रूपा को उसके पास भेजा। इन लोगों ने उसे समझाया तो उसने साठ लाख रुपये मिलने पर वापस जाना स्वीकार किया। अन्त में ५१ लाख रुपये लेकर उसने वि० सं० १८२० (ई० स० १७६३) तक कुल चढ़े हुए रुपयों का फ़ैसला कर लिया। इसी समय हुल्कर ने उन ठेके के तौर पर सौंपे हुए परगनों पर अपना अधि-कार कर लिया[2]।

अभिमानी महाराणा मेवाड़ के हितचिन्तकों की बात पर ध्यान न देकर अपने मुंह लगे हुए आदमियों के कथन पर अधिक विश्वास करता था। उसने

महाराणा की दमन नीति

राज्य के सच्चे हितचिन्तक अमरचन्द को हटाकर जस-वन्तराय पंचोली को अपना मुसाहब बनाया और महता अगरचन्द (बच्छावत) को, जो राज्य का सच्चा हितैषी था, अपना सलाहकार नियत किया।

महाराणा के कटु व्यवहार से सरदार पहले ही अप्रसन्न थे और जब उन्हें राजमाता झाली से पुत्र के उत्पन्न होने का समाचार मिला, तब उनका महाराणा से विरोध और भी बढ़ गया। अरिसिंह ने उनको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न तो न किया, किन्तु दमननीति से काम लेना शुरू किया। उसने राजपूतों पर विश्वास

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १५४३-४४।
(२) वही; भाग २, पृ० १५४६-४७। टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६७।

न कर सिन्ध और गुजरात से मुसलमान सैनिकों को बुलाकर अपने यहां नियुक्त किया। महाराणा को नाथसिंह से बहुत भय था, क्योंकि उसका प्रभाव सरदारों पर काफ़ी था और वह महाराणा के अनुचित कार्यों से अप्रसन्न होकर बागोर चला गया था। महाराणा ने उसे मरवाने के लिए भैंसरोड़ के रावत लालसिंह को बुलाया और उसे नाथसिंह को मारने के लिए उद्यत कर प्रथम श्रेणी के सरदारों की प्रतिष्ठा देने का प्रलोभन दिया। पहले तो कुछ समय तक वह इसे टालता रहा, परन्तु जब महाराणा की ओर से बहुत तकाज़ा होने लगा, तब वह भैंसरोड़ से रवाना होकर बागोर पहुंचा। नाथसिंह उस समय नर्मदेश्वर का पूजन कर रहा था। लालसिंह ने भीतर जाकर उसे प्रणाम किया तो नाथसिंह ने भी उसको प्रणाम किया और पूजा के समय न उठने के लिए क्षमा मांगी, परन्तु उसने इसके उत्तर में कटार निकाल कर उसकी छाती में मार दिया, जिससे वह वहीं मर गया और लालसिंह घोड़े पर सवार होकर वहां से भाग निकला। यह घटना वि० सं० १८२० माघ सुदि २ (ई० स० १७६४ ता० ४ फ़रवरी) को हुई[1]। इस घटना के कुछ ही महीनों बाद हत्यारे लालसिंह का भी देहान्त हो गया।

महाराणा महाराज नाथसिंह को मरवाकर ही सन्तुष्ट न हुआ, उसकी आंखों में दूसरे लोगों के बहकाने पर सलूंबर का रावत जोधसिंह भी, जो राज्य का सच्चा हितैषी था, खटक रहा था। महाराणा ने उसे अपने पास बुलाया, परन्तु उसे महाराणा के इस विचार का हाल पहले ही मालूम हो गया था, इस लिए वह उदयपुर आने में टालाटूली करता रहा। जब महाराणा ने यह सुना कि वह अपने सुसराल मोही जाने वाला है, तब वह नाहरमगरा चला गया, जहां से होकर मोही को रास्ता जाता था। वहां पहुंचने पर जोधसिंह, महाराणा को मुजरा किये बिना चला जाना अनुचित समझ कर दरबार में उपस्थित हो गया। महाराणा सलाह के बहाने उसे एकान्त में ले गया और एक पान की बीड़ी जेब से निकालकर उससे कहा कि यह बीड़ी या तो मुझे खिलादें या आप खालें। इससे उसे यह निश्चय हो गया कि इसमें विष मिला है, परन्तु फिर उसने महाराणा के हाथ से पान लेकर खा लिया और कहा कि आप

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १५४४-४६।

चिरायु हों, सेवक के प्राण मालिक की ख़ैरख्वाही के लिए ही हैं। थोड़ी देर बाद उसका प्राणान्त हो गया[1]। उसकी छत्री नाहरमगर के पास अब तक विद्यमान है। उसका पुत्र पहाड़सिंह अपनी परम्परागत कुल-मर्यादा का विचार कर महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया।

सरदार लोग चीरवे के घाटे की घटना से महाराणा के विरुद्ध तो हो ही रहे थे, ऐसे में सिन्धी सिपाहियों को भरती करने और उपर्युक्त दोनों सरदारों को मरवाने से वे और भी भड़क उठे और महाराणा को राज्यच्युत करने पर कटिबद्ध हुए। जसवन्तसिंह ने रत्नसिंह को कुंभलगढ़ में ले जाकर उसे मेवाड़ के महाराणा के नाम से प्रसिद्ध किया। सलूंबर, बीजोल्यां, बदनोर, आमेट घाणेराव और कानोड़[2] के सरदारों आदि को छोड़कर बाकी बहुत से उमराव रत्नसिंह के पक्ष में हो गये। इस आपत्ति के अवसर पर कोटे से झाला जालिमसिंह[3], जो बड़ा बुद्धिमान और राजनीतिज्ञ पुरुष था, महाराणा के पास आ रहा, जिससे महाराणा को कुछ हिम्मत बंधी। महाराणा ने उसे चीताखेड़े की जागीर और राजराणा का ख़िताब दिया। इस समय महाराणा ने देलवाड़े के झाला राघवदेव को बहुत कुछ लिखकर अपनी तरफ मिला लिया। महाराणा ने शाहपुरे के उम्मेदसिंह को भी अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न

सरदारों का विद्रोह

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०६। वीरविनोद; भाग २, पृ० १५४७।

(२) टॉड ने कानोड़ का नाम नहीं लिखा, परन्तु महाराणा अरिसिंह के वि० सं० १८१८ से १८२५ तक के रावत जगतसिंह के नाम के परवानों तथा साह सदाराम के पत्रों से पाया जाता है कि वह तो महाराणा के सहायकों में ही था और उज्जैन की लड़ाई में उसका काका सकतसिंह ठिकाने की जमीयत सहित विद्यमान था।

(३) जालिमसिंह झालावाड़ राज्य के राजराणाओं का मूल पुरुष था। जब जयपुर के महाराजा माधवसिंह ने मरहटों की सहायता लेकर कोटे पर चढ़ाई की, उस समय जालिमसिंह ने मरहटों को अपनी बुद्धिमानी से रोककर कोटे की रक्षा की। इससे उसका सम्मान बहुत बढ़ गया और वह कोटे का मुसाहिब बनाया गया। इससे हाड़ा सरदार अप्रसन्न हुए और महाराव गुमानसिंह को उसके बरख़िलाफ़ बहकाकर उसके कामों में हस्तक्षेप करने लगे। जालिमसिंह ने बिना पूरे अधिकार लिए काम करने से इन्कार किया, तब महाराव ने उसकी मुसाहिबी और नानते की जागीर छीन ली, जिससे जालिमसिंह वहां से उदयपुर चला आया, जहां महाराणा ने उसे अपने पास रक्खा (टॉ; रा; जि० ३, पृ० १५३२-३३ और १५३७)। इसका विस्तृत विवरण कोटा और झालावाड़ राज्य के इतिहास में दिया जायगा।

किया, जिसपर उसने अर्ज़ किया कि मुझे महाराणा जगतसिंह ने जो जागीर दी थी वह भी आज तक नहीं मिली। इसपर महाराणा ने काछोला का परगना वि० सं० १८२२ (ई० स० १७६५) में उसे देना स्वीकार कर माना धायभाई को उसके पास भेजा। परगना मिलने पर वह महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ। बनेड़े का राजा रायसिंह भी महाराणा के पक्ष में रहा। इस प्रकार महाराणा की ताक़त बढ़ गई और उसने रत्नसिंह का अधिकार, जो उदयपुर के पास तक हो गया था, अधिकांश में उठा दिया। रावत जसवन्तसिंह (देवगढ़वाले) ने सोचा कि इस समय मरहटों की सहायता लिए बिना सफल होना कठिन है। इसलिए उसने अपने पुत्र राघवदेव को माधवराव सिंधिया के पास भेजा। सिंधिया ने सवा करोड़ रुपया लेना स्वीकार कर उसे सहायता देने का वचन दिया। इधर महाराणा ने अपने सैन्य-बल को बढ़ाने के लिए मरहटों की सहायता लेना आवश्यक समझकर झाला जालिमसिंह और महता अगरचन्द को पेशवा के अफ़सर रघु पायगिया और दौलामियां के पास भेजा। उन दोनों ने माधवराव को रत्नसिंह का पक्ष न लेने के लिए समझाया, परन्तु उसने बड़ी रक़म मिलने के लोभ में आकर उनका कहना न माना, जिसपर वे दोनों आठ हज़ार सवारों के साथ महाराणा के पास उदयपुर चले आये और इस सहायता के बदले में बीस लाख रुपये लेना स्वीकार किया। उनके आने से महाराणा का सैनिक बल और भी बढ़ गया। यह खबर सुनकर सिंधिया बहुत बिगड़ा। इसपर सलूंबर का रावत पहाड़सिंह, शाहपुरे का उम्मेदसिंह और देलवाड़े का झाला राघवदेव सिंधिया को समझाने के लिए गये, परन्तु उसने न माना, जिससे वे उदयपुर लौट आये। इस समय महाराणा ने झाला राघवदेव पर सन्देह होने के कारण उसे मरवा डाला[1]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६६–५०० । वंशभास्कर; पृ० ३७३६-३७ । वीरविनोद; भाग २, पृ० १५५०–५१ । इसकी हत्या के विषय में प्रसिद्ध है कि सिन्धी-सिपाही वेतन न मिलने के कारण बहुत बिगड़ रहे थे। महाराणा के संकेत से रावत पहाड़सिंह ने उनसे कहा कि यदि तुम राघवदेव को मार दो, तो तुम्हारा वेतन चुका दिया जायगा। इधर उसने राघवदेव के पास जाकर कहा कि सिन्धी उपद्रव करने के लिए तैयार हैं, उन्हें जाकर समझा दो। वह इस धोखे से परिचित न होने के कारण सिन्धियों के पास चला गया, जहां उन्होंने उसे मार डाला।

रत्नसिंह का पक्ष लेकर माधवराव का मेवाड़ पर आने का विचार सुनकर महाराणा ने भी रावत पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह, महता अगरचन्द, झाला जालिमसिंह, रायसिंह (बनेड़े का), बिजोलिया का शुभकरण, भैंसरोड़ का रावत मानसिंह, फतेसिंह (आमेट का), वीरमदेव (घाणेराव का), अक्षयसिंह (बदनोर का), बंभोरे के रावत कल्याणसिंह और रघु पायगिया तथा दौलामियां आदि की अध्यक्षता में एक सेना भेजी और कहा कि पहले सिंधिया से संधि करने का प्रयत्न करना, यदि वह पेशकश लेना चाहे तो हम यहां चुका देंगे। यदि वह किसी तरह न माने तो लड़ना। उन्होंने क्षिप्रा नदी पर पहुंचकर सिंधिया से संधि की बातचीत की, परन्तु उसके न मानने पर वि० सं० १८२५ पौष सुदि ६ (ई० स० १७६६ ता० १३ जनवरी) को लड़ाई शुरू हुई। तीन दिन तक लड़ाई होने के बाद राजपूतों ने परस्पर सलाह की। उम्मेदसिंह ने पहाड़सिंह को कहा कि आप अभी छोटी अवस्था के हैं और विवाह किये भी थोड़े दिन हुए हैं, इसलिए आप उदयपुर चले जावें। मरने का शुभ अवसर तो आपको फिर कभी भी मिल जायगा। उसने जवाब दिया कि आप मेरी आयु को मत देखिये, सलूंबर के ठिकाने की प्रतिष्ठा को देखिये। वह कितना स्वामिभक्त है, उसकी प्रतिष्ठा मेरे हाथ में है। यदि मैं एक क़दम भी पीछे हटूं तो सब लोग मुझसे घृणा करेंगे। दूसरे लड़ाई का काम युवकों के ही हाथ में रहना चाहिये, आप वृद्ध और अनुभवी हैं, आपका महाराणा के पास जाकर उन्हें सलाह देना अच्छा होगा। उम्मेदसिंह ने उत्तर दिया कि आपका कहना ठीक है, परन्तु उज्जैन का क्षेत्र, क्षिप्रा का किनारा और अपने स्वामी के लिए लड़ाई में मेरा और आपका साथ मरने का शुभ अवसर फिर कब मिलेगा। फिर सब सरदारों ने केसरिया पोशाक पहनकर तुलसी की मंजरियां और रुद्राक्षमाला पगड़ी में रखकर सिंधिया की सेना पर आक्रमण किया। राजपूत बहुत वीरतापूर्वक लड़े और एक ही हमले में मरहटों को तितर बितर कर दिया। निकट ही था कि मरहटे पूरी तरह हार जाते, परन्तु इतने में सिंधिया की सहायता के लिए देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह द्वारा जयपुर से भेजी हुई १५००० नागों (साधुओं, महापुरुषों) की सेना के आ पहुंचने के कारण विजय का झंडा मरहटों के हाथ में रहा। इस युद्ध में पहाड़सिंह, उम्मेदसिंह और रायसिंह (बनेड़े का) मारे गये।

उज्जैन की लड़ाई

राजा रायसिंह (बनेड़ा)

The Indian Press, Ltd., Allahabad.

सादड़ी का झाला कल्याण, दौलामियां और मानसिंह[1] आदि घायल हुए। झाला जालिमसिंह के घायल होकर घोड़े से गिरने पर मरहटे उसे क़ैद कर ले गये, जिसको उसके एक मरहटे मित्र ने ६०००० रुपये देकर छुड़ाया। इसी प्रकार महता अगरचन्द व रावत मानसिंह भी घायल होकर क़ैद हुए, जिनको रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के भेजे हुए बावरी हिकमतअमली से निकाल लाये[2]।

अमरचन्द को प्रधान बनाना

इस पराजय का समाचार सुनकर महाराणा अपनी सैनिक शक्ति के कम हो जाने से बहुत घबराया। उसके सहायक सरदारों में सलूंबर का भीमसिंह (पहाड़सिंह का उत्तराधिकारी), कुराबड़ का रावत अर्जुनसिंह और बदनोर का ठाकुर अक्षयराज ही रह गये थे। सरदारों के उत्साह दिलाने पर महाराणा ने सिंध तथा गुजरात से और मुसलमान सैनिकों को बुलाकर युद्ध की तैयारी शुरू की। शहरपनाह के चारों ओर छोटे छोटे क़िले बनवाकर शहर के कोट दरवाज़े व खाई को ठीक किया[3]। दुश्मनभंजन तोप को एकलिंग[4] गढ़ पर चढ़ाया। महाराणा की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी, इसलिए वह समय पर मुसलमान सैनिकों को वेतन न दे सका, जिससे वे बहुत बिगड़े। महाराणा इस आन्तरिक उपद्रव से बहुत डरा और रावत भीमसिंह की सलाह से उसने अमरचन्द बड़वा को इस विकट स्थिति को संभालने के लिए प्रधान बनाया। अमरचन्द ने कहा मैं स्पष्टवक्ता और मिजाज का तेज हूं। मैंने पहले भी जब जब काम किया है तब तब पूरे अधिकार के साथ ही। आप किसी की नेकसलाह मानते नहीं और अपनी

(१) कर्नल टॉड ने इसे नरवर का भूतपूर्व राजा लिखा है, जो भ्रम है, यह भैंसरोड़ के रावत लालसिंह का पुत्र था (वंशभास्कर पृ० ३७४० छ० २)।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५०० । भीमविलास; पृ० २३-२८। वंशभास्कर; पृ० ३७३८-४१। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५५६-५८।

(३) दृढं प्रतोलीपरिखातिरम्यं प्राकारमाकारजितस्मरोऽसौ ।
पुरस्य यः खण्डितपूर्वमारादाविश्चकाराभिनवं क्षितीशः ॥ ७३ ॥

महाराणा अरिसिंह के सम्बन्ध के संस्कृत-काव्य से ।

(४) पीछोला तालाब की बड़ी पाल के दक्षिणी छोर के पास के माछलामगरा (मत्स्य शैल) नामक पहाड़ पर बना हुआ गढ़।

ही इच्छा से सब कुछ करते हैं। इस समय की अवस्था बहुत विकट, सिपाही विद्रोही, खज़ाना खाली और प्रजा ग़रीब है अतएव यदि आप मुझे पूरे अधिकार दें, तो कुछ उपाय किया जा सकता है। महाराणा ने कहा कि यदि तुम हमारी महाराणियों के ज़ेवर भी मांगोगे तो भी हम इन्कार नहीं करेंगे। प्रधान पद स्वीकार करने के दूसरे ही दिन अमरचन्द ने राज्य के सोने चांदी के बर्तन व रत्न मंगवाकर सोने चांदी के कम क़ीमत के सिक्के बनवाये तथा रत्नों को गिरवी रखकर सेना का वेतन चुका दिया[1]।

माधवराव की उदयपुर पर चढ़ाई

रत्नसिंह सात वर्ष की आयु में शीतला की बीमारी से मर गया, परन्तु महाराणा की सरदारों के साथ अनबन होने के कारण उन्होंने रत्नसिंह की अवस्था के एक दूसरे लड़के को रत्नसिंह करार देकर[2] महाराणा को पदच्युत करने का उद्योग ज़ारी रक्खा और माधवराव सिंधिया को वे उदयपुर पर चढ़ा लाये। इधर महाराणा ने भी लड़ाई की तैयारी की और बड़वा अमरचन्द की सलाह के अनुसार महाराज गुमानसिंह (कारोही के महाराज बख्तसिंह का पुत्र), भीमसिंह (सलूंबर का), अक्षयसिंह (बदनोर का), अर्जुनसिंह (कुरावड़ का), बाघसिंह (करजाली का), अर्जुनसिंह (शिवरती का), झाला साहिबसिंह (महाराणा का मामा), शक्तिसिंह (खैराबाद का), सूरतसिंह (महुवा का), धीरतसिंह (हंमीरगढ़वाला), शिवसिंह (भूणास का), सोलंकी पेमा, शिवसिंह (रूपाहेली का), शम्भुसिंह (सनवाड़ का), दौलतसिंह (कारोई का), अनूपसिंह (बावलास का), ईशरदास (दौलतगढ़ का), अगरचन्द महता और कई सिन्धी अफसरों को दरवाज़ों, महलों, गढ़ियों आदि भिन्न भिन्न सुरक्षित स्थानों परससैन्य नियत किया। माधवराव ने आकर उदयपुर पर घेरा डाला और लड़ाई शुरू हो गई। बाघसिंह ने दुखभंजन तोप की मार से मरहटों को पास फटकने न दिया। सिन्धिया ने उसे अपनी तरफ़ मिलाकर तोप की मार बन्द करने के लिए ५०००० रुपये का प्रलोभन दिया, उसने रुपये तो लेकर महाराणा के नज़र कर दिये और मरहटों के आगे बढ़ने पर तोप की

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५००–५०३।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५५०।

मार ज्यों की त्यों जारी रक्खी, जिससे मरहटों की बहुत हानि हुई। इस प्रकार छः मास तक लड़ने पर भी मरहटे शहर पर अधिकार न कर सके, क्योंकि उनकी की सेना खुले मैदान में थी, जिससे ऊंचे स्थानों पर रक्खी हुई तोपों से उनकी बहुत हानि होती रही।

माधवराव से सन्धि

जब उदयपुर में भोजन की सामग्री की कमी होने लगी तब राजपूतों ने उससे सन्धि की चर्चा शुरू की, जो माधवराव चाह रहा था। महाराणा ने कहलाया कि यदि आप रत्नसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहते हों तो उससे रुपया लें, यदि केवल रुपये लेना ही इष्ट है, तो हम देने को तैयार हैं। माधवराव ने जब देखा कि रत्नसिंह के पक्षवालों से रुपये मिलने की कोई सम्भावना नहीं है, तब वह महाराणा से संधि करने पर उद्यत हुआ, जिसपर कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह ने उससे मिलकर उसको सत्तर लाख रुपये लेकर सुलह करने के लिए राजी किया और आपस में अहदनामा लिखा गया, परन्तु उसपर दृढ़ न रहकर सिन्धिया ने बीस लाख रुपये और लेना चाहा। इस बात पर क्रुद्ध होकर अमरचन्द ने अहदनामे को फाड़ डाला और युद्ध जारी रखना निश्चय कर लिया। सब राजपूत तो मरने को उद्यत ही थे, सिन्धियों के अफ़सर मिर्ज़ा आदिलबेग ने भी कहा कि हम तनख्वाह न लेंगे और मरते दम तक लड़ेंगे। यह खबर सुनकर सिन्धिया ने स्वयं सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। जिसपर अमरचन्द ने कहलाया कि तुम पहले अहदनामे पर दृढ़ नहीं रहे। अब साठ लाख रुपये लेना चाहो तो हमें सन्धि स्वीकार है। सिन्धियों ने ६० लाख रुपयों के अतिरिक्त ३$\frac{1}{2}$ लाख दफ्तर खर्च के लेकर संधि करना स्वीकार किया। तेतीस लाख रुपयों के एवज में सरदारों से वसूल किये हुए आठ लाख रुपये तथा सोना, चांदी नक़द और कुछ जवाहिर दिये, बाक़ी रुपयों के बदले जावद, जीरण, मोरवण[1] आदि परगने इस शर्त पर गिरवी रक्खे गये कि उनकी आमदनी महाराणा के अहलकार के शामिलात से प्रतिवर्ष जमा की

(१) कर्नल टॉड ने लिखा है कि महाराणा से लिये हुए परगनों में से मोरवण का परगना हुल्कर को दिया (जि० १, पृ० ४०४)। उसने यह भी लिखा है कि सिन्धिया की तरह हुल्कर ने भी महाराणा को चढ़ाई की धमकी देकर नींबाहेड़ा का परगना ले लिया (पृ० वही), परन्तु यह ठीक नहीं। नींबाहेड़ा का परगना अरिसिंह के समय में नहीं किन्तु हम्मीरसिंह के समय में अहल्याबाई ने लिया था।

जावे और जब कुल रुपये अदा हो जावें तब यह परगने पीछे महाराणा को सुपुर्द कर दिये जावें। इसके अतिरिक्त नीचे लिखी मुख्य शर्तें भी उस अहदनामे में स्वीकृत हुई—

१—रत्नसिंह मन्दसोर में रहे और उसे ७५००० रुपयों की जागीर दी जावे। यदि उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी मन्दसोर छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जावे तो उसका पक्ष न किया जावे और उसकी जागीर खालिसे कर ली जावे। यदि वह मंदसोर में रहे तो उसके साथ रावत भीमसिंह या उसका कोई भाई बेटा रहा करेगा।

२—मेवाड़ में सिन्धिया के जहां जहां थाने हों, वे उठा दिये जावें।

३—मेवाड़ में बावल्या (एक मरहटा सरदार) की सेना न रहने पावे।

४—बेगूं से जो रुपये वसूल होंगे, वे इन रुपयों के अन्तर्गत गिने जावेंगे।

५—सिंधिया को दिये हुए परगनों के सरदारों के साथ पहले का सा वर्ताव बना रहे। उनके साथ कोई छल कपट न किया जाय।

६—रत्नसिंह के साथ रहनेवाली दो हज़ार फ़ौज का वेतन तीन मास तक महाराणा दें। उसके बाद यदि वह फ़ौज रक्खे तो उसका वेतन वह स्वयं दे।

७—महाराणा का वकील सिंधिया के यहां रहेगा। उसकी मान मर्यादा का पूरा खयाल रक्खा जाय।

८—रत्नसिंह के पक्ष के सरदारों ने नये सिरे से जिन गांवों आदि पर अधिकार किया है, वे सब छुड़ा दिये जावें।

९—मेवाड़ में सिन्धिया, बावल्या, सदाशिव गंगाधर और बैहरजी ताकपीर ने जहां जहां ज़ब्ती की वहां से श्रावण वदि ३ के पीछे जो रकम वसूल हुई होगी, वह सिंधिया के बाक़ी रुपयों में भर लेनी होगी।

१०—जितने रुपये सिन्धिया को दिये वे तीनों सरदारों—हुलकर, सिंधिया और पंवार—में बांट दिये जावें और उसकी रसीद श्रीमन्त (पेशवा) की मुहर के साथ मिले।

११—सिंधिया, जोगी वग़ैरह को, जो मेवाड़ में रहकर फ़साद करें, निकाल दे।

इस प्रकार संधि होने के पीछे माधवराव सिंधिया वि० सं० १८२६ श्रावण

वदि ३ (ई० स० १७६६ ता० २१ जुलाई) को मालवे को लौट गया[1]। प्रधान अमरचन्द, रावत भीमसिंह और अर्जुनसिंह आदि सरदारों पर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें इनाम इकराम दिया तथा सिन्धियों के जमादार मिर्ज़ा आदिलबेग के लड़के अब्दुलरहीमबेग को जागीर देकर प्रथमश्रेणी के सरदारों के बराबर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई एवं अनवरबेग, मनवरबेग और चमनबेग आदि की भी इज्जत की। अजमेरीबेग के लड़ाई में मारे जाने के कारण उसकी क़बर के निमित्त १०० बीघा भूमि दी गई[2]।

उपर्युक्त संधि होनेपर सिंधिया तो रुपये लेकर लौट गया, परन्तु रत्नसिंह मन्दसोर में न गया और न उसके साथी सरदारों ने उसका पक्ष छोड़ा।

महापुरुषों से युद्ध

देवगढ़ के राघवदेव, भींडर के मुहकमसिंह वगै़रह विद्रोही सरदारों ने फिर महापुरुषों[3] (नागों) के बड़े भारी सैन्य को इकट्ठा कर मेवाड़ पर चढ़ाई की और महाराणा के सरदारों को धमकियां देना व गांवों को लूटना शुरू किया। महाराणा भी यह खबर सुनते ही रावत भीमसिंह और अर्जुनसिंह को उदयपुर की रक्षार्थ छोड़कर ससैन्य चल पड़ा और देलवाड़े होता हुआ

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०३-४। भीमविलास; पृ० २६-४४। वंशभास्कर; पृ० ३७४६-५०। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५६०-६६।

वीर-विनोद में उपर्युक्त पत्र की नक़ल दी गई है।

भीमविलास में जो जो सरदार या अफ़सर जहां जहां नियत हुए थे, उसका पूरा विवरण दिया हुआ है। हमने ऊपर मुख्य मुख्य नाम ही दिये हैं। उक्त पुस्तक में कई ब्राह्मणों, महाजनों, पन्चोलियों तथा धायभाइयों के और भी नाम हैं।

वंशभास्कर में लिखा है कि महाराणा ने झाला ज़ालिमसिंह को 'ओल' में सिंधिया के सुपुर्द किया, जिसे कोटा के राव गुमानसिंह ने छुड़ाया (पृ० ३७५०, छन्द ११-१३), परंतु यह कथन विश्वास के योग्य नहीं; क्योंकि सिन्धिया की ठहरी हुई रक़म के बदले में उपर्युक्त परगने उसे सौंप दिये थे, ऐसी अवस्था में ओल की आवश्यकता ही न थी और न इसका किसी मेवाड़ के इतिहास में उल्लेख है।

(२) सिन्धियों के सम्बन्ध के महाराणा के परवाने का फ़ोटो कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान की जि० १, पृ० २३२ और २३३ के बीच प्रकाशित किया है।

(३) ये दादूपन्थी साधु थे, जो जयपुर की सेना में बड़ी संख्या में रहते थे और वहीं से रत्नसिंह के पक्षवाले उन्हें मेवाड़ में लाये थे। उनको महापुरुष कहते हैं। अब तक वे जयपुर की सेना में किसी क़दर विद्यमान हैं, वे लोग विवाह नहीं करते।

जीलोला गांव में पहुंचा। महापुरुषों की सेना मोकरूंदा गांव में ठहरी हुई थी। टोपला गांव में टोपल मगरी के पास मुक़ाबला हुआ। महाराणा की सेना में महाराणा के काका बाघसिंह और अर्जुनसिंह, महता अगरचन्द, बड़वा अमरचन्द, पंवार राव शुभकरण, रावत प्रतापसिंह (आमेट का), रावत फतहसिंह[1] (कोठारिये का), शिवसिंह (रूपाहेली का), अक्षयसिंह का छोटा पुत्र ज्ञानसिंह (बदनोर का), वीरमदेव (घाणेराव का), विशनसिंह (चाणोद-वाला), सूरजमल (नारलाई का), शेरसिंह (खोडवाला), छत्रसिंह (वुसी का), शम्भूसिंह (सनवाड़ का), शक्तिसिंह (खैराबाद का), सूरतसिंह (महुवा का), धीरतसिंह (हमीरगढ़ का), चतुरसिंह (बनेड़िये का), नाथसिंह (थांवले का), मोहकमसिंह (गाडरमाले का), ईशरदास (दौलतगढ़ का), गजसिंह (लसाणी का), नाथसिंह (जीलोला का), उम्मेदसिंह (कोसीथल का), तख़्तसिंह (पीथावास का), जवानसिंह (रूंद का), सूरजमल (सियाड़ का) तथा कई सिन्धी अफ़सर थे। युद्ध में दोनों पक्ष बड़ी वीरतापूर्वक लड़े। अन्त में विद्रोहियों की सेना भाग निकली। महाराणा विजय प्राप्तकर उदयपुर लौटा। इस युद्ध से रत्नसिंह की ताकत बिल्कुल कम हो गई[2]।

महापुरुषों से दूसरी लड़ाई

विद्रोही लोग एक साल तक शान्त रहे। फिर महता सूरतसिंह, साह कुबेरचन्द और कुशाल देपुरा आदि महाजन बेदला के राव रामचन्द्र से मिलकर दस हज़ार महापुरुषों को पुनः इकट्ठा कर उन्हें गंगार गांव में लाये और मेवाड़ का प्रदेश लूटने लगे। यह खबर सुनकर महाराणा ने काका बाघसिंह को गोडवाड़ की सेना समेत गोडवाड़ भेजा, क्योंकि कुम्भलमेर से रत्नसिंह इस ज़िले पर अधिकार करना चाहता था और रावत भीमसिंह को उदयपुर छोड़कर स्वयं महापुरुषों से मुकाबला करने के लिए गंगार से डेढ़ कोस पर पहुंचा। महाराणा की सेना में नीचे लिखे सरदार शामिल थे—

रावत अर्जुनसिंह, रावत फतहसिंह, राव शुभकरण, गजसिंह (बदनोर-

---

(१) कोठारिये का रावत पहले रत्नसिंह के पक्ष में था, किन्तु जब माधवराव ने उदयपुर का घेरा उठा लिया, तब से वह महाराणा के पक्ष में आ मिला था।

(२) भीमविलास; पृ० ४४–५२। इस लड़ाई में सम्मिलित होनेवाले सरदारों, अफ़सरों आदि की पूरी नामावली तथा लड़ाई का विस्तृत वर्णन भीमविलास में है।

के अक्षयसिंह का पुत्र), महाराज अर्जुनसिंह, राठोड़ शिवसिंह, शक्तिसिंह, शंभुसिंह, राठोड़ हरिसिंह, (नीमाड़े का), जालिमसिंह (दीवाले का), रामदास (ईंटाली का), राठोड़ वैरिशाल (खारड़े का), धीरजसिंह, सूरतसिंह (महुवा का), चौहान छत्रसाल (बनेड़िया का), चौहान नाथसिंह (थांवले का), गजसिंह (लसाणी का), ईश्वरदास (दौलतगढ़ का), जवान-सिंह (रूंद का), महता अगरचन्द तथा कई सिन्धी अफ़सर सम्मिलित थे। दोनों पक्षों में युद्ध प्रारंभ हुआ। बहुत से महापुरुष मारे गये, जो बाक़ी रहे, भाग निकले, बहुत से जोगियों ने गंगार के क़िले में शरण ली। महाराणा की सेना ने क़िले पर गोलन्दाज़ी शुरू की। राव रामचन्द्र का पुत्र देवीसिंह इससे घबराकर महाराणा के पैरों पर आ गिरा। साह कुबेरचन्द देपुरा पेशकब्ज खाकर मर गया। अमरचन्द देपुरा वग़ैरह कई विद्रोही गिरफ़्तार हुए। इस युद्ध में महाराज अर्जुनसिंह के शरीर पर पन्द्रह घाव लगे। अन्त में महापुरुषों के महन्तों ने क़सम खाई कि हम आगे से कभी महाराणा के विरुद्ध कोई चेष्टा नहीं करेंगे। महाराणा विजय प्राप्तकर लौट आया[1]।

रत्नसिंह ने कुंभलमेर में रहते समय अपने पक्ष के महता सूरतसिंह को चित्तोड़ का क़िलेदार नियत किया था। अवकाश पाकर महाराणा ने रावत भीमसिंह को सेना देकर चित्तोड़ पर भेजा। उसका आना सुनकर सूरतसिंह भाग निकला और चित्तोड़ पर महाराणा का अधिकार हो गया[2]।

चित्तोड़ पर अधिकार

महाराज बाघसिंह गोड़वाड़ से रत्नसिंह का अधिकार उठाकर वापस आया और उसने महाराणा से निवेदन किया कि गोड़वाड़ पर अधिकार स्थिर रखने

---

(१) भीमविलास; पृ० ४२-४६।

महापुरुषों के इस पराजय के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

अड़सी सूं अड़िया जिके पड़िया करै पुकार।
महापुरुषांरी मूण्डकी गळगी गांव गंगार॥

आशय—अरिसिंह से जो अड़े (लड़े), वे पड़े पड़े पुकार करते रहे और महापुरुषों के सिर गंगार (गंगराड़) गांव में गल गये।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १४७१।

गोड़वाड़ के परगने का मेवाड़ से अलग होना

के लिए वहां हमेशा सेना रखना जरूरी है। यदि सैनिक प्रबन्ध न किया गया तो रत्नसिंह उसपर अधिकार कर लेगा और उसकी शक्ति भी बहुत बढ़ जायगी। इसपर महाराणा ने जोधपुर के राजा विजयसिंह को लिखा कि रत्नसिंह को दबाने के लिए तीन हज़ार सेना नाथद्वारे में रख लो और जब तक वह सेना वहां रहे तब तक उसके वेतन के लिए गोड़वाड़ की आय लेते रहो, परन्तु वहां के सरदार हमारे ही अधीन रहेंगे। इसपर महाराजा ने लिखा कि आम तौर से २०० सवार और ५०० सिपाही रहेंगे और लड़ाई का काम पड़ने पर ३००० सेना पूरी कर दी जायगी। जिस दिन महाराणा हमारी जमीयत को विदा कर देंगे, उसी दिन से उक्त परगने पर महाराणा का अधिकार फिर हो जायगा।

विजयसिंह ने नाथद्वारे में सेना भेजकर गोड़वाड़ अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु रत्नसिंह को कुंभलमेर से निकालने का प्रयत्न न किया। महाराणा के कई बार लिखने पर भी जब उसने न माना तो उसने उसको गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए लिखा, परन्तु विजयसिंह ने इसे भी टाल दिया। वि० सं० १८२८ माघ (ई० स० १७७२ फ़रवरी) में महाराजा विजयसिंह, बीकानेर का महाराजा गजसिंह और कृष्णगढ़ का राजा बहादुरसिंह तीनों नाथद्वारे आये और चैत्र वदि १३ (ता० १ अप्रेल) को महाराणा भी वहां पहुंचा। गोड़वाड़ की चर्चा छिड़ने पर गजसिंह ने विजयसिंह को गोड़वाड़ का परगना छोड़ देने के लिए समझाया, परंतु उसने लालच में आकर अपने वचन के विरुद्ध छोड़ना स्वीकार न किया, जिससे वह परगना सदा के लिए मेवाड़ से निकल गया[1]।

आठूंण के सरदार बाबा गुमानसिंह पूरावत से महाराणा की गद्दीनशीनी के पूर्व से ही शत्रुता थी, इसलिए उसको दमन करने के लिए वह सेना लेकर आठूंण की ओर चला और उसके क़िले को घेर लिया।

महाराणा का आठूंण आदि पर आक्रमण

बाबा गुमानसिंह भी मरना निश्चय कर थोड़े से आदमियों समेत क़िले से बाहर निकला। महाराणा उसको जीवित अवस्था में ही पकड़ कर अपमानित करना चाहता था और वह वीर उसके हाथ में जिन्दा आना नहीं चाहता था। इसलिए उसने किले से बाहर निकलते समय रुईदार पाजामा

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५०५-६। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १२७१-७३।

व अंगरखा तेल से तर कर पहन लिया और उनमें आग लगा ली तथा नंगी तलवार हाथ में लेकर महाराणा की सेना पर टूट पड़ा। वीरता से बहुतसों का संहार करता हुआ उसे देखकर महाराणा ने भी उसपर गोली चलाने की आज्ञा दी, जिससे वह वीरगति को प्राप्त हुआ। फिर उसका गांव आटूंण वि० सं० १८२९ माघ सुदि ६[1] (ई० स० १७७३ ता० १ फ़रवरी) को प्रधान अमरचन्द बड़वा को महाराणा ने प्रदान किया। इसके बाद महाराणा ने भींडर, ऊपरहेडा तथा कोदूकोटा पर अधिकार कर लिया[2]।

समरू को मेवाड़ पर चढ़ा लाना

कई बार अपने उद्योग में निष्फल होने पर भी देवगढ़ के रावत जसवन्तसिंह ने, जो जयपुर में महाराजा पृथ्वीसिंह के पास था, महाराणा के विरुद्ध प्रयत्न न छोड़ा और जयपुर से समरू[3] (एक फ्रांसीसी सेनापति) को रुपया देकर अपने पुत्र स्वरूपसिंह के साथ मेवाड़ पर भेजा। वह पांच हज़ार सेना और तोपखाने के साथ अजमेर ज़िले के देवलिया गांव में आ पहुंचा। महाराणा को बरसलियावास में समरू के आने की खबर पहुंची। उसने यह सुनकर शीघ्र ही सेना लेकर वि० सं० १८२८

(१) उक्त तिथि का बड़वा अमरचन्द (पड़िहार) के नाम का महाराणा अरिसिंह का परवाना।

(२) भीमविलास; पृ० ४७। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५७५।

(३) समरू का मूल नाम वाल्टर रैनहार्ट था। उसका जन्म ई० स० १७२० (वि० सं० १७७७) में हुआ था। वह फ्रांस से एक फ्रांसीसी जहाज़ में खलासी होकर आया। पाँडीचेरी में जहाज़ को छोड़कर सॉमर्स नाम से सेना में भर्ती हुआ, जिससे लोग उसको सौम्ब्रे कहते थे और हिन्दुस्तानी समरू। फिर वहां से भागकर वह ढाका में ईस्ट-इंडिया कंपनी की सेना में भर्ती हुआ, परन्तु १८ दिन में नौकरी छोड़कर चन्द्रनगर चला गया। फिर अवध के नवाब सफ़दरजंग के यहां नौकर हुआ। वहां से भी काम छोड़कर सिराजुद्दौला और मीर-क़ासिम की सेवा में रहा, उस समय पटना में उसने कई अंग्रेज़ों को छल से मार डाला। फिर वहां से भागकर अवध के नवाब वज़ीर के पास ई० स० १७६३ (वि० सं० १८२०) में जा रहा। वहां भी स्थिर न रहकर भरतपुर और जयपुर राज्यों की सेवा में रहने के पश्चात् वह बादशाह शाहआलम के वज़ीर नजफ़ख़ां की सेवा में चला गया, जहां उसे सरधाना का परगना जागीर में मिला। उसने एक कश्मीर की रहनेवाली जार्ज़ियन जेबुन्निसा से विवाह किया, जो बेग़म समरू के नाम से प्रसिद्ध हुई। समरू का देहान्त आगरे में ई० स० १७७८ (वि० सं० १८३५) में हुआ (बकलैण्ड; 'डिक्शनरी आफ़ इण्डियन बायग्राफी'; पृ० ३७२। एच, काम्पटन; 'यूरोपियन मिलिटरी एडवैन्चर्स आफ़ हिन्दुस्तान'; पृ० ४००-४०५)।

श्रावण (ई० स० १७७१ अगस्त) में उसकी ओर प्रयाण किया। खारी नदी के दोनों किनारों पर दोनों सेनाएं आकर उपस्थित हो गईं और दोनों तरफ़ से गोलन्दाज़ी शुरू हुई। तीन दिन तक लड़ाई बराबर जारी रही। इतने में किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह ने, जो महाराणा का स्वसुर और समरू का मित्र था, आकर दोनों को समझाकर परस्पर सुलह करवा दी। समरू ने महाराणा के पास हाज़िर होकर दो पिस्तोल, एक तलवार और एक घोड़ा नज़र किया। महाराणा ने भी उसे ख़िलअत व घोड़ा देकर विदा किया[1]। समरू ने स्वरूपसिंह को कहा कि तुम मुझे धोखा देकर लाये, क्योंकि तुमने तो यह कहा था कि महाराणा उदयपुर से बाहर निकलते ही नहीं और मेवाड़ के सरदार हमारे पक्ष में हैं। हमने अभी मेवाड़ में प्रवेश भी नहीं किया, उससे पहले ही महाराणा बड़ी भारी सेना के साथ आ गया। महाराणा ने भी वहां से लौटकर अमरगढ़ के क़िले को जा घेरा[2]।

बूंदी के राव अजीतसिंह के विरुद्ध मीने लोग विद्रोह कर रहे थे। इस वास्ते अजीतसिंह ने उनको दबाने के लिए सोचा कि जब तक एक अच्छे गांव में क़िला नहीं बनाया जायगा, तब तक मीने सिर उठाते रहेंगे। यह सोचकर उसने बिलहटा गांव में, जो महाराणा की सीमा में था, क़िला बनवाने की आज्ञा चाही। महाराणा की आज्ञा न आने पर भी उसने वहां क़िला बनवाकर अपना क़िलेदार रख दिया। इसपर महाराणा ने अप्रसन्न होकर अमरचन्द बड़वे को बूंदी भेजा। उसने वहां जाकर अजीतसिंह को उस गांव पर से अपना अधिकार छोड़ने के लिए कहा, परन्तु उसने न माना। इस प्रकार दोनों में विरोध उत्पन्न हुआ।

अजीतसिंह और महाराणा का विरोध

इस महाराणा के समय के नीचे लिखे चार शिलालेख मिले हैं—

महाराणा के समय के शिलालेख

१—उदयपुर में प्रभुवारायण की बावड़ी (वापी) में वि० सं० १८१६ ज्येष्ठ सुदि १४ का शिलालेख, जिसमें महीदोज (दर्जी) जाति के तुलसा की पुत्री प्रभुबाई-द्वारा विष्णु-मन्दिर, धर्मशाला और बावड़ी बनाये जाने का उल्लेख है।

(१) भीमविलास; पृ० ८७-८६। वंशभास्कर; पृ० ३७७३-७४। वीर-विनोद भाग २, पृ० १५७५-७६।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५७६।

२—उदयपुर के बाहर के चौगान के पास पार्श्वनाथ के मन्दिर की मूर्ति के आसन पर का वि० सं० १८१६ माघ सुदि ५ का लेख। उसमें महाराणा कुंभा के समय नागदा के प्रसिद्ध अद्बुदजी के मन्दिर के निर्माता ऊस (ओसवाल) जातीय नवलखशाखावाले (सारंग) के वंशधर साह कपूरचन्द के द्वारा पद्मप्रभ तीर्थंकर की प्रतिमा स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

३—एकलिंगजी की सड़क पर के पुल के पासवाले धायभाई के मन्दिर का वि० सं० १८२० (चैत्रादि १८२१) वैशाख सुदि ६ सोमवार का लेख। इसमें गूजर जाति के पगार गोत्र के धायभाई रूपा के द्वारा नदी पर का पुल, रूपनारायणजी का मन्दिर, सराय, बावड़ी और बाग़ बनाये जाने का वर्णन है।

४—देवारी के दर्वाज़े के सामनेवाले राजराजेश्वर के मन्दिर की श्रावणादि वि० सं० १८१६ (चैत्रादि १८२०) शक सं० १६८५ वैशाख सुदि ८ गुरुवार की प्रशस्ति।

इस प्रशस्ति की रचना उपर्युक्त भट्ट रूपजित् (रूपजी) के पुत्र सोमेश्वर ने की थी, परन्तु वह खोदी न जाकर उस मन्दिर में नहीं लगाई गई। उसकी पुस्तकाकार १६ पत्रों पर लिखी हुई एक प्रति मुझे उदयपुर के राजकीय कथाभट्ट (व्यास) विष्णुराम भट्टमेवाड़ा से मिली, जिससे प्रकट है कि उक्त मन्दिर, वापी, तथा मंदिर के निकटवाली धर्मशाला, महाराणा राजसिंह (दूसरे) की माता बख़्तकुंवरी ने, जो झाला वंश की थी, अपने पुत्र महाराणा राजसिंह का देहान्त हो जाने पर उसके सुकृत के लिए बनवाई। उसकी प्रतिष्ठा उपर्युक्त संवत् में हुई। इस प्रशस्ति में ६८ श्लोक हैं। यह प्रशस्ति दो भागों में विभक्त है, पहले भाग में ३२ और दूसरे में ३६ श्लोक हैं[1]।

---

(१) पहले भाग में महाराणा उदयसिंह से महाराणा राजसिंह (दूसरे) तक का संक्षिप्त परिचय के साथ वर्णन है। दूसरे भाग में मन्दिर बनाने आदि के वर्णन के अतिरिक्त उसकी बनानेवाली राजमाता बख़्तकुंवरी के पिता के वंश का परिचय नीचे लिखे अनुसार दिया है—

पश्चिमी समुद्र-तट पर (काठियावाड़ में) झालावाड़ देश में रणछोड़पुरी नाम की नगरी है। वहां का राजा झाला मानसिंह हुआ। उसके पीछे क्रमशः चन्द्रसिंह, अभयराज, विजयराज, सहस्रमल्ल, गोपालसिंह और कर्ण हुए। कर्ण की पुत्री बख़्तकुंवरी हुई।

ऊपर लिखे हुए राजाओं में से मानसिंह ध्रांगध्रा का स्वामी था। उसके दूसरे पुत्र चन्द्रसिंह के चौथे पुत्र अभयसिंह (अक्षयराज) को लख़्तर की जागीर मिली। उसके पुत्र विजयराज ने, रणछोड़जी का भक्त होने के कारण, अपनी राजधानी लख़्तर का नाम रणछोड़पुरी रक्खा था (कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान; पृ० ४७१-७२)।

५—मेवाड़ के सालेड़ा गांव से पूर्व के शिवालय का वि० सं० १८२५ वैशाख सुदि ८ रविवार का लेख। उसका आशय यह है कि धायभाई रूपा की स्त्री पूरबाई ने, जो सालेडा के निवासी पंचोली (गूजर) किसना की पुत्री थी, सालेडा गांव में उक्त तिथि को शिवालय बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई और उसकी माता ने बावड़ी बनवाई।

महाराणा और बूंदी के अजीतसिंह में विरोध बढ़ता गया। महाराणा ने फिर अपने एक वकील को भेजकर उससे कहलाया कि हमारा गांव हमें दे दो,

महाराणा की मृत्यु

यदि नहीं दोगे तो सैन्यबल से ले लेंगे, परन्तु उसने न माना और महाराणा को, जो अमरगढ़ में था, मारने का निश्चय कर लिया। अजीतसिंह स्वयं महाराणा के पास उपस्थित हुआ, परन्तु मन्त्री (अमरचन्द) के कटु वचनों का स्मरण कर उसने अपने यहां की रीति के अनुसार न तो महाराणा को नज़र दिखाई, और न चरण छुए। फिर एक दिन वह महाराणा के डेरे पर आया और उससे कहा कि मैं जंगल में एक सुअर देख कर आया हूं, आप चलें और उसका शिकार करें। महाराणा भी उसकी बातों में आकर चलने को तैयार हो गया। उसके राजपूत भी साथ जाने को तैयार हुए, परन्तु अजीतसिंह ने उन्हें यह कहकर रोक दिया कि बहुत आदमियों के जाने से सुअर भाग जावेगा। सनवाड़ का शंभुसिंह, बावलास का दौलतसिंह और उसका छोटा भाई अनूपसिंह और चारण आढा पन्ना तथा कुछ छड़ीदार मना करने पर भी साथ गये। कुछ दूर निकल जानेपर अजीतसिंह ने मौक़ा देखकर महाराणा की छाती में बर्छे का वार किया, जिससे वह मर गया। उसके साथ के सरदारों ने भी महाराणा के सरदारों पर हमला किया। महाराणा के छड़ीदार रूपा ने राव पर ऐसे ज़ोर से छड़ी मारी कि वह बेहोश हो गया और शंभुसिंह व दौलतसिंह भी मारे गये। यह घटना वि० सं० १८२६ चैत्र वदि १ (ई० स० १७७३ ता० ६ मार्च) को हुई। दूसरे दिन महाराणा का दाह संस्कार अमरगढ़ में किया गया[1]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०७। वंशभास्कर; पृ० ३७६४-३८००। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १५७६-७८।

वंशभास्कर में सुअर की जगह ख़रगोश लिखा है।

महाराणा के सरदारों ने यह खबर सुनकर बूंदी से इसका बदला लेने के लिए उसपर चढ़ने का विचार किया, परन्तु फिर यह सोचकर उसे स्थगित कर दिया, कि अभी रत्नसिंह कुंभलमेर में विद्यमान है, वह महाराणा के कुंवरों को बालक जानकर उदयपुर पर अधिकार कर लेगा।

महाराणा की सन्तति

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के आठ राणियों से दो कुंवर—हम्मीरसिंह और भीमसिंह-तथा दो पुत्रियां चन्द्रकुंवर और अनूपकुंवर थीं।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा अरिसिंह वीर, अभिमानी, कठोर स्वभाव, अदूरदर्शी और अयोग्य शासक था। उसने गद्दी पर बैठते ही सब सरदारों को अपने अभिमान और कठोर व्यवहार के कारण अप्रसन्न कर दिया और जब वे उसका विरोध करने लगे, तब भी उसने उन्हें सन्तुष्ट करने का कोई प्रयत्न न कर दमननीति से काम लेना शुरू किया। कई स्वामि-भक्त सरदारों को, जिनके पूर्वज देश की रक्षार्थ अपने प्राण देते रहे थे, मरवा दिया, जिससे विद्रोह की आग और भी भड़क उठी। इस पारस्परिक गृह-कलह से मेवाड़ के राज्य को बहुत हानि हुई। दोनों पक्षों ने मरहटों को सहायता के लिए बुलाकर मेवाड़ को बहुत निर्बल कर दिया। इस गृह-युद्ध से मरहटों ने पूरा लाभ उठाया और बहुतसा धन तथा कुछ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इसी तरह महाराणा की स्वाभाविक अदूरदर्शिता से गोड़वाड़ का परगना भी मेवाड़ से चला गया। अभिमानी महाराणा ने, जिन सरदारों ने अपने प्राण देकर राज्य की रक्षा की थी, उनको हानि पहुंचाकर तथा राज्य के हितैषियों की नेक सलाह न मानकर अपनी इच्छानुसार राज्य करने के कारण मेवाड़ को पक्षहीन कर अधमरा सा कर दिया। वह स्वयं कवि[1] और कवियों का आश्रयदाता[2]

---

(१) किशनगढ़ के राठोड़ राजा नागरीदास (सावंतसिंह) के बनाये हुए 'इश्कचमन' के उत्तर में महाराणा अरिसिंह ने 'रसिकचमन' नाम का हिन्दी (उर्दू मिश्रित) काव्य बनाया, जिसकी एक प्रति स्वर्गीय राय मेहता पन्नालाल सी० आई० ई० के पुत्र फ़तहलाल के संग्रह में देखी गई। देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० १८।

(२) महाराणा अरिसिंह के सम्बन्ध के एक ऐतिहासिक संस्कृतकाव्य के केवल नो पत्रे (पहला और ३८-४५) उदयपुर के व्यास विष्णुराम शास्त्री के संग्रह से मिले। यह काव्य कितना बड़ा था, इसका पता पूरी पुस्तक न मिलने से नहीं लग सका। इसका कर्ता कोई विद्वान् कवि था, ऐसा इसकी कविता से पाया जाता है। इसमें कई भिन्न भिन्न छन्दों के अतिरिक्त चित्रकाव्य और प्रहेलिकाएं (पहेलियां) भी हैं।

था। वह शिकार का बहुत शौक़ीन था और विशेषकर शेरों के[1]। महाराणा का क़द मध्यम और रंग गेहुँआ था।

महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरा)

महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे[2]) का राज्याभिषेक वि० सं० १८२६ चैत्र वदि ३ (ई० स० १७७३ ता० ११ मार्च) को, जब कि अरिसिंह की मृत्यु का समाचार उदयपुर में पहुंचा, हुआ। इस समय उसकी अवस्था बहुत छोटी थी और वह देश की विकट स्थिति को संभालने में बिल्कुल असमर्थ था। इसलिए अमरचन्द बड़वा और अगरचन्द महता आदि कर्मचारियों ने महाराज बाघसिंह और महाराज अर्जुनसिंह से कहा कि इस समय आप दोनों सरदार महाराणा के बुज़ुर्ग हैं, इसलिए रियासत की रक्षा का काम आप ही संभालिये। उन दोनों ने प्रसन्नता-पूर्वक उसे स्वीकार किया[3]।

महाराणा के बालक होने के कारण राजमाता ने शासनप्रबन्ध अपनी इच्छानुसार कराना चाहा और उसके लिए उसने शक्तावत सरदारों को अपनी तरफ़

राज्य की दशा

मिलाना शुरू किया। शनैः शनैः उनकी सहायता से उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि उसकी दासियों का भी हौसला बहुत बढ़ गया, जिससे वे किसी को कुछ नहीं समझती थीं। एक दिन उसकी कृपापात्री गूजर जाति की दासी रामप्यारी, जो बहुत वाचाल और घमंडिन थी, अमरचन्द से कुछ बुरी तरह पेश आई, जिसपर स्पष्टवक्ता अमरचन्द ने भी क्रोधावेश में उसे 'कहां

---

(१) मृगयाभिरताः परे नरेशाः
विनिहन्युः शशशूकरांश्च लावान् ।
मृगयारसिकोऽरिसिंहभूपो
विनिहन्ति प्रसभं मृगाधिराजान् ॥ ७४ ॥
(अरिसिंह के सम्बन्ध का उपर्युक्त काव्य)।

(२) इसका जन्म-दिन निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ। वि० सं० १८१८ ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० स० १७६१ ता० १३ जून) को जन्म होना अनुमान किया जाता है।

(३) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६६१।

की रांड' कह दिया। रामप्यारी ने इस बात को बढ़ाकर राजमाता से उसकी शिकायत की। वह इसपर बहुत क्रुद्ध हुई और अमरचन्द को दूर करने के लिए सलूंबर के रावत भीमसिंह से सहायता मांगी। अमरचन्द पहले से ही यह सोचकर अपने घर गया और अपना कुल ज़ेवर व असबाब छकड़ों में भरवाकर उसने ज़नानी ड्योढ़ी पर भिजवा दिया तथा वहां जाकर कहा—'मेरा कर्तव्य तो आप और आपके पुत्रों का हितचिन्तन करना है, चाहे उसमें कितनी ही बाधाएं क्यों न उपस्थित हों। आपको तो यह चाहिए था कि मुझ से विरोध करने की अपेक्षा मेरी सहायता करतीं', परन्तु वह तो राज्याधिकार को अपने हाथ में रखना चाहती थी और अपनी दासियों आदि के हाथ का खिलौना बनजाने के कारण योग्यायोग्य का विचार न कर उसने अमरचन्द को विष दिलाने का प्रपंच रचा और उसी के परिणामस्वरूप कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हुई। उस समय उसके घर में से कफ़न के लिए भी पैसा न निकला, जिससे उसकी उत्तर-क्रिया राज्य की तरफ़ से हुई[1]।

अमरचन्द बड़वे ने बहुत विकट स्थिति में निस्स्वार्थबुद्धि और देशहित की प्रेरणा से राज्य का कार्य बहुत योग्यतापूर्वक चलाकर देश को आने-वाली कई आपत्तियों से बचाया था। उसका विना किसी अपराध के विष प्रयोग से मारा जाना मेवाड़ के इतिहास को कलंकित करता है। कर्नल टॉड ने उसके विषय में जो प्रशंसात्मक वाक्य लिखे हैं, वे सर्वथा ठीक हैं।

बड़वा अमरचन्द के मरने से राज्य की अवस्था और भी बिगड़ गई। राजकीय कोष में रुपया न रहा। सिंधियों ने वेतन न मिलने के कारण उपद्रव

सिन्धियों का उपद्रव

शुरू कर दिया और महलों में चालीस दिन तक धरना दिया तथा वे धमकियां देने लगे। तब महाराज बाघसिंह, महाराज अर्जुनसिंह, महाराज गुमानसिंह और चौहान चतरसिंह आदि सरदार वहां शस्त्र बांधकर आ गये। राजमाता ने कुरावड़ से रावत अर्जुनसिंह को भी बुला लिया। उन्होंने सिंधियों को समझाया कि खज़ाने में रुपये नहीं हैं। इलाक़े में एकत्र करने से मिल जावेंगे, इसलिए तुम भी हमारे साथ मेवाड़ में चलो। रुपये एकत्र होनेपर तुम्हारा वेतन चुका दिया जायगा। सिंधियों ने

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०८-६।

कहा कि कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति हमें 'ओल' में दे दो, तो आपका कथन स्वीकार है। इसपर ६ वर्ष की आयुवाले कुंवर भीमसिंह ने कहा कि ओल में जाने को मैं तैयार हूं। राजमाता उसके इस साहस पर बहुत प्रसन्न हुई और उसने उसे ओल में दे दिया। रावत अर्जुनसिंह दस हज़ार सिन्धियों के साथ चित्तौड़ की तरफ़ रवाना हुआ। चित्तौड़ के निकट पहुंचने पर बहिरजी ताकपीर की अध्यक्षता में सिन्धिया की सेना मेवाड़ के गांव लूटती हुई वहां आ पहुंची। उस समय बालक भीमसिंह ने कहा कि यह बड़े खेद की बात है कि हमारे उपस्थित होते हुए भी मरहटे आकर हमारे देश को लूटें। उस अल्पवयस्क भीमसिंह के इन उत्साहवर्धक वचनों को सुनकर सिन्धी इतने अधिक उत्साहित हुए कि उन्होंने मरहटी सेना से वीरतापूर्वक मुकाबला कर उन्हें भगा दिया। इसपर चित्तौड़ के क़िलेदार रावत भीमसिंह ने सिन्धियों को चित्तौड़ के क़िले में बुलाकर उन्हें वेतन के स्थान में जागीरें देकर सन्तुष्ट कर दिया[1]।

महाराणा के निर्बल तथा अशक्त होने के कारण अधिकतर सरदार मनमानी कर रहे थे। राजमाता ने भींडर के मुहकमसिंह को मुख्तार बना दिया। यह बात रावत भीमसिंह और रावत अर्जुनसिंह को बहुत बुरी लगी। इधर बेगूं के मेघसिंह ने, जो उस समय रत्नसिंह का तरफ़दार था, खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया। महाराणा ने उसका दमन करने के लिए माधवराव सिंधिया से सहायता मांगी, जिसपर वह बड़ी सेना के साथ मेवाड़ में आया और भीलवाड़े होता हुआ बेगूं की तरफ़ चला। बेगूं का कथाभट्ट फतहराम, जो बहुत ही छोटे क़द का था, रावत की तरफ़ से सिंधिया के पास गया। सिंधिया ने उसे छोटे क़द का देखकर हँसी में कहा, आओ वामन? उसने उत्तर दिया कि कहिये राजा बलि। इसपर सिन्धिया ने कहा कुछ मांगो। ब्राह्मण ने यही मांगा कि आप बेगूं से चले जाइये। सिन्धिया ने कहा यदि वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६६) में स्वीकृत सन्धिपत्र के अनुसार बेगूं के रावत से जो सेनाव्यय लेना बाकी है, वह अदा

बेगूं पर मरहटों का आक्रमण

(१) भीमविलास; पृ० ६०-६३।

कर दिया जावे तो मैं चला जाऊं। फतहराम ने तो इसे स्वीकार कर लिया, परन्तु रावत मेघसिंह ने कहा कि हम ब्राह्मण नहीं हैं, जो आशीर्वाद देकर काम चलावें। हम राजपूत हैं, बारूद, गोलों और तलवार से कर्ज़ा अदा करेंगे। यह सुनकर मरहटों ने बेगूं को घेर लिया और बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही, परन्तु सिन्धिया उसे जीत न सका, तो भेदनीति से काम लिया गया। रावत अर्जुनसिंह ने मेघसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को अपनी तरफ़ मिला लिया। इस पारस्परिक कलह से विवश होकर मेघसिंह सिंधिया के पास चला गया और सेनाव्यय के ९६३००१ रुपये देना स्वीकार कर लिया। उनमें से ४८१२१७ रुपये नक़द देने के अतिरिक्त परगना सिंगोली के ३६ और भीचोर के १८ गांव इस शर्त पर सिंधिया के सुपुर्द किये गये कि उक्त गांवों की आमद में से अहलकारों तथा सिपाहियों का खर्च निकालकर जो बचत रहे, वह इन रुपयों में प्रतिवर्ष जमा होती रहे और जब कुल रुपये अदा हो जावें, तब परगने हमारे सुपुर्द कर दिये जावें। इसके अतिरिक्त वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६९) के उदयपुर के अहदनामे के अनुसार जो ४३१०० रुपये बेगूं से लेने ठहरे थे, उनकी एवज़ में ४८ गांव दूसरे परगनों के और भी सिंधिया ने लिये[1]।

महाराणा ने सिंधिया को अपनी सहायता के लिए बुलाया था, परंतु उस स्वार्थी से महाराणा को कुछ भी लाभ न पहुंचा, प्रत्युत और भी परगने मेवाड़ से निकल गये।

मल्हारराव हुल्कर की जीवित दशा में उसका पुत्र खाण्डेराव कुम्हेर की

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०६।

वीर-विनोद में प्रकाशित वि० सं० १८३१ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १७७४ ता० २५ मार्च) के सिन्धिया के लिखे हुए रावत मेघसिंह के नाम के दो पत्रों में गांवों की पूरी नामावली दी है।

टॉड ने लिखा है कि सिन्धिया ने रतनगढ़, खेड़ी और सिंगोली के ज़िलों पर बाहिरजी ताक को नियत किया और इसी समय इरणिया, जाट, भीचोर और नडवई हुल्कर को दिये (टॉ; रा; जि० १, पृ० ४०६), परंतु सिन्धिया के उपर्युक्त दोनों पत्रों में इस बात का उल्लेख नहीं है। पहले पत्र में इरणिया को सिंगोली परगने का एक हज़ार की आय का गांव बताया है और उसी पत्र में भीचोर ज़िले के १८ गांवों का स्वयं लेना लिखा है। संभव है कि सिन्धिया ने लिये हुए १०२ गांवों में से कुछ हुल्कर को दे दिये हों।

लड़ाई में मारा गया, इसलिए उसका पुत्र मालेराव वि० सं० १८२३ (ई० स० १७६६) में उसका उत्तराधिकारी हुआ, परंतु वह भी क़रीब एक वर्ष तक राज्य कर मर गया, जिससे उसकी माता प्रसिद्ध अहल्याबाई ने राज्यकार्य अपने हाथ में लिया। मेवाड़ की गिरती हुई दशा देखकर उसने भी मेवाड़ का परगना लेना चाहा। महाराणा पर दबाव डालकर उसने कहलाया कि सिंधिया को जो परगने दिये हैं, उनके हम भी अधिकारी हैं, क्योंकि सिंधिया, हुलकर और पेशवा के हिस्से बराबर होते हैं। उस समय अमरचन्द जैसा कोई योग्य मन्त्री न था, जो उसको उचित उत्तर देता। अन्त में महाराणा को लाचार नींबाहेड़े का परगना अहल्याबाई को देना पड़ा[1]।

अहल्याबाई का नींबाहेड़ा लेना

महाराणा की माता ने मेवाड़ पर दिन दिन बढ़ते हुए मरहटों के उपद्रव को रोकने के लिए किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह को अपना सहायक बनाना चाहा, तो उसने कहलाया कि मैं तो अपनी जान और माल से मेवाड़ के लिए तैयार हूं। इस अवसर पर उसने यह भी इच्छा प्रकट की कि मेरी पोती अमरकुंवर (कुंवर विरदसिंह की पुत्री) का विवाह महाराणा से हो, जिसे राजमाता ने स्वीकार किया और वि० सं० १८३३ माघ वदि १२ (ई० स० १७७७ ता० ५ फ़रवरी) को उसके साथ महाराणा का किशनगढ़ में विवाह हो गया[2]।

महाराणा का विवाह

उपर्युक्त विवाह से लौटने के बाद महाराणा ने नाहरमगरे और श्रीनाथजी की तरफ़ होते हुए कुंभलगढ़ की ओर विद्रोही रत्नसिंह को दबाने के लिए प्रयाण किया। मार्ग में रींछेड़ के पास देवगढ़ के राघवदेव से, जो बड़ी सेना के साथ रत्नसिंह की सहायतार्थ जा रहा था, लड़ाई हुई। वह हारकर भागा और ससैन्य कुंभलगढ़ में जा पहुंचा। महाराणा भी कुंभलगढ़ जैसे विकट दुर्ग को लेना इस समय सरल न समझकर चारभुजा होता हुआ उदयपुर लौट आया[3]।

महाराणा की कुंभलगढ़ की तरफ़ चढ़ाई

(१) वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६९९।

(२) भीम-विलास; पृ० ६३-६६। वीर-विनोद; भाग २, पृ० १६९९-१७००।

(३) भीम विलास; पृ० ६७। वीर विनोद; भाग २, पृ० १७००।

एक दिन शिकार में हिरन पर गोली चलाते समय महाराणा की बन्दूक़ फट गई, जिससे उसकी हथेली पर गहरी चोट आई। उसका इलाज किया गया, परन्तु घाव बढ़ता ही गया और वि० सं० १८३४ पौष सुदि ८ (ई० स० १७७८ ता० ६ जनवरी) को उसका देहान्त १६ वर्ष की अवस्था में हो गया[1]।

महाराणा की मृत्यु

महाराणा अमरसिंह (पहले) के जहांगीर की अधीनता स्वीकार करने के साथ ही मेवाड़ की स्वतन्त्रता लुप्त हो चुकी थी। तब से यद्यपि मेवाड़ के शासक अपने कुंवर या सरदारों को भेजकर बादशाहों की सेवा करते थे, तथापि उनका गौरव और सम्मान सब राजपूत राजाओं से बहुत अधिक रहा। मुग़ल साम्राज्य के निर्बल होने पर अन्य राजपूत राजा जो बादशाही दरबार में उपस्थित रहते थे, उस स्थिति का लाभ उठाकर अपने राज्य को बढ़ाने में समर्थ हुए, परन्तु मेवाड़ के महाराणा अपनी पुरानी नीति के अनुसार शाही दरबार में उपस्थित नहीं होते थे, जिससे वे उस लाभ से वंचित ही रहे।

मेवाड़ की स्थिति

इधर मरहटों का प्रभाव तथा बल बहुत बढ़ रहा था। उसको रोकने के लिए राजपूत राजाओं ने पहले कोई विशेष प्रयत्न न किया। महाराणा जगतसिंह के समय जो प्रयत्न आरंभ हुआ वह भी राजपूत राजाओं की पारस्परिक फूट के कारण सिद्ध न हो सका। इसका फल मेवाड़ के लिए ही सब से अधिक हानिकर सिद्ध हुआ। महाराणा जगतसिंह के समय ही पेशवा ने आकर उसे कर देने पर बाधित किया और उसके बाद समय समय पर मरहटे मेवाड़ से बहुत रुपये और प्रदेश लेते रहे। कर्नल टॉड के कथनानुसार मरहटों ने जगतसिंह से अरिसिंह के समय तक १८१ लाख रुपये और १६५०००० रुपये की सालाना आमद के परगने ले लिये थे।

---

(१) भीमविलास; पृ० ६६-७०।

ऐसी प्रसिद्धि है कि महाराणा ने कहा था, जिन सरदारों ने मेवाड़ की बरबादी कराई है, उनसे मैं बदला लूंगा। इसलिए उसके घाव पर कुछ विरोधी सरदारों के उद्योग के कारण ज़र्राह ने विष की पट्टी चढ़ा दी, जिसके असर से महाराणा का देहान्त हुआ।

इस समय लगातार तीन चार महाराणाओं के बालक या अयोग्य होने, राज्य प्रबन्ध में अव्यवस्था, सरदारों में फूट और देश में गृहकलह होने से मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति बहुत बिगड़ गई थी। अब मेवाड़ का प्रभाव भी बहुत क्षीण हो गया था। जोधपुर का राजा मेवाड़ का गोड़वार का परगना छल से दबा बैठा, जिसे मेवाड़ वापस नहीं ले सका। इसी तरह महाराणा अरिसिंह की हत्या का बदला लेने की भी ताक़त मेवाड़ में नहीं रही थी।

महाराणा भीमसिंह

महाराणा भीमसिंह का जन्म वि० सं० १८२४ चैत्र वदि ७ गुरुवार (ई० स० १७६८ ता० १० मार्च) को हुआ था[1]।

महाराणा हम्मीरसिंह की मृत्यु बाल्यावस्था में हो जाने के कारण उसकी माता सरदारकुंवरि को बड़ा सन्ताप हुआ। इस घटना से उसके दिल को ऐसी गहरी चोट पहुंची और सांसारिक सुखसम्पदा एवं भोग ऐश्वर्य से उसे ऐसा विराग हो गया कि जब सरदारों ने उक्त महाराणा के छोटे भाई भीमसिंह को मेवाड़ का स्वामी बनाये जाने का प्रस्ताव उपस्थित किया, तब उसने इस आशङ्का से कि कहीं वह भी राज्याधिकार पाने पर इस संसार से चल न बसे, उसे अस्वीकार कर दिया। इसपर सरदारों ने निवेदन किया—'यदि आपका पुत्र अपना राज्याधिकार छोड़ देगा और रत्नसिंह गद्दी पर बैठ गया तो वह आपके पुत्र को जीता कब छोड़ेगा'। इस प्रकार सरदारों के समझाने बुझाने से राजमाता ने उनकी बात मान ली और वि० सं० १८३५ पौष

(१) द्विजराज आय नृप राज जत्र। बानी उदार पढ़ि जनम पत्र।
स्वस्ति श्री संवत कहि अठार। शुभ चोवीस गनि वर्ष सार॥
सोर सैं नवासी वर्न साक। निज सूर उत्तर गत पंथ नाक।
महरितु बसंत कहि चेत मास। पख कृष्ण सप्तमी तिथि प्रकाश॥
गुरुवार घटी तब साठ गांन। ....॥

भीमविलास; पृष्ठ १०

सुदि ६ (ई० स० १७७८ ता० ७ जनवरी) को भीमसिंह गद्दी पर बिठाया गया[1] और राज्य का प्रबन्ध राजमाता की सलाह से होने लगा।

इस समय तक विद्रोही रत्नसिंह बहुत निर्बल हो गया था और उसके तरफ़दार अधिकांश सरदारों ने उसे छोड़ दिया था। चूंडावत सरदारों ने अपना पक्ष सबल करने की इच्छा से रत्नसिंह के मुख्य सहायक देवगढ़ के रावत राघवदास को रत्नसिंह से अलग कर अपनी तरफ़ मिलाना चाहा। इस अभिप्राय से उनकी इच्छानुसार महाराणा भीमसिंह स्वयं वि० सं० १८३८ चैत्र वदि १३ (ई० स० १७८२ ता० ११ मार्च) को देवगढ़ गया[2] और उसे अपने साथ उदयपुर ले आया। राघवदास के महाराणा के पक्ष में चले जाने से रत्नसिंह बहुत ही कमज़ोर हो गया।

रावत राघवदास को अपनी तरफ़ मिलाना

चूंडावतों और शक्तावतों में पारस्परिक कलह चला आता था। दोनों, राज्य में अपनी अपनी ताक़त बढ़ाना चाहते थे। कभी कोई पक्ष शक्तिशाली होकर दूसरे को दबाने की चेष्टा करता, तो कभी दूसरा पक्ष प्रबल होकर पहले को नीचा दिखाने की। चूंडावतों के प्रभाव में महाराणा तथा सिंधियों के होने और उन्हीं का चित्तौड़ पर अधिकार होने के कारण इस समय उनका ज़ोर बहुत बढ़ गया था। सलूंबर का रावत भीमसिंह, कुरावड़ का रावत अर्जुनसिंह और आमेट का रावत प्रतापसिंह महाराणा के पास रहकर राज्य-कार्य चलाते थे[3]।

चूंडावतों और शक्तावतों का पारस्परिक विरोध बढ़ना

रावत अर्जुनसिंह महाराणा की आज्ञा प्राप्तकर भींडर पर, जिसका स्वामी मुहकमसिंह (शक्तावत) था, सेना के साथ रवाना हुआ और उसे जा घेरा।

---

(१) चोतीसा नम पोस सुध। सात घटी गम रत्त।
सुभ मोहरत दिन्हीय गनिक। रज्जिय भीम तख्त ॥ २१९ ॥

भीमविलास; पृष्ठ ७०। टॉ; रा; जि० १, पृ० ४११।

(२) अडतीसा अरु चेत विद, तेरस सुतिथ प्रमांन।
राघव रावत लेन कौं, चले देवगढ़ रांन ॥ २२२ ॥

भीमविलास; पृ० ७१।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृष्ठ ४११।

यह देखकर रावत लालसिंह[1] (शक्तावत) का पुत्र संग्रामसिंह, जो इस समय बहुत प्रसिद्धि में आ रहा था, शक्तावतों की सहायता के लिए आगे बढ़ा और उसने कुरावड़ पर आक्रमण किया, जब कि रावत अर्जुनसिंह भींडर पर गया हुआ था। एक दिन संग्रामसिंह कुरावड़ के मवेशियों को घेरकर लिये जा रहा था, ऐसे में रावत अर्जुनसिंह का पुत्र ज़ालिमसिंह[2] आ पहुंचा, जिसको उस (संग्रामसिंह) ने बर्छे से मार डाला। यह समाचार सुनकर अर्जुनसिंह ने अपने सिर से पगड़ी उतारकर फैंटा बांध लिया और प्रतिज्ञा की कि जबतक इसका बदला नहीं ले लूंगा तबतक पगड़ी नहीं बांधूंगा। यह प्रतिज्ञा कर उसने भींडर से कुरावड़ की ओर प्रस्थान किया। तदनन्तर वह शिवगढ़[3] की ओर, जहां संग्रामसिंह अपने परिवार सहित रहता था, गया। शिवगढ़ का किला छप्पन के पहाड़ों और घने जंगलों में था। उस समय उस किले में संग्रामसिंह के ७० साल के वृद्ध पिता लालसिंह के साथ बहुत थोड़े आदमी थे। अर्जुनसिंह के वहां पहुंचने पर वृद्ध लालसिंह ने बड़ी वीरता से उसका मुकाबला किया और वह लड़ता हुआ मारा गया। संग्रामसिंह के बच्चों का भी रावत अर्जुनसिंह ने बड़ी क्रूरता से वध किया[4]। इन घटनाओं से चूंडावतों और शक्तावतों का पारस्परिक द्वेष और भी बढ़ गया।

रावत भीमसिंह आदि चूंडावत सरदारों ने महाराणा को अपने कब्ज़े में कर लिया था[5]। जब कभी महाराणा को रुपयों की आवश्यकता होती तब वे खज़ाने में रुपये न होने के कारण कोरा जवाब दे देते थे। जब ईडर

(१) शक्तावत माधोसिंह के दो पुत्र दुर्जनसिंह और सूरतसिंह हुए। दुर्जनसिंह के वंश में सेमारी के रावत हैं। सूरतसिंह के पोते जगतसिंह का पुत्र लालसिंह हुआ। उसके पुत्र संग्रामसिंह ने पूरावतों से लावा छीन लिया था (टॉ; रा; जि० १, पृ० २११) उस (संग्रामसिंह) के वंश में इस समय कोल्यारी के रावत हैं।

(२) कर्नल टॉड ने इसका नाम सालिमसिंह लिखा है।

वही; जिल्द १, पृष्ठ २१२।

(३) यह जागीर डूंगरपुर के रावल की ओर से संग्रामसिंह को मिली थी।

(४) वही; जिल्द १, पृष्ठ २१२।

(५) कर्नल टॉड ने यह भी लिखा है कि रावत भीमसिंह ने उदयपुर से चित्तौड़ के बीच के बहुत से गांव आदि सिन्धी सिपाहियों को दे दिये थे, परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। ये गांव तो महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के समय सिंधियों की तनख़्वाह चढ़ जाने तथा उनके

के राजा शिवसिंह की पुत्री अक्षयकुंवरी से महाराणा का विवाह हुआ[1]। तब महाराणा को उसके लिए कर्ज़ा लेना पड़ा। एक दिन राजमाता ने चूंडावत सरदारों से कहा कि महाराणा के जन्मोत्सव के लिए खर्च का प्रबन्ध करना चाहिये। इस अवसर पर भी वे टालमटूल कर गये। इन बातों से राजमाता चूंडावतों से बहुत अप्रसन्न हो गई। इधर सोमचंद गांधी ने, जो ज़नानी ड्योढ़ी पर काम करता था, रामप्यारी के द्वारा राजमाता से कहलाया कि यदि मुझे प्रधान बना दें, तो मैं रुपयों का प्रबन्ध कर दूं। राजमाता ने उसे प्रधान बना दिया। वह बहुत योग्य और कार्यकुशल कर्मचारी था[2]। उसने शक्तावतों से अपना मेलजोल बढ़ाया और उनकी सहायता से थोड़े ही दिनों में कुछ रुपये इकट्ठे कर राजमाता के पास भेज दिये। इसपर रावत अर्जुनसिंह, रावत प्रतापसिंह, रावत भीमसिंह आदि चूंडावत सरदार सोमचन्द और उसके सहायकों को सताने तथा हानि पहुंचाने लगे। सोमचन्द ने चूंडावतों को नीचा दिखाने के लिए भींडर और लावा के शक्तावत सरदारों को राजमाता से सिरोपाव आदि दिलाकर अपनी ओर मिला लिया और कोटे के झाला ज़ालिमसिंह को भी, जिसकी चूंडावतों से शत्रुता थी, अपना मित्र तथा सहायक बना लिया। ऐसे ही उसने माधवराव सिंधिया और आंबाजी इंगलिया को भी, जो ज़ालिमसिंह के मित्र थे, अपने पक्ष में कर लिया। इसके बाद उस(सोमचंद)ने राजमाता से मिलकर यह स्थिर किया कि महाराणा भींडर जाकर मोहकमसिंह शक्तावत को, जो बीस वर्ष से राजवंश के विरुद्ध हो रहा है, अपने साथ उदयपुर ले आवें। महाराणा वि० सं० १८४० (ई० स० १७८३) में उदयपुर से रवाना होकर भींडर पहुंचा। उसी दिन ज़ालिमसिंह झाला भी ५००० सैनिकों को[3] साथ लेकर वहां आ पहुंचा[4]।

उपद्रव करने पर उनको शांत करने के लिए दिये गये थे, जैसा कि उक्त महाराणा के वृत्तान्त में लिखा गया है।

(१) यह विवाह वि० सं० १८३६ ज्येष्ठ वदि ११ को हुआ था।

भीमविलास; पृ० ७३, पद्य २३६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५ (हस्तलिखित)।

(३) कर्नल टॉड ने सैनिकों की संख्या १०००० दी है।

(टॉ; रा; जि० १, पृष्ठ ५१३)

(४) भीमविलास; पृ० ८८-८९। टॉ; रा; जिल्द १, पृष्ठ ५१२-१३। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५ (ह०)।

प्रधान सोमचन्द और भींडर के महाराज मोहकमसिंह आदि ने यह निश्चय किया कि मरहटों से मेवाड़-राज्य का वह भाग, जिसे उन्होंने दबा लिया है, छीन लेना चाहिये। इस कार्य में पूरी सफलता प्राप्त करने के लिए चूंडावतों की सहायता आवश्यक समझ उन्होंने रामप्यारी को सलूंबर भेजकर वहां से रावत भीमसिंह को, जो शक्तावतों के ज़ोर पकड़ने के कारण उदयपुर छोड़कर चला गया था, बुलवाया। भीमसिंह इस आशंका से कि कहीं शक्तावत हमें मरवा न डालें, आमेट के रावत प्रतापसिंह, कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह, भदेसर के रावत सरदारसिंह तथा हमीरगढ़ के रावत धीरजसिंह को साथ लेकर वि० सं० १८४३ (ई० स० १७८६) में उदयपुर आया और नगर से बाहर कृष्णविलास में ठहरा। इसी बीच में मोहकमसिंह ने कोटे जाकर, कोनाड़ी (कोटे में) के राज भवानीसिंह (झाला), कोयले के सूरजमल हाड़ा, पलायता के अमरसिंह हाड़ा, गैंता के नाथसिंह हाड़ा, जयसिंह हाड़ा, उमरी-भदौड़ा के सीसोदिया सोहनसिंह (सगरावत) आदि सरदारों तथा दयानाथ बख़्शी एवं पांच हज़ार सवारों को अपने साथ लाकर चम्पाबाग में ठहरा। महाराज मोहकमसिंह के ससैन्य उदयपुर आने से चूंडावतों को यह सन्देह हुआ कि यह सब प्रपञ्च हम लोगों को नष्ट करने के लिए रचा गया है, इसलिए वे तुरन्त उदयपुर छोड़ गये। इस प्रकार उनके चले जाने का समाचार जब राजमाता को विदित हुआ तब वह महाराणा पर क्रुद्ध हुई और उससे कहा कि जिन चूंडावतों ने तेरे पिता के राज्य की रक्षा की थी, उन्हीं से तू कपट करता है[1]। फिर वह पलाणा गांव में पहुंचकर चूंडावतों को उदयपुर लौटा लाई[2]। इस प्रकार सोमचन्द ने घरेलू झगड़े को दूरकर जयपुर, जोधपुर आदि राज्यों के

मरहटों को मेवाड़ से निकालने का प्रयत्न

(१) *रावत भीम रुसाय, कीन मुकाम पलानह।*
सुनि श्रीबाईराज, करिय सिर कोप दिवांनह॥
तू सिसुमति नादांन, स्वामिधर्म भट कट्टत।
जिन रखि तुव पितु राज, कपट ता ऊपर पट्टत॥

भीमविलास; पृ० ६०, पद्य २८०।

(२) भीमविलास; पृ० ८६-६०। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२ (हस्तलिखित)।

स्वामियों को मरहटों के विरुद्ध ऐसा भड़काया कि वे भी राजपूताने को मरहटों के पञ्जे से छुड़ाने के कार्य में महाराणा का हाथ बँटाने के लिए तैयार हो गये[1]।

मरहटों पर चढ़ाई

वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में लालसोट की लड़ाई में मारवाड़ और जयपुर के सम्मिलित सैन्य से मरहटों की पराजय होने के कारण राजपूताने में उनका प्रभाव कुछ कम हो गया था[2]। इस अवसर को अच्छा देखकर सोमचन्द आदि ने शीघ्र ही मरहटों पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। मार्गशीर्ष में चूंडावतों को उदयपुर की रक्षा का भार सौंपकर मेहता मालदास की अध्यक्षता में मेवाड़ तथा कोटे की संयुक्त सेना ने उदयपुर से कूच किया और नींबाहेडा, नकुम्प, जीरण आदि स्थानों पर अधिकार करती हुई वह जावद पहुंची, जहां नाना सदाशिवराव की मातहती में मरहटों ने पहले तो कुछ दिनों तक उसका सामना किया, परंतु पीछे से वे कुछ शर्तों पर शहर छोड़कर चले गये। इसी अरसे में बेगूं के रावत मेघसिंह के वंशजों ने सींगोली आदि स्थानों से मरहटों को मार भगाया और चूंडावतों ने रामपुरे पर फिर अधिकार कर लिया। इसके बाद राजपूत-सेना चलदू नामक गांव की ओर रवाना हुई।

जब इसकी खबर होल्कर की राजमाता अहल्याबाई को मिली तब उसने तुलाजी सिंधिया तथा श्रीभाई की मातहती में ५००० सवार जावद की ओर रवाना किये। मार्ग में नाना सदाशिवराव के सैनिक भी उन सवारों से आ मिले। यह सेना कुछ काल तक मन्दसोर में ठहरकर मेवाड़ की ओर बढ़ी, तब महाराणा ने उसका मुक़ाबला करने के लिए मेहता मालदास की अध्यक्षता में सादड़ी के सुलतानसिंह, देलवाड़े के कल्याणसिंह, कानोड़ के रावत ज़ालिमसिंह, सनवाड़ के बाबा दौलतसिंह आदि राजपूत सरदारों तथा सादिक, पंजू वग़ैरह सिन्धियों को अपनी अपनी सेना सहित रवाना किया। वि० संवत् १८४४ माघ (ई० स० १७८८ फरवरी) में मरहटी सेना से हड़क्याखाल के पास

(१) इसी सम्बन्ध में जोधपुर से महाराजा विजयसिंह की आज्ञानुसार मुहणोत ज्ञानमल का सोमचन्द के नाम भेजा हुआ वि० सं० १८४४ भाद्रपद सुदि ३ (ई० स० १७८७ ता० १४ सितम्बर) का पत्र।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१३।

राजपूतों की लड़ाई हुई, जिसमें मेवाड़ का मंत्री तथा सेनापति मेहता मालदास, बाबा दौलतसिंह का छोटा भाई कुशलसिंह आदि अनेक राजपूत सरदार एवं पंजू आदि सिन्धी वीरता के साथ लड़कर काम आये। देलवाड़े का झाला कल्याणसिंह, कानोड़ का रावत ज़ालिमसिंह आदि कई सरदार सख़्त घायल हुए और सादड़ी का झाला सुलतानसिंह घायल होने पर क़ैद कर लिया गया[१]। इस प्रकार राजपूतों के जीते हुए प्रायः सभी स्थान फिर शत्रुओं के हाथ में चले गये, परन्तु जावद पर मेहता अगरचन्द के भतीजे दीपचन्द[२] ने एक महीने तक उनका अधिकार न होने दिया। तदुपरान्त तोप आदि लड़ाई के सारे सामान तथा अपने सैनिकों को साथ लेकर वह मरहटी सेना को चीरता हुआ मांडलगढ़ चला गया[३]।

सोमचन्द गांधी का मारा जाना

चूंडावतों ने प्रकट रूप से तो अपने विरोधियों से मेल कर लिया था, परंतु अन्तःकरण से वे उनके शत्रु बने रहे और सोमचंद गांधी को मारने का अवसर ढूंढ रहे थे। अपनी अचल राजनिष्ठा एवं लोकप्रियता के कारण वह (सोमचन्द) चूंडावतों की आंखों में बहुत खटकता था, पर वह बड़ा ही दूरदर्शी और नीतिकुशल था, जिससे उन्हें उससे बदला लेने का कभी अवसर ही नहीं मिलता था। वि० सं० १८४६ कार्तिक सुदि ६ (ई० स० १७८६ ता० २४ अक्टोबर) को जब कुरावड़ का रावत अर्जुनसिंह और चावंड का रावत सरदारसिंह महलों में गये उस समय सोमचंद प्रधान भी वहीं था। उसे मारने का यह उपयुक्त अवसर पाकर उन्होंने सलाह करने का बहाना किया और उसे अपने पास बुलाया तथा उससे यह पूछते हुए कि 'तुम्हें हमारी जागीर ज़ब्त करने का[४] साहस कैसे हुआ', दोनों तरफ़ से

(१) यह दो साल तक क़ैद रहने के पश्चात् अपने ठिकाने के चार गांव मरहटों को देकर छूटा।

(२) दीपचंद अगरचंद के छोटे भाई हंसराज का पुत्र था।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१३-१४। वीर-विनोद; भाग २, प्रकरण १५ (हस्तलिखित)।

(४) सलूंबर के रावत कुबेरसिंह के छोटे पुत्र भीमसिंह को महाराणा ने कंवारिये का पट्टा दिया था, परन्तु उसके बड़े भाई पहाड़सिंह के उज्जैन के युद्ध में मारे जाने पर वह सलूंबर का स्वामी हुआ। सोमचन्द ने दो जागीरों का एक व्यक्ति के पास रहना ठीक न समझकर कंवारिया की जागीर उससे छीन ली थी। ऐसे ही उसने शक्तावतों से मिलकर उनकी इच्छानुसार कुरावड़ के कुछ गांव खालसा कर लिये थे, जिससे अर्जुनसिंह उससे जलता था।

उसकी छाती में कटार घुसेड़ दिये, जिससे वह तत्काल मर गया। इसके बाद वे वहां से भागकर अपने साथियों से, जो त्रिपोलिया के पास खड़े थे, जा मिले। जब सोमचन्द के इस प्रकार मारे जाने का समाचार उसके भाई सतीदास तथा शिवदास को मिला, तब वे तुरन्त महाराणा के पास, जो उस समय बदनोर के ठाकुर जैतसिंह के साथ सहेलियों की बाड़ी में था, पहुंचे और अर्ज़ किया-'हम लोगों को आप शत्रुओं के हाथ से क्यों मरवाते हैं ? आप अपने ही हाथ से मार डालिये'। उनके चले जाने के बाद रावत अर्जुनसिंह सोमचन्द के खून से भरे हुए अपने हाथों को बिना धोये ही महाराणा के पास पहुंचा। उसे देखते ही महाराणा का क्रोध भड़क उठा, पर असमर्थ होने के कारण वह अर्जुनसिंह की इस ढिठाई के लिए उसे कोई दण्ड तो न दे सका, परन्तु केवल यही कहा—'दग़ाबाज़ ! मेरे सामने से चला जा, मुझे मुंह मत दिखला'। महाराणा को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर अर्जुनसिंह ने वहां ठहरना उचित न समझा और वह तुरन्त वहां से लौट गया।

महाराज अर्जुनसिंह (शिवरती का) को, जो उन दिनों काशी जाने के लिए शहर से बाहर हज़ारेश्वर के मंदिर के पास ठहरा हुआ था, जब यह बात मालूम हुई तब उसने चूंडावतों से कहा—'तुम लोग अपने बुरे आचरण और स्वामिद्रोह के कारण रावत चूंडा के पवित्र वंश पर धब्बा लगा रहे हो'। अर्जुनसिंह के इस वचन को सुनकर वे लज्जित हुए और चित्तोड़ चले गये। महाराणा की आज्ञा से सोमचन्द का दाहकर्म पीछोले की बड़ी पाल पर किया गया, जहां उसकी छत्री अब तक विद्यमान है[1]।

सोमचन्द के पीछे उसका भाई सतीदास प्रधान और शिवदास उसका सहायक बनाया गया। इधर सतीदास और शिवदास ने अपने बड़े भाई के वध का शत्रुओं से बदला लेने के लिए भींडर के सरदार मोहकमसिंह की सहायता से सेना एकत्र कर चित्तोड़ की ओर कूच किया। उधर उनका सामना करने के लिए अपनी सेना सहित कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह की अध्यक्षता में चूंडावत चित्तोड़ से रवाना हुए। आकोला के पास लड़ाई हुई, जिसमें सतीदास की जीत हुई और रावत अर्जुन-

चूंडावतों और शक्तावतों की लड़ाइयां

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१४-१५। वीर-विनोद; भाग २, प्रकरण १५ (ह०)।

सिंह ने भागकर अपनी जान बचाई। फिर शक्तावतों को खेरौदा के पास हरा-कर चूंडावतों ने उनसे उक्त लड़ाई का बदला ले लिया। चूंडावतों और शक्तावतों के बीच की लड़ाइयों का यह बुरा परिणाम हुआ कि प्रजा का कोई रक्षक न रहने के कारण आधा मेवाड़ ऊजड़-सा होने लगा। किसान, मज़दूर तथा जुलाहे अन्यत्र जाकर बसने लगे और देश में अशान्ति एवं अराजकता फैल गई[1]।

अपनी प्यारी जन्मभूमि की यह दुर्दशा देखकर महाराणा को होश हुआ और उसकी आंखें खुलीं। उसने सतीदास, शिवदास आदि अपने मंत्रियों तथा मोहकमसिंह से परामर्श कर यह स्थिर किया कि माधवराव सिन्धिया की सहायता से चूंडावतों को चित्तोड़ से बाहर निकाल देना चाहिये। देवगढ़ के रावत गोकुलदास (दूसरे) को अपनी तरफ़ मिलाकर महाराणा ने ज़ालिमसिंह झाला तथा अपने मंत्रियों को सिंधिया के पास, जो उन दिनों पुष्कर में ठहरा हुआ था, भेजा। ज़ालिमसिंह झाला तथा माधवराव सिंधिया[2] दोनों ने मिलकर यह निश्चय किया कि पहले चूंडावतों का दमन कर महाराणा के अधिकार की रक्षा की जाय। फिर चूंडावतों से बतौर दण्ड के ६४००००० रुपये वसूल किये जावें, जिनमें से ४८००००० रु० तो सिन्धिया और बाकी १६००००० रु० स्वयं महाराणा ले लें। उक्त निश्चय के अनुसार ज़ालिमसिंह तथा आंबाजी इंगलिया[3] ससैन्य चित्तोड़ की ओर रवाना हुए और मार्ग में हमीरगढ़ पर, जो सलूम्बर के रावत भीमसिंह के खास सलाहकार धीरतसिंह के अधिकार में था, चढ़ाई की। धीरतसिंह छः सप्ताह तक उनका सामना करने के बाद चित्तोड़ चला गया और उसका क़िला तथा जागीर मरहटों के हाथ लगी। इसी प्रकार बसी की जागीर भी चूंडावतों के हाथ से निकल गई। ज़ालिमसिंह और इंगलिया की संयुक्त सेना ने बसी से आकर चित्तोड़ के पास डेरा डाला, जहां पीछे से सिंधिया भी अपनी सेना को साथ लेकर आ पहुंचा[4]।

चूंडावतों को दबाने का प्रयत्न

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१५-१६।

(२) इसको महादजी सिन्धिया भी कहते थे।

(३) यह माधवराव और दौलतराव सिन्धिया का सेनापति तथा राजनैतिक सलाहकार था।

(४) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१६-१७। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

सिंधिया को महाराणा से मिलने का बड़ा चाव था। वह उससे भेंट करने में अपनी गौरव-वृद्धि समझता था, इसलिए उसने इस सम्बन्ध में महाराणा से बातचीत करने के लिए ज़ालिमसिंह झाला को उदयपुर भेजा। ज़ालिमसिंह के अनुरोध करने पर महाराणा ने सिंधिया से मुलाक़ात करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद ज़ालिमसिंह सिंधिया के पास चित्तोड़ वापस चला गया और वहां से महाराणा से मिलाने के लिए उसे साथ लेकर नाहर मगरे पहुंचा, जहां वि० संवत् १८४८ आश्विन (ई० स० १७९१ सितम्बर) में सिंधिया से महाराणा की मुलाक़ात हुई और रावत भीमसिंह आदि चूंडावतों को चित्तोड़ से बाहर निकाल देने के सम्बन्ध में बातचीत हुई।

महाराणा से सिंधिया की मुलाक़ात

इस प्रकार आपस में मिल-जुलकर मेवाड़-सम्बन्धी सारी बातें पक्की कर लेने के उपरान्त महाराणा और सिन्धिया तो कूच की तैयारी करने लगे, इतने में महाराणा के पठान सैनिक, जिन्हें बहुत दिनों से तनख़्वाह नहीं मिली थी, उसकी ड्योढ़ी की तरफ़ नङ्गी तलवारें लेकर चले। उनका मुक़ाबला करने के लिए स्वयं महाराणा उठ खड़ा हुआ और उसने अपनी तलवार सँभाली। यह देखकर उसके राजपूत सरदार पठानों पर टूट पड़े। कुछ देर तक लड़ाई हुई, जिसमें बहुतसे पठान हताहत हुए और बाक़ी जान बचाकर भाग गये। इस उपद्रव में पीथावास का सरदार तख़्तसिंह भी मारा गया। इस झगड़े की खबर पाते ही सिंधिया तथा ज़ालिमसिंह ने घटनास्थल पर पहुँचकर महाराणा के पठान सैनिकों को भविष्य में प्रतिमास नियत तिथि पर वेतन दिये जाने का वचन दिया और महाराणा की अरदली तथा खास चौकी का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया[1]।

पठान सैनिकों का उपद्रव

महाराणा ने नाहर मगरे से कूच कर चित्तोड़ के समीप सेंती गांव में डेरा डाला और रावत भीमसिंह को क़िला खाली कर देने के लिए कहलाया, पर ज़ालिमसिंह झाला, जो चूंडावतों का शत्रु था, महाराणा के साथ था, इसलिए भीमसिंह ने क़िला खाली करना न चाहा, जिससे उसपर घेरा डाला गया और जब लड़ाई होने लगी तब उस-

रावत भीमसिंह से चित्तोड़ खाली कराना

(१) वीर-विनोद; भाग २, प्रकरण १२।

(भीमसिंह) ने आंबाजी इङ्गलिया के द्वारा महाराणा के पास यह संदेश कहला भेजा कि 'हम सदा से आपके चरणों के सेवक हैं, परंतु ज़ालिमसिंह झाला[1] कोटे वापस भेज दिया जाय तो हम आपकी सेवा में तुरंत उपस्थित हो जावें[2]। महाराणा ने इसे स्वीकार कर लिया और ज़ालिमसिंह कोटे लौट गया। तब रावत भीमसिंह तथा आमेट का रावत प्रतापसिंह महाराणा के पास हाज़िर हो गये और चित्तोड़ का क़िला खाली कर दिया।

माधवराव ने भी अपनी ओर से आंबाजी इङ्गलिया को अधिकार दे दिया और मेवाड़ की व्यवस्था ठीक करने के लिए उसकी अध्यक्षता में एक बड़ी सेना छोड़कर स्वयं पूना की ओर चला गया। पूना जाते समय उसने आंबाजी को नीचे लिखी हिदायतें कीं—

(१) महाराणा की हुकूमत को बहाल करना और राजद्रोही सरदारों तथा सिन्धी सिपाहियों ने राज्य की जो भूमि दबा ली है, उसे महाराणा को वापस दिलाना।

---

(१) चूंडावतों को मटियामेट करने में ज़ालिमसिंह झाला की बहुत बड़ी राजनैतिक चाल थी। जयपुर की सेना को हराकर कोटे में तो वह अपना रोब पहले ही जमा चुका था और अब चूंडावतों को बरबाद कर मेवाड़ को अपने चंगुल में फँसाना और राजपूताने पर अपनी धाक जमाना चाहता था। चूंडावतों को यह शंका थी कि कहीं वह चित्तोड़ को अपने अधीन न कर ले, इसलिए उन्होंने उसे छोड़ना न चाहा। आंबाजी इंगलिया भी ज़ालिमसिंह की चाल ताड़ गया और उसका ज़ोर तोड़ने के लिए ही उसने रावत भीमसिंह से मेल कर लिया।

(२) *फिर द्वितिय दिवस चितकरि विचार, कहि भीम भीम कहुं समंचार ।*
श्रीरांन हुकम फुरमाय एह, खाली दुरग करिये अछेह ॥
कछु बात चित्त नहिं धरिय तब्ब, फिर कटक संज गढ़ घेरि जब्ब ।
दक्खिन दिसान मोरचा मंडि, रचि जुद्ध दिवस निसप्रति अखंड ॥
रावत विचार चित लाज लोग, नहिं कबहुं स्वामि संग्राम जोग ।
अंबाहि ज्वाब कहवाय भीम, हम रांन चरन सेवग कदीम ॥
जालम्म करहिं रुकसत्त जांम, महारांन पाय लग्गहि सुताम ।
जालम हि सील तब दिय दिवांन, लगि रांन चरन तब भीम आंन ॥

भीमविलास; पृ० १०२।

(२) मेवाड़-राज्य के झूठे दावेदार रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से बाहर निकाल देना।

(३) मारवाड़ के राजा से गोड़वाड़ का परगना वापस लेना।

(४) महाराणा अरिसिंह के मारे जाने के सम्बन्ध में बून्दीवालों से जो झगड़ा चल रहा है, उसे तय करना।

माधवराव सिन्धिया के पूना चले जाने पर महाराणा ने चित्तोड़ का क़िला जयचन्द गांधी को सौंप दिया और रावत भीमसिंह को साथ लेकर वह उदयपुर चला गया[1]।

रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालना

महाराणा ने उदयपुर आकर रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने के विचार से आंबाजी इंगलिया की अध्यक्षता में शिवदास गांधी, मेहता अगरचन्द, किशोरदास देपुरा तथा रावत अर्जुनसिंह आदि सरदारों को ससैन्य भेजा। वह सेना उदयपुर से चलकर समीचा गांव में पहुंची, जहां रत्नसिंह के साथी जोगियों से लड़ाई हुई, जिसमें वे (जोगी) हारकर केलवाड़े भाग गये, पर उन्हों(सरदारों)ने वहां से भी उन्हें मार भगाया और वि० सं० १८४६ पौष वदि ७ (ई० स० १७९२ ता० ६ दिसम्बर) बृहस्पतिवार को कुंभलगढ़ पर अधिकार कर वहां से रत्नसिंह को भगा दिया। कुंभलगढ़ से रत्नसिंह के चले जाने पर आंबाजी इंगलिया तथा मेवाड़ के सरदार उस क़िले को सूरजगढ़ के राज जसवन्तसिंह के अधिकार में देकर उदयपुर लौट आये[2]।

आंबाजी इंगलिया की कार्रवाई

आंबाजी इंगलिया ने उदयपुर आकर सिंधिया की हिदायत के अनुसार वहां के प्रबन्ध का काम अपने हाथ में लिया। फिर मेवाड़ के सरदारों आदि पर जो दंड लगाया गया था, उसमें से बारह लाख रुपये तो चूंडावतों तथा आठ लाख शक्तावतों से उसने वसूल किये। इसके बाद रायपुर, राजनगर, गुरलां, गाडरमाला, हमीरगढ़, कुरज, जहाजपुर आदि स्थानों को राजद्रोही सिन्धी सिपाहियों तथा मेवाड़ के सरकश सरदारों से छीनकर उनपर महाराणा का अधिकार करा दिया। यद्यपि

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५१७-२०। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

लूट-खसोट में मेवाड़ से विपुल धनराशि उसके हाथ लगी, तो भी वहां शान्ति स्थापित करने, बिगड़ी हुई व्यवस्था को सुधारने और महाराणा के हितसाधन में वह कुछ-कुछ यत्नशील रहा[1]। उसके समय चूंडावतों की बहुत हानि हुई, जिसका शक्तावतों से बदला लेने के लिए वे फिर उद्योग करने लगे। इसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

डूंगरपुर तथा बांसवाड़े पर महाराणा की चढ़ाई

डूंगरपुर के रावल वैरीसाल का देहान्त हो जाने पर उसके पुत्र फ़तहसिंह ने न तो महाराणा से तलवार-बन्दी का दस्तूर कराया और न महाराणा के ईडरवाले विवाह में, जो वि० सं० १८५० फाल्गुन (ई० स० १७६४ मार्च) में हुआ था, वह सम्मिलित हुआ, जिससे क्रुद्ध होकर महाराणा ने उसे दंड देने के लिए ईडर से उदयपुर लौटते समय डूंगरपुर पर घेरा डाला, परन्तु रावत भीमसिंह की मारफ़त गद्दीनशीनी के दस्तूर के तीन लाख रुपये तथा सेना का खर्च दे देने पर घेरा उठा लिया गया। बांसवाड़े का रावल विजयसिंह महाराणा के प्रतिकूल आचरण करने लगा, इसलिए महाराणा ने डूंगरपुर से उसपर चढ़ाई कर दी, परंतु जब सेना मही नदी के तट पर पहुंची, तब उक्त रावल ने गढ़ी के ठाकुर जोधसिंह चौहान के द्वारा ३००००० रुपये देकर अपना अपराध क्षमा कराया[2]।

रावत रघुनाथसिंह को धरियावद का परगना वापस दिलाना

महाराणा ने इसी वर्ष रावत रघुनाथसिंह को धरियावद का परगना, जिसे देवलिया (प्रतापगढ़) के रावत सामन्तसिंह ने छीन लिया था, वापस दिलाया और सामन्तसिंह से तीन लाख रुपये वसूल किये[3]।

मेवाड़ में फिर अत्याचार

ई० स० १७६४ ता० १२ जनवरी (वि० सं० १८५० पौष सुदि ११) को माधवराव सिन्धिया की मृत्यु के बाद उसका भतीजा दौलतराव उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय में आंबाजी इंगलिया हिन्दुस्तान (पूर्वी भारत) का सूबेदार नियत हुआ, जिससे वह सिन्धिया के आदेशानुसार मेवाड़-राज्य का प्रबन्धभार गणेश पन्त तथा महाराणा के दो अधिका-

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२०। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(२) भीमविलास; पृष्ठ १०८-१०६।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५। भीमविलास, पृष्ठ १०६।

रियां (मेहता सवाईसिंह और मेहता शेरसिंह) को सौंपकर हिन्दुस्तान की ओर चला गया। गणेश पन्त तथा उसके साथी अधिकार पाते ही ज़ोर-जुल्म और लूटमार से मेवाड़ को चूसकर अपने घर बनाने के उद्योग में लग गये। इस धींगाधींगी में चूंडावतों को बहुत हानि पहुंची। कुरावड़ की जागीर छीन ली गई, सलूंबर पर तोपों के मोरचे लगाये गये और सिन्धी सिपाहियों ने भागकर देवगढ़ में शरण ली[1]।

शक्तावतों की शत्रुता को ही अपनी तबाही का कारण समझकर उनसे बदला लेने के विचार से चूंडावतों ने रावत अर्जुनसिंह के छोटे पुत्र अजीतसिंह को

चूंडावतों का फिर ज़ोर पकड़ना

आंबाजी इंगलिया के पास, जो उन दिनों दतिया की लड़ाई में लगा हुआ था, भेजा। अजीतसिंह ने चूंडावतों से दस लाख रुपये दिलाने का वादा कर आंबाजी इंगलिया को अपना सहायक बना लिया। इंगलिया ने अपने नायब को भींडर के सरदार मोहकमसिंह आदि शक्तावतों तथा सतीदास प्रधान का साथ छोड़ देने के लिए लिखा, जिससे चूंडावतों का ज़ोर फिर बढ़ गया। वि० सं० १८५३ (ई० स० १७९६) मार्गशीर्ष में प्रधान सतीदास तथा सोमचन्द गांधी का पुत्र जयचन्द क़ैद कर लिये गये और मेहता अगरचन्द को प्रधान एवं रावत भीमसिंह को मुसाहब का पद दिया गया। रावत भीमसिंह आदि चूंडावत सरदारों ने शक्तावतों से दस लाख रुपये वसूल किये और उनकी दो जागीरें-हींता तथा सेमारी-छीन लीं।

दौलतराव सिन्धिया का दूसरा बड़ा सैनिक अफ़सर शेणवी (सारस्वत) ब्राह्मण लकवा दादा[2] था। वह इंगलिया का परम शत्रु था। जब दौलतराव

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२१-२२। वीरविनोद; भा० २, प्रकरण १५।

(२) लकवा दादा लाड, सारस्वत (शेणवी) ब्राह्मण था। उसके पूर्वजों ने सावन्तवाड़ी राज्य के पारखा व आरोबा के देसाइयों को बीजापुर के सुलतान से सरदारी दिलाई थी। इसी कृतज्ञता के कारण उन्होंने लकवा के पूर्वजों को आरोबा व चीखली गांवों में जागीर दी थी, जो अब तक उनके वंश में चली आती है। युवा होने पर लकवा सिंधिया के मुख्य मुत्सद्दी बालोबा तात्या पागनीस के पास चला गया और वहां प्रारम्भ में अहलकार तथा पीछे से सिंधिया के ५२ रिसालों का अफ़सर बना। सेनापति जिवबा दादा की अध्यक्षता में वह अपने अधीनस्थ रिसालों सहित कई लड़ाइयां लड़ा, जिससे उसकी प्रसिद्धि हुई। इस्माइल बेग के साथ आगरा के युद्ध में उसने बहुत वीरता दिखाई, जिसपर उसे 'शमशेरजंग बहादुर' की

लकवा तथा गणेश पन्त की लड़ाइयां

सिन्धिया ने उस(लकवा)को राजपूताने का सूबेदार नियत किया उस समय उसने महाराणा को लिखा कि आंबाजी के प्रतिनिधि गणेश पन्त को मेवाड़ से निकाल दो। इसकी सूचना पाते ही आंबाजी ने भी गणेश पन्त को लिखा कि शेणवियों को मेवाड़ से निकाल दो। आंबाजी इंगलिया का आज्ञापत्र मिलने पर गणेश पन्त ने महाराणा के मंत्रियों तथा चूंडावत सरदारों से शेणवियों को निकाल देने के लिए सहायता मांगी। आंबाजी की ज़ालिमसिंह झाला से, जो चूंडावतों का दुश्मन था, मित्रता थी। इसलिए चूंडावतों ने आपस में मिलजुलकर यह तय किया कि जैसे हो वैसे गणेश पन्त को यहां से निकलवाकर मेवाड़ पर से इंगलिया का पंजा हटा देना चाहिये। अपना मतलब निकालने के लिए उन्हें एक गहरी चाल चलनी पड़ी। पहले वे चिकनी-चुपड़ी बातों से तथा मदद देने का वादा कर गणेश पन्त को उत्साहित करते रहे, फिर जब देखा कि वह दम में आ गया है तब उसके विरुद्ध शेणवियों को उभारा। उनसे उस(गणेश पन्त)की लावा नामक मुक़ाम पर लड़ाई हुई, जिसमें मेवाड़ के सरदारों से कोई सहायता न मिलने के कारण वह हारकर चित्तोड़ चला गया। चूंडावतों के उकसाने से लकवा के साथियों से उसकी एक और लड़ाई हुई। इस लड़ाई में भी गणेश पन्त की हार हुई और उसे भागकर हमीरगढ़ में शरण लेनी पड़ी, पर वहां भी उसका पीछा करते हुए शेणवी जा पहुंचे। शेणवियों की सहायता के लिए मेहता अगरचन्द, रावत भीमसिंह, रावत प्रतापसिंह (आमेट का), रावत गोकुलदास (देवगढ़ का), ठाकुर जैतसिंह (बदनोर का), राणावत धीरतसिंह (हमीरगढ़ का), रावत सरदारसिंह (भदेसर का) राणावत उदयसिंह (मंडप्या का), रावत जोरावरसिंह (भगवानपुरा का) आदि चूंडावत सरदारों की अध्यक्षता में उदयपुर से १५००० सैनिक भी पहुंच गये।

उपाधि मिली। फिर वह पाटन के युद्ध में इस्माइल बेग से, लाखेरी के युद्ध में होल्कर की सेना से, और अजमेर की लड़ाई में भी लड़ा। इन लड़ाइयों से उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया। दौलतराव सिंधिया के समय वह राजपूताने का सूबेदार नियत हुआ। फिर वह उदयपुर आया, जहां जार्ज टॉमस से उसकी लड़ाई होती रही, जिसका हाल आगे लिखा जायगा। वि० सं० १८५९ माघ सुदि ५ (ई० स० १८०३ ता० २७ जनवरी) को सलूंबर में ज्वर से उसका देहान्त हुआ (नरहर व्यंकाजी राजाध्यक्ष; जिवबा दादा बक्षी यांचे जीवन-चरित्र; पृ० १२४-३२,१३६-४० और २६७ (मराठी)।

गणेश पन्त ने शत्रुओं का बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया। उसने क़िले से बाहर निकल-निकलकर उनपर कई आक्रमण किये, जिनमें से एक में हमीरगढ़ के रावत धीरतसिंह के दो पुत्र–अभयसिंह और भवानीसिंह–मारे गये। इसी अरसे में उसकी सहायता के लिए आंबाजी इंगलिया का गुलाबराव कोद्व नामक सरदार मेवाड़ में आया, उसके साथ मेवाड़ के सरदारों की मूसामूसी गांव के पास लड़ाई हुई। इस लड़ाई में चूंडावतों की हार हुई और सिन्धी जमादार चन्दन तथा बहुतसे राजपूत काम आये[1]।

हमीरगढ़ और घोसूंडे की लड़ाई

मूसामूसी से भागकर मेवाड़ की सेना ने शाहपुरे में शरण ली, जहां से सुसज्जित होकर उसने हमीरगढ़ को फिर जा घेरा और उसपर गोलन्दाजी शुरू कर दी, जिससे क़िले की दीवार टूट गई। गणेश पन्त क़िले से भाग जाने की तैयारी कर रहा था, इतने ही में उसकी मदद के लिए आंबाजी इंगलिया के पुत्र की अध्यक्षता में आंबाजी का भाई बालेराव, बापू सिंधिया, जसवन्तराय सिंधिया, कप्तान बटरफ़ील्ड तथा कोटे के ज़ालिमसिंह झाला की सेना बेड़च नदी के किनारे घोसूंडा गांव में आ पहुंची, जहां गणेश पन्त भी हमीरगढ़ से निकलकर उससे आ मिला। लकवा ने हमीरगढ़ पर से घेरा उठा लिया और मेवाड़ की सेना के साथ वह उक्त नदी के दूसरे किनारे पर चित्तोड़ के निकट आ ठहरा। युद्ध छिड़ते ही आंबाजी के भाई बालेराव तथा गणेश पन्त में सेना के वेतन के सम्बंध में झगड़ा हो गया, जिससे गणेश पन्त सांगानेर चला गया। बालेराव को एक बार लकवा ने शत्रुओं के चंगुल से छुड़ाया था, इसलिए या तो अहसान से दबकर या लड़ाई न करने के विचार से वह (बालेराव) लकवा से मेल कर लौट गया और महाराणा ने आंबाजी का पक्ष बिलकुल छोड़ दिया[2]।

ऐसी स्थिति देखकर आंबाजी ने वि० सं० १८५६ (ई० स० १७९९) में अपने दो

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२४–२५। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२५–२६। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

अफ़सरों (सदरलैंड[1] और जॉर्ज टॉमस[2]) को मेवाड़ की ओर भेजा। उन्होंने उक्त राज्य में प्रवेश कर चूंडावतों के देवगढ़, आमेट, कोशीथल आदि गांव लूट लिये और चूंडावत सरदारों से लाखों रुपये वसूल किये[3]। यह खबर पाकर उनका सामना करने के लिए लकवा ने उदयपुर की घाटी (देबारी) के पास डेरा डाला, जहां कुछ दिनों पीछे

लकवा तथा टॉमस की मेवाड़ में लड़ाइयां

---

(१) सदरलैंड स्कॉटलैंड का रहनेवाला था। वह ई० स० १७६० में डिबॉयन की, जो सिंधिया का सेनापति था, सेना में सम्मिलित हुआ और शनैः शनैः उन्नति करता हुआ बहुत ऊंचे पद पर पहुँच गया। ई० स० १७९५ के अन्त में डिबॉयन के चले जाने पर वही उसके पद पर काम करने लगा। ई० स० १७९६ में उसने बुन्देलखंड में विद्रोहियों का दमन किया। फिर वह उक्त युद्ध में लकवा के विरुद्ध टॉमस को सहायता देने के लिए आया। ई० स० १८०२ तक वह सिंधिया की ओर से भिन्न भिन्न लड़ाइयां लड़ता रहा और उसी वर्ष उसने सिंधिया के दूसरे अफ़सर पैरन की प्रतिस्पर्धा के कारण इस्तीफ़ा दे दिया। फिर वह आगरे चला गया और अंग्रेज़ों से लड़ाई होने तक वहीं ठहरा। ई० स० १८०३ में वह अंग्रेज़ों के साथ हो गया। कई साल तक वह सिंधिया से पेन्शन पाता रहा और मथुरा में उसका देहान्त हुआ (यूरोपियन मिलिटरी एडवेंचरर्स ऑफ़ हिन्दुस्तान; पृ० ४१०-१६)।

(२) जॉर्ज टॉमस राजपूताने में 'जाज फ़िरंगी' के नाम से प्रसिद्ध है। उसका जन्म ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१३) में आयर्लैंड में हुआ था। वह ई० स० १७८१ में एक अंग्रेज़ी जहाज़ से मद्रास आया। ५ वर्ष तक वह कर्नाटक में पोलिगरों के साथ रहा। वहां से कुछ समय तक हैदराबाद के निज़ाम की सेना में रहकर ई० स० १७८७ में दिल्ली चला गया और बेगम समरू की सेवा में रहा, जहां वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। ई० स० १७९३ से वह आपा खांडेराव के पास रहा। ई० स० १७९७ में आपा खांडेराव के मरने पर उसके उत्तराधिकारी वामनराव से अप्रसन्न होकर वह पंजाब की ओर चला गया और हरियाने को जीतकर वहां जॉर्जगढ़ बनाया। फिर हिसार, हांसी और सिरसा पर भी अधिकार कर लिया, जिससे उसकी ताक़त बढ़ गई। तदनन्तर ई० स० १७९९ में वह वामनराव मरहटे के साथ मिलकर जयपुर और बीकानेर की लड़ाइयों में कुछ समय तक रहा और उसके बाद आंबाजी की सेवा में रहकर उदयपुर में लकवा से लड़ता रहा। यहां से वह बीकानेर और जयपुर होता हुआ पंजाब पहुंचा, जहां सिक्खों से कई लड़ाइयां हुई। उसके प्रतिस्पर्धी पैरन और कप्तान स्मिथ ने भी जॉर्जगढ़ में उससे मुक़ाबला किया, तब वह ब्रिटिश सीमा-प्रान्त की तरफ़ भाग गया, जहां से कलकत्ते जाता हुआ ई० स० १८०२ अगस्त में मर गया (विलियम फ्रैंकलिन; मिलिटरी मैमॉयर्स ऑफ़ मिस्टर जॉर्ज टॉमस—ई० स० १८०५ का संस्करण। हर्बर्ट कॉम्टन; यूरोपियन मिलिटरी एडवेंचरर्स ऑफ़ हिन्दुस्तान; पृष्ठ १०९-२२०)।

(३) टॉ०; रा०; जि० १, पृ० ५२७। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

उक्त दोनों अफ़सर भी आ पहुंचे, पर वहां पहुंचते ही सदरलैंड न-जाने क्यों जार्ज टॉमस को अकेला छोड़कर चला गया।

सदरलैंड के चले जाने से लकवा की हिम्मत बढ़ गई और उसने पड़ोस के सरदारों को अपनी सहायता के लिए बुला लिया। लकवा से लड़ने के लिए टॉमस आगे बढ़ा, परंतु वर्षा और आंधी के कारण लड़ाई न हो सकी। तूफ़ान के बाद लकवा टॉमस की ओर बढ़ा, परन्तु उसके सुदृढ़ स्थान तथा उसकी तोपों से अपने आदमियों की क्षति होने की आशंका से लौट आया।

आधी रात के समय लकवा के वकील सिन्धिया की चिट्ठी लेकर टॉमस के पास पहुंचे। सिन्धिया ने उस पत्र में दोनों (आंबाजी और लकवा) को आपस में सुलह करने की आज्ञा दी थी और लकवा को नर्मदा के उत्तर की तरफ़ का शासक नियत करने के लिए लिखा था, परन्तु टॉमस ने कहा कि 'मैं तो आंबाजी का नौकर हूं; उसने मुझे लकवा को मेवाड़ से निकालने के लिए भेजा है, इसलिए इसके सिवा मैं और कुछ नहीं कर सकता'। तब टॉमस ने वहां की संपूर्ण स्थिति आंबाजी को लिख भेजी, परन्तु उससे कोई नतीजा न निकला, क्योंकि आंबाजी के मुख्य मुख्य अफ़सरों को घूस दे दी गई थी, जिससे उन्होंने सिंधिया के आने तक लकवा से लड़ना न चाहा। इसपर लाचार होकर टॉमस को वहां से मेवाड़ की उत्तरी सीमा की ओर जाना पड़ा। लकवा भी सेना लेकर उससे लड़ने को चला और शाहपुरे के निकट ठहरा। टॉमस ने नालों-वाले स्थान पर डेरा लगाया। लकवा ने टॉमस की एक सेना पर, जो भोजन बनाने में लगी हुई थी, एकदम हमला कर उसे नष्ट कर दिया। इसका बदला लेने के लिए टॉमस ने दो सेनाओं को छोड़कर शेष समस्त सैन्य सहित आक्रमण किया, परन्तु अधिक वृष्टि के कारण वह सफल न हुआ। आठ दिन तक बराबर पानी बरसता रहा। इन दिनों आपस में छोटी-छोटी लड़ाइयां भी होती रहीं। टॉमस और लकवा दोनों चालें चलते रहे, परन्तु कोई बड़ा युद्ध न हुआ। लकवा ने टॉमस को अपनी तरफ़ मिलाना चाहा, जिसपर उसने स्पष्ट कह दिया कि 'यह संभव है इस लड़ाई के बाद मैं आंबाजी की नौकरी छोड़ दूं, परन्तु उसका विरोध कभी न करूंगा'। इस समय टॉमस की सेना बहुत थोड़ी रह गई थी, तो भी उसने अपने थोड़े-से सैन्य से लकवा

को कई बार हैरान किया। एक बार दोनों सेनाओं के बीच का नाला वर्षा से भर गया था, परन्तु लकवा के सिपाही उसकी परवाह न कर पानी में कूद पड़े। यह देखकर टॉमस के बहुतसे सिपाही निराश हो गये। कई गुसांई लड़ते हुए मारे गये और आंबाजी की अधिकांश सेना भाग गई। लकवा ने शाहपुरे के राजा को अपनी तरफ़ इस विचार से मिला लिया कि टॉमस को उससे रसद आदि न मिल सके।

लड़ाई का सामान कम हो जाने के कारण उसे लेने के लिए टॉमस सांगानेर गया। वहां से काफ़ी सामान के साथ वह लकवा की ओर, जिसने पास के एक क़िले पर अधिकार कर रक्खा था, बढ़ा। अपने को लड़ने में असमर्थ देखकर लकवा ने क़िला छोड़ दिया और वह अजमेर की ओर चला गया।

अब तक टॉमस दौलतराव सिन्धिया की आज्ञाओं की यह कहकर अवहेलना करता रहा कि 'मैं तो आंबाजी का नौकर हूं और उसने मुझे लकवा को मेवाड़-राज्य से निकाल देने की आज्ञा दी है'। लकवा के मेवाड़ छोड़कर अजमेर की तरफ़ चले जाने पर उसका उद्देश्य सफल हुआ।

उपर्युक्त लड़ाइयों से टॉमस का प्रभाव बहुत बढ़ गया, जिससे लकवा ने उसपर यह दोष लगाया कि सिन्धिया का अधिकार उठाकर वह स्वयं मेवाड़ पर अधिकार करना चाहता है। मेवाड़ से लकवा के चले जाने के कारण आंबाजी को टॉमस की आवश्यकता नहीं रही। पैरन[1] ने भी लकवा से मेल कर लिया। फिर उसने आंबाजी को सिन्धिया के पत्र दिखलाकर कहा कि मेवाड़ का अधिकार लकवा को दे दो और वहां से अपना दखल उठा लो। उसने आंबाजी को यह धमकी भी दी कि यदि तुमने सिन्धिया की आज्ञा के अनुसार ऐसा न किया

(१) पैरन फ्रांस का रहनेवाला था। वह एक छोटा फ़ौजी अफ़सर बनकर ई० स० १७८० में भारत में आया और गोहद के राणा की सेवा में रहा; फिर भरतपुर चला गया। ई० स० १७९० में वह माधवराव सिंधिया की सेना में डिबॉयन के अधीन रहा और १७९६ में डिबॉयन के स्थान पर सिंधिया का सेनापति हुआ। इसके बाद वह राजपूताने में आंबाजी के साथ आया। फिर वह जार्ज टॉमस से लड़ा। दूसरे मरहटा युद्ध में उसकी सेना दिल्ली, आगरा और लसवारी में हारी। वह लखनऊ, कलकत्ता और चन्दनगर होता हुआ ई० स० १८०५ में फ्रांस चला गया और वहीं ई० स० १८३४ में मरा।

तो मैं लकवा को सहायता दूंगा। यह अवस्था देखकर आंबाजी ने टॉमस को मेवाड़ से बाहर चले जाने की आज्ञा दी, जिससे वह बीकानेर की ओर चला गया। इस प्रकार मेवाड़ से आंबाजी इंगलिया का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर सिन्धिया की ओर से मेवाड़ की सूबेदारी लकवा को मिली।

मेहता अगरचन्द ने महाराणा अरिसिंह के समय से राजभक्त रहकर समय समय पर बहुत कुछ सेवा की थी। वि० सं० १८५६ पौष (ई० स० १७९९ दिसम्बर) में मांडलगढ़ में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द मंत्री बनाया गया और जहाजपुर का क़िला उसके अधिकार में रखा गया, जिसे लकवा ने छः लाख रुपयों के एवज़ में शाहपुरे के राजा से छीनकर पीछा महाराणा के खालसे में मिला लिया था। लकवा ने थोड़े ही दिनों में मेवाड़ की प्रजा से २४००००० रुपये वसूल किये। फिर अपनी ओर से जसवन्तराव भाऊ को अधिकार देकर वह जयपुर चला गया[1]।

मेहता देवीचन्द का प्रधान बनाया जाना

वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२) में जसवन्तराव होल्कर सिन्धिया से गहरी हार खाकर मेवाड़ में चला आया, परन्तु जब सिन्धिया की सेना उसका पीछा करती हुई वहां भी आ पहुंची, तब वह नाथद्वारे चला गया। वहां के गोस्वामियों से उसने तीन लाख रुपये वसूल करना और मन्दिरों की सम्पत्ति लूट लेना चाहा। इसपर गोस्वामियों ने महाराणा को इसकी सूचना दी, जिसपर उसने देलवाड़े के राज कल्याणसिंह झाला, कूंठवा के ठाकुर विजयसिंह (सांगावत), आगर्या के ठाकुर राठोड़ जगतसिंह (जैतमालोत), मोई के जागिरदार अजीतसिंह भाटी, साह एकलिंगदास बौल्या और जमादार नाथू (सिंधी) को सेना सहित नाथद्वारे की ओर रवाना किया। ये लोग वहां पहुंचकर गोस्वामी और तीनों मूर्तियों को लेकर चले; इतने में कोठारिये का रावत विजयसिंह चौहान भी मदद के लिए आ पहुंचा। पहले ये लोग ऊनवास गांव में ठहरे। यहां से आगे कुछ भय न होने से विजयसिंह अपने ठिकाने के लिए विदा हो गया। मार्ग में जसवन्तराव होल्कर की फ़ौज ने उस बहादुर सरदार को घेरकर कहा—'शस्त्र और

जसवन्तराव होल्कर की मेवाड़ पर चढ़ाई

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२८। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२।

घोड़े दे जाओ।' शस्त्र और घोड़ों को देने में अपना अपमान समझकर उस वीर रावत ने अपने घोड़ों को मार डाला और स्वयं वीरतापूर्वक शत्रुओं पर टूट पड़ा। शत्रु-सेना में हज़ारों सैनिक थे, जो विजयसिंह की बहादुरी पर शाबास! शाबास! बोलते और अपनी जान का खतरा समझते थे। अन्त में वह वीर अपने राजपूतों सहित वहीं मारा गया[1]। ऊनवास से वे तीनों मूर्तियां उदयपुर पहुंचा दी गई।

इसके उपरान्त मेवाड़ के सरदारों से दंड के रूप में लाखों रुपये वसूल कर जसवन्तराव होल्कर अजमेर होता हुआ जयपुर की ओर चला गया। सिंधिया के अफ़सरों ने भी, जो होल्कर का पीछा करते हुए मेवाड़ में आये थे, महाराणा और उसके सरदारों से तीन लाख रुपये वसूल किये[2]।

मरहटों के उपद्रव तथा अत्याचार को देखकर मौजीराम ने, जो प्रधान बनाया गया था, महाराणा को यह सलाह दी कि मेवाड़ की सेना में यूरोपियन ढंग की शिक्षा पाये हुए नये सैनिक भरती किये जायँ और उनका खर्च सरदारों से वसूल किया जाय। जब यह बात सरदारों को मालूम हुई, तब उन्होंने मौजीराम को अधिकार-च्युत कर-के उसके पद पर सतीदास को नियुक्त किया और उसके भाई शिवदास को, जो चूंडावतों के डर से भागकर ज़ालिमसिंह के पास कोटे चला गया था, वापस बुला लिया[3]। इस घटना के कुछ दिनों पीछे, सलुम्बर के एक मठ में लकवा का देहान्त हो जाने पर, आंबाजी-इंगलिया का भाई बालेराव शक्तावतों तथा सतीदास प्रधान से मिल गया। फिर उसने महाराणा के भूतपूर्व मंत्री देवी-चन्द को, चूंडावतों का तरफ़दार समझकर, क़ैद कर लिया और चूंडावतों की कुछ जागीरें छीन लीं। अपनी योजना को पूर्ण करने का सुअवसर देखकर ज़ालिमसिंह झाला भी, जो चूंडावतों का विरोधी था, कोटे से फ़ौज लेकर आया और शक्तावतों से मिल गया। वि० सं० १८५८ फाल्गुन (ई० स० १८०२ मार्च) में बालेराव ने महाराणा के पास पहुँचकर मौजीराम को सौंप देने के लिए

देवीचन्द प्रधान का क़ैद किया जाना और शक्ता-वतों का फिर ज़ोर पकड़ना

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १९।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५२९-३०।

(३) वही; जि० १, पृ० ५२८-२९।

कहा, परन्तु उसका कथन स्वीकृत न हुआ। इसपर मरहटी सेना महलों की ओर बढ़ी, तो साहसी मौजीराम ने बालेराव, जामलकर तथा ऊदाकुँवर को क़ैद कर लिया। इस तरह मरहटा सरदारों के क़ैद हो जाने पर चूंडावतों ने उनकी सेना पर आक्रमण किया, जिससे वह तितर-बितर होकर गाडरमाला की ओर भाग गई[1]।

यह खबर सुनकर अपने मित्र आंबाजी के भाई बालेराव को क़ैद से छुड़ाने के लिए भींडर और लावा के शक्तावत सरदारों की सहायता लेकर ज़ालिम-

चेजा घाटी की लड़ाई

सिंह झाला चेजा घाटी की तरफ़ बढ़ा। महाराणा उससे मेल रखना चाहता था, परन्तु चूंडावतों के दबाव में आकर वह सिन्धियों तथा सरदारों की ६००० सेना सहित उसका मुक़ाबला करने के लिए बढ़ा। घाटी के पास पांच दिन तक बड़ी बहादुरी के साथ ज़ालिमसिंह से लड़ाई होती रही, जिसमें रावत अजीतसिंह (सारंगदेवोत) सख़्त घायल हुआ। महाराणा ने पालकी देकर उसे अपने ठिकाने में पहुँचा दिया। फिर ज़ालिमसिंह को भी उसकी इच्छा-नुसार महाराणा ने अपने पास बुला लिया और उसने अपने मालिक (महा-राणा) से इस गुस्ताखी की क्षमा मांगी, जिसपर उस (महाराणा) ने उसके लिहाज़ से बालेराव आदि तीनों को छोड़ दिया और फ़ौज-खर्च के एवज़ में ज़ालिमसिंह को जहाजपुर का परगना और क़िला सौंप दिया तो उसने अपनी तरफ़ से विष्णुसिंह शक्तावत को वहां का हाकिम बनाया[2]।

वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में जसवन्तराव होल्कर ने मेवाड़ में दुबारा आकर महाराणा से चालीस लाख रुपये मांगे और उसका एक-तिहाई

होल्कर का मेवाड़ को लूटना

तुरन्त लेना चाहा। इसपर महाराणा ने जैसे-तैसे १२ लाख रुपये एकत्र कर दे दिये और बाक़ी रुपये वसूल करने के लिए बलराम सेठ वहां रक्खा गया। देवगढ़ के सरदार से साढ़े चार लाख और भींडर के शक्तावत सरदार से दो लाख रुपये वसूल हुए। लावा तथा बदनोर के सरदारों से भी उसने बहुत रुपये लिये[3]।

---

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० २३१।

(२) वही; जि० १, पृ० २३०-३१। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५। ख्यात।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० २३१-३२।

वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में सिंधिया भी मेवाड़ में आकर बदनोर के पास ठहरा। वहां होल्कर और उसने मिलकर यह निश्चय किया

मेवाड़ में सिंधिया और होल्कर

कि अपने कुटुम्ब तथा सामान को मेवाड़ के क़िलों में रखकर अंग्रेज़ों से, जिन्होंने हमसे उत्तरीय हिन्दुस्तान और नर्मदा के दक्षिण का सारा प्रदेश छीन लिया है, लड़ना चाहिये; परन्तु आंबाजी इंगलिया ने, जो इन दिनों सिंधिया का प्रधान मंत्री था और लकवा दादा को मदद देने के कारण महाराणा से द्वेष रखता था, यह सलाह दी कि आप दोनों को मेवाड़ का राज्य आपस में बाँट लेना चाहिये।

इस समय रावत संग्रामसिंह शक्तावत तथा कृष्णदास पंचोली तो होल्कर के और रावत सरदारसिंह चूंडावत सिंधिया के दरबार में महाराणा का प्रतिनिधि था। वे दोनों सरदार इस कठिन अवसर पर आपस का द्वेष छोड़कर एक हो गए और स्वामि-भक्ति की प्रेरणा तथा कर्तव्य के अनुरोध से सिंधिया की स्त्री बैजाबाई को, जिसने अपने पति को मुट्ठी में कर लिया था, अपनी ओर मिला लिया। इसके बाद उन्होंने होल्कर से मिलकर पूछा—'क्या आप भी मेवाड़ को आंबाजी के हाथ बेच देना चाहते हैं'? फिर उसके सम्मुख महाराणा की विकट स्थिति का ऐसे मर्मस्पर्शी शब्दों में चित्र खींचा कि उसका जी पिघल गया। सरदारसिंह तथा संग्रामसिंह को ढाढ़स बँधाते हुए उसने उत्तर दिया—'मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूं कि आंबा की इच्छा पूरी न होने दूंगा; आप लोग आपस का वैर छोड़कर एक हो जायँ'। इसके उपरान्त उसने सिंधिया से मिलकर कहा—'महाराणा हमारे मालिकों के मालिक हैं[1], उन्हें सताना ठीक नहीं। उनके जो ज़िले दबा बैठे हैं उन्हें लौटाकर हम दोनों को उनसे मेल कर लेना चाहिये'। होल्कर की बातें सिन्धिया ने भी मान लीं। उस(होल्कर)ने नींबाहेड़े का परगना महाराणा को लौटा भी दिया, परन्तु कुछ दिनों बाद होल्कर को अपने एक संवाददाता का इस आशय का पत्र मिला कि महाराणा का भैरवबख़्श नामक दूत लॉर्ड लेक के डेरे में आकर उसके साथ अंग्रेज़ी सेना की सहायता से मरहटों को मेवाड़ से

(१) सिंधिया तथा होल्कर का स्वामी तो पेशवा और उस(पेशवा)का मालिक सतारे का राजा था, जिसका वंश महाराणा के ही वंश की एक शाखा माना जाता था।

बाहर निकाल देने की कोशिश कर रहा है। उस पत्र के पाते ही होलकर आग बबूला हो गया। उसने तुरन्त सरदारसिंह, संग्रामसिंह तथा कृष्णदास पंचोली को बुलाकर उन्हें खूब फटकारा और उनपर कृतघ्नता एवं विश्वासघात का दोषारोप करते हुए कृष्णदास से पूछा—'क्या मेवाड़ियों का अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का यही ढंग है'? इसपर कृष्णदास पंचोली ने बड़ी नम्रतापूर्वक मीठे तथा युक्तिपूर्ण शब्दों में उत्तर देना आरंभ किया, परन्तु जसवन्तराव के मंत्री अलीकर ताँतिया ने उसे रोककर अपने स्वामी से कहा—"आप और सिंधिया के बीच दुश्मनी पैदा कराके ये 'रंगड़'[1] दोनों को बरबाद कर देंगे। आप को इनकी ईमानदारी का पता चल गया, इसलिए इनका साथ छोड़ दें, सिंधिया से मेल कर लें और आंबाजी को मेवाड़ का सूबेदार नियुक्त करें। यदि आप मेरी सलाह न मानेंगे तो मैं आपका साथ छोड़कर सिंधिया को मालवे ले जाऊंगा"। भास्कर भाऊ को छोड़कर और सभी मंत्रियों ने ताँतिया की बातों का समर्थन किया। फिर होल्कर उत्तर की ओर चला गया। वहां उसकी लॉर्ड लेक से मुठभेड़ हुई। उसे हराकर लेक ने पंजाब तक उसका पीछा किया। होल्कर के मेवाड़ से विदा होते ही सिंधिया ने सदाशिवराव के द्वारा १६००००० रुपये मेवाड़ से वसूल किये[2]।

मरहटों की ऐसी लूट-खसोट से मेवाड़ की बड़ी दुर्दशा हो गई थी और महाराणा भीमसिंह अत्यन्त खिन्न तथा तंग हो रहा था; इतने में एक नया उपद्रव उठा। वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९९) में सलुम्बर के रावत भीमसिंह के द्वारा महाराणा की कुंवरी कृष्णकुमारी का जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के साथ सम्बन्ध (सगाई) हुआ था, परन्तु वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में उक्त महाराजा का देहान्त हो जाने से उसका सम्बन्ध जयपुर के महाराजा जगतसिंह से किया गया।

कृष्णकुमारी का आत्म-बलिदान

दौलतराव सिंधिया ने, जो इन दिनों महाराजा जगतसिंह से रुपये न मिलने के कारण चिढ़ा हुआ था, इस सम्बन्ध का विरोध करते हुए जयपुर को नीचा दिखाने के उद्देश्य से महाराणा को कहलाया कि जयपुर के वकील को, जो शादी

(१) 'रङ्गड़' राजपूतों के लिए अपमान सूचक शब्द है।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृष्ठ ५३२-३५।

का पैग़ाम लेकर आया है, उदयपुर से बाहर कर दो, किन्तु महाराणा ने उसका कहना न माना, तब वह स्वयं उदयपुर पर चढ़ आया। उदयपुर के निकट घाटी में महाराणा से उसकी लड़ाई हुई, जिसके फल स्वरूप महाराणा को लाचार होकर उसकी बात मान लेनी पड़ी। फिर सिंधिया एकलिंगजी के मंदिर में महाराणा से मिलकर वापस चला गया।

इन्हीं दिनों पोकरण (जोधपुर राज्य में) का ठाकुर सवाईसिंह, जो जयपुर में था, महाराजा जगतसिंह से अपनी पोती की शादी करना चाहता था। इसपर जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने उसके पास इस आशय का एक पत्र भेजा कि तुम अपनी पोती का विवाह महाराजा जगतसिंह से करना चाहते हो, तो पोकरण में करना। अगर उसे जयपुर में ले जाकर करोगे, तो राठोड़ों की हतक होगी। इसके उत्तर में उसने लिखा कि मेरे भाई उम्मेदसिंह का घर जयपुर में है और गीजगढ़ का ठिकाना उसकी जागीर में है। इसलिए यहां विवाह करने में तो कोई हतक की बात नहीं है; परन्तु महाराणा की कन्या कृष्णकुमारी, जिसका सम्बन्ध पहले स्वर्गीय महाराजा भीमसिंह के साथ हो चुका था, महाराजा जगतसिंह को ब्याही जानेवाली है, इसमें अलबत्ता राठोड़ों की मान-हानि है'। पत्र पाते ही मदान्ध मानसिंह ने परिणाम तथा औचित्य-अनौचित्य का कुछ भी विचार न कर उदयपुर की ओर कूच कर दिया। यह खबर सुनकर महाराजा जगतसिंह भी जयपुर से रवाना हुआ और बीकानेर का महाराज सूरतसिंह तथा नवाब अमीरखां उसके मददगार बने। अन्त में वि० सं० १८६३ फाल्गुन सुदि (ई० स० १८०७ मार्च) में जयपुर और जोधपुर की सीमा के निकट पर्वतसर के पास दोनों की सेनाओं में गहरी लड़ाई हुई। लड़ाई छिड़ने से पहले राठोड़ों में आपस की फूट पड़ गई थी और उनमें से अधिकांश, जो अपने स्वामी से अप्रसन्न थे, जयपुर की सेना में शामिल हो गये, जिससे महाराजा मानसिंह को भागकर जोधपुर के क़िले में शरण लेनी पड़ी।

तदनन्तर जयपुर के दीवान रायचन्द ने तो महाराज जगतसिंह को कृष्णकुमारी से शादी कर जयपुर लौटने और ठाकुर सवाईसिंह ने जोधपुर पर चढ़ाई करने की सलाह दी। उक्त महाराजा ने सवाईसिंह की बात मानकर जोधपुर को जा घेरा। मानसिंह ने नवाब अमीरखां को घूस देकर अपनी तरफ़

मिला लिया, जिससे महाराजा जगतसिंह को वहां से लौटना पड़ा।

इसके उपरान्त निष्ठुर अमीरखां ने महाराजा मानसिंह से कहा—'जब तक कृष्णकुमारी जीवित है तब तक कभी-न-कभी फिर झगड़ा हो जाने की आशंका है, इसलिए जैसे हो सके उसे मरवा डालना ही ठीक होगा'। अमीरखां की बात मानकर उक्त महाराजा ने उसे इस काम के लिए उदयपुर की ओर रवाना किया। नवाब ने उदयपुर पहुँचकर अजीतसिंह चूंडावत के द्वारा, जो उसकी सेना में महाराणा की तरफ़ से वकील था, महाराणा को कहलाया—'या तो आप अपनी कन्या का विवाह महाराजा मानसिंह के साथ कर दें या उसे मरवा डालें। यदि आप मेरा कहना न मानेंगे, तो मैं आपके देश को बरबाद कर दूंगा'। मेवाड़ की दशा ऐसी निर्बल हो गई थी कि महाराणा को लाचार होकर उसका कथन स्वीकार करना पड़ा। उसने महाराज दौलतसिंह (भैरवसिंहोत) को बुलाकर कृष्णकुमारी का वध करने की आज्ञा दी। यह हुक्म सुनकर दौलतसिंह का क्रोध भड़क उठा और उसकी देह में आग-सी लग गई। आवेश में आकर उसने कहा—'ऐसा क्रूर और अमानुषिक आदेश करनेवाले की जीभ कटकर गिर जानी चाहिये। निरपराध अबला पर हाथ उठाना मेरा धर्म नहीं है; यह तो हत्यारों का काम है। यह कहकर दौलतसिंह के चुप हो जाने पर दरबार में कुछ देर तक सन्नाटा छा गया। फिर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के पासवानिये (अनौरस) पुत्र जवानदास को आज्ञा दी गई। कटार लेकर उसने अन्तःपुर में प्रवेश किया, परंतु सोलह वर्ष की उस सुकुमारी एवं रूपवती राजकुमारी को देखकर उसका शरीर काँपने लगा और हाथ से कटार गिर गया।

ज़नाने में इस प्रकार उसके आने का कारण जानकर कृष्णकुमारी की माता महाराणी चावड़ी दुःख से कातर एवं विह्वल होकर रोने लगी। महाराणी को विलाप करते देखकर जवानदास का जी भर आया और वह राजमंदिर से खिसक गया। तब राजकुमारी को ज़हर मिला हुआ शरबत पीने के लिए दिया गया। उसने प्रसन्नतापूर्वक शरबत का प्याला हाथ में लेकर अपनी माता को दिलासा देते हुए कहा—'माता! तू क्यों विलाप कर रही है? मैं मौत से नहीं डरती। क्या मैं तेरी बेटी नहीं हूं? मैं मृत्यु से क्यों डरूं? राजकन्याओं

का जन्म तो आत्मबलि के लिए ही होता है। यह मेरे पिता का अनुग्रह है कि मैं अब तक जी रही हूं। प्राणोत्सर्ग-द्वारा अपने पूज्य पिता का कष्ट दूर कर उनके राज्य की रक्षा में अपने जीवन को सफल एवं सार्थक बनाने का यह मौक़ा मुझे अपने हाथ से न जाने देना चाहिये'। यह कहकर उसने विष पी लिया, परन्तु वह क़ै होकर निकल गया। इस तरह तीन बार ज़हर पीने और प्रत्येक बार क़ै से निकल जाने पर अफ़ीम पिलाने से उसकी जीवन-लीला समाप्त हुई। यह करुणापूर्ण घटना वि० सं० १८६७ श्रावण वदि ५ (ई० स० १८१० ता० २१ जुलाई) को हुई। इसके कुछ दिनों पीछे राजकुमारी की माता भी अन्नजल छोड़ देने के कारण इस संसार से चल बसी। फिर नवाब अमीरखां मेवाड़ से लौट गया[1]।

कृष्णकुमारी की इस दुःखद हत्या के चार दिन बाद संग्रामसिंह शक्तावत, जो अजीतसिंह चूंडावत से प्रत्येक बात में भिन्न प्रकृति का एवं बड़ा वीर तथा योग्य था, उदयपुर पहुँचा और बिना आज्ञा के दरबार में घुस गया। वहां अजीतसिंह को देखते ही उसने गुस्से में आकर कहा—'तूने अपने बेदाग़ वंश पर इतना गहरा दाग़ लगा दिया है कि उसे अब कोई सीसोदिया मिटा नहीं सकता। बापा रावल के वंश का नाश अब निकट है और यह दुर्घटना उस नाश का लक्षण है'। यह सुनकर महाराणा ने हाथों से अपना मुख ढक लिया। तब उसने फिर अजीतसिंह से कहा—'तू सीसोदिया वंश के लिए कलंक रूप है, हम सब को तूने शर्मिन्दा कर दिया है; तू भी निस्सन्तान मरेगा और तेरे साथ ही तेरा नाम नष्ट हो जायगा। क्या अमीरखां पठान ने मेवाड़ को नष्ट कर दिया था कि उसकी रक्षा के लिए तुझे कृष्णकुमारी को मारना आवश्यक हो गया? और यदि ऐसा हो भी गया था, तो क्या तू अपने पूर्वजों की तरह मर नहीं सकता था? क्या तू चित्तोड़ के शाकों को भूल गया? अगर तू शत्रुओं पर तलवार लेकर कूद पड़ता, तो तेरा नाम रह जाता। भय से तेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी। यदि तू निरपराध अबला के प्राण लेने के बजाय शत्रु को नष्ट करता, तो कितना अच्छा होता, किन्तु हमारे वंश का नाश निकट आ गया है[2]'।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५३५-४१। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(२) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५४१-४२।

संग्रामसिंह की यह भविष्यवाणी ठीक निकली, क्योंकि उक्त दुःखद घटना से एक महीने के भीतर ही अजीतसिंह की स्त्री और उसके दोनों पुत्र मर गये। इससे वह विरक्तसा बनकर अपने पाप के प्रायश्चित्त के लिए हाथ में माला लिए राम-राम जपता हुआ मन्दिरों में जाने लगा, पर उसके मन का मैल न मिटा। वस्तुतः इसके बाद मेवाड़ की स्थिति कभी अच्छी नहीं हुई।

अमीरखां, जमशेदखां और बापू सिंधिया का मेवाड़ में आना

अमीरखां ने भी मेवाड़ को लूटना चाहा। ई० स० १८०६ (वि० सं० १८६६) में वह बड़ी सेना लेकर उदयपुर आया और धमकी दी कि या तो ग्यारह लाख रुपये दो, नहीं तो मैं एकलिंगजी के मन्दिर को तोड़ दूंगा। ये रुपये नहीं दिये जा सके, इसलिए महाराणा के कर्मचारियों के साथ उसने बहुत बुरा व्यवहार किया। उसने देबारी के रास्ते से, और उसके दामाद जमेशदखां ने चीरवा के रास्ते से प्रवेश किया। थोड़ी देर तक लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा को हारकर लौटना पड़ा। मेवाड़ से रुपये वसूल करने के लिए जमशेदखां को उदयपुर में छोड़कर अमीरखां लौट गया। जमशेदखां के पठानों ने उदयपुर और आसपास के प्रदेश की प्रजा पर बड़ी सख़्तियां कीं। वह ज़माना जमशेदगर्दी के नाम से अब तक मशहूर है। वि० सं० १८६७ (ई० स० १८१०) में बापू सिंधिया सूबेदार होकर उदयपुर आया। तीन साल तक सिंधिया तथा जमशेद ने राज्य की आय अपने हस्तगत कर रक्खी और लूट के बटवारे के लिए वे दोनों आपस में झगड़ते रहे। इस झगड़े को मिटाने के लिए धोला मगरा नामक स्थान में वे दोनों मिले, जहां महाराणा का प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुआ। उन्होंने एक समझौते के अनुसार मेवाड़ की वार्षिक आय में से साढ़े तीन लाख रुपये आपस में बांट लेना चाहा, परन्तु मेवाड़ की स्थिति बहुत खराब हो जाने से ये रुपये वसूल न हो सके[1]। इधर दौलतराव सिन्धिया ने मेवाड़ की बिगड़ी हुई दशा के कारण बापू सिन्धिया द्वारा उगाहे जाने वाले कर की पूर्ति के रुपये मांगे, परन्तु उनके न मिलने पर वह मेवाड़ के कुछ सरदारों, किसानों और महाजनों को क़ैद कर अजमेर ले गया, जहां बहुतसे मर गये और

(१) टॉ; रा; जि० 1, पृ० ५४५-४६।

ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७४) में अंग्रेज़ों के साथ संधि होने तक कई एक वहां क़ैद रहे[1]।

झाला ज़ालिमसिंह मेवाड़ में अपना प्रभाव जमाकर भीलवाड़े से पूर्व की तरफ़ का प्रदेश कोटे में मिलाना चाहता था। महाराणा ने बालेराव आदि को क़ैद किया, उस समय की लड़ाई के खर्च में उसने जहाज़पुर का परगना अपने अधिकार में कर लिया था। इन्हीं दिनों दाखियों की कोटड़ी का क़िला शाहपुरे के राजा अमरसिंह के भाइयों के अधिकार में था। वहां के जागीरदार ने कान्हावत शेरसिंह को मार डाला। इसपर शेरसिंह के पुत्र सूरजमल ने ज़ालिमसिंह से इसकी शिकायत की। उसने यह सुनकर विष्णुसिंह शक्तावत को, जो उसकी तरफ़ से जहाज़पुर का क़िलेदार था, उसकी सहायता के लिए लिखा। उसने सूरजमल की सहायता कर कोटड़ी के क़िले को नष्ट कर दिया और कोटड़ी को जहाज़पुर के परगने में मिला लिया। इसी प्रकार उसने देवगढ़वालों से सांगानेर (मेवाड़ का) छीन लिया। फिर उसने मांडलगढ़ का क़िला भी लेना चाहा। महाराणा ने उसके दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उसके नाम लिख तो दिया, परन्तु तुरन्त ही एक सवार को ढाल-तलवार देकर मेहता देवीचन्द के पास भेज दिया। देवीचन्द ने ढाल और तलवार से समझ लिया कि महाराणा ने ज़ालिमसिंह के दबाव में आकर पट्टा लिख दिया है, परंतु ढाल-तलवार भेजकर मुझे लड़ाई करने का इशारा किया है। इसलिए उसने क़िले की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया, जिससे ज़ालिमसिंह की अभिलाषा पूरी न हो सकी[2]।

ज़ालिमसिंह का मांडलगढ़ लेने का प्रयत्न

इन्हीं दिनों महाराणा ने ४०० पठान सिपाही नौकर रक्खे थे। अपनी तनख़्वाह न मिलने के कारण उन्होंने महाराणा के महलों में धरना दिया, तब उसकी आज्ञा से रावत सरदारसिंह (चावंड का) ने सिपाहियों को समझाया कि जब तक तुम्हारी तनख़्वाह न चुकाई जायगी तब तक मैं तुम्हारी हवालात में रहूंगा। इसपर पठानों ने उस सरदार को अपनी सुपुर्दगी में लेकर धरना उठा लिया। उन दिनों साह सतीदास गांधी महाराणा

रावत सरदारसिंह का मारा जाना

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४४७।
(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२।

का प्रधान था। उसने अपने भाई सोमचंद का, जिसको सरदारसिंह ने मार डाला था, बदला लेने की गरज़ से पठानों को इशारा कर दिया, जिससे वे सरदारसिंह पर सख़्तियां करने लगे। एक दिन उक्त रावत के पीने को अफ़ीम लाई गई, जिसे सिपाहियों ने ठोकर देकर गिरा दिया। यह देखकर सरदारसिंह से उसके राजपूतों ने कहा—'अब ज़िन्दगी की उम्मेद छोड़ देनी चाहिये, क्योंकि यह बर्ताव रुपयों के लिए नहीं, किन्तु जान लेने के लिए किया जाता है'। सरदारसिंह ने तो इस बात को सहन कर लिया, परंतु उसके साथवालों में से लालसिंह चूंडावत (लसाड़िये का), जवानसिंह पूरावत (आट्टण का) और दौलतसिंह भाटी (बानसीण का), ये तीनों राजपूत तलवारें निकालकर सिपाहियों पर टूट पड़े और बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारे गये। उक्त तीनों सरदारों के मारे जाने के बाद रावत सरदारसिंह पर और सख़्तियां होने लगीं। फिर साह सतीदास और उसके भतीजे जयचंद ने पठानों की चढ़ी हुई तनख़्वाह देकर सरदारसिंह को अपनी हिफ़ाज़त में ले लिया और उसे आहाड़ की नदी के पश्चिमी किनारे पुल के क़रीब ले जाकर मार डाला। तीन दिन बाद उसकी लाश जलाई गई[1]।

इन्हीं दिनों चूंडावतों का ज़ोर बढ़ जाने से गांधियों का प्रभाव कम हो गया। ठाकुर अजीतसिंह, रावत जवानसिंह और दूलहसिंह ने महाराणा की आज्ञा

प्रधान सतीदास और जयचंद का मारा जाना

लेकर साह सतीदास प्रधान को क़ैद कर लिया और वि० सं० १८७२ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १८१५ ता० २६ अक्टूबर) को रात में रावत जवानसिंह और दूलहसिंह उसको महलों से निकालकर दिल्ली दरवाज़े के क़रीब ले गये, जहां उन्होंने उसका सिर काटकर सरदारसिंह का बदला लिया। यह खबर सुनकर पिछली रात में जयचंद अपनी रक्षा के निमित्त शहर से भागा, परंतु चूंडावतों ने उसे रास्ते में ही नाई गांव के पास पकड़कर मार डाला[2]।

वि० सं० १८७३ (ई० स० १८१६) में नवाब दिलेरखां लुटेरों का दल साथ लेकर चित्तोड़ के आसपास के गांवों को लूटता और उजाड़ता हुआ उदयपुर

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १९।

(२) वही।

दिलेरखां की चढ़ाई

आ पहुंचा। वहां से कुंवर अमरसिंह, रावत दूलहसिंह तथा शक्तावत उदयसिंह (ओछड़ी का) आदि सरदारों ने उसका सामना कर उसे मार भगाया। इस लड़ाई में महन्त सखारामगिरि गुसाईं तथा हम्मीरसिंह भाटी (बानसीण का) मारे गये और रावत दूलहसिंह, शक्तावत उदयसिंह (ओछड़ी का), चतुर्भुज चूंडावत (मान्यावास का), राणावत गुलाबसिंह (वीरमदेवोत), राठोड़ खूमसिंह, गौड़ जोधसिंह और भाटी गुलाबसिंह आदि घायल हुए[1]।

महाराणा की ओर से जयपुर के वकील चतुर्भुज हलदिया ने अंग्रेज़ी सरकार के रेज़िडेंट चार्ल्स मेटकाफ़ से मेवाड़ को मरहटों, पठानों तथा पिण्डारियों के चंगुल से छुड़ा लेने की प्रार्थना की, जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया[2]।

अंग्रेज़ों के साथ सन्धि का प्रस्ताव

सिन्धिया, होल्कर एवं अमीरखां, जमशेदखां आदि मरहटों और पिंडारियों की लूट-खसोट तथा ज़ोर-ज़ुल्म से,[3] जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, मेवाड़ की दशा, जो पहले से ही गिरी हुई थी, इस समय ऐसी बिगड़ गई कि महाराणा का ख़ज़ाना बिलकुल खाली हो गया, रहे-सहे ज़ेवर भी बिक गये, देश ऊजड़-सा हो गया तथा बहुतसी प्रजा मालवा, हाड़ौती आदि प्रान्तों में जा बसी। इन लुटेरों ने केवल महाराणा की ही नहीं, किन्तु मेवाड़ के सरदारों, जागीरदारों और रही-सही प्रजा की भी बुरी दशा कर डाली। उनकी लूट-खसोट से मेवाड़ बिलकुल कंगाल हो गया। मरहटे जिस इलाक़े में ठहरते उसे लूटते, तबाह कर देते, जहां जाते वहां गांवों में आग लगा देते तथा लहलहाती हुई खेती नष्ट कर देते थे। उनके चले जाने के बाद भी जले हुए गांवों तथा ऊजड़ खेतों से उनके पयान के मार्ग

सन्धि के समय मेवाड़ की स्थिति

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२।

(२) वही।

(३) पिंडारियों का भय हर समय बना रहता था। ज़ालिमसिंह झाला ने वि० सं० १८७४ ज्येष्ठ वदि १२ के पत्र में मेहता अगरचन्द को लिखा—"यह पता लगाकर हमें सूचित करो कि पिण्डारी लोग किधर होकर निकलेंगे। यदि इधर होकर निकलें तो गांव पहले से ख़ाली करा लिये जायँ, क्योंकि पिंडारी तो उन्हें अवश्य ही उजाड़ेंगे। सिंधिया और होल्कर के गांवों को भी वे नहीं छोड़ते, तो इधर के गांवों को क्या छोड़ेंगे? गांववालों को सावधान कर देना"।

का पता चलता था। जिस स्थान में वे २४ घंटे भी ठहर जाते, वह–पहले कैसा ही संपन्न और सुहावना क्यों न रहा हो–ऊजड़ हो जाता था। ई० स० १८०६ (वि० सं० १८६३) में कप्तान टॉड सिन्धिया की सेना में रहनेवाले अंग्रेज़ी राजदूत के साथ पहले-पहल मेवाड़ में आया। उस समय मेवाड़ की दशा कुछ अच्छी थी, पर जब वह ई० स० १८१८ में वहां दुबारा आया तब उसने भील-वाड़े को, जो पहले एक सरसब्ज़ कस्बा तथा मेवाड़ में व्यापार का केन्द्र था और जहां ६००० घरों की आबादी थी, बिलकुल ऊजड़ पाया। उस समय की मेवाड़ की आंखों देखी दुर्दशा का वर्णन करते हुए टॉड ने लिखा है–'जहाज़-पुर होकर कुंभलमेर जाते हुए मुझे एक सौ चालीस मील में दो कस्बों के सिवा और कहीं मनुष्य के पैरों के चिह्न तक न दिखाई दिये। जगह जगह बबूल के पेड़ खड़े थे और रास्तों पर घास उग रही थी। ऊजड़ गांवों में चीते, सुअर आदि वन्य पशुओं ने अपने रहने के स्थान बना रक्खे थे'[1]। उदय-पुर में, जहां पहले ५०००० घर आबाद थे, अब केवल ३००० रह गये थे। महाराणा का केवल उदयपुर, चित्तोड़ तथा मांडलगढ़ पर अधिकार रह गया था और सेना रखने के लिए उसके राज्य की आय काफ़ी न थी। इस समय राज्य की आर्थिक दशा ऐसी थी कि महाराणा को अपने खर्च के लिए कोटे के ज़ालिमसिंह झाला से रुपये उधार लेने पड़ते थे। मेर और भील पहाड़ों से निकलकर मुसाफ़िरों को लूटते थे। रुपये का सात सेर गेहूं बिकता था, जब कि मेवाड़ के बाहर इकीस सेर। महाराणा के साथ ५० सवार भी नहीं रहते थे और कोठारिये का सरदार, जिसकी जागीर की सालाना आमदनी पहले ५०००० रुपये थी, अब एक भी घोड़ा नहीं रख सकता था[2]।

जैत्रसिंह के समय से लेकर महाराणा राजसिंह तक (लगभग ४५० वर्ष) मेवाड़ के राजाओं ने मुसलमानों के साथ अनेक लड़ाइयां लड़ीं, तो भी मेवाड़ का बल क्षीण नहीं हुआ, परन्तु मरहटों ने ६० वर्ष में ही उसकी ऐसी दुर्दशा कर दी कि यदि अंग्रेज़ी सरकार से संधि न होती, तो सारा मेवाड़ उनके राज्यों में मिल जाता।

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५४८-४६।

(२) वही; जि० १, पृ० ५५५।

वि० सं० १८७४ पौष सुदि ७ (ई० स० १८१८ ता० १३ जनवरी) को अंग्रेज़ी सरकार और महाराणा के बीच नीचे लिखे अनुसार सन्धि हुई—

अंग्रेजों से सन्धि

ऑनरेबल अंग्रेज़ी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से श्रीमान् गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज़ के दिये हुए पूरे अधिकारों के अनुसार मि० चार्ल्स थियोफ़िलस मेटकॉफ़ के द्वारा, तथा महाराणा से मिले हुए पूरे इख़्तियारों के अनुसार उनकी तरफ़ से ठाकुर अजीतसिंह की मारफ़त ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उदयपुर के महाराणा भीमसिंह के बीच का अहदनामा—

पहली शर्त—दोनों राज्यों के बीच मैत्री, सहकारिता तथा स्वार्थ की एकता सदा पुश्त-दर-पुश्त बनी रहेगी, और एक के मित्र तथा शत्रु दूसरे के मित्र एवं शत्रु होंगे।

दूसरी शर्त—अंग्रेज़ी सरकार उदयपुर राज्य और मुल्क की रक्षा करने का इक़रार करती है।

तीसरी शर्त—उदयपुर के महाराणा अंग्रेज़ी सरकार का बड़प्पन स्वीकार करते हुए सदा उसके अधीन रहकर उसका साथ देंगे और दूसरे राजाओं या रियासतों से कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे।

चौथी शर्त—अंग्रेज़ी सरकार को जतलाए और उसकी स्वीकृति लिए बिना उदयपुर के महाराणा किसी राजा या रियासत से कोई अहद-पैमान न करेंगे, पर अपने मित्रों और रिश्तेदारों के साथ उनका मित्रतापूर्ण साधारण पत्र-व्यवहार बना रहेगा।

पांचवीं शर्त—उदयपुर के महाराणा किसी पर ज्यादती न करेंगे, और यदि दैवयोग से किसी से कोई झगड़ा हो जायगा तो वह (झगड़ा) मध्यस्थता तथा निर्णय के लिए अंग्रेज़ी सरकार के सामने पेश किया जायगा।

छठी शर्त—पांच वर्ष तक वर्तमान उदयपुर राज्य की आय का चतुर्थांश प्रति वर्ष अंग्रेज़ी सरकार को ख़िराज में दिया जायगा, और इस अवधि के बाद हमेशा रुपये पीछे छः आने। ख़िराज के विषय में महाराणा किसी और राज्य से कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे और यदि कोई उस प्रकार का दावा करेगा तो अंग्रेज़ी सरकार उसका जवाब देने का इक़रार करती है।
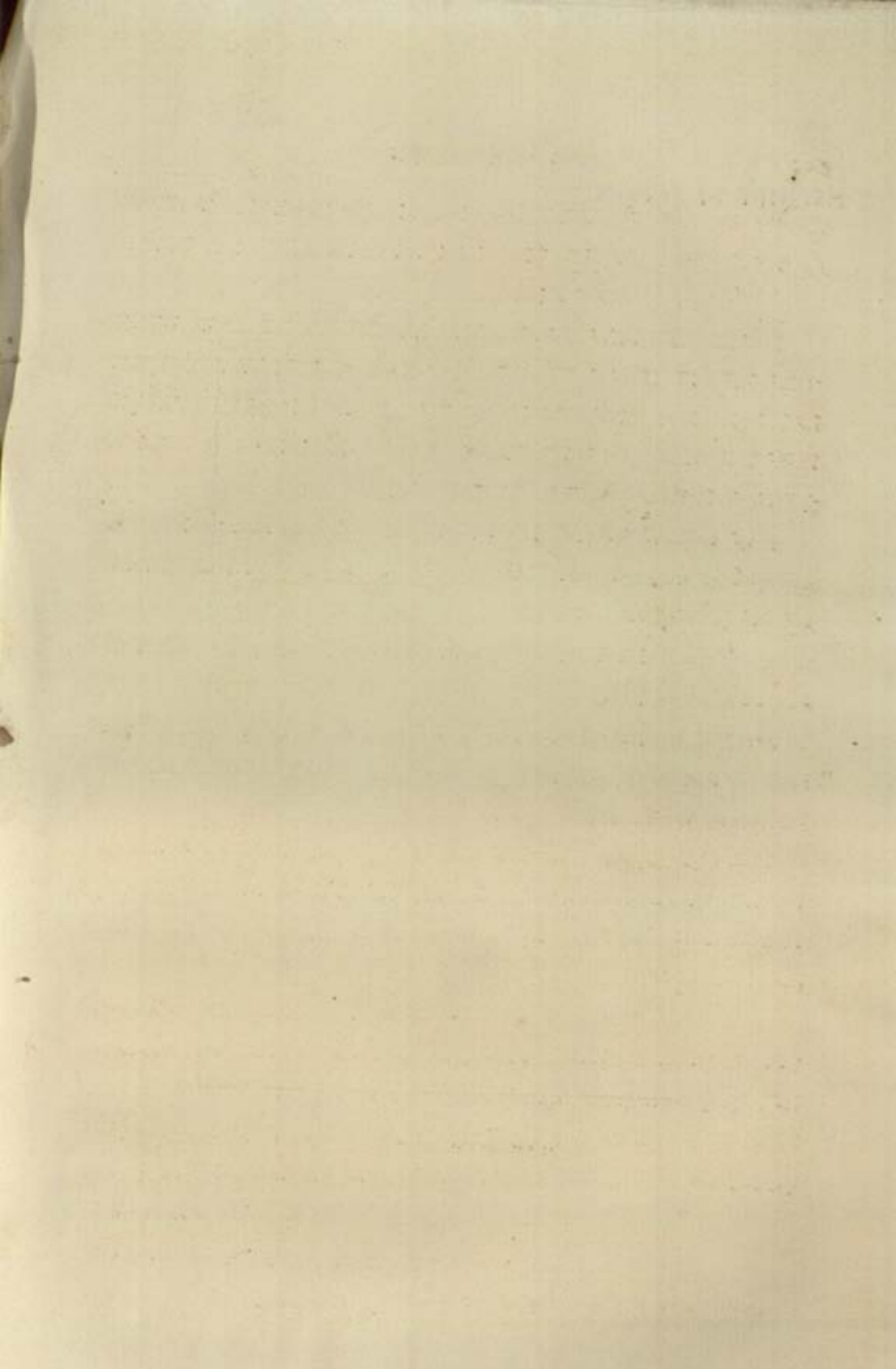
कर्नल जेम्स टॉड

सातवीं शर्त—महाराणा का कथन है कि उदयपुर राज्य के बहुतसे ज़िले दूसरों ने अन्यायपूर्वक दबा लिए हैं, और वे उन स्थानों को वापस दिलाए जाने के लिए दरख़्वास्त करते हैं। ठीक-ठीक हाल मालूम न होने से अंग्रेज़ी सरकार इस बात का पक्का क़ौल-क़रार करने में असमर्थ है, परन्तु उदयपुर राज्य को फिर से समुन्नत करने का वह सदा ध्यान रक्खेगी और हरएक मामले का हाल ठीक ठीक दर्याफ़्त हो जाने पर उक्त उद्देश की पूर्ति के लिए जब जब ऐसा करने का मौक़ा आयेगा तब तब वह भरसक कोशिश करेगी। इस प्रकार अंग्रेज़ी सरकार की मदद से उदयपुर की रियासत को जो जो स्थान वापस मिलेंगे उनकी आमदनी में से रुपये पीछे छः आने वह हमेशा अंग्रेज़ी सरकार को देती रहेगी।

आठवीं शर्त—आवश्यकता पड़ने पर रियासत उदयपुर को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अंग्रेज़ी सरकार को सेना देनी होगी।

नवीं शर्त—उदयपुर के महाराणा हमेशा अपने राज्य के खुदमुख़्तार रईस रहेंगे और उनके राज्य में अंग्रेज़ी हुकूमत का दख़ल न होगा।

दसवीं शर्त—दस शर्तों की यह सन्धि, जिसपर मि० चार्ल्स थियोफ़िलस मेटकॉफ़ तथा ठाकुर अजीतसिंह बहादुर ने दस्तख़त और मुहर की है, दिल्ली में हुई है। श्रीमान् गवर्नर जनरल और महाराणा भीमसिंह इसे स्वीकार कर आज की तारीख़ से एक महीने के भीतर एक दूसरे को सौंप देंगे[1]।

अंग्रेज़ी सरकार के साथ सन्धि हो जाने पर मेवाड़ से मरहटों और पिंडारियों का दुःख सदा के लिए मिट गया, प्रजा को फिर सांस लेने का अवसर मिला और सरदारों के आपस के लड़ाई-झगड़े बंद हो गए।

सन्धि के बाद कप्तान टॉड अंग्रेज़ी सरकार की ओर से एजेंट बनकर ई० स० १८१८ फ़रवरी में उदयपुर आया, जहां उसका धूमधाम से स्वागत किया गया। एक दिन महाराणा ने सब सरदारों को बुलाकर बड़ा दरबार किया, जिसमें कप्तान टॉड ने कहा कि जो सरदार आपके विरोधी हों उन्हें बतलाइये, अंग्रेज़ी सरकार उन्हें दंड देने के लिए तैयार है। इसपर महाराणा ने अपने बड़प्पन के योग्य यही उत्तर दिया कि अब तक तो मैंने सब का अपराध क्षमा कर दिया है,

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ३०-३१ (चतुर्थ संस्करण)।

परन्तु भविष्य में जो सरदार क़सूर करेंगे, उसकी सूचना आपको दी जायगी[1]।

मेवाड़ की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने में महाराणा को असमर्थ देखकर कप्तान टॉड ने, जो महाराणा का सच्चा हितचिन्तक था और जिसको उसका नुक़सान सहन नहीं होता था, राज्य-प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया, और यह निश्चय किया कि मेवाड़ की दशा सुधरते ही राज्यभार फिर महाराणा को सौंप दिया जायगा। शासन-प्रबन्ध हाथ में लेते ही उसने मेवाड़ की अवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया। मरहटों आदि के अत्याचारों के कारण मेवाड़ के बहुतसे किसान, व्यापारी आदि अन्यत्र चले गये थे इसलिए एक घोषणा-पत्र निकालकर टॉड ने उन्हें सान्त्वना दी और वापस बुला लिया। इस प्रकार आठ महीनों से पूर्व ही मेवाड़ के ३०० क़स्बे और गांव फिर आबाद हो गये। बाहर के व्यापारी महाजन भी काफ़ी तादाद में आने लगे। फिर से प्रत्येक स्थान में खेती और व्यापार होने लगा। टॉड ने व्यापार की रुकावटें दूर कर महसूल में कमी की, जिससे मेवाड़ की आय बढ़ गई। भीलवाड़ा, जो पहले व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था और जो बिलकुल ऊजड़ हो चुका था, फिर से आबाद किया गया[2]। वहां १२०० घरों में से ६०० में विदेशी व्यापारी आकर बस गये। एक साल के लिए वहां के व्यापारियों का कर छोड़ दिया गया और उनकी रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया[3]।

कप्तान टॉड का शासन-प्रबन्ध

किसानों और व्यापारियों को तो कप्तान टॉड ने तसल्ली देकर वापस बुला लिया, किन्तु सरदारों को वश में लाना ज़रा टेढ़ी खीर थी। खालसे के दबाये हुए गांव आदि लौटाने को वे तैयार न हुए। इसपर कप्तान टॉड ने ई० स० १८१८ मई (वि० सं० १८७५ वैशाख) में महाराणा और सरदारों

सरदारों का नियन्त्रण

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(२) भीलवाड़ा फिर से आबाद किया गया, उस समय वहां के लोगों ने आग्रह किया कि उसका नाम टॉडगंज रक्खा जाय, परन्तु कप्तान टॉड ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार न कर उसका नाम भीलवाड़ा ही रहने दिया, क्योंकि वह पुराने नामों, स्थानों आदि की रक्षा करने का बड़ा पक्षपाती था।

(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० ५५५-५६, ५५८, ५६२।

का पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करने के लिये एक क़ौलनामा तैयार किया, जिसे सरदारों ने स्वीकार न कर कई ऐतराज़ पेश किये। ता० ४ मई को उन्होंने फिर एकत्र होकर क़ौलनामे पर विचार किया। देवगढ़ के रावत गोकुलदास ने इसका बहुत विरोध किया। इस समझौते के स्वीकार किये जाने में और भी देर लगती, यदि बेगूं का सरदार सबसे पहले क़ौलनामे पर दस्तख़त न करता। उसकी देखादेखी आमेट, देवगढ़ आदि सब सोलह सरदारों ने हस्ताक्षर कर दिये, और जो सरदार बीमारी आदि के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके, उनकी ओर से उनके प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये। फिर दूसरी श्रेणी के मुख्य सरदारों के भी दस्तख़त हो गये। शक्तावतों के मुख्य सरदार ने सबसे अंत में हस्ताक्षर किये'। १४ घंटे तक वादविवाद चलने के उपरान्त क़ौलनामा स्वीकृत हुआ, जो इस प्रकार है—

१—बखेड़े के समय दबाई हुई सारी खालसा ज़मीन और एक-दूसरे सरदार की छीनी हुई भूमि छोड़नी होगी।

२—तमाम नई 'रखवाली', 'भोम', 'लागत' छोड़नी पड़ेगी।

३—दाण (चुंगी), बिस्वा तथा राज्य के हक़ आज से छोड़ देने होंगे। ऐसे अधिकार केवल दरबार के हैं।

४—सरदार लोग अपने ठिकानों में चोरी न होने देंगे। ईमानदारी के साथ निर्वाह करनेवालों के सिवा मोगिये, बावरी, थोरी आदि बाहरी और देशी चोरों को वे अपने यहां नहीं रहने देंगे। यदि उनमें से कोई अपने पुराने अड्डों पर चले आयँगे, तो वे वापस नहीं आने दिये जायँगे। जिस सरदार के ठिकाने में चोरी होगी, उसे चुराए हुए कुल माल का हरजाना देना होगा।

५—देशी या परदेशी सौदागरों, तमाम काफ़िलों, व्यापारियों और बनजारों की, जो राज्य में प्रवेश करेंगे, रक्षा की जायगी। उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जायगी और न उनसे छेड़छाड़ की जायगी। जो कोई इस नियम के विरुद्ध आचरण करेगा, उसकी जागीर ज़ब्त कर ली जायगी।

६—मेवाड़ में या उसके बाहर [महाराणा की] आज्ञानुसार [सरदारों को] सेवा करनी पड़ेगी। सरदार चार भागों में विभक्त किये जायँगे। प्रत्येक विभाग

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० ४६४।

के सरदारों को तीन तीन मास तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहना पड़ेगा; फिर वे अपने घर जा सकेंगे। प्रतिवर्ष एक बार सरदारों को दशहरे के दस दिन पहले से उसके बीस दिन बाद तक [उदयपुर में] उपस्थित रहना होगा। नौकरी में रहनेवाले उमरावों के सिवा शेष सब सरदार अपने-अपने घर जा सकेंगे। ज़रूरी मौक़ों पर या उनकी सेवा की आवश्यकता पड़ने पर सब सरदारों को दरबार की सेवा में हाज़िर होना पड़ेगा।

७—उन पटायतों, सम्बन्धियों और बन्धु-बांधवों को, जिन्हें दरबार से सनदें मिली हैं, अलग-अलग सेवा करनी पड़ेगी। वे बड़े पटायतों के साथ या उनमें मिलजुलकर सेवा न कर सकेंगे। सरदारों के सम्बन्धियों तथा छोटे-छोटे जागीरदारों को, जिन्हें उन(सरदारों)से ज़मीन मिली है, उन(सरदारों)-की सेवा करनी पड़ेगी।

८—कोई सरदार अपनी प्रजा को न सता सकेगा, न उसपर अत्याचार कर सकेगा और न जुरमाना कर सकेगा।

९—अजीतसिंह ने मेवाड़ की ओर से जो संधि की है और जिसे महाराणा ने स्वीकार कर लिया है, वह सबको माननीय होगी।

१०—जो व्यक्ति इस क़ौलनामे को नहीं मानेगा, उसे दंड देने में महाराणा दोषी नहीं समझे जायँगे और उसपर एकलिंगजी तथा श्रीदरबार की शपथ होगी[१]।

क़ौलनामे का पालन कराया जाना

उक्त क़ौलनामे पर हस्ताक्षर करने पर भी कुछ सरदारों ने ज़मीनें वापस देने में ढीलढाल की। कुछ सरदारों ने ज़बर्दस्ती ज़मीनें छीन ली थीं; कुछ ज़मीनें महाराणा पर दबाव डालकर ली गई थीं; भींडर के सरदार ने खालसे के ४३ क़स्बों और गावों पर अधिकार कर लिया था; आमेट, भदेसर, डाबला, लावा आदि के सरदार कई गढ़ दबा बैठे थे, और देवगढ़वाले सात पीढ़ियों से चुंगी वसूल कर रहे थे, ये सब उन्हें छोड़ने पड़े। कप्तान टॉड ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा बहुत प्रयत्न करके अलग-अलग सरदारों को किसी-न-किसी तरह समझा-बुझाकर क़ौलनामे

(१) ट्रीटीज़; जि० ३, पृ० ४३-४४।

के पालन के लिए बाध्य किया[1], परन्तु उसपर पूरा अमल न हुआ, जिससे ई० स० १८२७ (वि० सं० १८८४) में कप्तान कॉब को दूसरा क़ौलनामा तैयार करना पड़ा, जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में कर्नल टॉड मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट होकर उदयपुर आया। उस समय मेवाड़ की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी, अतएव उक्त कर्नल की सलाह के अनुसार महाराणा भीमसिंह ने इन्दौर से सेठ जोरावरमल[2] को उदयपुर बुलाया। उसके उदयपुर आने पर महाराणा ने उसे वहां सम्मानपूर्वक रखकर उसकी दूकान क़ायम कराने के लिए उससे कहा—"राज्य के कामों में जो रुपये खर्च हों, वे तुम्हारी दूकान से दिये जायँ और राज्य की सारी आय तुम्हारे यहां जमा रहे"। महाराणा के कथनानुसार जोरावरमल ने उदयपुर में अपनी दूकान खोली, नये खेड़े बसाये, किसानों को सहायता दी और चोरों एवं लुटेरों को दंड दिलाकर राज्य में शान्ति स्थापित कराने में मदद दी। उसकी इन सेवाओं के उपलक्ष्य में वि० सं० १८८३ (चैत्रादि १८८४) ज्येष्ठ सुदि १ (ई० स० १८२७ ता० २६ मई) को महाराणा ने उसे पालकी तथा छड़ी के सम्मान के साथ वंशपरम्परा के लिए बदनोर परगने का परासोली गांव और सेठ की उपाधि दी। पोलिटिकल एजेंट ने भी उसे प्रबन्ध-कुशल देखकर अंग्रेज़ी खज़ाने का प्रबन्ध उसके सुपुर्द कर दिया।

सेठ जोरावरमल का उदयपुर आना

मेरवाड़ा एक पहाड़ी प्रदेश है, जो उदयपुर, जोधपुर और अजमेर ज़िले से सम्बन्ध रखता है। इसमें मेर जाति के लोग रहते हैं, जो जंगली, युद्ध-प्रिय और

(१) टॉ; रा; जि० १, पृ० २६२–७२।

(२) यह सेठ बापना (पटवा) वंश का ओसवाल महाजन था। इसके पूर्वजों का मूल निवासस्थान जैसलमेर था। इसके पूर्वज देवराज के गुमानचन्द नामक पुत्र हुआ। गुमानचंद के बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावरमल और प्रतापचन्द नामक पांच पुत्र थे। चौथे पुत्र जोरावरमल ने व्यापार में अच्छी उन्नति कर कई बड़े-बड़े शहरों में दूकानें क़ायम कीं और बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की। इन्दौर राज्य के कई महत्त्वपूर्ण कार्यों में इसका हाथ रहा। इसी की कोशिश से अंग्रेज़ी सरकार और होल्कर में अहदनामा हुआ। इस सेवा से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ी सरकार तथा होल्कर ने इसे परवाने देकर सम्मानित किया।

मेरों का दमन

स्वतंत्रता-प्रेमी हैं। जब कभी शासक की शक्ति क्षीण होती, तब वे उपद्रव कर स्वतंत्र बन जाते। जब-जब उन्होंने मेवाड़ से स्वतंत्र होना चाहा तभी मेवाड़ के महाराणाओं ने उनपर चढ़ाइयां कर उनका दमन किया। अब मुग़ल-साम्राज्य तथा मेवाड़, दोनों के निर्बल हो जाने से मेरों ने फिर सिर उठाया और वे मेवाड़, मारवाड़ तथा अजमेर ज़िले की प्रजा को लूटने लगे।

पिंडारियों के साथ की लड़ाई के अंत में दौलतराव सिंधिया ने ई० स० १८१८ ता० २५ जून (वि० सं० १८७५ आषाढ़ वदि ७) को सन्धि के अनुसार अपना अजमेर का इलाक़ा अंग्रेज़ सरकार को सौंप दिया[1]। उसी साल सरकार ने इस प्रदेश की रक्षा के लिए नसीराबाद की छावनी स्थापित की, और मेरवाड़े के उपद्रवी मेरों को दबाने की आवश्यकता होने के कारण महाराणा को (मेरवाड़े के) अपने हिस्से का प्रबन्ध करने के लिए लिखा। इसपर कप्तान टॉड ने वि० सं० १८७५ कार्तिक (ई० स० १८१८ अक्टूबर) में महाराणा की सम्मति से मेरवाड़े पर रूपाहेली के ठाकुर सालिमसिंह की अध्यक्षता में बदनोर, देवगढ़, आमेट, बनेड़ा आदि सरदारों की जमीयतें[2] भेजीं और मेवाड़ के पूर्वोत्तर भाग के सभी छोटे-बड़े सरदारों, जागीरदारों, भोमियों, ग्रासियों आदि को भी मेरवाड़े की ओर भेजा[3]। इधर मेरों ने भी यह ख़बर पाकर युद्ध की तैयारी करके पहाड़ों के संकीर्ण मार्गों पर नाकेबन्दी की, जिससे सालिमसिंह ने पहाड़ों पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। पहले उसने समतल प्रदेश के बहुतसे गावों में थाने बिठाकर मेरों का दमन आरंभ किया और रामपुरे में अपना मुख्य थाना रक्खा[4]। इसके बाद ई० स० १८१९ मार्च (वि० सं० १८७५-७६ चैत्र) में कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची[5]। अंग्रेज़ों और मेवाड़ी सेनाओं ने मेरों के मुख्य

(१) इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑफ़ इंडिया (प्रोविंशियल सीरीज़; राजपूताना); पृ० ४२४।

(२) मेवाड़ में सरदारों की सेना को 'जमीयत' कहते हैं।

(३) महाराणा का सब सरदारों के नाम वि० सं० १८७५ कार्तिक वदि ७ का ख़ास रुक्का।

(४) महाराणा का ठाकुर सालिमसिंह के नाम वि० सं० १८७५ वैशाख सुदि ६ का ख़ास रुक्का (मूल)।

(५) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २४-२५।

स्थान बोरवा, झाक और लुलुवा पर अधिकार कर लिया। पराजित होकर मेर भाग गये। इस पराजय से और सब स्थानों पर थाने बिठलाये जाने के कारण उनका पहाड़ों से निकलना बंद हो गया, परन्तु मारवाड़ की तरफ़ से उनका आक्रमण जारी रहा, जिससे कप्तान टॉड ई० स० १८१६ नवम्बर (वि० सं० १८७६ मार्गशीर्ष) में स्वयं जोधपुर गया[1] और उधर से भी थानों का प्रवन्ध करा दिया। इस प्रकार मेरवाड़ा चारों ओर से घिर गया। झाक और लुलुवा आदि सब थानों का उत्तम प्रबंध कर ठाकुर सालिमसिंह आदि सरदारों के अपने-अपने ठिकानों में लौट जाने पर मेरों ने फिर लूटमार आरंभ कर दी। उन्होंने झाक के अंग्रेज़ी थानेदार को मार डाला और कई थाने उठा दिये। इसपर कप्तान टॉड ने फिर ठाकुर सालिमसिंह को मेरवाड़े पर भेजा और उधर नसीराबाद से कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची। दोनों सेनाओं ने मेरों को हराकर बोरवा, रामपुरा, सापोला, हथूण, बरार, बली, कूकड़ा, चांग, सारोठ, जवाजा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया और वहां थाने बिठा दिये। रामगढ़ की लड़ाई में हथूण का खान तथा उसके साथ के २०० मेर बहादुरी से लड़कर मारे गये। मेवाड़ के सरदारों में से भगवानपुरे का रावत खेत रहा[2]। कप्तान टॉड ने ठाकुर सालिमसिंह को लिखा कि किसी थाने में १०० से कम आदमी न रखे जावें[3]। इन्हीं दिनों मेरवाड़े में महाराणा भीमसिंह और कप्तान टॉड के नाम पर भीमगढ़ (भीम) और टॉडगढ़ बनाये गये। सारे प्रदेश में शान्ति स्थापित कर सेनाएं अपने-अपने स्थानों को वापस लौट गईं। मेरों को भविष्य में किसान बनाने के विचार से उन्हें कई स्थानों में ज़मीन दी गई[4]। इस प्रकार मेरवाड़े में शांति स्थापित किये जाने का अधिकांश श्रेय मेवाड़ की सेना को ही है। कप्तान टॉड ने ठाकुर सालिमसिंह को प्रशंसा-पत्र लिख भेजा और महाराणा ने उसकी इस सेवा के उपलक्ष्य में

---

(१) टॉ; रा; जि० २, पृ० ८२२।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २५।

(३) कप्तान टॉड का सालिमसिंह के नाम वि० सं० १८७७ पौष वदि ६ का पत्र (मूल)।

(४) कप्तान टॉड का ठाकुर सालिमसिंह को लिखा हुआ वि० सं० १८७८ आषाढ़ वदि ८ का पत्र।

उसे 'अमर बलेणा' घोड़ा[1], वाड़ी, तथा सीख का सिरोपाव[2] सदा के लिए देकर सम्मानित किया।

मेरवाड़े पर तीन राज्यों का अधिकार होना ठीक न समझकर अंग्रेज़ी सरकार ने सारा प्रदेश अपने अधीन करना चाहा और उसकी रक्षा करने तथा मेरों को काम में लगाने के लिए मालवे और राजपूताने के रेज़िडेण्ट जनरल ऑक्टरलोनी की तजवीज़ के अनुसार मेरों की सेना (मेर बटैलियन) संगठित की गई, जिसका सेनापति कप्तान हॉल नियत हुआ। उक्त सेना के खर्च के लिए मेरवाड़े के अपने हिस्से की आय में से उदयपुर ने १५००० रु० चीतोड़ी (१२००० रु० कलदार) देना स्वीकार किया और इतना ही जोधपुर ने भी। फिर महाराणा ने दस वर्ष के लिए मेरवाड़े के अपने गांव अंग्रेज़ी सरकार के सुपुर्द कर दिये, जिनमें बहुत-से गांव सरदारों के भी थे, पर इस सम्बन्ध में कोई तहरीरी लिखा-पढ़ी न हुई[3]।

मेरवाड़े पर अंग्रेज़ों का अधिकार

मेरवाड़े की राजनैतिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए ऑक्टरलोनी ने संपूर्ण मेरवाड़े पर अधिकार करने के विचार से महाराणा भीमसिंह तथा जोधपुर के महाराजा मानसिंह को लिखा कि आप दोनों का मेरवाड़े का प्रदेश अंग्रेज़ी सरकार के प्रदेश से मिला हुआ है; यदि एक में कोई उपद्रव हो, तो वह तीनों के प्रदेश में फैल जायगा, इसलिए आप अपने प्रदेश का प्रबन्ध अंग्रेज़ी सरकार के सुपुर्द कर दें। महाराणा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया, जिसपर ऑक्टरलोनी ने चाहा कि महाराणा अपनी सेना इस प्रदेश से हटा लें और इस सम्बन्ध में मेवाड़ के एजेंट कप्तान टॉड को लिखा—"यह अत्यन्त आवश्यक है कि मेरवाड़े का प्रदेश हम लोगों की ही निगरानी में छोड़ दिया जाय। यदि मेरा यह प्रस्ताव तुरन्त स्वीकृत न होगा, तो मुझे कप्तान हॉल

(१) मेवाड़ में 'अमर बलेणा' उस घोड़े को कहते हैं जो महाराणा की ओर से सम्मान के चिह्न-रूप सदा के लिए किसी को दिया जाता है। बूढ़ा होने या मर जाने पर उसके स्थान में दूसरा भेजा जाता है।

(२) प्रतिवर्ष दशहरे पर नौकरी समाप्त कर सरदार अपने ठिकानों को लौटते हैं, उस समय जिनको महाराणा की तरफ़ से सिरोपाव मिलता है, वह 'सीख का सिरोपाव' कहलाता है।

(३) ट्रीटीज़; जि० ३, पृ० ११-१२।

को यह आज्ञा देनी पड़ेगी कि वह मुत्सद्दी के सिवा, जो केवल आमद की जाँच करने के लिए वहां रहेगा, महाराणा के और सब कार्यकर्ताओं को निकाल दे"[1]।

कप्तान जे० सी० ब्रुक ने जनरल ऑक्टरलोनी के इस उद्धत व्यवहार के सम्बन्ध में लिखा है—"इस प्रकार मेवाड़ के मेरवाड़ा विभाग पर हमारा अधिकार हो जाने से महाराणा को बड़ा दुःख हुआ है। यह कार्य न्याय-युक्त नहीं हुआ"। इस बर्ताव के सम्बन्ध में महाराणा के शिकायत करने पर सर चार्ल्स मैटकाफ़ ने भी कप्तान टॉड को लिखा—"इस कार्रवाई से श्रीमान् गवर्नर जनरल को बड़ा दुःख हुआ है, क्योंकि यह सरकार की आज्ञा, इच्छा और विचार के सर्वथा प्रतिकूल हुई है। यद्यपि गवर्नर जनरल को यह बात स्वीकार है कि मेवाड़ और मारवाड़ के राज्य, मालगुज़ारी इकट्ठी करने में जो खर्च पड़े उसमें अपना-अपना हिस्सा दें और सेना-व्यय के लिए दोनों में से प्रत्येक १५००० रुपये दें, फिर भी इस संबंध में महाराणा के साथ जो अनुचित व्यवहार किया गया है उसपर विचार कर गवर्नर जनरल ने यह निश्चय किया है कि इस विषय में महाराणा से फिर किसी प्रकार का विवाद न किया जाय और आज्ञा दी है कि राणा का यह कथन कि १५००० रुपयों के सिवा और कुछ न लिया जाय, स्वीकार कर लिया जाय[2]"। अंग्रेज़ी सरकार के इस उत्तर से भी महाराणा को सन्तोष न हुआ और बहुत दिनों तक वह मेरवाड़े का अपना हिस्सा वापस मांगता ही रहा; इसे सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने भी उचित समझा, पर साथ ही यह भी कहा कि पट्टे की दस वर्ष की अवधि समाप्त होने पर वे गांव उन्हें लौटाये जा सकते हैं। ई० स० १८२३ (वि० सं० १८८०) में पट्टे की मियाद पूरी हो जाने पर राज्य की ओर से आठ वर्ष के लिए फिर नया पट्टा कर दिया गया और मेरवाड़े की अपने हिस्से की आय में से २०००० चीतोड़ी रुपये (१६००० रु० कलदार) मेर बटैलियन के लिए देना स्वीकार किया गया। ३१ मई ई० स० १८३८ (वि० सं० १८९५ ज्येष्ठ सुदि ८) को महाराणा ने मेरवाड़े की आय में से भोमट में रक्खी हुई भील-सेना ('भील कोर') के खर्च में ३५०००

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २५।

(२) वही; पृ० २६।

रुपये (कलदार) प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया। ई० स० १८४१ (वि० सं० १८९८) में इस पट्टे की भी अवधि समाप्त हो गई। फिर ई० स० १८४७ (१९०४ वि०) में अंग्रेज़ी सरकार ने मेवाड़ के हिस्से के मेरवाड़े के गांव सदा के लिए अपने अधिकार में कर लिये[1]।

भोमट में भीलों का उपद्रव

मेवाड़ के मगरा नामक ज़िले का एक हिस्सा भोमट कहलाता है, जिसमें जवास, पाड़ा, मादड़ी, जूड़ा, ओगणा, पानड़वा आदि भोमिये सरदारों के ठिकाने तथा ग्रासिये ठाकुरों की जागीरें हैं। इन ठिकानों में विशेषतः भीलों की आबादी है। उनका व्यवसाय खेती और पशुपालन के सिवा लूटमार भी है। मार्गों की रक्षा का 'बोळाई' तथा गावों की चौकीदारी का 'रखवाली' नामक कर पहले से ही इनको मिलता रहा था। कप्तान टॉड ने राज्य की आय-वृद्धि तथा व्यापार की उन्नति के लिए ये कर राज्य में लिए जाने का प्रबन्ध करना चाहा, जिसपर वहां के भीलों तथा कुछ राजपूत ठाकुरों ने बाग़ी होकर इधर-उधर के गावों में लूट-मार मचा दी[2]।

नीमच के आस-पास के ठाकुर लोग लुटेरे भीलों को अपने यहां शरण देते थे। वे छावनियों में ही नहीं, किन्तु उनके पास के गावों में भी लूटमार किया करते थे। थाटोले का रावत इन लुटेरों का मुखिया समझा जाता था, पर कई और ठाकुरों पर भी, जिनमें जवास का सरदार भी था, इन लोगों को आश्रय देने तथा बाग़ी होकर महाराणा की आज्ञा न मानने का दोष लगाया गया। ऐसी स्थिति देखकर कप्तान टॉड ने गांगा को, जो नीमच की तरफ़ की पालों का मुखिया था, १०० रुपये मासिक दिये जाने का वादा कर राज़ी कर लिया, परन्तु इस प्रबन्ध का कुछ भी फल न हुआ। ई० स० १८२३ (वि० सं० १८८०) में राजपूत ठाकुरों—विशेषतः जवास के राव—का दमन करने के लिए अंग्रेज़ी सरकार की ओर से सेना भेजी गई; तब राजपूत ठाकुरों और भीलों ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली और वे उससे समझौता कर 'बोळाई' तथा 'रखवाली' नामक कर वसूल करने का अपना हक़

(१) ट्रीटीज़; जिल्द ३, पृ० १२-१४।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ७२-७३।

छोड़ने और अपने हथियार सौंपने के लिए राज़ी हो गये। इसके उपरान्त राजपूत ठाकुरों के जुरमाना देने और इस बात की ज़िम्मेदारी लेने पर कि भीलों को कर न उगाहने देंगे उनकी कई एक 'पालें'[1] लौटा दी गईं। इस प्रबन्ध से भी भीलों का उपद्रव शान्त न किया जा सका। वे कर उगाहने और कर न देनेवाले गावों में फिर लूट-खसोट करने लगे। इसपर स्थानापन्न पोलिटिकल एजेंट कप्तान कॉब ने ब्रिगेडियर लम्ले की मातहती में कुछ सेना भेजकर जवास पर अधिकार कर लिया और वहां के राव के चाचा दौलतसिंह को निकाल दिया, पर जनरल लम्ले के लौटते ही भीलों ने फिर सिर उठाया। ई० स० १८२६ फ़रवरी (वि० सं० १८८२ माघ) में उन्होंने महाराणा के उधर के सब थानों को तहस-नहस कर २५० आदमियों को मार डाला और खैरवाड़े के थाने को, जहां १००० आदमी थे, घेर लिया। स्थानापन्न पोलिटिकल एजेंट कप्तान सदरलैण्ड के दरख़्वास्त करने पर सरकार ने उसके असिस्टैंट कप्तान ब्लैक को भोमट का दीवानी और फ़ौजी प्रबन्ध अपने हाथ में लेने और न्याय तथा मेल-जोल के साथ वहां शान्ति स्थापित करने के लिए २० कम्पनी, २०० सवार तथा अन्य सेना के साथ नीमच से खैरवाड़े भेजा, किन्तु मार्ग में उसका देहान्त हो जाने के कारण रेज़िडेण्ट ने सिरोही के पोलिटिकल एजेंट कप्तान स्पीयर्स को उसके स्थान पर नियत किया। बहुत-कुछ बात-चीत हो जाने के पश्चात् ठाकुर दौलतसिंह कप्तान स्पीयर्स से मिला और उसने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, जिसपर उक्त कप्तान ने जवास का ठिकाना वहां के राव को पीछा दिलाने की सिफ़ारिश की और दौलतसिंह के निर्वाह का अच्छा प्रबन्ध करा दिया। तत्पश्चात् भोमट में फिर उपद्रव हुआ और अन्त में वह (भोमट) प्रदेश एक सरकारी अफ़सर की निगरानी में रक्खा गया, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा। इस प्रकार खैरवाड़ा ज़िले की सुव्यवस्था कर कप्तान स्पीयर्स ने ओगणा, पानड़वा और जूड़ा के ग्रासियों के ठिकानों की व्यवस्था करना आरंभ किया। सरकार यही चाहती थी कि इस प्रदेश के मार्गों पर चोरी-डकैती न हो और गांवों की प्रजा न लूटी जाय। ओगणा

(१) भीलों के घर प्रायः पहाड़ियों पर एक-दूसरे से बहुत दूर-दूर होते हैं। ऐसे घरों का बड़ा समुदाय 'पाल' कहलाता है।

के स्वामी ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली, और जूड़ा तथा पानड़वा में सुव्यवस्था हो जाने पर खेरवाड़े और पींडवाड़े (सिरोही राज्य) में कुछ कम्पनियां छोड़कर अंग्रेज़ी सेना नीमच लौट गई[1]।

जहाज़पुर पर महाराणा का अधिकार

बालेराव आदि को क़ैद से छुड़ाकर उदयपुर से लौटते समय ज़ालिमसिंह झाला का किस प्रकार जहाज़पुर पर अधिकार हो गया, यह पहले बतलाया जा चुका है। उदयपुर आने के कुछ दिनों बाद कप्तान टॉड ने महाराणा को वह परगना लौटा देने के लिए ज़ालिमसिंह से लिखा-पढ़ी की, जिसपर उसने ई० स० १८१६ फ़रवरी (वि० सं० १८७५ फाल्गुन) में उसे महाराणा को वापस दे दिया। फिर कर्नल टॉड ने उसका प्रबन्ध अपने ही हाथ में रक्खा, परन्तु कुछ खिराज बाक़ी रह जाने के कारण ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) में अंग्रेज़ी सरकार को उसकी आय सौंपी गई। टॉड ने वहां के मीनों से हथियार छीन लिए और परगने की रक्षा का अच्छा प्रबन्ध कर दिया[2]।

किशनदास की मृत्यु और शिवलाल का प्रधान बनाया जाना

किशनदास पंचोली एक सुयोग्य और अनुभवी मंत्री था। वह कप्तान टॉड का सच्चा सहायक और आज्ञानुवर्ती था। उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए टॉड ने लिखा है—"महाराणा के दरबार में केवल वही ईमानदार और कार्यकुशल व्यक्ति था; बहुत दिनों तक वह राजदूत रहा था और उसके कार्यों से राजा तथा प्रजा, दोनों को लाभ पहुंचा"[3]। टॉड की इच्छानुसार काम करने के कारण बहुतसे लोग उसके शत्रु हो गये थे। विष से उसकी मृत्यु हुई, ऐसा संदेह किया गया। उसके पीछे देवीचन्द और देवीचन्द के बाद वि० सं० १८७८ चैत्र सुदि २ (ई० स० १८२१ ता० ४ अप्रेल) को साह शिवलाल गलूंड्या प्रधान बनाया गया[4]।

कप्तान टॉड ने शासनाधिकार अपने हाथ में लेकर महाराणा का दैनिक व्यय १००० रुपये स्थिर किया। टॉड की व्यवस्था से मेवाड़ की आय बहुत

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ७४-६१।
(२) वही; पृ० २६-२७।
(३) टॉ; रा; जि० १, पृ० २४८।
(४) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२। ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २७।

राज्य की आर्थिक दशा

बढ़ गई। ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में १२०००० रुपये वार्षिक आय थी, परन्तु टॉड की सुव्यवस्था से ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) में ८७५६३४ रुपये हो गई और ई० स० १८२२ में ११-१२ लाख रुपये तक का अनुमान किया गया। यद्यपि राज्य की आय पहले से बहुत बढ़ गई थी, तथापि प्रारंभिक वर्षों में महाराणा के लिए १००० रुपये रोज़ देना सहज न था और पहले दो वर्षों तक तो अंग्रेज़ी सरकार का खिराज भी पूरा नहीं चुकाया जा सका। इस वास्ते महाराणा के दैनिक व्यय के लिए पोलिटिकल एजेंट की ज़िम्मेदारी पर एक सेठ से १८ रुपये सैकड़ा सूद के हिसाब से कर्ज़ लेना पड़ा[1]।

ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) में कप्तान टॉड शनैः-शनैः शासन-प्रबन्ध से अपना हाथ खींचने लगा, किन्तु इसी अरसे में बीमार हो जाने से अपने सहायक एजेंट कप्तान वॉग को अपना कार्यभार सौंपकर वह विलायत चला गया। महाराणा के हाथ में शासन-प्रबन्ध आने पर पोलिटिकल एजेंट ने १००० रुपये रोज़ दिलाने की जो ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली थी, उसे हटा लिया, जिससे उन रुपयों का मिलना बंद हो गया और महाराणा को निजी खर्च का सारा प्रबन्ध स्वयं करना पड़ा[2]।

कप्तान वॉग के बाद ई० स० १८२३ मार्च (वि० सं० १८८० प्रथम चैत्र) में कप्तान स्पीयर्स मेवाड़ का एजेंट होकर आया, परन्तु एक मास तक रहकर

कप्तान कॉब का शासन-प्रबन्ध

वह वापस चला गया और उसके स्थान पर कॉब नियुक्त हुआ। उसे आते ही मालूम हुआ कि राज्य-प्रबन्ध महाराणा के हाथ में जाने के बाद एक वर्ष के भीतर ही उसने ८३ गांव लोगों को दे दिये, राज्य की आय फिर घट गई, खर्च बढ़ गया और अहलकार लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लग गये। महाजन का कर्ज़ ई० स० १८२३ में दो लाख रुपये हो गया और अंग्रेज़ी सरकार का खिराज आठ लाख रुपये के क़रीब चढ़ गया।

यह दशा देखकर कॉब ने राज्य का प्रबन्ध फिर एजेंट की निगरानी में छोड़े जाने का प्रस्ताव किया। उसके अनुसार महाराणा ने प्रबन्ध का सब

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २७,३१।

(२) वही; पृ० २८।

कार्य एजेंट को सौंप दिया और उसके दैनिक व्यय के लिए पहले के अनुसार १००० रुपये फिर नियत हुए[1]।

मेवाड़ में द्वैध शासन

इस समय मेवाड़ का शासन-प्रबन्ध महाराणा और अंग्रेज़ी सरकार, दोनों की ओर से होता था। महाराणा की तरफ़ से प्रत्येक ज़िले में कामदार और एजेंट की ओर से चपरासी नियुक्त था। दोनों मिलकर आय वसूल करते थे। इस द्वैध शासन से तंग आकर प्रजा ने अंग्रेज़ी सरकार से शिकायत की, जिसपर कप्तान कॉब ने शिवलाल को उसका मूल कारण ठहराकर वि० सं० १८८५ भाद्रपद (ई० स० १८२८ सितम्बर) में उसे अलग कर दिया और मेहता रामसिंह को प्रधान बनाया। वह केवल १८ मास तक प्रधान रहा, फिर दुबारा शिवलाल गलूंड्या प्रधान बना। कॉब के शासन-प्रबन्ध से मेवाड़ की आर्थिक अवस्था सुधर गई। महाराणा का खर्च, अंग्रेज़ी सरकार के चढ़े हुए खिराज में से चार लाख रुपये, तथा अन्य छोटे-बड़े कर्ज़ राज्य की आय से ही चुका दिये गये[2]।

कप्तान सदरलैंड के सुधार

ई० स० १८२६ नवम्बर (वि० सं० १८८३ मार्गशीर्ष) में कप्तान कॉब के छुट्टी जाने पर उसके स्थान पर कप्तान सदरलैण्ड नियत हुआ। जिन चपरासियों को पहले एजेंटों ने थानों और परगनों में नियुक्त किया था उन्हें उसने निकाल दिया, क्योंकि वे प्रबन्ध में हस्तक्षेप करते थे। उसने यह भी प्रस्ताव किया कि मेवाड़-राज्य से खिराज में आय का कोई निश्चित हिस्सा न लेकर रुपयों की संख्या स्थिर कर देनी चाहिये[3], क्योंकि इससे अधिक सुविधा होगी।

सर चार्ल्स मेटकाफ का उदयपुर आना

ई० स० १८२६ (वि० सं० १८८३) के अन्त में सर चार्ल्स मेटकाफ़ उदयपुर आया। महाराणा ने उससे यह प्रस्ताव किया कि सालाना खिराज की रक़म तय कर दी जाय, चढ़े हुए खिराज में रियायत की जाय, राज्य का शासन-प्रबन्ध मुझे सौंपा जाय, भोमट प्रदेश मुझे लौटा दिया जाय, दूसरे राज्यों के अधिकार में गये हुए

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० २६-३०।

(२) वही; पृ० २८। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२।

(३) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३१-३२।

मेवाड़ के परगने और मेरवाड़ा वापस दिलाया जाय और रेज़िडेण्ट के यहां मेरी ओर से एक एजेण्ट रहे।

महाराणा की इच्छा के अनुसार यह निश्चय हुआ कि सालाना ख़िराज ३००००० रुपये (उदयपुरी) रक्खा जाय, चढ़ा हुआ ख़िराज प्रतिवर्ष ५०००० रुपये की क़िस्त से चुकाया जाय, मेवाड़ के शासन-प्रबन्ध में पोलिटिकल एजेण्ट का हाथ न रहे और महाराणा की ओर से रेज़िडेण्ट के पास वकील रहा करे[1]।

ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में—कप्तान टॉड के समय में—महाराणा भीमसिंह और मेवाड़ के सरदारों में जो क़ौलनामा हुआ था, उसका सरदारों ने ठीक-ठीक पालन न किया। इसलिये कप्तान कॉब ने ई० स० १८२७ अप्रेल (वि० सं० १८८४ वैशाख) में एक नया क़ौलनामा तैयार किया, परन्तु ई० स० १८३६ (वि० सं० १८६६) से पहले उस-पर सरदारों के हस्ताक्षर न हुए[2]। इस क़ौलनामे का विवरण आगे दिया जायगा।

कप्तान कॉब का क़ौलनामा

महाराणा भीमसिंह ने वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५) में पीछोला के पूर्वी तट पर 'नया महल' बनवाया। उसकी बीकानेरी राणी पद्मकुंवरी ने अपने और अपने पति के नाम पर पीछोला के पश्चिमी तट पर 'भीमपद्मेश्वर' नामक शिवालय बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १८८४ श्रावण सुदि ८ (ई० स० १८२७ ता० ३१ जुलाई) को हुई[3]।

महाराणा के बनवाये हुए महल, मन्दिर आदि

वि० सं० १८८५ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८२८ ता० १६ मार्च) को कुंवर जवान-सिंह के बालक पुत्र का देहान्त हो गया, जिससे महाराणा को ऐसा गहरा सदमा पहुंचा कि चैत्र सुदि १४ (ता० ३० मार्च) को वह स्वयं इस संसार से सिधार गया और पूर्णिमा को उसकी दाहक्रिया हुई[4]।

महाराणा की मृत्यु

---

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३२-३३।

(२) ट्रीटीज़; जि० ३, पृ० ४४-४५।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

(४) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५।

महाराणा की १७ राणियों[1] से उसके अनेक पुत्र हुए, जिनमें से उसके देहान्त के समय कुंवर जवानसिंह के सिवा और कोई जीवित न था।

महाराणा की सन्तति

बाल्यावस्था से ही बरसों तक अपनी माता के संरक्षण में रहने के कारण महाराणा भीमसिंह दुर्बल-हृदय हो गया था, जिससे वह न तो बाहरी शत्रुओं और न सरदारों के पारस्परिक झगड़ों से होनेवाले अनिष्ट से मेवाड़ की रक्षा कर सका। अपनी कमज़ोरी के कारण वह सरदारों का जो दल ज़ोर पकड़ता उसी के पक्ष में हो जाता, क्योंकि उस समय राज्य की स्थिति ही ऐसी हो रही थी। अपनी निर्बलता के कारण वह कृष्णाकुमारी की हत्या को भी न रोक सका और कप्तान टॉड के सुप्रबन्ध से मेवाड़ में शान्ति स्थापित हो जाने पर भी उसकी बिगड़ी हुई अवस्था में विशेष सुधार न कर सका। बरसों तक आपत्तियों में फँसे रहने से वह दृढ़-संकल्प भी न रहा। वह दानी[2], दयालु, कोमलस्वभाव, लोकप्रिय, दीनवत्सल, क्षमाशील और अत्यन्त उदार था[3]। उसकी उदारता से बहुतसे दीन-दुःखियों का कष्ट दूर

महाराणा का व्यक्तित्व

---

(१) *सत्तरह विवाह किय रांन भीम।*
सुभ लच्छिरूप पतिवर्त्त-सीम॥

भीमविलास के पृष्ठ २२३-२९ में महाराणा के १७ विवाहों का वर्णन है।

(२) महाराणा भीमसिंह की मृत्यु की ख़बर पाने पर जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने उसकी दानशीलता की प्रशंसा में यह पद्य कहा—

"*राणे भीम न रक्खियो, दत्त विन दिहाड़ोह।*
हय गयंद देतो हतां, मुश्रो न मेवाड़ोह॥"

आशय—मेवाड़ का राणा भीम, जो दान दिये बिना एक दिन भी ख़ाली नहीं जाने देता था और हाथी-घोड़े दिया करता था, मरा नहीं है, अर्थात् दान के यशरूपी शरीर से जीवित है।

(३) महाराणा की उदारता और क्षमता की अनेक दन्तकथाएं मेवाड़ में प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ नीचे लिखी जाती हैं—

१—एक बार महाराणा सो रहा था। पैर दबानेवाले नौकर ने पैर के अँगूठे में से सोने का छल्ला निकालना चाहा, किन्तु मध्य में अटक जाने से वह निकल न सका। तब उसने अँगूठे पर थूक लगाकर निकाल लिया। इसपर महाराणा जग गया और उससे कहा—"यदि

होता था। कर्नल टॉड ने लिखा है—'वह बहुत अच्छा सलाहकार, बुद्धिमान् और निर्णय पर पहुंचनेवाला व्यक्ति था। मंसूबे तो वह बहुत बांधता, पर उन्हें अमल में नहीं ला सकता था'। वह स्वयं कवि[1] और कवियों तथा विद्वानों का

तुझे छल्ला निकालना था, तो थूक लगाकर मेरा पैर अपवित्र क्यों किया ? वैसे ही ले लेता"। फिर उसने उठकर स्नान किया, पर सेवक की अत्यन्त निर्धन स्थिति देखकर उसे कुछ भी दण्ड न दिया।

२—एक दिन कोई चारण अपनी कन्या के विवाह के लिए महाराणा से रुपये मांगकर ले गया। इसी प्रकार दो दिन तक फिर मांगने आया। महाराणा उसे पहचानता था, जिससे जान लिया कि वह चारण झूठा है, परन्तु फिर भी उसने बिना कुछ कहे उसे वाञ्छित धन दिया। इसपर चारण बहुत लज्जित हुआ और चौथे दिन आकर कुल धन महाराणा के चरणों में रखकर कहने लगा—"मैं तो अन्नदाता को जाँचता था, परन्तु राज्य की ऐसी शोचनीय अवस्था में भी मैंने श्रीमान् को अत्यन्त उदार पाया। मुझे इस धन की कोई आवश्यकता नहीं है"। महाराणा ने दिया हुआ धन पीछा लेना स्वीकार न कर उस चारण को और भी दिया।

३—एक बार कुछ चारण महाराणा की प्रशंसा में कुछ पद्य बनाकर ले गये, जिस-पर उन्हें पारितोषिक मिला; केवल एक चारण कुछ न पा सका। दूसरे चारण उसको चिढ़ाने लगे; तो उसने कहा कि तुम लोगों ने महाराणा की प्रशंसा करके पुरस्कार पाया है, किन्तु मैं निन्दा करके पाऊँगा। एक रोज़ महाराणा की सवारी कहीं जाती थी, उस समय रास्ते में वह चारण खड़ा होकर ऊँचे स्वर में चिल्लाने लगा—

'भीमा थूं भाटोह मोटा मगरा मायलो'

अर्थात्—'हे भीमा ! तू किसी बड़े पर्वत का पत्थर है।' इसपर महाराणा के चोबदार और छड़ीदार उसे डाँटने लगे, लेकिन महाराणा ने यह विचार कर कि 'इस चारण के मन में कोई भारी दुःख है', उसको अपने पास बुलाया और सारा हाल दर्याफ़्त करके उसे सबसे अधिक इनाम दिया। तब चारण ने अपना सोरठा पूरा कर इस प्रकार सुनाया—

'भीमा थूं भाटोह मोटा मगरा मायलो।
कर राखूं काठोह शंकर ज्यूं सेवा करूं॥'

अर्थात्—'हे भीमसिंह ! तू बड़े पर्वत का एक ऐसा पत्थर है जिसे यत्न से रखकर मैं महादेव की भांति सेवा करूं।' उसकी यह उक्ति सुनकर महाराणा बड़ा प्रसन्न हुआ और जितना पारितो-षिक उसको पहले दिया था उतना ही और देकर बिदा किया।

(१) महाराणा की बनाई हुई कविताओं का संग्रह हमने उदयपुर में कई जगह देखा है। चारण कवि आढ़ा किशन ने महाराणा की आज्ञा से 'भीमविलास' नामक बड़े ग्रंथ की रचना की, जो इतिहास के लिये बहुत उपयोगी है।

आश्रयदाता था। इसके सिवा उसे इतिहास का भी अच्छा ज्ञान था। अपने राज्य के सिवा अन्य राज्यों के इतिहास से भी वह परिचित था। अपने नौकरों का उसे बहुत ख़याल रहता था। उनके मरने पर वह उनके बाल-बच्चों की रक्षा का, अपने बच्चों के समान, ध्यान रखता था। उसने कभी किसी पर ज़ोर-ज़ुल्म नहीं किया, और यदि किया भी, तो दूसरों के दबाव के कारण। उसमें शारीरिक बल बहुत था। उसका चलाया हुआ तीर भैंसे की देह को बेधकर बहुत दूर चला जाता था। मज़बूत ढाल को वह हाथों से चीर सकता था[1]। महाराणा में जहां ये सब गुण थे वहीं दो-एक दोष भी थे। वह बड़ा फ़ज़ूल-ख़र्च था; इसके सिवा वचन का पाबन्द नहीं था। वह हँसमुख और मृदुभाषी था। उसका क़द छोटा, शरीर सुदृढ़, और आंखें तथा पेशानी बड़ी थी[2]।

---

(१) कहते हैं, एक बार नवाब जमशेदख़ां ने, जिसे अपने बल का बड़ा घमण्ड था, महाराणा के बल की परीक्षा करनी चाही। इसपर उसने एक पुरानी और मज़बूत ढाल मंगाकर नवाब को दी और कहा 'इसे चीरिए।' नवाब ने खूब ज़ोर लगाया, किन्तु वह उसे न चीर सका; तब महाराणा ने दोनों हाथों से उस ढाल को चीर डाला। महाराणा के बल के विषय में इस प्रकार की अनेक जन-श्रुतियां प्रसिद्ध हैं।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १२।

आठवां अध्याय

महाराणा जवानसिंह से वर्तमान समय तक

महाराणा जवानसिंह

महाराणा जवानसिंह का जन्म वि० सं० १८५७ मार्गशीर्ष सुदि ३ (ई० स० १८०० ता० १६ नवम्बर) को[1] और राज्याभिषेक वि० सं० १८८५ चैत्र सुदि १५ (ई० स० १८२८ ता० ३१ मार्च) को हुआ। फाल्गुन सुदि १० (ई० स० १८२६ ता० १५ मार्च) को अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से कप्तान कॉब गद्दी-नशीनी का टीका लेकर उदयपुर पहुँचा[2]।

महाराणा भीमसिंह के समय का भोमट-सम्बन्धी वृत्तान्त उक्त महाराणा के इतिहास में लिखा जा चुका है। अब महाराणा जवानसिंह के समय का वहां का हाल नीचे दिया जाता है—

कर्नल स्पीयर्स के प्रबन्ध से प्रसन्न होकर ई० स० १८२८ (वि० सं०१८८५) में अंग्रेज़ी सरकार ने भोमट की निगरानी का सारा भार उसे सौंप दिया,

भोमट का प्रबन्ध

परन्तु जब महाराणा ने उक्त प्रदेश का शासन अपने ही हाथ में रखना चाहा, तब गवर्नर जनरल की आज्ञा के अनुसार खैरवाड़े तथा पींडवाड़े से अंग्रेज़ी सेना हटा ली गई।

उसी वर्ष पींडवाड़े से १० मील दूर जूड़ा ठिकाने के क्यार नामक गांव में ग्रासियों ने २१ पठान सौदागरों को मारकर उनका सारा सामान लूट लिया।

---

(१) *ठारहसे सत्तावने मृगसिर सुदि त्रतियांन ।*
उदर कुंवरि गुलाब के जनमे कुंवर जवांन ॥ ५४ ॥

भीमविलास; पृष्ठ ११६ ।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६ (हस्तलिखित) ।

इस घटना के कुछ वर्ष पीछे ई० स० १८३३ (वि० सं० १८९०) में जूड़ा के भीलों ने बम्बई की अंग्रेज़ी सेना के आठ सैनिकों को सिरोही राज्य में गिरवर के निकट मार डाला, पर पोलिटिकल एजेंट के कई बार ताकीद करने पर भी जूड़ा के राव ने अपराधियों की गिरफ़्तारी का कोई प्रबन्ध न किया। तब ई० स० १८३८ (वि० सं० १८९५) में अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञानुसार नीमच तथा गुजरात की संयुक्त सेना ने चढ़ाई कर जूड़े पर अधिकार कर लिया। कर्नल स्पीयर्स ने अंग्रेज़ी सेना के खर्च के लिए वहां की आय काफ़ी न समझकर यह तजवीज़ पेश की कि वह ठिकाना पीछा महाराणा के सुपुर्द कर दिया जाय। अंग्रेज़ी सरकार ने कर्नल स्पीयर्स का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त उक्त कर्नल ने भोमट प्रदेश के सुप्रबन्ध के लिए अंग्रेज़ अफ़सरों के निरीक्षण में भीलों की फ़ौज (भील कोर) क़ायम किये जाने का प्रस्ताव भी किया। सरकार ने इस शर्त पर यह बात स्वीकार कर ली कि फ़ौज का कुल खर्च महाराणा दें और भोमट के ठिकानों से उनकी आय का दसवां हिस्सा बतौर खिराज के महाराणा के पास पहुंचता रहे, परन्तु महाराणा ने कहा कि उस प्रदेश की आमद से ही खर्च दिया जा सकता है, अधिक नहीं[1]। इसपर इस समय तो भील कोर की बात स्थगित रही, किन्तु महाराणा सरदारसिंह के समय में उपद्रव होने पर यह फ़ौज ई० स० १८४१ (वि० सं० १८९८) में क़ायम हुई, जिसका उल्लेख उक्त महाराणा के इतिहास में किया जायगा।

बेगूं के सरदार की होल्कर के इलाक़ों पर चढ़ाई

ई० स० १८२९ (वि० सं० १८८६) में बेगूं के रावत ने होल्कर के सींगोली तथा नदवई इलाक़ों पर चढ़ाई कर उनको बड़ी हानि पहुंचाई। इसपर अंग्रेज़ी सरकार ने होल्कर को हरजाना तथा उसके फ़ौज-खर्च के बदले में २४००० रुपये देने के लिए महाराणा को लिखा। हरजाना तो चुका दिया गया, परन्तु फ़ौज-खर्च ई० स० १८३९ (वि० सं० १८९६) तक न दिये जाने पर कर्नल रॉबिन्सन के प्रस्ताव के अनुसार वह मेवाड़ के मेरवाड़े की आय में से काटकर दे दिया गया[2]।

---

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ८२-८३।

(२) वही; पृ० ३९।

महाराणा जवानसिंह 'कुंवरपदे' में तो ऐसा मितव्ययी और वादे का पाबन्द समझा जाता था कि उसके कथन पर सौदागर उसके पिता तथा सरदारों को

शासन की अव्यवस्था

बड़ी-बड़ी रक़में दे दिया करते थे, परन्तु गद्दीनशीन होने के बाद अपनी पहले की बातों का पालन न कर वह ऐश-आराम में डूब गया। उसे फ़िज़ूलखर्ची करने तथा शराब पीने की लत पड़ गई। दरबार का खर्च पहले से बहुत बढ़ गया, शासन-व्यवस्था के बिगड़ जाने से थोड़े ही दिनों में राज्य की आय घट गई और सारे मेवाड़ में अशान्ति फैल गई। बहुतसे किसान तथा महाजन मेवाड़ छोड़कर बाहर चले गये। हुरड़ा परगने की आय ४०००० रुपये से घटकर सिर्फ़ २४००० रुपये रह गई। जहाज़पुर परगना पोलिटिकल एजेंट कप्तान सदरलैंड के समय में बहुत ही अच्छी दशा में था; उसकी आय ११८००० रुपये थी और उससे ४०० पैदल तथा १०० सवार रखे जाते थे, किन्तु अब उसके प्रबन्ध के लिए उसकी आय के सिवा २०००० रुपये और खर्च होने लगे[1]।

महाराणा के पास रहनेवाले मुंहलगे नौकर जो चाहते वह उससे करा लेते; इस कारण छोटे-बड़े सभी कर्मचारी उनसे हमेशा डरते रहते थे। यदि कोई

महाराणा के नौकरों का प्रभाव

कर्मचारी उनकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ कर बैठता तो वह घोर आपत्ति में फँस जाता, क्योंकि वे महाराणा से शिकायत कर उसे बरखास्त या क़ैद करा देते। ऐसी स्थिति में ईमानदार और नेकनीयत पदाधिकारियों के लिए भी अपनी मान-मर्य्यादा एवं जानमाल की रक्षा करना कठिन हो गया। बहुत दिनों तक अपने पद पर बने रहने की उनको आशा ही नहीं होती थी और उन्हें क़ैद का डर तो बराबर बना रहता था। इसी से आपत्ति के समय जुरमाना देकर क़ैद से बचने के लिए प्रधान से लेकर छोटे-बड़े अहलकारों तक को धन-संचय की चिन्ता रहा करती थी[2]।

कुछ खैरख्वाह सरदारों ने महाराणा को बहुत-कुछ समझाया-बुझाया, परन्तु उसने उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। अन्त में जब वे उसकी

---

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३२-३६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६ (ह०)।

शासन-सुधार का प्रयत्न कमज़ोरी और उसके नौकरों के दुर्व्यवहार एवं स्वेच्छाचार से तंग आकर ज़ाहिरा तौर पर उसका विरोध कर उदयपुर से चले गये, तब राज्य-व्यवस्था के सुधार की ओर उसका ध्यान गया। उसने चाहा कि राज्य में जमाखर्च का सारा हिसाब मेरे सामने हुआ करे, परन्तु अहलकारों के दांवपेच के सामने उससे कुछ भी न बन सका। अपना भेद खुल जाने के डर से अहलकार उसे आय-व्यय का हिसाब कभी ठीक-ठीक न समझाते और उनसे जो प्रश्न किये जाते उनके वे ऐसे गोलमाल उत्तर देते कि महाराणा की समझ में ही न आते। उनके बातचीत करने तथा हिसाब समझाने का ढंग ऐसा पेचीदा होता था कि जमाखर्च का ब्योरा जानकर बचत के रुपयों का पता लगा लेना महाराणा के लिए कठिन था। 'श्रीमान् का काम तो केवल आज्ञा देना है; राजकाज का भार उठाने के लिए तो हम लोग बनाये गये हैं', ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातों से वे महाराणा को हिसाब की जांच-पड़ताल न करने देते और रुपये हज़म कर जाते थे[1]।

अन्त में इस प्रकार की अव्यवस्था से रियासत की हालत ऐसी खराब हो गई कि अंग्रेज़ी सरकार के खिराज आदि के ७००००० रुपये चढ़ गये और पोलिटिकल प्रधानों का तबादला एजेंट ने रुपये अदा करने के लिए महाराणा को ताकीद की; तब प्रधान रामसिंह की सलाह के अनुसार उसने महासानी बख़्ता, कायस्थ विशननाथ तथा पुरोहित रामनाथ को रियासत का खर्च घटाने का काम सौंपा। उन्होंने देखा कि खर्च घटाने से नेकनामी तो प्रधान की होगी और लोगों के दुश्मन हम बनेंगे, इसलिए उन्होंने अनुमान से एक फ़र्द, जिसमें १२००००० रुपये रियासत की सालाना आमदनी और ११००००० रुपये खर्च दिखलाया गया था, तैयार कर महाराणा के सामने पेश की, जिससे मेहता रामसिंह प्रधान पर प्रतिवर्ष बचत के १००००० रुपये खा जाने का सन्देह हुआ। फिर महाराणा ने मेहता शेरसिंह को, जो मेवाड़ से बाहर चला गया था, उदयपुर बुलाकर प्रधान बनाया[2]। रामसिंह की अपेक्षा शेरसिंह सच्चा और ईमानदार तो अवश्य बतलाया जाता था, परन्तु वह वैसा प्रबन्ध-कुशल नहीं था। उसने थोड़े

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६। ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३६।

ही दिनों में राज्य की आय, जिसे उसने नियत समय से पहले ही वसूल कर ली थी, ख़र्च कर डाली। उसके समय में रियासत पर क़र्ज़ पहले से भी अधिक हो गया, इसलिए महाराणा ने उसे एक ही वर्ष के बाद अलग कर रामसिंह को पीछा प्रधान बनाया।

प्रधान रामसिंह का प्रबन्ध

अपनी कारगुज़ारी दिखाने के लिए मेहता रामसिंह ने पोलिटिकल एजेंट कप्तान कॉब के द्वारा गवर्मेंट से दरख़्वास्त की कि यदि दो लाख रुपये, जो अंग्रेज़ी सरकार की ओर से मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों के इन्तज़ाम के लिए महाराणा को पेशगी दिये गये हैं और जो पोलिटिकल एजेंट के निर्देश के अनुसार ख़र्च किये गये हैं, माफ़ कर दिये जायँ, तो मैं खिराज के पांच लाख रुपये शीघ्र चुका देने का प्रबन्ध कर सकता हूं। कप्तान कॉब के सिफ़ारिश करने पर अंग्रेज़ी सरकार ने रामसिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब रामसिंह ने लोगों से दंड, जुरमाना आदि वसूल कर अंग्रेज़ी सरकार का चढ़ा हुआ कुल खिराज तुरन्त चुका दिया[1]।

शेरसिंह का दुबारा प्रधान बनाया जाना

इस प्रकार चढ़ा हुआ सरकारी खिराज चुकाने और कर्ज़ माफ़ करा देने पर रामसिंह की बड़ी नेकनामी हुई। यह बात उसके शत्रुओं को सहन न हो सकी, जिससे उन्होंने महाराणा से उसके ज़ोरज़ुल्म और ज्यादती की शिकायत कर उसे अपने पद से हटाने की कोशिश की, परन्तु महाराणा ने कप्तान कॉब के लिहाज़ से—जब तक वह (कप्तान कॉब) मेवाड़ में रहा तब तक—उसे अलग न किया। मेवाड़ से कॉब के चले जाने के बाद रामसिंह का प्रभाव घट जाने पर महाराणा ने वि० सं० १८८८ द्वितीय वैशाख सुदि १ (ई० स० १८३१ ता० १२ मई) को शेरसिंह को फिर प्रधान बनाया[2]। कप्तान कॉब ने कलकत्ते से पत्र-द्वारा महाराणा को रामसिंह के अच्छे कार्यों की याद दिलाते हुए उसकी इज़्ज़त बचाने की सिफ़ारिश की, क्योंकि उसके शत्रु बहुत थे[3]।

---

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३६। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(३) महाराणा के नाम कप्तान कॉब का, वि० सं० १८८७ (चैत्रादि १८८८) ज्येष्ठ सुदि १४ (ई० स० १८३१ ता० २४ जून) का पत्र।

कप्तान कॉब के विलायत चले जाने पर मेवाड़ से एजेन्सी उठा ली गई और कुछ समय के लिए उदयपुर राज्य का सम्बन्ध अजमेर के सुपरिंटेंडेंट एवं पोलिटिकल एजेंट से रहा[1]।

नाथद्वारे के गोस्वामी का स्वतन्त्र होने का प्रयत्न

इसी वर्ष नाथद्वारे के गोस्वामी ने स्वतन्त्र होने का विचार कर अपने वकील मुखिया राधिकादास को राजपूताने के एजेएट गवर्नर जनरल के पास हाज़िर होने के लिए भेजा, पर एजेएट ने उसे यह कहकर लौटा दिया कि 'नाथद्वारा उदयपुर राज्य के अधीन है, इसलिए वहां की ओर से वकील होकर मेरे पास तुम्हारे रहने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हारे मालिक को मुझसे जो कुछ कहना या पूछना हो उसे वह महाराणा के द्वारा कहे या पूछे। महाराणा की सिफ़ारिश के बिना उसके कहने-सुनने का कुछ भी खयाल नहीं किया जा सकता'। इसकी सूचना उसने महाराणा को दे दी[2]।

महाराणा की अजमेर में गवर्नर जनरल से मुलाक़ात

ई० स० १८३१ (वि० सं० १८८८) में हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने पोलिटिकल एजेंट के द्वारा महाराणा को सूचित किया कि "मैं अजमेर आता हूं, आप वहां मुझसे मुलाक़ात करें।" गवर्नर जनरल का पैग़ाम पाकर महाराणा ने सरदारों के साथ सलाह की और क़ायममुक़ाम एजेंट गवर्नर जनरल मेजर लॉकेट से कहा—"जब पहले भी मुसलमान बादशाहों के समय में मुलाक़ात की रस्म अदा करने के लिए मेरा कोई पूर्वज मेवाड़ से बाहर नहीं गया, तब इस समय मेरा अजमेर जाना कैसे ठीक समझा जा सकता है?" इसपर उसने उत्तर दिया—"मुसलमान बादशाह आपके पूर्वजों के दुश्मन थे। इसके सिवा वे दरबार में उपस्थित होनेवाले राजाओं को अपना नौकर समझते और उनके साथ नौकरों जैसा व्यवहार करते थे। इन्हीं कारणों से आपके पूर्वज उनके दरबार में कभी हाज़िर नहीं हुए, परन्तु गवर्नर जनरल आपके दोस्त हैं, उनसे आपकी मुलाक़ात बतौर दोस्त के होगी, इसलिए आपका अजमेर चलकर उनसे मुलाक़ात करना अनुचित न होगा"। मेजर लॉकेट का कथन

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

महाराणा तथा अधिकांश सरदारों को तो उचित जान पड़ा, पर कुछ सरदारों को ठीक न जँचा। उन्होंने महाराणा को अजमेर जाने से रोकना चाहा। तब उसने उन्हें अंग्रेज़ी सरकार के पिछले उपकारों की याद दिलाते हुए कहा—"अंग्रेज़ी सरकार की सहायता से ही मरहटों से मेवाड़ की रक्षा हुई है, इसलिये हमारा कर्तव्य है कि उसके साथ मित्रता का अपना नाता बनाये रखें। दूसरी बात यह है कि शाहपुरे के फूलिया ज़िले पर जो अंग्रेज़ी पुलिस बैठी है वह लॉर्ड विलियम बेंटिंक की दोस्ती के बिना नहीं उठाई जा सकती, परन्तु उसे उठवाना ज़रूरी है, क्योंकि वह ठिकाना हमारे फ़र्मांबरदार राजाधिराज[1] अमरसिंह का है, जिसका देहान्त मेवाड़ की नौकरी करते समय उदयपुर में हुआ। इसके सिवा मुझे अपने पूज्य पिता स्वर्गीय महाराणा भीमसिंह का गया-श्राद्ध करने के लिये अपने दलबल-सहित अंग्रेज़ी राज्य में होकर जाना है। इस लम्बी यात्रा में भी अंग्रेज़ी सरकार की मदद की ज़रूरत पड़ेगी। इन्हीं कारणों से मुझे अजमेर जाकर गवर्नर जनरल से मुलाक़ात करना उचित जान पड़ता है"। महाराणा के इस युक्तिपूर्ण भाषण का दरबारियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे सुनकर जिन-जिन सरदारों ने अजमेर न जाने की सलाह दी थी उनमें से किसी के मुंह से कोई शब्द न निकला[2]।

वि० सं० १८८८ माघ वदि ५ (ई० स० १८३२ ता० २२ जनवरी) को उदयपुर से ससैन्य कूच कर माघ सुदि २ को महाराणा अजमेर पहुंचा। मार्ग में अजमेर तथा मेवाड़ की सरहद पर एक पोलिटिकल अफ़सर और अजमेर से दो कोस दूर मेजर लॉकेट तथा सात अंग्रेज़ी अफ़सरों ने उसका स्वागत किया। दूसरे दिन यह खबर मिलने पर, कि बूंदी का रावराजा रामसिंह अजमेर में ससैन्य आनेवाला है और वह मेवाड़ की सेना के बीच में होकर गुज़रेगा, महाराणा ने अपने सरदारों को बुलाकर कहा कि रामसिंह मेरे दादा को

(१) पहले शाहपुरावालों का ख़िताब 'राजा' था। महाराणा भीमसिंह के समय में लुटेरों ने उदयपुर में डाका डाला और वे बहुतसा माल लूटकर ले निकले, उस समय महाराणा की आज्ञा से राजा अमरसिंह (शाहपुरे के) ने उनका पीछा किया। उनसे लड़कर उसने कइयों को मार डाला और बाक़ी को गिरफ्तार कर माल-सहित वह उदयपुर ले आया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर उक्त महाराणा ने उसे 'राजाधिराज' का ख़िताब दिया।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६। ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३६-३७।

मारनेवाले का पोता है; वह हमारी फ़ौज में होकर निकले, इसमें हमारा अपमान है। इसपर कई सरदारों ने लड़ने की सलाह दी, परन्तु अन्त में सर्वसम्मति से यह स्थिर हुआ कि पहले गवर्नर जनरल को इसकी सूचना दे दी जाय। सूचना मिलने पर उसने बूंदी की सेना के आने का रास्ता बदलवा दिया और महाराणा से भी बूंदी से मेल कर लेने को कहा, जिसे उसने स्वीकार न किया।

माघ सुदि ४ (ता० ५ फ़रवरी) को महाराणा गवर्नर जनरल से मिलने गया, जहां उसका बड़ा सम्मान किया गया[1]। माघ सुदि ७ को सवेरे साढ़े दस बजे गवर्नर जनरल महाराणा से वापसी मुलाक़ात करने आया। उस समय महाराणा ने उससे कहा कि "शाहपुरा के फूलिया ज़िले से ज़ब्ती उठवा ली जाय और मेरे गया-तीर्थ जाने का यथोचित प्रबन्ध करा दिया जाय"। गवर्नर जनरल ने महाराणा की दोनों बातें सहर्ष स्वीकार कर फूलिया पर से ज़ब्ती उठाने की तुरन्त आज्ञा दे दी और उसकी गया-यात्रा के प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लेकर उसका इतमीनान कर दिया[2]। माघ सुदि १५ को महाराणा अजमेर से रवाना होकर शाहपुरा तथा सनवाड़ होता हुआ फाल्गुन वदि १२ को उदयपुर पहुँच गया[3]।

महाराणा की गया-यात्रा

वि० सं० १८९० प्रथम भाद्रपद सुदि ३ (ई० स० १८३३ ता० १८ अगस्त) को महाराणा ने अपने पिता का गया-श्राद्ध करने के लिए १०००० सैनिक साथ लेकर उदयपुर से प्रस्थान किया और वृन्दावन, मथुरा, प्रयाग होता हुआ वह कार्तिक वदि ७ को अयोध्या पहुँचा, जहां उसका बड़ा सम्मान हुआ। इस इलाक़े में लखनऊ के नवाब नासिरुद्दीन हैदर की ओर से उसकी बड़ी ख़ातिर की गई। अयोध्या से कूच कर वह बनारस होता हुआ गया पहुंचा। वहां अपने पिता का विधिपूर्वक श्राद्ध कर उसने तीर्थ-गुरु को १०००० रुपये तथा सोने-चांदी का बहुतसा सामान दिया। गया से लौटते समय रीवां आकर उसने महाराज जयसिंहदेव के छोटे कुंवर लक्ष्मणसिंह की पुत्री से विवाह किया। वहां से चलकर वह भैंसरोड़, बेगूं आदि स्थानों

(१) टॉड; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ३६-३७। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(३) वही।

में ठहरता हुआ वि० सं० १८९१ ज्येष्ठ सुदि १२ (ई० स० १८३४ ता० १८ जून) को उदयपुर लौट आया। इस यात्रा में अंग्रेज़ी सरकार की ओर से भी उसकी अच्छी खातिरदारी की गई[1]।

ई० स० १८३६ (वि० सं० १८९३) में मेवाड़ एजेन्सी नीमच में स्थापित की गई और कर्नल स्पीयर्स पोलिटिकल एजेण्ट नियत हुआ। एजेण्ट गवर्नर जनरल

चढ़े हुए सरकारी ख़िराज का फ़ैसला

ने उसको महाराणा से नियत समय पर अंग्रेज़ी सरकार का ख़िराज चुकाने, चढ़े हुए ख़िराज में से प्रतिवर्ष १००००० रुपये देने तथा मेवाड़ के ठगों की गिरफ़्तारी के सम्बन्ध में बात-चीत करने और नीमड़ी ठिकाने की अव्यवस्थित दशा की ओर ध्यान दिलाने की हिदायत की। उस समय महाराणा के ज़िम्मे ख़िराज के कोई ६००००० रुपये बाक़ी थे, इस वास्ते सालाना ख़िराज के ३००००० रुपयों के सिवा चढ़े हुए ख़िराज में से १००००० रुपये प्रतिवर्ष देना स्थिर हुआ[2]।

महाराणा की आबू-यात्रा

वि० सं० १८९३ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८३७ ता० २३ फ़रवरी) को महाराणा ने आबू की यात्रा के लिए उदयपुर से प्रस्थान किया और फाल्गुन सुदि ११ (ता० १८ मार्च) को गोगूंदे होता हुआ उदयपुर लौट आया[3]।

नेपाल के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का उदयपुर आना

इस महाराणा के राज्य के अंतिम समय में नेपाल के महाराजा राजेन्द्र-विक्रमशाह ने अपने पूर्वजों की प्राचीन राजधानी के रीति-रिवाज आदि देखने के लिए अपने यहां से कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों और स्त्रियों को उदयपुर भेजा। तब से मेवाड़ के साथ नेपाल का सम्बन्ध फिर जारी हुआ[4]।

महाराणा के बनवाये हुए भवन, देवालय आदि

वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३४) में महाराणा जवानसिंह ने पीछोला तालाब के तट पर जलनिवास नामक महल बनवाया और वि० सं० १८९३ (ई० स० १८३६) में महाकालिका के मन्दिर की प्रतिष्ठा की[5]।

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ४०।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(४) वही।

(५) वही।

वि० सं० १८९५ भाद्रपद सुदि १० (ई० स० १८३८ ता० ३० अगस्त) को सिर की पीड़ा से महाराणा की मृत्यु हुई[1] और उसके साथ दो राणियां[2] तथा ६ पासवानें सती हुईं[3]।

महाराणा की मृत्यु

महाराणा जवानसिंह मद्य और शिकार का शौकीन, पितृभक्त, लोकप्रिय, अपव्ययी, विलासी और कवि[4] था। संकोचशील होने के कारण वह अहल-कारों पर पूरा पूरा दबाव नहीं डाल सकता था, इसलिए वह भी शासन-व्यवस्था का सुधार न कर सका। अपने पास रहनेवालों का उसपर इतना अधिक प्रभाव था कि उनके कहने में आकर कभी कभी वह लोगों के साथ अनुचित व्यवहार कर बैठता था। उसका क़द मझोला, रंग गेहुंआ, शरीर पुष्ट, आंखें बड़ी और पेशानी चौड़ी थी। वह हँसमुख, मृदुभाषी और स्वरूपवान् था[5]।

महाराणा का व्यक्तित्व

महाराणा सरदारसिंह

महाराणा सरदारसिंह का जन्म वि० सं० १८५५ भाद्रपद वदि ३ (ई० स० १७९८ ता० २९ अगस्त) को हुआ था[6]। महाराणा जवानसिंह के पुत्र न होने

---

(१) महाराणा जवानसिंह की मृत्यु के विषय में कहा जाता है कि उसे बागोर के सरदारसिंह ने विष दिया था (मुंशी देवीप्रसाद; राज-रसनामृत; पृ० १९), परन्तु यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि सरदारसिंह तो जवानसिंह का बड़ा मित्र था। एक बार इन दोनों ने काशी में प्रतिज्ञा की थी कि जो पहले मरे उसका गया-श्राद्ध दूसरा व्यक्ति करे। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार सरदारसिंह ने महाराणा होने पर जवानसिंह का गया-श्राद्ध किया। यदि उसने जवानसिंह को विष दिया होता तो वह ऐसा कभी न करता। दूसरी बात यह है कि जवानसिंह की मृत्यु के बाद बहुतसे लोग सरदारसिंह के विरोधी हो गये थे, इसलिए यदि उसने स्वर्गीय महाराणा को ज़हर दिया होता तो वह किसी दशा में भी महाराणा न होने पाता।

(२) इस महाराणा के सात राणियां थीं, परन्तु किसी से भी पुत्र न हुआ।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० १९-२०। इस महाराणा की बनाई हुई फुटकर कविताएं तथा राग-रागनियों की एक पुस्तक उदयपुर में मेहता जोधसिंह के पुत्र नवलसिंह के पुस्तकालय में विद्यमान है।

(५) वीरविनोद; भा० २, प्रकरण १६।

(६) वही; भाग २, प्रकरण १७ (हस्तलिखित)।

के कारण उसका देहान्त होजाने पर गद्दीनशीनी के सम्बन्ध में कई दिनों तक सरदारों के बीच वादविवाद चलता रहा, क्योंकि कुछ सरदार तो बागोर के महाराज शिवदानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह को और कुछ उसके भतीजे शार्दूलसिंह[1] को गद्दी दिलाना चाहते थे। अंत में वि० सं० १८९५ भाद्रपद सुदि १५ (ई० स० १८३८ ता० ४ सितम्बर) को रावत पद्मसिंह आदि चूंडावतों की सलाह से सरदारसिंह ही मेवाड़ की गद्दी पर बिठाया गया[2]।

मेहता रामसिंह का प्रधान बनाया जाना

गद्दीनशीनी के कुछ दिन पीछे महाराणा ने मेहता शेरसिंह को, जिसने शार्दूलसिंह को गद्दी दिलाने की कोशिश की थी, क़ैद कर मेहता रामसिंह को प्रधान बनाया। शेरसिंह के सम्बन्धियों ने पोलिटिकल एजेंट से उसपर सख़्ती होने की शिकायत की। इसपर एजेंट ने महाराणा से उसकी सिफ़ारिश की, किन्तु उसके विरोधियों ने महाराणा को फिर बहकाया कि अंग्रेज़ी हिमायत से वह आपको डराना चाहता है। दण्ड में दस लाख रुपये देने का वादा कर शेरसिंह क़ैद से तो छुटकारा पा गया, पर अपने शत्रुओं से, जो उसे जड़-मूल से उखाड़ना चाहते थे, पीछा न छुड़ा सका। उसपर महाराणा का क्रोध भड़काकर वे उसे मरवा डालने की बन्दिशें बांधने लगे। अंत में अपने बचाव का जब उसे कोई उपाय न सूझ पड़ा, तब वह सकुटुम्ब मारवाड़ की ओर भाग गया[3]। उसका भाई मोतीराम भी, जो पहले जहाज़पुर ज़िले का हाक़िम था और प्रधान रहते समय शेरसिंह का सहायक था, क़ैद किया गया। उसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि कुछ दिनों बाद वह कर्णविलास महल के कई मंज़िल ऊंचे झरोखे से गिरा दिया गया। तदुपरान्त पुरोहित श्यामनाथ, कायस्थ किशननाथ, मेहता गणेशदास आदि प्रसिद्ध पुरुषों से भी किसी-न-किसी बहाने दण्ड लिया गया[4]।

---

(१) सरदारसिंह के छोटे भाई शेरसिंह का प्रथम पुत्र।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ४१। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १७ (ह०)।

(३) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १७।

(४) वही।

महाराणा की गद्दीनशीनी के समय गोगून्दे का सरदार झाला लालसिंह उसका विरोधी तथा शार्दूलसिंह का पक्षपाती था। उसी अदावत के कारण महाराणा उससे द्वेष रखता था और किसी-न-किसी बहाने उसे दंड देना चाहता था। इतने ही में यह पता चला कि उस(लालसिंह)की ओर से एक ब्राह्मण महाराणा पर जादू करने के उद्देश्य से भीमपद्मेश्वर महादेव के मन्दिर के पास किसी मंत्र का विधान कर रहा है। इसपर वह पकड़ा गया और लालसिंह को मारने के लिए महाराणा ने शाहपुरे के राजाधिराज माधवसिंह को तोपखाने और सेना सहित उसकी हवेली पर जाने की आज्ञा दी। इसपर बेगूं के रावत किशोर-सिंह ने माधवसिंह से कहलाया—'पहले हमसे लड़कर लालसिंह पर जाना'। सलूंबर के रावत पद्मसिंह, कोठारिये के रावत जोधसिंह और आमेट के रावत सालिमसिंह ने भी महाराणा से अर्ज़ की कि जब तक तहक़ीक़ात से लालसिंह का क़सूर साबित न हो जाय तब तक उसपर सेना न भेजी जाय। बखेड़ा बढ़ता देखकर महाराणा ने उनका कथन तो स्वीकार कर लिया, परन्तु गोगूंदे पर खालसा भेज दिया[1]।

झाला लालसिंह पर महाराणा की नाराज़गी

लालसिंह, अपने पिता शत्रुसाल को अधिकार च्युत कर, गोगून्दे का स्वामी बन बैठा था। अब अनुकूल समय पाकर शत्रुसाल उदयपुर आया और रावत पद्मसिंह के द्वारा इस आशय की अर्ज़ी महाराणा की सेवा में पेश की कि लालसिंह का हक़ खारिज कर मेरा पोता मानसिंह मेरा उत्तराधिकारी माना जाय, परन्तु प्रधान रामसिंह-द्वारा लालसिंह की सिफ़ारिश होने से महाराणा ने उस अर्ज़ी पर कुछ ध्यान न दिया और लालसिंह का अपराध क्षमा कर दिया[2]।

ई० स० १८२७ अप्रेल (वि० सं० १८८४ वैशाख) में कप्तान कॉब ने महाराणा भीमसिंह और सरदारों के बीच एक क़ौलनामा तैयार किया था, परन्तु उसपर किसी पक्ष के हस्ताक्षर न हुए, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब सरदारों का बखेड़ा मिटाने के लिए महाराणा सरदारसिंह ने चाहा कि वही क़ौलनामा फिर से

सरदारों के साथ का क़ौलनामा

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १७।
(२) वही।

पोलिटिकल एजेंट की गवाही के साथ स्वीकृत हो जाय। वह क़ौलनामा नीचे दिया जाता है—

१—छटूंद (खिराज) वास्तविक आय के छठें हिस्से की दर से लगाई और बराबर छः माही क़िस्तों से अदा की जायगी; उसके सिवा न तो और कुछ मांगा जायगा और न कोई अनियंत्रित दंड लिया जायगा।

२— अपनी बारी आने पर हरएक सरदार को, सनद के अनुसार जितनी जमीयत रखनी चाहिये उसकी आधी के साथ, प्रतिवर्ष तीन महीने तक महाराणा की सेवा करनी पड़ेगी। सेवा की अवधि पूरी हो जाने पर महाराणा से उसे अपनी जागीर को लौटने की आज्ञा मिल जायगी।

३—मेवाड़ में सफ़र करते समय विदेशी व्यापारी आदि किसी गांव में ठहरेंगे तो उसकी सूचना उसके स्वामी या अधिकारियों को देंगे, जो उनके माल और असबाब के ज़िम्मेदार समझे जायँगे और जिनकी देखभाल में वे रहेंगे। जो (व्यापारी) सूचना न देकर गांव से दूर ठहरेंगे उनकी हिफ़ाजत के लिए वे उत्तरदायी न होंगे।

४—खालसे की रीति के अनुसार सरदार आदि अपनी प्रजा से पैदावार की आधी आय लिया करें। यदि इसमें कोई उज्र हो तो दस्तूर के अनुसार रैयत तिहाई आय और 'बराड'[1] दिया करे।

५—हम अपने कामदारों, पटेलों आदि का हिसाब न्यायपूर्वक किया करेंगे।

६—उचित कारण के विना कोई गांव क़ुर्क़ न किया जायगा।

७—यदि कोई सरदार अपराध करेगा तो उसे अपराध के अनुसार दंड दिया जायगा।

८—वि० सं० १७२२ से पहले दी हुई सारी भोम[2] जायज़ समझी जायगी।

---

(१) महसूल के अर्थ में बराड़ एक अनिश्चित शब्द है। भिन्न-भिन्न मदों के साथ बराड़ लगाने से उस-उस कर का बोध होता है; जैसे ग़नीम का बराड़ (युद्ध-विषयक कर), हल बराड़ (हल का महसूल) और न्योता-बराड़ (विवाह का कर) आदि।

(२) भोम से तात्पर्य वंशपरम्परागत भूमि है। इसपर कर नहीं लिया जाता। बड़ी-बड़ी जागीरों के रहते हुए भी सरदार अपनी भोम क़ायम रखने के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं।

९—धौंस[1], रोज़ीना[2], दस्तक[3] इत्यादि किसी सरदार पर ज़िले की कचहरियों से जारी न किये जायँगे, पर आवश्यकता पड़ने पर वे प्रधान के द्वारा जारी हो सकेंगे।

१०—शरणा[4] नियमानुसार पाला जायगा, परंतु क़ातिलों के लिए नहीं[5]।

महाराणा ने देखा कि इन दस धाराओं से अपना उद्देश्य पूर्णतया सिद्ध नहीं होता, अतएव उसने अपने लाभ के लिए इस क़ौलनामे में निम्नलिखित पांच धाराएँ और बढ़ाने के वास्ते ज़ोर दिया—

१—पहले (ई० स० १८१८) के क़ौलनामे की नवीं धारा में लिखा है कि कोई सरदार अपनी रैयत पर ज़ोर-ज़ुल्म न करेगा और नये दंड, बराड आदि का, जो उपद्रव के समय में लगाये गये थे, लिया जाना बंद कर दिया जायगा। सरदारों ने क़ौलनामे का पालन नहीं किया और उनके अत्याचार के कारण बहुतसी रैयत मेवाड़ छोड़कर चली गई। इसलिए यह स्थिर हुआ कि भविष्य में वे ऐसी कार्रवाइयां करें, जिससे रैयत फिर आबाद हो, उनके पट्टों की आय बढ़े और देश की उन्नति हो।

२—प्रत्येक सरदार के अपनी जमीयत के साथ प्रतिवर्ष तीन महीने तक दरबार की सेवा में उपस्थित रहने की जो रीति चली आ रही है वह जारी रक्खी जायगी और सेवा की उस अवधि के बाद कोई सरदार उदयपुर में रोका न जायगा, क्योंकि ऐसा करने से सरदारों को अनावश्यक व्यय तथा कष्ट उठाना

---

(१) किसी सरदार के, राज्य की रक़म समय पर न चुकाने या राजाज्ञा की अवहेलना करने पर जो सवार आदि राज्य की ओर से आज्ञा की तामील कराने या चढ़ी हुई रक़म वसूल करने के लिए भेजे जाते हैं उन्हें 'धौंस' कहते हैं। उनका ख़र्च और तनख़्वाह सरदार को देनी पड़ती है।

(२) रोज़ीना भी एक प्रकार की धौंस ही है। इसमें राजाज्ञा का पालन कराने के लिए चपरासी या सिपाही भेजे जाते हैं।

(३) दस्तक भी एक प्रकार की धौंस है।

(४) कुछ सरदारों (सलूंबर और कोठरिया) को यह अधिकार प्राप्त था कि कोई अपराधी उनके यहां शरण लेता तो वे उसकी रक्षा करते और उसे राज्य को नहीं सौंपते थे। इसे 'शरणा' कहते हैं।

(५) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४४-४५ (चतुर्थ संस्करण)।

पड़ता है। यह दरबार की मर्ज़ी पर है कि वे किसी सरदार की हाज़िरी माफ़ कर दें, पर जब तक इस प्रकार माफ़ किये हुए सरदार के हाज़िर रहने की अवधि पूरी न हो जायगी तब तक वे उसके स्थान पर और किसी सरदार को न रक्खेंगे। सरदारों को अपनी पूरी जमीयतें रखनी पड़ेगी। यदि वे नियत संख्या से कम रखेंगे, तो महाराणा उनसे अप्रसन्न होंगे।

३—विदेशी शत्रुओं से मेवाड़ की रक्षा के लिए दरबार को खालसा ज़मीन की आय में से रुपये पीछे छः आने अंग्रेज़ी सरकार को खिराज के देने पड़ते हैं, जिसके लिए सरदारों से कुछ नहीं लिया जाता। विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा के लिये ही सरकारी खिराज दिया जाता है, क्योंकि सरदारों की फ़ौज इस काम के लिए काफ़ी नहीं है। अंग्रेज़ी सरकार की इस सहायता से सरदारों का बड़ा फ़ायदा है। पहले दखनियों (मरहठों) को, जिनसे देश को बड़ा नुकसान पहुंचता था, चौथ दी जाती थी; अब यह बुराई दूर हो गई है। सरदार जितनी जमीयत देनी चाहिये उसकी आधी देते हैं, जो नौकरी के लिए सर्वथा अयोग्य है। इसलिए सरदारों के गावों पर दरबार को रोज़ीना और दस्तक जारी करने पड़ते हैं, जिससे उन्हें बड़ी तकलीफ़ और खर्च उठाना पड़ता है। जिस तरह दरबार अपनी खालसा ज़मीन की आय में से अंग्रेज़ी सरकार को खिराज देते हैं वैसे ही सरदारों को चाहिये कि वे अपने ठिकानों की आमदनी में से दरबार को कर दिया करें; पर यह जानकर कि—उन्हें अपने रिश्तेदारों तथा नौकरों के निर्वाह के लिए भारी खर्च उठाना पड़ता है, जिससे उनके लिए ऐसी मांग पूरी करना कठिन है, महाराणा ने यह उचित समझा है कि खालसे की भूमि की आय में से खिराज दिया जाय और इसके लिए सरदारों से कुछ न मांगा जाय। महाराणा ने अब यह तजवीज़ की है कि रेख या स्थिर की हुई आमद के मुताबिक़ सरदारों की जमीयत से जो सेवा ली जाती है वह आधी कर दी जाय; बाक़ी की आधी के बदले उनसे फ़ी रुपये (रेख) दो आने साढ़े सात पाई की दर से छटूंद ली जाय और राज्य की सेवा के लिए इस रक़म से सेना भरती की जाय। सरदारों को यह न समझना चाहिये कि यह रक़म उनसे अंग्रेज़ी सरकार का ख़िराज अदा करने को ली जायगी, क्योंकि इसका कोई हिस्सा फ़ौज-खर्च के सिवा और किसी काम में न लगाया जायगा। पूरी जमीयत के साथ बारह

महीने सेवा करने में सरदारों को बड़ा ख़र्च और तकलीफ़ उठानी पड़ती थी, अब ऐसी सेवा से छुटकारा मिल जाने पर उनके लिए छटूंद देना कठिन न होगा। आवश्यकता पड़ने पर यदि दरबार पूरी फ़ौज तलब करेंगे और मेवाड़ की सीमा के बाहर उसे नौकरी पर भेजेंगे, तो जो सरदार सेना देंगे उनकी छटूंद की रक़म माफ़ कर दी जायगी।

४—महाराणा इक़रार करते हैं कि बिना कारण किसी सरदार के गांव ज़ब्त न करेंगे और उन्हें दूसरों को न देंगे।

५—छटूंद देने में कई सरदार जान-बूझकर देर करते हैं, जिससे दरबार को लाचार होकर राज्य की रक़म वसूल करने के लिए उनके ठिकानों पर सवार तथा पैदल के दस्तक भेजने पड़ते हैं। इससे सरदारों को सैकड़ों रुपयों की हानि उठानी पड़ती है और दरबार को भी कोई लाभ नहीं होता, इसलिए महाराणा ने निश्चय किया है कि सब सरदारों के वकील बुलाये जायँ और प्रधान के साथ मिलकर वे पांच साल के लिए दो क़िस्तों से छटूंद दिये जाने का बन्दोबस्त करें; ऐसा करने से रोज़ीना या दस्तक भेजने की आवश्यकता न होगी। यदि कोई सरदार नियत समय से दस दिन पीछे तक छटूंद न दे सकेगा तो चढ़ी हुई छटूंद के अनुसार उसकी भूमि तथा गांव ज़ब्त कर लिये जायँगे और वे उसे लौटाये न जायँगे।

छटूंद की पहली क़िस्त मार्गशीर्ष सुदि १५ और दूसरी ज्येष्ठ सुदि १५ को अदा की जायगी।

ई० स० १८४० ता० १ फ़रवरी (वि० सं० १८९६ माघ वदि १३) को इस पर महाराणा तथा नीचे लिखे हुए सरदारों ने हस्ताक्षर किये और गवाह की हैसियत से मेजर रॉबिन्सन के भी दस्तख़त हुए—

१—बेदला के राव बख़्तसिंह।

२—सलूम्बर के रावत पद्मसिंह।

३—देवगढ़ के रावत नाहरसिंह।

४—रावत सालिमसिंह (आमेट का)।

५—महाराज हमीरसिंह (भींडर का)।

६—रावत अमरसिंह (भैंसरोड़गढ़ का)।

७—रावत ईसरीसिंह (कुरावड़ का)।

८—रावत दूलहसिंह (आसींद का)[1]।

ई० स० १८३९ (वि० सं० १८९६) में भोमट के भीलों और ग्रासियों ने फिर सिर उठाया। उन्होंने महाराणा के थानों पर चढ़ाई कर १५० सिपाहियों को मार डाला। इस दुर्घटना का समाचार पाकर महाराणा ने पोलिटिकल एजेएट कर्नल रॉबिन्सन से उनके दमन के लिए अंग्रेज़ी सेना की सहायता मांगी, परन्तु महाराणा का भीलों के साथ का व्यवहार तथा उक्त प्रदेश का प्रबन्ध ठीक न देखकर उसे सहायता न दी गई। तब महाराणा ने यह विचार किया कि उदयपुर में भीलों की सेना भरती की जाय और ज़रूरत पड़ने पर वह खेरवाड़े भेजी जाय। जब जब भीलों का उपद्रव हुआ तब तब वह महाराणा की सेना से दबाया न जा सका और अंग्रेज़ी सेना की सहायता लेनी पड़ी; इसलिए कर्नल सदरलैंएड, कर्नल रॉबिन्सन तथा महीकांठा के पोलिटिकल एजेएट कप्तान लैङ्ग ने उदयपुर में एकत्र होकर गवर्नर जनरल को लिखा कि पश्चिम में सिरोही से लगाकर पूर्व में मालवे तक फैले हुए भीलों के विस्तृत प्रदेश में शान्ति स्थिर रखने के लिए छावनी क़ायम किये जाने की आवश्यकता है। इस काम में प्रतिवर्ष अनुमान १२०००० रु० कलदार खर्च होंगे, जिनमें से ५०००० रु० कलदार तो महाराणा दें, लगभग ३०००० रु० कलदार (४०००० रु० उदेपुरी) भोमट की आय के लगाये जावें और शेष गवर्नमेंट दे। महाराणा के हिस्से के ५०००० रु० में से ३५००० रु० कलदार (४५००० रु० उदेपुरी), जो मेवाड़ के मेरवाड़े इलाक़े की आय है, भील कोर में लगाये जायँ और बाक़ी रुपये महाराणा स्वयं दे। यदि मेरवाड़े (मेवाड़ के) की आय बढ़ जाय तो बचत महाराणा की समझी जाय। महाराणा के ५०००० रु० स्वीकार कर लेने पर ई० स० १८४१ जनवरी (वि० सं० १८९७ माघ) में खेरवाड़े में भीलों की सेना संगठित किये जाने का कार्य आरम्भ हुआ[2]।

भोमट में भीलों का उपद्रव

वि० सं० १८९६ माघ वदि १३ (ई० स० १८४० ता० १ फ़रवरी) को महाराणा जवानसिंह का गया श्राद्ध करने के लिए महाराणा ने उदयपुर से

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४५-४७।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़, पृ० ८४-८५। ट्रीटीज़, जि० [illegible], पृ० १४।

महाराणा की गया यात्रा

प्रस्थान किया। इस अवसर पर बहुत से सरदारों ने कोई न कोई बहाना करके महाराणा के साथ चलने से इन्कार कर दिया। सिर्फ़ राव बख़्तसिंह (बेदले का) और रावत जोधसिंह (कोठारिये का) साथ चलने को तैयार हुए। महाराणा पुष्कर, राजगढ़, भरतपुर, मथुरा, प्रयाग, काशी आदि स्थानों में ठहरता हुआ वि० सं० १८६७ ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० १८४० ता० २५ मई) को गया में पहुँचा। वहाँ उसने महाराणा जवानसिंह का विधिपूर्वक श्राद्ध किया। गया से वह आषाढ़ वदि ४ (ता० १६ जून) को रवाना हुआ और आश्विन सुदि ६ (ता० ५ अक्टोबर) को बीकानेर पहुंच कर महाराजा रत्नसिंह की कुँवरी के साथ अपना विवाह किया। बीकानेर से रवाना होकर अजमेर होता हुआ वह मार्गशीर्ष वदि ८ (ता० १६ नवम्बर) को उदयपुर लौट गया[1]।

महाराणा के कोई पुत्र न था; इसलिए उसे अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार को गोद लेने की आवश्यकता हुई। अपने छोटे भाई शेरसिंह से वैमनस्य

महाराणा का सरूपसिंह को गोद लेना

होने के कारण उसे गोद न लेकर वि० सं० १८६८ द्वितीय आश्विन सुदि ६ (ई० स० १८४१ ता० २३ अक्टोबर) को—अंग्रेज़ी सरकार की अनुमति मिल जाने पर—महाराणा ने अपने भाई सरूपसिंह को, जो शेरसिंह से छोटा था, गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया[2]।

वि० सं० १८६६ के ज्येष्ठ में महाराणा बीमार हुआ। कुछ दिनों तक उसकी चिकित्सा की गई, पर जब कुछ लाभ न हुआ तब वह वृन्दावन में अपनी शेष

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

आयु पूरी करने के विचार से ज्येष्ठ वदि १० (ई० स० १८४२ ता० ३ जून) को उदयपुर से प्रस्थान कर राजनगर होता हुआ आषाढ़ वदि १ को मोरचणे पहुंचा। वहां उसकी बीमारी बहुत बढ़गई, जिससे घबराकर दूलहसिंह आदि सरदार उसे उदयपुर वापस ले गये। उसकी बीमारी बराबर बढ़ती ही गई। अन्त में वि० सं० १८६६ आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १८४२ ता० १४ जुलाई) को वह इस संसार से चल

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १७।

(२) वही।

बसा। दूसरे दिन उसकी दाहक्रिया की गई और लच्छूबाई नाम की खवासिन उसके साथ सती हुई[1]।

महाराणा की सन्तति

महाराणा की चार राणियों से तीन कुंवरियां—मेहताबकुंवर[2], फूलकुंवर[3] और सौभागकुंवर[4]—हुई।

यह महाराणा भी भीमसिंह तथा जवानसिंह की तरह राज्यप्रबन्ध करने में असमर्थ और अदूरदर्शी था। मेवाड़ को इससे कोई लाभ न पहुंचा और उसकी अव्यवस्था इसके समय में भी ज्यों की त्यों बनी रही।

महाराणा का व्यक्तित्व

यह शुद्ध-हृदय, धर्मशील और बात का सच्चा था, पर इसका स्वभाव कुछ उग्र था, जिससे यह लोकप्रिय न हो सका। इसने गोगून्दा के सरदार लालसिंह का वध किये जाने की अनुचित आज्ञा देकर सब सरदारों को अप्रसन्न कर दिया। यदि यह उदार तथा समयोचित नीति का अवलम्बन कर अपने सरदारों से मेलजोल रखता तो सम्भव था कि इससे मेवाड़-राज्य का कुछ उपकार एवं हित-साधन होता।

इसका क़द मझोला और इसके मुंह पर चेचक के दाग़ थे। जवानसिंह की तरह यह भी स्वरूपवान् था।

महाराणा सरूपसिंह

महाराणा सरूपसिंह का जन्म वि० सं० १८७१ पौष वदि १३ (ई० स० १८१५ ता० ८ जनवरी) को हुआ[5] और वि० सं० १८९९ आषाढ़ सुदि ८ (ई० स० १८४२ ता० १५ जुलाई) को सायंकाल में उसकी गद्दीनशीनी हुई[6]।

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १७।

(२) इसका विवाह वि० सं० १८९६ पौष सुदि १२ को बीकानेर के कुंवर सरदारसिंह के साथ हुआ।

(३) इसका विवाह वि० सं० १९०७ फाल्गुन सुदि ६ को महाराणा सरूपसिंह के समय में कोटे के महाराव रामसिंह के साथ हुआ।

(४) इसकी शादी वि० सं० १९०८ वैशाख वदि १२ को रीवां के महाराजकुमार रघुराजसिंह से हुई।

(५) मूल जन्मपत्री से।

(६) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८ (हस्तलिखित)।

महाराणा भीमसिंह के समय से ही शासन की अव्यवस्था से लाभ उठाकर मेवाड़ के सरदार निरंकुश और स्वेच्छाचारी हो गये थे। महाराणा सरदारों की दशा से भलीभाँति परिचित था, अतएव उसने गद्दी पर बैठते ही उन्हें दबाने के लिए भेद-नीति का अवलंबन किया। उस समय सरदारों में सब से अधिक शक्तिशाली आसींद का रावत दूलहसिंह था। उसकी और उसके सहायक मेहता रामसिंह प्रधान की शक्ति क्षीण करने के लिए महाराणा ने सलूम्बर के कुंवर केसरीसिंह को अपना कृपापात्र बनाया। केसरीसिंह ने गोगूंदे के कुंवर लालसिंह को मिलाकर दूलहसिंह और रामसिंह को अलग करने का उद्योग किया, परन्तु उसमें वह सफल न हुआ। उसकी इस कार्रवाई से दूलहसिंह उसका दुश्मन होकर महाराणा और उसके बीच नाइत्तिफ़ाक़ी पैदा कराने की कोशिश करने लगा। उसने सलूम्बर के रावत पद्मसिंह को, जिसका सब अधिकार उसके पुत्र केसरीसिंह ने छीन लिया था, महाराणा की सेवा में इस आशय की अर्ज़ी देने के लिए उकसाया कि मेरा अधिकार मुझे पीछा मिल जाना चाहिए। उसकी अर्ज़ी पेश होने पर दूलहसिंह की सलाह के अनुसार महाराणा ने मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट को इस मामले का फ़ैसला करने के लिए लिखा। झगड़े का सारा हाल जानकर पोलिटिकल एजेंट ने इस आशय का एक राज़ीनामा तैयार किया कि ठिकाने का स्वामी तो पद्मसिंह रहे और अपने पिता की आज्ञा के अनुसार केसरीसिंह ठिकाने का काम करता रहे। फिर उसपर दोनों के दस्तखत कराये गये। महाराणा के इस बर्ताव से अप्रसन्न होकर केसरीसिंह अपने ठिकाने को वापस चला गया[1]।

महाराणा की भेद-नीति

महाराणा से दूलहसिंह पहले ही यह इक़रार कर चुका था कि यदि आप रावत पद्मसिंह को उसके ठिकाने का अधिकार वापस दिलाकर राज़ी कर लें, तो मैं और वह, दोनों मिलकर सरदारों की छटूंद एवं चाकरी के सम्बन्ध में बहुत दिनों से जो झगड़ा चला आ रहा है उसका आपकी इच्छा के अनुसार निपटारा करा देंगे; क्योंकि जिस बात को हम दोनों स्वीकार कर लेंगे उसे और सब सरदार भी मान लेंगे। महाराणा तो यही चाहता था, इसलिए

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

उसने पद्मसिंह को बुला लिया। रावत पद्मसिंह को सलूंबर का अधिकार वापस मिलजाने पर दूलहसिंह तो महाराणा की आज्ञा के अनुसार अपना इक़रार पूरा करने के उद्योग में लग गया, परन्तु मेहता रामसिंह के इशारे से गोगूंदे के झाला लालसिंह ने, जो केसरीसिंह का मित्र था, दूलहसिंह के विरुद्ध महाराणा तथा सरदारों को भड़काना आरंभ किया। रामसिंह ने भी महाराणा से निवेदन किया कि दूलहसिंह सरदारों से मिलकर राज्य-प्रबन्ध में रुकावट डालता है। इसपर क्रुद्ध होकर महाराणा ने, महाराणा जवानसिंह के समय में दूलहसिंह को छोटे छोटे गावों के बदले जो बड़े गांव दिये गये थे, उन्हें ज़ब्त कर उनकी एवज़ में उसके पुराने गांव वापस दिलाये जाने की आज्ञा दी और दरबार में उसका आना-जाना बंद कर दिया। अंत में महाराणा की आज्ञा के अनुसार वह अपने ठिकाने को चला गया[1]।

शेरसिंह का प्रधान बनाया जाना

केसरीसिंह और दूलहसिंह के उदयपुर से चले जाने पर मेहता रामसिंह का प्रभाव दिन-दिन बढ़ने लगा। वि० सं० १६०० चैत्र वदि २ (ई० स० १८४४ ता० ६ मार्च) को महाराणा उसके यहां मेहमान हुआ और उसे ताज़ीम तथा 'काकाजी' की उपाधि दी गई। इस समय महाराणा आय-व्यय के हिसाब की जाँचकर मेवाड़ की बिगड़ी हुई दशा को सुधारना चाहता था, परन्तु हिसाब की पेचीदगी बताकर रामसिंह उसे टालता ही रहा। अंत में निराश होकर महाराणा ने मेहता शेरसिंह को, जो महाराणा सरदारसिंह के समय मेवाड़ से भाग गया था (जैसा पहले बतलाया जा चुका है) वापस बुला लिया और प्रतिदिन रात को उसे गुप्तरीति से बुला बुलाकर उससे राज्य के आय-व्यय का सारा हिसाब तैयार करा लिया। उस हिसाब को देखकर महाराणा को यह सन्देह हुआ कि रामसिंह कई लाख रुपये गबन कर गया है[2], इसलिए उसके स्थान में शेरसिंह प्रधान नियुक्त हुआ और वि० सं० १६०१ फाल्गुन वदि १३ (ई० स० १८४५ ता० ६ मार्च) को रामसिंह से १०००००० रुपये का रुक्का लिखवा लिया गया।

दो वर्ष पीछे पोलिटिकल एजेंट कर्नल रॉबिन्सन नीमच से उदयपुर आया उस

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८ (६०)।

(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ४६।

समय महाराणा को खबर मिली कि बागोर के महाराज शेरसिंह का पुत्र शार्दूलसिंह राज्य पाने के लालच से महाराणा को ज़हर दिलाने का उद्योग कर रहा है। इसपर महाराणा ने उसको अपने पास बुलाया और धमकाकर उससे इस सम्बन्ध में पूछताछ की तो वह मारे डर के कांपने लगा। जब उसको तसल्ली देकर उसे अपने साथियों के नाम बताने को कहा गया तब उसने मेहता रामसिंह आदि कई पुरुषों के नाम बताये। फिर वह (शार्दूलसिंह) क़ैद किया गया और क़ैद की हालत में ही मरा[1]। जब रामसिंह को यह सूचना मिली कि शार्दूलसिंह ने मेरा नाम लिया है, तब उसने अपनी प्राणरक्षा के लिए पोलिटिकल एजेंट की शरण ली। वहां से भागकर वह नया शहर (ब्यावर, ज़िला अजमेर) में जा रहा। उसके चले जाने पर उसकी उदयपुर की सारी जायदाद ज़ब्त कर ली गई और उसके बाल-बच्चे भी वहां से निकाल दिये गये। नये शहर में ही उसका देहान्त हुआ।

सरकारी ख़िराज का घटाया जाना

कई वर्षों से पहले के महाराणा यह उद्योग कर रहे थे कि राज्य का ख़िराज कम होना चाहिए। समय-समय पर आमद-खर्च के जो हिसाब पेश किये गये उनमें आमद से खर्च प्राय दो लाख रुपये अधिक बताया गया था और ख़िराज के चढ़े हुए सात लाख रुपयों के अतिरिक्त बाईस लाख रुपयों का कर्ज़ भी दिखाया गया था। अंग्रेज़ी सरकार ने उसपर विश्वास न कर ख़िराज घटाना उचित न समझा। महाराणा सरूपसिंह ने अपने ही निरीक्षण में आमद-खर्च का ठीक-ठीक हिसाब तैयार करवाकर सरकार में पेश कराया और ख़िराज घटाये जाने का आग्रह किया, जिसपर सालाना ख़िराज २००००० रुपये कलदार नियत हुआ[2]।

सरदारों के साथ नया क़ौलनामा

महाराणा ने गद्दी पर बैठते ही सरदारों की छटूंद, चाकरी आदि का मामला तय करना चाहा था और रावत दूलहसिंह ने उसका ज़िम्मा भी लिया था, परन्तु उसपर महाराणा के अप्रसन्न हो जाने के कारण वह विचार स्थगित रहा। अब सरदारों की छटूंद, चाकरी, नज़राना आदि स्थिर करने के लिए महाराणा ने कर्नल रॉबिन्सन से एक नया क़ौलनामा

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८। ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ४६।
(२) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ४७-४८।

बनवाना चाहा, परन्तु मेवाड़ के खानगी मामलों में हस्ताक्षेप करने की सरकारी आज्ञा न होने के कारण वह उस बात को टालता ही रहा। महाराणा के विशेष आग्रह करने पर अंत में उसने वि० सं० १९०१ माघ सुदि २ (ई० स० १८४५ ता० ८ फ़रवरी) को सरदारों की सम्मति से नीचे लिखा हुआ क़ौलनामा तैयार किया—

१—पहले के क़ौलनामे[1] की सब शर्तें बहाल रहेंगी। प्रतिवर्ष दशहरे से दस दिन पहले सब सरदार उपस्थित होंगे। सरदारों की जमीयतों का निरीक्षण करने के पश्चात् दरबार जिस सरदार से चाहें उससे तीन महीने तक नौकरी लेंगे। वे (महाराणा) सरदारों के नाम और नौकरी की मियाद साफ़-साफ़ बतलावेंगे और उन्हें अपने घर जाने की आज्ञा देंगे। नौकरी करने में सरदारों की जमीयतें कोई बहाना न करेंगी। यदि वे नियत समय पर उपस्थित न होंगी या असावधान अथवा संख्या में कम पाई जायँगी, तो जिन सरदारों की वे होंगी उन्हें श्रीदरबार को उनके बदले में नक़द रुपये देने होंगे।

२—पहले क़ौलनामे की शर्तों के अनुसार सरदार बराबर नियत समय पर (छोड़ी हुई) आधी जमीयत के बदले, जो उन्हें रखनी पड़ती थी, रुपये पीछे दो आने साढ़े सात पाई की दर से छूटूंद देंगे।

३—अपने अपने पट्टों में सरदारों को चोरी और डकैती रोकने की भरसक कोशिश करनी होगी। बाहरी राज्यों के चोरों, बाग़ियों या लुटेरों को वे आश्रय न देंगे; परंतु ऐसे सब अपराधियों को, जो उनके इलाक़ों में जाने की कोशिश करें, वे गिरफ्तार करेंगे और उन्हें दरबार (महाराणा) की सम्मति से जो व्यवस्था जयपुर एवं जोधपुर के राज्यों ने स्वीकार की है उसके अनुसार जिस राज्य की वे प्रजा हों उसे—लूटे हुए माल सहित, जो उनके पास मिले—सौंप देंगे।

४—सरदारों की प्रार्थना पर दरबार ने यह स्वीकार किया है कि सरहंदी या दूसरे मामलों के विषय में उनमें जब कभी कोई झगड़ा उठे तब जहां झगड़ा हो वहां पंचायत इकट्ठी होगी, जिसमें सरदारों के तो चार और दरबार का एक व्यक्ति रहेगा। उनका यह कर्तव्य होगा कि वे झगड़े की जांच-पड़ताल कर उसका

---

(१) इस 'क़ौलनामे' से अभिप्राय महाराणा सरदारसिंह के समय के क़ौलनामे से है।

पक्षपात-रहित तथा न्याय-पूर्वक निर्णय करें, और दोनों पक्षवालों को उनका निर्णय मानना होगा।

५—दोनों पक्षवालों की मर्ज़ी और खुशी से यह क़ौलनामा तैयार हुआ है, और दोनों पक्षवाले इसका पालन करेंगे। क़ौलनामे और महाराणा जवानसिंह के समय की रीति के अनुसार सब सरदार प्रसन्नता-पूर्वक छटूंद देते और नौकरी करते रहेंगे। सरदारों से कोई असावधानी होगी या इस क़ौलनामे की शर्तों के विरुद्ध वे कोई आचरण करेंगे तो उनपर श्रीदरबार अप्रसन्न होंगे, जैसा कि प्रथम क़ौलनामे में लिखा है।

इस क़ौलनामे पर दरबार की आज्ञा से मेहता शेरसिंह ने और सरदारों में से रावत नाहरसिंह (देवगढ़ का), रावत पृथ्वीसिंह (आमेट का), महाराज हमीरसिंह (भींडर का) और रावत दूलहसिंह (आसींद का) ने हस्ताक्षर किये[1]।

कुछ काल से मेवाड़ के प्रधान एवं अहलकार स्थायीरूप से अपने पद पर बने रहने की आशा छोड़ चुके थे और नौकरी से अलग किये जाने पर उन्हें प्रायः दंड देना पड़ता था। इससे न्याय-अन्याय का विचार न कर वे जैसे बने वैसे धन-संचय किया करते थे। इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए महाराणा ने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर मेहता शेरसिंह को नियमित रूप से हर तीसरे महीने आय-व्यय का हिसाब पेश करने की आज्ञा दी और २०००० रुपये उदेपुरी उसका वार्षिक वेतन तथा ८००० रुपये उसके दफ़्तर-खर्च के लिए नियत किये। कोठारी छगनलाल को खजाने का प्रबन्ध सौंपा गया, और साहूकारी ढंग से रुपयों का लेन-देन किये जाने के लिए 'रावली (राज्य की) दुकान' खोली जाकर छगनलाल के भाई केसरीसिंह के सुपुर्द की गई।

शासन-सुधार

अब तक राज्य पर कई लाख रुपयों का कर्ज़ था, जिसमें अधिकांश सेठ जोरावरमल बापना का ही था। महाराणा ने उसके कर्ज़ का निपटारा करना चाहा। उसकी यह इच्छा देखकर वि० सं० १९०३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८४६ ता० २८ मार्च) को जोरावरमल ने उसे अपनी हवेली पर मेहमान किया और

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एण्ड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ४७-४८।

जिस प्रकार उसने चाहा वैसे ही उस (जोरावरमल[1]) ने अपने कर्ज़ का फ़ैसला कर लिया। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको कुण्डाल गांव, उसके पुत्र चांदणमल को पालकी और पोतों (गंभीरमल और इंद्रमल) को भूषण सिरोपाव आदि दिये। दूसरे लेनदारों ने भी जोरावरमल का अनुकरण कर महाराणा की इच्छा के अनुसार अपने रुपयों का फ़ैसला कर दिया। इस प्रकार रियासत का भारी कर्ज़ सहज ही बेबाक हो गया और सेठ जोरावरमल तथा मेहता शेरसिंह की बड़ी नेकनामी हुई[2]।

महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के समय में डोडिये राजपूत मेवाड़ में आये, जिसका वृत्तान्त उक्त महाराणा के हाल में लिखा जा चुका है। महाराणा जगत-

लावे पर चढ़ाई

सिंह (दूसरे) ने डोडिया धवल के वंशज इन्द्रभाण के पुत्र सरदारसिंह को लावे का ठिकाना दिया था। उसने लावे में क़िला बनवाया और उसका नाम सरदारगढ़ रक्खा। फिर महाराणा भीमसिंह के राज्य-काल

---

(१)—जोरावरमल बहुत बड़ी सम्पत्ति का मालिक होने के अतिरिक्त बड़ा राजनीतिज्ञ भी था, जिससे उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, टोंक, इन्दौर आदि राज्यों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई और देशी राज्यों के अंग्रेज़ी राज्य के साथ के, एवं उनके पारस्परिक सम्बन्ध में उसकी सलाह और मदद ली जाती थी। उसने तथा उसके भाइयों ने १३००००० (कहीं २२५०००० लिखा मिलता है) रुपये व्यय कर आबू, तारंगा, गिरनार, शत्रुंजय आदि के लिए बड़ा संघ निकाला। उस (संघ) की रक्षा के लिए उपर्युक्त सातों राज्यों तथा अंग्रेज़ी सरकार ने सेनाएं भेजीं, जिनमें ४००० पैदल, १२० सवार और ४ तोपें थीं (पूरणचन्द नाहर; जैन-लेखसंग्रह; खंड ३, पृ० १४८-४६)। इस संघ पर जैसलमेर के महारावल ने उसे 'संघवी सेठ' की उपाधि दी। जब महाराणा जवानसिंह गयायात्रा को गया उस समय उसकी इच्छा के अनुसार जोरावरमल ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतानमल को उसके साथ कर दिया, जिसे यात्रा के ख़र्च का प्रबन्ध सौंपा गया। उदयपुर राज्य में जोरावरमल की प्रतिष्ठा कुछ बातों में प्रधान से भी अधिक रही। वि० सं० १६०६ फाल्गुन वदि ३ को इन्दौर में उसका देहान्त होने पर वहां के महाराजा ने बड़े समारोह के साथ 'छत्री बाग़' में उसकी दाहक्रिया कराई।

सिपाही विद्रोह के समय जोरावरमल के द्वितीय पुत्र चांदणमल ने जगह जगह अंग्रेज़ी सरकार के लिए ख़ज़ाना पहुंचा कर उसकी अच्छी सेवा की, जिससे सरकार उसपर बहुत प्रसन्न हुई। चांदणमल के दो पुत्र जुहारमल और छोगमल हुए। छोगमल का दूसरा पुत्र सिरेमल इस समय इन्दौर राज्य का प्रधान मंत्री है। उसे अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से 'राय-बहादुर' और इन्दौर राज्य की ओर से 'एतमादुद्दौला' का ख़िताब मिला है।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

के प्रारंभ में चूंडावतों और शक्तावतों की आपस की लड़ाइयों के समय शक्तावत लालसिंह के पुत्र संग्रामसिंह ने लावे पर अधिकार कर लिया। महाराणा जवानसिंह के समय में डोडिया जोरावरसिंह अपने पूर्वजों का ठिकाना पीछा लेने का उद्योग करने लगा। उसके पूर्वजों की सेवा का स्मरण कर महाराणा सरूपसिंह ने वह ठिकाना पीछा उसे दिलाना चाहा। उस समय सरदारगढ़ पर रावत संग्रामसिंह शक्तावत के पुत्र जयसिंह के पोते (अभयसिंह के पुत्र) चत्रसिंह का अधिकार था। उसके चाचा सालिमसिंह ने राठोड़ मानसिंह[1] को मार डाला। इस अपराध में महाराणा ने उस(सालिमसिंह)का कुंडई गांव छीन लिया और चत्रसिंह को आज्ञा दी कि तुम उस(सालिमसिंह)को गिरफ़्तार कर लो। चत्रसिंह इस आज्ञा की अवहेलना करता रहा, जिसपर महाराणा ने मेहता शेरसिंह के पुत्र ज़ालिमसिंह की अध्यक्षता में सरदारगढ़ (लावे)पर तोपखाने सहित अपनी सेना भेजी। वहां लड़ाई हुई, परन्तु क़िला मज़बूती के कारण फ़तह न हो सका और राजकीय सेना के ५०-६० राजपूत मारे गये। इसपर महाराणा ने मेहता शेरसिंह प्रधान को नई सेना और तोपखाने के साथ वहां भेजा। वहां पहुंचते ही उसने क़िले पर गोलन्दाज़ी शुरू कर दी। अंत में चत्रसिंह ने प्रधान से अपनी इज्ज़त और जान बचाने की याचना की, जिसके स्वीकार होने पर उसने वि० सं० १६०४ मार्गशीर्ष वदि १० (ई० स० १८४७ ता० २ दिसम्बर) को क़िला शेरसिंह के सुपुर्द कर दिया। चत्रसिंह आदि को लेकर शेरसिंह उदयपुर पहुँचा तब महाराणा ने उसका अच्छा सम्मान किया। चत्रसिंह को गुज़ारे के लिए पहाड़ी ज़िले के कोलारी आदि कुछ गांव दिये गये। डोडिया जोरावरसिंह को सरदारगढ़ का ठिकाना मिल गया, परन्तु फ़ौज खर्च के बदले में ठिकाने पर राज्य का प्रबन्ध रहा और उस के निर्वाह के लिए ठिकाने का कुछ हिस्सा उसको दे दिया गया। तदनन्तर वि० सं० १६१२ (ई० स० १८५५) में महाराणा ने प्रसन्न होकर सारा ठिकाना जोरावरसिंह को दे दिया और दूसरे वर्ष उसे दूसरे दर्ज़े का सरदार बनाया[2]।

इन दिनों जाली या कम चाँदी के बहुत से उदेपुरी और चीतोड़ी रुपये बाहर

(१) यह ऊदावतों के खेड़े का स्वामी था।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

से बनकर मेवाड़ में आने लगे और व्यापारियों का बड़ा नुक़सान होने लगा, जिससे उन्होंने सिक्के की ठीक व्यवस्था करने के लिए महाराणा से प्रार्थना की। उसने टकसाल के दारोग़ा को हिदायत की कि ऐसे रुपये बनानेवालों को गिरफ़्तार कर उचित दण्ड देने की व्यवस्था करनी चाहिये। इसपर दारोग़ा ने निवेदन किया—'मेवाड़ में जाली रुपये बनानेवालों को तो पकड़े जाने पर सज़ा दी जा सकती है, पर बाहर से जो जाली रुपये बनकर आते हैं उनके बनानेवालों को कैसे दण्ड दिया जाय'? महाराणा ने इन जाली रुपयों का चलन रोकना चाहा और उदेपुरी तथा चीतोड़ी रुपयों पर मुसलमान बादशाहों के नाम और फ़ारसी लेख होने के कारण उन्हें दान-पुण्य में देना धर्म-विरुद्ध समझा। बजरंगगढ़ (राघोगढ़, मालवे में) और नैपाल के सिक्कों पर वहां के राजाओं के नाम एवं नागरी अक्षर देखकर उसने अपने यहां भी नागरी अक्षरोंवाला अच्छी चांदी का अपना सिक्का चलाना निश्चय किया। कप्तान टॉड ने भी महाराणा भीमसिंह को अपने नाम का नया सिक्का चलाने की सलाह दी थी, परन्तु उस समय मेवाड़ की आर्थिक स्थिति ऐसी न थी कि नया सिक्का जारी किया जाता। महाराणा सरूपसिंह ने वि० सं० १९०६ भाद्रपद वदि ३ (ई० स० १८४९ ता० ७ अगस्त) को मेहता शेरसिंह के नाम, जो नीमच में था, हुक्म भेजा कि मेरे नाम के नये रुपये बनाने के सम्बन्ध में तुम कर्नल रॉबिन्सन से बातचीत करो[1]। शेरसिंह ने इस सम्बन्ध में उक्त कर्नल से लिखा पढ़ी की[2], जिसके उत्तर में उसने लिखा—"महाराणा को अपने मुल्क के बन्दोबस्त और बेहतरी का पूरा इख़्तियार है और जो तजवीज़ उन्होंने की है वह बहुत दुरुस्त और मुनासिब है। ऐसे रुपये जारी होने से राज्य का फ़ायदा, रैयत की बेहतरी, और दरबार की नामवरी होगी। इसलिए अपनी तजवीज़ के अनुसार अपने नाम के नागरी अक्षरोंवाले अच्छी चांदी के रुपये महाराणा अपनी टकसाल से जारी करें। हमारी सरकार को जब अच्छे रुपये के चलन की ख़बर मिलेगी तब

सरूपसाही सिक्के का जारी होना

---

(१) वि० सं० १९०६ श्रावण सुदि १५ का मेहता शेरसिंह के नाम सवाईसिंह और श्यामनाथ का पत्र, तथा उसके नाम महाराणा की भाद्रपद वदि ३ की आज्ञा।

(२) कर्नल रॉबिन्सन के नाम का मेहता शेरसिंह का भाद्रपद वदि ५ का पत्र

उसे खुशी होगी। जब नये रुपये तैयार हो जायँ तब दो एक रुपये हमारे देखने के लिए भिजवा दिये जायँ[1]"। महाराणा ने सिक्के पर अपना नाम रखना तो ठीक न समझा, किंतु मेवाड़ राज्य का फ़ायदा और बेहतरी अङ्गरेज़ी सरकार की दोस्ती से हुई है, यह सोचकर सिक्के की एक तरफ़ 'चित्रकूट उदयपुर' और दूसरी ओर 'दोस्ति लंधन' (इङ्गलैण्ड का मित्र) लेख रखना तजवीज़ कर अपने खरीते के साथ नमूने के लिये दो सिक्के कर्नल रॉबिन्सन के पास भेजे[2]। उन्हें देखकर उक्त कर्नल ने महाराणा को लिखा—"आपने सिक्के पर 'दोस्ति लंधन' ये शब्द रखवाये, जिससे आपके दिल की मुहब्बत ज़ाहिर हुई। मुझे विश्वास है कि सरकार आपकी तजवीज़ से प्रसन्न होगी[3]"। इस आशय का पत्र मिलने पर महाराणा ने उदयपुर की टकसाल से नया रुपया जारी किया, जो 'सरूपसाही[4]' नाम से अब तक प्रसिद्ध है। इस सिक्के में 'चित्रकूट उदयपुर' शब्दों के नीचे जो चिह्न बने हैं वे चित्तोड़ के क़िले के सूचक हैं, और दूसरी तरफ़ 'दोस्ति लंधन' लेख के चारों ओर जो छोटी छोटी लकीरें बनी हैं वे इंग्लैंड के चारों तरफ़ के समुद्र की लहरों की सूचक हैं।

चावड़ों को आर्ज्यें की जागीर वापस मिलना

आर्ज्या की जागीर पहले पहल महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) के छोटे पुत्र पूर्णमल (पूरा) के पोते मोहकमसिंह को मिली थी। उसके प्रपौत्र प्रतापसिंह (रणसिंह के पुत्र) को मारकर उसका छोटा भाई पद्मसिंह वहां का स्वामी बन गया, पर पानसल के शक्तावतों ने वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में बालेराव की सहायता से आर्ज्या का ठिकाना उससे छीन लिया। इसके अनंतर आर्ज्या की भोम प्रतापसिंह के ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह के वंशजों के अधिकार में रही। महाराणा

---

(१) कर्नल रॉबिन्सन का मेहता शेरसिंह के नाम वि० सं० १९०६ भाद्रपद वदि १० (ई० स० १८४९ ता० १३ अगस्त) का पत्र।

(२) उक्त कर्नल के नाम वि० सं० १९०६ आश्विन वदि १२ गुरुवार का महाराणा का ख़रीता और मेहता शेरसिंह का आश्विन वदि अमावास्या का पत्र।

(३) कर्नल रॉबिन्सन का महाराणा के नाम वि० सं० १९०६ कार्तिक वदि २ (ई० स० १८४९ ता० ४ अक्टोबर) का ख़रीता।

(४) सरूपसाही रुपये के चित्र के लिये देखो—उवेब; करन्सीज़ ऑफ़ दी हिन्दू स्टेट्स ऑफ़ राजपूताना; प्लेट १, चित्र संख्या १२।

भीमसिंह के राज्य-समय आर्ज्या की जागीर शक्तावतों से छीनकर उम्मेदसिंह के पुत्र खुम्माणसिंह को दी गई। खुम्माणसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चन्दनसिंह हुआ। महाराणा भीमसिंह का विवाह वरसोड़ा (गुजरात में) के जगतसिंह चावड़ा की कन्या से हुआ था। इसलिए वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३४) में महाराणा जवानसिंह ने चन्दनसिंह से आर्ज्यें का ठिकाना छीनकर अपने मामा कुवेरसिंह और ज़ालिमसिंह चावड़ा (जगतसिंह चावड़े के पुत्र) को दे दिया। इसपर चन्दनसिंह ने बाग़ी होकर आर्ज्यें से चावड़ों को मार भगाया। तब महाराणा ने वि० सं० १९०६ कार्तिक वदि १४ (ई० स० १८४२ ता० १० नवम्बर) को भीलवाड़े के हाकिम भंडारी गोकुलचंद की अध्यक्षता में आर्ज्यें पर सेना भेजी। लड़ाई होने पर चन्दनसिंह मारा गया और उसके साथी क़ैद कर लिये गये। इसके बाद आर्ज्या पर चावड़ों का फिर अधिकार करा दिया गया[1]।

महाराणा और सरदारों का पारस्परिक विरोध

ई० स० १८४५ (वि० सं० १९०२) में क़ौलनामा हो जाने पर भी महाराणा तथा सरदारों के दिल की सफ़ाई न हुई और उनका आपस का झगड़ा, जो ३६ वर्षों से चला आता था, बराबर बढ़ता ही गया। कोशिश करने पर भी महाराणा सरदारों से क़ौलनामे के अनुसार नौकरी न ले सका। अन्त में ई० स० १८४७ (वि० सं० १९०४) में उसने पोलिटिकल एजेंट से शिकायत की कि सरदार हमारे विरुद्ध हो रहे हैं। जब उसने सरदारों से जवाब तलब किया तब उन्होंने भी महाराणा के कठोर व्यवहार तथा उसकी अनुचित कार्रवाइयों की सूचना देते हुए एजेंट को लिखा—"जितने समय तक नौकरी देने का हम लोग क़ौलनामे में इक़रार कर चुके हैं उससे अधिक समय तक हमसे नौकरी ली जाती है और छोटी-छोटी बातों के बहाने हमपर जुरमाना किया जाता तथा हमारे पट्टों के भीतरी इन्तज़ाम में दख़ल दिया जाता है, जो पहले किसी महाराणा के समय में नहीं हुआ"। तहक़ीक़ात से अंग्रेज़ी सरकार को भी ज्ञात हुआ कि महाराणा ने सरदारों की ज़मीन ही नहीं दबा ली, किन्तु उनके पट्टों में नये गांव भी आबाद कर लिये हैं और लावे के मामले में तो बड़ी सख़्ती की गई है। इसी प्रकार सरदारों के विषय

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

में सरकार को यह मालूम हुआ कि वे महाराणा की आज्ञा का पालन नहीं करते और उनमें बहुतसे बाग़ी हो रहे हैं। मेवाड़ के भीतरी मामलों में दख़ल देने के लिए अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा न होने से पोलिटिकल एजेंट ने महाराणा तथा सरदारों को अपना मामला आपस में तय कर लेने की सलाह दी। इसके बाद महाराणा के बड़े भाई शेरसिंह ने भी उससे बिगाड़ कर लिया। आसींद के सरदार रावत दूलहसिंह पर महाराणा ने शेरसिंह तथा देवगढ़, सलूम्बर आदि ठिकानों के सरदारों को बहकाने का सन्देह कर उसको पोलिटिकल एजेंट के द्वारा मेवाड़ से निकाल दिये जाने की धमकी दिलाई। इन्हीं दिनों सलूंबर के रावत पद्मसिंह का देहान्त हो जाने पर उसके पुत्र केसरीसिंह ने चाहा कि परंपरागत रीति के अनुसार महाराणा स्वयं सलूंबर आकर मातमपुर्सी का दस्तूर अदा करें, परन्तु महाराणा ने स्वयं जाना टालकर अपने चाचा दलसिंह को भेजना चाहा, जिसे केसरीसिंह ने स्वीकार न किया। फिर महाराणा ने, नियमित रूप से छटूंद न देने और चाकरी न करने के कारण, सलूंबर और देवगढ़ के कई गांव ज़ब्त कर लिये, परन्तु वि० सं० १६०८ कार्तिक वदि ८ (ई० स० १८५१ ता० १८ अक्टोबर) को उक्त ठिकानों के सरदारों ने अपने ज़ब्त किये हुए गावों से महाराणा के सैनिकों को निकाल दिया। इसपर महाराणा ने अंग्रेज़ी सरकार से सहायता मांगी और उसे लिखा—"मैंने न तो नये दस्तूर जारी किये हैं और न सरदारों पर ज़ोर-ज़ुल्म कर उनके गांव दबा लिये हैं। सरदारों को उनके ठिकानों से तो मैं निकाल सकता हूं, पर राज्य से बाहर नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे डर है कि ऐसा करने से सारे मेवाड़ में अराजकता फैल जायगी और सरकार मुझे उसका उत्तरदायी समझेगी[1]"।

ई० स० १८५२ (वि० सं० १६०६) में कर्नल लो (एजेंट गवर्नर जनरल) उदयपुर आया। उस समय सलूम्बर तथा देवगढ़ के सरदार वहां विद्यमान थे और दूसरे सब सरदार भी इस आशा से दरबार में हाज़िर हो गये थे कि उनके साथ कुछ रिआयत की जायगी। कर्नल लॉरेन्स की तरह कर्नल लो ने भी मेवाड़ राज्य के मामलों में दख़ल देना पसन्द न कर महाराणा से कहा—"अपने निजी मामलों का फ़ैसला आप स्वयं कर लें"—और एक-दो

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ६७-६८। ट्रीटीज़; जि० ३, पृ० ४६।

को छोड़कर बाक़ी सरदारों के साथ अच्छा बर्ताव करने की सिफ़ारिश भी की[1]। कर्नल लो के वापस चले जाने पर महाराणा ने भींडर, आमेट, बदनोर आदि ठिकानों के सरदारों को देवगढ़ और सलूम्बर के सरदारों का साथ छोड़ देने के लिए बहुत-कुछ समझाया, किन्तु उसका कोई फल न हुआ। तब उसने लसाणी के सरदार जसकरण चूंडावत के छोटे पुत्र समर्थसिंह पर सरदारों को बहकाने का दोष लगाकर उसे नज़रक़ैद कर लिया। यह देखकर उदयपुर में जो सरदार उस समय उपस्थित थे वे सभी बिगड़ उठे और समर्थसिंह को छुड़ाकर उन्होंने भींडर की हवेली में पहुंचा दिया। उनकी यह कार्रवाई महाराणा को बहुत अनुचित मालूम हुई, पर राजधानी में विद्रोह हो जाने के डर से उसने इसे दरगुज़र कर लिया[2]। इसकी खबर पाकर कर्नल लो ने मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल लॉरेन्स को लिखा कि महाराणा को समझा दो कि अपने राज्य के छोटे छोटे भीतरी मामलों में वे अंग्रेज़ी सरकार से मदद की कोई आशा न रक्खें[3]। तदुपरान्त कई सरदार कर्नल लॉरेन्स के पास नीमच गये। इधर महाराणा ने भी अपनी ओर से बेदले के राव बख़्तसिंह, मेहता शेरसिंह आदि अपने मुसाहिबों को वहां भेजा। कर्नल लॉरेन्स ने सरदारों और मुसाहिबों को सलाह दी—'आप लोग आपस में मिल-जुलकर अपने खानगी झगड़ों का स्वयं फ़ैसला कर लें'। इसपर सब सरदार अपने-अपने ठिकानों को वापस चले गये[4]।

ई० स० १८२६ (वि० सं० १८८३) से अंग्रेज़ी सरकार ने मेवाड़ के भीतरी मामलों में दस्तन्दाज़ी करना छोड़ दिया था, परन्तु ई० स० १८४१ से १८४५ (वि० सं० १८९८ से १९०२) तक मेवाड़ का एजेंट कर्नल रॉबिन्सन सरदारों को धमकाता रहा, जिससे उन्होंने यह मान लिया था कि अंग्रेज़ी सरकार महाराणा की सहायक है। कर्नल रॉबिन्सन के समय में सलूंबर के साथ का महाराणा का बर्ताव ऐसा रहा कि वहां के सरदार को अपनी वंशपरम्परागत मान-मर्यादा से वंचित

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ६८।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(३) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ६८।

(४) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

की राय से पोलिटिकल एजेंट ज़िम्मेवारी का निर्णय करेगा। मेवाड़ के जिन गावों में चोरी होने का पता लगेगा उनके सब दावों की रक़में उन गावों को देनी होंगी, जिनमें आख़िरी सुराग़रसी लगे।

५—सरदारों ने महाराणा से या उनकी ज़मानत से जो क़र्ज़ लिया है वह सब का सब चुका दिया जाय। महाराणा के ऋण पर सैकड़े पीछे ६ रु० और ज़मानत के क़र्ज़ पर, यदि ज़मानत के वक्त कोई शरह न ठहराई गई हो तो, ६ रु० सूद लगाया जायगा, पर यदि कोई खास शरह ठहर गई हो तो वह क़ायम रहेगी। ऐसे क़र्ज़ों के अदा करने की क़िस्तें पोलिटिकल एजेंट के द्वारा नियत की जायँगी।

६—नीचे लिखे हुए नज़रानों के सिवा और सब नज़राने माफ़ कर दिये गये हैं—

पहला—महाराणा की गद्दीनशीनी और उसकी या उसके उत्तराधिकारी की पहली शादी पर प्रथम श्रेणी के १६ सरदारों तथा दो राजाओं[1] से दस्तूर के अनुसार ५०० रुपये एवं एक या दो घोड़े; और छोटे सरदारों तथा दूसरों से उनकी हाल की असल पैदावार पर सैकड़े पीछे २ रुपये लिये जायँगे।

दूसरा—महाराणा की बहिनों या कुंवरियों की शादी के समय सालाना पैदावार पर रुपये पीछे ढाई आने और राणा भीमसिंह के समय की प्रथा के अनुसार घोड़े लिये जायँगे।

तीसरा—जब महाराणा यात्रा को जायँ तब उस साल की असल पैदावार पर रुपये पीछे सवा आना लिया जायगा।

७—वर्तमान महाराणा की बहिनों की शादी की बाबत जो रक़म बाक़ी है वह इस वर्ष की उपज पर फ़ी रुपये ढाई आने के हिसाब से ली जायगी।

८—सरदार लोग महाराणा को तलवार-बंधाई के मौक़े पर या बतौर नज़राने के जो रक़म देते हैं, उससे अधिक अपनी रैयत से वसूल न करें।

९—हाल में बहुत से सरदारों पर अपराध तथा राजद्रोह के कारण जुरमाने हुए हैं, परन्तु पोलिटिकल एजेंट की सम्मति के अनुसार महाराणा ने

(१) यहां दो राजाओं से अभिप्राय शाहपुरे और बनेड़े के स्वामियों से है।

सलूंबर तथा देवगढ़ के सरदारों के सिवा और सब के अपराध क्षमा कर दिये हैं। इन दोनों सरदारों ने ज़ब्त किये हुए गांवों पर ज़बर्दस्ती अधिकार कर लिया और राज्य की सेना को निकाल दिया; इस अपराध के कारण हरएक से पचीस पचीस हज़ार रुपये जुरमाना लिया जाय। महाराणा ने क़त्ल के सिवा पहले के सब अपराध क्षमा कर दिये हैं। भविष्य में सब अपराधियों को न्यायालय की आज्ञा के अनुसार दंड दिया जायगा।

१०—भोम, घर, जागीर, गांव, गिरवी रक्खी हुई ज़मीन, दस्तावेज़, माफ़ियां, उदक आदि इस समय जिनके क़ब्ज़े में हैं वे उन्हीं के क़ब्ज़े में रहेंगे। महाराणा भीमसिंह के राज्य-काल से जिनपर अधिकार चला आ रहा है या जिनके सम्बन्ध में कप्तान टॉड तथा कॉब के तहरीरी दस्तावेज़ हैं वे उचित कारणों के बिना ज़ब्त न किये जायँगे और उनके हक़ की जांच-पड़ताल पोलिटिकल एजेंट करेगा। यदि वह उचित समझेगा तो इस कार्य में चार या छः सरदारों की, जो अपने स्वामी के विरोधी नहीं हैं, सहायता लेगा। महाराणा की ओर से जो (लोग) भोमिये या ज़मींदार हैं वे अबतक के रिवाज के अनुसार अपने गांवों की हिफ़ाज़त के तथा चोरी और डकैती से जो हानियां होंगी उन सब के लिए उत्तरदायी होंगे।

११—दाण, बिस्वा (तिजारती माल की आमद-रफ़्त का महसूल), लागत, खड़-लाकड़ (घास लकड़ी) और रेबारियों के ऊंट तथा घरगिनती (खानाशुमारी) ये सब कर राज्य के अधीन रहेंगे, परन्तु जिन सरदारों को कप्तान टॉड तथा कॉब के समय से ऐसे कर उगाहने का अधिकार है और जिनके पास ज़रूरी सनदें हैं वे इन करों को वसूल करते रहेंगे।

१२—कप्तान टॉड और कॉब के समय से जो कर चले आ रहे हैं, वे रहेंगे; पर उसके बाद लगाये हुए मौक़ूफ़ कर दिये गये हैं। पिछले महाराणाओं तथा वर्तमान महाराणा की दी हुई (बराड़, दाण की लागत और जुरमाने की) माफ़ी की सनदें बदस्तूर जारी रहेंगी और उनका लिहाज़ किया जायगा।

१३—जेलखानों, डाकिनों, भोपों (डाकिनियों का पता लगानेवाले व्यक्तियों) और भाटों एवं चारणों के त्याग के सम्बन्ध में महाराणा की स्वीकृति से राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल की जो आज्ञाएं जारी की गई हैं उनका पालन

मेवाड़ के सब लोग करें। क़ैदियों की हैसियत के अनुसार उनकी खुराक का प्रबन्ध किया जायगा; पर इसके लिए एक आने रोज़ से कम या आठ आने से अधिक किसी को न दिया जायगा। किसी के साथ अत्याचार या बुरा बर्ताव न होगा।

१४—महाराणा, पोलिटिकल एजेंट तथा सरदारों की ओर से तीन तीन सदाचारी एवं जानकार प्रतिनिधि नियत किये जायँगे और ये सब मिलकर सातवां व्यक्ति चुनेंगे। भविष्य में सब फ़ौजदारी तथा दीवानी मुक़द्दमों के निर्णय के लिए ये सब रजवाड़े की प्रथाओं और न्याय-व्यवस्था के अनुकूल नियम बनावेंगे, जिनकी मंज़ूरी पोलिटिकल एजेंट देगा।

१५—पेश होनेवाले सब संगीन तथा अन्य मुक़द्दमों का निर्णय स्थापित की हुई अदालतों में होगा। सरदारों के नौकरों तथा रैयत के छोटे मुक़द्दमों का फ़ैसला सरदार करेंगे, और (वे) अपराधियों को एक महीने तक की क़ैद का दंड दे सकेंगे, परन्तु उनके साथ अत्याचार या बुरा बर्ताव न कर सकेंगे। उन (सरदारों) के फ़ैसलों की अपीलें प्रधान के यहां और उसके निर्णय की अपील पोलिटिकल एजेंट के पास हो सकेगी।

१६—अब तक जिन्हें 'शरणा' का अधिकार है, वह जारी रहेगा, परन्तु खून, डकैती या राजद्रोह के लिए उसका हक़ न रहेगा।

१७—भांजगड़[1] अर्थात् मौरूसी मुसाहिबत का अधिकार न तो कप्तान टॉड ने स्वीकार किया था और न अब स्वीकार किया जाता है। वह महाराणा की इच्छा पर निर्भर है। भविष्य में पोलिटिकल एजेंट तथा चार या पांच राजभक्त और नेकनीयत सरदारों की सम्मति के अनुसार महाराणा ज़रूरी मुक़द्दमों की कार्रवाई करेंगे।

१८—सरदारों, मन्दिरों, धार्मिक संस्थाओं आदि की प्राचीन प्रथाएं और अधिकार बने रहेंगे। आण[2] अर्थात् दुहाई की रीति का पालन, जैसा पहले होता आ रहा है, वैसा ही होता रहेगा।

---

(१) भांजगड़ से यहां अभिप्राय राज्यप्रबन्ध में चूंडा के मुख्य वंशधर (सलूम्बर के सरदार) के सलाह देने से है (देखो इस क़ौलनामे की पहली धारा का टिप्पण)।

(२) आण=शपथ। मेवाड़ में पहले राज्यप्रबन्ध पुरानी रीति के अनुसार चलता था, तब वहां महाराणा की आण दिलाने का प्रचार था। यदि कोई मनुष्य आण का भङ्ग करता, तो वह राज्य

१६—जादू, टोना या मंत्र-प्रयोग के इलज़ाम से कोई व्यक्ति गिरफ़्तार न किया जा सकेगा। ज़हर देने या दंड-योग्य व्यभिचार के मुक़द्दमों में, जिनके फ़ैसलों का सम्बन्ध अदालतों से है, दरबार हस्ताक्षेप न करेंगे।

२०—महाराणा केवल प्रधान की लिखित आज्ञा के द्वारा जुरमाना कर सकते हैं; उस(आज्ञा)में जुरमाना करने के कारण तथा रक़म दर्ज होनी चाहिये। जुरमाने की रक़म इन्साफ़ और नरमी से नियत हो। इसी नियम का पालन करते हुए सरदार भी जो प्रथा तब तक प्रचलित है उसके अनुसार थोड़ा जुरमाना किया करें और एजेन्सी के दफ़्तर में उसका परिमाण तथा शरह दर्ज करा दिया करें। धौंस और दस्तक केवल प्रधान की लिखित आज्ञा से जारी किये जायँगे अथवा (इन्हें) वे लोग जारी करेंगे जो टॉड या कॉब के समय में किया करते थे।

२१—हाल के और आइन्दा के सरहदी तनाज़ों के फ़ैसलों के लिए अंग्रेज़ी अफ़सर या कोई और अफ़सर नियत किया जायगा। दोनों पक्षवालों को खर्च उठाना पड़ेगा, पर यदि कोई पक्ष सरहदी निशान मिटानेवाला सिद्ध होगा तो उसे कुल खर्च देना होगा तथा और भी उचित दंड दिया जायगा।

२२—सरदारों आदि को अधिकार है कि महाराणा को सूचित कर रिवाज तथा धर्मशास्त्र के अनुसार सबसे नज़दीकी वारिस को वे गोद लें। सरदारों का

का अपराधी समझा जाता और उसे उचित दंड मिलता था। कोई लेनदार अपना क़र्ज़ अदा करने के लिए अपने देनदार को जब दरबार की आण दिलाता, तब लाचार होकर उसे उसका फ़ैसला करना पड़ता था। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) का एक राजकुमार बड़ा अपव्ययी था। उदयपुर के महाजनों से वह प्रायः क़र्ज़ लिया करता था, पर जब महाजन अपने रुपये मांगने के लिए उसके यहां जाते तब द्वारपाल उन्हें वहां से निकाल देते थे। इसपर एक महाजन ने एक दिन महाराणा की सवारी शहर से महल को जा रही थी उस समय उसके साथ उक्त राजकुमार को देखकर उससे कहा—'मेरे क़र्ज़ का फ़ैसला किये बिना यदि आप आगे बढ़ें तो आप को श्रीदरबार की आण है'। उसके कहने पर राजकुमार ने तो कुछ ध्यान न दिया, पर महाराणा ने महाजन का कथन सुनते ही राजकुमार को आज्ञा दी—'सवारी से अलग हो जाओ और महाजन का हिसाब साफ़ न हो जाय तब तक महलों में प्रवेश मत करना'। महाराणा की यह कठोर आज्ञा सुनकर राजकुमार उक्त महाजन की दुकान पर ठहर गया और उसे राज़ी करलेने पर महलों में गया। अब आण की प्रथा नहीं रही।

देहान्त हो जाने पर उनकी विधवाएं अपने वंश के प्रतिष्ठित हितैषियों की सलाह से गोद ले सकती हैं। इसमें मतभेद होने पर पोलिटिकल एजेंट के पास अपील हो सकती है।

२३—एकलिंगजी, नाथद्वारा, बिहारीदास पंचोली और चौबों को जो ज़मीन और गांव दिये गये हैं वे उनके उत्तराधिकारियों के क़ब्ज़े में रहेंगे। रिवाज के अनुसार वसूल की जानेवाली सब रक़में—जैसे नेग या अदालती रसूम—जिनका हक़ होगा उन्हें दी जायँगी और छटूंद के साथ ये वसूल न की जायँगी।

२४—उदयपुर नगर में सरदारों की जो हवेलियां हैं वे जब तक आबाद या अच्छी दशा में रहेंगी तब तक पोलिटिकल एजेंट की अनुमति के बिना न तो ज़ब्त की जायँगी और न दूसरों को दी जायँगी। पोलिटिकल एजेंट की अनुमति के बिना किसी हालत में ऐसा न किया जायगा। उन(सरदारों)के बाग़ों की सिंचाई पीछोला तालाब से बिना महसूल होगी।

२५—मकान, ज़मीन आदि के गिरवी रखने में महाराणा दखल न देंगे। अलबत्ता जहां तक हो सकेगा उसमें कमी कर सकेंगे। पेशगी वेतन देने पर महाराणा अपने सैनिकों से सूद न लेंगे और हर चौथे महीने उन्हें बराबर वेतन दिया करेंगे तथा अपने नाम पर दुकानदारी या किसी प्रकार का व्यापार न करने देंगे।

२६—पहले के क़ौलनामों में सरदारों को आपस में संगठन अर्थात् दलबन्दी करने की मनाही थी, अब इसका कुछ ख़याल नहीं किया गया है। अब प्रत्येक व्यक्ति, जिसे वास्तव में कोई कष्ट हो, न्याय के लिए तुरंत पुकार कर सकता है। इसलिए ऐसे सब संगठन अनावश्यक हैं और भविष्य में ऐसे संगठनों में जो सम्मिलित होंगे उनके साथ राजद्रोहियों का सा बर्ताव किये जाने में सरदारों को कोई उज़्र न होगा।

२७—राज्य में हरएक (सरदार) की ओर से वकील रहेगा और उसके द्वारा सब कार्य होगा। केवल प्रतिष्ठित व्यक्ति ही वकील बनाये जायँगे और प्रचलित प्रथा तथा उनके स्वामियों की मान-मर्यादा के अनुसार उनकी प्रतिष्ठा की जायगी।

२८—सारी रैयत (काश्तकार)—चाहे वह राज्य की हो या सरदार की—जहां चाहे वहां विना रोक-टोक के आबाद हो सकती है। उसके विरुद्ध के अभियोग अदालतों में चलाये जावेंगे। सभी लोग, छोटे हों या बड़े, पोलिटिकल एजेंट के पास अपील कर सकते हैं।

२६—खालसे के इलाक़ों में जिस प्रकार अंग्रेज़ी सरकार की डाक तथा बैंगी (थैला) की रक्षा का ज़िम्मेवार राज्य होगा वैसे ही अपनी जागीरों में सरदार; और उसी प्रकार लूट से जो हानियां होंगी उनकी पूर्ति उनके ज़िम्मे रहेगी।

३०—इस क़ौलनामे के होने से पहले के सब क़ौलनामे रद्द समझे जायँगे और इसके अमल में आने के बाद यदि किसी समय दरबार तथा सरदारों में ऐसी बातों पर झगड़े उठें, जिनकी इसमें चर्चा न की गई हो या जो संदिग्ध हों, तो उनके निर्णय के लिए तीन महीनों के भीतर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट को उनकी सूचना देनी होगी और राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल का निर्णय आखिरी फैसला समझा जायगा। यदि इस मियाद के भीतर कोई मुक़द्दमा पेश न किया जायगा तो बेबुनियाद समझा जाकर वह ख़ारिज कर दिया जायगा[1]।

इस प्रकार मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल जार्ज लॉरेन्स ने क़ौलनामा तो तैयार कर लिया, परन्तु उसमें सरदारों का केवल तीन महीने तक नौकरी करना, उन्हें गोद लेने का विशेष अधिकार मिलना आदि बातें दर्ज थीं, जिससे वह महाराणा को पसन्द न हुआ। उसमें इस बात का दर्ज होना, कि पोलिटिकल एजेंट मध्यस्थ रहकर महाराणा और उसके मातहत सरदारों के झगड़ों के फ़ैसले किया करें, महाराणा को सबसे अधिक नागवार मालूम हुआ[2]। सरदारों ने भी यह क़ौलनामा पसन्द न किया, क्योंकि वे अपने पट्टों के गांवों की आमद की फ़िहरिस्तें देना नहीं चाहते थे और उनसे ली जानेवाली छटूंद में कोई हेर-फेर होना उन्हें मंजूर न था। क़ौलनामे पर दस्तख़त कराने के लिए कर्नल हेनरी लॉरेन्स और जॉर्ज लॉरेन्स उदयपुर आये, तब महाराणा ने, जो क़ौलनामे का सरदारों की अपेक्षा अधिक विरोधी था, अनिच्छा होते हुए भी उसपर

(१) ट्रीटीज़; जिल्द ३, पृ० ४६-२४।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

हस्ताक्षर इसलिए कर दिये कि उसका अमल न होने पर सरदार ही दोषी समझे जायँ[1]। फिर सादड़ी, बेदला, बेगूं, देलवाड़ा, आसींद आदि ठिकानों के सरदारों ने तो उसपर दस्तख़त कर दिये, परन्तु सलूंबर, कानोड़, गोगून्दा, देवगढ़, भैंसरोड़, बदनोर आदि ठिकानों के स्वामियों ने हस्ताक्षर नहीं किये, क्योंकि उसकी कुछ बातें उन्हें आपत्तिजनक प्रतीत हुईं। इसपर पोलिटिकल एजेंट ने ई० स० १८४५ ता० १६ जुलाई को सब सरदारों के नाम इस आशय का रूबकार जारी कराया कि यह क़ौलनामा अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा से तैयार हुआ है और सरदारों को उसपर दस्तख़त करने के लिए तीन महीनों की जो अवधि दी गई थी वह अब पूरी हो चुकी है, पर अभी तक उन्होंने हस्ताक्षर नहीं किये; इसलिए जिन सरदारों ने अंग्रेज़ी सरकार तथा महाराणा की आज्ञा की अवहेलना की है, उन्हें दंड मिलेगा और छटूंद चाकरी न देने के कारण उनके गांव ज़ब्त किये जायँगे।

फिर सलूंबर का सावा, देवगढ़ का मोकरूंदा, भींडर का भादौड़ा और गोगून्दे का रावल्या गांव ज़ब्त किया गया। इसके उपरान्त दिसम्बर में दौरे के समय कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने उक्त सरदारों को खैरोदा मुक़ाम पर बुलाकर उनसे दस्तख़त कराना चाहा, परन्तु जब उन्होंने कई उज़्र पेश किये तब उक्त कर्नल ने उनसे कहा—"क़ौलनामे पर पहले दस्तख़त कर दो फिर तुम्हारे जो उज़्र होंगे वे मिटा दिये जायँगे"। इसपर भैंसरोड़, कानोड़, देवगढ़, बदनोर आदि ठिकानों के सरदारों ने तो हस्ताक्षर कर दिये, परन्तु सलूंबर, भींडर, गोगून्दा आदि कुछ ठिकानों के सरदारों ने नहीं किये। इस प्रकार अधिकांश सरदारों के हस्ताक्षर हो जाने पर एजेंट गवर्नर जनरल कर्नल हेनरी लॉरेन्स तथा मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने उदयपुर जाकर सरदारों को सन्तुष्ट करने के लिए महाराणा से कहा—"क़ौलनामे से कुछ धारायें निकाल दी जायँ तो जिन सरदारों ने उसपर दस्तख़त नहीं किये हैं, वे भी कर देंगे"। जब क़ौलनामे से एक शब्द भी निकालना महाराणा ने स्वीकार न किया, तब दोनों अफ़सर अप्रसन्न होकर वापस चले गये और उन्होंने अंग्रेज़ी सरकार को लिखा कि 'क़ौलनामे का पालन करने के लिए न तो महाराणा रज़ामन्द हैं और न उनके सरदार'।

(१) ब्रुक; हिस्ट्री ऑफ़ मेवाड़; पृ० ७१।

इसपर सरकार का हुक्म आया कि क़ौलनामा रद्द समझा जाय और जो प्रथा पहले से चली आती है वही जारी रहे। तदनन्तर क़ौलनामे पर दस्तखत न करने के कारण सरदारों के जिन गावों पर थाने बिठाये गये थे उन्हें सरदारों ने उठा दिये[1]।

वि० सं० १६०८ (ई० स० १८५१) में लुहारी के मीनों ने सरकारी डाक लूट ली और अजमेर के अंग्रेज़ी इलाक़े में डाके डाले। इसपर राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल सर हेनरी लॉरेन्स तथा मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट जॉर्ज लॉरेन्स के शिकायत करने से महाराणा ने उनका दमन करने के लिए जहाज़पुर के हाकिम मेहता अजीतसिंह को भेजा और उसकी सहायता के लिए जालन्धरी के सरदार अमरसिंह शक्तावत को कुछ सेना सहित भेज दिया। अजीतसिंह ने धावा कर छोटी और बड़ी लुहारी गांवों पर अधिकार कर लिया। इस धावे में बहुतसे मीने खेत रहे और जो बच गये वे लुहारी से भागकर मनोहरगढ़ तथा 'देव-का खेड़ा' की पहाड़ी में जा छिपे, पर उनका पीछा करता हुआ अजीतसिंह वहां भी जा पहुंचा। उसका सामना करने के लिए तीन-चार हज़ार मीने आगे बढ़े। लड़ाई छिड़ते ही जयपुर, टोंक तथा बूंदी के इलाक़ों से चार-पांच हज़ार मीने उनकी सहायता के लिए आ पहुंचे और सघन झाड़ियों की आड़ में छिपकर वे मेवाड़ की सेना पर गोलियों तथा तीरों की बौछार करने लगे। यह देखकर धांधोले के जागीरदार रत्नसिंह ने मीनों को ललकार कर कहा—"बाग़ियो! तुम्हें मेवाड़ में रहना है या नहीं? तुमने महाराणा के बहुत से राजपूत सैनिकों का वध किया है। याद रक्खो, इसका बदला तुमसे ज़रूर लिया जायगा"। रत्नसिंह की इस धमकी से डरकर मीने लड़ाई के मैदान से भाग गये। तब लुहारी होता हुआ मेहता अजीतसिंह जहाज़पुर वापस चला गया। इस लड़ाई में बीजोल्यां का गोवर्द्धनसिंह पंवार, छोटी कनेछण (शाहपुरा) के सरदार का भाई गंभीरसिंह राणावत तथा महाराणा के २७ सैनिक मारे गये और आरएया का रूपसिंह चौहान, राजगढ़ का रेवतसिंह कानावत, जहाज़पुर का सिलहदार भूरसिंह हाड़ा आदि २५ या ३० सिपाही घायल हुए। राजपूतों के मारे जाने की खबर पाकर उदयपुर से

मीनों का उपद्रव

(१) सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; पृ० २१-२३।

महाराणा ने मेहता शेरसिंह प्रधान की मातहती में कुछ और सेना जहाज़पुर की ओर भेजी। एजेंट गवर्नर जनरल ने जयपुर, टोंक और बूंदी पर यह दबाव डाला कि तुम्हारे इलाक़ों का ठीक प्रबन्ध न होने के कारण मेवाड़ की फ़ौज का नुक़सान हुआ है। इसपर उन तीनों रियासतों ने अपने अपने राज्य के मीनों को दंड देने के लिए फ़ौज रवाना की। वि० सं० १९११ पौष (ई० स० १८५४ दिसम्बर) में राजपूताने का एजेंट गवर्नर जनरल सर हेनरी लॉरेन्स तथा मेवाड़ एवं हाड़ोती के एजेंट भी कोटे की कॉण्टिंजेंट पलटन साथ लेकर जहाज़पुर गये तब वहां के मीनों ने अपराधियों को उनके सुपुर्द कर दिया[1]।

पाखेरी गोपाल जाति का ब्राह्मण था। महाराणा का प्रीतिपात्र होने के कारण उसको धर्माध्यक्ष तथा खबरनवीसी का कार्य सौंपा गया। वह बड़ा

पाखेरी गोपाल का क़ैद किया जाना

बदचलन, चालाक, दग़ाबाज़, जालसाज़, लालची और धर्माधर्म का विचार न करनेवाला व्यक्ति था। उसकी उन्नति का यही कारण था कि वह महाराणा की आज्ञा का तुरन्त पालन करता था। लोगों पर उसका आतंक इतना जम गया था कि महाराणा से कोई उसकी शिकायत न कर सकता था, और यदि कोई करता भी, तो महाराणा को उसपर विश्वास न होता। कुल अहलकारों और कारख़ानेवालों को वह अपना मातहत समझने लगा। महाराणा के दानपुण्य में दिये हुए लाखों रुपये उसने अपनी बदचलनी में उड़ा दिये। जिसे वह अपना शत्रु समझता उसपर जादूगरी, राजद्रोह या घूसख़ोरी का दोष लगाकर क़ैद करा लेता और उसका सारा सामान ज़ब्त कर कुछ तो राज्यकोष में जमा करा देता तथा बाक़ी सब खुद हज़म कर जाता था। अंत में जब उसका ज़ुल्म बहुत ही बढ़ गया और अधिकाधिक शिकायतें महाराणा के कानों तक पहुंचने लगीं तब महाराणा ने वि० सं० १९१२ चैत्र वदि १० (ई० स० १८५६ ता० ३१ मार्च) को उसे क़ैद कर लिया। उसके घर की तलाशी होने पर तुलादान का बहुतसा सोना आदि माल बरामद हुआ[2]। राजाओं के मुँहलगे अयोग्य, किन्तु विश्वासपात्र कर्मचारी क्या-क्या नहीं कर बैठते, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है।

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(२) वही।

वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५७) में आमेट के रावत पृथ्वीसिंह का देहान्त हो गया। उसके कोई पुत्र न था, जिससे उसके सम्बन्धियों ने जीलोला

आमेट का झगड़ा

के सरदार दुर्जनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह को, जो वास्तव में सबसे नज़दीकी रिश्तेदार था, उसका उत्तराधिकारी बनाना चाहा, परन्तु बेमाली के सरदार ज़ालिमसिंह ने, जिसकी सलाह से ठिकाने का सारा कारबार होता था और जो दूर का रिश्तेदार था, अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को ठिकाने का अधिकार दिलाने का विचार कर पृथ्वीसिंह की माता एवं स्त्री को अपनी ओर मिला लिया और महाराणा की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसके पास ओंकार व्यास के द्वारा अर्ज़ी भेजी। जीलोला के सरदार की ओर से भी कई दरख़्वास्तें पेश की गईं। कोठारिया, देवगढ़, कानोड़, बनेड़ा, भैंसरोड़, कोशीथल आदि ठिकानों के सरदारों ने तो वास्तविक हक़दार चत्रसिंह का; और सलूम्बर, भींडर, गोगून्दा, कुरावड़, बागोर, धनेड़ा, लसाणी, मान्यावास आदि ठिकानों के स्वामियों ने अमरसिंह का, जो वास्तविक हक़दार नहीं था, पक्ष लिया। दोनों पक्ष के सरदारों को प्रसन्न रखने के लिए महाराणा ने एक राजनैतिक चाल चली। इधर तो उसने जीलोला के सरदार को आमेट पर अधिकार करलेने की गुप्त रीति से सलाह दी और उधर अमरसिंह के प्रतिनिधि ओंकार व्यास से तलवार-बन्दी के ४४००० रु० तथा प्रधान की दस्तूरी के ४००० रु० का रुक्क़ा लिखवा लिया। महाराणा की सलाह के अनुसार चत्रसिंह ने २०००० राजपूतों को साथ लेकर आमेट पर चढ़ाई की और उसे घेर लिया। चत्रसिंह के आमेट पहुंचते ही मेहता ज़ालिमसिंह ने, जो मेवाड़ की प्रचलित प्रथा के अनुसार ठिकाने के अधिकार-सम्बन्धी झगड़े का निपटारा हो जाने तक महाराणा की ओर से उसकी देखभाल करने के लिए वहां आया था, दरवाज़ा खुलवा दिया और चत्रसिंह ने ससैन्य आमेट में प्रवेश कर उसपर अधिकार कर लिया। बेमाली के सरदार रावत ज़ालिमसिंह तथा लसाणी के जागीरदार ठाकुर सुलतानसिंह से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें ज़ालिमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह मारा गया और सुलतानसिंह घायल होकर कुछ दिन बाद मर गया। फिर अमरसिंह को अधिकार दिलाने के लिए पृथ्वीसिंह की स्त्री ने सरकार के अफ़सरों के पास अर्ज़ियां भेजीं, परन्तु उनका कुछ भी फल न हुआ।

आमेट का अधिकार रावत चत्रसिंह को दिलाने की महाराणा की गुप्त कार्रवाइयों का पता चल जाने पर रावत अमरसिंह के हिमायती सरदारों ने खेरवाड़े के असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट कप्तान ब्रुक को लिखा कि यदि अमरसिंह को आमेट का स्वामी न बनायेंगे तो मेवाड़ में भारी बखेड़ा खड़ा हो जायगा। इसपर कप्तान ब्रुक की सलाह से महाराणा ने चत्रसिंह को उदयपुर बुलाकर कुछ दिनों के लिए उसकी तलवार-बन्दी मुल्तवी कर दी, और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स ने इस आशय का एक विज्ञापन जारी किया कि यदि कोई सरदार इस मामले में किसी प्रकार का झगड़ा करेगा तो वह अंग्रेज़ी सरकार का अपराधी समझा जायगा। इस इश्तिहार के जारी होने से मेवाड़ में कोई फ़साद न हुआ। वि० सं० १९१७ ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १८६० ता० २६ मई) को रावत चत्रसिंह आमेट का स्वामी बनाया गया। महाराणा का देहान्त हो जाने पर महाराणा शंभुसिंह के समय रावत अमरसिंह को आमेट से कुछ जागीर दिलाई गई और खालसे में से बहुतसी जागीर देकर महाराणा ने उसे प्रथम श्रेणी का मेजा का सरदार बनाया[1], जिसका वृत्तान्त आगे लिखा जायगा।

बीजोल्यां का मामला

बीजोल्यां के सरदार सवाई केशवदास पंवार के पुत्र शिवसिंह के गिरधरदास, नाथसिंह और गोविन्ददास नामक तीन पुत्र थे। शिवसिंह और उसके बड़े पुत्र गिरधरदास का देहान्त केशवदास के जीतेजी हो गया। तब नाथसिंह का हक़ खारिज कराने का विचार कर गिरधरदास की स्त्री ने केशवदास की अनुमति से अपने मृतपति के सबसे छोटे भाई गोविन्ददास को, जो ठिकाने का वास्तविक हक़दार नहीं था, दत्तक लिया। फिर वि० सं० १९०४ (ई० स० १८४७) में केशवदास की ओर से इस आशय की कई अर्ज़ियां महाराणा के पास पेश हुई कि मेरे पीछे ठिकाने का हक़दार मेरा सबसे छोटा पोता गोविन्ददास समझा जाय। केशवदास से बीस हज़ार रुपये गोदनशीनी का नज़राना लेकर महाराणा ने उसकी प्रार्थना के अनुसार उसका उत्तराधिकारी तो गोविन्ददास को ही ठहराया, पर साथ

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

ही यह आज्ञा दी कि बीजोल्यां की जागीर में से नाथसिंह को भी निर्वाह के लिए १६०० रुपये वार्षिक आय का कोई गांव दिया जाय।

केशवदास के जीवन-काल में तो गोविन्ददास तथा नाथसिंह में ठिकाने के लिए कोई झगड़ा न हुआ, पर वि० सं० १६१३ (ई० स० १८५६) में उसके मरने पर अपने रिश्तेदारों की सहायता से सेना एकत्र कर नाथसिंह बीजोल्यां पर चढ़ आया। फिर लगातार तीन वर्ष तक दोनों भाइयों में लड़ाई-झगड़े होते रहे। इसी अरसे में नाथसिंह का देहान्त हो जाने से गोविन्ददास ही बीजोल्या का स्वामी रह गया और वहां का झगड़ा मिट गया[1]।

हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के समय यह क़ानून अमल में लाया गया कि 'पुत्र के न होने पर कोई देशी राजा किसी को गोद नहीं ले सकता'। इसी

सिपाही विद्रोह

क़ानून के अनुसार उसने झांसी, सतारा, नागपुर, कर्नाटक, तंजोर आदि देशी राज्यों को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया। इसी प्रकार उसने बरार और अवध को भी अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया[2]। उसकी इस नीति का यह फल हुआ कि सारे भारत में असन्तोष फैल गया। इन्हीं दिनों बंगाल के सैनिकों में एक नई बन्दूक़ का, जिसके कारतूस के सिरे को दांत से काटना पड़ता था, प्रचार किया गया। इस बन्दूक़ के सम्बन्ध में ई० स० १८५७ जनवरी (वि० सं० १६१३ माघ) में यह अफ़वाह उड़ी कि इसके कारतूस पर गाय और सूअर की चरबी लगी है। धीरे-धीरे भारत के प्रत्येक स्थान में फैलती हुई जब यह बात धर्मभीरु भारतीय सैनिकों के कानों तक पहुंची, तब वे धर्मनाश की आशङ्का से विचलित होकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गये। सबसे पहले कलकत्ते के पास दमदम की छावनी में सिपाही विद्रोह के लक्षण प्रकट हुए। फिर शनैः शनैः बारकपुर, मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, बरेली, झाँसी आदि स्थानों के सैनिक बिगड़ उठे[3]।

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(२) इम्पीरियल गैज़ेटियर ऑफ़ इंडिया; जि० २, (१६०८ का संस्करण) पृ० ५०६-५०७।

(३) स्मिथ; ऑक्सफ़र्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; पृ० ७१३-१७।

इन दिनों मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स आबू पर था। विद्रोह की ख़बर पाकर ता० २६ मई (ज्येष्ठ सुदि ६) को वह उदयपुर लौट आया। महाराणा ने उसे जगमन्दिर महल में ठहराया और उसके पास चार प्रतिष्ठित सरदारों को भेजकर उसकी रक्षा का यथोचित प्रबन्ध कर दिया। कप्तान शावर्स के उदयपुर वापस आने के दो-एक दिन बाद मुहम्मदअली बेग नामक सवार के बहकाने से नीमच की सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया। आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर अंग्रेज़ों ने नीमच के क़िले में आश्रय लिया, पर बाग़ियों ने वहां से भी उन्हें भगा दिया। डॉक्टर मरे, डॉक्टर गेन तथा और कई अंग्रेज़ नीमच से भागकर मेवाड़ के केसूंदा नामक गांव में पहुंचे, जहां पटेल रामसिंह, पटेल केसरीसिंह तथा पंडित यादवराय ने उन्हें हिफ़ाज़त से रक्खा। केसूंदे में वे पहुंचे ही थे कि बाग़ियों ने उन्हें आ घेरा, पर वहां के पटेलों तथा कुछ मेवाड़ी सिपाहियों ने बड़ी बहादुरी से उन (बाग़ियों) का सामना कर उन्हें मार भगाया और अंग्रेज़ों को उनके हाथ में पड़ने से बचा लिया[1]।

कप्तान शावर्स को इस उपद्रव की सूचना ता० ६ जून को मिली, इसपर उसने तुरन्त नीमच जाने का निश्चय किया और महाराणा से मिलकर इस सम्बन्ध में बात-चीत की। मेवाड़ के पास होने के कारण नीमच की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझकर महाराणा ने वहां उक्त कप्तान के साथ अपने विश्वस्त सरदार बेदले के राव बख़्तसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना भेजना स्थिर किया और अपने सब खैरख़्वाह सरदारों तथा ज़िलों के हाकिमों के नाम इस आशय की आज्ञा भिजवा दी कि उसे (शावर्स को) सब प्रकार की सहायता दी जाय और मेरी आज्ञा के समान उसकी आज्ञा मानी जाय। कप्तान शावर्स कूच की तैयारी कर रहा था, इतने ही में नीमच की सेना के तोपख़ाने का अफ़सर बार्नेस तथा पैदल सेना का अफ़सर रोज़ उससे आ मिले। उनसे यह जानकर कि डूंगला गांव में नीमच से भागे हुए ४० अंग्रेज़, जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल हैं, बाग़ियों से घिर जाने के कारण घोर संकट में पड़े हुए हैं,

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ८, २७, २८ और २६। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० २६। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

वह ता० ७ जून को बारनेस, राव बख्तसिंह तथा मेहता शेरसिंह[1] को साथ लेकर उदयपुर से ससैन्य रवाना हुआ और दूसरे दिन रात को डूंगले पहुंचकर मेवाड़ की सेना की सहायता से बाग़ियों को वहां से निकाल दिया[2]।

राव बख्तसिंह ने अंग्रेज़ों, उनकी स्त्रियों तथा बच्चों को घोड़ों, हाथियों और पालकियों पर सवार कराकर हिफ़ाज़त के साथ उदयपुर पहुंचा दिया, जहां वे सब महाराणा की आज्ञा से जगमन्दिर नामक जल-महल में ठहराये गये और उनकी रक्षा एवं आतिथ्य का भार मेहता गोकुलचंद प्रधान को सौंपा गया। इस समय उनके साथ के महाराणा के बर्ताव के सम्बन्ध में शावर्स का असिस्टेंट कप्तान एन्सली अपनी रिपोर्ट में लिखता है—"कल सवेरे स्वयं महाराणा हमें धैर्य बंधाने तथा हमारी देखभाल करने के लिए हमारे यहां आया और हमारे बच्चों को अपने पास बुलाकर उसने प्रत्येक को दो-दो मोहरें दीं। फिर सायंकाल को वह उन्हें अपने महल में ले गया, जहां उनमें से हरएक को उसने अपनी ओर से दो दो अशरफ़ियां और उतनी ही महाराणी की तरफ़ से भी दिलाईं। शिष्टता, दयालुता तथा उदारता में महाराणा की समता और कोई नहीं कर सकता[3]"।

नीमच से बाग़ियों के चले जाने पर वहां की रक्षा का भार कप्तान लॉयड तथा मेवाड़ के वकील अर्जुनसिंह सहीवाले पर छोड़कर लेफ़्टेनेंट स्टेपुलटन और मेहता शेरसिंह को साथ लेकर कप्तान शावर्स बाग़ियों का पीछा करता हुआ १२ जून को चित्तोड़ पहुंचा। वहां से पत्र द्वारा अपनी पहुंच की सूचना देते हुए राजपूताने के एजेंट कर्नल लॉरेन्स से बाग़ियों पर आक्रमण करने के लिए नसीराबाद से सेना भिजवा देने की उसने प्रार्थना की, जो स्वीकृत नहीं हुई। इसके बाद आषाढ़ वदि ८ (ता० १५ जून) को गंगराड़ (गंगार) होता हुआ वह

(१) वि० सं० १६१३ (ई० स० १८५६) में महाराणा ने मेहता शेरसिंह को प्रधान पद से हटाकर उसके स्थान पर मेहता गोकुलचन्द को नियत किया था, परन्तु सिपाही-विद्रोह के समय पोलिटिकल एजेंट के साथ योग्य और कार्यकुशल मन्त्री का रहना उचित समझकर महाराणा ने प्रधान की हैसियत से उस (शेरसिंह) को उसके साथ कर दिया था।

(२) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० १३, १४, १६।

(३) वही; पृ० २२, २३, २४। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० २६, २७। वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

सांगानेर (मेवाड़ में) पहुंचा, जहां हमीरगढ़ तथा महुआ के जागीरदार उसकी सेना में आ मिले। गंगराड़ से सांगानेर जाते समय मार्ग में बाग़ियों का बहुत-सा सामान उसके हाथ लगा और मेवाड़ एजेन्सी के दो चपरासी, जिन्होंने बाग़ियों से मिलकर नीमच में रखा हुआ कर्नल लारेन्स का सारा माल-असबाब लूट लिया था, पकड़े गये। सांगानेर से कूचकर वह शाहपुरे गया, पर वहां के स्वामी ने, जो बाग़ियों से मिल गया था और जिसने उन्हें अपने यहां आश्रय भी दिया था, न दरवाज़े खोले, न उसकी पेशवाई की और न उसे रसद आदि की सहायता दी[1]।

शाहपुरे में शावर्स को यह खबर मिली कि महीदपुर और टोंक के विद्रोहियों को साथ लेकर नीमच के बाग़ी देवली, आगरा आदि स्थानों को लूटते, जलाते तथा उजाड़ते हुए दिल्ली की ओर चले गये, इसलिए जहाज़पुर होता हुआ वह १५-२० दिन में नीमच लौट आया। इस अरसे में अंग्रेज़ों की रक्षा के लिए वहां राजपूताने की कुछ रियासतों तथा बम्बई से सेनाएँ आ पहुंची थीं[2]। शावर्स के नीमच वापस आते ही मेवाड़ की सेना में, जिसपर अंग्रेज़ों को पूरा भरोसा था, अंग्रेज़ों के शत्रुओं ने यह अफ़वाह फैला दी कि हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट करने के लिए अंग्रेज़ों ने आटे में मनुष्यों की हड्डियां पिसवाकर मिलवा दी हैं। इस बात की सूचना मिलते ही मेवाड़ के वकील अर्जुनसिंह सहीवाले ने तुरन्त नीमच के बाज़ार में जाकर बनियों से आटा मंगवाया और उक्त सैनिकों के सामने उसकी रोटी बनवाकर खाई, जिससे उनका सन्देह दूर होगया। इसके बाद उसने फ़ौज के लिए पिसनहारियों से गेहूँ पिसवाने का प्रबन्ध करा दिया। अर्जुनसिंह की इस कार्य-तत्परता से नीमच का सुपरिंटेंडेंट कप्तान लॉयड बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महाराणा के पास एक खरीता भेजकर उससे अर्जुनसिंह की सिफ़ारिश की[3]।

उक्त घटना के कुछ दिनों बाद नीमच में कोटे एवं बम्बई से सहायतार्थ आये हुए सैनिकों में उपद्रव के चिह्न दिखाई दिये और जब यह मालूम हुआ कि वहां

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ३२-४० ।

(२) वही; पृ० ४१-४६ । सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र, पृ० ५७ ।

(३) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ८४, ८५ । सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० ५७-५८ ।

के अंग्रेज़ों को क़त्ल करने का वे इरादा कर रहे हैं, तब उनके तीन मुखिये गिरफ़्तार किये जाकर तोप से उड़ा दिये गये, जिससे वे शान्त हो गये। विद्रोहियों के दमन में नीमच के अंग्रेज़ अफ़सरों को मेवाड़ की सेना से बड़ी सहायता मिली[1]।

इन्हीं दिनों फ़ीरोज़ नामक एक हाजी अपने को दिल्ली के मुग़ल खानदान का शाहज़ादा प्रसिद्ध कर कचरोद गांव में, जो मंदसोर क़स्बे के पास है, आया और दीन के नाम पर उसने अंग्रेज़ों के विरुद्ध जिहाद का झंडा खड़ा किया, पर मंदसोर के सूबेदार ने उसे वहां से भगा दिया। इसके कुछ दिनों बाद दो हज़ार सैनिकों का दल साथ लेकर फ़ीरोज़ ने मंदसोर पर चढ़ाई की, जिसमें वहां का सूबेदार मारा गया, कुम्मेदान एवं थानेदार पकड़े गये और कोतवाल, जो जाति का ब्राह्मण था, ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाया गया। इस प्रकार मंदसोर पर अधिकार करने के अनंतर उसने मिर्ज़ा नामक मुसलमान को, जिसके पूर्वज मंदसोर सूबे के ईजारदार थे, अपना वज़ीर बनाया और उसकी सहायता से एक बड़ी सेना, जिसमें अधिकांश मेवाती, मकरानी तथा विलायती थे, एकत्र कर मंदसोर में हाज़िर होने के लिए मालवे के रईसों एवं सरदारों के पास फ़रमान भिजवाये, परंतु उन्होंने उनपर कुछ ध्यान न दिया[2]।

उल्लिखित घटना के बाद कप्तान शावर्स तथा कर्नल जैक्सन आदि नीमच के अंग्रेज़ अफ़सरों ने नीम्बाहेड़े के मुसलमान अफ़सर के फ़ीरोज़ से मिल जाने की खबर सुनकर नींबाहेड़े पर अधिकार कर लेने का निश्चय किया और मेहता शेरसिंह एवं अर्जुनसिंह सहीवाले के द्वारा शावर्स ने महाराणा से और सहायता मांगी। इसपर महाराणा ने उदयपुर से पैदल सिपाहियों की एक कंपनी, पचास सवार तथा दो तोपें तुरन्त नीमच भेज दीं और खादड़ी, कानोड़, बानसी, बेगूं, भदेसर, अठाणा, सरवाणया, दारू, बीनोता आदि नीमच के नज़दीक के छोटे-बड़े सभी ठिकानों के सरदारों को ससैन्य नीमच जाने की आज्ञा दी, जिसपर वे सब वहां पहुंच गये[3]।

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ८५-८७। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र, पृ० ४७, ४८।

(२) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ८६-६८।

(३) वही; पृ० ६६-११२। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० ४८-४६।

वि० सं० १९१४ आश्विन वदि ३० (ई० स० १८५७ ता० १८ सितम्बर) को कर्नल जैक्सन, कप्तान शावर्स तथा मेवाड़ का वकील अर्जुनसिंह सहीवाला साठ सवार और दो छोटी तोपें लेकर नीमच से नींबाहेड़े की ओर रवाना हुए। दूसरे दिन सवेरा होते-होते उन्होंने नींबाहेड़े के पास जल्या-पीपल्या गांव में डेरा डाला। मेहता शेरसिंह, मेहता फूलचन्द तथा अठाणे का रावत दीपसिंह, दारू का रावत भवानीसिंह आदि सरदार मेवाड़ की सेना साथ लेकर वहां उनसे आ मिले। उक्त अंग्रेज़ अफ़सरों ने दो चपरासियों के द्वारा नीम्बाहेड़े के आमिल (हाकिम) को कहला भेजा कि जब तक सिपाहियों का विद्रोह शान्त न हो जाय तब तक के लिए नीम्बाहेड़ा अंग्रेज़ सरकार के सुपुर्द कर दो और यहां हमारे डेरे पर तुरन्त आकर हमसे मिलो। उक्त आमिल ने अंग्रेज़ अफ़सरों के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर उनके भेजे हुए एक चपरासी को मार डाला और नींबाहेड़े के शहरपनाह के दरवाज़े बन्द करा दिये। इसपर शावर्स की आज्ञा से अंग्रेज़ तथा मेवाड़ी सैनिक युद्ध के लिए तुरन्त तैयार होकर नीमच दरवाज़े के सामने आ डटे और उन्होंने अपनी तोपें जमा दीं। फिर लड़ाई छिड़ गई। नीमच दरवाज़े को तोप से उड़ाकर उन्होंने कोट के भीतर घुसने की चेष्टा की, पर दरवाज़ा बहुत मज़बूत था, जिससे उन्हें सफलता न हुई। तद्-नंतर दोनों ओर से गोलन्दाज़ी होती रही। अंत में शाम हो जाने पर शावर्स की आज्ञा से युद्ध रोक दिया गया और सेना अपने डेरों को लौट गई। इस लड़ाई में उक्त सेना के २३ सिपाही मारे गये तथा ८३ नं० पैदल पलटन का यंग नामक अंग्रेज़ कॉरपोरल काम आया और दो यूरोपियन अफ़सर घायल हुए। रात को नींबाहेड़े का हाकिम और उसके सब साथी तथा सिपाही क़िला खाली कर भाग गये। दूसरे दिन सवेरे नीम्बाहेड़े पर अंग्रेज़ी तथा मेवाड़ी सेना का अधिकार हो गया। कप्तान शावर्स ने बतौर अमानत के नींबाहेड़ा शहर एवं ज़िला महाराणा के सुपुर्द कर दिया और नींबाहेड़े के पटेल तारा पर वहां के हाकिम को भगा देने तथा नीमच के चपरासी को मरवा डालने का दोष लगाकर उसे तोप से उड़वा दिया[1]।

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० १००-१०४। अनुमान सवा दो वर्ष तक नींबाहेड़ा ज़िले पर मेवाड़ का अधिकार रहा। फिर अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा से

वि० सं० १९१४ कार्तिक सुदि ४ (ई० स० १८५७ ता० २२ अक्टूबर) को नीम्बाहेड़े का हाकिम नीमच ज़िले के जीरण गांव पर मंदसोर के बाग़ियों को चढ़ा लाया। जब यह ख़बर नीमच पहुंची तब बाग़ियों का सामना करने के लिए कोई ४०० सिपाही तथा दो तोपें साथ लेकर कप्तान लॉयड, कप्तान सिम्सन आदि ११ फ़ौजी अफ़सर दूसरे दिन सायंकाल उक्त गांव में आ पहुँचे। वहां बाग़ियों से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें वे हारकर सेना-सहित नीमच लौट गये। इसके बाद जीरण को लूटकर बाग़ी भी मंदसोर चले गये।

इस युद्ध में अंग्रेज़ी सेना के दो अफ़सर—कप्तान रीड़ तथा कप्तान टुकर—मारे गये और पांच घायल हुए[1]।

जीरण में अंग्रेज़ों को हरा देने से मंदसोर के बाग़ियों की हिम्मत यहां तक बढ़ गई कि ८ नवम्बर को वे दो हज़ार सिपाहियों के साथ नीमच पर चढ़ आये। कप्तान बैनिस्टर की अध्यक्षता में २५० सवार उनका सामना करने के लिए आगे बढ़े। छावनी के पीछे एक नाले के पास घंटे-भर लड़ाई हुई। इसके बाद बैनिस्टर और उसके सिपाही खेत छोड़कर नीमच के क़िले में जा घुसे। यह देखकर मेवाड़ के तीन सौ सवारों के साथ कप्तान शावर्स वहां आ पहुंचा। फिर लड़ाई छिड़ गई। बहुत देर तक दोनों ओर से गोलियां चलती रहीं। अंत में शाम को लड़ाई बंद होने पर कप्तान शावर्स, कर्नल जैक्सन, अर्जुनसिंह, सवाईसिंह, फूलचन्द तथा मेवाड़ के सरदार एवं सैनिक दारू होते हुए केसून्दा चले गये। दूसरे दिन सवेरा होते ही बाग़ियों ने छावनी को लूटकर जला दी और क़िले को घेर लिया। इसके उपरान्त जावद, रतनगढ़,

---

यह टोंक के नवाब को वापस दे दिया गया। इस परगने के विषय में कुछ अंग्रेज़ अफ़सरों ने तो राय दी कि पहले यह मेवाड़ का ही था, इसलिए पीछा उसी में मिला दिया जाय, परन्तु कुछ की सम्मति हुई कि यह टोंक को वापस दे दिया जाय। पोलिटिकल अफ़सरों का यह मतभेद उनके पारस्परिक विरोध के ही कारण था। मेवाड़ को इसके वापस न मिलने का कारण पोलिटिकल अफ़सरों की नाइत्तिफ़ाक़ी ही नहीं, किन्तु मेवाड़ के अहलकारों की आपस की अनबन भी थी। इसी से मेवाड़ की ओर से जैसी चाहिए वैसी पैरवी न हो सकी, पर टोंक की तरफ़ से पूरी कोशिश हुई, जिससे यह परगना उसे वापस मिल गया (वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८)।

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ११४-१६।

सींगोली आदि नीमच के आसपास के क़स्बों में भी विद्रोह फैल गया। ज्यों ही यह समाचार केसून्दे में कप्तान शावर्स को मिला, त्यों ही वह लेफ्टेनेंट फ़र्क्हर्सन को साथ लेकर वहां से चला और बगाणा तथा निक्सनगंज गांवों में बाग़ियों के ठहरने की ख़बर पाकर वहां पहुंचा। फिर बाग़ियों से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें बहुतसे विद्रोही तो खेत रहे और शेष तितर-बितर हो गये। इस लड़ाई में मेवाड़ की सेना में से शिवदास कावरा तथा बाघसिंह राठोड़ मारे गये और शावर्स का गोपाल नामक चपरासी घायल हुआ[1]।

इस घटना के अनंतर मालवे की ओर से मध्य भारत का एजेंट कर्नल ड्यूरैंड मऊ के सिपाहियों को साथ लेकर मंदसोर आ पहुंचा। वहां विद्रोहियों से उसका सामना हुआ, जिसमें फ़ीरोज़ तो उससे हारकर भाग गया, पर उसके बहुतसे साथी एवं सिपाही पकड़े और मारे गये। मंदसोर से ड्यूरैंड नीमच आया। उसके आते ही बाग़ी भाग गये। इस प्रकार नीमच की रक्षा हो गई[2]।

ई० स० १८५८ जुलाई (वि०सं० १६१५ आषाढ़) में सर ह्यू रोज़ ने पेशवों के वंशज राव साहब और उसके साथी एवं सहायक तांतिया टोपी को[3] ग्वालियर से निकाल दिया। वहां से पांच हज़ार बाग़ियों के साथ वे मेवाड़ में घुसे और मांडलगढ़ होते हुए रतनगढ़ तथा सींगोली के रास्ते से रामपुरे की ओर रवाना हुए, पर ब्रिगेडियर पार्क तथा मेजर टेलर ने उस तरफ़ का मार्ग रोक लिया। तब वे बरसल्यावास होते हुए भीलवाड़े पहुंचे और वहां से ९ अगस्त को सांगानेर के पास कोटेश्वरी नदी के किनारे पर जनरल रॉबर्ट्स की अंग्रेज़ी सेना से हारकर मेवाड़ के पश्चिम में कोठारिया ज़िले की ओर चले गये, परंतु उनका पता लगाती हुई उक्त सेना वहां भी जा पहुंची और नवाएया गांव के

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ११६-३२। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० ६४-६८।

(२) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० १२८-२६।

(३) यह मरहटा ब्राह्मण और नाना साहब का नौकर था। ई० स० १८५७ के ग़दर में अंग्रेज़ों से इसकी कई लड़ाइयां हुईं, जिनमें से कुछ में तो इसकी जीत और कुछ में हार हुई। अन्त में ब्रिगेडियर नेपियर से गहरी हार खाकर यह मध्य भारत, राजपूताने और बुन्देलखंड में महीनों भागता फिरा। फिर ई० स० १८५६ में यह पकड़ा गया और इसे फाँसी हुई।

पास लड़ाई में उन्हें दुबारा हराया तथा उनकी चार तोपें छीनकर वहां से भी मार भगाया। वहां से भागकर वे आकोले के रास्ते से चित्तोड़ से दक्षिण में होकर जाट और सींगोली गांवों को लूटते हुए झालावाड़ पहुंचे। वहां से ३ दिसम्बर को उन्होंने मध्य भारत में प्रवेश किया। नर्मदा के किनारे छोटा उदयपुर में ब्रिगेडियर पार्क की मातहती में अंग्रेज़ी सेना से उनकी मुठभेड़ हुई, जिसमें वे फिर हारकर कुशलगढ़ होते हुए बांसवाड़े पहुंचे। रास्ते में कुशलगढ़ के सरदार ने उन्हें आगे बढ़ने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु उसे सफलता न हुई। उसकी इस खैरख़्वाही के लिए अंग्रेज़ सरकार ने उसका सम्मान किया। बांसवाड़े पहुंचते ही बागियों को मेजर लियरमाउथ की अध्यक्षता में नीमच से अंग्रेज़ी सैनिकदल के रवाना होने की खबर लगी, जिससे वे सलूंवर होते हुए उदयपुर की ओर बढ़े, पर मार्ग में यह समाचार पाकर कि नीमच से सेना आ पहुंची है और कप्तान शावर्स एवं मेजर रॉक ने उत्तर की ओर का रास्ता रोक लिया है, भींडर होते हुए वे प्रतापगढ़ चले गये। इस समय उनके साथ कोई ४००० भील भी थे। ता० २३ दिसम्बर को मेजर रॉक से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें उनके बहुतसे साथी मारे तथा पकड़े गये और उनके हाथी, घोड़े एवं लड़ाई का सामान अंग्रेज़ों के हाथ लगा। मेवाड़ी सेना के दादखां सिन्धी ने इस लड़ाई में अच्छी बहादुरी दिखलाई। प्रतापगढ़ से भागकर वे मंदसोर की ओर बढ़े, पर कर्नल बैन्सन ने जीरापुर में उन्हें जा दबाया और लड़ाई में हराकर मेवाड़ से बाहर निकाल दिया[1]।

इसके उपरान्त फ़ीरोज़ तथा दो हज़ार बागियों को साथ लेकर तांतिया टोपी मारवाड़ की ओर से मेवाड़ में घुसा और ई० स० १८५६ ता० १७ फ़रवरी (वि० सं० १९१५ माघ सुदि १५) को कांकरोली पहुंचा। फिर ब्रिगेडियर सॉमरसेट तथा कप्तान शावर्स के आने की खबर पाकर वे बांसवाड़े की ओर चले, पर सॉमरसेट ने रास्ते में ही उन्हें जा दबाया और उनकी सेना तितर-बितर कर दी। अंत में जनरल माइकेल और ब्रिगेडियर सॉमरसेट के सामने फ़ीरोज़, नवाब अब्दुल शुतरखां तथा पीर ज़हूरअली आदि बाग़ियों के मुखियों के आत्म-समर्पण करने पर तांतिया टोपी परोन (Parone) के जंगल में जा छिपा, परन्तु ई० स० १८५८ ता० ७

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० १३३-१४४।

अप्रेल (वि० सं० १६१५ वैशाख वदि ८) को पकड़ा जाकर वह वहां से सिप्री लाया गया, जहां उसे फांसी दी गई[1]।

कोठारिये के सरदार रावत जोधसिंह ने आउआ (जोधपुर राज्य में) के विद्रोही सरदार कुशलसिंह को अपने यहां आश्रय दिया है, ऐसा सन्देह होने पर वि० सं० १६१५ द्वितीय ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० १८५८ ता० ८ जून) को कोठारिये में जोधपुर से अंग्रेज़ी सेना आई। सेनापति को यह विश्वास दिलाने के लिए कि मेरे यहां कुशलसिंह नहीं है जोधसिंह ने अपना क़िला दिखला दिया, जिससे उसका सन्देह दूर हो गया और वह ससैन्य लौट गया[2]।

इस प्रकार मेवाड़ और उसके समीपवर्ती प्रदेशों से विद्रोही सिपाहियों के पैर बिलकुल उखड़ गये। इस बखेड़े में महाराणा ने अपनी सेना से अंग्रेज़ी सरकार की बहुत अच्छी सेवा बजाई। नीमच से उदयपुर आये हुए अंग्रेज़ों में से डॉक्टर मरे ने ई० स० १८६३ ता० ७ अप्रेल को कप्तान शावर्स को लिखा कि "वास्तव में हम लोग महाराणा और आपके अत्यन्त अनुगृहीत हैं। मेवाड़ के सरदारों तथा सेना को साथ लेकर आप जब डूंगले पहुंचे, तब मुझे जो प्रसन्नता हुई उसे मैं कभी न भूलूंगा। वह बड़ा ही नाज़ुक वक़्त था। यदि महाराणा हमारा विरोधी हो जाता, तो इस संसार में हमें और कोई न बचा सकता[3]"।

सिपाही-विद्रोह के समय केसून्दे (मेवाड़) के पटेलों आदि ने भी अच्छी वीरता और राजभक्ति दिखाई, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उन्हें सिरोपाव तथा कुछ उपजाऊ भूमि दी। अंग्रेज़ी सरकार की ओर से भी उन्हें बतौर इनाम के कुछ रुपये दिलाये गये और केसून्दे में उनके लिए एक कुंआ खुदवा दिया गया[4]।

ग़दर के वक़्त महाराणा ने सरकार की जो ख़ैरख़्वाही और अच्छी सेवा की उसका फल जैसा हिन्दुस्तान के दूसरे राजाओं को मिला वैसा उसको न मिला। उसे सिर्फ़ ख़िलअत मिली, किन्तु इसमें सरकार का दोष नहीं है।

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; १४३-४६।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(३) शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० २५।

(४) वही; पृ० ३०-३१।

इसका प्रधान कारण मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट और राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल की आपस की नाइत्तिफ़ाक़ी और दूसरा कारण रियासत के बड़े अह-लकारों का पारस्परिक विरोध था। सरदारों में से बेदले के राव बख़्तसिंह को तो तलवार और बेगूं के सरदार को नीमच के सुपरिंटेंडेंट के अधीनस्थ प्रदेश की रक्षा करने एवं आवश्यक सहायता देने के उपलक्ष्य में अंग्रेज़ी सरकार की ओर से खिलअत दी गई[1]।

इस समय तक तो भारत के अंग्रेज़ी राज्य का प्रबन्ध ईस्ट इंडिया कंपनी करती रही, पर इसके बाद नवम्बर १८५८ (वि० सं० १९१५ कार्तिक) में उसका भार महाराणी विक्टोरिया ने अपने ऊपर ले लिया। गवर्नर जनरल की ओर से महाराणा के पास महाराणी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र आया, जो २० नवम्बर (कार्तिक सुदि १४) को एक दरबार में, जिसमें मेवाड़ के छोटे-बड़े सभी सरदार उपस्थित थे, पढ़कर सुनाया गया[2]।

उक्त घोषणापत्र में देशी राज्यों के सम्बन्ध की निम्नलिखित मुख्य बातें थीं—

(१) अब तक हिन्दुस्तान का राज्य ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में था, परन्तु अब हमने उसे अपने अधिकार में ले लिया है।

(२) ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजाओं के साथ जो क़ौल-क़रार किये थे, वे सब स्वीकार किये जाते हैं।

(३) हिन्दुस्तान का जो प्रदेश हमारे अधिकार में है उसे बढ़ाने की हमारी इच्छा नहीं है, और न हमें यह सहन होगा कि कोई हमारे देश या अधिकार में दख़ल दे।

केसरीसिंह रणावत का गिरफ़्तार होना

वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में महाराणा की आज्ञा से उसके पुराने ख़ैरख़्वाह नौकर गुल्लू कायस्थ ने, जो बड़ा शूरवीर एवं साहसी था, वैशाख सुदि ३ (ता० ५ मई) को नीमेड़ी के जागीरदार केसरीसिंह राणावत पर, जो राजद्रोही सरदारों का पक्षपाती था और शेख़ावाटी के लुटेरे राजपूतों को अपने यहां आश्रय देकर मेवाड़ में

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८। शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० ४८।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८। शावर्स; ए मिसिंग चैप्टर ऑफ़ दि इंडियन म्युटिनी; पृ० १५७।

उनसे लूट-खसोट कराता था, चढ़ाई करके उसे गिरफ़्तार कर लिया और उसके कई लुटेरे साथियों को मारकर उनका सारा सामान छीन लाया। इस सेवा के उपलक्ष्य में राज्य की ओर से उसे गांव और सिरोपाव दिया गया[1]।

प्रधानों का तबादला

महाराणा ने मेहता शेरसिंह के स्थान पर मेहता गोकुलचंद को नियुक्त किया था, परन्तु वि० सं० १६१६ में उस(गोकुलचंद)को भी अलग कर दिया और कोठारी केसरीसिंह को प्रधान बनाया[2]।

महाराणा और पोलिटिकल अफ़सरों में मन-मुटाव

महाराणा ने शेरसिंह को अलग तो पहले ही कर दिया था, अब उससे भारी जुरमाना भी लेना चाहा। इसकी सूचना जब राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल (जॉर्ज लॉरेन्स) को मिली तब वह मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर को, जो कप्तान शावर्स की जगह नियत हुआ था, साथ लेकर वि० सं० १६१७ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १८६० ता० १ दिसम्बर) को उदयपुर पहुँचा। शेरसिंह के घर जाकर लॉरेन्स ने उसे तसल्ली दी और जब महाराणा ने शेरसिंह के विषय में उस(लॉरेन्स)से चर्चा की तब उसने उस(महाराणा)की इच्छा के विरुद्ध उत्तर दिया। कर्नल लॉरेंस की तरह मेजर टेलर ने भी शेरसिंह से जुरमाना लिये जाने का विरोध किया। इससे महाराणा और पोलिटिकल अफ़सरों में मन-मुटाव हो गया, जो दिन-दिन बढ़ता ही गया। मेजर टेलर ने सरदारों से स्पष्ट कह दिया—"तुम्हारे और महाराणा के मामले में मैं दख़ल न दूंगा; महाराणा से मिल-जुलकर तुम लोग अपने खानगी झगड़ों का फ़ैसला कर लो"। उसके इस कथन से सरदारों का सारा खटका दूर हो गया और वे पहले से भी अधिक निरंकुश बन गये। अब वे आपस में लड़ने-झगड़ने और मेवाड़ में उपद्रव करने लगे[3]।

लावे और बोहेड़े पर भींडर के सरदार की कई चढ़ाइयां हुईं, परन्तु इन दोनों ठिकानों के सरदारों ने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया,

---

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(२) वही।

(३) वही।

सरदारों की निरंकुशता

जिससे वह उनपर अधिकार न कर सका। उक्त सरदार की सहायता से लावे के सरदार चत्रसिंह शक्तावत के चाचा सालमसिंह ने अपने कुंडेई गांव पर, जो १३ वर्ष से ज़ब्त था, अधिकार कर लिया। इसपर महाराणा ने सेना भेजकर कुंडेई से सालमसिंह को निकाल दिया और उसका गांव खाजबख़्श सिन्धी को बतौर जागीर के दे दिया[1]।

खैराड़ प्रदेश के प्रबन्ध के लिए देवली में अंग्रेज़ी छावनी तथा जयपुर, बूंदी, और मेवाड़ राज्य के देशी थाने क़ायम किये गये। वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६०)

खैराड़ में शान्ति-स्थापन

में जहाज़पुर के मीनों ने फिर सिर उठाया। उनका दमन करने के लिए महाराणा की आज्ञा से महाराज चंदनसिंह माघ सुदि ६ (ई० स० १८६० ता० २६ जनवरी) को उदयपुर से ससैन्य रवाना हुआ और जहाज़पुर पहुंचकर उसने मीनों के गाड़ोली, लुहारी आदि कई गांव लूट लिये और कुछ मीनों को तोप से उड़वा दिया। इस प्रकार मीनों को कठोर दंड देकर उसने खैराड़ में शान्ति स्थापित की[2]।

ई० स० १८२६ (वि० सं० १८८६) में हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने अंग्रेज़ी इलाक़ों में सती की प्रथा बंद कर दी और देशी राज्यों से भी उसे

सती-प्रथा का बंद किया जाना

उठवा देने का वह प्रयत्न करने लगा। राजपूताने के राजाओं ने इस सम्बन्ध में उदयपुर की आड़ ली, जिससे महाराणा जवानसिंह के समय से ही पोलिटिकल अफ़सरों ने इस विषय में महाराणा से लिखा-पढ़ी शुरू की। इस महाराणा से भी इस संबंध में लिखा-पढ़ी होती रही। ई० स० १८५६ (वि० सं० १६१६) में राजपूताने का स्थानापन्न एजेंट गवर्नर जनरल मेजर ईडन इस सम्बन्ध में महाराणा से बातचीत करने के लिए मेवाड़ एवं जयपुर के पोलिटिकल एजेंट को साथ लेकर उदयपुर आया। महाराणा ने इस प्राचीन प्रथा को रोकना न चाहा। इसपर अंग्रेज़ी सरकार ने उससे कई बार ताक़ीद की, पर धर्म की आड़ लेकर वह बहुत दिनों तक टालमटूल करता रहा। लगातार सोलह वर्ष तक अंग्रेज़ी सरकार और उसके बीच

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(२) वही।

लिखा-पढ़ी होती रही। अंत में वि० सं० १९१८ श्रावण सुदि १० (ई० स० १८६१ ता० १५ अगस्त) को अंग्रेज़ी सरकार की इच्छा के अनुसार उसने अपने राज्य में हुक्म जारी करके उक्त प्रथा को बंद कर दिया[1]। इस प्रथा के साथ जीवित समाधि लेना भी रोक दिया गया।

बहुत दिनों से मेवाड़ राज्य में एक और बड़ी बुरी प्रथा चली आती थी। उसके अनुसार कभी-कभी लोग कुछ स्त्रियों पर डाकिनी (डायन) होने का झूठा दोष लगाकर उन्हें बड़ी क्रूरता एवं निठुराई के साथ मार डालते या अनेक प्रकार के दुःख देते थे, परंतु राज्य की ओर से ऐसे अमानुषिक कृत्य के लिए उन्हें दंड दिये जाने की कोई व्यवस्था न थी। ऐसी कोई स्त्री, महाराणा के सामने पेश किये जाने पर, डाकिनी होना स्वीकार कर लेती तो उसकी दृष्टि में भी वह प्राणदंड के ही योग्य समझी जाती। ब्रिटिश सरकार के अनुरोध करने पर यह कुत्सित प्रथा भी इसी महाराणा के समय में बंद की गई[2]।

जब महाराणा और सरदारों के बीच नाइत्तिफ़ाक़ी तथा दिन-दिन महाराणा की बीमारी बढ़ती गई तब उसने सोचा कि अपने जीतेजी किसी को उत्तराधिकारी नियत कर लेना चाहिये, क्योंकि मेरे कोई कुंवर नहीं है। इस विचार के अनुसार वि० सं० १९१८ आश्विन सुदि १० (ई० स० १८६१ ता० १३ अक्टूबर) को उसने सरदारों की सम्मति से अपने भाई शेरसिंह के पोते और शार्दूलसिंह के पुत्र शंभुसिंह को दत्तक लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया[3]।

शंभुसिंह का गोद लिया जाना

गद्दीनशीनी के बाद महाराणा के दोनों पैरों में बादी की बीमारी पैदा हो गई, जो उसके जीवन के अंत तक बनी रही। यह बीमारी दिन-दिन बढ़ती ही गई और वि० सं० १९०८ (ई० स० १८५१) से तो उसके लिए पैदल चलना तथा घोड़े की सवारी करना भी कठिन हो गया और पैरों का मांस सूखकर केवल हड्डियां रह गईं। बहुत दिनों तक वैद्यों, हकीमों आदि की चिकित्सा होती रही, पर उससे कुछ भी लाभ न हुआ। तब

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८।

(२) वही।

(३) वही।

संसार से नेह-नाता तोड़ तथा राजकाज से मुँह मोड़कर वह अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार अपना परलोक सुधारने में लग गया। प्रतिदिन ब्राह्मणों को रुपये और अशरफ़ियां बांटी जाने लगीं। अंत में वि० सं० १९१८ ज्येष्ठ (ई० स० १८६१ जून) में उसके घुटने के नीचे एक छोटा-सा फोड़ा निकला। हकीम अशरफ़अली की सलाह से उसपर तेज़ाब की पट्टी रक्खी गई। पट्टी रखते ही उसके घुटने में ऐसी जलन पैदा हुई कि उसे बुखार हो आया। तदुपरान्त जीवन से निराश होकर वह गो-सेवा में अपनी आयु के शेष दिन बिताने की इच्छा से गोवर्द्धन-विलास में, जहां गोशाला थी, रहने लगा। वहां उसकी बीमारी बराबर बढ़ती ही गई और कार्तिक सुदि १४ (ता० १६ नवम्बर) को उसका देहान्त हो गया। ऐजांबाई पासवान (उपपत्नी) उसके साथ सती हुई[1]।

महाराणा ने गोवर्द्धन-विलास नामक महल, गोवर्द्धन-सागर तालाब, पशुपतेश्वर महादेव, स्वरूप-बिहारी, जगत्-शिरोमणि और जवान-सूरज-बिहारी (बांकड़े बिहारी) के मंदिर बनवाये। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) के बनवाये हुए चित्तोड़ के प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ पर बिजली गिरने से उसकी ऊपर की छतरी टूट गई थीं, अतएव इस महाराणा ने उसकी मरम्मत कराई, परन्तु किसी मन्दिर का गुम्बज़ उखड़वाकर उसी से छतरी का गुम्बज़ बनवाया गया, जिससे उसकी वास्तविक प्राचीनता जाती रही। उसकी माता बीकानेरी ने जलनिवास महल के सामने पीछोला तालाब के किनारे हरिमंदिर बनवाया था, जिसकी इसने प्रतिष्ठा की।

महाराणा के समय के बने हुए मंदिर, महल आदि

राजपूतों की रीति के अनुसार उदयपुर के महाराणाओं के साथ अनेक राणियां सती होती रहीं। मेवाड़ के राजवंश में यह प्रथा महाराणा सरूपसिंह के समय तक जारी रही। सती होने की रीति केवल राजघरानों में ही नहीं, किन्तु प्रत्येक जाति के लोगों में प्रचलित थी। राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल कर्नल ईडन ने सुनी-सुनाई बातों के अधार पर 'ई० स० १८६५ से १८६७ तक की राजपूताने के पोलिटिकल

मेवाड़ के राजवंश में अन्तिम सती

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० ६५।

ऐडमिनिस्ट्रेशन की रिपोर्ट' में अंग्रेज़ों के विचार के अनुसार महाराणा सरूपसिंह के साथ होनेवाली सती का वृत्तान्त लिखा[1] है, जो नीचे दिया जाता है—

"महाराणा हिन्दुस्तान का सर्वप्रधान हिन्दू राजा तथा राजपूत जाति का मुखिया माना जाता है। उसके राज्य में पुराने रीति-रिवाज का पालन अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक धर्मनिष्ठा के साथ होता रहा है; इसलिए महाराणा सरूपसिंह का देहान्त होने पर उसकी प्रत्येक रानी से उसके साथ सती होकर सीसोदिया वंश की प्राचीन प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए कहा[2] गया, पर किसी ने भी स्वीकार न किया। तब उसकी एक उपपत्नी (पासवान, ऐजांबाई) से उसके भाई ने कहा—'महाराणा की राणियों ने अपने प्राण देकर राजवंश की गौरवरक्षा करने से साफ़ इन्कार कर दिया है; इसलिए यदि तू स्वामिभक्ति प्रकट करने का यह सुयोग हाथ से न जाने देगी तो उनके सामने पतिभक्ति का आदर्श रक्खेगी, संसार में तेरा सुयश फैलेगा और तेरा नाम रह

(१) मेजर अर्स्किन; राजपूताना गैज़ेटियर्स; जि० २ (दि मेवाड़ रेज़िडेन्सी), पृ० २७-२८।

(२) यह कथन सर्वथा निर्मूल है। अंग्रेज़ी सरकार के द्वारा सती की प्रथा बन्द कराये जाने से पूर्व किसी राजा की राणियों से सती होने के लिए आग्रह नहीं किया जाता था। यदि उनमें से कोई स्वतः सती होना चाहती तो ऐसा करने से वह नहीं रोकी जाती थी और न किसी के मना करने पर वह रुकती थी। सब राणियां सती भी नहीं होती थीं। अपने राज्य में महाराणा सरूपसिंह ने स्वयं इस प्रथा को बन्द किया था। मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर इस समय दौरे पर था, जिससे महाराणा की पासवान सती होने पाई। अंग्रेज़ी सरकार ने इस घटना को महाराणा की आज्ञा की अवहेलना समझा। इसी से आसींद के रावत को उदयपुर छोड़कर अपने ठिकाने को वापस जाना पड़ा और मेहता गोपालदास को, जिसके घर की एक दासी की वह पुत्री थी, भागकर कोठारिये में शरण लेनी पड़ी।

सती-प्रथा बंद होने के पहले प्रत्येक जाति में यह रीति थोड़ी-बहुत प्रचलित थी। कोई स्त्री किसी के उभाड़ने या बहकाने से सती नहीं होती थी, किन्तु अपने पति से विशेष प्रेम होने के कारण उसे एक प्रकार का विरहोन्माद-सा हो जाता था, जिससे वह शारीरिक कष्टों की परवा न कर बड़ी वीरता से उसके साथ जल मरती थी। उस समय सती होनेवाली स्त्रियों की संख्या की औसत सैकड़े पीछे केवल एक या दो थी (वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १८)। ऐसे भी कुछ उदाहरण मिले हैं कि प्रेम के आवेश में माता अपने पुत्र के, दासी स्वामिनी के और दास स्वामी के साथ जल मरे हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि कुछ स्त्रियां अपने पतियों की मृत्यु के कई वर्ष पीछे—उनका स्मरण आने पर प्रेमोन्माद के कारण—सती की भाँति जल मरी हैं।

जायगा'। अपने भाई के इस कथन का उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने सती होना स्वीकार कर लिया[1]। फिर राजोचित वस्त्रालङ्कारयुक्त महाराणा का शव 'वैकुंठी' (रथी) में बिठाया गया और उसकी सवारी बड़े समारोह के साथ महलों से महासतियों (राजाओं का दाहस्थान) को चली[2]। उस सवारी में महाराणा के उत्तराधिकारी[3] से लेकर अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, सभी राजभक्त लोग सम्मिलित थे और सब-के-सब पैदल चलते थे। इस बड़ी भीड़ में केवल महाराणा की वही उपपत्नी, जो सती होने के लिए तैयार हुई थी, खूब सजे-सजाये घोड़े पर सवार थी। उत्सव के योग्य वस्त्र तथा आभूषणों से वह अलङ्कृत थी और उसके केश खुले तथा बिखरे हुए थे। उस समय के दृश्य की उत्तेजना और सेवन किये हुए मादक[4] द्रव्य के प्रभाव से उसका चेहरा उन्मत्त

(१) यह कथन भी विश्वास के योग्य नहीं है। महाराणा की उपपत्नी होने के पीछे उसके भाई आदि कोई भी पुरुष न तो ज़नाने में जा सकते और न उससे मिल सकते थे। ऐसी दशा में उसको सती होने की सलाह देना सम्भव नहीं था। वास्तव में उसको सती होने के लिए किसी ने उकसाया नहीं था। वह तो महाराणा की अस्वस्थता के समय से ही गोवर्द्धनविलास में उसके साथ रहने लग गई थी और देहान्त से एक दिन पूर्व जब उसका पलंग वहां के महलों से गोशाला में पहुंचाया गया, तभी उसने सती होना स्थिर कर उसका सारा सामान एकत्र करा लिया था; इतना ही नहीं, किन्तु अपनी सवारी के लिए उसने एक ग़रीब घोड़ा तक तजवीज़ कर लिया था (सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवनचरित्र; पृ० ६३)।

(२) यह कथन भी ठीक नहीं है; क्योंकि महाराणा अपने अन्तिम दिनों में उदयपुर से अनुमान दो मील दूर अपने बनवाये हुए गोवर्द्धनविलास नामक महल में पांच महीने से रहता और उससे लगी हुई गोशाला की गायों की सेवा किया करता था। वहीं उसका शरीरान्त हुआ तथा वहीं से—न कि महलों से—उसकी सवारी महासतियों को चली। वह किशनपोल द्वार से शहर में प्रवेश कर भटियानी चौहट्टे होती हुई जगदीश के मन्दिर के पास ठहरी और वहां से महासतियों को गई थी।

(३) उत्तराधिकारी अर्थात् युवराज शंभुसिंह इस सवारी के साथ नहीं था। वह महाराणा का देहान्त होने के समय गोवर्द्धनविलास से शहर के महलों में चला गया था। उदयपुर राज्य में यह प्राचीन रीति चली आती है कि राजा का उत्तराधिकारी उसकी दाहक्रिया में शामिल नहीं होता।

(४) सती होनेवाली स्त्री को कोई नशीली चीज़ नहीं खिलाई जाती थी। वह तो स्वयं प्रसन्नतापूर्वक प्राणोत्सर्ग के लिए तैयार हो जाती थी। कोई उसपर दबाव नहीं डाल सकता था, बल्कि उसकी आज्ञा सबको माननी पड़ती थी, क्योंकि लोगों का यह विश्वास था कि सती का दिया हुआ शाप कभी निष्फल नहीं होता।

का-सा देख पड़ता था। ज्यों-ज्यों सवारी आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों वह, ऐसे अवसर की रीति के अनुसार, अपने शरीर पर बहुतायत से धारण किये हुए आभूषणों को खोलती और भीड़ के बीच इधर-उधर फेंकती[1] जाती थी। जब सवारी महासतियों को, जो क़नात से घिरी हुई थीं, पहुंची तब शव के वस्त्र उतार दिये गये[2] और महाराणा की उपपत्नी अपने मृत पति के सिर को अपनी गोद में रखकर चिता पर बैठ गई। फिर उसके चारों ओर तेल में डुबोई हुई लकड़ियां चुनी गईं, तब क़नात हटाकर चिता में आग लगा दी गई। चिता की आग खूब धधक उठी उस समय लोग शोर करने लगे और जब तक यह भयानक दृश्य बना रहा तब तक शोर-गुल जारी रहा"।

महाराणा का व्यक्तित्व

गद्दी पर बैठने से पहले ही यह महाराणा राज्य के रंगढंग से परिचित हो गया था। महाराणा होने के बाद स्वार्थी लोग इसे अपनी-अपनी ओर मिलाने की कोशिश करने लगे, पर यह कभी उनकी तरफ़ न झुका, बल्कि हरएक आदमी की परख[3] करता और अपने अनुभव के कारण उससे लाभ उठाता। मेवाड़ की बिगड़ी हुई शासन-व्यवस्था सुधारने, राज्य

(१) लेखक का यह कहना भी भ्रम-रहित नहीं है। आभूषण भीड़ के बीच फेंके नहीं जाते, किन्तु सती की इच्छा के अनुसार मार्ग में आनेवाले मन्दिरों को भेंट किये जाते या साथवालों में से ब्राह्मणादि को दिये जाते थे। सती की सवारी जब जगदीश के मंदिर के पास पहुँची तब उसने कुछ ज़ेवर उक्त मन्दिर को तथा कुछ अम्बा माता आदि अन्य मन्दिरों को भेंट किये और कुछ मार्ग में लोगों को दिये; जो ज़ेवर बच गये वे साथ जलाये गये थे।

(२) यह कथन भी निराधार है, क्योंकि राजाओं के मृत शरीर पर से वस्त्र और ज़ेवर नहीं उतारे जाते, किन्तु साथ ही जलाये जाते हैं। केवल ढाल, तलवार आदि शस्त्र हटा दिये जाते हैं।

(३) एक दिन महाराणा ने यह जानना चाहा कि अपने पास रहनेवालों में सभी हाँ-में-हाँ मिलानेवाले ही हैं या कोई स्पष्टवक्ता भी है। इसकी जाँच करने के लिए जब वह हवाख़ोरी को जाया करता उस समय एक बड़ी चट्टान की तरफ़ इशारा करके कहा करता कि मेरे बचपन में यह बहुत छोटी थी, परन्तु अब तो बहुत बड़ गई है। दरबारी लोग भी उसको प्रसन्न रखने के लिए उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते, परन्तु जब महाराणा ने एक बार अपने एक सरदार से यही बात कही तब उसने अर्ज़ किया कि 'पत्थर तो बढ़ता नहीं, हुज़ूर की नज़र में फ़र्क़ हो तो बात दूसरी है'। महाराणा ने उससे पूछा, 'क्या ये सब झूठ बोलते हैं?' इसपर उसने उत्तर दिया—'ये सब तो आपकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं, परंतु मैंने तो इस पत्थर को इतना-का इतना ही देखा है-कभी छोटा नहीं देखा'। इससे महाराणा को ज्ञात हो गया कि अपने साथ रहनेवालों में सत्यवक्ता कौन है।

का क़र्ज चुकाने, खज़ाना क़ायम करने तथा नया सिक्का चलाने का श्रेय इसी को है। यह दानी, धार्मिक, बुद्धिमान्, कवि, नीतिकुशल तथा पुराने विचारों का था और न्याय भी अच्छा करता था[1]। ब्राह्मणों, चारणों एवं याचकों को इसने बहुत दान दिया और दो बार सोने की तुलाएं कीं। बहुत पढ़ा-लिखा न होने पर भी यह बड़ा शिष्ट था और इसके मिलने-जुलने एवं बातचीत करने का ढंग बहुत अच्छा था। इसमें जैसे अनेक गुण थे वैसे ही दोष भी। यह लोभी एवं ईर्ष्यालु था और इसका स्वभाव कठोर तथा संशयशील था। इसके सिवा यह हठी और दुराग्रही भी था। अपनी बात पर दृढ़ रहने की इसकी आदत थी। जिस-पर यह एक बार अप्रसन्न हो जाता उसपर फिर कभी कृपा न करता। इन दोषों

---

(१) महाराणा के न्याय के विषय में कई दन्तकथाएं प्रसिद्ध हैं, जिनमें से एक नीचे दी जाती है—

एक बार कोई रैबारी (ऊँट आदि पशु पालनेवाला) किसी गांव के एक 'ढोली' (ढोल बजानेवाले) की स्त्री को भगाकर उदयपुर चला गया। भाग्यवश वह राज्य के शुतुरख़ाने का जमादार हो गया। ढोली भी अपनी स्त्री की तलाश में उदयपुर पहुँचा। उसका पता लगने पर उसने रैबारी से अपनी स्त्री वापस मांगी, परन्तु उसने कहा—'तेरी स्त्री मेरे यहां नहीं है।' तब उसने अपनी स्त्री वापस दिलाने के लिए महाराणा से फ़रियाद की, परन्तु यथेष्ट प्रमाण न मिलने से महाराणा ने उसे झूठा समझकर निकलवा दिया। तब ढोली ने प्रण किया कि कुछ भी हो, मैं न्याय कराके ही छोड़ूंगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार वह प्रतिदिन महाराणा के झरोखे के नीचे जाकर आवाज़ लगाता कि 'पृथ्वीनाथ! मेरा इन्साफ़ न हुआ'। छड़ीदारों ने कई बार धक्के लगाकर उसे वहां से निकाल दिया, परन्तु उसने अपनी ज़िद न छोड़ी। इसपर महाराणा ने विचार किया कि यह आदमी सच्चा मालूम होता है, क्योंकि बारबार धक्के खाने पर भी रोज़ आकर यह पुकारता है; इसका न्याय करना चाहिये। इसी विचार से उसने यह चाल चली कि कुछ दिन पीछे उस (रैबारी) की पद-वृद्धि कर दी और उससे कहा—'तू भी अपनी स्त्री को ज़नाने में भेजा कर।' इसपर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी स्त्री को महाराणी के पास भेजने लगा। एक दिन महाराणा ने अन्तः-पुर में रैबारिन को उपस्थित देखकर दासियों को ढोलक बजाने की आज्ञा दी और उनसे कहा—'जो सबसे अच्छी बजायगी उसे इनाम मिलेगा'। वास्तव में ढोलिन होने के कारण रैबारी की स्त्री ने ढोलक बहुत ही अच्छी बजाई। इससे महाराणा समझ गया कि यह स्त्री रैबारिन नहीं, किन्तु ढोलिन है। फिर उससे पूछा—'सच बोल, तू किसकी स्त्री है? नहीं तो तुझे दंड मिलेगा'। तब डरकर उसने सारा हाल सच-सच कह दिया। इसपर महाराणा ने उसे तो उसके वास्तविक पति (ढोली) के सुपुर्द कर दिया और रैबारी को दंड दिया।

के कारण यह लोकप्रिय न हो सका। अपने राज्य के पिछले समय में इसने पाणेरी गोपाल-जैसे छोटे आदमियों को मुंह लगा लिया था। इससे भी इसकी अपकीर्ति हुई। लोभवश यह कभी-कभी अन्याय भी कर बैठता था। आमेट के मामले में इसने एक पक्षवालों से तो तलवार-बन्दी के ४४००० रुपये ले लिये और दूसरे पक्षवालों को आज्ञा दी कि तुम लोग आमेट पर क़ब्ज़ा कर लो। सरदारों का झगड़ा मिटाने के लिए सरकार ने क़ौलनमा भी तैयार कराया, परन्तु कई एक सरदारों के साथ इसका वर्ताव अच्छा न होने के कारण वह अमल में न लाया जा सका और सरकार को उसे रद्द करना पड़ा। सरदारों का झगड़ा इसके जीवन-भर बना ही रहा।

इसका क़द मझौला, रंग गेहुंआ और शरीर न मोटा न दुबला था। आकृति इसकी ऐसी भव्य थी कि किसी का साहस न होता था कि इससे बेधड़क बातचीत कर सके।

महाराणा शंभुसिंह

महाराणा शंभुसिंह का जन्म वि० सं० १६०४ पौष वदि १ (ई० स० १८४७ ता० २२ दिसम्बर) को और गद्दीनशीनी वि० सं० १६१८ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १८६१ ता० १७ नवम्बर) को हुई। पौष वदि ६ (ता० २६ दिसंबर) को एक दरबार हुआ, जिसमें सब सरदार अपने पुराने वैमनस्य को छोड़कर सम्मिलित हुए। उस अवसर पर राजपूताने के एजेंट गवर्नर जनरल कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स तथा मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर ने अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से उपस्थित होकर खिलअत, हाथी, घोड़ा, ज़ेवर आदि सामान महाराणा को भेंट किया। उस समय दरबार में सब सरदारों को उपस्थित देखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए एजेंट गवर्नर जनरल ने अपने भाषण में कहा—'बहुत दिनों से महाराणा के दरबार में इतने सरदार कभी हाज़िर नहीं हुए थे, इसलिए आज का दिन बड़ा शुभ है'। फिर उन्हें सलाह देते हुए उसने कहा कि आप लोग अपनी छटूंद यथासमय दिया करें और अपने स्वामी की उचित सेवा किया करें। उसने उन्हें यह आशा भी बँधाई कि महाराणा और

आपके बीच के झगड़े तहक़ीक़ात होने पर दूर हो जायँगे और यदि आप लोग सच्चे भाव से महाराणा की सेवा करेंगे तो वे भी हरएक के हक़ में इन्साफ़ करेंगे'।

रीजेन्सी कौंसिल की स्थापना

महाराणा के नाबालिग़ होने के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौंसिल (पंचसरदारी) की स्थापना हुई। राव बख़्तसिंह (बेदले का), राज लालसिंह (गोगूंदे का), रावत अमरसिंह[1] (भैंसरोड़ का), रावत रणजीतसिंह (देवगढ़ का), महाराज हंमीरसिंह (भींडर का), मेहता शेरसिंह, कोठारी केसरीसिंह तथा पुरोहित श्यामनाथ उसके सदस्य (मेम्बर) नियुक्त हुए। महाराणा के दैनिक व्यय के लिए १००० रु० स्थिर हुआ और उसकी पढ़ाई के लिए एक पंडित नियुक्त किया गया। कौंसिल के सदस्यों ने अपने लिए ५५ रु० रोज़ लेना निश्चय किया। राज्य का सारा कार्य सदस्यों को सौंपा गया। सेना, न्याय, शासन-प्रबन्ध तथा इमारतों का काम तो सरदारों के, ख़ज़ाना मेहता शेरसिंह के, माल का काम कोठारी केसरीसिंह के और अन्य कार्य पुरोहित श्यामनाथ के सुपुर्द हुए। फिर भी इस कौंसिल से राज्य को कोई लाभ न पहुंचा। मेजर टेलर स्वयं राज्यकार्य की ओर बहुत कम ध्यान देता था, जिससे अधिकांश सरदार सदस्य भी अपने काम की बहुत कम परवा करने लगे और निरंकुश होकर वे अपना तथा अपने इष्ट-मित्रों एवं बन्धु-बांधवों का घर बनाने लगे। भूतपूर्व महाराणा ने देवगढ़ से जितनी छूटूंद मांगी थी उससे कम—अर्थात् ७००० रु० वार्षिक—स्थिर की गई, वहां के रावत की तलवारबन्दी माफ़ कर दी गई, उक्त महाराणा ने तलवार-बन्दी के जो २५००० रु० लिये थे वे लौटा दिये गये और उसके जो जो गांव ज़ब्त किये गये थे वे सभी बहाल कर दिये गये। मेहता शेरसिंह से दंड के जो ३००००० रु० लिये गये थे उन्हें, उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसके पुत्र सवाईसिंह ने ख़ज़ाने से वापस ले लिया। इसी समय कौंसिल ने निश्चय किया कि लावे (सरदारगढ़) का ठिकाना शक्तावत चत्रसिंह को वापस दे दिया जाय और उसके बदले में डोडिया मनोहरसिंह को खैरोदा गांव दिया जाय। मनोहरसिंह ने अपनी वंश-परंपरागत

(१) इसके ठिकाने में एक पुरोहित की स्त्री सती हो गई, जिसके अपराध में यह कौंसिल से अलग कर दिया गया।

जागीर छोड़ना स्वीकार न कर एजेंट गवर्नर जनरल के पास कौंसिल के निर्णय की अपील की, जिसपर कौंसिल का फ़ैसला रद्द कर दिया गया, और लावे पर मनोहरसिंह का ही अधिकार बना रहा। कानोड़ के रावत को तलवार-बन्दी नहीं लगती थी, तो भी महाराणा सरूपसिंह ने उसके बहाने उसका मंडप्या गांव ज़ब्त कर लिया था, वह उसे लौटा दिया गया।

कौंसिल के सरदारों से अपना मेलजोल बढ़ाकर कुछ अहलकार भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लग गये। सुन्दरनाथ पुरोहित आदि खानगी लोग महाराणा के मुसाहिब बनकर हुक्म चलाने लगे। इसके सिवा अन्तःपुर से जुदे ही हुक्म जारी होते थे। पुरोहित श्यामनाथ तथा कोठारी केसरीसिंह के स्पष्टवक्ता और राज्य के सच्चे हितैषी होने के कारण बहुतसे लोग उनके दुश्मन होकर उन्हें हानि पहुंचाने का उद्योग करने लगे। इस धींगाधींगी में राज्य की व्यवस्था बिगड़ गई।

ई० स० १८६२ मार्च (वि० सं० १९१८ फाल्गुन) में मेजर टेलर के स्थान पर कर्नेल ईडन मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट होकर उदयपुर आया। उसे रीजेन्सी कौंसिल का कार्य संतोषजनक प्रतीत न हुआ, जिससे उसने उसके कार्य में दखल देना मुनासिब समझा और पंडित लक्ष्मणराव को कौंसिल का मीर मुन्शी, पंडित गोविन्दराव को सायर (चुंगी) का दारोग़ा और मौलवी मुहम्मद निज़ामुद्दीनखां को दीवानी एवं फ़ौजदारी का अफ़सर नियुक्त किया। राज्य की आन्तरिक सीमाएं स्थिर करने के लिए एक अंग्रेज़ अफ़सर नियुक्त किया गया, सती तथा दास-प्रथा को रोकने के लिए कड़ी आज्ञा दी गई, बच्चों का बेचा जाना बंद किया गया और कठोर दंडों को रोकने का भी प्रयत्न हुआ। फ़ौजदारी मामलों में ताज़ीरात हिन्द के अनुसार दंड की व्यवस्था की गई और राज्य की तत्कालीन सेना पर्याप्त न होने से 'शंभुपलटन' नामक नई सेना क़ायम हुई।

महाराणा सरूपसिंह के विवरण में लिखा जा चुका है कि हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के समय में एक क़ानून-द्वारा देशी नरेशों को पुत्र के अभाव मे गोद लेने की मनाही की गई थी और कई देशी राज्य अंग्रेज़ी साम्राज्य में मिला

गोदनशीनी की सनद मिलना

लिये गये, जिससे सारे देश में असंतोष फैल गया। सिपाही-विद्रोह के बाद इंग्लैंड की सरकार ने जब हिन्दुस्तान का राज्य अपने अधिकार में ले लिया तब वह क़ानून अनुचित समझा जाकर रद्द कर दिया गया और ई० स० १८६२ ता० ११ मार्च (वि० सं० १९१८ फाल्गुन सुदि १०) को गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने महाराणा के नाम गोद लेने की सनद भेजी, जिसका आशय नीचे दिया जाता है—

"श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की इच्छा है कि भारत के राजाओं तथा सरदारों का अपने अपने राज्यों पर अधिकार तथा उनके वंश की जो प्रतिष्ठा एवं मानमर्यादा है वह हमेशा बनी रहे; इसलिए उक्त इच्छा की पूर्ति के निमित्त मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में यदि आप या आपके राज्य के भावी शासक हिन्दू धर्मशास्त्र और अपनी वंशप्रथा के अनुसार दत्तक लेंगे तो वह जायज़ समझा जायगा।

"आप यह निश्चय जानें कि जब तक आपका घराना सरकार का खैरख़्वाह रहेगा और उन अहदनामों, सनदों तथा इक़रारनामों का पालन करता रहेगा जिनमें अंग्रेज़ी सरकार के प्रति उसके कर्तव्य दर्ज हैं, तब तक आपके साथ के इस इक़रार में कोई बात बाधक न होगी"[1]।

सलूंबर का रावत केसरीसिंह वि० सं० १९१९ श्रावण वदि ६ (ई० स० १८६२ ता० २० जुलाई) को निस्सन्तान मर गया। उसके नज़दीकी रिश्तेदार कुरावड़ के रावत ईश्वरीसिंह ने उसका उत्तराधिकारी होना स्वीकार न किया। इसलिए केसरीसिंह के परिवारवालों तथा बेमाली के सरदार ज़ालिमसिंह आदि ने बंबोरा के रावत जोधसिंह को केसरीसिंह का उत्तराधिकारी बना दिया, परन्तु पीछे से ईश्वरीसिंह ने उदयपुर जाकर अपनी हक़दारी का दावा पेश किया। इसी तरह चावंड, भदेसर और भैंसरोड़ के सरदारों ने भी अपना हक़ ज़ाहिर किया। कौंसिल ने भदेसर के रावत भूपालसिंह को सलूंबर का हक़दार माना, परन्तु जोधसिंह ने सलूंबर न छोड़ा। तब पोलिटिकल एजेंट ने सरकार को लिखा कि रीजेंसी कौंसिल जोधसिंह

सलूंबर का मामला

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ३९। इस प्रकार की सनदें सभी राजाओं को दी गईं।

को सलूंबर से हटाने में असमर्थ है, इसलिए उसे अंग्रेज़ी सेना की सहायता की आवश्यकता है; परन्तु सरकार ने इस मामले में दखल देना स्वीकार न किया। इसपर यह फ़ैसला हुआ कि अभी जोधसिंह ही सलूंबर का स्वामी माना जाय, परंतु यदि वह निस्सन्तान मरे तो भूपालसिंह या उसका कोई पुत्र गोद लिया जाय।

रीजेन्सी कौंसिल का टूटना

कौंसिल के कार्य में कर्नल ईडन के हस्तक्षेप करने से सरदार सदस्य उसके विरोधी हो गये और इसी समय उक्त कर्नल-द्वारा दो-एक बातें ऐसी हुईं जो महाराणा को भी नागवार गुज़रीं। कौंसिल के सदस्यों में भी परस्पर वैमनस्य था। जब कभी सरदार किसी को जागीर दिलाना चाहते तो कोठारी केसरीसिंह यह कहकर उन्हें इस काम से रोकने की चेष्टा करता कि जागीर देने का अधिकार कौंसिल को नहीं, किन्तु महाराणा को है। इसके सिवा वह पोलिटिकल एजेंट को सरदारों की अनुचित कार्रवाइयों से भी परिचित कर देता और उचित सलाह देकर शासन-सुधार में भी उसकी सहायता करता था। उसकी इन बातों से अप्रसन्न होकर सरदार उसके विरुद्ध पोलिटिकल एजेंट को भड़काने लगे। उन्होंने उससे कहा—"केसरीसिंह की ही सलाह पर महाराणा चलते हैं, और उस(केसरीसिंह)ने राज्य के २००००० रुपये ग़बन कर लिये हैं"। पोलिटिकल एजेंट ने बिना जाँच किये ही सरदारों के इस कथन पर विश्वास कर लिया और केसरीसिंह को पद-च्युत कर उदयपुर से निकाल दिया, जिससे वह एकलिंगजी चला गया। फिर महाराणा की सलाह से इधर तो रियासत के मुसाहिब आदि सब प्रतिष्ठित पुरुषों ने सरकार से एजेंट की शिकायत की और उधर एजेंट ने भी सरदारों के विरुद्ध उसे लिखा। इसपर सरकार ने सरदारों की लिखी हुई शिकायत पर तो कुछ ध्यान न दिया, परंतु एजेंट की बात का विश्वास कर उसे रीजेन्सी कौन्सिल को तोड़ने और सारा कारबार अपने हाथ में लेने की आज्ञा दी। ई० स० १८६३ अगस्त (वि० सं० १६२० द्वितीय श्रावण) में एजेंट ने सरकार की आज्ञा के अनुसार रीजेन्सी कौंसिल तोड़कर उसके स्थान में 'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' नाम की कचहरी स्थापित की और उसमें मेहता गोकुलचंद तथा पंडित लक्ष्मणराव को नियुक्त किया।

मेवाड़ की प्रजा अदालती क़ायदों तथा कार्रवाइयों से पूर्ण अपरिचित थी। ऐसी स्थिति में बाहर से आये हुए अहलकारों ने उसपर एकदम दबाव डालकर उससे क़ायदों की पाबन्दी कराना चाहा, जिससे प्रजा में असन्तोष फैल गया। निज़ामत के अफ़सर निज़ामुद्दीनखां ने अदालतों के कुछ नये नियम बनाये और शहर में घोषणा की कि लेन-देन के मामले में कोई किसी पर ज्यादती न कर राज्य की अदालतों में नालिश करे। कुछ रियासती लोगों, कामदारों एवं सरदारों ने नगर-सेठ चंपालाल आदि महाजनों को बहकाया कि भविष्य में लेन-देन में यदि कोई दरबार की आण दिलायगा तो उसे दंड मिलेगा। इससे वहां की महाजन-जनता बहुत क्षुब्ध हो उठी और वि० सं० १६२० पौष वदि ७ (ई० स० १८६४ ता० १ जनवरी) को शहर में हड़ताल कर चंपालाल की अध्यक्षता में हज़ारों लोग पोलिटिकल एजेंट की कोठी पर पहुंचे। इसपर उस (एजेंट) ने कोठी से बाहर निकलकर लोगों को बहुत-कुछ समझाया, पर जब उससे कोई नतीजा न निकला तब उसने अपने चपरासियों और सिपाहियों को लोगों को हटाने की आज्ञा दी। वे लोगों को हटाने लगे, पर लोग न हटे और आपस में लाठी, पत्थर चलने की नौबत पहुंच गई, जिससे दोनों पक्ष में कुछ लोगों के चोट लगी। कर्नल ईडन के वचन देने पर, कि उनकी शिकायतों की जाँच होगी और वास्तविक शिकायतें दूर की जायँगी, वे लोग वहां से लौट आये और एजेंट गवर्नर जनरल के पास जाने के लिए शहर से निकलकर 'सहेलियों की बाड़ी' में ठहरे। इधर शहर में कई दिनों तक हड़ताल रहने से कर्नल ईडन विषम स्थिति में पड़ गया और महाराणा के साथ सहेलियों की बाड़ी जाकर उन्हें वापस ले आया। पीछे से उन शिकायतों की जाँच हुई, जिनमें से मुख्य शिकायतें इस प्रकार थीं—

उदयपुर में हड़ताल

'आण' और 'धरणा' न रोका जाय, रिहननामे की रजिस्ट्री न हो, दास-विक्रय की रोक न हो, बाहरी अहलकार न रक्खे जायँ आदि। स्थानापन्न एजेंट गवर्नर जनरल ने शिकायतों की जाँचकर उनमें से कुछ दूर कर दीं। अदालती क़ानूनों में कुछ संशोधन हुआ और मौलवी निज़ामुद्दीनखां अलग कर दिया गया।

महाराणा की नाबालिगी के समय पोलिटिकल एजेंट के निरीक्षण में कई सुधार हुए, जो इस प्रकार हैं—

दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों का अच्छा प्रबंध हुआ, अहलकारों की घूसखोरी आदि नाजायज़ कार्रवाइयां बहुत-कुछ रोक दी गईं, सहूलियत के साथ राज्य की आमद बढ़ाई गई; प्रजा के जान-माल की हिफ़ाज़त का विशेष प्रबंध किया गया, सड़कों पर गश्त लगाने के लिए पुलिस के सवार तैनात किये गये; एक अच्छा मदरसा[1] और अस्पताल खोला गया, जेल का नया बंदोबस्त हुआ और इमारतों आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उदयपुर से खेरवाड़े और नीमच तक पक्की सड़कें बनाने का कार्य आरंभ हुआ, शहर-सफ़ाई आदि स्वास्थ्य-सम्बन्धी कार्यों में उन्नति हुई और राजपूताना-मालवा रेल्वे के बनाये जाने की योजना होने पर मंदिरों और खास मकानों की रक्षा की शर्त पर रेल्वे के लिए ज़मीन मुफ़्त देना स्वीकार किया गया। देव-मन्दिरों की आय की भी व्यवस्था की गई[2]। राज्य की आमद २४७५००० रु० तक बढ़ी और खर्च २१७५००० रु० तक। खज़ाने में ३०००००० रु० नक़द जमा थे।

शासन-सुधार

वि० सं० १९२२ मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० स० १८६५ ता० २५ नवम्बर) को उदयपुर में एक दरबार हुआ, जिसमें महाराणा के बालिग़ हो जाने के कारण

(१) पहले उदयपुर में कोई सरकारी मदरसा नहीं था। महाराणा शंभुसिंह के समय में जो पहला सरकारी मदरसा क़ायम हुआ उसका नाम 'शंभुरत्न पाठशाला' रक्खा गया।

(२) पहले देव-मंदिरों की आय की कोई व्यवस्था नहीं थी। जिनके अधिकार में वे होते थे, वेही उनका प्रबन्ध करते थे। अलग-अलग महाराणाओं ने एकलिंगजी के मंदिर को बहुतसे गांव भेंट किये थे, जिनकी आमद बहुत थी; परन्तु उसके हिसाब की कोई व्यवस्था न थी, क्योंकि वह राज्य के हिसाब में नहीं जोड़ा जाता था। महाराणा सरूपसिंह ने उक्त मंदिर का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर वहां के गोसाईं का मासिक व्यय नियत कर दिया और एकलिंगजी का भंडार अलग क़ायम किया, जिसमें उक्त मंदिर की बचत के रुपये जमा रहते थे। इस भंडार में करीब ६००००० रु० जमा हो गये थे। इसलिए ई० स० १८६३ (वि० सं० १९२०) में महकमा देवस्थान की स्थापना हुई और राज्य के अन्य मंदिरों का प्रबन्ध भी उसी महकमे के सुपुर्द कर दिया गया, जिससे उस(महकमे)की आय बहुत बढ़ गई। देवस्थान के महकमे का हिसाब राज्य के हिसाब से अलग रहता है, परन्तु दुष्काल आदि के समय लोकोपयोगी कार्यों में भी उसकी बचत का उपयोग किया जाता है।

महाराणा को राज्याधिकार मिलना

कर्नल ईडन[1] ने गवर्नर जनरल की तरफ़ से उसे राज्य के पूरे अधिकार दिये[2]। मेहता गोकुलचन्द, जो 'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' का कार्यकर्त्ता था, मांडलगढ़ चला गया और दूसरा सदस्य पं० लछमणराव तथा बेमाली का सरदार ज़ालिमसिंह महाराणा के पास रहने लगे। वि० सं० १९२३ आषाढ़ वदि ८ (ई० स० १८६६ ता० ५ जुलाई) को 'कचहरी अहलियान' तोड़कर 'खास कचहरी' क़ायम की गई। महाराणा को कोठारी केसरीसिंह पर पूर्ण विश्वास था, इसलिए उसने उसपर लगाये हुए ग़बन के दोष की जाँच कराई, जिसमें निर्दोष सिद्ध होने पर महाराणा ने उसे फिर प्रधान बनाया।

सत्यव्रत चूंडा ने मेवाड़ का सारा राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, जिसके सम्मानार्थ चूंडा के मुख्य वंशधर सलूंबर के रावत की मातमपुरसी के लिए

महाराणा का सलूंबर जाना

महाराणा स्वयं सलूंबर जाया करते थे। इस पुरानी प्रथा के अनुसार महाराणा शंभुसिंह ने वि० सं० १९२३ कार्तिक वदि ४ (ई० स० १८६६ ता० २७ अक्टूबर) को सलूंबर जाकर रावत जोधसिंह की मातमपुरसी की। उसने भी महाराणा का बहुत-कुछ सम्मान किया।

महाराणा सरूपसिंह के वृत्तान्त में बतलाया जा चुका है कि आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के निस्सन्तान मरने पर उसके नज़दीकी रिश्तेदार—

आमेट के लिए रावत अमरसिंह का दावा

जीलोले के सरदार—दुर्जनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह आमेट का स्वामी बना। बेमाली के रावत ज़ालिमसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को आमेट का सरदार बनाना चाहा, परंतु उस समय उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

ज़ालिमसिंह पर महाराणा (शंभुसिंह) की विशेष कृपा होने के कारण

---

(१) उदयपुर का पोलिटिकल एजेंट कर्नल ईडन वि० सं० १९२२ (ई० स० १८६५) में राजपूताने का एजेंट गवर्नर जनरल बना, जिससे मेजर निक्सन मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट नियुक्त हुआ।

(२) महाराणा की नाबालिग़ी के समय में ही उसे राज्य-कार्य से परिचित कराने के लिए पोलिटिकल एजेंट ने गवर्मेंट की सम्मति से कई महकमों का काम उसके सुपुर्द कर दिया था और ख़ज़ाना भी उसके निरीक्षण में रखा गया था।

उसने महाराणा से अर्ज़ कर अपने पुत्र अमरसिंह को आमेट का स्वामी बनाने का उद्योग किया। महाराणा ने भी उसके लिहाज़ से उसका कथन स्वीकार कर अमरसिंह को आमेट की तलवार बँधवा दी और चत्रसिंह पर बहुत-कुछ दबाव डाला। इससे आमेट का झगड़ा नये सिरे से शुरू हुआ। रावत चत्रसिंह आमेट में और रावत अमरसिंह उदयपुर में—आमेट की हवेली में—रहने लगा। इस प्रकार आमेट के दो स्वामी हो गये। चत्रसिंह ने आमेट न छोड़ा, जिससे फ़साद की फिर बुनियाद देखकर महाराणा ने आमेट पर तो चत्रसिंह को ही क़ायम रक्खा और अपना वचन निभाने के लिए अमरसिंह को मेजा की—क़रीब २०००० रुपये वार्षिक आय की—जागीर खालसे से देकर उसको प्रथम श्रेणी का अलग सरदार बनाया। फिर महाराणा ने चत्रसिंह को भी आज्ञा दी कि वह अपने ठिकाने में से ८००० रु० की जागीर अमरसिंह को दे। उसने जागीर न देकर सालाना ८००० रु० नक़द अमरसिंह को देना चाहा, जिससे यह मामला बहुत दिनों तक तय न हो सका। चत्रसिंह के मरने पर उसका पुत्र शिवनाथसिंह आमेट का स्वामी हुआ। अंत में महाराणा सज्जनसिंह के राज्य-समय पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी ने अमरसिंह को २५०० रु० की जागीर और ५५०० रु० रोकड़ सालाना आमेट से दिलवाकर यह मामला तय कर दिया।

भीषण अकाल

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) में वृष्टि न होने से राजपूताने में बड़ा भारी अकाल पड़ा। महाराणा की आज्ञा के अनुसार कोठारी केसरीसिंह ने सब व्यापारियों को बुलाकर कहा कि यथाशक्ति आप बाहर से अनाज मंगवाओ, इसमें सरकार रुपये की सहायता देगी। इसपर व्यापारियों ने पर्याप्त मात्रा में अनाज मंगवाया, परन्तु अकाल बहुत अधिक व्यापक था। वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) के आरम्भ से ही अकाल ने उग्र रूप धारण किया। बहुतसे ग़रीब भूखों मरने लगे। ग़रीबों के लिए महाराणा ने एक खैरातखाना खोल दिया, जहां उनको अनाज बाँटा जाता था। महाराणा का अनुकरण कर बहुतसे सरदारों तथा भीलवाड़े, चित्तोड़, कपासन आदि स्थानों के साहूकारों ने भी अपने यहां खैरातख़ाने खोले।

इधर अकाल से सारी प्रजा तंग हो रही थी, इतने ही में हैज़ा भी बड़े ज़ोर से फैला। उदयपुर के प्रत्येक मुहल्ले और गली में हाहाकार मच गया। लगभग २०० मनुष्य नित्य मरने लगे। लोग अपने सम्बन्धी रोगियों को घरों में छोड़-छोड़कर बाहर चले गये। मुर्दों को जलाने या दफ़नानेवाला कोई न रहा। जगह-जगह लाशें पड़ी मिलती थीं, जिन्हें कोतवाल गाड़ियों में भरवाकर जलवा देता था। पीछोला तालाब इतना सूख गया था कि ब्रह्मपुरी से जगनिवास तक किश्ती के स्थान में बग्गी जाया करती थी। सब बाग़-बगीचे सूख गये। शहर के चारों तरफ़ के कुएँ और बावड़ियां भी खाली हो गई। पीने का जल केवल पीछोले से मिलता था, जिसके किनारे थोड़े-थोड़े अंतर पर बहुतसी कुइयां खुदवाई गई थीं।

वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में अच्छी वर्षा होने के कारण मक्का, ज्वार आदि की फ़सल अच्छी हुई, परंतु अनाज अभी कच्चा ही था, तो भी लोगों ने उसे खाना आरंभ कर दिया। पेट-भर नया कच्चा अनाज खाने से हज़ारों आदमी बीमार होकर मरने लगे। इस तरह हैज़े से भी अधिक मनुष्य मरे। अंग्रेज़ी सरकार ने दास खरीदने की भी आज्ञा दे दी। दो-दो रुपयों में लड़के बिकने लगे। महाराणा ने भी इस अकाल और बीमारी को रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किया, अनाज का महसूल माफ़ कर दिया और जिन व्यापारियों ने दुर्भिक्ष-निवारण में अधिक कार्य किया था उनका सदा के लिए आधा या चौथाई महसूल छोड़ दिया। सरकार ने नीमच से नसीराबाद तक सड़क बनवाने का कार्य आरंभ कर दिया था; महाराणा ने इस सड़क का मेवाड़ का हिस्सा इस अभिप्राय से बनवाना शुरू किया कि बहुतसे अकाल-पीड़ितों को इससे काम मिल जाय। इस कार्य में १८०००० रुपये व्यय हुए। इसके अतिरिक्त मेवाड़ में जगह-जगह इमारतों आदि का काम शुरू कर उसमें महाराणा ने अनुमान २००००० रु० लगाये और अनेक प्रकार से उसने ग़रीबों की सहायता की[1]।

वि० सं० १९२५ में अंग्रेज़ी सरकार और उदयपुर राज्य के बीच एक-दूसरे के मुजरिमों को सौंपने के संबंध में अहदनामा[2] हुआ, जो इस प्रकार है—

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

(२) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ३६-३७।

१—अंग्रेज़ी राज्य या उसके बाहर का कोई आदमी यदि अंग्रेज़ी इलाक़े में कोई संगीन जुर्म करे और मेवाड़ राज्य की सीमा के भीतर आश्रय ले, तो मेवाड़ की सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और उसके तलब किये जाने पर प्रचलित नियम के अनुसार अंग्रेज़ी सरकार के सुपुर्द करेगी।

अंग्रेजी सरकार के साथ अहदनामा

२—कोई आदमी, जो मेवाड़ की प्रजा हो, यदि मेवाड़ राज्य की सीमा के भीतर कोई संगीन जुर्म करे और अंग्रेज़ी राज्य में शरण ले, तो उसके तलब किये जाने पर अंग्रेज़ी सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और दस्तूर के मुताबिक़ मेवाड़ सरकार के हवाले करेगी।

३—कोई आदमी, जो मेवाड़ की प्रजा न हो, मेवाड़ राज्य की सीमा के भीतर कोई संगीन जुर्म करके अंग्रेज़ी राज्य में शरण ले तो अंग्रेज़ी सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और उसके मुक़द्दमे की तहक़ीक़ात वह अदालत करेगी जिसे अंग्रेज़ी सरकार हुक्म देगी। साधारण नियम के अनुसार ऐसे मुक़द्दमों की तहक़ीक़ात पोलिटिकल एजेंट की अदालत में होगी, जिसके साथ मेवाड़ का राजनैतिक सम्बन्ध रहेगा।

४—किसी सूरत में कोई सरकार किसी व्यक्ति को, जिसपर संगीन जुर्म का अभियोग लगाया गया हो, सुपुर्द करने के लिए बाध्य न होगी, जब तक कि प्रचलित नियम के अनुसार जिसके राज्य में अपराध किये जाने का अभियोग लगाया गया हो वह सरकार—या उसकी आज्ञा से कोई—अपराधी को तलब न करे और जब तक जुर्म की ऐसी शहादत पेश न की जाय जिसके द्वारा जिस राज्य में अभियुक्त मिले उसके नियमानुसार उसकी गिरफ़्तारी जायज़ समझी जाय और यदि वही अपराध उसी राज्य में किया जाता तो वहां भी अभियुक्त दोषी सिद्ध होता।

५—नीचे लिखे हुए अपराध संगीन जुर्म समझे जायँगे—

१—क़त्ल।

२—क़त्ल करने की कोशिश।

३—उत्तेजना की दशा में किया हुआ दंडनीय मनुष्य-वध।

४—ठगी।

५—विष देना।

६—ज़िना-बिल्-जब्र।

७—सख़्त चोट पहुंचाना।

८—बच्चों का चुराना।

९—स्त्रियों का बेचना।

१०—डकैती।

११—लूट।

१२—सेंध लगाना।

१३—मवेशी की चोरी।

१४—घर जलाना।

१५—जालसाज़ी।

१६—जाली सिक्का बनाना या खोटा सिक्का चलाना।

१७—दंडनीय विश्वासघात।

१८—माल-असबाब का हज़म करना, जो दंडनीय समझा जाय।

१९—ऊपर लिखे हुए अपराधों में मदद देना।

६—ऊपर लिखी हुई शर्तों के अनुसार मुजरिम को गिरफ़्तार करने, रोक रखने या सुपुर्द करने में जो खर्च लगे वह उसी सरकार को देना पड़ेगा जो मुजरिम को तलब करे।

७—ऊपर लिखा हुआ अहदनामा तब तक जारी रहेगा जब तक अहदनामा करनेवाली दोनों सरकारों में से कोई उसके तोड़े जाने की अपनी इच्छा दूसरी से प्रकट न करे।

८—इस(अहदनामे)में जो शर्तें दी गई हैं उनमें से किसी का भी असर ऐसे किसी अहदनामे पर न होगा जो दोनों पक्षों के बीच इससे पहले हो चुका है, सिवा किसी अहदनामे के उस अंश के जो इसके विरुद्ध हो।

यह अहदनामा ई० स० १८६८ ता० १६ दिसम्बर, तदनुसार वि० सं० १९२५ पौष सुदि ३, को उदयपुर में हुआ।

(हस्ताक्षर) ए० आर० ई० हचिन्सन,
लेफ़्टेनेंट-कर्नल, क़ायममुक़ाम पोलिटिकल एजेंट,
मेवाड़।

उदयपुर के महाराणा की मुहर और दस्तख़त।

(हस्ताक्षर) मेयो,

हिन्दुस्तान का वाइसरॉय और गवर्नर जनरल।

ई० स० १८६६ ता० २२ जनवरी (माघ सुदि ६) को फ़ोर्ट विलियम में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जनरल ने इस अहदनामे को स्वीकार किया।

(दस्तख़त) डब्ल्यू० एस० सेटन-कर,

भारत-सरकार का सेक्रेटरी।

सोहनसिंह को बागोर की जागीर मिलना

वि० सं० १६२६ आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १८६६ ता० १५ जुलाई) को बागोर के महाराज समर्थसिंह का हैज़े से देहान्त हो गया। उसके सन्तान न होने से कमल्यावाले संन्यासी[1] और पुरोहित सुन्दरनाथ ने महाराज शेरसिंह के पांचवें पुत्र सोहनसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने की कोशिश की, क्योंकि महाराणा सरूपसिंह की स्वीकृति लेकर समर्थसिंह ने सोहनसिंह को गोद ले लिया था। इसपर बेदले के राव बख़्तसिंह और कोठारी केसरीसिंह ने महाराणा से निवेदन किया कि जब समर्थसिंह का छोटा भाई शक्तिसिंह विद्यमान है, तब सबसे छोटे भाई सोहनसिंह को बागोर की जागीर नहीं मिलनी चाहिए। यदि आप की उसपर अधिक कृपा हो, और उसे कुछ देना ही है, तो जैसे उसे पहले जागीर दी थी, वैसे ही और दे दी जाय। पोलिटिकल एजेंट ने भी सोहनसिंह का विरोध किया, परंतु महाराणा ने उसी (सोहनसिंह) को बागोर का स्वामी बना दिया और शक्तिसिंह के निर्वाह के लिए निश्चय हुआ कि बागोर में से ५००० रु० की जागीर तो उसके पास है ही, ७००० रु० की और उसे दिला दी जाय।

---

(१) कमल्यावाला संन्यासी बड़ा धूर्त था। कुछ स्वार्थी लोगों ने महाराणा को वश में करने के लिए उसे करामाती प्रसिद्ध कर दिया। तब उसने लोगों को धोखा देकर बहकाना शुरू किया। शनैः-शनैः बड़े आदमी भी उसके बहकाने में आ गये और सब राजकर्मचारी उसकी ख़ुशामद करने लगे। वह महाराणा की तरह आज्ञा देकर इच्छानुसार वस्तु मंगा लेता था। ख़ज़ाने पर भी उसने हाथ डालना चाहा, परन्तु वहां कोठारी केसरीसिंह के सामने उसकी एक न चली। कुछ समय पश्चात् उसकी करतूतें ज़ाहिर हो जाने पर वह उदयपुर से निकाल दिया गया (वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६—हस्तलिखित)।

हक़दार होने पर भी बागोर की जागीर न मिलने के कारण शक्तिसिंह पीछे से फ़साद करने लगा, जिससे महाराणा ने फ़ौज भेजकर उसे गिरफ़्तार कराया और उदयपुर लाया जाकर वह निगरानी में रक्खा गया।

वि० सं० १९२६ श्रावण वदि ३ (ई० स० १८६९ ता० २६ जुलाई) को कोठारी केसरीसिंह ने, जो निर्भीक, ईमानदार तथा सच्चा स्वामिभक्त था और जिसे अपने मालिक का नुक़सान सहन नहीं होता था, प्रधान के पद से इस्तीफ़ा दे दिया, तब महाराणा ने उसका काम मेहता गोकुलचन्द और पंडित लछमणराव को सौंपा।

कोठारी केसरीसिंह का इस्तीफ़ा देना

वि० सं० १९२६ पौष वदि ५ (ई० स० १८६९ ता० २३ दिसंबर) को महाराणा ने 'महकमा खास' नाम की एक कचहरी क़ायम की। पंडित लछमणराव ने अपने दामाद मार्तंडराव को इसके सेक्रेटरी (मंत्री) पद के लिए पेश किया, परन्तु उससे काम न चलता देखकर महाराणा ने मेहता पन्नालाल[1] को सेक्रेटरी बनाया। कुछ समय पश्चात् प्रधान का काम भी महकमे खास के सेक्रेटरी के सुपुर्द हुआ और प्रधान का पद उठा दिया गया। महाराणा ने दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों के क़ायदे भी जारी किये[2]।

महकमा खास का क़ायम होना

वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में गवर्नर जनरल लॉर्ड मेयो का अजमेर आना हुआ, तब एजेंट गवर्नर जनरल ने महाराणा को अजमेर जाने की सलाह दी। पहले तो महाराणा ने वहां जाने में एतराज़ किया, परन्तु एजेंट के आग्रह से वह अपने सैन्य-सहित उदयपुर से अजमेर को रवाना हुआ। अजमेर और मेवाड़ की सीमा के पास वर्ले में अंग्रेज़ी अफ़सर उसके स्वागत के लिए आये। वि० सं० १९२७ कार्तिक

महाराणा का अजमेर जाना

---

(१) मेहता पन्नालाल कोठारी केसरीसिंह के बड़े भाई छगनलाल का दामाद और प्रसिद्ध मेहता अगरचन्द के भाई के वंशज मुरलीधर का पुत्र था। यह बड़ा ही कार्यकुशल और नीतिज्ञ पुरुष था। अपनी बुद्धिमानी से इसने बड़ी उन्नति की और यह लगातार तीन महाराणाओं (शंभुसिंह, सज्जनसिंह और फ़तहसिंहजी) का मंत्री रहा। सरकार ने भी 'राय' और सी. आई. ई. की उपाधि देकर इसका उचित सम्मान किया।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

वदि १० (ई० स० १८७० ता० १६ अक्टूबर) को महाराणा अजमेर पहुंचा। कार्तिक वदि १३ को दरबार हुआ, जिसमें सदा के नियमानुसार पहली बैठक महाराणा को दी गई और दूसरी बैठक के लिए जोधपुर तथा जयपुर के राजाओं में बहस छिड़ गई। अन्त में जोधपुर का महाराज तख़्तसिंह अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्रवाई होती देखकर दरबार में न बैठा और वहां से लौट गया। इस अवसर पर महाराणा और भी कई राजाओं से मिला। दरबार समाप्त होने पर महाराणा पुष्कर गया, जहां उसने चांदी का तुलादान किया।

राजराणा पृथ्वीसिंह का सम्मान

अंग्रेज़ी सरकार ने राजराणा ज़ालिमसिंह झाला के वंशज मदनसिंह को वि० सं० १८९५ (ई० स० १८३८) में कोटे से १७ परगने दिलाकर झालावाड़ का अलग राजा बनाया था, परन्तु राजपूताने के राजाओं में से किसी ने उसे राजा नहीं माना। अजमेर के दरबार के समय झालावाड़ के राजराणा पृथ्वीसिंह की पेशवाई के लिए मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट भेजा गया। राजराणा ने उससे कहा—'आप महाराणा साहब से मेरी मुलाक़ात करा दें'। हाड़ौती के पोलिटिकल एजेंट ने भी इस विषय में बहुत कोशिश की, जिससे मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट ने राजाराणा की मुलाक़ात के लिए महाराणा से अनुरोध किया, परन्तु महाराणा के बड़े सरदारों ने इसका विरोध किया, जिससे यह बात मुल्तवी रही। अजमेर से महाराणा की रवानगी के दिन यह मामला फिर पेश हुआ और पोलिटिकल एजेंट ने आग्रह कर कहा—"राजराणा ज़ालिमसिंह के वंशज मदनसिंह को अंग्रेज़ी सरकार ने झालावाड़ का राजा बनाया था, परन्तु अब तक राजपूताने के किसी राजा ने झालावाड़ के स्वामी को राजा नहीं माना और हरएक राजा उसको अपनी बराबरी का समझने और गद्दी पर अपने बराबर बिठाने में उज़्र करता है। ऐसी दशा में जिसको सरकार ने राजा बनाया है उसको वैसा ही स्वीकार कर राजपूताने में उदाहरण रखने की आशा आपके सिवा और किससे की जा सकती है"? इस प्रकार बारम्बार आग्रह होने से महाराणा ने इस बात को स्वीकार कर राजराणा पृथ्वीसिंह से नसीराबाद में मुलाक़ात की और कोटे के राजा के समान उसका आदर कर उसे अपनी बाईं तरफ़ गद्दी पर बिठाया तथा मोरछल, चँवर आदि लवाज़मा रखने की आज्ञा दी। अन्त में हाथी, घोड़े, ख़िलअत,

ज़ेवर आदि प्रदान कर उसे विदा किया[1]। नसीराबाद से रवाना होकर महाराणा अनेक स्थानों में ठहरता हुआ उदयपुर पहुँचा।

रुपये इकट्ठा करने के लिए महाराणा का उद्योग

कोठारी केसरीसिंह पर महाराणा बहुत कृपा रखता था, इसलिए कुछ ईर्ष्यालु पुरुषों ने महाराणा से अर्ज़ किया कि आपका विचार तीर्थयात्रा का है, परन्तु राज्य का आयव्यय बराबर है, इसलिए अहलकारों से १०-१५ लाख रुपये तीर्थ-यात्रा के लिए इकट्ठे कर लेने चाहियें। महाराणा ने उनके बहकाने में आकर कोठारी केसरीसिंह और छगनलाल से तीन लाख रुपये तथा मेहता पन्नालाल से १२०००० रुपये का रुक्क़ा लिखवाया और अन्य अहलकारों से भी लेने का विचार किया; परन्तु कविराजा श्यामलदास तथा पोलिटिकल एजेंट कर्नल निक्सन के कहने से महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह और छगनलाल के १००००० रुपये तथा मेहता पन्नालाल के ८०००० रुपये छोड़ दिये और अन्य अहलकारों से भी रुपये न लिये[2]। अपने पासवालों के बहकाने में आकर राजा लोग अपने विश्वासपात्रों के साथ भी कैसा व्यवहार कर बैठते हैं, इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

महाराणा को ख़िताब मिलना

एजेंट गवर्नर जनरल कर्नल ब्रुक ने अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से महाराणा को जी० सी० एस्० आई० (ग्रैंड कमांडर ऑफ़ दि स्टार ऑफ़ इंडिया) नाम का सबसे बड़ा ख़िताब दिये जाने की सूचना दी। इसपर महाराणा ने कहा कि उदयपुर के महाराणा बहुत प्राचीन काल से 'हिन्दुआ सूरज' कहलाते हैं, इसलिए मुझे 'स्टार' अर्थात् तारा बनने की ज़रूरत नहीं है। इसके बिना भी मैं सरकार का कृतज्ञ हूं। इसके उत्तर में गवर्नर जनरल ने कहलाया कि हमारे यहां बराबरीवालों को यह ख़िताब दिया जाता है; इससे आपकी अप्रतिष्ठा नहीं, किन्तु प्रतिष्ठा ही होगी। इसपर संतुष्ट होकर महाराणा ने ख़िताब लेना स्वीकार किया। फिर वि० सं० १६२८ मार्गशीर्ष वदि ६ (ई० स० १८७१ ता० ६ दिसंबर) को महलों

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६। मुंशी ज्वालासहाय; वक़ाया राजपूताना; जि० १, पृ० ३६६-६७।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १६।

में दरबार हुआ, जिसमें कर्नल ब्रुक ने महाराणा को ख़िताब का तमगा आदि पहनाकर उदयपुर के राज्यचिह्न-सहित एक झंडा दिया[1]।

लांबा और रूपाहेली का झगड़ा

राठोड़ों के रूपाहेली और लांबा, दोनों ठिकाने बदनोर से निकले हैं। महाराणा सरूपसिंह के समय में लांबे के ठाकुर बाघसिंह ने दो तालाब बनवाये, परन्तु उनमें पानी की आय कम होने के कारण पानी पहुंचाने के लिए उसने रूपाहेली के ठाकुर सवाईसिंह की आज्ञा से रूपाहेली के तसवारिया गांव की सीमा में होकर दो नालियां बनवाईं। कुछ समय पीछे उन नालियों के आसपास की रूपाहेली की ज़मीन पर बाघसिंह ने खेती कराना शुरू किया। इसपर रूपाहेलीवालों ने उसे बहुत समझाया, पर उसने न माना; तब वि० सं० १९१२ भाद्रपद (ई० स० १८५५ सितम्बर) में दोनों पक्षवालों में लड़ाई छिड़ गई, जिसमें बाघसिंह के भाई लक्ष्मणसिंह और हंमीरसिंह, उसका दत्तक पुत्र बहादुरसिंह तथा न्यारां गांव (अजमेर ज़िले में) का गौड़ बाघसिंह मारे गये। रूपाहेली के तरफ़दारों में से छोटी रूपाहेली का शिवनाथसिंह तथा दो अन्य राजपूत काम आये। इसके सिवा दोनों ओर के कुछ राजपूत घायल भी हुए। महाराणा सरूपसिंह ने इस झगड़े की जाँच कराई तो बाघसिंह की ज्यादती साबित हुई, जिससे उसे कुछ भी हरजाना न दिलाया। वि० सं० १९१७ में ठाकुर सवाईसिंह के मरने पर उसका पुत्र बलवन्तसिंह रूपाहेली का स्वामी हुआ। १९ वर्ष पीछे महाराणा शंभुसिंह के समय में बाघसिंह ने उक्त मामले को नये सिरे से छेड़ा और अपने पुत्र आदि की 'मूंडकटी' (मारे जाने के एवज़) में रूपाहेली से तसवारिया गांव लेना चाहा। एजेंट गवर्नर जनरल कर्नल ब्रुक की सिफ़ारिश से महाराणा ने इसकी तहक़ीक़ात के लिए एक नई पंचायत क़ायम की, जिसमें बेदले का राव बख़्तसिंह, भींडर के महाराज का पुत्र मदनसिंह, मेहता ज़ालिमसिंह (रामसिंहोत), कोठारी छगनलाल, बख़्शी मथुरादास और ढींकड़िया उदयराम पंच नियत हुए। इन्होंने वि० सं० १९२८ (चैत्रादि १९२९) ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० १८७२ ता० २८ मई) को बाघसिंह को तसवारिया गांव दिलाना स्थिर किया। तीन महीने पीछे भाद्रपद वदि १२ को

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १९।

ठाकुर बलवन्तसिंह भी मर गया और उसका बालक पुत्र चतुरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उस समय महाराणा ने तसवारिया गांव बाघसिंह के सुपुर्द किये जाने की आज्ञा दी, परन्तु उसका पालन न होने पर उसने मेहता गोकुलचन्द की अध्यक्षता में तोपखाने-सहित राज्य और सरदारों की सेना तसवारिये पर भेजी। तब सरदार की माता और चाचा ने महाराणा को सेनाव्यय देकर उससे प्रार्थना की कि तसवारिया भले ही आप रख लें, परन्तु वह लांबावालों को न दिया जाय। इसपर महाराणा ने वह गांव लांबावालों को न देकर अपने ही अधिकार में रक्खा[1]। महाराणा शम्भुसिंह का देहान्त होने के पश्चात् महाराणा सज्जनसिंह की बाल्यावस्था में रीजेन्सी कौंसिल (पंचसरदारी) में यह मुक़द्दमा फिर दायर हुआ और तसवारिया गांव रूपाहेली के स्वामी को वापस दिलाने का निश्चय हुआ[2]। अन्त में एजेंट गवर्नर जनरल की राय के अनुसार यह तय हुआ कि उक्त गांव राज्य की हिफ़ाज़त में रहे और जब महाराणा को इख़्तियार मिलें तब वह जो निर्णय करें वह ठीक समझा जाय। अब तक यह गांव राज्य के ही अधिकार में चला आता है।

मेहता पन्नालाल प्रबन्ध-कुशल और परिश्रमी था। अपनी योग्यता से उसने राज्य-प्रबन्ध की नींव दृढ़ की और खानगी में वह महाराणा को हरएक बात का हानिलाभ बताया करता था, इसलिए बहुतसे रियासती लोग उसके शत्रु हो गये। उसे हानि पहुंचाने के लिए उन्होंने महाराणा से शिकायत की कि वह खूब रिश्वत लेता है और उसने आपपर जादू कराया है। महाराणा बीमार तो था ही, इतने में जादू कराने की शिकायत होने पर मेहता पन्नालाल वि० सं० १९३१ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १८७४ ता० ९ सितंबर) को कर्ण-विलास में क़ैद किया गया, परन्तु तहक़ीक़ात करने पर दोनों बातों में वह निर्दोष सिद्ध हुआ, तो भी उसके इतने दुश्मन हो गये थे कि महाराणा की दाहक्रिया के समय उसके प्राण लेने की कोशिश भी

मेहता पन्नालाल का क़ैद किया जाना

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १९।

(२) कौंसिल का हुक्म नं० १२१, वि० सं० १९३१ (चैत्रादि १९३२) वैशाख वदि १४।

हुई। यह हालत देखकर पोलिटिकल एजेंट कर्नल राइट ने उसे कुछ दिन के लिए अजमेर जाकर रहने की सलाह दी, जिसपर वह वहां चला गया।

मेहता पन्नालाल के क़ैद होने पर महक़मा खास का काम राय सोहनलाल कायस्थ के सुपुर्द हुआ, परन्तु उससे कार्य होता न देखकर वह काम मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह को सौंपा गया।

शासन-सुधार

महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह के निरीक्षण में अलग-अलग कारखानों (विभागों) की सुव्यवस्था की। मेहता पन्नालाल महकमा खास की उन्नति में लगा हुआ था। महाराणा ने किसानों से अन्न का हिस्सा (लाटा या कूंता) लेना बन्द कर ठेके के तौर पर नक़द रुपये लेना चाहा। सब रियासती अहलकार इसके विरुद्ध थे, इसलिए इस नई प्रथा का चलना कठिन था। इसी से महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह को, जो योग्य, अनुभवी और प्रबन्ध-कुशल था, यह काम सौंपा। उसने पिछले दस वर्षों की औसत निकालकर कुल मेवाड़ में ठेका बांध दिया। इस कार्य में कुछ लोगों ने बाधाएं भी डालीं, परन्तु कोठारी की बुद्धिमत्ता और कुशलता से सब बाधाएं दूर हो गईं। वि० सं० १९२८ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८७२ ता० २७ फ़रवरी) को कोठारी केसरीसिंह का देहान्त हो गया। इसके बाद भी चार साल तक यह प्रबन्ध सुचारु रूप से चलता रहा।

अब तक अफ़ीम के महसूल और निकास की कोई ठीक व्यवस्था नहीं थी। इसके सुधार के लिए महाराणा ने पोलिटिकल एजेंट से सलाह कर उदयपुर में ही अफ़ीम के लिए कांटा क़ायम किया। इससे कुल मेवाड़ की अफ़ीम उदयपुर होकर अहमदाबाद जाने लगी, जिससे व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। महाराणा के समय में उदयपुर शहर की उन्नति हुई और सफ़ाई का प्रबन्ध किया गया। दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों का अच्छा प्रबन्ध हुआ। पोलिटिकल एजेंट कर्नल हचिन्सन की सलाह से स्टाम्प और रजिस्ट्री के नये नियम बनाकर इसके लिए एक महकमा क़ायम किया गया। इन्हीं दिनों महाराणा ने इतिहास-विभाग भी स्थापित किया, जो कुछ समय तक चलकर टूट गया। इस (महाराणा) ने पुलिस का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। सारे मेवाड़ के सात विभाग किये गये, उनमें से पांच पर एक-एक पुलिस मजिस्ट्रेट (नायब फ़ौजदार) नियत किया गया। शेष दो—जहाज़पुर और मगरे—के इन्तज़ाम में

परिवर्त्तन न हुआ। पुलिस में नये आदमी बढ़ाये गये, थानेदारों के वेतन में वृद्धि की गई और महाराणा के नाम पर २६६ पैदल सिपाहियों की शंभु पलटन नामक नई सेना बनाई गई। जावर की चांदी और सीसे की खान, जो बहुत वर्षों से बन्द थी, प्रोफ़ेसर बुशल की अध्यक्षता में फिर जारी की गई, परन्तु उससे लाभ न होने के कारण काम बन्द कर दिया गया।

इस महाराणा ने उदयपुर में शम्भु-निवास महल नाम की अंग्रेज़ी ढंग की एक विशाल कोठी बनवाई। इसने दिलखुशाल महल, जगनिवास में शंभुप्रकाश महल, शम्भुरत्न पाठशाला, सूरजपोल तथा हाथीपोल दरवाज़ों के बाहर सराय, मेयो कॉलेज में पढ़नेवाले उदयपुर-निवासी विद्यार्थियों के रहने के लिए अजमेर में 'उदयपुर हाउस' नाम की कोठी, आबू और नीमच में बंगले, उदयपुर से देसूरी तक सड़क, नीमच-नसीराबाद सड़क का मेवाड़ राज्य का भाग, उदयपुर से खैरवाड़े तक सड़क, उदयपुर से चित्तोड़ तक की सड़क तथा डाक-बंगले बनवाये। इनके सिवा इसने कई महलों, मकानों, तालावों आदि की मरम्मत कराई। इन कामों में क़रीब २२००००० रु० व्यय हुए। महाराणा की औरस माता ने गोकुलचन्द्रमा का मंदिर बनवाया और महाराणा सरूपसिंह की महाराणी मेड़तणी ने उदयपुर के बाज़ार में विष्णुमंदिर और बावड़ी बनवाई।

महाराणा के समय के बने हुए महल आदि

वि० सं० १९३१ द्वितीय आषाढ़ सुदि ३ (ई० स० १८७४ ता० १६ जुलाई) को महाराणा के पेट में दर्द मालूम हुआ। डाक्टर अकबरअली का इलाज शुरू हुआ, पर उससे कुछ लाभ न दिखाई दिया। तब मुल्ला कि-फ़ायतअली तथा अलवर के वैद्य नारायण भट्ट की चिकित्सा आरम्भ की गई, परंतु उससे भी कुछ उपकार न हुआ। फिर बेदले के राव बख़्तसिंह की सलाह से एजेंसी के सर्जन ने महाराणा को देखकर कहा—'इनके कलेजे पर सूजन है, जिसके पक जाने का डर है'। इसपर उसकी देखभाल में फिर डाक्टर अकबरअली का इलाज होने लगा, परन्तु बीमारी दिन-दिन बढ़ती ही गई। तब नीमच का डाक्टर बुलाया गया। कुछ दिनों तक उसकी और एजेंसी सर्जन की चिकित्सा होती रही, परन्तु महाराणा की हालत न सुधरी। अन्त में आश्विन वदि १२ (ता० ७ अक्टूबर) को उसका देहान्त

महाराणा की मृत्यु

हो गया। चार सहेलियां उसके साथ सती होने को तैयार हुई, परन्तु सरकार की आज्ञा से मेवाड़ में सती की प्रथा बंद कर दी गई थी, इसलिए ज़नानी ड्योढ़ी के दरवाज़े इस अभिप्राय से बन्द कर दिये गये कि कोई सहेली किसी प्रकार बाहर न निकलने पावे। इस प्रबंध से कोई सती न होने पाई। मेवाड़ में यह पहला ही अवसर था कि राजा के साथ कोई स्त्री सती न हुई।

महाराणा का व्यक्तित्व

यह महाराणा नम्र, मृदुभाषी, संकोचशील, विद्यानुरागी, बुद्धिमान्, सुधार-प्रिय, प्रजारञ्जक, बातचीत में चतुर, स्पष्टवक्ता[1] और मिलनसार था। इसके मुंह से कभी हलकी बात नहीं निकलती थी, पर कान का यह इतना कच्चा था कि हरएक आदमी की बात पर शीघ्र विश्वास कर लेता था[2]। यह हिन्दी तथा संस्कृत जानता था और अंग्रेज़ी में बातचीत कर सकता था। इसे हिन्दी-कविता से प्रेम था और यह कवियों का आदर करता था। जिस मनुष्य पर इसकी विशेष कृपा होती उसका यह इतना लिहाज़ रखता कि वह इससे भला-बुरा, न्याय-अन्याय, जो कराना चाहता वही करा लेता[3], परंतु उसकी दग़ाबाज़ी इससे छिपी न रहती। बुरी सोहबत से इसे शराब पीने की लत पड़ गई और यह ऐयाश हो गया। ऐयाशी और आरामतलबी के कारण इच्छा होते हुए भी यह राज्यव्यवस्था का अधिक सुधार न कर सका और दूसरों के भरोसे पर सारा काम छोड़कर स्वयं निश्चिन्त एवं निश्चेष्ट हो बैठा। सब प्रकार के मनुष्यों से मेलजोल रखने के कारण इसका अनुभव बहुत बढ़ गया था। बहुत दिनों से महाराणाओं तथा

---

(१) यह अपनी कमज़ोरियों को जानता था और प्रायः कहा करता था कि बुरे लोगों ने मुझे शराब पीना और ऐयाशी करना सिखलाकर मेरा जीवन नष्ट कर दिया।

(२) लोगों के बहकाने से इसने कोठारी केसरीसिंह तथा पन्नालाल जैसे अपने विश्वास-पात्र पदाधिकारियों से भी पुरानी शैली के अनुसार रुपयों के रुक्के लिखा लिये और पन्नालाल को क़ैद कर लिया।

(३) आमेट का मामला सरूपसिंह के समय में ही तय हो चुका था, परन्तु बेमाली के रावत ज़ालिमसिंह पर विशेष कृपा होने के कारण इसने उसके कथनानुसार हक़दार चत्र-सिंह को आमेट से अलग करने का विचार कर ज़ालिमसिंह के पुत्र को आमेट की तलवार बँधा दी, परन्तु जब इसका अमल कराना कठिन प्रतीत हुआ तब उसे ख़ालसे से अलग जागीर देनी पड़ी।

महाराणा सज्जनसिंह

सरदारों के बीच जो झगड़े चले आते थे उन्हें इसने बहुत-कुछ शान्त किया। सरदारों के साथ इसका व्यवहार बहुत नर्मी का था। इसने उनपर कभी सख़्ती नहीं की और उन्होंने भी इसका कभी विरोध नहीं किया। इससे जो मिलता उसका भाव इसकी ओर प्रीतियुक्त और श्रद्धापूर्ण हो जाता। अपनी प्रजा की आवश्यकताएं इसे मालूम थीं और यह उनकी शिकायतों को दूर करने की भरसक कोशिश करता था।

इसका क़द मझोला, रंग सुर्ख़ी लिये हुए गेहुँआ और आंखें बड़ी थीं।

महाराणा सज्जनसिंह

महाराणा सज्जनसिंह का जन्म वि० सं० १९१६ आषाढ़ सुदि ६ (ई० स० १८५९ ता० ८ जुलाई) को हुआ था। महाराणा शंभुसिंह का निस्सन्तान देहान्त होने पर पोलिटिकल एजेंट तथा सरदारों की सम्मति से वि० सं० १९३१ आश्विन वदि १३ (ई० स० १८७४ ता० ८ अक्टूबर) को बागोर के महाराज शक्तिसिंह का पुत्र सज्जनसिंह गद्दी पर बिठाया गया और गद्दीनशीनी का उत्सव मार्गशीर्ष वदि २ (ता० २५ नवम्बर) को हुआ।

अंग्रेज़ी सरकार की ओर से गद्दीनशीनी की स्वीकृति आने पर कार्तिक वदि ६ (ता० ३० अक्टूबर) को महलों में दरबार हुआ, जिसमें बेगूं के रावत मेघसिंह और भींडर के कुंवर मदनसिंह में बैठक की बाबत झगड़ा हो गया, जिसे पोलिटिकल एजेंट कर्नल राइट ने शान्त किया। मार्गशीर्ष वदि ५ (ता० २८ नवम्बर) को अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से गद्दीनशीनी की ख़िलअत और गवर्नर जनरल लॉर्ड नॉर्थब्रुक का ख़रीता लेकर कर्नल राइट उदयपुर आया। महाराणा सज्जनसिंह की नाबालिग़ी तक शासन-प्रबन्ध एजेंट के हाथ में रहा।

महाराणा सज्जनसिंह जब गद्दी पर बैठा, तब नाबालिग़ था, इसलिए पोलिटिकल एजेंट की अध्यक्षता में चार मेम्बरों[1] की रीजेन्सी कौंसिल स्था-

(१) इस कौंसिल में निम्नलिखित मेम्बर थे—

१—राव बख़्तसिंह (बेदले का)

२—राणावत उदयसिंह (काकरवे का)

रीजेन्सी कौंसिल

पित हुई। मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह कार्यकर्त्ता नियुक्त हुए। इनको साधारण दैनिक कार्य सौंपा गया, परंतु महत्त्व के विषय और सरदारों के मामले कौंसिल के अधीन रक्खे गये।

बागोर के महाराज समर्थसिंह ने महाराणा सरूपसिंह की आज्ञा से अपने सबसे छोटे भाई सोहनसिंह[1] को गोद लिया था और पोलिटिकल एजेंट के

सोहनसिंह का गद्दी के लिए दावा

विरोध करने पर भी महाराणा शंभुसिंह ने उसे बागोर का स्वामी बना दिया था। अब उसने दावा किया कि समर्थसिंह से गोद लिये जाने के कारण मेवाड़ की गद्दी का हक़दार मैं ही हूं, परंतु अंग्रेज़ी

३—महाराज गजसिंह (शिवरती का)

४—मोतीसिंह *

सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; हिस्सा २, पृ० २७।

* महाराणा भीमसिंह की एक पासवान की लड़की का विवाह किशनगढ़ के महाराज कल्याणसिंह के पासवानिये (अनौरस) पुत्र के साथ हुआ, जिसका पुत्र मोतीसिंह था। यह उदयपुर में रहा करता और होशियार था। राज्य के कई विभागों में इसने काम किया था। उदयपुर में यह 'भाणेज' (भानजा) कहलाता था।

(१) सोहनसिंह ने किस आधार पर गद्दी का दावा किया, यह नीचे दिये हुए बागोर के वंशवृक्ष से ज्ञात हो सकेगा—
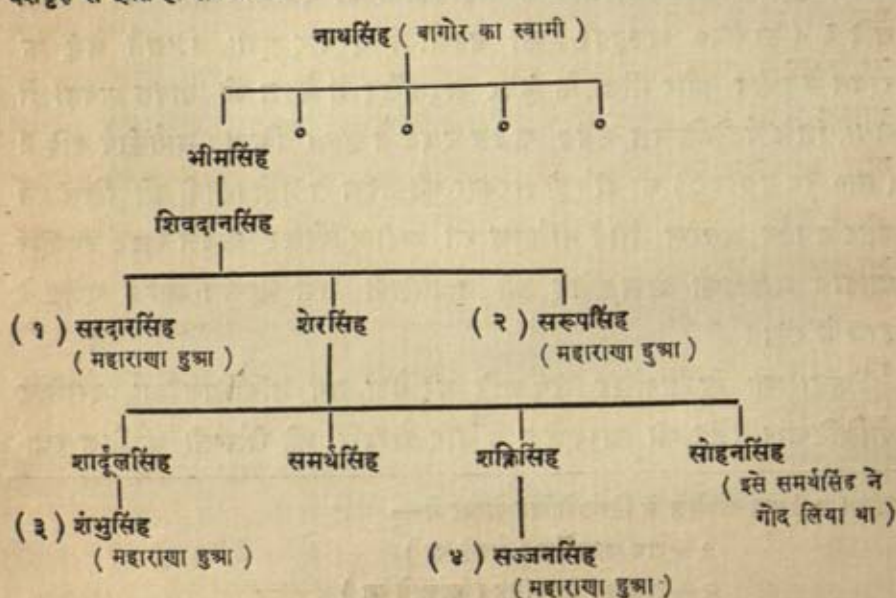
सरकार ने उसका दावा स्वीकार न किया और उसे अपनी जागीर (बागोर) को चले जाने की आज्ञा हुई। महाराणा के पिता महाराज शक्तिसिंह के सबन्ध में निश्चय हुआ कि वह बागोर की हवेली में रहा करे और उसे प्रतिवर्ष ६५००० रुपये नक़द मिला करें[1]। फिर सोहनसिंह के दावे का बखेड़ा यहां तक बढ़ा कि ई० स० १८७५ के सितम्बर (वि० सं० १९३२ आश्विन) में उसपर मेजर गनिंग की अध्यक्षता में राज्य की सेना तथा 'भील कोर' के २७३ सैनिक भेजने की आवश्यकता हुई। वह गिरफ़्तार किया जाकर बनारस भेज दिया गया और बागोर की उसकी जागीर ज़ब्त कर ली गई।

महाराणा के लिए शिक्षा-प्रबन्ध

महाराणा के शिक्षण तथा देखरेख के लिए भरतपुर का वकील जानी बिहारीलाल नियुक्त हुआ। वह बड़ा ही नम्र, शिष्ट, परोपकारी, सुयोग्य, अनुभवी और संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ़ारसी तथा हिन्दी का अच्छा विद्वान् था। उसकी निगरानी में रहकर थोड़े ही समय में महाराणा ने अच्छी शिक्षा और बहुत अनुभव प्राप्त कर लिया। उसकी ओर इसका पूज्य भाव था। हरएक बात में महाराणा उसकी सलाह लेता और उसकी इच्छा के प्रतिकूल कभी कोई कार्य न करता। यदि वह उदयपुर में दो-चार वर्ष रह जाता तो महाराणा अच्छा विद्वान् हो जाता, परन्तु एक ही वर्ष के बाद वह भरतपुर वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर फ़ामजी भीखाजी नियुक्त हुआ। वि० सं० १९३२ में जानी बिहारीलाल के उदयपुर से लौटते समय उसे एक भारी सिरोपाव, सरपेच, मोतियों की माला और ४०० अशरफ़ियां देकर महाराणा ने उसका सत्कार करना चाहा, परन्तु उसने केवल एक पगड़ी लेना स्वीकार कर बाक़ी सब चीज़ें नम्रतापूर्वक लौटा दीं[2]।

मेहता पन्नालाल की पुनर्नियुक्ति

कर्नल राइट की सलाह से मेहता पन्नालाल, जो कर्णविलास में क़ैद था, छोड़ दिया गया और उसे मेवाड़ के बाहर चले जाने की आज्ञा हुई। इसपर वह अजमेर चला गया। वि० सं० १९३१ चैत्र वदि ४ (ई० स० १८७५ ता० २६ मार्च) को कर्नल राइट के

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१४१-४२।

(२) वही; पृ० २१४३, २१४८। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; हि० २, पृ० २७।

स्थान पर कर्नल चार्ल्स हर्बर्ट पोलिटिकल एजेंट होकर उदयपुर आया। वह मिज़ाज का कुछ तेज़ था, जिससे अर्जुनसिंह सहीवाले ने इस्तीफ़ा दे दिया और मेहता गोकुलचन्द पुराने ढंग का सीधा-सादा आदमी होने के कारण काम अच्छी तरह न चला सका; इसलिए पोलिटिकल एजेंट ने वि० सं० १९३२ भाद्रपद सुदि ४ (ई० स० १८७५ ता० ४ सितंबर) को अजमेर से मेहता पन्नालाल को, जिसने भूतपूर्व महाराणा के समय में बड़ी सफलता से काम किया था, बुलवाकर अर्जुनसिंह के स्थान पर नियत किया[1]।

इसी वर्ष आश्विन वदि ६ (ता० २० सितंबर) से लगातार तीन दिन तक ऐसी वर्षा हुई जैसी तीन सौ वर्षों के भीतर कभी नहीं हुई थी। नदी-नाले बड़े वेग से बढ़ने लगे। पीछोला तालाब में जल बहुत चढ़ जाने के कारण सीसारमा गांव तथा उदयपुर में चांदपोल दरवाज़े के बाहर ब्रह्मपुरी आदि के कई घर डूब गये, जगनिवास महल में खिड़कियों से पानी भर गया, बागोर की हवेली के चौक में किश्तियां चलने लगीं और त्रिपोलिया तथा हनुमान घाट के बीच ऐसा बहाव था जैसे कोई नदी बह रही हो। बड़ी पाल के टूट जाने का अंदेशा होने से कविराजा श्यामलदास तथा मेहता पन्नालाल को साथ लेकर महाराणा स्वयं तालाब पर पहुंचा और उसने अर्जुनखुरे के पत्थर तुड़वाकर उधर से पानी का निकास करवा दिया। फिर शहर में डौंडी पिटवाई गई कि पूर्वी हिस्से में रहनेवाले पश्चिम की ओर चले जायँ, क्योंकि बन्द टूट जाने पर उस हिस्से के बह जाने का डर है। मकानों के गिरने, माल-असबाब तथा जानवरों के बह जाने और खेती बरबाद होने से शहर एवं ज़िलों में लाखों रुपयों का नुक़सान हुआ[2]।

मेवाड़ में अतिवृष्टि

इन दिनों इंग्लैंड के युवराज एडवर्ड एल्बर्ट का भारतवर्ष की सैर के लिए आना निश्चय होने पर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल हर्बर्ट ने महाराणा से उसके स्वागत के लिए बंबई जाने का अनुरोध किया। महाराणा ने इस शर्त पर बम्बई जाना स्वीकार किया कि दरबार में अपनी बैठक निज़ाम के सिवा और किसी राजा या महाराजा की

महाराणा का बम्बई जाना

(१) वीरविनोद भाग २, पृ० २१४१, २१४५-४६। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; हि० २, पृ० ३०।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१४६-४८।

बैठक से नीचे न हो। इस बात के स्वीकार किये जाने पर उदयपुर से प्रस्थान कर महाराणा बंबई पहुंचा। वि० सं० १९३२ कार्तिक सुदि १० (ई० स० १९७५ ता० ८ नवम्बर) को जहाज़ से युवराज के उतरने के समय उसकी पेशवाई के लिए राजा लोग पालवा बन्दर पर गये। वहां राजाओं की कुर्सियां मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट के इक़रार के ख़िलाफ़ रक्खी हुई देखकर महाराणा कुर्सी पर न बैठा, किन्तु टहलता रहा और युवराज के आने पर उससे मुलाक़ात कर अपने डेरे को चला गया। दरबार में महाराणा के न बैठने का परिणाम यह हुआ कि राजाओं की नंबरवार बैठक का तरीक़ा तोड़कर भविष्य के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों के अनुसार वहां के राजाओं की बैठक की व्यवस्था की गई। फिर गवर्नर जनरल लॉर्ड नॉर्थब्रुक, बंबई के गवर्नर सर फ़िलिप वुडहाउस तथा कई राजाओं से मुलाक़ात कर महाराणा मार्गशीर्ष वदि ७ को उदयपुर पहुँच गया। इसके चार दिन बाद लॉर्ड नॉर्थब्रुक बंबई से लौटता हुआ उदयपुर आया[1] और महाराणा के आतिथ्य एवं उदयपुर की प्राकृतिक शोभा से बहुत प्रसन्न हुआ। यही पहला गवर्नर जनरल था जो उदयपुर आया।

नाथद्वारे के गोस्वामी का मामला

इन्हीं दिनों नाथद्वारे का गोस्वामी गिरिधरलाल अपने पूर्वजों का ढंग छोड़-कर राजसी ठाट-बाट से रहने तथा मनमानी कार्रवाई करने लगा। उसने मन्दिर के बाल-भोग में कमी कर दी और यात्रियों को दबाकर वह उनसे रुपये पेंठने लगा। वह कौंसिल तथा पोलिटिकल एजेंट की आज्ञा की कुछ भी परवाह न करता और दीवानी तथा फ़ौजदारी मामलों में अपने को स्वतंत्र समझने लगा। कुछ लोगों को उसने अन्यायपूर्वक क़ैद कर लिया था। उनके सम्बन्ध में जब उससे जवाब तलब किया गया तब उसने उत्तर देने से इन्कार कर दिया और राजाज्ञा के विरुद्ध बहुतसे विदेशी सिपाहियों को नौकर रख लिया। उसकी ऐसी हरकतें देखकर कौंसिल के मेम्बरों ने उसका दमन आवश्यक समझा और वि० सं० १९३३ वैशाख सुदि १५ (ई० स० १८७६ ता० ८ मई) को वे, पोलिटिकल एजेंट तथा कुछ और सरदार सैन्य-सहित नाथद्वारे पहुँचे। गोस्वामी और उसका पुत्र

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१४८-४३।

(लालबावा) पहले ही से लालबाग में ठहरे हुए थे। आधी सेना ने लालबाग घेर लिया और वे गोस्वामी को पालकी में बिठाकर पहले तो हिफ़ाज़त के साथ उदयपुर ले गये; फिर उसके खर्च के लिए १००० रुपये मासिक नियत कर उन्होंने उसे मथुरा पहुंचा दिया। शेष आधी सेना ने मन्दिर पर अधिकार कर लिया; तब लालबावा गोवर्द्धनलाल ने नीचे लिखी हुई शर्तें स्वीकार कीं—

(१) हमको सब प्रकार महाराणा की आज्ञा के अनुसार चलना स्वीकार है; इसमें कभी किसी तरह का उज़्र न होगा।

(२) परंपरा से श्रीनाथजी की जो सेवा-सामग्री चली आती थी उसमें अभी कुछ फ़र्क़ पड़ गया था, पर अब प्राचीन रीति के अनुसार महाराणा जो नियम बाँध देंगे उसमें फ़र्क़ न होगा। श्रीनाथजी की सेवा-सामग्री, गौ, ब्रजवासी, टहलुवे, सेवकों आदि की जो परंपरागत रीति है वही बरती जायगी।

(३) विदेशी सिपाहियों को हम न रक्खेंगे; मन्दिर और शहर की हिफ़ाज़त के लिए महाराणा जो ज़ाब्ता मुक़र्रर करेंगे वह हमको मंज़ूर है और उसकी तनख़्वाह हम देंगे।

(४) दीवानी और फ़ौजदारी प्रबन्ध के लिए महाराणा अपनी ओर से एक अहलकार मुक़र्रर कर दें, जो हमारी सलाह से काम किया करे।

लालबावा के नाबालिग़ होने के कारण राज्य की ओर से मंदिर का प्रबंध मेहता गोपालदास तथा अधिकारी बालकृष्णदास को सौंपा गया और आषाढ़ वदि १ (ता० ८ जून) को गोवर्द्धनलाल नाथद्वारे की गद्दी पर बिठाया गया। मेहता गोपालदास के पीछे उसके स्थान पर मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या नियत हुआ। पांच वर्ष बाद गोवर्द्धनलाल के बालिग़ होने पर राज्य का प्रबन्ध हटाकर वहां का सारा अधिकार उसे सौंप दिया गया[1]।

इसी वर्ष अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा को राज्य के पूरे इख़्तियार मिले और इंग्लैंड की महाराणी विक्टोरिया के क़ैसरे हिन्द (Empress of India) की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन ने ई० स० १८७७ ता० १

महाराणा का दिल्ली-दरबार में जाना

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१९३-९७। सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; हिस्सा २, पृ० ९८-९९।

जनवरी (वि० सं० १९३३ माघ वदि २) को दिल्ली में एक बड़ा दरबार करना निश्चित किया और उसमें सम्मिलित होने के लिए सब राजाओं, महाराजाओं तथा प्रतिष्ठित पुरुषों के पास निमंत्रण भेजे। महाराणा ने बड़ी बहस के बाद निमंत्रण स्वीकार किया। किशनगढ़ में अपना विवाह कर वहां से वह सीधा अजमेर और जयपुर होता हुआ ई० स० १८७६ ता० १८ दिसम्बर (पौष सुदि प्रथम ३) को दिल्ली पहुंचा, जहां उपर्युक्त तारीख़ को बड़े समारोह के साथ दरबार हुआ, जिसमें महाराणी के क़ैसरे हिन्द की उपाधि धारण करने की घोषणा की गई। इस दरबार के उपलक्ष्य में अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा को तमग़े, झंडे आदि दिये गये और उसकी व्यक्तिगत सलामी २१ तोपें कर दी गई। उसके साथवालों में से बेदले के राव बख़्तसिंह को रावबहादुर तथा मेहता पन्नालाल एवं माल और ख़ज़ाने के हाकिम कोठारी छगनलाल को राय का ख़िताब मिला। दिल्ली में रहते समय गवर्नर जनरल और जोधपुर, जयपुर, किशनगढ़, झालावाड़, इंदौर, रीवां तथा मंडी के राजाओं से महाराणा की मुलाक़ात हुई। फिर माघ सुदि ६ (ई० स० १८७७ ता० २० जनवरी) को वह जयपुर होता हुआ उदयपुर लौट आया[1]।

इजलास ख़ास की स्थापना

दिल्ली से लौटते ही महाराणा ने अपने राज्य के शासन-सुधार का काम हाथ में लिया। कोठारी केसरीसिंह का बाँधा हुआ ठेका अब टूट गया था और ज़मीन का हासिल पुरानी रीति के अनुसार जिन्स के रूप में लिया जाने लगा, जिससे अहलकार जो हिसाब पेश करते उसी पर भरोसा करना पड़ता था; इसलिए प्रत्येक ज़िले की ज़मीन की एक साल की आमद का बजट स्थिर कर ज़िलों के हाकिम उसके ज़िम्मेवार ठहराये गये। फिर कविराजा श्यामलदास की सलाह से वि० सं० १९३३ चैत्र वदि ११ (ई० स० १८७७ ता० १० मार्च) को दीवानी, फ़ौजदारी तथा अपील के महकमों पर एक कौंसिल नियत की गई। इस कौंसिल का नाम 'इजलास ख़ास' रक्खा गया और निम्नलिखित व्यक्ति इसके अवैतनिक मेम्बर चुने गये—

राव बख़्तसिंह (बेदले का)

राज फ़तहसिंह (देलवाड़े का)

---

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१५९-६२ और २१८७-८९।

राव लक्ष्मणसिंह (पारसोली का)

रावत अर्जुनसिंह (आसींद का)

महाराज गजसिंह (शिवरती का)

मनोहरसिंह डोडिया (सरदारगढ़ का)

राज देवीसिंह (ताणे का)

राणावत उदयसिंह (काकरवे का)

मामा बख़्तावरसिंह

कविराजा श्यामलदास

भाणेज मोतीसिंह

अर्जुनसिंह सहीवाला

धव्वा बदनमल

मेहता तख़्तसिंह

पुरोहित पद्मनाथ

मुंशी अलीहुसेन, जो होशियार अहलकार था, कौंसिल का सिरिश्तेदार नियत किया गया। दीवानी, फ़ौजदारी आदि न्याय-संबन्धी सब मुक़द्दमों का आख़िरी फ़ैसला इसी इजलास के द्वारा होने लगा[1]।

इजलास खास क़ायम करने के बाद महाराणा ने मगरा (पहाड़ी) ज़िले की अव्यवस्था सुधारने की ओर ध्यान दिया। उक्त ज़िले का हाकिम पंडित रघुनाथराव प्रजा से घूस लेता और उसे बहुत सताता था। ग़रीब भीलों को उसने इतना तंग किया कि उसे रिश्वत देने के लिए उन्हें अपने बाल-बच्चे भी बेचने पड़े। उसके अत्याचार की जब बहुत शिकायत होने लगी तब महाराणा ने वहां से उसे उदयपुर बुला लिया। फिर उसकी कार्रवाइयों की तहक़ीक़ात कराई गई तो उसपर तीन लाख रुपये हज़म कर जाने तथा प्रजा पर ज़्यादती करने के दोष सिद्ध हुए। इसपर वह और उसके मातहत अहलकार क़ैद कर लिये गये। इसी प्रकार खेरवाड़े की लाइन के रिसालदार हरदेव का अत्याचार प्रमाणित होने पर वह भी नौकरी से अलग कर दिया गया[2]।

मगरा ज़िले का प्रबन्ध

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१८६-९० । सहीवाला अर्जुनसिंह का जीवन-चरित्र; हिस्सा २, पृ० ३३-३४ ।

(२) वीरविनोद; भा० २, पृ० २१९१-९२ ।

इस ज़िले के विलायती (पठान) सिपाही ग़रीब भीलों को थोड़े-से रुपये क़र्ज़ देकर उनसे कई गुने लिया करते थे। कभी कभी वे उनके बाल बच्चे छीनकर उन्हें गुलाम बना लेते थे। उनकी ऐसी हरकतों से तंग आकर भीलों ने कुछ विलायतियों को मार डाला। इसपर सरकारी अफ़सरों ने उनपर फ़ौज भेजकर उनकी पाल बरबाद कर दी। इस मामले की तहक़ीक़ात से विलायतियों के अपराधी ठहराये जाने पर महाराणा ने उन सबको वहां से उदयपुर बुला लिया। वे लोग लाली की सराय में ठहरे, परन्तु उन्हें पहाड़ी प्रदेश छोड़ना बहुत ही नागवार मालूम हुआ, जिससे वे फ़साद करने पर उतारू हो गये। तब महाराणा ने मि० लोनार्गन तथा महासाणी मोतीलाल की अध्यक्षता में दो पलटन, दो तोप और चार रिसाले उनपर भेजे। फ़ौजी अफ़सरों ने उनको कहलाया कि शस्त्र छोड़कर आत्म-समर्पण कर दो, नहीं तो मारे जाओगे। पहले तो उन्होंने इसे स्वीकार न किया; फिर मारे जाने के डर से शस्त्र छोड़कर वे फ़ौज की शरण में आ गये। उनमें जो निर्दोष थे वे तो फिर नौकर रख लिये गये, पर जो दो-चार उपद्रवी अफ़सर थे वे क़ैद किये गये और बाक़ी अंग्रेज़ी सरकार की मारफ़त हिन्दुस्तान से बाहर निकलवा दिये गये। इससे विलायती सिपाहियों पर महाराणा का ऐसा आतंक छा गया कि फिर कभी उपद्रव करने का उन्होंने साहस न किया। मगरे की सुव्यवस्था के लिए मेहता अखैसिंह उसका हाकिम बनाया गया और इसी अभिप्राय से उदयपुर में शैल-कान्तार-सम्बन्धिनी सभा नाम का महकमा क़ायम किया गया, जिसे महाराणा ने अपने निरीक्षण में रक्खा[1]।

मगरा प्रदेश के ऋषभदेव नामक प्रसिद्ध जैन-मन्दिर की आय के कोई १००००० रु० ग़बन किये जाने की रिपोर्ट होने पर महाराणा ने उसकी जाँच कराके उसके सुप्रबन्ध के लिए उदयपुर के प्रतिष्ठित जैनों की एक कमेटी बना दी और मंदिर को महकमा देवस्थान के अधिकार में रख दिया[2]।

ऋषभदेव के मंदिर का प्रबन्ध

अंग्रेज़ी सरकार ने अपने राज्य की आय बढ़ाने के लिए नमक का प्रबन्ध

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१६३।
(२) वही; भाग २, पृ० २१६१-६२।

अपने हाथ में लेकर देशी राज्यों में नमक का बनना बंद कराने और वहां अपना ही नमक बिकवाने का प्रबन्ध करना चाहा। वि० सं०.१९३४ माघ सुदि १२ (ई० स० १८७८ ता० १४ फ़रवरी) को सरकार की तरफ़ से वाइसरॉय की कौंसिल का मेम्बर मि० होप; राजपूताने का एजेंट गवर्नर जनरल तथा मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट; ये तीन अफ़सर राजनगर मुक़ाम पर महाराणा से मिले और उससे नमक के संबन्ध में बात-चीत की। अन्त में सरकार और महाराणा के बीच नीचे लिखा हुआ समझौता हुआ—

अंग्रेज़ी सरकार और महाराणा के बीच नमक का समझौता

१—मेवाड़ राज्य में नमक का बनना बन्द किया जाय और महाराणा तथा उसके सरदारों के हरजाने के लिए गवर्मेंट प्रतिवर्ष २६०० रु० (कलदार) महाराणा को दे।

२—जिस नमक पर सरकार की चुंगी लगी होगी उसके सिवा और कोई नमक मेवाड़ में न तो आने और न उससे बाहर जाने दिया जायगा।

३—जिस नमक पर सरकार की चुंगी लगी होगी उसपर मेवाड़ राज्य में चुंगी न लगाई जायगी।

४—नमक की चुंगी के हरजाने के तौर पर सरकार प्रतिवर्ष ३५००० रु० मेवाड़ राज्य को देगी।

५—आधी चुंगी पर १२५००० मन (अंग्रेज़ी) नमक तो मेवाड़ की प्रजा के, और बिना चुंगी के १००० मन महाराणा के खर्च के लिए पचपद्रा के नमक के कारखाने से प्रतिवर्ष मिलता रहेगा।

आधे महसूल और बिना महसूल पर नमक लाने में झंझट देखकर यह तजवीज़ हुई कि सरकार को नमक का पूरा महसूल दिया जाय और छोड़े हुए महसूल के बदले में उससे नक़द रुपये लिये जायँ। अन्त में यह स्थिर हुआ कि महाराणा को नमक के हरजाने के लिए प्रतिवर्ष २०००० रु० दिये जायँ और वे खिराज के हिसाब में भर लिये जायँ[1]।

इस प्रकार राज्य को रुपये तो मिलने लगे, परन्तु नमक पहले से तिगुना महँगा हो जाने के कारण प्रजा के हित के लिए सायर के महकमे का नया

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० ३८-३९।

प्रबन्ध कर ६२ चीज़ों पर चुंगी छोड़ दी गई और सिर्फ़ अफ़ीम, तम्बाकू, महुआ, गांजा, कपड़ा, रेशम, खांड़, कपास, लकड़ी तथा लोहा, इन दस चीज़ों पर रक्खी गई।

उदयपुर में चोरी और हत्या होना, गली-कूचों का गंदा रहना, बाज़ारों में भैंस, सांड़, गौ आदि पशुओं का फिरते रहना आदि दूर करने के लिए पुलिस का प्रबन्ध किया गया। महाराणा ने मौलवी अब्दुर्रहमानख़ां को पुलिस सुपरिंटेंडेंट बनाया। इतना उपयोगी कार्य भी बिना बाधाओं के पूरा न हुआ। बाज़ार में फिरनेवाले लावारिस सांड़ों से जनता को बहुत असुविधा होती थी, इसलिए उन्हें पकड़कर एक गोशाला (कांजी हाउस) में रखने का प्रबन्ध किया गया। इसपर सेठ चंपालाल के नेतृत्व में कई महाजनों ने, जिनको ऋषभदेव की तहक़ीक़ात से नुक़सान उठाना पड़ा था, हड़ताल कर दी, परंतु मुसलमान बोहरों ने उनका साथ न दिया। समझाने पर भी जब वे न समझे और उनके मुखिये गिरफ़्तार कर लिये गये तब हड़ताल खुली। महाराणा ने अनाथालय, पागलखाना और गोशाला (कांजी हाउस) खोली। इसके सिवा उसने आवारा कुत्तों को एक स्थान पर रखने और रोशनी तथा शहर-सफ़ाई का प्रबन्ध किया। छोटे-मोटे लेन-देन के मुक़द्दमों के विचार के लिए अदालत (मतालबा ख़फ़ीफ़ा) क़ायम की गई। आम सड़कों और गली-कूचों में मकान बढ़ाने की रोक का बंदोबस्त हुआ और ये सारे काम पुलिस की निगरानी में रक्खे गये[२]।

पुलिस आदि की व्यवस्था

महाराणा सरूपसिंह से कई सरदारों ने विरोध कर लिया था, जो उसकी मृत्यु-पर्यन्त जारी रहा। महाराणा शंभुसिंह ने उन्हें शान्त करने का प्रयत्न किया और उसे सफलता भी हुई, परन्तु महाराणा सज्जनसिंह ने, जो सरदारों का हितैषी और उनके वास्तविक अधिकारों का संरक्षक था, उनसे बहुत मेलजोल बढ़ाया। अपने दौरे या अन्य अवसरों पर वह बनेड़ा, शाहपुरा, बाठर्डा, कानोड़, बोहेड़ा, बानसी, बड़ी सादड़ी, बेगूं, बीजोल्यां, अमरगढ़, पारसोली, बसी, कोकरवा, ताणा, थेमाली, आसींद, बदनोर, संग्रामगढ़, सरदारगढ़, बागोर,

सरदारों के साथ महाराणा का बरताव

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१६४-६६।

परसाद, गुरलां आदि ठिकानों में गया तथा वहां के सरदारों को खिलअत, आभूषण आदि देकर सम्मानित किया। उन्होंने भी उसका बहुत-कुछ आदर-सत्कार किया। सरदारगढ़ के ठाकुर मनोहरसिंह डोडिये को, जो दूसरी श्रेणी का सरदार था, उसने प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया और कुछ अन्य सरदारों की भी प्रतिष्ठा बढ़ाई। सरदारों के दीवानी और फ़ौजदारी के अधिकार स्थिर करने के लिए उसने उनके साथ क़लम-बन्दी करना चाहा। काछोला परगने के सम्बन्ध में शाहपुरे का राजाधिराज मेवाड़ का सरदार होने से वि० सं० १९३५ (ई० स० १८७८) में उसके साथ नीचे लिखी क़लम-बन्दी हुई।

१—शाहपुरे का स्वामी इजलास खास या महक़मा खास की, जो सबसे ऊपर की अदालत है, सब आज्ञाओं का पालन करेगा और उसके सब फ़ैसलों की तामील करेगा। दफ़ा ४ में बतलाये हुए अपवादों को छोड़कर काछोला-वालों के आपस के मुक़द्दमों में अपील सुनने के सिवा महाराणा दीवानी और फ़ौजदारी मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे।

२—काछोले के किसी निवासी को तलब करने अथवा और किसी तरह की कार्रवाई करने की ज़रूरत होगी तो उसके लिए शाहपुरे के वकील से इजलास खास या महकमा खास लिखा-पढ़ी करेगा और उसकी तामील के लिए उसे उचित अवधि दी जायगी। यदि वह दी हुई अवधि के भीतर जवाब न देगा तो इजलास खास या महकमा खास आसामी को बालाबाला बुलावेगा और उचित कार्रवाई करेगा।

३—उन फ़ौजदारी मामलों में, जिनमें मुद्दई तो खालसे या दूसरी जागीरों की प्रजा हो और मुद्दाले काछोले के निवासी हों, अथवा खालसे या दूसरे ठिकानों में जुर्म करके कोई अपराधी काछोले में आश्रय ले तो उसे इजलास खास या महकमा खास के मांगने पर सौंप देना होगा।

४—क़त्ल, सती, डकैती, राहज़नी (जिसमें कोई व्यक्ति मारा गया हो या उसके मरने का अंदेशा हो), बच्चों का बेचना और जाली सिक्के चलाना—इन घटनाओं के होते ही दरबार में इत्तिला करनी होगी और तहक़ीक़ात के बाद उनकी मिसलें स्वीकृति के लिए इजलास ख़ास में भेजनी होंगी। ऐसे सब अपराधियों को, जब ज़रूरत होगी, सौंपना होगा।

५—क़ानून हक़रसी, जो जारी हुआ है, और भविष्य में सारे मेवाड़ के लिए कोई और क़ानून बने वह काछोला परगने में भी जारी किया जाय।

६—उन दीवानी और फ़ौजदारी मामलों को, जिनमें एक फ़रीक़ तो काछोलावाले और दूसरे फ़रीक़ दरबार की प्रजा या दूसरे पट्टों के निवासी हों, भीलवाड़े का हाकिम सुनेगा। वह अपने गवाहों को शाहपुरे के स्वामी की मारफ़त तलब करेगा और अन्य आवश्यक कार्रवाई करेगा। उसके फ़ैसले की अपील सिर्फ़ इजलास खास में होगी, दूसरी किसी अदालत में नहीं।

उपर्युक्त प्रकार के मामलों में ही भीलवाड़े का हाकिम हस्ताक्षेप करेगा और उन मामलों में दूसरा कोई हाकिम काछोले के पट्टे में दखल न देगा।

७—उन दीवानी मामलों में, जिनमें प्रतिवादी काछोला-निवासी हों और वादी दूसरी जगह के हों तथा ५०० रु० से अधिक का दावा न हो, वादी शाहपुरे भेजे जायँगे। उनके फ़ैसलों की अपीलें केवल इजलास खास में सुनी जायँगी। यदि इन मामलों के फ़ैसलों में बिना किसी उचित कारण के देर होगी तो दो बार इत्तिला देने के बाद उनकी मिसलें मँगाकर उनका फ़ैसला इजलास ख़ास करेगी।

८—दरबार की उपर्युक्त अदालतों में दावे पेश करने पर काछोले की प्रजा कोर्ट फ़ीस, टिकट आदि अदालत के सब खर्च देगी, परन्तु यदि दावे स्वयं शाहपुरे के स्वामी की तरफ़ से दायर होंगे तो उनकी तहरीर, सनदों आदि पर उमरावों के नियमानुसार स्टाम्प नहीं लगाना पड़ेगा।

यदि इजलास खास या भीलवाड़े का हाकिम किसी काछोला-निवासी पर जुरमाना करेगा तो वह उससे शाहपुरे की मारफ़त वसूल किया जायगा। यदि किसी को ५ वर्ष तक की क़ैद की सज़ा मिलेगी तो वह उसे शाहपुरे की जेल में भुगतनी पड़ेगी। यदि वहां ठीक तौर पर सज़ा दी जाय और जेल का प्रबन्ध सन्तोषजनक हो तो ऐसी लंबी सज़ावाले अपराधियों को वहां रखने की आज्ञा दी जा सकेगी, परन्तु यह बात जेल के सुप्रबन्ध पर निर्भर है[1]।

---

(१) ऐन्युअल ऐडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ़ राजपूताना स्टेट्स–ई० स० १८७८-७९; पृ० १६१।

महाराणा की इच्छा थी कि ऐसी क़लमबन्दी सब उमरावों के साथ हो जाय। बनेड़ा, सादड़ी, बेदला, बीजोल्यां, बेगूं, बदनोर, देलवाड़ा, आमेट, कानोड़, पारसोली, कुरावड़, आसींद और लावे के सरदारों ने इसे स्वीकार कर लिया। उनके साथ की क़लमबन्दियों और ऊपर लिखी हुई में केवल यही अंतर है कि उनमें काछोले या शाहपुरे के बजाय भिन्न-भिन्न ठिकानों के नाम हैं और भीलवाड़े के हाकिम के स्थान पर अलग-अलग ठिकानों के निकटवर्ती हाकिम का नामोल्लेख है।

सलूंबर, कोठारिया, देवगढ़, गोगूंदा, भींडर, बानसी, भैंसरोड़गढ़ और मेजा के सरदारों ने इस क़लमबन्दी को स्वीकार नहीं किया।

कोठारी केसरीसिंह का बांधा हुआ ज़मीन के हासिल का ठेका टूट गया और वह फिर जिन्स के रूप में लिया जाने लगा था। ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में महाराणा सज्जनसिंह ने इस काम के लिए अंग्रेज़ी सरकार से कोई अनुभवी अफ़सर मांगा, तब डब्ल्यू० एच्० स्मिथ नामक अफ़सर उदयपुर भेजा गया। उसने एक महीने तक मेवाड़ के ज़िलों में दौरा कर बन्दोबस्त का काम जारी किये जाने की रिपोर्ट की। महाराणा यह काम उसी से कराना चाहता था, पर छुट्टी लेकर उसके विलायत चले जाने के कारण कुछ दिनों तक यह स्थगित रहा। उसके चले जाने पर मेवाड़ के अधिकांश ज़िलों में दौरा कर महाराणा ने वहां की ज़मीन का मुलाहिज़ा किया। फिर ई० स० १८७९ में उसने मि० विंगेट को इस कार्य पर नियुक्त किया। उसने पैमाइश का काम शुरू किया तब जिन लोगों को जिन्स के रूप में हासिल लिये जाने की पुरानी रीति से फ़ायदा पहुंचता था उन्होंने किसानों को भड़काना शुरू किया। इसपर महाराणा ने उन्हें उदयपुर बुलाकर बहुत-कुछ समझाया, परन्तु जब उसका कोई असर न हुआ तब उसने मेहता पन्नालाल को भेजकर उन्हें शान्त किया। मि० विंगेट ने अपना काम बहुत अच्छी तरह किया। उसके चले जाने पर वर्तमान महाराणा के समय में मि० बिडल्फ़-द्वारा यह समाप्त हुआ। पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर सारे मेवाड़ राज्य का बन्दोबस्त किया गया[1]।

बन्दोबस्त

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २१९६-९७।

वि० सं० १९३७ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १८८० ता० २० अगस्त) को इजलास खास के स्थान पर महद्राजसभा की स्थापना हुई। इसे स्थापित करने का उद्देश यह था कि सारी प्रजा के पक्षपात-रहित न्यायपूर्ण शासन तथा उसके जान-माल की रक्षा का यथोचित प्रबन्ध किया जाय और कोई व्यक्ति अपने स्वत्वों से वंचित न रहे। मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या इसका सेक्रेटरी और निम्नलिखित व्यक्ति इसके मेम्बर बनाये गये—

महद्राजसभा की स्थापना

१—राव तख़्तसिंह (बेदले का)
२—रावत अर्जुनसिंह (आसींद का)
३—बाबा गजसिंह (शिवरती का)
४—राजा देवीसिंह (ताणे का)
५—राजराणा फ़तहसिंह (देलवाड़े का)
६—राव रत्नसिंह (पारसोली का)
७—ठाकुर मनोहरसिंह (सरदारगढ़ का)
८—राणावत उदयसिंह (काकरवे का)
९—मामा बख़्तावरसिंह
१०—कविराजा श्यामलदास
११—राय मेहता पन्नालाल
१२—अर्जुनसिंह सहीवाला
१३—मेहता तख़्तसिंह
१४—पुरोहित पद्मनाथ
१५—पंडित व्रजनाथ।
१६—मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या।
१७—जानी मुकुन्दलाल।

इजलास खास की कार्रवाइयों की तामील पहले महकमा खास के द्वारा होती थी, परन्तु अब इस सभा की कार्रवाई की तामील इसी के द्वारा होने लगी। सुबीते के लिए इस सभा की 'इजलास कामिल' और 'इजलास मामूली' नाम की दो प्रकार की बैठक स्थिर की गई। सभा की उस बैठक का नाम

इजलास कामिल रक्खा गया जिसमें महाराणा के सभापतित्व में कम-से-कम दस मेम्बर हों; इजलास मामूली वह बैठक कहलाई जिसमें कम-से-कम पांच मेंबर हाज़िर हों और महाराणा हो या न हो। सरदारों, प्रतिष्ठित राजकर्मचारियों तथा महाराणा की हाज़िरबाशी में रहनेवालों के सब बड़े या संगीन दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का निर्णय करने का अधिकार इजलास कामिल को सौंपा गया। इसी प्रकार ग़ैर इलाक़ों के मुक़द्दमों का फ़ैसला करने का इख़्तियार भी इसी के सुपुर्द हुआ। इजलास मामूली को फ़ौजदारी मामलों में ७ वर्ष तक की सज़ा देने, ५००० रुपये जुरमाना करने तथा दो दर्जन बेंत लगवाने का और दीवानी मुक़द्दमों में १५००० रु० तक का फ़ैसला करने का इख़्तियार दिया गया।

राज्य के सुप्रबन्ध के लिए क़ानून नं० १ तैयार किया गया, जिसके अनुसार राज्य का सारा कारबार दो विभागों—महकमा ख़ास और महद्राजसभा—में बाँटा गया। माल, सेना, पुलिस, ख़ज़ाना, चुंगी, हिसाब, टकसाल, प्रेस, जंगल, शैल-सभा, महकमा इंजीनियरी, बख़्शी का दफ़्तर, रावली दूकान तथा पर-राज्य-विभाग (अंग्रेज़ी सरकार तथा देशी राज्य-सम्बन्धी) का कार्य तो महकमा ख़ास के सुपुर्द किया गया और सदर फ़ौजदारी, सदर दीवानी, रजिस्ट्री, स्टाम्प, जेल और हाकिमों के अधीन के दीवानी तथा फ़ौजदारी के काम महद्राजसभा के।

इन्हीं दिनों मेवाड़ में ई० स० १८८१ की मर्दुमशुमारी का काम शुरू हुआ और कुछ अहलकार खानाशुमारी के लिए पहाड़ी प्रदेश में भेजे गये। मेवाड़ राज्य में पहले कभी मनुष्य-गणना नहीं हुई थी, इसलिए यह कार्य आरंभ होते ही इसके सम्बन्ध में लोग अनेक प्रकार के संदेह करने लगे। कई बड़े सरदारों ने भी समझा कि यह काम इसलिए छेड़ा गया है कि प्रत्येक मनुष्य से अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाई के ख़र्च का हिस्सा लिया जाय। इस विषय में जब समझदार सरदारों की यह धारणा थी तो जंगली भीलों में तरह-तरह की अफ़वाहों का फैलना स्वाभाविक ही था। घरों और मनुष्यों की गिनती होती देखकर कुछ भीलों ने अनुमान किया कि उन लोगों में से जो लड़ाई के योग्य हैं उन्हें अंग्रेज़ी सरकार काबुल भेजना चाहती

भीलों का उपद्रव

है। कुछ ने खयाल किया कि उनकी संख्या की वृद्धि को रोकने या धीरे-धीरे नष्ट करने के लिए यह उपाय हो रहा है और कुछ भीलों ने समझा कि यह काम उनपर नये महसूल लगाने के लिए चल रहा है। उनकी ऐसी बातें सुनकर किसी ने हँसी में उनसे कहा कि पहले पुरुष तथा स्त्रियां तौली जायँगी, फिर मोटी स्त्रियां मोटे पुरुषों और दुबली दुबले पुरुषों को बाँट दी जायँगी। कुछ अहलकारों ने उन्हें सच्ची बात बतलाकर उनका संदेह मिटाने की भरसक कोशिश की, परंतु उनकी बातों पर उन्हें विश्वास न हुआ। कुछ अहलकारों के कठोर व्यवहार तथा नमक का भाव बढ़ जाने के कारण उक्त निर्मूल बातों पर विश्वास कर कई हज़ार भीलों ने एक देवी के मंदिर में एकत्र होकर प्रतिज्ञा की कि हम सब लोग सरकारी आदमियों का सामना करें। लड़ने पर आमादा देखकर उन्हें शांत करने के लिए उनके गमेतियों (मुखियों) से उनकी पालों, फलों एवं झोंपड़ियों की संख्या मालूम कर प्रतिघर चार व्यक्ति मान लिये गये। इस प्रकार अनुमान के सहारे उनकी खानाशुमारी की गई। इसी अरसे में बारापाल के थानेदार ने किसी मुक़द्दमे में गवाही देने के लिए पडूना के दो भील गमेतियों को सवार भेजकर बुलवाया। गमेतियों के हीलाहवाला करने पर सवार ने उन्हें ज़बर्दस्ती अपने साथ ले जाना चाहा। इसपर कुछ भील, जो पास ही खड़े थे, उसपर टूट पड़े और उसे मार डाला। इस घटना से सारे खैरवाड़े के भील उत्तेजित हो उठे। उन्होंने बारापाल के थानेदार, शराब के ठेकेदार तथा कुछ और लोगों को मारकर थाना, चौकी और कई दूकानें जला दीं। यह सुनकर उनका दमन करने के लिए महाराणा की आज्ञा से मामा अमानसिंह[1], मि० लोनार्गन और कविराजा श्यामलदास सेना-सहित उदयपुर से रवाना हुए। कई स्थानों पर उनसे

---

(१) अमानसिंह महाराजा किशनगढ़ के नज़दीकी रिश्तेदार और अजमेर ज़िले के गगवाना, ऊंटड़ा तथा मगरा गांवों के स्वामियों में से हैं। 'राजा' इनका ख़िताब है। महाराणा सज्जनसिंह के मामा होने के कारण मेवाड़ में ये 'मामाजी' कहलाते हैं। बहुत वर्षों तक ये मेवाड़ की क़वायदी सेना के कमांडिंग अफ़सर तथा महद्राजसभा के मेम्बर रहे। अब वृद्धावस्था के कारण ये महाराजकुमार के साथ रहते हैं। ये अंग्रेज़ी, फ़ारसी, हिन्दी आदि भाषाओं के ज्ञाता, बुद्धिमान्, विचारशील और पुराने ढंग के धर्मनिष्ठ सरदार हैं। मामा बख़्तावरसिंह, जिसका पहले उल्लेख हो चुका है, इनका बड़ा भाई था।

भीलों का मुक़ाबला हुआ। जहां-जहां वे पहुंचते वहीं से भील भाग जाते। अल-सीगढ़ और कोटड़े के भील भी बिगड़ उठे। उन्होंने कामदार तथा पुलिस के कई सिपाहियों को मार डाला, केवड़े की नाल की चौकियां जला दीं और पर-साद गांव में मगरे के हाकिम अखैसिंह को रोक रक्खा।

यह खबर पाकर महाराणा की सेना गधेड़ा घाटी की ओर गई, जहां लड़ाई छिड़ते ही भील भाग गये। इसके उपरान्त छः-सात हज़ार भीलों-द्वारा ऋषभ-देव का मंदिर घेरे जाने का समाचार सुनकर महाराणा की सेना उधर गई। सारे रास्ते में भीलों से लड़ाई होती रही। ऋषभदेव पहुंचकर श्यामलदास ने भीलों को समझाने के लिए वहां के पुजारी खेमराज भंडारी को उनके पास भेजा। भील कोर के चार अफ़सरों ने भी उन्हें समझाया तो वे सुलह के लिए तैयार हो गये और उन्होंने कुछ शर्तें पेश कीं। संधि की बातचीत चलती रही, इतने ही में वि० सं० १९३८ वैशाख वदि ५ (ई० स० १८८१ ता० १९ अप्रेल) को पोलिटिकल एजेंट का फ़र्स्ट असिस्टेंट कर्नल ब्लेयर और बन्दोबस्त का अफ़सर मि० विंगेट, दोनों वहां आ पहुंचे और भीलों से मिले। उनके सामने भीलों ने अपनी शिकायतें पेश कीं। श्यामलदास को कर्नल ब्लेयर का हस्ताक्षेप बहुत बुरा लगा और उसकी सम्मति की परवा न कर वह स्वयं फिर भीलों के पास पहुंचा। सुलह हो जाने की बहुत संभावना थी, परन्तु कुछ भीलों और सिपा-हियों की नासमझी से फिर झगड़ा खड़ा हो गया। इधर श्यामलदास से नाराज़ होकर कर्नल ब्लेयर ने बम्बई से अंग्रेज़ी सेना मंगवाने को लिखा, किन्तु इसके दूसरे ही दिन धूलेव (ऋषभदेव) के बनियों ने भीलों को समझाया। श्यामल-दास ने आधा बराड़ (पालों पर लगनेवाला वार्षिक कर) छोड़ना स्वीकार कर लिया। इसपर भील शान्त हो गये और सरकारी सिपाहियों की हत्या के एवज़ में उन्होंने जुरमाना देना, अपराधियों की सहायता के लिए एका न करना और उन्हें सौंप देना स्वीकार किया। इस तरह यह उपद्रव शान्त हो गया और वैशाख वदि १२ (ता० २५ अप्रेल) को महाराणा की सेना उदयपुर लौट आई[1]।

भारत-सरकार ने महाराणा को जी० सी० एस्० आई० (ग्रैंड कमांडर ऑफ़

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२१७-२८।

दि स्टार ऑफ़ इंडिया) का खिताब देना चाहा। इसपर उसने अपने वंश का प्राचीन गौरव और पूर्वजों का बड़प्पन बतलाते हुए कई उज़्र पेश किये, परंतु अंत में इस शर्त पर उसे स्वीकार किया कि हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल लॉर्ड रिपन स्वयं मेवाड़ में आकर खिताब दे। इस बात की स्वीकृति होने पर मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० १८८१ ता० २३ नवम्बर) को चित्तोड़ में बड़े समारोह के साथ दरबार हुआ, जिसमें गवर्नर जनरल ने महाराणा को उक्त खिताब का चोगा, हार आदि पहनाया। चित्तोड़ के क़िले के प्राचीन गौरव-सूचक स्थानों को देखने तथा महाराणा के आतिथ्य से प्रसन्न होकर गवर्नर जनरल तो लौट गया, परंतु महाराणा वहां कुछ दिन और ठहरा। क़िले का निरीक्षण कर उसने पुराने महलों तथा क़िले की मरम्मत के लिए प्रतिवर्ष २४००० रु० व्यय किये जाने की आज्ञा दी[१]। पुराने महलों की जो थोड़ी-सी मरम्मत उसके समय में हुई वही रही, परंतु क़िले की मरम्मत का काम तब से बराबर जारी है और अधिकांश हो चुका है।

चित्तोड़ का दरबार

वि० सं० १९३९ चैत्र सुदि २ (ई० स० १८८२ ता० २१ मार्च) में भौराई की पालवाले भीलों ने मगरा ज़िले के गिरदावर दयालाल चौबीसे को घेरकर फ़साद खड़ा कर दिया और नठारे के भीलों ने भी उनका साथ दिया। महाराणा ने उनके दमन के लिए मामा अमानसिंह को भेजा। उसने उन्हें शीघ्र ही दबा दिया। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे पैरों के सोने के लंगर देकर सम्मानित किया। महाराणा ने भौराई के भीलों को सरकश समझकर उन्हें दबाने के लिए वहां एक क़िला बनवाया और मज़बूत थाना क़ायम किये जाने की आज्ञा दी[२]।

भौराई के भीलों का उपद्रव

ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में अंग्रेज़ी सरकार ने मेरवाड़ा प्रदेश के प्रबन्ध के हिसाब में महाराणा के ज़िम्मे ७६००० रु० बक़ाया निकाला। इसपर महाराणा ने चाहा कि मेरवाड़े के अपने गांव उसे लौटा दिये जायँ। तब अंग्रेज़ी सरकार ने खरीता भेजकर महाराणा को सूचित किया—"उक्त प्रदेश के खर्च के लिए आप जो हिस्सा देते हैं वह अब न लिया जायगा।

मेरवाड़े के अपने हिस्से के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी सरकार से महाराणा की लिखा-पढ़ी

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२२६-३८।

(२) वही; पृ० २२३१।

मेरवाड़े के आपके हिस्से की सारी आय मेवाड़ भील कोर तथा मेरवाड़ा बटैलियन के खर्च में लगाई जायगी, दोनों फ़ौजों के खर्च के लिए आपसे और कुछ न मांगा जायगा; जो ७६००० रु० आपके ज़िम्मे बाक़ी हैं वे छोड़ दिये जायँगे, आपके पास मेरवाड़ा प्रदेश की आय का हिसाब भेजना बंद कर दिया जायगा और उस प्रदेश की आय कभी ६६००० रुपयों से अधिक हो तो बचत आपको दी जायगी"। इसपर महाराणा ने यह उज़्र पेश किया कि हिसाब भेजे जाने का पुराना तरीक़ा बंद होने पर मेरी प्रजा समझेगी कि मेवाड़ के मेरवाड़े पर मेरा प्रभुत्व नहीं रहा, और नये प्रबन्ध से मेवाड़ को आर्थिक क्षति उठानी पड़ेगी। इसके उत्तर में अंग्रेज़ी सरकार ने महाराणा को पक्का विश्वास दिलाया कि मेरवाड़े पर आपका प्रभुत्व बना रहेगा और वहां की वार्षिक आय की सूचना मेवाड़ रेज़िडेंट के द्वारा आपको बराबर मिलती रहेगी। महाराणा ने यह तजवीज़ भी पेश की कि नीमच के पास मेवाड़ के जो गांव ग्वालियर के अधिकार में हैं वे मेवाड़ को दिला दिये जायँ और ग्वालियर को उतनी ही आय के गांव अंग्रेज़ी इलाक़े से दे दिये जायँ तो मेरवाड़े का अपना सारा अधिकार मैं अंग्रेज़ी सरकार को सौंप दूंगा। उस समय सहूलियत के साथ अमल में लाये जाने की संभावना न देखकर अंग्रेज़ी सरकार ने महाराणा की यह तजवीज़ मंजूर न की[1]।

भींडर के महाराज मोहकमसिंह के जोरावरसिंह और फ़तहसिंह नामक दो पुत्र थे। जोरावरसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और फ़तहसिंह को

बोहेड़े का मामला

महाराणा भीमसिंह ने बोहेड़े की जागीर दी। रावत फ़तहसिंह के निस्सन्तान मरने पर सकतपुरे से बख़्तावरसिंह गोद आया। महाराज जोरावरसिंह के भी निस्सन्तान मरने पर उसका बहुत दूर का रिश्तेदार हंमीरसिंह, जो वास्तविक हक़दार नहीं था, पानसल से गोद लिया गया। इसपर फ़तहसिंह का दत्तक पुत्र होने के कारण बख़्तावरसिंह ने भींडर के लिए दावा किया और वह कई लड़ाइयां भी लड़ा, परन्तु भींडर पर हंमीरसिंह का ही अधिकार बना रहा। वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में बख़्तावरसिंह का देहान्त हो गया। उसके भी कोई पुत्र नहीं था।

(१) ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनद्ज़; जि० ३, पृ० १२-१३, ३३-३४।

इसी कारण उसने अपनी जीवित दशा में ही महाराणा सरूपसिंह की स्वीकृति से अपने भतीजे अदोतसिंह को सकतपुरे से गोद लिया। इसपर महाराज हंमीरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र शक्तिसिंह को बोहेड़ा दिलाये जाने का दावा किया, तो यह निर्णय हुआ कि यदि अदोतसिंह के पुत्र हो तो वह छोटा समझा जाय, उस (अदोतसिंह) के पीछे शक्तिसिंह बोहेड़े का स्वामी हो और हाल में उस (शक्तिसिंह) के निर्वाह के लिये बोहेड़े की जागीर में से दो गांव-देवाखेड़ा और बांसड़ा-दिये जायँ। थोड़े ही दिनों में शक्तिसिंह का देहान्त हो गया, तब हंमीरसिंह ने दरबार में दावा पेश किया कि उस (हंमीरसिंह) का तीसरा पुत्र रत्नसिंह अदोतसिंह का दत्तक समझा जाय। महाराणा शम्भुसिंह ने यह बात स्वीकार कर ली, परन्तु अदोतसिंह ने इसे मंज़ूर न किया और बोहेड़े तथा भींडरवालों में लड़ाइयाँ भी हुईं। महाराज हंमीरसिंह के उत्तराधिकारी महाराज मदनसिंह ने महाराणा सज्जनसिंह से अर्ज़ की कि रत्नसिंह अदोतसिंह का उत्तराधिकारी माना जाय। महाराणा ने उसे मंज़ूर कर रत्नसिंह को ऊपर लिखे हुए दोनों गांव दिलाये जाने की आज्ञा दी। महाराणा की आज्ञा के विरुद्ध अदोतसिंह ने सकतपुरे से अपने भतीजे केसरीसिंह को गोद ले लिया और रत्नसिंह को गांव देने से इन्कार किया। इसपर महाराणा ने बोहेड़े के दो गांव—देवाखेड़ा और बांसड़ा—अपने अधिकार में कर लिये। तब अदोतसिंह ने महाराणा की सेवा में अर्ज़ कराई कि आप तो हमारे स्वामी हैं, दो गांव तो क्या बोहेड़े की सारी जागीर भी छीनलें तो भी मुझे कोई उज्र नहीं, परन्तु भींडरवालों को तो एक भी बीघा ज़मीन देना मुझे मंज़ूर नहीं, मेरे ठिकाने का मालिक तो केसरीसिंह ही होगा। इसी अरसे में अदोतसिंह भी मर गया, जिससे महाराज मदनसिंह ने अपने भाई रत्नसिंह को बोहेड़ा दिलाये जाने का दावा किया। इसपर महाराणा ने केसरीसिंह को आज्ञा दी कि एक हफ़्ते के भीतर वह उदयपुर चला आवे, नहीं तो उसे दंड दिया जायेगा। केसरीसिंह के उक्त आज्ञा का पालन न करने पर महाराणा ने वि० सं० १९४० चैत्र वदि ७ (ई० स० १८८४ ता० १९ मार्च) को मेहता पन्नालाल के छोटे भाई लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में उदयपुर से सेना और दो तोपें रवाना कीं। बोहेड़े पहुंच कर मेहता लक्ष्मीलाल ने उस (केसरीसिंह) को पहले बहुत कुछ समझाया, परन्तु जब

उसने न माना तब लड़ाई छिड़ गई। अच्छी तरह लड़ने के पश्चात् केसरीसिंह तथा उसके साथी बोहेड़े से भाग निकले, परन्तु राज्य की सेना ने उनका पीछा कर उन्हें गिरिफ़्तार कर लिया। इस लड़ाई में राज्य की सेना के ४ सैनिक तो मारे गये और १४ घायल हुए। केसरीसिंह की तरफ़ के १८ आदमी काम आये, १२ घायल हुए और ३७ क़ैद हुए। महाराणा ने राज्य की सेना के जो सिपाही मारे गये उनके बालबच्चों के निर्वाह का यथोचित प्रबन्ध किया, घायलों को इनाम दिया, मेहता लक्ष्मीलाल को सोने के लंगर देकर सम्मानित किया, फ़ौज-ख़र्च वसूल करने के लिये बोहेड़े का मंगरवाड़ गांव राज्य के अधिकार में रख लिया और रावत रत्नसिंह को बोहेड़े का स्वामी बनाया[1]।

महाराणा ने शहर उदयपुर में सफ़ाई तथा रोशनी का प्रबन्ध किया और सड़कों की मरम्मत कराकर उनपर बड़े बड़े वृक्ष लगवाये। शहर के निकट जयपुर के रामनिवास बाग़ के तर्ज़ पर सज्जननिवास नाम का बहुत बड़ा, रम्य एवं सुन्दर बाग़ लगवाया जाकर उसकी देखभाल के लिये एक यूरोपियन बाग़वान नियुक्त किया गया। बाग़ में जगह-जगह फ़व्वारे तथा जलधाराएं छोड़नेवाली पुतलियां बनवाई गई और चौड़ी सड़कों पर जनसाधारण के बैठने तथा आराम करने का अच्छा इन्तज़ाम किया गया। इस विस्तीर्ण बाग़ की सिंचाई के लिये पीछोला तालाब से एक नहर लाई गई, इसके अतिरिक्त उक्त तालाब से नलों-द्वारा सर्वत्र पानी पहुँचाने की व्यवस्था की गई। नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों के पौधे तथा फलों के वृक्ष बाहर से मंगवाकर उसमें लगाये गये, विद्यार्थियों के लिये क्रिकेट, फुटबॉल आदि खेलने के स्थान, नाना प्रकार के जलचरों के लिये तार की जालियों के मंडपवाले हौज़; और शेर, चीते, रीछ, साँभर आदि जंगली जंतुओं के लिये स्थान बनाये गये। नाहरमगरे में भी एक सुन्दर बाग़ लगवाया गया। कृषकों के सुबीते के लिये छोटे छोटे तालाबों की दुरुस्ती कराई गई, उदयसागर तथा राजसमुद्र से नहरें निकलवाकर सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध किया गया और उसकी निगरानी के लिये एक इंजीनियर नियुक्त हुआ। उदयपुर से नींबाहेड़े और उदयपुर से खैरवाड़े तक पक्की सड़कें बनवाई गई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट डाक्टर स्ट्रैटन की

महाराणा के लोकोपयोगी कार्य

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२४९-५१।

निगरानी में उदयपुर से नाथद्वारे तक एक पक्की सड़क निकाली गई। इसके सिवा राज्य के भिन्न भिन्न विभागों में और भी कई सड़कें बनीं। चित्तोड़ से उदयपुर तक रेल बनाने की आज्ञा दी गई और उस काम के लिये एक इंजीनियर भी नियत किया गया, परन्तु महाराणा का देहान्त हो जाने से वरसों तक काम बन्द रहा।

अपने राज्य में शिक्षा की सुव्यवस्था करने के लिए एज्युकेशन कमेटी नियुक्तकर महाराणा ने उदयपुर में हाईस्कूल, संस्कृत एवं कन्या-पाठशाला और ब्रह्मपुरी आदि स्थानों में प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाएं स्थापित कराईं। इसी प्रकार उसने ज़िलों में भी पाठशालाएं और दवाखाने स्थापित किये जाने की व्यवस्था की। उसने उदयपुर में 'सज्जन-यंत्रालय' नाम का छापाख़ाना भी क़ायम किया, जहां से 'सज्जन-कीर्ति-सुधाकर' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगा।

महाराणा शंभुसिंह के समय में दो दवाख़ाने खोले गये थे—एक उदयपुर शहर के भीतर और दूसरा बाहर। इस महाराणा ने उन्हें बंद कराकर अपने नामपर एक बड़ा अस्पताल क़ायम किया, जिसमें रोगियों की सब प्रकार की चिकित्सा एवं उपचार का यथोचित प्रबन्ध किया गया और वहां उनके रहने की भी व्यवस्था की गई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल वॉल्टर के नाम पर एक ज़नाना अस्पताल भी खोला गया और वहां स्त्री-रोगियों के सुबीते का प्रबंध किया गया। इसके सिवा चेचक का टीका लगाने का काम शुरू किया गया और जेलख़ाने के मकान की दुरुस्ती कराकर उसकी ठीक व्यवस्था की गई।

पोलिटिकल एजेंट की सिफ़ारिश से रैवरेंड डॉक्टर शेपर्ड को स्कॉटिश मिशन के लिए पीछोला तालाब के पास कुछ भूमि दी गई। महाराणा की आज्ञा से उक्त डॉक्टर ने उदयपुर शहर में एक अस्पताल, रेज़िडेन्सी के निकट गिरजाघर और उदयपुर तथा उसके आस-पास के कुछ गांवों में मदरसे भी स्थापित किये।

गद्दी पर बैठते ही महाराणा की शिक्षा के लिए जानी बिहारीलाल नियत हुआ, जो एक योग्य व्यक्ति एवं विद्वान् था। महाराणा के प्रतिभाशाली होने के कारण उसकी शिक्षा से उसके हृदय में विद्यानुराग का जो बीज अंकुरित हुआ वह विद्वानों के समागम से दिन-दिन बढ़ता ही गया। अपनी विद्याभिरुचि के कारण उसने अपने महलों में 'सज्जन-वाणी-विलास' नामक पुस्तकालय स्थापितकर उसे कविराजा श्यामलदास के

महाराणा का विद्यानुराग

निरीक्षण में रक्खा। उसमें संस्कृत, अंग्रेज़ी, हिन्दी आदि भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रंथों का संग्रह हुआ और उनपर लगाने के लिए सोने की जो मुद्रा बनाई गई उसमें निम्नलिखित श्लोक खुदवाया गया—

सज्जनेन्द्रनरेन्द्रेण निर्मितं पुस्तकालयम्।
आकरं सारग्रन्थानामिदं वाणीविलासकम्॥

आशय—नरेन्द्र सज्जनेन्द्र (सज्जनसिंह) ने उत्तम ग्रंथों के संग्रह का 'वाणीविलास' नामक यह पुस्तकालय बनाया।

कविराजा श्यामलदास, ऊजल फ़तहकरण, बारहठ किशनसिंह, स्वामी गणेशपुरी आदि कवियों तथा विद्वानों के संसर्ग से वीर, शृंगार आदि रसों की हिन्दी एवं डिंगल भाषा की कविता की ओर महाराणा की रुचि बढ़ी, वह स्वयं कविता[1] बनाने लगा और शनैः शनैः कविता तथा संगीत का अच्छा मर्मज्ञ[2] हो गया। कविता का मर्म समझने के अतिरिक्त उसकी त्रुटियां सुधारने[3] में भी

(१) महाराणा की बनाई हुई बहुतसी कविताओं में से दोहे, सोरठे आदि का संग्रह बीजोल्यां के स्वर्गीय राव कृष्णसिंह ने 'रसिकविनोद' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया है।

(२) 'सहज राग अधरन अरुनाये। मानहु पान पान से खाये'॥ अवतार-चरित की इस चौपाई के अर्थपर बहुत दिनों से मत-भेद चला आता था। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने इसका यह अर्थ किया था कि प्राकृत रंग ने होठों को ऐसा लाल कर दिया है कि मानो पान-जैसे पतले होठों ने पान खाया हो। महाराणा ने जब यह सुना तो कहा कि कवि का आशय होठों की प्रशंसा करने का नहीं है, वह तो केवल उनकी लाली का वर्णन करता है। फिर होठों से उपमा की योजना कर पान शब्द से पतले होठ का अर्थ ग्रहण करना कवि के अभिप्राय के विरुद्ध है। इसका सीधा-सादा अर्थ यही क्यों न किया जाय कि स्वाभाविक रंग से होठ ऐसे लाल थे मानो पांच सौ पान खाये हों। सरल और सरस होने से इस अर्थ को सबने पसन्द किया। मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० २२-२३।

(३) कोटे से चारण फ़तहदान ने कविराजा श्यामलदास के द्वारा महाराणा के पास २२ कवित्त भेजे। एक कवित्त में महाराणा ने "पदुमी कसोटी हाटक सी रेख रान रावरे सुयश की" यह चरण देखकर कहा कि जो पदुमी की जगह काश्यपी शब्द हो तो कसोटी से वर्णमैत्री खूब हो जाय। फ़तहदान ने जब यह सुना तब महाराणा को धन्यवाद देते हुए लिखा कि एक एक कवित्त पर यदि मुझे एक एक लाख पसाव (प्रसाद, पारितोषिक) मिलता तो भी इतनी खुशी न होती, जितनी मेरी कविता सुधार देने से हुई है। इसी प्रकार जिन दिनों महाराणा बारहठ किशनसिंह से 'वंशभास्कर' सुनता था, एक दिन वह पढ़ते पढ़ते रुक गया और बोला

उसकी अच्छी गति थी। अपने काव्यानुराग के कारण वह उदयपुर में प्रति सोमवार कवि-सम्मेलन करता, जिसमें काव्यानुरागी पुरुष सम्मिलित होते, कविताएं पढ़ी जातीं तथा समस्यापूर्ति और अलंकारों का निरूपण हुआ करता था। धारणाशक्ति प्रबल होने के कारण उसको सैकड़ों श्लोक, कवित्त, सवैये, दोहे आदि कंठस्थ थे। अपने विद्या-प्रेम के कारण वह भिन्न भिन्न विषयों के देशी और विदेशी पंडितों एवं कवियों को अपने यहां आश्रय देता और उनका बड़ा आदरसत्कार[1] करता था। जो विदेशी विद्वान् उससे मिलने आते उनसे अनेक विषयों की चर्चा कर वह लाभ उठाता और विदा होते समय उन्हें सिरोपाव आदि प्रदान करता। जिस विद्वान् को एक बार भी उससे मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता वह उसकी गुणग्राहकता कभी न भूलता। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की रचनाओं से मुग्ध होकर महाराणा ने उसे बहुत आग्रहपूर्वक अपने यहां बुलाया, कई दिनों तक बड़े सम्मान के साथ रखा और विदा होते समय सिरोपाव के अतिरिक्त १०००० रु० प्रदान किये। इसी प्रकार आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता और उसके धार्मिक व्याख्यानों की चर्चा सुनकर उसने उसे उदयपुर बुलाया, बहुत दिनों तक बड़े सम्मान के साथ वहां ठहराकर उसके व्याख्यान सुने और उससे वैशेषिक दर्शन तथा

कि यहां चरण के कुछ अक्षर रह गये हैं, केवल इतना ही पाठ है "पहुमान रुक्किय अरु डक्किय ······बिच्छुरे"। महाराणा ने कुछ सोचकर कहा कि इसमें 'चक्क चक्किय' लिखना रह गया है और इसका पूरा पाठ ऐसा होगा—'पहुमान रुक्किय अरु डक्किय चक्क चक्किय बिच्छुरे'। कुछ दिनों पीछे जो दूसरी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई तो उसमें महाराणा का बतलाया हुआ ही पाठ मिला। मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत; पृ० २३-२४।

(१) न्याय और अलंकार का ज्ञाता सुब्रह्मण्य शास्त्री द्रविड़, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र का विद्वान् विनायक शास्त्री वेताल, सुप्रसिद्ध ज्योतिषी नारायणदेव, वैयाकरण पंडित अजितदेव आदि विद्वानों को महाराणा ने बाहर से बुलाकर अपने यहां रखा। उसने अपने मुख्य सलाहकार दधवाड़िया कवि श्यामलदास को कविराजा की उपाधि, पैरों में सोने के लंगर, ताज़ीम, चांदी की छड़ी आदि की प्रतिष्ठा तथा श्यामलबाग़ बनाने के लिए हाथीपोल दरवाज़े के बाहर ज़मीन दी और उसके घरपर मेहमान होकर उसे सम्मानित किया। साथ ही यह आज्ञा भी दी कि जबतक ताज़ीम के अनुसार उसे जागीर न दी जाय तब तक राज्य की ओर से सवारी, लवाज़िमा और ख़र्च (नियत रक़म) उसे मिलता रहे। जोधपुर के अयाचक कविराजा मुरारिदान को भी ताज़ीम देकर महाराणा ने उसका सम्मान किया।

मनुस्मृति आदि ग्रंथ पढ़े। उसकी शिक्षा एवं उपदेश का महाराणा पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा, जिससे उसपर उसको बड़ी श्रद्धा[1] हो गई और उसने आर्य-समाज की प्रतिनिधि सभा के सभापति का पद ग्रहण किया।

इतिहास और पुरातत्त्व से भी महाराणा को बड़ी रुचि थी। उसने कविराजा श्यामलदास (महामहोपाध्याय) को 'वीरविनोद' नाम का बृहद् इतिहास तैयार करने और उस कार्य के लिये १००००० रु० व्यय किये जाने की आज्ञा दी। कविराजा-द्वारा 'इतिहास-कार्यालय' की स्थापना होकर उसमें संस्कृत[2], हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के ज्ञाता नियुक्त किये गये, भिन्न भिन्न भाषाओं के प्राचीन एवं अर्वाचीन ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्व-सम्बन्धी ग्रंथों का संग्रह हुआ और प्राचीन शिलालेखों की छापें तैयार कराने की व्यवस्था की गई। राजपूतों के भिन्न भिन्न वंशों के बड़वे (वंशावली-

---

(१) अजमेर में स्वामी दयानन्द सरस्वती के देहांत होने का समाचार मिलने पर महाराणा को बड़ा शोक हुआ और उसने निम्नलिखित पद्य बनाकर अपना उद्गार प्रकट किया—

नभ चव ग्रह ससि दीप-दिन दयानन्द सह सत्व।
वय त्रेसठ वतसर विचै पायो तन पंचत्व ॥

कवित्त—

जाके जीह जोर तें प्रपंच फिलासिफन को
अस्त सो समस्त आर्य्यमंडल तें मान्यो मैं।
वेद के विरुद्धी मत मत के कुबुद्धी मन्द
भद्र मद्र आदिन पैं सिंह अनुमान्यो मैं॥
ज्ञाता खट ग्रंथन को वेद को प्रणेता जेता
आर्य्यविद्याअर्कहू को अस्ताचल जान्यो मैं।
स्वामी दयानन्दजू के विष्णुपद प्राप्त हू तें
पारिजात को सो आज पतन प्रमान्यो मैं॥१॥

मुंशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृष्ठ २१।

(२) संस्कृत-साहित्य और व्याकरण का अपूर्व विद्वान् पं० रामप्रताप ज्योतिषी दसवीं सदी के पीछे के शिलालेखों के पढ़ने के लिए और पं० परमानन्द भटमेवाड़ा ऐतिहासिक संस्कृत ग्रंथों आदि का हिन्दी में खुलासा करने के लिए नियत किये गये।

लेखक) बुलाये गये, राज्य की ओर से उनका सम्मान किया गया और उनकी बहियों तथा वंशावलियों के आवश्यक अंशों की नक़लें तैयार कराई गईं। इस प्रकार बहुत बड़ी सामग्री एकत्र हो जाने पर इतिहास का लिखा जाना प्रारम्भ हुआ और महाराणा ने उस काम में बड़ी ही दिलचस्पी ली, परन्तु खेद है कि उसकी जीवित दशा में वह पूरा न हो सका।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में महाराणा ने उदयपुर से एक कोस पश्चिम बांसदरा पर्वतपर, जो समुद्र की सतह से ३१०० फुट ऊँचा है, सज्जन-

महाराणा के बनवाये हुए महल आदि

गढ़ नामक विशाल भवन बनवाना आरम्भ किया, पर उसकी जीवित दशा में उसका एक ही खंड, जिसमें पत्थर की खुदाई का बड़ा ही सुन्दर काम बना हुआ है, तैयार हो सका। महाराणा फ़हतसिंह के समय में यह काम किसी तरह पूरा हुआ। यहां से दूर दूर के गांवों, तालाबों, एवं पर्वतमालाओं का सुन्दर दृश्य तथा प्रकृति की मनोहर छटा देखते ही बनती है। इसके सिवा पीछोला तालाब के अन्दर के जगनिवास नामक महल में उसने अपने नाम पर सज्जननिवास नाम का एक सुन्दर भवन तैयार कराया, राजमहलों के दक्षिणी छोर पर एक विशाल बुर्ज बनवाने का कार्य आरम्भ किया, जो महाराणा फ़तहसिंह के समय में पूरा हुआ और उसका नाम 'शिवनिवास' रखा गया। भींडर में उसने गढ़ बनवाया, चित्तोड़गढ़ की मरम्मत का काम जारी कर आज्ञा दी कि उसमें प्रतिवर्ष २४००० रु० लगाये जायँ, और वहां के पुराने महलों की दुरुस्ती का काम छेड़ा, जो थोड़ा सा होकर रह गया। प्रसिद्ध जयसमुद्र नाम की मेवाड़ की सब से बड़ी झील की, जिसे महाराणा जयसिंह ने बनवाया था और जिसका संगमरमर का बांध दो पहाड़ों के बीच में बना है, दृढ़ता के लिये उसके पीछे कुछ दूरी पर उतना ही ऊँचा और १३०० फुट लम्बा दूसरा बांध उक्त महाराणा ने तैयार कराया था, परन्तु १८४ वर्ष तक दोनों बांधों के बीच का हिस्सा बिना भरे ही पड़ा रहा। वि० सं० १९३२ (ई० स० १८७५) की अति वृष्टि को देखकर महाराणा सज्जनसिंह ने सोचा कि इस झील का बांध टूट जाने से गुजरात की ओर के बहुत गांवों के बह जाने की आशंका है, इसलिये उसने २००००० रु० खर्चकर पत्थर, चूना और मिट्टी से दोनों बांधों के मध्यवर्ती गड्ढे का $\frac{2}{3}$ हिस्सा भरवा दिया। बाक़ी का

हिस्सा महाराणा फ़तहसिंह के समय में भरा गया, जिससे बांध सुदृढ़, विस्तीर्ण तथा सुन्दर हो गया और उसपर वृक्ष लग जाने से उसकी शोभा और भी बढ़ गई।

अपने पिछले वर्षों में महाराणा बीमार रहने लगा और अन्त में उसे पेट की शिकायत हो गई, जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। कुछ दिनों तक डॉक्टर की चिकित्सा होती रही और उससे आराम न होने पर दिल्ली के नामी हकीम महमूदखां का इलाज शुरू किया गया, पर जब उससे भी कोई लाभ न हुआ तब महाराणा ने पीड़ा के कारण शराब और अफ़ीम को मुँह लगाया, जिससे बीमारी और भी बढ़ गई। फिर यह समझकर कि जलवायु के परिवर्तन से मेरी दशा ज़रूर सुधर जायगी वह जोधपुर गया। वहां भी उसकी बीमारी कम न हुई और वह दिन दिन निर्बल होता गया, जिससे उदयपुर लौट आया। अन्त में वि० सं० १९४१ पौष सुदि ६ (ई० स० १८८४ ता० २३ दिसम्बर) को वह इस संसार से चल बसा।

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

महाराणा सज्जनसिंह प्रतापी, तेजस्वी, कुलाभिमानी[1], प्रजावत्सल, क्षत्रिय जाति का सच्चा हितचिंतक[2], कवियों तथा विद्वानों का गुण-

(१) वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७५) में अंग्रेज़ी सरकार के बहुत अनुरोध करने और बैठक की शर्त तय हो जाने पर इङ्गलैंड के युवराज एडवर्ड एल्बर्ट का स्वागत करने के लिए महाराणा बंबई गया, परन्तु यह जानकर कि मेरी कुर्सी शर्त के खिलाफ़ रखी गई है उसपर न बैठा और शाहज़ादे से खड़े खड़े मुलाक़ात कर उदयपुर लौट गया।

वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में अंग्रेज़ी सरकार ने महाराणा को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब देना चाहा जिसे उसने अपने वंश की प्रतिष्ठा का विचार कर इस शर्त पर लेना मंजूर किया कि हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल लार्ड रिपन मेवाड़ में आकर अपने हाथ से ख़िताब दे।

(२) महाराणा अपनी जाति का कितना हितैषी और पक्षपाती था इसका पता उसकी निम्नलिखित कार्रवाई से चल जाता है—

वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में जोधपुर में यह ख़बर सुनकर कि जामनगर (काठियावाड़ में) के जाम वीभाजी की प्रार्थना के अनुसार अंग्रेज़ी सरकार ने उसकी मुसलमानी पासवान (उपपत्नी) के पुत्र को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया है, महाराणा बहुत भड़का और जोधपुर के महाराजा से मिलकर उसने राजपूताने के एजेंट कर्नल ब्रेडफ़र्ड के पास इस आशय के कई तार तथा ख़रीते भेजे कि 'अंग्रेज़ी सरकार को हम राजपूतों के ख़ानगी

महाराणा का व्यक्तित्व

ग्राहक[1], न्यायनिष्ठ[2], नीतिकुशल, दृढ़-संकल्प, उदार, विद्यानुरागी, बुद्धिमान् एवं विचारशील था। मेधावी तो वह ऐसा था कि जिन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती से मनुस्मृति का राजधर्म-प्रकरण पढ़ता था उन दिनों घंटे भर में २२ श्लोकों का आशय याद कर लेता था। शिल्प-सम्बन्धी कार्यों से उसे विशेष रुचि थी और उनमें यहां तक उसकी गति थी कि अपने हाथ से मकानों के नक़शे खींच लेता था, जिन्हें देखकर इंजीनियर लोग भी दंग रह जाते थे। वास्तव में वह मेवाड़ क्या समस्त राजस्थान के उन असाधारण प्रतिभाशाली, शक्तिसंपन्न एवं निर्भीक नरेशों में से था, जिनके नाम अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। उसे भले-बुरे, योग्य-अयोग्य मनुष्यों की अच्छी परख थी और वह सदा सत्समागम से लाभ उठाता, बुरे आदमियों की

मामलों में दख़ल न देना चाहिये। फिर उदयपुर लौटते समय उक्त महाराजा को साथ लेकर वह अजमेर में एजेंट गवर्नर जनरल से मिला और जामनगर के सम्बन्ध में बड़ी निर्भयता से बातचीत करते हुए कहा—'जामनगर के महाराजा की प्रार्थना सर्वथा अनुचित एवं अन्यायपूर्ण है, इसलिए अंग्रेज़ी सरकार को चाहिये कि उसे स्वीकार न करे'। इस पर महाराणा से बहुत कुछ बहस करने के बाद कर्नल ब्रैडफ़र्ड ने पूछा—'जामनगर राज्य के मामले से आपका क्या सम्बन्ध है? वह तो काठियावाड़ में है और आपका राज्य राजपूताने में'। यह सुनकर महाराणा ने कहा—'जामनगर राजपूताने की सीमा से बाहर तो ज़रूर है, परन्तु उसपर हमारी जाति का अधिकार है, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि अपनी जाति की तरफ़दारी करें। आप लोग भी अपनी जाति के बड़े पक्षपाती हैं'। इसपर उक्त कर्नल ने कहा—'इस सम्बन्ध की मिस्ल मंगवाकर मैं आपके पास भेज दूंगा'। इसके थोड़े ही दिनों पीछे महाराणा का देहान्त हो जाने के कारण इस मामले में और कोई कार्रवाई न हो सकी।

(१) देखो—महाराणा का विद्यानुराग सम्बन्धी वर्णन।

(२) पहले उदयपुर के बाज़ार में लावारिस जानवर घूमा करते, जो अनाज तथा शाक बेचनेवालों को बड़ी हानि पहुंचाते और जिनसे कभी कभी मनुष्यों को चोट भी आ जाती थी। ऐसे पशुओं को पुलिस के सिपाहियों से पकड़वा कर गोशाला में रखे जाने का महाराणा ने निश्चय किया। इसपर शहर के महाजनों ने हड़ताल कर बड़ा उपद्रव मचाया, परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। महाजनों को बुलाकर उसने बहुत कुछ समझाया, किन्तु जब उसका कुछ फल न हुआ तब उनके पांच मुखियाओं को क़ैद कर लिया, जिससे उपद्रव तुरन्त शान्त हो गया। इसी प्रकार पहले पहल मेवाड़ में मर्दुमशुमारी का काम शुरू होने पर भीलों ने जब उपद्रव मचाया तब उदयपुर से सेना भेजकर महाराणा ने उनका दमन किया।

सोहबत से बचता तथा उन्हें एवं खुशामदी लोगों को कभी मुँह नहीं लगाता था। गुस्से की हालत में उसके चेहरे पर कभी कभी सख़्ती और बेरहमी के भाव दिखाई देते थे, जिन्हें वह बुद्धिमानी से रोक लेता था। खाने, पीने, सोने तथा जगने का समय अनियमित होने और पिछले दिनों में भोग-विलास की तरफ़ झुक जाने से उसका शरीर अनेक रोगों का घर हो गया, जिनकी तकलीफ़ के कारण उसने शराब, अफ़ीम आदि नशीली चीज़ों का इस्तिमाल बहुत बढ़ा दिया, जिससे दिन दिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया।

कोई कवि, गुणी या विद्वान् बाहर से उदयपुर जाता तो महाराणा उसका यथोचित आदर-सत्कार करता और विदा होते समय उसे सिरोपाव आदि देकर उसका उत्साह बढ़ाता[1]। उसके समय में उदयपुर नगर दूर दूर देशों के विद्वानों, कवियों और गुणिजनों का आश्रय एवं समागम-स्थान हो गया था। वहां प्रति सोमवार को कवियों तथा विद्वानों की सभा होती, जिसमें काव्य एवं शास्त्रचर्चा हुआ करती। यात्रार्थ नाथद्वारा तथा केसरियानाथ जानेवाले बम्बई आदि स्थानों के प्रसिद्ध एवं धनाढ्य पुरुषों में से जो उससे मिलने की अभिलाषा से उदयपुर जाते उनसे वह बड़ी प्रसन्नता से मिलता और उनका आदर करता, जिससे उसकी ओर वे सदा पूज्य दृष्टि रखते और उसकी कृपा को कभी नहीं भूलते।

महाराणा के धर्म-सम्बन्धी विचार स्वतन्त्र, उन्नत और उदार थे। उसे किसी धर्म या मतविशेष का आग्रह नहीं था। इसका परिचय उसने स्वामी दयानन्द सरस्वती-द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा का अध्यक्ष होकर दिया। वह अपना अमूल्य समय और राज्य का द्रव्य नाच, रंग, शिकार आदि फ़ुज़ूल

(१) 'प्रतापनाटक' नामक गुजराती ग्रन्थ के कर्त्ता गणपतराम राजाराम भट्ट ने गुजरात के अनेक राजाओं एवं सेठ-साहूकारों को अपना ग्रन्थ पढ़कर सुनाया और बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीदास खीमजी ठक्कर ने जब उसका नाटक सुना तब प्रसन्न होकर उससे कहा—'उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह बड़े गुणग्राही हैं, तुम उनके यहां जाओ। वे तुम्हारा नाटक प्रसन्नता पूर्वक सुनेंगे और तुम्हारा आदर करेंगे'। इस प्रकार उत्साह दिलाये जाने पर अजमेर तथा चित्तोड़ होता हुआ वह उदयपुर पहुंचा। उसका ग्रन्थ सुनकर महाराणा बहुत प्रसन्न हुआ और उसे ४०० रु० (सरूपशाही) पुरस्कार दिया। बाहर के ग्रन्थकारों एवं पत्र-सम्पादकों की भी महाराणा बराबर सहायता करता था।

बातों में नष्ट न कर राज्य-प्रबन्ध, लोकहित एवं शिक्षाप्रचार सम्बन्धी कार्यों में लगाता। गद्दी पर बैठते ही स्वार्थी लोगों ने उसपर अपना प्रभाव जमाना चाहा, परन्तु वह उनकी चाल ताड़ गया, जिससे उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर उसने कभी ध्यान न दिया। जानी बिहारीलाल जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यक्ति के निरीक्षण में शिक्षा प्राप्त करने से उसे बड़ा लाभ हुआ। जानी बिहारीलाल की शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि महाराणा पर अपने पिता की बुरी आदतों का कुछ असर न पड़ा।

महाराणा ने उदयपुर में सफ़ाई, रोशनी आदि का अच्छा प्रबन्ध कर उसकी शोभा बढ़ाई। सड़कों, बाग़ों, क़िलों, महलों, तालाबों तथा झीलों की मरम्मत कराई, सज्जननिवास बाग़ बनवाया, झीलों से नहरें निकलवाकर सिंचाई का सुप्रबन्ध किया, अनेक स्थानों में सड़कें बनवाईं और अपने राज्य में रेल बनाने की आज्ञा दी। उदयपुर में अस्पताल तथा ज़िलों में दवाखाने क़ायम कराकर उसने रोगियों की चिकित्सा की सुव्यवस्था की और जेलख़ाने का भी अच्छा इन्तिज़ाम किया।

महद्राजसभा की स्थापना कर उसने न्याय-विभाग का सुधार किया। इस कार्य में उसे अनेक बाधाओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके सिवा अपने राज्य में उसने बन्दोबस्त का काम जारी कराया, पहाड़ी प्रदेश के प्रबन्ध के लिए 'शैलकांतार-सम्बन्धिनी सभा' स्थापित की, अंग्रेज़ी सरकार से नमक का समझौता किया, राज्य की आय बढ़ाई; सेना, पुलिस, ख़ज़ाना, हिसाब, चुंगी, टकसाल आदि महकमों का अच्छा प्रबन्ध किया और प्रत्येक परगने का बजट (आय-व्यय) निश्चित कर दिया।

अपने विद्यानुराग की प्रेरणा से उसने 'सज्जनवाणीविलास' नामक अपना निजी पुस्तकालय स्थापित किया, वीरविनोद नाम का बृहद् ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे जाने की व्यवस्था की और अपने नाम पर छापाख़ाना क़ायम कर 'सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित कराना आरम्भ किया, अपने राज्य में शिक्षाप्रचार कराने के लिये उसने एज्युकेशन कमेटी और कई स्कूल एवं पाठशालाएं स्थापित कीं। अनाथालय, पागलख़ाना और गोशाला खोली, वि॰ सं॰ १९३४ (ई॰ स॰ १८७७) के अकाल के समय अपनी दीन प्रजा की

रक्षा का ऐसा अच्छा आयोजन किया कि वह अधिकांश बच गई और 'देश-हितैषिणी' सभा स्थापित कर लोकोपयोगी कार्यों की ओर जनसाधारण का अनुराग बढ़ाया।

देशी राज्यों के बीच मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक समझकर महाराणा ने जोधपुर, जयपुर, कृष्णगढ़, झालावाड़, रीवां, इन्दौर आदि अनेक राज्यों के स्वामियों के साथ मेलजोल बढ़ाया और उदयपुर तथा जोधपुर के नरेशों की शिरस्ते की मुलाक़ात का सिलसिला, जो बहुत वर्षों से टूट गया था, फिर ज़ारी किया। पोलिटिकल अफ़सरों के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा रहा और वे भी हमेशा उसका लिहाज़ रखते थे। अपने सरदारों के साथ भी उसका सम्बन्ध सदा उत्तम रहा। वह उनका बड़ा खयाल रखता और उनके हितसाधन में सदा तत्पर रहता। उनके अधिकार स्थिर रखने के लिये कुछ सरदारों के साथ उनकी इच्छा के अनुसार उसने क़लमबन्दी की और मेवाड़ का दौरा करते समय कई सरदारों के ठिकानों में जाकर उन्हें सम्मानित किया।

महाराणा राजसिंह (प्रथम) के पीछे मेवाड़ की दशा को उन्नत करनेवाला उसके जैसा और कोई महाराणा हुआ ही नहीं। राज्य का अधिकार मिलने के बाद केवल ६ वर्ष के राजत्वकाल में ही उसने अपने राज्य की उन्नति और प्रजा की भलाई के बहुतसे काम किये। कुछ और अधिक काल तक वह जीवित रहता तो मेवाड़ की और भी उन्नति होती।

उसका क़द लम्बा, रंग गेहुँआ, शरीर हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ, आंखें बड़ी और चेहरा बड़ा प्रभावशाली था।

महाराणा फ़तहसिंह

महाराणा फ़तहसिंह का जन्म वि० सं० १९०६ पौष सुदि २ (ई० स० १८४९ ता० १६ दिसम्बर) को हुआ था। वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के चौथे पुत्र अर्जुनसिंह के वंशज शिवरती के महाराज दलसिंह का तीसरा पुत्र था।

महाराणा का जन्म और राज्याभिषेक

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणा सर फतहसिंहजी
बहादुर, जी. सी. एस्. आई., जी. सी. वी. ओ.

महाराणा जवानसिंह के पीछे महाराणा सरदारसिंह से लगाकर सज्जनसिंह तक चारों महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के दूसरे पुत्र बागोर के स्वामी महाराज नाथसिंह के वंशज थे और वहीं से गोद आये थे। महाराणा सज्जनसिंह के पुत्र न होने की हालत में नाथसिंह के वंशजों में से कोई गोद न लिया गया, जिसका कारण यह हुआ कि डॉक्टर स्ट्रैटन ने वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८२) अर्थात् महाराणा सज्जनसिंह के समय महाराणाओं के वंशवृक्ष के सम्बन्ध में लिखी हुई अपनी याददाश्त में या तो बिना पूरी जाँच किये या भूल से यह लिखा कि महाराज नाथसिंह के द्वितीय पुत्र सूरतसिंह ने अपुत्र होने के कारण महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के वंशधर हींता के राणावतों में से रूपसिंह को गोद लिया, जिससे उस (सूरतसिंह) के वंशजों में संग्रामसिंह (द्वितीय) का रक्त नहीं रहा, पर संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र बाघसिंह (करजाली के) और चौथे बेटे अर्जुनसिंह (शिवरती के) के वंशधरों में आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के वंश से ही गोद लेने के कारण उनमें उस (संग्रामसिंह) का रक्त विद्यमान है। यही बात मेवाड़ के रेज़िडेन्ट कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक "बायोग्रॉफिकल स्केचीज़ ऑफ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार"[1] में दोहराई। इस प्रकार उक्त डॉक्टर तथा कर्नल वॉल्टर दोनों ने बागोरवालों का राज्य का हक़ बिलकुल उड़ा दिया, जिससे उसके पीछे मेवाड़ की गद्दी का वास्तविक हक़दार संग्रामसिंह (द्वितीय) के तीसरे पुत्र बाघसिंह (करजाली के) का वंशधर महाराज सूरतसिंह था, परन्तु वह एक निस्पृह तथा उदासीन वृत्ति का सरदार था, इसलिये उसके ऊपर मेवाड़ जैसे विशाल राज्य का भार छोड़ना उचित न समझकर उसकी स्वीकृति से ही महाराणा शंभुसिंह तथा सज्जनसिंह की राणियों, मेवाड़ के तत्कालीन रेज़िडेन्ट कर्नल वॉल्टर, अधिकांश सरदारों तथा प्रधान अधिकारियों ने उस (सूरतसिंह) के भाई फ़तहसिंह को, जिसे शिवरती के महाराज गजसिंह ने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, गद्दी पर बिठाना स्थिर किया। तदनुसार वि० सं० १९४१ पौष सुदि ६ (ई० स० १८८४ ता० २३ दिसम्बर) को उसकी गद्दीनशीनी और माघ सुदि ७ (ई० स० १८८५ ता० २३ जनवरी) को राज्याभिषेकोत्सव हुआ।

---

[1] पृष्ठ १-२।

चैत्र वदि ३ (ई० स० १८८५ ता० ४ मार्च) को राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल (एडवर्ड ब्रैडफ़र्ड) अंग्रेज़ी सरकार की ओर से गद्दीनशीनी का खरीता लेकर उदयपुर गया और वहां एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें उसने वह खरीता पढ़कर सुनाया, फिर वि० सं० १९४२ श्रावण सुदि १२ (ता० २२ अगस्त) के दरबार में कर्नल वॉल्टर ने सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से महाराणा को पूर्ण अधिकार मिलने की घोषणा की।

उदयपुर में जोधपुर, कृष्णगढ़, जयपुर और ईडर के महाराजाओं का आगमन

इसी वर्ष जोधपुर का महाराजा जसवंतसिंह, कृष्णगढ़ का स्वामी शार्दूलसिंह, जयपुराधीश सवाई माधवसिंह और ईडर-नरेश केसरीसिंह मातम-पुर्सी के लिये उदयपुर गये और वहां कुछ दिन ठहरकर वापस चले गये। इस अवसर पर जयपुर-नरेश ने अपनी उदारता एवं दानशीलता का अच्छा परिचय दिया। उसने उदयपुर की राजकीय संस्कृत पाठशाला के विद्यार्थियों को एक हज़ार रुपये छात्रवृत्ति के रूप में दिये। चारणों, ब्राह्मणों आदि को बहुतसा धन लुटाया और प्रसिद्ध देव-मन्दिरों में भी बहुत कुछ भेंट किया। इसी मौक़े पर उसने महाराजकुमार भूपालसिंहजी के साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध स्थिर किया, परन्तु कुछ दिनों पीछे उक्त राजकुमारी की मृत्यु हो गई, जिससे विवाह न हो सका।

शक्तावत केसरीसिंह का क़ैद से छूटना

महाराणा सज्जनसिंह के समय में शक्तावत केसरीसिंह ने, जैसा कि उक्त महाराणा के वृत्तान्त में लिखा जा चुका है, बोहेड़े पर कब्ज़ा कर लिया था। बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी जब उसने ठिकाने का अधिकार न छोड़ा तब महाराणा की आज्ञा से वह क़ैद कर लिया गया। महाराणा फ़तहसिंह ने नेकचलनी की ज़मानत देने पर उसे क़ैद से मुक्त किया और उसकी नज़र स्वीकार कर उसे अपने तनख़्वाहदार सरदारों में भर्ती किया और पीछे से उसको दो गांव प्रदान किये।

ज़नाना अस्पताल के नये भवन का शिलान्यास

वि० सं० १९४२ कार्तिक सुदि २ (ई० स० १८८५ ता० ८ नवम्बर) को हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड डफ़रिन का उदयपुर जाना हुआ उस समय महाराणा ने महाराणा सज्जनसिंह द्वारा स्थापित ज़नाना अस्पताल (वॉल्टर फ़ीमेल हॉस्पिटल) के लिए एक नई

इमारत तैयार किये जाने की आज्ञा देकर लेडी डफ़रिन के हाथ से उसका शिलारोपण कराया।

महाराणा का सलूंबर जाना

वि० सं० १९४३ (ई० स० १८८६) में सलूंबर के सरदार रावत जोधसिंह की कन्या के विवाह के अवसर पर महाराणा ने सलूंबर जाकर उसे सम्मानित किया।

महाराणी विक्टोरिया की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर महाराणा की उदारता

वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की पचास-साला जुबिली के अवसर पर महाराणा की आज्ञा से मेवाड़ में भी बड़ी खुशी मनाई गई, राजधानी में रोशनी हुई, बहुतसे क़ैदी छोड़े गये और भूखों को भोजन कराया गया। इसके सिवा अफ़ीम के अतिरिक्त और सब वस्तुओं का राहदारी[1] महसूल मुआफ़ कर दिया गया और १०००० रु० 'इम्पीरियल इन्स्टीटयूट लंडन' तथा ५००० रु० लेडी डफ़रिन फ़ण्ड में दिये गये। इस जुबिली की स्मृति स्थिर रखने के लिए महाराणा ने सज्जन-निवास बाग़ में 'विक्टोरिया हॉल' नाम का विशाल भवन बनवाकर उसमें पुस्तकालय तथा अजायबघर स्थापित कराया और संगमरमर की उक्त महाराणी की मूर्ति इंगलिस्तान में तैयार होने की आज्ञा दी। उक्त पुस्तकालय में भिन्न भिन्न भाषाओं के पुरातत्व एवं इतिहास-सम्बन्धी ग्रंथों का इतना बड़ा संग्रह है, जितना राजपूताने के और किसी पुस्तकालय में नहीं है। इसी प्रकार अजायबघर में भी वि० सं० पूर्व की दूसरी से लगाकर वि० सं० की सत्रहवीं शताब्दी तक के मेवाड़ के प्राचीन शिलालेखों का बहुत बड़ा संग्रह है। इसी वर्ष जुबिली के उपलक्ष्य में महाराणा को अंग्रेज़ी सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली।

महाराणा के दूसरे कुंवर का जन्म

मार्गशीर्ष सुदि ११ (ता० २६ नवम्बर) को अपने द्वितीय कुंवर के जन्मोत्सव के अवसर पर महाराणा ने याचकों तथा मुहताज़ों को हज़ारों रुपये बांटे, सरदारों और चारणों को हाथी, सिरोपाव आदि प्रदान किये और धव्वा (धायभाई) बदनमल[2] को,

---

(१) मेवाड़ में होकर अन्यत्र जानेवाले बाहरी माल पर का महसूल।

(२) बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह की बहन का विवाह महाराणा सरदारसिंह के भतीजे

जिसकी जागीर महाराणा सज्जनसिंह के समय में खालसा हो गई थी, २००० रु० वार्षिक आय की जागीर दी।

फाल्गुन वदि ८ (ता० ५ फ़रवरी) को राय मेहता पन्नालाल के भतीजे जोधसिंह के विवाह के प्रसंग पर महाराणा ने उसकी मेहमानदारी स्वीकार कर पन्नालाल तथा जोधसिंह[1] दोनों को सोने के लंगर प्रदान किये।

मेहता पन्नालाल का सम्मान

क्षत्रिय जाति में सुधार की दृष्टि से राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल कर्नल वॉल्टर के नाम पर 'वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा' की स्थापना सारे राजपूताने में हुई, तदनुसार उसकी शाखा महाराणा की आज्ञा से उदयपुर में भी वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में स्थापित हुई, जिससे राजपूत सरदारों में बहुविवाह, बालविवाह तथा शादी एवं ग़मी के मौक़ों पर फ़ुज़ूलखर्ची की रोक हुई, किन्तु सरदारों में उपपत्नियां (पासवानें) करने की तथा टीके (तिलक) के रूप में कन्या के पक्षवालों से अधिक रुपये लेने की चाह बढ़ती ही गई, जिससे लाभ की अपेक्षा उनको हानि अधिक हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि महाराणा ने टीके में अधिक रुपये लेने की प्रगति को रोकने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

महाराणा का वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा की शाखा अपने राज्य में स्थापित करना

वि० सं० १९४६ (ई० स० १८८९) में महाराणी विक्टोरिया का शाहज़ादा ड्यूक ऑफ़ केनॉट हिन्दुस्तान की सैर करता हुआ उदयपुर गया। मेवाड़ में इंग्लिस्तान के राजकुमार के आने का यह पहला ही मौक़ा था, इसलिये महाराणा ने उसका आदर-सत्कार करने में लाखों रुपये खर्च किये। राजधानी से एक मील पश्चिमोत्तर देवाली

केनॉट बन्द का बनवाया जाना

शार्दूलसिंह के साथ हुआ था। उक्त राजकुमारी के धायभाई होने के कारण बदनमल का उसके साथ बीकानेर से उदयपुर जाना हुआ। महाराणा शंभुसिंह की उसपर विशेष कृपा रही और उसने उसको 'राव' की उपाधि, दोनों पैरों में सोना व जागीर प्रदान की। वह महाराणा सज्जनसिंह के समय में इजलास ख़ास का मेम्बर रहा।

(१) जोधसिंह मेहता लक्ष्मीलाल का पुत्र था, वह विद्या एवं इतिहास का प्रेमी था।

गांव के पास पहले एक तालाब था, जिसे 'देवाली का तालाब' कहते थे और जिसका बाँध ऊंचा न होने से उसका जल दूर तक नहीं फैल सकता था। इसलिये महाराणा ने उसके द्वारा आबपाशी की तरक़्क़ी के विचार से एक नया तथा ऊंचा बाँध बनवाने का निश्चय कर उक्त शाहज़ादे के हाथ से उसकी नींव दिलाकर उस बाँध का नाम 'केनॉट बन्द' रखा, और शाहज़ादे के आग्रह से उस तालाब का नाम फ़तहसागर रखा गया। इस बाँध से तालाब का विस्तार और उदयपुर के आसपास की प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ गई।

बागोर का ख़ालसा किया जाना

भाद्रपद वदि ४ (ता० १४ अगस्त) को बागोर के महाराज शक्तिसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा ने उसकी जागीर ख़ालसा कर ली।

शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना

वि० सं० १६४६ (ई० स० १८६०) में इंग्लिस्तान के युवराज सप्तम एडवर्ड के बड़े शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना हुआ। महाराणा ने उसका सम्मान कर उससे सज्जन-निवास बाग़ में विक्टोरिया हॉल के सामने महाराणी विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति का उद्घाटन कराया।

सेठ जुहारमल का मामला

सेठ जोरावरमल बापना ने कठिन अवसरों पर महाराणाओं को ऋण देकर तथा अन्य प्रकार से मेवाड़ की अच्छी सेवा की थी। महाराणा सरूपसिंह के समय में राज्य पर २०००००० रु० से अधिक कर्ज़ था, जिसमें अधिकांश उसी का था। कर्ज़ का फ़ैसला कर देने की उक्त महाराणा की इच्छा जानकर उसने अपनी हवेली पर महाराणा की मेहमानदारी की और उस (महाराणा) की इच्छानुसार ऋण का निपटारा कर दिया। सेठ जोरावरमल के इस बड़े त्याग से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे कुंडाल गांव दिया और उसके पुत्रों तथा पौत्रों की भी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

जोरावरमल के द्वितीय पुत्र चंदनमल का पुत्र जुहारमल हुआ। महाराणा फ़तहसिंह के समय में चित्तोड़ का रेल्वे-स्टेशन उदयपुर से क़रीब ६६ मील दूर था, जिससे मुसाफ़िरों को उक्त स्टेशन तक पहुंचने में बड़ी असुविधा एवं कठिनाई उठानी पड़ती थी, इसलिये उनके सुबीते के लिए महाराणा ने शहर

उदयपुर तथा चित्तोड़गढ़-स्टेशन के बीच 'मेलकार्ट' चलाना स्थिर कर इस काम को सेठ ज़ुहारमल की निगरानी में रखा।

कई बरसों तक मेलकार्ट चला, परन्तु उस काम में बड़ा नुक़सान रहा, इसपर महाराणा ने ज़ुहारमल को हानि की पूर्ति करने तथा पहले का बक़ाया निकाला हुआ राज्य का ऋण चुका देने की आज्ञा दी। उस समय उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, जिससे वह महाराणा की आज्ञा का पालन न कर सका। इसपर महाराणा ने राज्य के रुपयों की वसूली तक के लिए उसका पारसोली गांव अपने अधिकार में कर लिया।

श्यामजी कृष्णवर्मा की नियुक्ति

इन्हीं दिनों अजमेर से श्यामजी कृष्णवर्मा बैरिस्टर को महाराणा ने महद्राजसभा का मेम्बर नियत कर उदयपुर बुलाया, जहां कुछ समय तक रहने के पश्चात् वह जूनागढ़ राज्य का दीवान नियुक्त होने से वहां चला गया, परन्तु वहां मनमुटाव हो जाने के कारण थोड़े ही दिनों पीछे उदयपुर लौट गया और कुछ काल तक अपने पूर्व-पद पर बना रहा।

बन्दोबस्त का काम पूरा होना

महाराणा सज्जनसिंह के समय वि० सं० १९३५ (ई० स० १८७८) में मेवाड़ राज्य में, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, बन्दोबस्त का काम शुरू हुआ, जो वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) तक जारी रहा। पैमाइश का कार्य समाप्त हो जाने पर मि० विंगेट ने नक्द रुपयों में हासिल लिए जाने की नई तजवीज़ पेश की, जिसे महाराणा ने मंजूर कर ली। उस तजवीज़ के अनुसार २० वर्ष के लिए पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर मेवाड़ राज्य के खालसे का बंदोबस्त हुआ और किसानों के लाभ के लिए गांवों में अस्पताल तथा मदरसे बनवाने के निमित्त उनके लगान में फ़ी रुपया एक आना बढ़ाया गया[1]। अवधि पूरी हो जाने पर भी वही बन्दोबस्त कई वर्षों तक जारी रहा।

महाराणा सज्जनसिंह ने लोगों के सुबीते तथा व्यापार की वृद्धि के लिए चित्तोड़ से उदयपुर तक रेल्वे बनाये जाने की आज्ञा दी और उसका काम शुरू

(१) ई० स० १९२१ (वि० सं० १९७८) में किसानों के आन्दोलन करने पर यह लागत फ़ी रुपया आधा आना कर दी गई।

उदयपुर चित्तोड़ रेल्वे का बनाया जाना

किये जाने के लिए एक इंजीनियर भी बुला लिया था, परन्तु उक्त महाराणा का देहान्त हो जाने से कई साल तक रेल का बनना बन्द रहा। अन्त में उसकी आवश्यकता देखकर वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में महाराणा फ़तहसिंह ने मि० कैम्बेल टॉमसन की निगरानी में चित्तोड़ से देबारी के घाटे तक रेल बनवाई, परन्तु देबारी का स्टेशन उदयपुर से ८ मील दूर होने के कारण लोगों को असुविधा बनी ही रही। फिर वह उक्त नगर तक बढ़ादी गई, जिससे वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के भयंकर अकाल के समय उदयपुर में बाहर से अन्न आदि लाने में बड़ी सुविधा हुई।

महकमा ख़ास से मेहता पन्नालाल का अलग होना

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में राय मेहता पन्नालाल सी. आई. ई. ने यात्रा जाने के लिए छः मास की छुट्टी ली, तब उसकी जगह महकमा ख़ास के कार्य पर कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह कायस्थ स्थानापन्न नियत किये गये, फिर उसका इस्तीफ़ा पेश होने पर वे ही स्थायीरूप से नियत हुए।

लॉर्ड एल्गिन का उदयपुर जाना

ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) में भारत का वाइसराय लॉर्ड एल्गिन उदयपुर गया। राजधानी की प्राकृतिक छटा को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जगदीश के मन्दिर में हाथ में पहनने का सोने का एक कड़ा भेट किया। यह पहला वाइसराय था, जिसने चित्तोड़ से देबारी तक रेल-द्वारा यात्रा की।

महाराणा की सलामी में वृद्धि

वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) में श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के मौक़े पर भी उदयपुर में बड़ा उत्सव हुआ, पीछोला तालाब पर रोशनी हुई, ९९ क़ैदी छोड़े गये और ग़रीबों तथा विद्यार्थियों को भोजन कराया गया। इस अवसर पर अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा की जाती सलामी २१ तोपों की कर दी गई और उसकी महाराणी को 'ऑर्डर ऑफ़ दी क्राउन ऑफ इन्डिया' की उपाधि मिली। राजपूताने की यह पहली महाराणी है, जो उक्त उपाधि से भूषित की गई।

इसी साल महाराणा ने मोरवी राज्य के कुमार हरभाम को मदद्राज-

कुंवर हरमान की नियुक्ति

सभा का मेम्बर बनाकर उदयपुर बुलाया, जो दो वर्ष तक वहां ठहरने के पश्चात् पीछा काठियावाड़ को लौट गया।

मेवाड़ में भीषण अकाल

वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) में समय पर वर्षा न होने से मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा। बोई हुई फ़सल बिलकुल सूख गई, जिससे अनाज का भाव इतना बढ़ गया कि उसके न मिलने की हालत में ग़रीब लोग तो शाक-पात एवं वन्य-पशु आदि जो कुछ मिल सका उसी पर निर्वाह करने लगे और घास के अभाव में उन्होंने पशुओं को 'हथिया थूहर' के पत्ते और दरख़्तों की छालें खिलाना शुरू कर दिया। बहुत-से क्षुधातुर प्राणी अपने बच्चों को बेचकर पेट भरने लगे और सारे राज्य में हाहाकार मच गया। ऐसे संकट से अपनी ग़रीब प्रजा को बचाने की महाराणा ने यथासाध्य चेष्टा की। उसने बाहर से हज़ारों मन अन्न मंगवाया, बड़े बड़े क़स्बों में ख़ैरातख़ाने खोले, इमदादी काम (Relief works) जारी किये और व्यापारियों को मदद दी, परन्तु ये सब उपाय निष्फल हुए। इस घोर दुर्भिक्ष से राज्य को बड़ी हानि पहुंची। लाखों मनुष्य एवं असंख्य पशु मर गये। दूसरे वर्ष यथेष्ट वृष्टि होने से फ़सल तो अच्छी हुई पर वह अच्छी तरह पकी भी नहीं कि लोगों ने उसे खाना आरम्भ कर दिया, जिससे बहुतसे मनुष्य हैज़ा, पेचिश आदि रोगों के शिकार बन गये। इस प्रकार मेवाड़ की आबादी, जो वि० सं० १९४७ (ई० स० १८९१) में १८४५००८ थी, घट कर वि० सं० १९५७ (ई० स० १९०१) में सिर्फ़ १०१८८०५ रह गई।

खुमाणसिंह का सलूंबर का स्वामी बनाया जाना

वि० सं० १९५७ (ई० स० १९०१) में सलूंबर के सरदार रावत जोधसिंह का देहान्त हो गया। उसके पुत्र न था, जिससे उसने पहले भदेसर के सरदार भूपालसिंह के पुत्र तेजसिंह को, फिर कुछ दिनों पीछे तेजसिंह की मृत्यु हो जाने पर उसके भाई मानसिंह को गोद लिया था, परन्तु वे दोनों उसकी जीवित दशा में ही इस संसार से चल बसे, इसलिए महाराणा ने बंबोरे के सरदार रावत ओनाड़सिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया। ओनाड़सिंह के भी निस्संतान मर जाने पर महाराणा ने चावंड के स्वामी रावत खुमाणसिंह को सलूंबर का सरदार बनाया।

वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में उदयपुर में बागोर के अधिकारच्युत सरदार महाराज सोहनसिंह का शरीरान्त हो जाने पर महाराणा ने उसके ज़नाने आदि को बागोर की हवेली में रहने की आज्ञा देकर उनके निर्वाह के लिये रकम नियत कर दी।

महाराज सोहनसिंह की मृत्यु

इसी वर्ष महाराणा के बड़े भाई शिवरती के स्वामी महाराज गजसिंह की भी मृत्यु हुई। उसके कोई संतति न थी, इसलिये महाराणा ने करजाली के महाराज सूरतसिंह के बड़े पुत्र हिम्मतसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाया।

हिम्मतसिंह का शिवरती का स्वामी होना

ता० १ जनवरी ई० स० १९०३ (वि० सं० १९५९ पौष सुदि २) को शाहंशाह सप्तम एडवर्ड की गद्दीनशीनी की खुशी में दिल्ली में एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें शाहंशाह का छोटा भाई ड्यूक ऑफ़ केनॉट और भारत के सभी नरेश तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए। हिन्दुस्तान के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड कर्ज़न के विशेष अनुरोध करने पर ई० स० १९०२ ता० ३० दिसम्बर (वि० सं० १९५९ पौष सुदि १) को महाराणा उदयपुर से रवाना हुआ और ३१ दिसम्बर की रात को दिल्ली पहुंचा, परन्तु लम्बी सफ़र की थकान से ज्वर हो जाने के कारण दरबार में शरीक न हो सका। इसपर लॉर्ड कर्ज़न ने अपनी ओर से खेद प्रकाशित किया।

दिल्ली दरबार

वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में मेवाड़ में प्रथमवार प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। यह संक्रामक रोग पहले राजियावास नामक गांव में, जो कोठारिये के पास है, शुरू हुआ फिर शनैः शनैः सारे राज्य में फैल गया। तब इससे बचने के लिए राज्य की ओर से लोगों को हिदायत हुई कि चूहों के मरते ही घर खाली कर दिये जायँ और बीमार अलग रखे जायँ, पर उन्होंने उसपर अमल न किया, जिससे दिन दिन बीमारी का ज़ोर बढ़ता ही गया। अन्त में लोग जब यह समझ गये कि घर छोड़ देने से ही हम प्लेग से बच सकते हैं तब खेतों में छप्पर डालकर बस गये, पर वहां भी वे बीमार पड़ने लगे और हज़ारों मनुष्य मर गये।

मेवाड़ में प्लेग का प्रकोप

वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में महाराणा ने कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाले अर्जुनसिंह का इस्तीफ़ा मंज़ूर कर महकमाख़ास का काम

मंत्रियों का तबादला

मेहता भोपालसिंह तथा महासानी हीरालाल पंचोली को सौंपा, परन्तु कुछ वर्षों पीछे उन दोनों की मृत्यु हो जाने पर वि० सं० १६६६ (ई० स० १९१२) में कोठारी बलवन्तसिंह को फिर नियुक्त किया जो क़रीब दो वर्ष तक उक्त महकमे का कार्य करता रहा।

वि० सं० १६६३ (ई० स० १६०६) में बीजोल्या के सरदार राव सवाई कृष्णदास के निःसन्तान मर जाने पर कामा का सरदार पृथ्वीसिंह बिना महाराणा की अनुमति के बीजोल्यां का मालिक बन बैठा। इसपर महाराणा की आज्ञा से सहाड़ा के हाकिम बख्शी मोतीलाल पंचोली ने बीजोल्यां के गढ़ पर अधिकार करना चाहा और उसके समझाने पर पृथ्वीसिंह ने गढ़ खाली कर दिया तथा महाराणा के पास अर्ज़ी भेजकर अपना अपराध क्षमा कराया। अन्त में जब उस(महाराणा)को यह मालूम हुआ कि कृष्णदास का सबसे नज़दीकी रिश्तेदार पृथ्वीसिंह ही है तब उसने उस (पृथ्वीसिंह) को कृष्णदास का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया।

कामा के सरदार पृथ्वीसिंह का बीजोल्यां का स्वामी बनाया जाना

वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०६) में महाराणा एकलिंगजी के गोस्वामी कैलाशानन्द को साथ लेकर वैशाख वदि १० (ता० १५ अप्रेल) को उदयपुर से हरद्वार-यात्रा के लिये रवाना हुआ और एक दिन कृष्णगढ़ तथा ३ रोज़ जयपुर में ठहरकर देहरादून होता हुआ हरद्वार पहुंचा। वहां उसने विधिपूर्वक श्राद्ध कर सोने का तुलादान किया; ब्राह्मणों, साधुओं तथा ग़रीबों को भोजन कराया और उनको रुपये दिये एवं अपने तीर्थगुरु को यथेष्ट धन देकर सन्तुष्ट किया। वहां के ऋषिकुल की सहायता के लिए १०००० रु० दिये और भविष्य में खिज़ाब न करने का संकल्प किया।

महाराणा की हरद्वार-यात्रा

इस वर्ष मेवाड़ में श्रावण (द्वितीय) वदि १ (ता० २ अगस्त) को बारिश शुरू हुई और लगातार ४ अगस्त तक जारी रही, जिससे कुछ तालाब फूट गये और पीछोला तालाब का पानी चांदपोल दरवाज़े तक जा लगा, पर फ़तहसागर की नहर का फाटक खुलवा कर जल का निकास करा देने से शहर को कोई हानि न पहुंची।

मेवाड़ में घोर वृष्टि

कार्तिक वदि ३ (ता० ३१ अक्टोबर) को हिन्दुस्तान का वाइसराय लॉर्ड मिण्टो उदयपुर गया। उदयपुर के महलों में दरबार के योग्य कोई विशाल भवन न होना महाराणा को बहुत खटकता था, इसलिए उसने एक सादी आलीशान इमारत बनवाने का इरादा कर ता० ३ नवम्बर (कार्तिक वदि ६) को लॉर्ड मिंटो से उसकी नींव दिलाई और उसका नाम 'मिन्टो दरबार हॉल' रखा। लगातार २२ वर्ष से इसके बनवाने का काम जारी है, पर अब तक यह बनकर तैयार नहीं हुआ। इसमें खड़ा होने से देखनेवाले को पीछोला तालाब की अद्भुत छटा और उसके आसपास की पर्वतीय शोभा का महत्व दृष्टिगोचर हो जाता है।

दरबार हॉल का शिलान्यास

शाहपुरे के स्वामी को मेवाड़ राज्य की ओर से काछोले की जागीर मिली है, जिसके बदले प्राचीन प्रथा के अनुसार अन्य सरदारों के समान उसे भी नियत समय तक महाराणा की सेवा में उपस्थित होना पड़ता है। वर्तमान सरदार राजाधिराज नाहरसिंह ने वि० सं० १९४७ (ई० स० १८९०) से महाराणा की सेवामें उपस्थित होना बन्द कर दिया, जिसपर महाराणा ने पोलिटिकल अफ़सरों से लिखापढ़ी की। अन्त में अंग्रेज़ी सरकार ने यह फ़ैसला किया कि शाहपुरे की जमीयत तो हरसाल, परन्तु स्वयं राजाधिराज दूसरे साल नौकरी दिया करे और उस (राजाधिराज)के उदयपुर में उपस्थित न होने के कारण महाराणा उससे १००००० रु० जुर्माने के वसूल करें। इस निर्णय के अनुसार नाहरसिंह वि० सं० १९६७ (ई० स० १९१०) से बराबर नौकरी दे रहा है।

शाहपुरे के मामले का फैसला

वि० सं० १९६८ (ई० स० १९११) में जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह का, जो महाराणा का जामाता था, देहान्त हो गया। यह खबर मिलने पर महाराणा को बड़ा दुःख हुआ और वह मातमपुर्सी के लिए जोधपुर गया।

महाराणा का जोधपुर जाना

इसी वर्ष श्रीमान् सम्राट् पंचमजार्ज तथा श्रीमती महाराज्ञी मेरी का दिल्ली में शुभागमन हुआ। वहां उक्त बादशाह की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में ता० १२ दिसम्बर (पौष वदि ७) को एक बड़ा दरबार हुआ, जिसमें सभी राजा महाराजा सम्मिलित हुए।

दरबार के अवसर पर महाराणा का दिल्ली जाना

भारत सरकार के विशेष अनुरोध करने पर महाराणा का भी दिल्ली जाना हुआ, परन्तु अपने वंश-गौरव का विचार कर वह न तो शाही जुलूस में सम्मिलित हुआ और न दरबार में। उसने सिर्फ़ दिल्ली के रेल्वे स्टेशन पर जाकर बादशाह का स्वागत किया, जहां सब रईसों से पहले उसकी मुलाकात हुई। वहां तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड हार्डिञ्ज और कई भारतीय नरेशों से भी उसका मिलना हुआ। सम्राट् ने उसकी प्रतिष्ठा, मर्यादा एवं बड़प्पन का विचारकर उसको इस अवसर पर जी० सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की।

जसवन्तसिंह का देलवाड़े का स्वामी बनाया जाना

श्रावण वदि ४ वि० सं० १९७० (ता० २२ जुलाई ई० स० १९१३) को देलवाड़े के सरदार मानसिंह के निःसन्तान मर जाने पर उसके चाचा विजयसिंह ने, जो देलवाड़े से कोनाड़ी (कोटा राज्य में) गोद गया था, ठिकाने का दावा किया, पर वह मंज़ूर नहीं हुआ और मानसिंह का उत्तराधिकारी बड़ी सादड़ी के सरदार रायसिंह के चौथे भाई जवानसिंह का पुत्र जसवन्तसिंह बनाया गया।

पं० सुखदेवप्रसाद और मेहता जगन्नाथसिंह को महकमा खास का काम सौंपा जाना

इन्हीं दिनों जोधपुर के रावबहादुर पंडित सुखदेवप्रसाद सी० आई० ई० और मेहता जगन्नाथसिंह को महकमा खास का काम सौंपा गया, परन्तु उक्त महकमे के प्रायः सभी कामों में महाराणा का हाथ होने से उसकी व्यवस्था ज्यों की त्यों बनी रही।

जागीरें रहन रखने की मनादी

मेवाड़ के जागीरदार अक्सर ज़रूरत के वक्त अपनी जागीर के गांव रहन रखकर महाजनों से कर्ज़ लेते, जो सूद के बदले जागीर की आय हड़प कर जाते। इस प्रकार जागीरदार ऋण के बोझे से हमेशा दबे रहते और कभी कभी उनके लिये निर्वाह करना भी कठिन हो जाता था। उन्हें बरबादी से बचाने के लिए महाराणा ने वि० सं० १९७४ (ई० स० १९१७) में एक आज्ञा निकालकर जागीर के गांव रहन रखने की रोक कर दी।

भोमियों के लिए राजाज्ञा

इसी वर्ष महाराणा ने एक और आज्ञा निकाली, जिसके अनुसार जागीरदारों की तरह भोमियों को भी राज्य की अनुमति के बिना गोद लेने की मुमानियत कर दी गई।

यूरोपीय महायुद्ध के कठिन अवसर पर अंग्रेज़ी सरकार को सहायता

महाराणा की सम्मानवृद्धि

पहुंचाने के उपलक्ष्य में उसकी ओर से ई० स० १९१८ (वि० सं० १९७५) में महाराणा को जी० सी० वी० ओ० की उपाधि मिली।

इन्हीं दिनों पं० सुखदेवप्रसाद ने वापस जोधपुर जाने की इच्छा प्रकट

पं० सुखदेवप्रसाद का इस्तीफ़ा देना

कर अपना इस्तीफ़ा पेश किया जिसे महाराणा ने स्वीकार कर लिया।

यूरोपीय महायुद्ध के अन्त में यूरोप आदि देशों में "इन्फ्लुएन्ज़ा" नामक बुखार का भयानक प्रकोप हुआ, जिससे भारत भी न बचा। वि० सं० १९७५

मेवाड़ में इन्फ्लुएन्ज़ा का भयानक प्रकोप

के आश्विन (ई० स० १९१८ अक्टोबर) मास में उदयपुर राज्य में भी वह फैल गया। शहर और गाँवों में ही नहीं, किंतु पहाड़ियों की चोटियों पर एक दूसरे से बहुत दूर बसने-वाले भीलों की झोपड़ियों तक में उसका प्रवेश हो गया जिससे हज़ारों मनुष्यों की मृत्यु हुई।

कार्तिक सुदि १० (ता० १३ नवम्बर) को आसींद के सरदार रावत रणजीतसिंह का देहान्त हो गया और उसका पुत्र उसकी मृत्यु से कुछ दिन

ठिकाने आसींद का खालसे में मिलाया जाना

पहले ही मर गया था इसलिये महाराणा ने उसके निःसन्तान होने के कारण आसींद का ठिकाना खालसा कर उसकी ठकुरानी के निर्वाह के लिये नक़द रक़म नियत कर दी।

ई० स० १९१९ के जून (वि० सं० १९७६ ज्येष्ठ) महीने में सम्राट् पंचम

महाराजकुमार भूपालसिंहजी को खिताब मिलना

जार्ज के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में महाराजकुमार को के० सी० आई० ई० का खिताब मिला। राजपूताने में महाराजकुमार को ऐसी उपाधि मिलने का यह पहला उदाहरण है।

वि० सं० १९७७ (ई० स० १९२०) में महाराणा ने महक्माखास में पंडित सुखदेवप्रसाद की जगह पर दीवानबहादुर मुन्शी दामोदरलाल को नियुक्त किया,

मुन्शी दामोदरलाल की नियुक्ति

पर एक साल के बाद वह भी इस्तीफ़ा देकर उदयपुर से लौट गया।

मेवाड़ के भीतर ही एक स्थान से दूसरे स्थान में माल लेजाने के लिए महकमा 'दाण' (चुंगी) से चिट्ठी करानी पड़ती थी। प्रत्येक गांव में चुंगी

महाराणा का महाराजकुमार को राज्याधिकार सौंपना

(दाण) का अहलकार न होने के कारण व्यापारियों आदि को उसके लिए बड़ी दिक्कत होती थी और राज्य को उससे कुछ भी लाभ नहीं था। बन्दोबस्त की अवधि समाप्त हो जाने पर भी नया बन्दोबस्त न होने के कारण कितने एक किसान, जिनकी ज़मीन पर लगान अधिक था वही बना रहने से, असन्तुष्ट थे। राज्य भर में सूअरों की अधिकता के कारण किसानों की खेती को बड़ी हानि पहुंचती थी, तो भी सूअरों को चोट पहुंचाने तक की सख़्त मुमानियत थी, कितने एक सरदार अपनी प्रजा से अनुचित कर उगाहते और किसानों आदि से बेगार लेते थे, जिससे उनके ठिकानों के लोग उनसे असुन्तुष्ट रहते थे। ऐसे में बाहरी लोगों की सलाह से बीजोल्यां के किसानों ने अनुचित लागतें तथा बेगार की कुत्सित प्रथा उठा देने के लिए आन्दोलन मचाया और लागतें देना बंद कर दिया। इस मामले की खबर जब महाराणा को मिली तब उसने एक कमीशन-द्वारा इसकी जांच कराई, पर कुछ फल न हुआ और दिनबदिन आन्दोलन बढ़ता ही गया। बेगूं, अमरगढ़, पारसोली, बसी आदि ठिकानों तथा चित्तोड़, कपासन, सहाड़ा, राशमी आदि ज़िलों में भी असन्तोष फैल गया। वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१) में बेगूं के सरदार और किसानों के बीच मुठभेड़ तक हो गई। कितने एक किसानों ने इस वर्ष जब महाराणा चित्तोड़ की तरफ़ था, तब उसकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी तकलीफ़ों को मिटाने के लिये प्रार्थना की, जिसपर उनको आश्वासन दिया गया कि एक महीने के भीतर तुम्हारी तकलीफ़ें मिटा दी जायँगी, परंतु महाराणा के कुंभलगढ़ को चले जाने के कारण उनको उत्तर न मिला, जिससे वे लोग अधीर हो गये और मातृकुंड्यां नामक तीर्थ-स्थान में एकत्र होकर उन्होंने यह निश्चय किया कि जबतक हमारे कष्ट दूर न होंगे तबतक हम लगान न देंगे और लगभग १००० किसान महाराणा तक अपनी फ़रियाद पहुंचाने के लिए उदयपुर गये। महाराणा ने तो स्वयं उनकी शिकायतें न सुनीं, किंतु अपने अधिकारियों-द्वारा किसी तरह उन्हें समझा बुझाकर लौटा दिया, परन्तु इससे भी उनकी तसल्ली न हुई। ऐसे में नाहर मगरे के आसपास के लोगों ने रक्षित जङ्गल (रखत) में से घास, लकड़ी आदि लाना शुरू कर दिया; जिसपर महाराणा ने अपने दो अधिकारियों को

उन्हें रोकने तथा समझाने के लिए भेजा, परन्तु उन्होंने बिगड़कर उनपर हमला कर दिया, जिससे उन्हें वहां से भागकर उदयपुर लौट जाना पड़ा। इस समय तक महाराणा की अवस्था ७१ वर्ष की हो चुकी थी और शिकार का अधिक शौक़ होने के कारण राज्यकार्य के लिए समय भी कम मिलता था। ऐसी स्थिति में महाराणा ने मुख्य मुख्य अधिकार स्वयं अपने हाथ में रख बाक़ी राज्यभार अपने महाराजकुमार को सौंपने का प्रस्ताव किया, जिसको सरकार हिन्द ने भी स्वीकार किया। तदनुसार ई० स० १६२१ ता० २८ जुलाई (वि० सं० १६७८ श्रावण वदि ८) से महाराजकुमार राज्य-कार्य करने लगे।

महाराजकुमार की घोषणा

महाराजकुमार ने अधिकार मिलते ही वि० सं० १६७८ श्रावण सुदि १० (ई० स० १६२१ ता० १३ अगस्त) को मेवाड़ में चिरस्थायी शांति स्थापित करने के लिए निम्नलिखित इश्तिहार जारी किया।

१—हाल के आन्दोलन में शरीक होनेवालों के अपराध क्षमा कर दिये जायँगे, परन्तु यदि भविष्य में कोई आज्ञा की अवहेलना या उसके प्रतिकूल कुछ करेगा तो उसे कठोर दंड दिया जायगा।

२—जिन लोगों ने अबतक हासिल नहीं चुकाया है उन्हें चाहिये कि वे उसे शीघ्र चुका दें।

३—यदि किसी को कोई तकलीफ़ या किसी के सम्बन्ध में कोई शिकायत हो तो उसे चाहिए कि वह महाराजकुमार की सेवामें अर्ज़ी दे। अगर ऐसा करने पर भी उसका कष्ट दूर न हो तो वह स्वयं उपस्थित होकर अर्ज़ करे। उसकी अर्ज़ सुनकर उचित आज्ञा दी जायगी।

४—लोगों को चाहिये कि जो मेवाड़ या अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध विद्रोह फैलाने की चेष्टा करें उन्हें रोकें।

५—थोड़े ही दिनों में एक ख़ास अफ़सर नियत किया जायगा, जो नये सिरे से बन्दोबस्त का काम शुरू करेगा।

६—लोगों के ज़िम्मे वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) के पहले का खालसे की ज़मीन का जो हासिल बाक़ी है वह मय सूद के माफ़ किया जाता है।

७—जंगली सूअरों से खेती को नुक़सान न पहुंचे इसका इन्तिज़ाम किया

जायगा। ज़मीदार और काश्तकार अपनी फ़सल की हिफ़ाज़त के लिए अपने खेतों के चारों तरफ़ मज़बूत बाड़ बना सकते हैं, पर उन्हें 'हाथाथूहर' की बाड़ बनाने की इजाज़त नहीं है। गांववालों को चाहिये कि उन थूहरों को, जो गांव के पास हों और जिनमें सूअर रहते हों, काट दें। जो थूहर ख़ालसे की भूमि पर होंगे वे राज्य की ओर से कटवा दिये जावेंगे। अगर किसी खास जगह के सम्बन्ध में लोग उज़्र करेंगे कि उन्हें सूअरों से बहुत नुक़सान पहुंचता है और उनका उज़्र ठीक साबित होगा तो उन्हें अपने खेतों को नुक़सान पहुंचानेवाले सूअरों को मारने की आज्ञा भी दी जायगी। जब तक सूअरों की संख्या कम न हो जाय तभी तक के लिए यह आज्ञा दी जायगी और वह प्रत्येक अवसर पर १५ दिन से अधिक के लिए नहीं।

८—महकमे दाण (चुंगी) की नई व्यवस्था की जायगी।

९—सड़कों, मदरसों तथा दवाखानों की लागत के जो रुपये जमा हैं उनमें से कुछ सड़कों के काम में खर्च होंगे और जो बचेंगे उनका ब्याज सड़कों, मदरसों एवं दवाखानों के कार्य में लगाया जायगा।

किसान आदि लोगों पर इस इश्तिहार का अच्छा असर हुआ और उनमें शान्ति स्थापित होने लगी तथा उन्हें विश्वास होता गया कि अब हमारी तकलीफ़ें दूर हो जायँगी।

ई० स० १९२१ ता० २५ नवम्बर (वि० सं० १९७८ मार्गशीर्ष वदि ११) को सम्राट् जार्ज पंचम के युवराज (प्रिंस ऑफ़ वेल्स) का उदयपुर जाना हुआ।

प्रिंस ऑफ़ वेल्स का उदयपुर जाना

उन दिनों महाराणा बीमार था, जिससे महाराजकुमार ने युवराज का स्वागत किया। शाहज़ादे के उदयपुर से लौटते समय महाराणा ने १००००० रु० अच्छे कामों में लगाने के लिए उसके सुपुर्द किये।

इसी वर्ष महाराजकुमार ने अपने यहां के सेटलमेंट अफ़सर मि० ट्रेंच, बेदलेवाले राव बहादुर राजसिंह चौहान और मेहता मनोहरसिंह से बेगूं के

बेगूं के मामले का फ़ैसला

मामले की जाँच करा उसका फ़ैसला करा दिया जिसे वहां की प्रजा ने पहले तो मंजूर न किया, परन्तु अन्त में उसे ठीक समझकर स्वीकार कर लिया और ठिकाने के प्रबन्ध का काम

मुन्शी अमृतलाल को सौंपा गया, जिसने भेद नीति से काम लेकर वहां के सरदार और प्रजा के बीच मेल करा दिया।

सरदारों के साथ महाराणा का बर्ताव

उदयपुर राज्य में महाराणा और सरदारों के बीच स्वामी-सेवक का जो घनिष्ठ सम्बन्ध चला आता था वह कितने एक सरदारों के साथ महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की ज्यादती से शिथिल हो गया था और उसके पीछे बहुत से सरदार राज्य की गिरी हुई दशा में उच्छृंखल होकर खालसे की बहुतसी भूमि दबा बैठे। महाराणा भीमसिंह के राजत्व-काल में कर्नल टॉड ने इस प्रकार दबाई हुई खालसे की भूमि पर महाराणा का फिर अधिकार करा दिया और सरदारों की सेवा की व्यवस्था की, परन्तु उनके अधिकारों में हस्ताक्षेप न किया। इसपर भी सरदारों का मनमुटाव दूर न हुआ। महाराणा सरूपसिंह ने कितने एक सरदारों की प्रतिष्ठा, मानमर्य्यादा एवं अधिकार का विचार न कर उनके साथ सख़्ती का बर्ताव शुरू किया, जिससे वे उसके विरोधी हो गये। अन्त में इस विरोध को मिटाने के लिए अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा से मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने पुराने कौलनामों के आधार पर ३० शर्तों का एक नया कौलनामा तैयार किया, जिसे अधिकांश सरदारों ने स्वीकार कर लिया, परन्तु थोड़े से सरदारों ने उसमें थोड़ासा हेरफेर कराना चाहा, जो महाराणा ने मंजूर न किया, जिससे अंग्रेज़ी सरकार ने उसे रद्द कर दिया।

महाराणा सज्जनसिंह ने सरदारों से मेलजोल बढ़ाया और उनके दीवानी तथा फ़ौजदारी अधिकार स्थिर करने के लिए शाहपुरे के सरदार के साथ क़लमबन्दी की। वैसी ही क़लमबन्दी बनेड़ा तथा प्रथम श्रेणी के १३ सरदारों के साथ भी हुई। उक्त महाराणा की इच्छा थी कि सभी सरदारों के ऐसे अधिकार स्थिर कर दिये जायँ, परन्तु उसकी बीमारी के कारण वह पूरी न हो सकी। महाराणा फ़तहसिंह ने महाराणा सरूपसिंह की नीति का अनुसरण कर शेष सरदारों के अधिकार स्थिर करने का कोई उद्योग न किया। जो सरदार ऐयाशी तथा शराबखोरी में पड़कर अपने ठिकाने बरबाद करते थे उनको रास्ते पर लाने का उद्योग किया, परन्तु सामान्य रूप से सरदारों के साथ उसका बर्ताव उदार नहीं कहा जा सकता।

अपने पूर्वजों के समान महाराणा भी अंग्रेज़ी सरकार का मित्र रहा। उसने असहयोग आन्दोलन के दिनों में सरकार के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की और 'मेवाड़ लान्सर्स' नाम का एक नया स्क्वाड्रन (रिसाला) कायम किया तथा यूरोपीय महायुद्ध के समय सरकार की सहायता के लिए उसे देवलाली भेजा और ५०० रंगरूट दिये। उसने १३००००० रु० 'वार लोन' में लगाये। इसके सिवा रेडक्रॉस एसोसियेशन (युद्ध क्षेत्र से घायलों को उठाकर अस्पताल में पहुंचाने वाली संस्था), एयर क्राफ्ट (हवाई जहाज़) आदि युद्ध-सम्बन्धी कई फंडों में भी उसने १०००००० रु० दिये और मेवाड़ की खानों से अभ्रक भेजे जाने की आज्ञा दी।

अंग्रेज़ी सरकार के साथ महाराणा का व्यवहार

उक्त महाराणा के समय में मेवाड़ में ४७ प्रारम्भिक पाठशालाएं खुलीं। पहले उदयपुर हाईस्कूल का सम्बन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय से रहा, अब हाईस्कूल व इन्टरमीजियेट कॉलेज का सम्बन्ध राजपूताना बोर्ड अजमेर से है। विक्टोरिया हॉल में पुस्तकालय तथा अजायबघर स्थापित हुए। सज्जन-हॉस्पिटल की इमारत छोटी तथा सदर सड़क से दूर थी, इसलिए उस (महाराणा) ने ई० स० १८९४ (वि० सं० १९५१) में हिन्दुस्तान के वाइसराय लॉर्ड लैंस्डाउन के नाम पर हाथीपोल दरवाज़े के भीतर एक नया अस्पताल बनवाया और उसमें सज्जन-हॉस्पिटल के कार्यकर्ताओं को नियत कर दिया तथा वॉल्टर फ़ीमेल (ज़नाना) हॉस्पिटल के लिए एक नई इमारत तैयार कराई। उदयपुर में उसने आबपाशी का नया महकमा खोला और लगभग ५०००००० रु० फ़तहसागर आदि तालाबों पर लगाये।

महाराणा के लोकोपयोगी कार्य

मुसाफ़िरों के सुबीते के लिए उसने चित्तोड़गढ़ से उदयपुर तक रेल्वे लाइन, उदयपुर से जयसमंद तक सड़क और उदयपुर, चित्तोड़गढ़, सनवाड़ स्टेशन पर तथा टीडी, बारापाल आदि स्थानों में पक्की सरायें बनवाईं।

महाराणा के दीर्घ शासनकाल में मेवाड़ में कितने ही नये महल बने, पुराने महलों में अनेक प्रकार के सुधार हुए और कई प्राचीन स्थानों का जीर्णोद्धार हुआ। उसे शिल्प के कामों से विशेष रुचि थी। उदयपुर में उसके बनवाये हुए 'दरबार हॉल',

महाराणा के बनवाये हुए महल

'विक्टोरिया हॉल' आदि इस बात के प्रमाण हैं। उसने महाराणा सज्जनसिंह के प्रारम्भ किये हुए उदयपुर के अर्द्धचन्द्राकार विशाल राजभवन को पूर्ण कर उसका नाम 'शिवनिवास' रखा। उसमें रंग बिरंगे शीशे की पच्चीकारी का काम देखने योग्य है। इसी तरह सज्जनगढ़ को, जो महाराणा सज्जनसिंह के हाथ से अधूरा रह गया था, उसने पूरा करवाया। चित्तोड़गढ़ एवं कुंभलगढ़ में भी उसने नये महल तैयार कराये और उक्त गढ़ों, चित्तोड़ के जैन कीर्ति-स्तंभ, जयसमन्द के महलों तथा बांध की मरम्मत कराई। उक्त विशाल भवनों के सिवा उसने राजकीय कामों के लिए बहुतसे मकान, अनेक स्थानों में शिकार के लिए ओदियां (Shooting boxes) और खास ओदी में एक छोटा सा महल बनवाया। उसी के समय में मेवाड़ के महलों में बिजली की रोशनी पहुँचाने और पानी के नल लगाने की व्यवस्था हुई।

महाराणा की बीमारी और मृत्यु

वि० सं० १९८७ के वैशाख (ई० स० १९२९ मई) मास में महाराणा को बुखार आने लगा और उसको दिल की बीमारी हुई। उन दिनों वह कुंभलगढ़ में था, पर हालत ज्यादा खराब होने पर उदयपुर लौट गया। वहां दिल की बीमारी दिन दिन बढ़ती ही गई और अन्त में १५ रोज़ बीमार रहकर ज्येष्ठ वदि ११ (ता० २४ मई) को वह इस लोक से विदा हो गया।

महाराणा के विवाह और संतति

गद्दीनशीनी से पहले महाराणा के दो विवाह हुए थे। पहले विवाह से, जो ठिकाने खोड़ में हुआ था, एक कुमारी उत्पन्न हुई, जिसकी शादी कोटे के वर्तमान महाराव उम्मेदसिंहजी से हुई। पहली पत्नी का देहान्त हो जाने पर दूसरा विवाह बरसोड़े से आये हुए कलडवास के चावड़े ठाकुर ज़ालिमसिंह[1] के पुत्र कोलसिंह की पुत्री बख्तावरकुँवरी से वि० सं० १९३५ (ई० स० १८७८) में हुआ, जिससे तीन राजकुमार तथा चार राजकुमारियां हुईं, जिनमें से दो छोटे राजकुमारों और दो

---

(१) महाराणा भीमसिंह का विवाह बरसोड़े के चावड़े जगत्सिंह की पुत्री से हुआ था। जगत्सिंह के दो पुत्र कुबेरसिंह और ज़ालिमसिंह महाराणा जवानसिंह के समय में उदयपुर आये तो महाराणा ने उन दोनों को शामिल में आर्ज्यां व कलडवास की जागीर देकर मेवाड़ में रखा। बरसोड़े का ठिकाना गुजरात के महीकांठा इलाक़े में है और वहां का ठाकुर चौथे दरजे का सरदार है।

राजकुमारियों का देहान्त बाल्यावस्था में ही हो गया। एक राजकुमारी की, जो जोधपुर के महाराजा सरदारसिंह को ब्याही थी, वि० सं० १६८१ (ई० स० १६२४) में मृत्यु हुई।

महाराणा के देहान्त के समय केवल एक कुमार (वर्तमान महाराणा साहिब) और एक कुमारी, जिसका विवाह किशनगढ़ के महाराजा मदनसिंह से हुआ था, विद्यमान हैं।

महाराणा का व्यक्तित्व

उक्त महाराणा के जन्म के समय मेवाड़ में विद्या का प्रचार बहुत ही कम था, तो भी उसने बाल्यावस्था में हिन्दी और उर्दू में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उसने संस्कृत तथा अंग्रेज़ी की पढ़ाई भी शुरू की थी जो थोड़े ही दिनों में छूट गई। उसे विशेषतः क्षत्रियोचित शिक्षा—बन्दूक, तलवार आदि शस्त्रों का चलाना, घोड़े की सवारी तथा शिकार करना—दी गई, जिसमें वह बहुत कुशल था।

महाराणा अपने प्राचीन जातीय संस्कार एवं सभ्यता का कट्टर पक्षपाती था। उसका रंग-ढंग, आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि सभी बातें पुराने ढंग की थीं, इसीसे उसकी शासन-पद्धति समयानुकूल नहीं, किन्तु पुराने ढंग की रही।

वह पहला महाराणा था, जिसके एक ही राणी रही। बहुविवाह की प्राचीन प्रथा से उसे घृणा थी। वह एक पत्नीव्रत धर्म पर सदा आरूढ़ रहा और अफ़ीम शराब आदि नशीली चीज़ों के व्यसन में आसक्त न रहा। उसने कुत्सित वासनाओं का दमन कर अपने ऊपर सच्ची विजय प्राप्त की। आजकल के उन भारतीय नरेशों और सरदारों को, जो बहुविवाह, मद्यपान आदि दोषों में फंसे हुए हैं, उसके आदर्श चरित्र से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है।

महाराणा प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठता, स्नान करते समय गंगालहरी का पाठ सुनता और संध्या, पूजन आदि दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर कुछ देर तक ईश्वरोपासना करता तथा रामायण या भागवत आदि पुराणों को श्रवण करता और स्वयं गीता का पाठ करता। उसने जीवनपर्य्यन्त इस दिनचर्य्या का पालन किया। इन्हीं अनेक कारणों से वह दीर्घजीवी हुआ और अंत तक उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

अन्य अधिकांश राजाओं के समान उसे खान-पान तथा नाच-गान का शौक़ न था। किसी बात का शौक़ था तो वह राजकाज संभालने और शिकार तथा घोड़े की सवारी का। उसका शिकार का शौक़ व्यायाम—न कि हिंसा—की दृष्टि से था। वह केवल बाघ, चीते, बड़े सूअर आदि हिंस्र एवं प्रजापीड़क पशुओं का ही आखेट करता और पक्षियों तथा हिरणों पर गोली नहीं चलाता था। राजधर्म के अनुसार उसने सैकड़ों बाघ, चीते, सूअर आदि पशुओं का शिकार किया। हथियार चलाने और बन्दूक का निशाना लगाने में वह सिद्धहस्त था, उसका निशाना शायद ही कभी खाली गया हो। कड़ी धूप में बिना थके बीसों मील घोड़े की सवारी करना और आखेट के समय विकट एवं दुर्गम पर्वत-श्रेणियों पर अपनी बन्दूक को कंधे पर लिए हुए पैदल चढ़ जाना उसके लिए साधारण सी बात थी। इस प्रकार सतत व्यायाम होते रहने के कारण उसका शरीर प्रायः नीरोग रहता था। यदि उसे कभी कोई शिकायत हो जाती तो कब्ज़ियत की, जिससे कभी कभी ज्वर हो आता। उसके शमन के लिए डॉक्टरों, वैद्यों और हकीमों की दवाइयां तो आ जातीं, परन्तु वह उन्हें न लेता और अपने सिद्धान्त के अनुसार लगातार चार या पांच लंघन कर जाता, जिससे बिना दवा के ही ज्वर उतर जाता। वह लंघन से कुछ कमज़ोर तो ज़रूर हो जाता, परन्तु बुखार उतर जाने पर फिर शिकार सम्बन्धी व्यायाम शुरू कर देता, जिससे थोड़े ही दिनों में पीछी ताक़त आ जाती।

उक्त महाराणा ने लगातार ४६ वर्ष तक अदम्य उत्साह तथा पूर्ण मनोयोग के साथ अपने विचारों के ही अनुसार राज्य किया। इस दीर्घ शासनकाल में उसने अपनी प्रजा पर कभी कोई नया टैक्स नहीं लगाया और न कभी पहले की धर्मार्थ दी हुई भूमि, गांव आदि को छीनने की चेष्टा की। वह दयालु, धर्मात्मा और ग़रीबों, विशेषतः दीन दुःखित अबलाओं का रक्षक तथा सहारा था। उनके दुःख दूर करने में उसका पैर सब से आगे था। वह प्रतिवर्ष साधु-संतों के आदर-सत्कार में भी सहस्रों रुपये खर्च करता। उसने हरद्वार में सोने का तुलादान किया। १५०००० रु० हिन्दू विश्वविद्यालय तथा उतने ही अजमेर मेयोकॉलेज तथा अनेक फण्डों में और १५०००० रु० भारत-धर्म-महा-मंडल काशी को दिये। अपनी कर्तव्यबुद्धि, परोपकारवृत्ति

एवं कुलाभिमान के कारण महाराणा बड़ा लोकप्रिय और भारतीय नरेशों तथा जनता का सम्मान-भाजन था। शिष्टता, नम्रता, सरलता, मितभाषिता, अतिथि-प्रियता आदि उसके गुणों की ख्याति भारत में ही नहीं, प्रत्युत इंग्लिस्तान आदि सुदूरवर्ती देशों तक फैली हुई है। जिसे एक बार भी उससे मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ है वह उसका स्मरण किये बिना नहीं रह सकता। क्लॉड हिल (सर) आदि मेवाड़ के रेज़िडेण्ट एवं सर वॉल्टर लॉरेन्स आदि जिन अंग्रेज़ अधिकारियों को उससे, राजनैतिक सरोकार होने के कारण, मिलने जुलने के विशेष अवसर मिले हैं उन्होंने तो जी खोलकर उसके उक्त गुणों के बखान किये हैं। वास्तव में देशी विदेशी सभी उसे चाहते और बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। उसके समय में इंग्लैंड के उपर्युक्त राजवंशियों के सिवा लॉर्ड डफ़रिन से लेकर लॉर्ड इरविन तक भारत के सभी वाइसराय उदयपुर जाकर उससे मिले और उन्होंने भोज के समय के अपने भाषणों में उसके आदर्श चरित्र, पुराने रंगढंग, कुलाभिमान तथा उसकी सरलता एवं मेहमानदारी की बहुत प्रशंसा की है। भारत सरकार की बड़ी कौंसिल के बहुतसे सदस्य, लॉर्ड रॉबर्ट्स, लॉर्ड किचनर, जनरल सर पॉवर पामर आदि प्रधान सेनापति, बम्बई का गवर्नर लॉर्ड रे, मद्रास का गवर्नर सर एम० ग्रेंट डफ़ और ऊपर लिखे हुए नरेशों के अतिरिक्त बड़ोदा, इन्दौर, काश्मीर, कोटा, बनारस, धौलपुर, नाभा, कपूरथला, मोर्वी, लीमड़ी, भावनगर आदि राज्यों के स्वामी भी उदयपुर गये और महाराणा के आदर्श आचरण एवं आदर-सत्कार से बहुत प्रसन्न हुए।

उसकी गंभीर मुखश्री का प्रभाव लोगों पर इतना अधिक पड़ता था कि किसी को उसके सामने जाकर सहसा कुछ कहने सुनने का साहस नहीं होता था। अन्य की बात तो दूर रही स्वयं लॉर्ड कर्ज़न जैसे उग्र प्रकृतिवाले वाइसराय पर भी उसका असर पड़े बिना न रहा। इस सम्बन्ध में सर वॉल्टर लॉरेन्स ने, जिसने लगातार १६ वर्ष तक हिन्दुस्तान में काम किया था, अपनी पुस्तक 'दी इंडिया वी सर्वेड्' में लिखा है "लॉर्ड कर्ज़न मुझ से अकसर कहा करता था कि तुम्हें मनुष्यों के पहचानने की तमीज़ नहीं है और भिन्न भिन्न मनुष्यों के विषय में मेरी जो धारणायें होतीं उनके सम्बन्ध में यह कहकर वह

मेरी हँसी उड़ाया करता कि 'जिन्हें तुम अक़्लमंद समझते हो वे निरे बेवक़ूफ़ हैं', परन्तु हम दोनों जब उदयपुर गये और पहले पहल महाराणा से लॉर्ड कर्ज़न की मुलाक़ात हुई तब मैंने ध्यानपूर्वक उस(कर्ज़न)की चेष्टा का निरीक्षण किया और यह देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि जिस लॉर्ड कर्ज़न पर किसी व्यक्ति की शकल-सूरत का कभी असर न पड़ा उस पर भी महाराणा की चित्ताकर्षक आकृति का प्रभाव पड़े बिना न रहा। उसने महाराणा से न तो शासन-सम्बन्धी प्रश्न किये, न उसे उसकी त्रुटियां बताईं और न सुधार तजवीज़ किये"।

वह अपने अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं के कामों पर पूरी नज़र रखता था। उनसे कोई काम बन पड़ता तो वह पुरस्कार आदि देकर उनका मन बढ़ाता, परन्तु उनके हाथ का खिलौना बनकर उसने कभी शासन नहीं किया। अपने विश्वासपात्रों से पहले धोखा खाने के कारण वह पीछे से कभी किसी का पूरा विश्वास नहीं करता था।

वह बड़ा परिश्रमी था। उसका परिश्रम देखकर लोग चकित और विस्मित हो जाते थे। वर्णाश्रमधर्म में उसकी अचल निष्ठा थी। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि उक्त धर्म के पालन में तत्पर रहने से ही अबतक हिन्दू जाति का अस्तित्व बना हुआ है।

उसकी ग्रहण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। कभी कोई कुछ अर्ज़ करता तो वह उसका वास्तविक अभिप्राय तुरंत समझ जाता। दूसरों की सिफ़ारिश पर बहुत कम ध्यान देता और यदि किसी को कभी कुछ देना होता तो वह अपनी ही मर्ज़ी से देता।

मितव्ययी होने के कारण उसने ख़ज़ाने में लाखों रुपये संग्रह किये, परन्तु उन्हें नई रेलें निकालने आदि राज्य की आय बढ़ानेवाले कामों में ख़र्च करने की ओर उसकी प्रवृत्ति कम रही। वह मितव्ययी होने पर भी प्रिंस ऑफ़ वेल्स, हिन्दुस्तान के वाइसराय आदि के आगमन एवं अपनी राजकुमारियों के विवाह आदि के समय पर तथा शिकार के कामों में जी खोलकर ख़र्च करता था।

वह तेजस्वी, कुलाभिमानी, प्रभावशाली, पराक्रमी, सहनशील, वीर, धीर, गंभीर, निडर, सदाचारी, जितेन्द्रिय, मितव्ययी, कर्तव्यपरायण,

परोपकारशील, धर्मनिष्ठ, भगवद्भक्त, शरणागत-वत्सल और पुराने ढंग का आदर्श शासक था। आपत्ति के मारे बाहरी राज्यों से आये हुए कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अपने यहां आश्रय देकर उसने अपनी कुल परंपरागत प्रथा का पालन किया।

वह सदैव अपने अधिकारों का पूरा ध्यान रखता। उसने राज्य का समस्त कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया, विना उसकी आज्ञा के राज्य का कोई भी कार्य नहीं होता। किसी पर अपने हाथ से अन्याय न हो इस विचार से वह प्रत्येक कार्य को पूरा सोचे विना त्वरा से नहीं करता, जिस से राज्य का बहुत सा काम प्रायः चढ़ा रहता। विद्या का विशेष अनुराग न होने के कारण जैसा कि महाराणा सज्जनसिंह के समय विद्वानों का सम्मान होता रहा वैसा उसके समय में नहीं हुआ। प्राचीन विचार का प्रेमी होने के कारण उसके समय में शासन-पद्धति में समयानुकूल विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, जिससे राजपूताने की अन्य रियासतों के जैसी राज्य की आय में वृद्धि नहीं हुई।

उसका रंग गेहुँवा, क़द लम्बा, शरीर मध्यम स्थिति का, आंखें मझेली तथा चेहरा प्रभावशाली था।

महाराणा भूपालसिंहजी

महाराणा सर भूपालसिंहजी जी० सी० एस० आई०, के० सी० आई० ई० का जन्म वि० सं० १६४० फाल्गुन वदि ११ (ई० स० १८८४ ता० २२ फरवरी) को हुआ। बचपन में इन्हें प्राचीन शिक्षापद्धति के अनुसार पहले हिन्दी और संस्कृत भाषा का अभ्यास कराया गया, फिर प्रोफ़ेसर मतीलाल भट्टाचार्य एम० ए० की अध्यक्षता में अंग्रेज़ी का शिक्षण हुआ।

महाराणा का जन्म और शिक्षा

वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में इनको रीढ की बीमारी हुई और उसका असर पैरों तक पहुँच गया, जिससे चलना फिरना भी बंद होगया। यह देखकर बड़े बड़े वैद्यों तथा डॉक्टरों की चिकित्सा आरंभ की गई; दान, पुण्य आदि में हज़ारों रुपये खर्च किये गये और सोने का तुलादान भी हुआ। लगातार दो वर्ष तक इलाज़ जारी

महाराणा की बीमारी

श्रीमान् महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सर भूपालसिंहजी
बहादुर, जी. सी. एस. आई., के. सी. आई. ई.

रहने से इनकी दशा धीरे धीरे सुधरने लगी और विक्रम सं० १६५६ (ई० स० १६०२) में इनको बहुत कुछ लाभ हुआ, परन्तु एक पैर कमज़ोर रह गया।

वि० सं० १६७८ श्रावण वदि ८ (ई० स० १६२१ ता० २८ जुलाई) को अंग्रेज़ी सरकार की स्वीकृति से महाराणा फ़तहसिंह ने अपना बहुत सा राज्याधिकार, जैसा कि उक्त महाराणा के विवरण में लिखा जा चुका है, इनको दे दिया। अधिकार मिलते ही इन्होंने राज्यशासन में आवश्यक सुधार करने और ग़रीब किसानों की तकलीफ़ मिटाने का विचार कर वि० सं० १६७८ श्रावण सुदि १० (ई० स० १६२१ ता० १३ अगस्त) को एक इश्तिहार जारी किया, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। प्रजा पर उस इश्तिहार का अच्छा प्रभाव पड़ा और किसानों आदि को विश्वास हो गया कि अब हमारी फ़र्याद सुनी जायगी।

शासन सुधार

फिर इन्होंने 'महद्राजसभा' में सुयोग्य एवं अनुभवी पुरुषों को नियत कर उसका सुप्रबन्ध किया और सदस्यों की संख्या बढ़ाई, जिससे उसका कार्य सुचारू रूप से होने लगा तथा बहुत सा पिछड़ा हुआ काम साफ़ हो गया। इन्होंने राज्य के आयव्यय का वार्षिक बजट तैयार किये जाने की आज्ञा दी, इतना ही नहीं, किन्तु राज्य के प्रायः सब विभागों की नई व्यवस्था की, जिससे राज्य की आय ३५ रु० सैकड़े के हिसाब से वृद्धि होकर ५६००००० रु० से अधिक हो गई। इन्होंने शासन एवं लोकहित संबन्धी बहुतसे काम किये, जिनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

पहली बार के बन्दोबस्त की अवधि पूरी हो जाने पर भी वही बन्दोबस्त चला आ रहा था, इसलिये इन्होंने मिस्टर सी० जी० चेनेविक्स ट्रैंच नामक अफ़सर को नियत कर नया बन्दोबस्त शुरू कराया, जिसका काम अबतक चल रहा है। यह नया बंदोबस्त राज्य की आय बढ़ाने की अपेक्षा काश्तकारों की स्थिति सुधारने की दृष्टि से किया जा रहा है।

कम ब्याज पर किसानों को कर्ज़ देने के लिये 'कृषि-सुधार' नाम का फंड खोला गया, जिससे अब उन्हें अधिक सूद पर महाजनों से ऋण लेने की आवश्यकता कम रहती है। बहुतसी छोटी छोटी लागतें, जिनसे प्रजा को कष्ट पहुंचता था, माफ़ कर दी गई। महाराणा सज्जनसिंह के समय में व्यापार की

सहूलियत के लिये दस चीज़ों के सिवा बाक़ी सब वस्तुओं का महसूल छोड़ दिया गया था, पर भीतरी व्यापार पर 'मापा' नाम का कर लगता था, जिससे राज्य को १००००० रु० की सालाना आय होती थी, परन्तु यह कर व्यापार की दृष्टि से हानिकर था, इसलिये वि० सं० १९८० (ई० स० १९२३) में इसे उठाकर इसके बदले सायर के महसूल की नई व्यवस्था की और बक़ाया मालगुज़ारी पर जो सूद पहले लिया जाता था वह आधा कर दिया। मेवाड़ के किसान अपनी पुरानी रीति के अनुसार खेती करते थे, जिससे उन्हें अपने परिश्रम का पूरा फल नहीं मिलता था, इसलिये वैज्ञानिक साधनों-द्वारा खेती की उन्नति करने का नया ढंग उन्हें बतलाने के लिये उदयपुर में कृषी-फ़ार्म क़ायम किया गया; क़स्बा भीलवाड़े का, जो मेवाड़ में व्यापार का मुख्य केन्द्र है, विस्तार बढ़ाया गया और वहां एक मंडी बनाई गई, जिसका नाम "भूपालगंज" रखा गया।

ई० स० १९२३ (वि० सं० १९८०) में आबकारी का नया महकमा क़ायम किया गया और बिना लाइसेन्स के शराब की भट्टियां खोलने, बिक्री के लिये अफ़ीम तथा गांजा पैदा करने और आमतौर से अफ़ीम एवं भांग बेचने की मुमानियत की गई। लोगों में शराब, अफ़ीम आदि नशीली चीज़ों का प्रचार कम कराने के लिये "मादक-प्रचार-सुधारक संस्था" स्थापित हुई, जिसने कई नियम बनाकर जारी किये, जिनका पालन किये जाने पर मादक द्रव्यों का प्रचार कम हो जाने की सम्भावना है। मावली से मारवाड़ जंक्शन तक रेलवे लाइन बढ़ाने का काम शुरू हुआ और कांकरोली तक नई रेल खुल भी गई।

ई० स० १९०९ (वि० सं० १९६६) में कपासन तथा गुलाबपुरे में कपास निकालने (लोढ़ने) एवं रुई की गांठें बांधने के नये कारखाने खुले थे, जो ई० स० १९१७ (वि० सं० १९७४) में प्रतिवर्ष १४५००० रु० जमा करते रहने की शर्त पर पांच वर्ष के लिये ब्यावर के सेठ चंपालाल को ठेके पर दिये गये थे, परन्तु ठेके की अवधि पूरी हो जाने पर ई० स० १९२२ (वि० सं० १९७९) में ये कारखाने राज्य के अधिकार में लिये गये और उन पर एक ख़ास अधिकारी नियत किया गया। ई० स० १९२६ (वि० सं० १९८३) में छोटी सादड़ी

और चित्तोड़ में भी ऐसे कारखाने खोले गये, जिससे राज्य की आय में वृद्धि होने लगी। मेवाड़ के लोगों को भी ऐसे कारखाने खोलने की आज्ञा दी गई, जिससे जहाज़पुर, आसींद, फ़तहनगर (सनवाड़ के समीप) एवं कांकरोली में ऐसे कारखाने खुल रहे हैं।

उदयपुर में शहर की सफ़ाई के लिये म्यूनिसिपल्टी की स्थापना हुई, सारे शहर में बिजली की रोशनी पहुंचाने का आयोजन किया गया, नये दवाखाने खोले गये, मेवाड़ के विद्यार्थियों को हाईस्कूल की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद आगे पढ़ने के लिये बाहर जाना पड़ता था, इसलिये उदयपुर में इन्टरमीजियेट कालेज खोला गया, जिसके लिये शहर से कुछ दूर एक नया मकान बन रहा है। स्कूलों तथा अध्यापकों की संख्या बढ़ाई गई, ज़िला स्कूलों और शफ़ाखानों के लिये ५०००० रु० दिये गये और सरदारों के लड़कों की शिक्षा के लिये बोर्डिङ्ग हाउस सहित "भूपाल नोबल स्कूल" खोला गया, जिसके स्थायी फंड के निमित्त एक लाख रुपये और एक बहुत बड़ा मकान दिया गया। यहां उन छोटे सरदारों के, जो मेयो कॉलेज (अजमेर) का खर्च नहीं उठा सकते, लड़के शिक्षा पाते हैं। कन्याओं की शिक्षा के लिये तीन प्रायमरी स्कूल खोले गये, छात्रों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति के रूप में ७५०० रु० दिया जाना स्वीकृत हुआ और नाबालिगों एवं कर्ज़दार जागीरदारों की जागीरों के समुचित प्रबन्ध के लिये 'कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स' (शिशुहितकारिणी सभा) का अलग महकमा कायम हुआ। जागीरों के गांवों में बंदोबस्त का काम शुरू हुआ, जागीरदारों को कम सूद पर कर्ज़ देने की व्यवस्था हुई और जंगलों की पैमाइश का काम शुरू हुआ।

चाही (कुओं से सींची जानेवाली) ज़मीन के हासिल के नये क़ायदे बनाये गये। राज्य के खनिज पदार्थों की जाँच किये जाने की आज्ञा हुई; सांसी, कंजर आदि चोरी के पेशेवालों को खेती आदि औद्योगिक कामों में लगाने की इस विचार से व्यवस्था की गई कि उनका चोरी और डकैती का पेशा छूट जाय और वे शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह करें। मावली से नाथद्वारा, उदयपुर से ऋषभदेव व खेरवाड़े तक और अन्यत्र भी मोटर चलाने की आज्ञा दी गई। उदयपुर में अदालत मुन्सिफ़ी तथा मजिस्ट्रेटी कायम हुई। विचाराधीन क़ैदियों

से जो खुराक़ खर्च लिया जाता था वह माफ़ कर दिया गया और 'खोड़े' (क़ैदी भाग न जाय इसलिये उसका पैर काठ में डालने) की प्रथा बंद कर दी गई। वकालत की परीक्षा होने और परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवालों को प्रमाण-पत्र दिये जाने की व्यवस्था हुई।

महाराणा फ़तहसिंह का स्वर्गवास हो जाने पर वि० सं० १६८७ ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० १६३० ता० २५ मई) को इन महाराणा की गद्दीनशीनी हुई

महाराणा का राज्याभिषेक

और ज्येष्ठ शुक्ल ६ (ता० ५ जून) को राज्याभिषेकोत्सव हुआ जिसके दूसरे ही दिन इन्होंने दरबार में निम्नलिखित आशय की अपने प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा घोषणा कराई—

जिन ज़िलों में बन्दोबस्त हुआ है उनके वि० सं० १६८५ तक के हासिल का बक़ाया माफ़ कर दिया गया है और जिनमें बन्दोबस्त नहीं हुआ है उनके उसी संवत् की ज्येष्ठ सुदि १५ की किश्त में ५ रु० सैकड़े के हिसाब से रियायत की गई है; उमरावों, सरदारों, जागीरदारों तथा माफ़ीदारों के सिवा और लोगों के ज़िम्मे वि० सं० १६७० के पहले का मुक़द्दमों के सम्बन्ध का राज्य का जो बक़ाया लेना था वह छोड़ दिया गया है। जागिरदारों के यहां के माफ़ीदारों के साथ भी यह रियायत की गई है। लोगों में पहले का राज्य का जो क़र्ज़ बाक़ी था उसमें से १५००००० रु० छोड़ दिये गये हैं। इसके सिवा विवाह, चँवरी, नाता, 'घरभूंपी' आदि छोटी छोटी सब लागतें माफ़ कर दी गई हैं। परलोकवासी महाराणा की यादगार में उदयपुर में एक सराय बनाई जायगी, जिसमें मुसाफ़िर तीन दिन ठहर सकेंगे और उनके आराम का प्रबन्ध राज्य की ओर से होगा। निजी खज़ाने से १००००० रु० नोबल स्कूल को दिया गया। इस रक़म के सूद से ग़रीब राजपूत विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र मुफ़्त दिये जायँगे तथा उनके रहने के लिये राज्य के खर्च से छात्रालय बनवाया जायगा।

गद्दी पर बैठने के बाद महाराणा ने नीचे लिखे हुए सुधार एवं परिवर्तन किये—

महाराणाओं तथा राज्य के प्रथमवर्ग के सरदारों के बीच दीर्घकाल से अधिकार के विषय में जो झगड़ा चला आता था उसे इन महाराणा ने प्रथम श्रेणी के सरदारों (उमरावों) को न्यायसम्बन्धी अधिकार साफ़ तौर से

प्रदान कर मिटा दिया और आबकारी की उनकी क्षति पूरी करने के सम्बन्ध में उनसे समझौता कर लिया, जनता के सुबीते का विचार कर उदयपुर तथा भीलवाड़े में डिस्ट्रिक्ट और सेशन कोर्ट क़ायम किये, शिशुहितकारिणी सभा (कोर्ट ऑफ़ वॉर्ड्स) की निगरानी में जो ठिकाने हैं उन सबकी पैमाइश कर बन्दोबस्त किये जाने की आज्ञा दी, जागीरदारों के पुराने क़र्ज़े के मामले बड़ी उदारता के साथ तय किये जाने का प्रबन्ध किया, महद्राजसभा को न्याय सम्बन्धी बहुतसे अधिकार प्रदान किये, शिक्षा-विभाग का काम ठीक तौर पर चलाने के लिये एक डाइरेक्टर की नियुक्ति की और उदयपुर में एक प्रदर्शिनी तथा कृषकों की उन्नति के विचार से कृषि-विभाग खोला।

ता० २० अगस्त (भाद्रपद वदि ११) को अंग्रेज़ी सरकार की ओर से महाराणा की गद्दीनशीनी का ख़रीता लेकर राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल मिस्टर एल्० डब्ल्यू० रेनाल्ड्स का उदयपुर जाना हुआ। ता० २२ अगस्त (भाद्रपद वदि १३) को राजभवन के "सभाशिरोमणि" दरीख़ाने में दरबार हुआ, जिसमें राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल ने महाराणा की गद्दीनशीनी का अंग्रेज़ी सरकार का ख़रीता पढ़कर सुनाया। फिर उसका भाषण हुआ, जिसमें उसने स्वर्गीय महाराणा की सरलता, शिष्टता, प्रजावत्सलता, गंभीरता, अतिथिप्रियता, कुलाभिमान आदि गुणों की प्रशंसा करते हुए, वर्तमान महाराणा के शासनाधिकार ग्रहण करने के समय से लगाकर उक्त समय तक के शासन-सम्बन्धी कार्यों की, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, चर्चा कर उनकी प्रशंसा की।

अंग्रेज़ी सरकार की तरफ़ से महाराणा को अधिकार मिलना

इन्होंने जोधपुर के रावबहादुर पंडित सर सुखदेवप्रसाद को अपना "मुसाहिब-आला" नियत किया, अपनी प्रजा को बेगार का कष्ट उठाते देखकर बेगार की प्रथा बिलकुल उठा दी, देहात से राजधानी में गल्ला आदि सामान आता था उसपर की चुंगी माफ़ कर दी। राज्य-सुधार के लिये कई क़ानून बनवाये, जिनके जारी होने पर प्रजा को और भी सुबीता होगा। इन्होंने अपने मामा अभयसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह को कोदूकोटा ग्राम जागीर में प्रदान किया।

ता० १ जनवरी सन् १९३१ (वि० सं० १९८७ पौष सुदि १२) को श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज ने इनको 'जी० सी० एस० आई०' की उपाधि से विभूषित किया।

इन महाराणा की गद्दीनशीनी हुए अभी केवल एक वर्ष ही हुआ है, इस-लिये यद्यपि इनका इतिहास लिखने का समय नहीं आया, तो भी इनके पिता की जीवित दशा में जब से राज्याधिकार हाथ में लिया तब से लगाकर अबतक जो कुछ सुधार इन्होंने किये उनका केवल नामोल्लेख ऊपर किया गया है।

इनकी लोगों के साथ की सहानुभूति, प्रजावत्सलता, परोपकारवृत्ति, उदारता, सहृदयता, शुद्धवृत्ति एवं गुणग्राहकता आदि गुणों को देखते हुए यह आशा की जाती है कि भविष्य में ये बहुत कुछ प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

नवां अध्याय

मेवाड़ के सरदार और प्रतिष्ठित घराने

सरदार

उदयपुर राज्य में सरदारों की प्रतिष्ठा राजपूताने के अन्य राज्यों के सरदारों की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि यहां के राजा अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये लगभग ४०० वर्ष तक मुसलमानों से लड़ते रहे, उस समय सरदारों ने पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ महाराणा का साथ दिया और मेवाड़ की रक्षा के लिये उनमें से बहुतों ने अपने प्राण तक उत्सर्ग किये। सरदार ही इस राज्य के मुख्य अंग रहे। मुसलमानों के समय थोड़े से सरदारों ने मेवाड़ की सेवा का परित्याग कर लोभवश बादशाही सेवा स्वीकार की, परन्तु अधिकांश सरदार बादशाही सेवा स्वीकार करने की अपेक्षा महाराणा की सेवा में रहकर अनेक आपत्तियां सहते हुए भी अपने स्वामि-धर्म की रक्षा करना ही अपना कर्तव्य समझते रहे। जब उनमें से किसी किसी की जागीर बादशाही अधिकार में चली जाती, तब भी वे बिना जागीर के महाराणा की सेवा में रहकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। महाराणाओं ने भी समय समय पर उनकी उत्तम सेवा की क़दर कर उनके साथ बड़े सम्मान का बर्ताव किया और उनकी प्रतिष्ठा व पद को बढ़ाया, जिससे मेवाड़ को अनेक आपत्तियां सहते हुए भी विशेष हानि नहीं हुई तथा उसका गौरव बना रहा, परन्तु महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने सरदारों के साथ अपने पूर्वजों का सा बर्ताव न कर कुछ स्वामिभक्त सरदारों को छल से मरवा डाला, जिससे कई एक सरदारों के साथ उसका विरोध हो गया, जिसका फल यह हुआ कि मेवाड़ का एक हिस्सा मरहटों आदि के हाथ में चला गया और राज्य की अवनति हुई।

मेवाड़ के सरदारों की तीन श्रेणियां हैं—प्रथम, द्वितीय और तृतीय। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों की संख्या १६

नियत की थी, जिससे उनको 'सोला' कहते हैं। सामान्यरूप से वे 'उमराव' कहलाते हैं। पीछे से उनकी संख्या बढ़ती गई। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने भैंसरोड़, महाराणा भीमसिंह ने कुरावड़, महाराणा जवानसिंह ने आसींद, महाराणा शंभुसिंह ने मेजा तथा महाराणा सज्जनसिंह ने सरदारगढ़ को प्रथम श्रेणी में दाखिल किया, जिससे उनकी संख्या २१ हो गई। उनकी बैठकें नियत हैं जिनकी संख्या पूर्ववत् अबतक सोलह ही है। इसलिये जो सरदार नये बढ़ाये गये हैं वे उपर्युक्त सोलह में से किसी की अनुपस्थिति में ही दरबार में उपस्थित होते हैं। द्वितीय श्रेणी के सरदारों की संख्या महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय ३२ होने से उनको 'बत्तीस' कहते हैं और सामान्यरूप से वे 'सरदार' कहलाते हैं। उनकी संख्या अब भी क़रीब पहले के जितनी ही है। महाराणाओं की इच्छा के अनुसार समय समय पर कुछ सरदारों की बैठकें ऊपर कर उनका दर्जा बढ़ाया जाता रहा है। प्रथम श्रेणी के सरदारों में ऐसा प्रायः कम हुआ है, क्योंकि उनको अपने से नीची बैठकवाले का अपने ऊपर बैठना असह्य रहा और उसके लिये वे बहुधा लड़ने तक को तैयार हो जाया करते रहे; परन्तु दूसरी श्रेणीवालों में ऐसा अधिक हुआ है, जिससे उस (दूसरी) श्रेणी के कुछ सरदार तीसरी श्रेणी में आ गये। ऐसे सरदारों की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा अबतक पूर्ववत् बनी हुई है। कितने एक सरदार मेवाड़ से जो ज़िले निकल गये उनके साथ मारवाड़, ग्वालियर आदि में चले गये।

तीसरी श्रेणी के सरदारों को 'गोल के सरदार' कहते हैं। प्रथम और द्वितीय श्रेणी के सरदारों में से बहुधा सब को ताज़ीम है और तृतीय श्रेणी के सरदारों में से कई एक को, परन्तु सभी सरदारों को दरबार में बैठक (बैठने) की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन सरदारों के अतिरिक्त महाराणाओं के निकट के संबन्धी और भी हैं, जिनकी भी बहुत कुछ प्रतिष्ठा है।

———

प्रथमश्रेणी के सरदार (उमराव)

बड़ी सादड़ी

सादड़ी के सरदार चन्द्रवंशी झाला[1] राजपूत हैं। उदयपुर राज्य के उमरावों में इनका स्थान प्रथम है। इनके पूर्वज हलवद (काठियावाड़ में) राज्य के स्वामी थे। वि० सं० १५६३ (ई० स० १५०६) में राजा राजसिंह (राजधर) के दो पुत्र अज्जा[2] और सज्जा हलवद छोड़कर मेवाड़ के महाराणा

(१) झालावंश का पुराना नाम मकवाना था और उसका मूल स्थान सिन्ध में कीर्तिगढ़ था, जहां से सुमरा लोगों से झगड़ा हो जाने के कारण हरपाल मकवाना गुजरात चला गया। वहां के राजा कर्ण (सोलंकी) ने बड़ी जागीर देकर उसे अपने पास रखा। मकवाना वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि मार्कण्डेय ऋषि ने सोमयज्ञ के द्वारा उसके मूल पुरुष कुंडमाल को उत्पन्न किया। संस्कृत में यज्ञ का नाम 'मख' होने से कुंडमाल 'मकवाना' कहलाया। यह जनश्रुति कल्पना-प्रसूत होने के कारण विश्वसनीय नहीं है। सम्भव है कि मकवाना इस वंश के मूल पुरुष का और झाला इसकी शाखा का नाम हो। यदि यज्ञ से कुंडमाल की उत्पत्ति होती तो परमारों की तरह मकवाने भी अग्निवंशी कहलाते, परन्तु अग्निवंशी होना वे स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार इस वंश के झाला कहलाने के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती है कि एक बार हरपाल के बालक पुत्र को एक हाथी ने उठाकर फेंका, इतने में किसी देवी ने झपटकर उसे झेल लिया। गुजराती भाषा में झेलने के लिये 'झालना' शब्द प्रयुक्त होता है, इसलिये वह बालक झाला कहलाया। यह किंवदन्ती भाटों की कल्पनामात्र है। वि० सं० की १५ वीं शताब्दी के बने हुए मंडलीक महाकाव्य में काठियावाड़ के गोहिलों का सूर्यवंशी और झालाओं का चन्द्रवंशी होना लिखा है, जो भाटों की कल्पनाओं से अधिक विश्वास के योग्य है—

रविविधूद्भवगोहिलझल्लकैर्व्यजनवानरभाजनधारव ।
विविधवर्तनसंवितकारणैः ससमदैः समदैः समसेव्यत ॥

(गंगाधर कविरचित 'मंडलीक महाकाव्य' सर्ग ६, श्लो० २२)

(२) वंशक्रम—(१) अज्जा। (२) सिंहा। (३) आसा। (४) सुलतान। (५) बीदा (मानसिंह)। (६) देदा। (७) हरिदास। (८) रायसिंह। (९) सुलतान (दूसरा)। (१०) चन्द्रसेन। (११) कीर्तिसिंह। (१२) रायसिंह (दूसरा)। (१३) सुलतान (तीसरा)। (१४) चन्दनसिंह। (१५) कीर्तिसिंह (दूसरा)। (१६) शिवसिंह। (१७) रायसिंह (तीसरा)। (१८) दूलहसिंह।

रायमल के पास चले गये[1], जिसने उनको जागीरें देकर अपना सामन्त बनाया। अज्जा के वंशज सादड़ी के उमराव हैं, जिनका खिताब 'राजराणा' है। अज्जा महाराणा सांगा (संग्रामसिंह प्रथम) और मुग़ल बादशाह बाबर के बीच की खानवे की लड़ाई में महाराणा के साथ रहकर लड़ा। जब महाराणा के सिर में तीर लगा और वह बेहोश हो गया तब उसके सरदार उसे लड़ाई के मैदान से मेवाड़ की ओर ले चले; उस समय इस आशंका से कि महाराणा को उपस्थित न देखकर उसकी सेना कहीं यह न समझ ले कि वह युद्धभूमि में नहीं है, उन्होंने अज्जा को महाराणा का प्रतिनिधि बनाकर उस (महाराणा) के हाथी पर बिठाया और वे सब उसकी आज्ञा में रहकर लड़ने लगे। उसने महाराणा के छत्र, चँवर आदि सब राजचिह्न धारण किये, जिससे अबतक उसके वंशजों को उन्हें धारण करने का अधिकार चला आता है। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में उक्त लड़ाई में वीरता से लड़कर वह मारा गया।

उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सिंहा हुआ, जो महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ की दूसरी चढ़ाई के समय हनुमान पोल पर लड़ता हुआ काम आया। उसका पुत्र आसा महाराणा उदयसिंह की वणवीर के साथ की चित्तोड़ की लड़ाई में मारा गया। आसा के पुत्र सुलतान ने महाराणा उदयसिंह के समय अकबर की चित्तोड़ की चढ़ाई में सूरज पोल के पास वीरगति पाई। उसका पुत्र बीदा, जिसका दूसरा नाम मानसिंह था, प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में मारा गया। राजराणा देदा महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय में राणपुर की लड़ाई में जहांगीर बादशाह के सेनापति अब्दुल्लाखां (फ़ीरोज़जंग) से लड़कर खेत रहा।

उसके पीछे सादड़ी का स्वामी हरिदास हुआ, जो शाहज़ादा खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में खूब लड़ा और बुद्धिमान होने के कारण बादशाह के साथ सुलह कराने में महाराणा का मुख्य सलाहकार रहा। वि० सं० १६७२ (ई० स० १६१५) में जब महाराणा अमरसिंह का बालक पौत्र जगतसिंह जहांगीर के दरबार में गया उस समय हरिदास, जो महाराणा का

(१) अज्जा व सज्जा के मेवाड़ में चले जाने से उनका छोटा भाई राणकदेव हलवद का स्वामी हुआ।

विश्वासपात्र और जगतसिंह का अतालीक था, उसके साथ भेजा गया। उससे बादशाह बहुत खुश रहा और जगतसिंह को विदा करते समय उसने ५००० रु०, एक घोड़ा और ख़िलअत देकर उस (हरिदास) को भी सम्मानित किया।

जहांगीर बादशाह से बाग़ी होकर शाहज़ादा खुर्रम आगरे से भागकर आंबेर को लूटता हुआ उदयपुर पहुँचा। फिर वहां से मांडू जाते समय वह सादड़ी में ठहरा जहां एक दरवाज़ा बनवाने की आज्ञा दी और वहां अपना एक निशान खड़ा करवाया। हरिदास का पुत्र रायसिंह कई वर्षों तक बादशाह की सेवा में रहने वाली उदयपुर की सेना का सेनापति रहा। शाहजहां बादशाह के समय में उसे ८०० ज़ात और ४०० सवार का मन्सब मिला, जो बढ़ते बढ़ते १००० ज़ात तथा ७०० सवार तक पहुँच गया था। नूरपुर (कांगड़ा), बलख़, बदख़्शां और क़न्दहार की लड़ाइयों में शाही सेना के साथ रहकर उसने अच्छी प्रतिष्ठा पाई। उसका विवाह महाराणा कर्णसिंह की राजकुमारी के साथ हुआ था।

उसके पीछे ठिकाने का अधिकारी उसका पुत्र सुलतान (दूसरा) हुआ। देवलिये (प्रतापगढ़) का रावत हरिसिंह महाराणा राजसिंह से विरोध कर औरंगज़ेब बादशाह के पास चला गया, परन्तु उससे सहायता न मिलने पर उसने राजराणा सुलतानसिंह आदि को बीच में डालकर महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली। सुलतान का उत्तराधिकारी चन्द्रसेन हुआ। महाराणा राजसिंह ने अपने कुंवर जयसिंह को औरंगज़ेब के पास अजमेर भेजा उस समय चन्द्रसेन को उसके साथ कर दिया। औरंगज़ेब के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाइयों में वह खूब लड़ा और जिस समय कुंवर जयसिंह ने चित्तोड़ के पास शाहज़ादे अकबर की सेना का संहार किया उस समय वह कुंवर के साथ था। चन्द्रसेन का उत्तराधिकारी कीर्तिसिंह और उसका क्रमानुयायी रायसिंह (दूसरा) हुआ, जो हींता के पास मरहटों के साथ के युद्ध में घायल हुआ।

सुलतानसिंह (तीसरा) वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८८) में महाराणा भीमसिंह के समय सिंधिया की सेना के साथ की हड़क्याखाल की लड़ाई में घायल होकर क़ैद हुआ और दो वर्ष बाद अपने ठिकाने के चार गाँव देकर छूटा।

सुलतानसिंह के पुत्र चंदनसिंह के समय मरहठों ने सादड़ी को छीन लिया, परन्तु उसने लड़कर अपने ठिकाने पर पीछा अधिकार कर लिया। उसके

पुत्र कीर्तिसिंह (दूसरे) की पुत्री दौलतकुँवर का विवाह महाराणा शंभुसिंह के साथ हुआ। कीर्तिसिंह का पुत्र शिवसिंह सिपाही विद्रोह के समय नींबाहेड़े पर अधिकार करने में कप्तान शॉवर्स का सहायक रहा। शिवसिंह का पुत्र रायसिंह (तीसरा) हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई सुलतानसिंह का पुत्र दूलहसिंह हुआ, जो सादड़ी का वर्तमान स्वामी है।

बेदला

बेदले के सरदार चौहान राजपूत हैं और 'राव' उनका खिताब है। वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) में सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज को मारकर उसके बालक पुत्र गोविन्दराज को अपनी अधीनता में अजमेर की गद्दी पर बिठाया, परन्तु उस (पृथ्वीराज) के भाई हरिराज ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण अपने भतीजे को अजमेर से निकाल दिया। तब वह रणथंभोर चला गया और हरिराज अजमेर का स्वामी हुआ। वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) की लड़ाई में मुसलमानों ने हरिराज को हराकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। रणथंभोर में चौहानों का राज्य गोविन्दराज से लगाकर हम्मीर तक रहा। वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) में सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी ने रणथंभोर पर चढ़ाई कर हम्मीर को मार उसका राज्य छीन लिया। तब हम्मीर के सम्बन्धियों ने गुजरात और संयुक्त प्रान्त आदि में जाकर नये राज्य स्थापित किये।

वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में पानीपत की लड़ाई में इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर दिल्ली का स्वामी हुआ। फिर वह महाराणा सांगा से लड़ने को चला। उस समय मैनपुरी इलाके के चंदवार स्थान से चन्द्रभान[1] चौहान ४००० सैनिक साथ लेकर महाराणा से जा मिला और खानवे की लड़ाई में मारा गया। उसके बचे हुए रिश्तेदार और सिपाही मेवाड़ की सेवा में ही रहे।

---

(१) वंशक्रम—(१) चन्द्रभान। (२) संग्रामसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) बल्लू। (५) रामचन्द्र। (६) सबलसिंह। (७) सुलतानसिंह। (८) बख़्तसिंह। (९) रामचन्द्र (दूसरा)। (१०) प्रतापसिंह (दूसरा)। (११) केसरीसिंह। (१२) बख़्तसिंह (दूसरा)। (१३) तख़्तसिंह। (१४) कर्णसिंह। (१५) नाहरसिंह।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई हुई उस समय चन्द्रभान का पुत्र संग्रामसिंह[1] और उसका चाचा ईसरदास वीरता से लड़कर काम आये। संग्रामसिंह का पौत्र राव बल्लू शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। जहांगीर बादशाह से सुलह हो जाने के पीछे जब सारे मेवाड़ पर उक्त महाराणा का अधिकार हो गया उस समय उसकी आज्ञा से रावत मेघसिंह चूंडावत ने नारायणदास शक्तावत को बेगूं से निकाल कर वहांपर महाराणा का अधिकार करा दिया और महाराणा ने बेगूं की जागीर बल्लू चौहान को दे दी। इससे अप्रसन्न होकर मेघसिंह बादशाह के पास चला गया, परन्तु कुछ समय पीछे कुंवर कर्णसिंह को भेजकर महाराणा ने उसे उदयपुर पीछा बुला लिया और उसकी इच्छानुसार उसे बेगूं की जागीर दी। राव बल्लू को बेगूं के बदले गंगराड़ का इलाक़ा और बेदला मिला, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है।

राव रामचन्द्र महाराणा राजसिंह की आज्ञा से कुंवर जयसिंह के साथ औरंगज़ेब बादशाह के पास गया। उसका उत्तराधिकारी सबलसिंह औरंगज़ेब के साथ उक्त महाराणा की जो लड़ाइयां हुईं उनमें लड़ा और चित्तोड़ के पास कुंवर जयसिंह ने जब शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण किया उस समय वह कुंवर के साथ था। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के साथ उसकी पुत्री देवकुंवरी का विवाह[2] हुआ, जिससे महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का जन्म हुआ। सबलसिंह के पीछे सुलतानसिंह और उसके बाद

---

(१) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृ० १५) में चन्द्रभान और संग्रामसिंह के बीच समरसी, भीखम, भीमसेन, देवीसेन, रूपसेन और दलपतसेन ये छः नाम और दिये हैं जो अशुद्ध हैं। चन्द्रभान का पुत्र संग्रामसिंह था। चन्द्रभान वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में खानवे की लड़ाई और संग्रामसिंह वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६८) में अकबर की चित्तोड़ की लड़ाई में काम आया। इस प्रकार केवल ४० वर्ष के भीतर सात पुश्तों का होना संभव नहीं। बेदले के चौहानों की तीन पुरानी वंशावलियाँ मुझे मिली हैं जिनमें ये छः नाम नहीं हैं।

(२) कर्नल वॉल्टर ने लिखा है कि महाराणा अमरसिंह को राव बख़्तसिंह की पुत्री ब्याही थी, जिससे संग्रामसिंह (दूसरा) उत्पन्न हुआ (कर्नल वॉल्टर; बायोग्राफ़िकल स्केचेज़ आफ़ दी चीफ़्स आफ़ मेवार, पृ० १५)। उसका यह कथन निर्मूल है, क्योंकि महाराणा संग्रामसिंह की माता बेदले के राव बख़्तसिंह की नहीं, किन्तु रामचन्द्र के पुत्र

बख्तसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। बख्तसिंह के पुत्र रामचन्द्र (दूसरे) ने, जिसकी पुत्री महाराणा राजसिंह (दूसरे) को ब्याही और जो उसके साथ सती हुई थी, महाराणा अरिसिंह (दूसरे) को अधिकारच्युत कर महाराणा राजसिंह के वास्तविक पुत्र रत्नसिंह को गद्दी पर बिठाने के लिये सरदारों को उभारा, इतना ही नहीं, किन्तु वह बराबर उनके पक्ष में रहा और सात वर्ष की अवस्था में शीतला की बीमारी से असली रत्नसिंह के मर जाने पर सरदारों ने उसी उम्र के एक लड़के को रत्नसिंह बतलाकर झूठा दावेदार खड़ा किया, उस समय भी वह (रामचन्द्र) अन्य विरोधी सरदारों के समान उसी का तरफ़दार रहा।

उसका तीसरा वंशधर राव बख्तसिंह (दूसरा) बड़ा बुद्धिमान्, कार्यदक्ष, ईमानदार और स्वामिभक्त था। ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के ग़दर के समय जब नीमच की सरकारी सेना बाग़ी हो गई तब वहां से भागकर ४० अंग्रेज़ों ने, जिनमें औरतें तथा बच्चे भी शामिल थे, डूंगला गांव में आश्रय लिया, पर वहां भी बाग़ी जा पहुंचे। यह ख़बर पाते ही महाराणा सरूपसिंह ने बाग़ियों का दमन करने के लिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शॉवर्स के साथ राव बख्तसिंह को ससैन्य भेजा। बख्तसिंह ने डूंगले से बाग़ियों को निकालकर महाराणा की आज्ञा के अनुसार औरतों और बच्चों सहित अंग्रेज़ों को हिफ़ाज़त के साथ उदयपुर पहुँचा दिया तथा जबतक उधर का विद्रोह शान्त न हुआ तबतक वह अंग्रेज़ों के साथ रहकर उन्हें बराबर

सबलसिंह की पुत्री थी, जैसा कि देवकुंवरी के बनाये हुए सीसारमा गांव के वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति से पाया जाता है—

तदात्मजन्मा किल रामचन्द्रः.....।.........॥१३॥

तदात्मजः श्रीसुल्तानसिंहः स्थानं तदीयं विधिवत् प्रशास्ति..........॥१५॥

तस्माद्गुणाब्धेः सबलाभिधानाद्रमेव साक्षादुदिताभवद्या ।

पितुर्गृहेऽवर्धत सद्गुणौघैर्नाम्ना युता देवकुमारिकेति ॥ १६ ॥

पित्रा च दत्ता सबलेन राज्ञा वराय योग्यामरसिंहनाम्ने ॥ १७ ॥

ततोऽमराज्ञी जयसिंहसूनोर्जाता महापुण्यपवित्रमूर्तिः ।

रमेव साक्षान्मकरध्वजं सा संग्रामसिंहं सुतमापदीड्यं ॥ १८ ॥

(वैद्यनाथ के मंदिर की प्रशस्ति; प्रकरण ४)।

मदद देता रहा। उसकी इस सेवा के उपलक्ष्य में अंग्रेज़ी सरकार की ओर से उसे तलवार दी गई। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी के समय वह रीजेन्सी कौंसिल का मेम्बर रहा। महाराणा सज्जनसिंह के राजत्वकाल में उसे वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७७) के दिल्ली दरबार में 'रावबहादुर' तथा उसके दूसरे वर्ष सी० आई० ई० का ख़िताब मिला और वह 'इजलास ख़ास' का भी मेम्बर रहा।

उसके पीछे तख़्तसिंह और कर्णसिंह यथाक्रम ठिकाने के अधिकारी हुए। इन दोनों को भी 'रावबहादुर' का ख़िताब मिला और दोनों 'महद्राजसभा' के मेम्बर रहे। कर्णसिंह का पुत्र रावबहादुर नाहरसिंह बेदले का वर्तमान स्वामी और महद्राजसभा का मेंबर है। नाहरसिंह के चाचा ठाकुर राजसिंह की योग्यता से प्रसन्न होकर उसे भी अंग्रेज़ी सरकार ने 'रावबहादुर' की उपाधि दी है और वह राज्य में प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त है।

कोठारिया

कोठारिये के सरदार रणथंभोर के अंतिम चौहान राजा हम्मीर के वंशज[1] हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है। बाबर और महाराणा सांगा की लड़ाई के समय संयुक्त प्रान्त के मैनपुरी ज़िले के राजौर स्थान से माणिकचन्द[2] चौहान ४००० सैनिकों को साथ लेकर महाराणा की मदद के लिए आया और वीरता से लड़कर मारा गया। उसके संबंधी और सैनिक महाराणाओं की सेवामें ही रहे। माणिकचन्द[3] के पीछे सारंगदेव, जयपाल और खान क्रमशः उसके ठिकाने

(१) कर्नल टॉड ने कोठारिये के चौहानों का सुप्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज के चाचा कन्ह के वंश में होना लिखा है, जो भ्रम ही है, क्योंकि कन्ह नाम का पृथ्वीराज का कोई चाचा ही न था। 'पृथ्वीराज रासो' पर विश्वास करने से यह भूल हुई है।

(२) वंशक्रम—(१) माणिकचन्द। (२) सारंगदेव। (३) जयपाल। (४) खान। (५) तातारखान। (६) धमांगद। (७) साहिबखान। (८) पृथ्वीराज। (९) रुक्मांगद। (१०) उदयकरण (उदयभान)। (११) देवभान। (१२) बुधसिंह। (१३) फ़तहसिंह। (१४) विजयसिंह। (१५) मोहकमसिंह। (१६) जोधसिंह। (१७) संग्रामसिंह। (१८) केसरीसिंह। (१९) जवानसिंह। (२०) उम्मेदसिंह। (२१) मानसिंह।

(३) माणिकचन्द के भाई वीरचन्द के वंशजों के अधिकार में गुढलां का ठिकाना है। गुढलां से पीपली का ठिकाना निकला है।

के स्वामी हुए। वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में महाराणा विक्रमादित्य को मारकर वणवीर मेवाड़ का स्वामी बन बैठा। एक दिन भोजन करते समय उसने रावत खान को अपना झूठा भोजन खिलाना चाहा, जिससे अप्रसन्न होकर वह महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह के पास कुंभलगढ़ चला गया। वहां उसने साईदास, जग्गा, सांगा आदि चूंडावतों तथा अन्य सरदारों को बुला लिया। उनकी सहायता से वणवीर को निकाल कर उदयसिंह मेवाड़ का स्वामी बना। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने खान को 'रावत' की उपाधि दी, जो महाराणाओं के कुटुंबियों को मिलती थी।

खान का तीसरा वंशधर साहिबखान चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय लड़ता हुआ मारा गया। उसका उत्तराधिकारी पृथ्वीराज शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। पृथ्वीराज का पुत्र रुक्मांगद[1] औरंगज़ेब के साथ की महाराणा राजसिंह की लड़ाइयों में महाराणा के साथ और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ था। महाराणा जयसिंह के समय सुलह की बातचीत करने के लिए वह औरंगज़ेब के पास भेजा गया। रुक्मांगद का पुत्र उदयकरण[2] (उदयभान) महाराणा राजसिंह के समय बांसवाड़े की चढ़ाई में अपने पिता के साथ था और उसकी विद्यमानता में ही महाराणा की ओर से शाहज़ादे औरंगज़ेब के पास दक्षिण में भी भेजा गया था। जब औरंगज़ेब ने बिना अपनी अनुमति के किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की पुत्री चारुमती के साथ विवाह करने का कारण महाराणा राजसिंह से दर्याफ़्त किया तब उसके उत्तर में महाराणा ने एक अर्ज़ी उदयकरण के हाथ बादशाह के पास भेजी। मेवाड़ पर शाहज़ादे अकबर की चढ़ाई के समय उस (उदयकरण) ने बड़ी बहादुरी दिखाई और उदयपुर के शाही थाने पर आक्रमण कर उसने बहुतसे मुसलमानों को मार डाला। उसकी इस वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे १२ गांव दिये। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर उसने कुंवर का पक्ष लिया।

---

(१) फलीचड़ा के चौहान रुक्मांगद के वंशधर हैं।

(२) बनेड्या के चौहान उदयकरण के वंशज हैं और थांवले के चौहान उसके पौत्र बुधसिंह के।

उसका उत्तराधिकारी देवभान रणबाज़खां मेवाती के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा। उसका पोता फ़तहसिंह महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय पहले तो रत्नसिंह का तरफ़दार रहा, परन्तु जब माधवराव सिंधिया ने उदयपुर का घेरा उठा लिया तबसे उसने रत्नसिंह का साथ छोड़कर महाराणा का पक्ष लिया और रत्नसिंह के तरफ़दारों (महापुरुषों) से दो बार लड़ा। महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में फ़तहसिंह का पुत्र विजयसिंह ऊनवास गांव से कोठारिया जाते समय होलकर की सेना से घिरगया और मरहटों के मांगने पर अपने शस्त्र तथा घोड़े उनके सुपुर्द न कर उसने घोड़ों को मार डाला और स्वयं अपने साथियों सहित बड़ी वीरता से लड़कर मारा गया। विजयसिंह का सातवां वंशधर मानसिंह कोठारिये का वर्तमान सरदार है।

सलूंबर

सलूंबर के सरदार महाराणा लक्षसिंह (लाखा) के ज्येष्ठ पुत्र सत्यव्रत, त्यागी और पितृभक्त चूंडा[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

मंडोवर के राव चूंडा राठोड़ के ज्येष्ठ पुत्र रणमल की बहिन हंसबाई के साथ विवाह करने की अपने पिता महाराणा लाखा की इच्छा जानकर चूंडा ने रणमल को कहलाया कि आप अपनी बहिन की शादी महाराणा के साथ कर दें, परन्तु इसे अस्वीकार करते हुए उसने कहा कि आपसे तो अपनी बहिन की शादी करने को मैं तैयार हूं, क्योंकि उससे कोई पुत्र उत्पन्न होगा तो भविष्य में वह मेवाड़ का स्वामी बनेगा, किन्तु महाराणा को ब्याहने से मेरी बहिन की संतान को मेवाड़ के भावी स्वामी की सेवा कर निर्वाह करना पड़ेगा। इसपर चूंडा ने उत्तर दिया कि मैं सदा के लिए मेवाड़-राज्य का अपना हक़ छोड़ता हूं और एकलिंगजी की शपथ खाकर इस आशय का इक़रारनामा

(१) वंशक्रम—(१) चूंडा। (२) कांधल। (३) रत्नसिंह। (४) दूदा। (५) सांईदास। (६) खेंगार। (७) किशनदास। (८) जैतसिंह। (६) मानसिंह। (१०) पृथ्वीराज। (११) रघुनाथसिंह। (१२) रत्नसिंह (दूसरा)। (१३) कांधल (दूसरा)। (१४) केसरीसिंह। (१५) कुबेरसिंह। (१६) जैतसिंह (दूसरा)। (१७) जोधसिंह। (१८) पहाड़सिंह। (१९) भीमसिंह। (२०) भवानीसिंह। (२१) रत्नसिंह (तीसरा)। (२२) पद्मसिंह। (२३) केसरीसिंह (दूसरा)। (२४) जोधसिंह (दूसरा)। (२५) ओनाड़सिंह। (२६) खुंमाणसिंह।

लिख दिया कि हंसबाई से महाराणा के यदि कोई पुत्र होगा तो वही उनके पीछे मेवाड़ का स्वामी होगा और मैं उसका सेवक होकर रहूंगा।

तब रणमल ने महाराणा के ही साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया, जिससे मोकल का जन्म हुआ। चूंडा की पितृभक्ति से प्रसन्न होकर महाराणा ने आज्ञा दी कि अब से राज्य की ओर से पट्टों, परवानों आदि पर भाले का चिह्न चूंडा और उसके मुख्य वंशधर करेंगे तथा 'भांजगड़' (राज्यप्रबन्ध) का काम उन्हीं की सम्मति से होगा। महाराणा की इस आज्ञा का पालन बराबर होता रहा, परन्तु पीछे से चूंडा के मुख्य वंशधर कभी उदयपुर और कभी अपने ठिकाने में रहने लगे, जिससे सहूलियत के लिए उन्होंने भाले का चिह्न बनाने का अधिकार अपनी तरफ़ से 'सहीवालों' को दे दिया, जो अबतक सनदों पर वह चिह्न बनाते चले आते हैं।

महाराणा का देहान्त हो जाने पर मोकल को गद्दी पर बिठाकर चूंडा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इसपर राजमाता ने प्रसन्न होकर राज्य का सारा काम उसके सुपुर्द कर दिया, जिससे रणमल आदि स्वार्थी लोगों को ईर्ष्या हुई और वे उसकी ओर से राजमाता का मन फेर देने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने हंसबाई से कहा कि मोकल को मारकर चूंडा स्वयं महाराणा बनना चाहता है। उसकी इस बात पर विश्वास कर हंसबाई ने तुरन्त चूंडा को बुला भेजा और उससे कहा 'या तो तुम मेवाड़ छोड़ दो या जहां तुम कहो वहां मैं ही अपने पुत्र सहित चली जाऊं'। तब सत्यव्रत चूंडा मांडू के सुलतान के पास चला गया, जिसने उसे एक अच्छी जागीर देकर बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रखा। जब महाराणा मोकल चाचा और मेरा के हाथ से मारा गया और उनका सहायक महपा पँवार मांडू के सुलतान महमूद खिलज़ी के पास चला गया तब उसे सुपुर्द कर देने के लिए महाराणा कुंभा ने सुलतान को पत्र लिखा, जिसका महाराणा को यह उत्तर देकर कि मैं अपने शरणागत को किसी प्रकार आपके हवाले नहीं कर सकता वह लड़ने की तैयारी करने लगा। उसने चूंडा को भी साथ चलने के लिए कहा, परन्तु उसने उसके साथ रहकर स्वामिद्रोही बनना किसी प्रकार स्वीकार न किया। मेवाड़ में दिन दिन रणमल का प्रभाव बढ़ता देखकर महाराणा कुंभा की माता सौभाग्यदेवी

ने इस डर से कि कहीं वह (रणमल) मेरे पुत्र को मारकर उसका राज्य न छीन ले उसकी रक्षा के लिए स्वामिभक्त चूंडा को चित्तोड़ वापस बुला लिया और उसके पुत्रों के निर्वाह के लिए बेगूं आदि के इलाक़े जागीर में दिये। फिर राजमाता और महाराणा की आज्ञा से रणमल के मारे जाने पर उसका पुत्र जोधा अपने भाइयों तथा सैनिकों को साथ लेकर मारवाड़ की ओर भागा, परन्तु चूंडा ने उसका पीछाकर उसके राज्य (मंडोवर) पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) में महाराणा कुंभा का ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह (ऊदा) अपने पिता को मारकर मेवाड़ का स्वामी बन बैठा। तब राजभक्त सरदारों ने चूंडा के पुत्र कांधल की अध्यक्षता में युद्धकर उस पितृघाती को मेवाड़ से निकाल दिया और वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) में उसके भाई रायमल को गद्दी पर बिठाया। सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रख़ां के साथ की महाराणा रायमल की लड़ाइयों में कांधल लड़ा। उसका उत्तराधिकारी रत्नसिंह बाबर के साथ की महाराणा सांगा की लड़ाई में महाराणा के साथ था। जब महाराणा सिर में तीर लगने से बेहोश हुआ और कुछ सरदार उसे मेवाड़ की ओर ले जाने लगे, उस समय इस आशंका से कि उस (महाराणा) को युद्धस्थल में न देखकर राजपूत हतोत्साह हो जायँगे, उन्होंने उसका प्रतिनिधि बनकर उसके हाथी पर बैठने तथा राजचिह्न धारण करने के लिए रावत रत्नसिंह से कहा, जिसपर उसने यही उत्तर दिया कि मेरे पूर्वज मेवाड़ का राज्य छोड़ चुके हैं, इसलिए मैं क्षण भर के लिए भी राज्यचिह्न फिर धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो महाराणा का प्रतिनिधि बनेगा उसकी आज्ञा में रहकर प्राण रहते तक लड़ूंगा। इसपर बड़ी सादड़ीवालों का पूर्वज अज्जा महाराणा का प्रतिनिधि बनाया गया और उसकी अध्यक्षता में रहकर रत्नसिंह ने लड़ते हुए वीर-गति पाई।

उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र दूदा हुआ, जो बहादुरशाह की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय वीरता के साथ लड़कर काम आया। उसका क्रमानुयायी उसका भाई सांईदास हुआ, जिसको महाराणा उदयसिंह (दूसरे) ने उसकी वंश-परंपरागत जागीर का स्वामी बनाया। चित्तोड़ पर जब अकबर की चढ़ाई हुई उस समय वह सूरजपोल दरवाज़े के सामने अपने पुत्र अमरसिंह

सहित लड़ता हुआ मारा गया। साईंदास का उत्तराधिकारी खेंगार हुआ। उस के पीछे उसके दो पुत्रों कृष्णदास (किशनदास) और गोविन्ददास में ठिकाने के लिए झगड़ा हुआ जिसे मिटाने के लिए महाराणा ने यह आज्ञा दी कि एक भाई तो 'भांजगड़' (राज्य-प्रबन्ध) का अधिकार स्वीकार करे और दूसरा ठिकाने का। जागीर से भांजगड़ का महत्व अधिक समझकर किशनदास ने भांजगड़ स्वीकार की और जागीर अपने भाई को दे दी।

उन दिनों सलूंबर पर सिंहा राठोड़ का अधिकार था। वह छापा मारकर मेवाड़ की प्रजा को सताता था, इसलिए किशनदास ने रावत जैतसिंह सारंगदेवोत की सहायता से उसे मारकर उसके ठिकाने पर अधिकार कर लिया। तब से ही सलूंबर उसके वंशजों के अधिकार में है।

महाराणा उदयसिंह ने अपनी राणी भटियाणी पर विशेष प्रेम होने के कारण उसके पुत्र जगमाल को, जो उसका नवां पुत्र था, अपना उत्तराधिकारी नियत किया, परन्तु महाराणा का देहान्त होने पर किशनदास की इच्छा के अनुसार महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र तथा राज्य का वास्तविक हक़दार प्रतापसिंह ही गद्दी पर बिठाया गया। इससे अप्रसन्न होकर जगमाल बादशाह अकबर के पास चला गया। किशनदास हल्दी घाटी की लड़ाई में महाराणा प्रतापसिंह के साथ रह कर लड़ा था। महाराणा को मरते समय अत्यन्त दुखी देखकर किशनदास के उत्तराधिकारी रावत जैतसिंह ने उसके दुःख का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि मुझे दुःख केवल इस बात का है कि मेरा पुत्र अमरसिंह कुछ आरामपसन्द है, इसलिये कष्ट और आपत्तियां सहकर अपने देश की स्वतन्त्रता तथा वंश के गौरव की रक्षा न कर सकेगा। मेरी आत्मा इस शरीर को शान्तिपूर्वक तभी छोड़ सकती है जब इस गुरुतर भार को उठाने की आप लोग स्वयं प्रतिज्ञा करें। इस पर जैतसिंह तथा अन्य सरदारों ने भी बापा रावल की गद्दी की शपथ खाकर जब वैसी ही प्रतिज्ञा की तब शान्तिपूर्वक महाराणा का देहावसान हुआ।

वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में महाराणा अमरसिंह ने जब ऊंटाले के बादशाही थाने पर चढ़ाई करना चाहा उस समय उससे शक्तावतों ने अनुरोध किया कि इस बार आपकी सेना की हरावल में चूंडावतों के बजाय हम

लोग रहेंगे। इसपर महाराणा ने आज्ञा दी कि अब से हरावल में रहकर लड़ने का अधिकार उसी पक्ष का समझा जायगा, जो ऊंटाले के गढ़ में सबसे पहले प्रवेश करेगा। यह आज्ञा सुनते ही चूंडावत और शक्तावत अपनी अपनी सेना सहित ऊंटाले की ओर रवाना हुए। चूंडावतों का सरदार रावत जैतसिंह तथा उसके साथी ऊंटाले पहुँचते ही सीढ़ी लगाकर क़िले की दीवार पर चढ़ गये, परन्तु छाती पर गोली लगने से जैतसिंह के नीचे गिरते ही उसकी आज्ञा के अनुसार उसके साथियों ने उसका सिर काटकर क़िले में फेंक दिया। इसके पीछे दरवाज़ा तोड़कर शक्तावतों ने भी क़िले में प्रवेश किया, परन्तु इसके पहले ही चूंडावतों ने जैतसिंह का कटा हुआ सिर क़िले में फेंक दिया था। इससे चूंडावतों का हरावल में रहने का अधिकार बना रहा। जैतसिंह का पुत्र मानसिंह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। मानसिंह के पीछे क्रमशः पृथ्वीराज और रघुनाथसिंह सलूंबर के स्वामी हुए।

महाराणा राजसिंह के समय डूंगरपुर का रावल गिरधर, बांसवाड़े का रावल समरसिंह और प्रतापगढ़ का रावत हरिसिंह मेवाड़ से स्वतन्त्र बन बैठे। इसपर महाराणा ने प्रधान फ़तहचन्द की अध्यक्षता में रावत रघुनाथसिंह, रावत मानसिंह (सारंगदेवोत), महाराज मोहकमसिंह शक्तावत आदि सरदारों को भेजकर उन्हें अधीन किया। रघुनाथसिंह महाराणा का मुसाहब था। बादशाह औरंगज़ेब की तरफ़ से मुन्शी चन्द्रभान उदयपुर गया उस समय उसने रघुनाथसिंह की योग्यता आदि के विषय में बादशाह को बहुत कुछ लिखा। इससे स्वार्थी लोग ईर्षावश रघुनाथसिंह के विरुद्ध महाराणा के कान भरने लगे, जिसका फल यह हुआ कि उस(महाराणा)ने चूंडा और उसके वंशजों का सारा उपकार भूलकर सलूंबर की जागीर का पट्टा पारसोली के राव केसरीसिंह के नाम लिख दिया, जिससे अप्रसन्न होकर रघुनाथसिंह अपने ठिकाने को चला गया और उसपर केसरीसिंह का अधिकार न होने दिया। उसका पुत्र रत्नसिंह (दूसरा) महाराणा की सेवा में बना रहा और मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई में उक्त महाराणा की सेवा में रहकर लड़ा, हसनअलीखां को परास्त किया, शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में वह कुंवर के साथ रहा, गोगूंदे की घाटी में उसने दिलावरखां को घेरा और रात

को घाटी से निकलते हुए उससे लड़ाई की। इसके सिवा औरंगज़ेब से मेवाड़ की रक्षा करने के लिये शाहज़ादे मुअज़्ज़म को मिलाने के उद्योग में भी वह शामिल रहा।

महाराणा जयसिंह और उसके कुंवर अमरसिंह (दूसरे) के बीच बिगाड़ हो जाने पर रत्नसिंह का उत्तराधिकारी कांधल (दूसरा) महाराणा का तरफ़दार रहा। कुंवर का पक्षपाती होने से पारसोली के सरदार केसरीसिंह को महाराणा ने मरवाना चाहा। तब उसकी आज्ञा के अनुसार कांधल ने थूर के तालाब पर मौक़ा पाकर केसरीसिंह की छाती में अपना कटार घुसेड़ दिया। केसरीसिंह ने भी मरते मरते कांधल पर अपने कटार का वार किया। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये।

रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में कांधल के पुत्र केसरीसिंह ने अपने भाई सामन्तसिंह को ससैन्य भेजा। मालवे के पठानों ने जब मंदसोर ज़िले के कई गांवों को लूट लिया उस समय महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने केसरीसिंह आदि सरदारों को उनपर भेजा, जिन्होंने उन्हें लड़ाई में हराकर भगा दिया। केसरीसिंह की इस सेवा से महाराणा उसपर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सच्ची स्वामि-भक्ति के कारण उस (केसरीसिंह) की प्रतिष्ठा बढ़ाई। केसरीसिंह के उत्तराधिकारी कुबेरसिंह ने महाराणा जगत्सिंह को पत्र लिखकर राजपूताने से मरहटों को निकाल देने के लिये राजपूताने के सब राजाओं को एकता के सूत्र में बांधने की सम्मति दी, परन्तु उसमें सफलता न हुई।

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) का देहान्त होने पर कुबेरसिंह के पुत्र जैतसिंह (दूसरे) ने कुंवर प्रतापसिंह को क़ैद से छुड़ा कर गद्दी पर बिठाया और महाराणा राजसिंह (दूसरे) की नाबालिगी में वह राज्य का मुसाहब रहा। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के मरने पर उसके पुत्र रामसिंह और भतीजे विजयसिंह के बीच गद्दी के लिये झगड़ा हुआ उस समय रामसिंह ने जयआपा सिंधिया को अपनी मदद के लिये बुलाया, जिससे विजयसिंह ने जोधपुर छोड़कर नागोर में शरण ली और आपस में समझौता करा देने के लिये महाराणा को लिखा। तब महाराणा ने रावत जैतसिंह को नागोर भेजा, परन्तु विजयसिंह के

दो राजपूतों-द्वारा जयआपा के मारे जाने पर मरहटों ने राजपूतों पर आक्रमण किया, जिसमें जैतसिंह लड़ता हुआ मारा गया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के अनुचित वर्ताव से बहुतसे सरदार उसके विरोधी हो गये और उसे राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। जैतसिंह के उत्तराधिकारी जोधसिंह पर सरदारों से मिल जाने का झूठा ही सन्देह हो जाने के कारण जब वह नाहरमगरे में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ तब महाराणा ने विष मिला हुआ पान निकालकर उससे कहा कि या तो इसे तुम खा जाओ या मुझे खिला दो। इसपर उस स्वामिभक्त ने तुरन्त पान खा लिया और वहीं उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र पहाड़सिंह महाराणा के इस अनुचित व्यवहार का कुछ भी खयाल न कर अपने वंश की प्राचीन मर्यादा का पालन करने के लिए उसकी सेवा में उपस्थित हो गया और वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६९) में उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया की मरहटी सेना से लड़कर उसने पूर्ण युवावस्था में ही वीरगति पाई।

उसका उत्तराधिकारी भीमसिंह हुआ, जिसकी सलाह से उक्त महाराणा ने अमरचन्द बड़वे को अपना प्रधान बनाया। वह उदयपुर पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई में मरहटों से खूब लड़ा और सिंधिया के साथ सुलह हो जाने पर महाराणा ने उसे पुरस्कार देकर सम्मानित किया। फिर उसपर उदयपुर की रक्षा का भार छोड़कर महाराणा महापुरुषों से लड़ने गया। इसके पीछे मेहता सूरतसिंह क़िलेदार से चित्तोड़ का क़िला खाली कराने के लिए महाराणा ने उसे भेजा। उसने वहां जाकर सूरतसिंह से क़िला छीन लिया तब महाराणा ने क़िला उसी की सुपुर्दगी में रखा। महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) के समय वेतन न मिलने के कारण सिंधी सिपाहियों ने विद्रोह किया उस समय भीमसिंह ने उन्हें क़िले में बुलाया और तनख़्वाह के बदले ज़मीन देकर उन्हें शान्त किया। महाराणा भीमसिंह के समय रावत भीमसिंह का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह तथा आमेट के रावत प्रतापसिंह की सहायता से वह राज्य का सारा कारबार चलाता था। चूंडावतों और शक्तावतों के बीच बिगाड़ और लड़ाइयां होने के पीछे जब महाराणा शक्तावतों के पक्ष में हुआ उस समय उन्होंने चूंडावतों का ज़ोर तोड़ने और भीमसिंह

से चित्तोड़ का क़िला खाली करने के लिए अपने हिमायती झाला ज़ालिमसिंह को और उसी की सलाह से माधवराव सिंधिया को भी मदद के लिए बुलाया। सिंधिया, ज़ालिमसिंह और शक्तावतों की सेना-सहित महाराणा ने चित्तोड़ पहुंचकर क़िले पर मोर्चे लगाये, तब भीमसिंह ने सिंधिया के सेनापति आंबाजी इंगलिया की मारफ़त महाराणा को कहलाया कि यदि आप हमारे शत्रु ज़ालिमसिंह को कोटे वापस भेज दें तो क़िला खाली कर आपकी सेवा में हाज़िर होने में मुझे कोई उज़्र नहीं है। इसे महाराणा के स्वीकार कर लेने और ज़ालिमसिंह के लौट जाने पर वह (भीमसिंह) क़िला खाली कर महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया। वि० सं० १८५० (ई० स० १७६४) में महाराणा के डूंगरपुर घेर लेने पर गद्दीनशीनी के दस्तूर के तीन लाख रुपये तथा सेना का खर्च दिलाकर भीमसिंह ने महाराणा और रावल फ़तहसिंह के बीच मेल कराया। फिर वि० सं० १८५३ (ई० स० १७६६) में वह मुसाहब बनाया गया। लकवा के साथ की गणेशपन्त की लड़ाइयों में वह लकवा की ओर से लड़ा।

भीमसिंह के पीछे भवानीसिंह, रत्नसिंह और पद्मसिंह क्रमशः सलूंबर के स्वामी हुए। महाराणा सरूपसिंह के समय पद्मसिंह का पुत्र केसरीसिंह अपने पिता का सारा अधिकार छीनकर ठिकाने का मालिकसा बन बैठा और महाराणा के राजत्वकाल के आरम्भ में उसका भी प्रीतिपात्र बना। आसींद के रावत दूलहसिंह की सलाह से, जिससे केसरीसिंह की अनबन थी, महाराणा ने पद्मसिंह को सलूंबर का स्वामी माना और उसकी आज्ञा के अनुसार ठिकाने का काम केसरीसिंह के द्वारा किये जाने की आज्ञा दी। इसपर अप्रसन्न होकर केसरीसिंह सलूंबर चला गया। फिर पद्मसिंह का देहान्त होने पर वह सलूंबर का स्वामी हुआ। तब उसने चाहा कि महाराणा वंश-परंपरागत प्रथा के अनुसार सलूंबर आकर मातमपुर्सी का दस्तूर अदा करें, पर इसे स्वीकार न कर महाराणा ने अपने चाचा दलसिंह को सलूंबर भेजना चाहा, जिसे केसरीसिंह ने स्वीकार न किया। इस प्रकार महाराणा और केसरीसिंह के बीच अनबन चलती ही रही। फिर नियमित रूप से नौकरी न करने के अपराध में महाराणा ने उसके कई गांव ज़ब्त कर लिए, परन्तु उस(केसरीसिंह)ने अपने ज़ब्त किये हुए गांवों से राज्य के सैनिकों को निकाल दिया और उनपर फिर

क़ब्ज़ा कर लिया। इसपर महाराणा ने उसका दमन करने के लिए अंग्रेज़ी सरकार से सहायता मांगी, परन्तु उसने साफ़ इन्कार कर दिया। महाराणा के साथ केसरीसिंह का विरोध बराबर जारी रहा और महाराणा के समय सरदारों के साथ का उसका सम्बन्ध स्थिर करने के लिए दो क़ौलनामे हुए, जिनमें से किसी पर भी उस(केसरीसिंह)ने हस्ताक्षर न किये।

वि० सं० १९१९ (ई० स० १८६२) में केसरीसिंह का देहान्त होने पर बंबोरे का रावत जोधसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ और महाराणा शंभुसिंह ने सलूंबर जाकर प्राचीन रीति के अनुसार मातमपुर्सी की रस्म अदा की। वि० सं० १९५७ (ई० स० १९००) में जोधसिंह के मरने पर बंबोरे से रावत ओनाड़सिंह गोद गया, जिसका वि० सं० १९८६ में देहान्त होने पर चावंड का रावत खुंमाणसिंह सलूंबर का स्वामी हुआ।

बीजोल्यां

बीजोल्यां[1] के सरदार परमार (पँवार) राजपूत हैं। पहले उन्हें 'राव' का खिताब मिला था फिर उसके अतिरिक्त 'सवाई' की भी उपाधि मिली। वे मालवे के परमारों के वंशज हैं। कभी उज्जैन और कभी धार उनकी राजधानी रही। दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक के समय मालवे का सारा प्रदेश मुसलमानों के अधिकार में चला गया, जिससे परमारों के कुछ वंशधर तो अजमेर में, कुछ दक्षिण में और कुछ अन्यत्र चले गये।

बीजोल्यां के परमारों का मूल पुरुष अशोक[2] जगनेर से महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के पास गया और महाराणा रत्नसिंह के राजत्वकाल में जब महाराणा सांगा की राणी कर्मवती अपने पुत्र विक्रमादित्य को मेवाड़ का राज्य दिलाने के प्रपञ्च में लगी उस समय वह (अशोक) बादशाह बाबर के पास

---

(१) बीजोल्यां मेवाड़ में एक प्राचीन स्थान है, जिसका वृत्तान्त पहले लिखा जा चुका है।

(२) वंशक्रम–(१) अशोक। (२) सज्जनसिंह। (३) ममरखान। (४) डूंगरसिंह। (५) शुभकरण। (६) केशवदास। (७) इन्द्रभान। (८) बैरीसाल। (९) दुर्जनसाल। (१०) विक्रमादित्य। (११) मान्धाता। (१२) शुभकरण (दूसरा) सवाई। (१३) केशवदास। (१४) गोविन्ददास। (१५) कृष्णसिंह। (१६) पृथ्वीसिंह। (१७) केसरीसिंह।

उस सम्बन्ध में बात चीत करने के लिये भेजा गया। उसका चौथा वंशधर शुभकरण शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा और उसने शाहज़ादे के साथ सुलह कर लेने की कुंवर कर्णसिंह को सलाह दी। वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में वह महाराणा की तरफ़ से बादशाह जहांगीर के पास भेजा गया। उसका तीसरा वंशधर वैरीसाल, जो महाराणा राजसिंह का मामा था, औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में महाराणा के साथ रहकर लड़ा और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ रहा। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर वह महाराणा का तरफ़दार रहा।

उसका चौथा वंशधर शुभकरण (दूसरा) सरदारों के साथ की महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की लड़ाइयों में महाराणा के पक्ष में रहकर बड़ी वीरता से लड़ा, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे 'सवाई' की उपाधि दी। उसके पीछे केशवदास हुआ, जिसने मरहटों से लड़कर अपना ठिकाना, जिसपर उनका अधिकार हो गया था, छीन लिया[1]। उसकी जीवित दशा में ही उसके पुत्र शिवसिंह तथा शिवसिंह के ज्येष्ठ पुत्र गिरधारीदास का भी देहान्त हो गया। तब शिवसिंह के पुत्र नाथसिंह और गोविन्ददास के बीच ठिकाने के अधिकार के लिये झगड़ा हुआ, जो लगातार तीन वर्ष तक जारी रहा। इसी अरसे में नाथसिंह भी चल बसा, जिससे गोविन्ददास बीजोल्यां का स्वामी हुआ। गोविन्ददास का उत्तराधिकारी कृष्णसिंह बड़ा विद्यानुरागी था। पं० विनायक शास्त्री ने जब उदयपुर छोड़ दिया तब उसे कृष्णसिंह ने बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रखा। बीजोल्यां से क़रीब एक मील दूर एक दिगम्बर जैनमन्दिर है, जिसके निकट के दो चट्टानों में से एक पर उक्त मन्दिर से सम्बन्ध रखनेवाला वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ता० ५ फरवरी ई० स० ११७०) का चौहान राजा सोमेश्वर के समय का बड़ा शिलालेख तथा दूसरे पर 'उत्तमशिखरपुराण' नामक जैनग्रंथ उसी संवत् का खुदा हुआ है। इन दोनों अमूल्य लेखों के संरक्षण के सम्बन्ध में मेरे अनुरोध करने पर राव सवाई कृष्णसिंह ने उनपर पक्के मकान बनवा कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय

(१) कर्नल वॉल्टर; बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ्स ऑफ़ मेवार, पृ० १८।

रावत दूदा (सांगावत)

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

दिया। उसके पीछे राव पृथ्वीसिंह कामा से गोद आकर बीजोल्यां का स्वामी हुआ। उसका उत्तराधिकारी राव सवाई केसरीसिंह वहां का वर्तमान सरदार है।

देवगढ़

सत्यव्रत चूंडा के पुत्र कांधल के चार पुत्रों में से दूसरा सिंह हुआ, जिसके दूसरे पुत्र सांगा[1] के वंशज सांगावत कहलाये, जो देवगढ़ के स्वामी हैं और रावत उनका खिताब है।

कोठारिये के रावत खान के बुलाने पर सांगा कुंभलगढ़ गया और वहां महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह को महाराणा मानकर उसने तथा अन्य सरदारों ने नज़राना किया और बणवीर को राज्यच्युत कर उस(उदयसिंह) को चित्तौड़ की गद्दी पर बिठाने में वह सहायक रहा। फिर महाराणा उदयसिंह का देहान्त होने पर वह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बिठाने के पक्ष में रहा और हल्दी घाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में उसके साथ रहकर लड़ा।

उसका उत्तराधिकारी दूदा महाराणा अमरसिंह के समय ऊंटाले की चढ़ाई में जैतसिंह के साथ रहा तथा राणपुर की लड़ाई में मारा गया। उस(सांगा)का कनिष्ठ पुत्र जयमल मेवाड़ पर शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई में काम आया। दूदा के पीछे ईसरदास हुआ, जो मोटाकीट नामक मेर के हाथ से लड़ाई में मारा[2] गया। उसके पीछे गोकुलदास ठिकाने का स्वामी हुआ। वह भी मेरों के साथ की लड़ाई में काम आया, जिससे उसका पुत्र द्वारकादास

---

(१) वंशक्रम-(१) सांगा। (२) दूदा। (३) ईसरदास। (४) गोकुलदास। (५) द्वारकादास। (६) संग्रामसिंह। (७) जसवंतसिंह। (८) राघवदास। (९) गोकुलदास (दूसरा)। (१०) नाहरसिंह। (११) रणजीतसिंह। (१२) कृष्णसिंह। (१३) विजयसिंह।

(२) दोहा—कीट कटारी चालवी खटकी खूमाणाह।
मोटे ईसर मारियो डाकी भर डाणाह ॥ १ ॥

कविराजा बांकीदान; ऐतिहासिक बातों का संग्रह, संख्या ७४४।

देवगढ़ का स्वामी हुआ। महाराणा जयसिंह के जज़िये के रुपये न देने से बादशाह औरंगज़ेब ने उसके पुर, मांडल तथा बदनोर के परगने ज़ब्त कर जुझारसिंह राठोड़ और उसके भतीजे कर्ण को दे दिये। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) को उक्त परगनों पर राठोड़ों का अधिकार बहुत खटकता था। जब राठोड़ों और उधर के चूंडावतों में झगड़ा हो गया, जिसमें कई चूंडावत मारे गये, उस समय महाराणा ने रावत द्वारकादास को राठोड़ों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी, परन्तु उसने उसका पूरा पालन न किया। महाराणा जयसिंह की गद्दीनशीनी होने पर डूंगरपुर के रावल खुंमाणसिंह ने उपस्थित होकर टीके का दस्तूर पेश नहीं किया, जिससे अप्रसन्न होकर महाराणा ने डूंगरपुर पर सेना भेजी। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें डूंगरपुर के कई चौहान सरदार मारे गये। खुंमाणसिंह भाग गया और महाराणा की सेना ने शहर को लूटा। अंत में रावत द्वारकादास ने बीच में पड़कर सुलह कराई। खुंमाणसिंह ने टीके का दस्तूर भेजा और सेना व्यय के रु० १७५००० की ज़मानत द्वारकादास ने दी।

उसका पुत्र संग्रामसिंह (दूसरा) रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह का देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह जयपुर का स्वामी हुआ, परन्तु महाराणा जगतसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७६५ की महाराजा जयसिंह की की हुई शर्त के अनुसार माधवसिंह को, जो महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का भानजा था, जयपुर की गद्दी पर बिठाना चाहा और जयपुर पर चढ़ाई कर उसका अधिकार करा देने के लिए वहां संग्रामसिंह के उत्तराधिकारी रावत जसवंतसिंह तथा अन्य सरदारों की अध्यक्षता में अपनी सेना भेजी। महाराणा जगतसिंह की मृत्यु से कुछ दिनों पहले कुंवर प्रतापसिंह को क़ैद करने का जो आयोजन हुआ उसमें जसवंतसिंह सम्मिलित था। जो सरदार इस आयोजन में शरीक़ थे उन्हें यह भय हुआ कि यदि कहीं प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा तो वह हमें अवश्य दंड देगा, इसलिए उन्होंने उसे ज़हर देकर मारने की चेष्टा की, जो विफल हुई। उक्त सरदारों की इस कुचेष्टा में भी वह शरीक़ था। प्रतापसिंह के गद्दी पर बैठने के पीछे उस(जसवंतसिंह)ने महाराज नाथसिंह से मिलकर उक्त महाराणा को अधिकारच्युत करने का उद्योग किया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसको राज्यच्युत कर झूठे दावेदार रत्नसिंह को महाराणा बनाने के लिए उसने अपने पुत्र राघवदास को माधवराव सिंधिया के पास भेजा, जिसने सवा करोड़ रुपये लेना स्वीकार कर उसे सहायता देने का वचन दिया। उज्जैन की लड़ाई में सिंधिया की सेना के तितर-बितर हो जाने पर उसकी सहायता के लिए जसवंतसिंह ने जयपुर से १५००० नागों (महापुरुषों) की सेना भेजी, जिससे मरहटों की जीत हुई। फिर माधवराव ने उदयपुर पर घेरा डाला और छः महीने पीछे महाराणा के कई लाख रुपये देने और गिरवी के तौर पर कुछ परगने सौंप देने पर उससे सुलह हुई। इसके पीछे जसवंतसिंह ने फ़रासीसी समरू को मेवाड़ की ओर भेजा और अपने पुत्र सरूपसिंह को उसके साथ कर दिया। उक्त महाराणा के समय मेवाड़ को बड़ी हानि पहुंची और कई परगने उस (महाराणा) के अधिकार से निकल गये जिसका मुख्य कारण जसवंतसिंह ही था।

रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने के लिए जब महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) ने उसपर चढ़ाई की उस समय मार्ग में रीछेड़ के पास जसवंतसिंह का उत्तराधिकारी रावत राघवदास महाराणा से लड़ा, परन्तु हारकर कुंभलगढ़ चला गया। फिर महाराणा भीमसिंह के समय वह रत्नसिंह का पक्ष छोड़कर महाराणा का तरफ़दार हो गया, जिसपर महाराणा स्वयं वि० सं० १८३८ चैत वदि १३ (ई० स० १७८२ ता० ११ मार्च) को देवगढ़ गया और उसको अपने साथ उदयपुर ले आया। इस प्रकार उसके महाराणा के पक्ष में हो जाने से रत्नसिंह बहुत ही कमज़ोर हो गया। चूंडावतों का ज़ोर तोड़ने और उन्हें दंड देने का इरादा कर उक्त महाराणा ने राघवदास के उत्तराधिकारी गोकुलदास (दूसरे) को माधवराव सिंधिया को सहायतार्थ बुलाने के लिए उसके पास भेजा। गणेशपन्त के साथ की लकवा की लड़ाइयों में वह (गोकुलदास) लकवा का सहायक था। गोकुलदास के निःसन्तान होने के कारण नाहरसिंह संग्रामगढ़ से गोद आया। नाहरसिंह के पुत्र रणजीतसिंह का महाराणा सरूपसिंह से विरोध रहा, जिससे महाराणा ने उसके कई गांव ज़ब्त कर लिए, परन्तु उसने उनपर बलपूर्वक फिर अधिकार कर लिया। ऐसे ही उसकी तलवारबन्दी के २५०००) रुपये उक्त महाराणा ने ले लिये,

परन्तु महाराणा शंभुसिंह के समय उसकी तहक़ीक़ात होकर वे रुपये वापिस दिये गये और आइन्दा देवगढ़ से तलवारबन्दी न लेने की आज्ञा हुई। मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल जॉर्ज लॉरेन्स ने महाराणा और सरदारों के आपस के झगड़े मिटाने के लिए अंगरेज़ी सरकार की आज्ञा से जो क़ौलनामा तैयार किया उसपर उक्त रावत ने हस्ताक्षर न कर कुछ उज्र पेश किये। तब उससे उक्त कर्नल ने कहा—"क़ौलनामे पर पहले दस्तख़त कर दो फिर तुम्हारे उज्र मिटा दिये जायेंगे।" इसपर उसने हस्ताक्षर कर दिये। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी में वह रीजेन्सी कौंसिल का मेम्बर हुआ। उसके पुत्र रावत कृष्णसिंह ने संग्रामगढ़ से प्रतापसिंह को गोद लिया, जो उसकी विद्यमानता में ही मर गया। प्रतापसिंह का पुत्र विजयसिंह देवगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

बेगूं

सत्यव्रत चूंडा के मुख्य वंशधर (सलूंबरवालों के पूर्वज) खेंगार के १८ पुत्रों में से पहले दो किशनदास और गोविन्ददास थे। खेंगार के पीछे जागीर के लिए उनमें विवाद उपस्थित हुआ तब किशनदास ने राज्य की भांजगड़ (राज्यप्रबन्ध में सलाह देना) स्वीकार की और गोविन्ददास[1] बेगूं आदि की जागीर का स्वामी हुआ।

महाराणा प्रतापसिंह के समय जावद के पास बादशाह अक़बर की सेना से लड़ता हुआ गोविन्ददास मारा गया। गोविन्ददास का उत्तराधिकारी मेघसिंह हुआ। उस (मेघसिंह) का भाई अचलदास महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर की शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई में लड़कर मारा गया और उस (मेघसिंह) ने वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में रात को ऊंटाले में

---

(१) वंशक्रम—(१) गोविन्ददास। (२) सवाई मेघसिंह (कालीमेघ)। (३) राजसिंह। (४) महासिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) उदयसिंह। (७) खुशालसिंह। (८) भोपालसिंह (बेगूं की ख्यात में यह नाम नहीं है)। (९) अल्लू। (१०) अनूपसिंह। (११) हरिसिंह। (१२) देवीसिंह। (१३) मेघसिंह (दूसरा)। (१४) प्रतापसिंह। (१५) महासिंह (दूसरा)। (१६) किशोरसिंह। (१७) माधवसिंह। (१८) मेघसिंह (तीसरा)। (१९) अनूपसिंह।

महाबतखां की फ़ौज पर आक्रमण कर शाही फ़ौज का सामान लूट लिया। फिर वह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाइयों में लड़ा। बादशाह जहांगीर ने महाराणा अमरसिंह का बल तोड़ने के लिए उसके चाचा सगर को चित्तोड़ का राणा बना दिया और बादशाही अधिकार में गया हुआ मेवाड़ का बहुतसा प्रदेश उसे दे दिया। उसने सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाना शुरू किया और जो मिल गये उन्हें जागीरें दीं। शक्तावत नारायणदास को उसने बेगूं और रत्नगढ़ के परगने दिये। बादशाह से सुलह हो जाने पर जब समस्त मेवाड़ राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और सगर को मेवाड़ छोड़ना पड़ा उस समय मेघसिंह महाराणा की तरफ़ से नारायणदास को बेगूं से निकाल देने के लिए भेजा गया। उसने नारायणदास से बेगूं छुड़ा लिया। फिर बेगूं की जागीर बल्लू चौहान को दे दी गई, जिससे मेघसिंह महाराणा से रुष्ट होकर अपने पुत्र सहित बादशाह जहांगीर के पास चला गया, जिसने उसे ४०० ज़ात और २०० सवार का मन्सब देकर उसकी इच्छा के अनुसार मालपुरे का परगना दिया। उसके पुत्र नरसिंह को भी बादशाह की तरफ़ से ८० ज़ात तथा २० सवार का मन्सब और मालपुरे में ज़ागीर दी गई। मालपुरे में रहते समय मेघसिंह ने बघेरे (अजमेर ज़िले में) का प्रसिद्ध बाराहजी का मंदिर, जिसे मुसलमानों ने तोड़ डाला था, नये सिरे से बनवाया। बादशाह के पास रहते समय वह काले रंग की पोशाक पहिनता था, जिससे बादशाह ने उसका नाम कालामेघ (कालीमेघ) रखा। फिर उसे शाही सेना के साथ कांगड़े जाने की आज्ञा हुई, जिसे न मानने से उसकी जागीर ज़ब्त कर ली गई। इसपर वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया तो उसकी जागीर फिर बहाल हो गई और उसके मन्सब में १०० ज़ात तथा ५० सवार की वृद्धि की गई। महाराणा की इच्छानुसार जब मालपुरे जाकर कुंवर कर्णसिंह ने अनुरोध किया तब वह पीछा उदयपुर लौट गया। तब महाराणा ने उसकी इच्छानुसार उसे बेगूं की जागीर दी।

मेघसिंह ने अपनी जीवित दशा में ही अपने सबसे छोटे पुत्र राजसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, जिससे वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) में उस[1] (मेघसिंह) का देहान्त होने पर उसके ज्येष्ठ पुत्र नरसिंहदास और

(१) मेघसिंह के वंशज मेघावत कहलाते हैं।

राजसिंह के बीच ठिकाने के अधिकार के लिए झगड़ा हुआ। महाराणा जगत्सिंह ने राजसिंह को तो बेगूं का स्वामी माना और नरसिंहदास[1] को गोठलाई की जागीर देकर शान्त किया। राजसिंह का पुत्र महासिंह मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर लड़ा। महासिंह के छठे वंशधर अनूपसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उसका चाचा हरिसिंह बेगूं का स्वामी हुआ। बूंदी का राज्य छूट जाने पर वहां का राव राजा बुधसिंह बेगूं जा रहा तो हरिसिंह के उत्तराधिकारी देवीसिंह ने उसे अपने यहां बड़े सम्मान के साथ रखा। बेगूं में १२ वर्ष रहने के पश्चात् वहां से तीन कोस दूर बाघपुरा गांव में बुधसिंह का देहान्त हुआ। रणबाजखां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में देवीसिंह महाराणा की सेना में रह कर लड़ा। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के भानजे माधवसिंह का जयपुर पर अधिकार कराने के लिए कई सरदारों के साथ महाराणा ने जो सेना भेजी उसमें देवीसिंह का पुत्र मेघसिंह (दूसरा) भी शरीक था। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उसने झूठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़दार होकर खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया। इसपर महाराणा ने उसका दमन करने के लिए माधवराव सिंधिया से सहायता मांगी और वह बड़ी सेना के साथ मेवाड़ में आया तथा भीलवाड़े होता हुआ बेगूं की तरफ़ चला। बेगूं का कथाभट्ट फ़तहराम, जो बहुत ही छोटे क़द का था, रावत की तरफ़ से सिंधिया के पास गया। सिंधिया ने उसे छोटे क़द का देख कर हँसी में कहा – 'आओ वामन'। उसने उत्तर दिया—'कहिये राजा बलि'। इस पर सिंधिया ने कहा—'कुछ मांगो'। ब्राह्मण ने यही मांगा कि आप बेगूं से चले जाइये। सिंधिया ने कहा 'यदि वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६६) के स्वीकृत संधिपत्र के अनुसार बेगूं के रावत से जो सेनाव्यय लेना बाकी है वह अदा कर दिया जाय तो मैं चला जाऊं'। फ़तहराम ने तो इसे स्वीकार कर लिया, परन्तु रावत मेघसिंह ने कहा – 'हम ब्राह्मण नहीं हैं जो आशीर्वाद देकर काम चलावें। हम राजपूत हैं, अतएव बारूद, गोलों और तलवारों से क़र्ज़ अदा करेंगे'। यह सुन कर सिंधिया ने बेगूं को घेर

(१) बठाये (ग्वालियर में) के जागीरदार नरसिंहदास के वंशज हैं।

लिया और बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही, परन्तु वह उसे जीत न सका। फिर उस(मेघसिंह)के पुत्र प्रतापसिंह के रावत अर्जुनसिंह तथा मरहटों से मिल जाने पर उसने ४८१२१७ रु० और बहुत से गांव देकर सिंधिया से सुलह कर ली। महाराणा भीमसिंह के समय उसने तथा उसके पुत्रों ने सींगोली, भीचोर आदि स्थानों से मरहटों को निकाल दिया, परंतु कुछ समय पीछे उन्होंने बेगूं के कई गांव फिर दबा लिये।

महाराणा भीमसिंह और सरदारों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थिर करने के लिए वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८ में कर्नल टॉड के द्वारा अंगरेज़ी सरकार ने जो क़ौलनामा तैयार कराया उसपर मेघसिंह के पौत्र रावत महासिंह (दूसरे) ने सब सरदारों से पहले हस्ताक्षर किये। महाराणा सरूपसिंह के समय उसके और सरदारों के आपस के झगड़े मिटाने के लिए वि० सं० १६११ (ई० स० १८५४) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल जार्ज लॉरेन्स ने अंगरेज़ी सरकार की आज्ञा से जो क़ौलनामा तैयार किया उसपर भी उसने हस्ताक्षर कर दिये।

बेगूं के कई गांवों पर सिंधिया का अधिकार हो गया था, जिसके लिए तक़रार चलती थी। उसकी तहकीक़ात करने के लिए स्वयं कर्नल टॉड ई० स० १८२२ फरवरी (वि० सं० १८७८) में बेगूं गया। रावत महासिंह ने उसका आतिथ्य कर राजबाग़ में उसे ठहराया। शामके वक्त कर्नल टॉड रावत से मुलाक़ात करने के लिए हाथी पर सवार होकर क़िले को चला। कालीमेघ का बनवाया हुआ बेगूं का दरवाज़ा इतना ऊंचा न था कि हौदे सहित हाथी अन्दर जा सके। महावत ने दरवाज़े में हाथी ले जाना ठीक न समझकर उसे रोकना चाहा, परन्तु टॉड ने पहले एक हाथी को अन्दर जाता हुआ देख लिया था, इसलिए उसे अन्दर ले जाने की आज्ञा दी। खाई और दरवाज़े के बीच पुल पर जाते ही हाथी भड़क गया। महावत ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह दरवाज़े की तरफ़ ही दौड़ा। कर्नल टॉड ने भी अपने बचाव का भर-सक प्रयत्न किया, परन्तु हौदे के टूटते ही वह पुल पर गिर पड़ा और बेहोशी की हालत में उठाकर तंबू में लाया गया। मध्य रात्रि तक रावत महासिंह आदि वहीं बैठे रहे और जब टॉड को होश आया और उसने उनको सीख दी तब वे गढ़ में गये। दूसरे दिन रावत ने उस दरवाज़े को बिलकुल तुड़वा दिया।

दो दिन बाद स्वस्थ होने पर जब टॉड क़िले में गया तो रावत मेघसिंह के बनवाये हुए दरवाज़े को नष्ट हुआ देखा, जिससे उसको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उसको किसी प्रसिद्ध पुरुष के स्मारक का नष्ट होना अभीष्ट न था। तहकीक़ात के बाद टॉड ने ३२ गांव रावत को दिलाये और २४००० रु० सिंधिया को दिलाकर मामला तय करा दिया। इससे बेगूं की बिगड़ी हुई हालत फिर सुधरने लगी।

वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में महाराणा की स्वीकृति से महासिंह ने ठिकाने का अधिकार छोड़ दिया और उसके पुत्र किशोरसिंह की तलवारबन्दी हुई। महाराणा जवानसिंह के समय किशोरसिंह ने होलकर के सींगोली और नदवई परगने लूट लिये। इसपर अंगरेज़ी सरकार ने होलकर के हरजाने के २४००० रु० महाराणा से वसूल किये । महाराणा सरदारसिंह ने जादू कराने का अपराध लगाकर गोगूंदे के सरदार लालसिंह झाला को मारने के लिए उसपर शाहपुरे के राजाधिराज माधवसिंह को सेना सहित चढ़ाई करने की आज्ञा दी, उस समय किशोरसिंह ने माधवसिंह को कहलाया कि पहले मुझ से लड़कर फिर लालसिंह पर चढ़ाई करना। फिर सलूंबर के रावत पद्मसिंह, कोठारिये के रावत जोधसिंह और आमेट के रावत सालमसिंह ने लालसिंह पर सेना न भेजने की महाराणा को सलाह दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। वि० सं० १८६६ (ई० स० १८३६) में अपने नौकर के हाथ से किशोरसिंह के मारे जाने पर महासिंह, जो कभी राजगढ़, कभी कांकड़ोली और कभी वृन्दावन में रहता था, अपने ६ वर्ष के बालक पुत्र माधवसिंह सहित कांकड़ोली से बेगूं आया और अपने पुत्र के नाम से ठिकाने का काम संभालने लगा। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५८) में उसने ठिकाना माधवसिंह के सुपुर्द कर दियां। सिपाही-विद्रोह के समय माधवसिंह ने अंगरेज़ी सरकार को अच्छी सहायता दी, जिसके उपलक्ष्य में उसने उसे खिलअ़त दी। वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में माधवसिंह का देहान्त हुआ। उस समय उसका बालक पुत्र मेघसिंह केवल ५ वर्ष का था, जिससे महासिंह ने ठिकाने का काम फिर अपने हाथ में लिया। वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में महासिंह के मरने पर उसका पोता मेघसिंह (तीसरा) बेगूं का अधिकारी हुआ। मेघसिंह का पुत्र अनूपसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

देलवाड़ा

देलवाड़े के सरदार झाला राजपूत और सादड़ीवालों के पूर्वज अज्जा के छोटे भाई सज्जा[1] के वंशज हैं तथा 'राज-राणा' उनका खिताब है।

महाराणा रायमल के समय सज्जा अपने बड़े भाई अज्जा के साथ हलवद (काठियावाड़ में) से मेवाड़ में आया और महाराणा ने उसे देलवाड़े की जागीर देकर अपना सामन्त बनाया। महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तौड़ की दूसरी चढ़ाई में वह हनुमान पोल पर लड़ता हुआ मारा गया। महाराणा उदयसिंह के राजत्व-काल में सज्जा का उत्तराधिकारी जैतसिंह किसी कारण जोधपुर के राव मालदेव के पास चला गया, जिसने उसे खैरवे की जागीर दी। इसपर उस (जैतसिंह) ने मालदेव से अपनी पुत्री स्वरूपदेवी का विवाह कर दिया। जैतसिंह की इच्छा के विरुद्ध उसकी छोटी पुत्री से भी मालदेव ने शादी करना चाहा, जिससे वह मेवाड़ को लौट गया, जहां उसने अपनी पुत्री का विवाह उक्त महाराणा के साथ कर दिया। बादशाह अकबर की चित्तौड़ की चढ़ाई में जैतसिंह काम आया। उसका पुत्र मानसिंह हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में महाराणा प्रतापसिंह के साथ रहकर लड़ा और मारा गया।

मानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र शत्रुशाल, जो महाराणा प्रतापसिंह का भानजा था, महाराणा से बातचीत में खटपट हो जाने के कारण जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के पास चला गया तो महाराणा ने उसकी जागीर बदनोर के राठोड़ कुंवर मनमनदास को दे दी। महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर शाहज़ादे खुर्रम की चढ़ाई हुई उस समय उधर शत्रुशाल जोधपुर छोड़कर मेवाड़ की ओर लौट रहा था और इधर महाराणा ने उसके भाई कल्याणसिंह को उसे वापस बुलाने के लिये भेजा। दोनों भाई मार्ग में मिले और उन्होंने मेवाड़ की सीमा पर

---

(१) वंशक्रम—(१) सज्जा। (२) जैतसिंह। (३) मानसिंह। (४) कल्याणसिंह। (५) राघोदेव। (६) जैतसिंह (दूसरा)। (७) सज्जा (दूसरा)। (८) मानसिंह (दूसरा)। (९) कल्याणसिंह (दूसरा)। (१०) राघोदेव (दूसरा)। (११) सज्जा (तीसरा)। (१२) कल्याणसिंह (तीसरा)। (१३) बैरीसाल। (१४) फ़तहसिंह। (१५) ज़ालिमसिंह। (१६) मानसिंह (तीसरा)। (१७) जसवन्तसिंह।

आवड़ सावड़ के पहाड़ों के बीच अब्दुल्लाखां की फ़ौज पर आक्रमण किया, जिसमें शत्रुशाल घायल होकर पहाड़ों में चला गया और कल्याणसिंह अपने घोड़े के मारे जाने तथा घायल होने पर शत्रु-सेना से घिर गया, जिसने उसे पकड़ कर शाहज़ादे खुर्रम के पास भेज दिया। फिर शत्रुशाल ने अच्छा हो जाने पर गोगूंदे के शाही थाने पर आक्रमण करने में वीर-गति पाई। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उक्त महाराणा ने उसके छोटे पुत्र कान्हसिंह को गोगूंदे की जागीर दी। शत्रुशाल के भाई कल्याणसिंह ने शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी दिखाई, जिससे महाराणा ने उसे कोई जागीर दना चाहा, तब उसने अपने पूर्वजों की देलवाड़े की जागीर, जिसे महाराणा प्रतापसिंह ने मेवाड़ से शत्रुशाल के चले जाने पर कुंवर मनमनदास राठौड़ को उसके जीवन-पर्यन्त के लिये दी थी, वापस दिये जाने की प्रार्थना की, जो स्वीकृत न हुई। इसके कुछ समय पीछे मनमनदास मारा गया तब कल्याणसिंह को देलवाड़े का ठिकाना वापस मिला। देवलिया (प्रतापगढ़), डूंगरपुर आदि इलाक़ों पर चढ़ाई करने से बादशाह शाहजहां के अप्रसन्न होने की खबर पाकर महाराणा जगत्सिंह ने कल्याणसिंह को उसके पास भेजा। वहां पहुंच कर उसने महाराणा की तरफ़ से बादशाह की सेवामें अर्ज़ी पेश की, जिससे उसकी अप्रसन्नता दूर हो गई। क़रीब डेढ़ महीने पीछे बादशाह ने उसे घोड़ा और खिलअत देकर विदा किया।

उसका पोता जैतसिंह (दूसरा) बादशाह औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर लड़ा और शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ था। महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच अनबन हो जाने पर जैतसिंह का पुत्र सज्जा (दूसरा) कुंवर का तरफ़दार रहा और महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने रणबाज़खां का सामना करने के लिए जो सेना भेजी उसमें वह भी शरीक था। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय सज्जा का प्रपौत्र राघोदेव (दूसरा) विद्रोही सरदारों से मिलकर झूठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़दार हो गया, परन्तु महाराणा ने उसे समझा बुझा कर अपनी ओर मिला लिया और कुछ दिनों पीछे मरवा डाला। महाराणा भीमसिंह के समय राघोदेव का पोता

कल्याणसिंह (तीसरा) हड़क्याखाल के पास की लड़ाई में मरहटों से लड़ा और सख्त ज़ख्मी हुआ। फिर जसवंतराव होलकर से नाथद्वारे की रक्षा करने के लिए उदयपुर से जो सेना भेजी गई उसमें वह भी सम्मिलित हुआ। महाराणा सरूपसिंह के समय कल्याणसिंह के पुत्र बैरीसाल के निःसन्तान मरने पर सादड़ी के कीर्तिसिंह का दूसरा पुत्र फ़तहसिंह गोद गया। वह पहले इजलास ख़ास का मेंबर रहा फिर महद्राजसभा का सदस्य बनाया गया। फ़तहसिंह के पूर्व के यहां के सरदारों का ख़िताब 'राज' था, परन्तु महाराणा फ़तहसिंह ने उसको 'राजराणा' का और सरकार अंगरेज़ी ने 'राव बहादुर' का ख़िताब दिया। उसके ज़ालिमसिंह और विजयसिंह दो पुत्र हुए, जिनमें से पहला तो उसका उत्तराधिकारी हुआ और दूसरा कोनाड़ी (कोटा राज्य में) गोद गया। ज़ालिमसिंह के पीछे उसका पुत्र मानसिंह (तीसरा) देलवाड़े का स्वामी हुआ। उसके निःसन्तान मरने पर सादड़ी के राजराणा रायसिंह (तीसरे) के सबसे छोटे भाई जवानसिंह का पुत्र जसवंतसिंह गोद लिया गया, जो देलवाड़े का वर्तमान सरदार है।

आमेट

आमेट के सरदार सल्यव्रत चूंडा के पौत्र सिंहा के पुत्र जग्गा[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

कोठारिये के सरदार खान के बुलाने पर रावत सिंहा[2] का उत्तराधिकारी जग्गा केलवे से कुंभलगढ़ गया और उसने उक्त सरदार तथा साईदास, रावत सांगा आदि अन्य सरदारों की सहायता से वणवीर को मेवाड़ से निकालकर महाराणा विक्रमादित्य के भाई उदयसिंह (दूसरे) को गद्दी पर बिठाया। चित्तोड़ पर बादशाह अकबर की चढ़ाई हुई उस समय अपने सरदारों की

---

(१) जग्गा के वंशज होने से आमेट के सरदार जग्गावत कहलाते हैं।

(२) वंशक्रम—(१) सिंहा। (२) जग्गा। (३) पत्ता। (४) करणसिंह। (५) मानसिंह। (६) माधोसिंह। (७) गोवर्द्धनसिंह। (८) दूलेसिंह। (९) पृथ्वीसिंह। (१०) फ़तहसिंह। (११) प्रतापसिंह। (१२) सालमसिंह। (१३) पृथ्वीसिंह (दूसरा)। (१४) चत्रसिंह। (१५) शिवनाथसिंह। (१६) गोविन्दसिंह।

सलाह के अनुसार महाराणा उदयसिंह (दूसरा) जग्गा के पुत्र पत्ता और जयमल राठोड़ को सेनाध्यक्ष नियत कर मेवाड़ के पहाड़ों की ओर चला गया। उक्त चढ़ाई के समय खाने पीने का सामान खतम हो जाने पर जयमल राठोड़ की सलाह से पत्ता ने क़िले की अपनी हवेली में जौहर कराया। फिर वह राम पोल पर शाही सेना के साथ बड़ी बहादुरी से लड़ा और एक हाथी ने अपनी सूंड में पकड़कर उसे पटक दिया जिससे उसकी मृत्यु हुई। उसकी वीरता से बादशाह बहुत खुश हुआ और उसने हाथी पर बैठी हुई उसकी पत्थर की मूर्ति बनवाकर आगरे में क़िले के द्वार पर खड़ी कराई।

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय राठोड़ जुझारसिंह का, जिसे बादशाह की तरफ़ से पुर, मांडल आदि परगने मिले थे, भतीजा राजसिंह चूंडावतों से छेड़छाड़ करता था। उसने कई चूंडावतों को मारकर पुर के पास पहाड़ की गुफ़ा (अधरशिला) में डाल दिया और पत्ता के पांचवें वंशधर दूलेसिंह के चार भाइयों को पकड़ लिया। रणबाज़ख़ां से लड़ने के लिए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने जो सेना भेजी उसमें दूलेसिंह का उत्तराधिकारी पृथ्वीसिंह भी सम्मिलित था। उसके पुत्र मानसिंह का उसकी जीवित दशा में ही देहान्त हो जाने से उसका पोता फ़तहसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में फ़तहसिंह महाराणा की सेना में रहकर उज्जैन की लड़ाई में माधवराव सिंधिया की सेना से लड़ा और उसका पुत्र प्रतापसिंह उक्त महाराणा की महापुरुषों के साथ की लड़ाई के समय महाराणा के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल के आरंभ में राज्यकार्य चलाने में वह सलूंबर के सरदार रावत भीमसिंह तथा कुरावड़ के सरदार रावत अर्जुनसिंह का सहायक था। मेवाड़ से मरहटों को निकालने के लिए चूंडावतों की सहायता आवश्यक समझकर महाराणा की आज्ञानुसार प्रधान सोमचन्द गांधी ने रावत भीमसिंह को सलूंबर से बुलवाया उस समय प्रतापसिंह भी उसके साथ उदयपुर गया। इसी अरसे में वहां भींडर का महाराज मोहकमसिंह भी ससैन्य जा पहुंचा, जिससे प्रतापसिंह आदि चूंडावत सरदार, यह संदेह कर कि यह सब प्रपंच हम लोगों को नष्ट करने के लिए रचा गया है, तुरन्त वापस चले गये, परन्तु राजमाता उन्हें उदयपुर लौटा लाई।

चित्तोड़ से ज़ालिमसिंह झाला के चले जाने पर प्रतापसिंह भीमसिंह के साथ महाराणा के पास हाज़िर हो गया। गणेशपन्त के साथ की लकवा की लड़ाइयों में वह लकवा का तरफ़दार होकर लड़ा।

वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५७) में उसके पोते पृथ्वीसिंह (दूसरे) के निस्सन्तान मर जाने पर उसके संबन्धियों ने उसके सबसे नज़दीकी रिश्तेदार जीलोले[1] के सरदार दुर्जनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाना चाहा, परन्तु बेमाली के सरदार ज़ालिमसिंह ने, जो पृथ्वीसिंह का दूर का सम्बन्धी था, अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को ठिकाने का अधिकार दिलाने का प्रपंच रचा। कोठारिया, देवगढ़, कानोड, बनेड़या, भैंसरोड, कोशीथल आदि ठिकानों के सरदारों ने तो वास्तविक हक़दार चत्रसिंह का और सलूंबर, भींडर, गोगूंदा, कुरावड़, बागोर, बनेड़ा, लसाणी, मान्यावास आदि ठिकानों के स्वामियों ने अमरसिंह का, जो वास्तविक हक़दार नहीं था, पक्ष लिया। महाराणा ने दोनों पक्ष के सरदारों को प्रसन्न रखने के लिए इधर चत्रसिंह को आमेट पर अधिकार कर लेने की गुप्त रीति से सलाह दी और उधर अमरसिंह के प्रतिनिधि ओंकार व्यास से तलवारबन्दी के ४४००० रु० तथा प्रधान की दस्तूरी के ४००० रुपयों का रुक्का लिखवा लिया। महाराणा की सलाह के अनुसार चत्रसिंह ने आमेट पर चढ़ाई की और वहां लड़ाई हुई, जिसमें ज़ालिमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह मारा गया तथा लसाणी का जागीरदार ठाकुर सुलतानसिंह घायल होकर कुछ दिनों पीछे मर गया। फिर अमरसिंह को निकालकर चत्रसिंह आमेट का स्वामी हुआ। महाराणा शंभुसिंह ने ज़ालिमसिंह के, जिसपर उसकी विशेष कृपा थी, कहने में आकर अमरसिंह को आमेट की तलवार बंधा दी, परन्तु चत्रसिंह ने आमेट न छोड़ा, जिससे महाराणा ने आमेट का स्वामी तो चत्रसिंह को ही रखा और अमरसिंह को खालसे में से २०००० रुपये वार्षिक आय की मेजा की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का अलग सरदार बनाया। चत्रसिंह का पोता गोविन्दसिंह आमेट का वर्तमान स्वामी है।

(१) मानसिंह के तीसरे पुत्र नाथूसिंह को महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय जीलोले की जागीर मिली थी।

मेजा

मेजा के सरदार आमेट के रावत माधवसिंह के चौथे पुत्र हरिसिंह के छठे वंशधर बेमालीवाले ज़ालिमसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

ज़ालिमसिंह के द्वितीय पुत्र अमरसिंह को मेजा की जागीर किस तरह मिली यह ऊपर आमेट के विवरण में लिखा जा चुका है। महाराणा शंभुसिंह ने अपने कृपापात्र ज़ालिमसिंह के विशेष अनुरोध करने पर अमरसिंह को खालसे से मेजा की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का नया सरदार बनाया और आमेट के रावत चत्रसिंह को आज्ञा दी कि ठिकाने आमेट में से भी ८००० रु० वार्षिक आय की जागीर उसे दी जाय, परन्तु चत्रसिंह ने जागीर के बजाय प्रतिवर्ष ८००० रु० नक़द उसे देना चाहा, जिससे यह मामला बहुत दिनों तक चलता रहा। अन्त में पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी की सलाह से महाराणा सज्जनसिंह ने चत्रसिंह के उत्तराधिकारी शिवनाथसिंह से अमरसिंह को २५०० रु० वार्षिक आय की जागीर और ५५०० रु० रोकड़ सालाना दिलाकर इसका फ़ैसला कर दिया। अमरसिंह का उत्तराधिकारी राजसिंह हुआ, जिसका पुत्र जयसिंह मेजा का वर्तमान स्वामी है।

गोगूंदा

गोगूंदे के सरदार झाला राजपूत हैं और 'राज' उनका ख़िताब है। देलवाड़े के सरदार मानसिंह का पुत्र शत्रुशाल[2] अपने मामा महाराणा प्रतापसिंह से बिगाड़ हो जाने के कारण जोधपुर चला गया तब महाराणा ने उसकी जागीर बदनोर के कुंवर मनमनदास राठोड़ को दे दी। फिर महाराणा अमरसिंह के समय मेवाड़ पर शाहज़ादे खुर्रम की चढ़ाई हुई उस समय उस (शत्रुशाल)

---

(१) वंशक्रम—(१) अमरसिंह। (२) राजसिंह। (३) जयसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) शत्रुशाल। (२) कान्हसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) रामसिंह। (५) अजयसिंह। (६) कान्हसिंह (दूसरा)। (७) जसवंतसिंह (दूसरा)। (८) शत्रुशाल (दूसरा)। (९) लालसिंह। (१०) मानसिंह। (११) अजयसिंह (दूसरा)। (१२) पृथ्वीसिंह। (१३) दलपतसिंह। (१४) मनोहरसिंह। (१५) भैरूसिंह।

ने मेवाड़ में लौटकर अब्दुल्लाखां की सेना पर हमला किया और घायल होकर पहाड़ों में चला गया। इसके पीछे उसने गोगूंदे के शाही थाने पर आक्रमण किया और रावल्यां गांव में लड़ता हुआ वह मारा गया। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसके छोटे पुत्र कान्हसिंह को गोगूंदे की जागीर दी। कान्हसिंह का उत्तराधिकारी जसवंतसिंह महाराणा राजसिंह के समय शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण में कुंवर के साथ रहा।

जसवन्तसिंह का चौथा वंशधर जसवन्तसिंह (दूसरा) हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) से सरदारों का विरोध हो जाने पर बेदले के राव रामचन्द्र ने महाराणा को अधिकारच्युत करने के लिये उस (जसवंतसिंह) को उभारा। कुछ दिनों पीछे राजमाता झाली के गर्भ से रत्नसिंह उत्पन्न हुआ। उस समय राजसिंह तथा प्रतापसिंह की राणियों की सलाह से जसवंतसिंह उसे अपने यहां ले गया और गुप्त स्थान में रखकर उसका पालन पोषण करने लगा। फिर उसने रत्नसिंह को कुंभलगढ़ में ले जाकर महाराणा के नाम से प्रसिद्ध किया और क़रीब ७ वर्ष की अवस्था में उसके मर जाने पर जब महाराणा के विरोधी सरदारों ने उसी उम्र के दूसरे बालक को रत्नसिंह बताकर उसका पक्ष लिया उस समय जसवंतसिंह भी उसका सहायक रहा।

महाराणा सरदारसिंह के समय उसके उत्तराधिकारी शत्रुशाल (दूसरे) ने, जिससे उसके पुत्र लालसिंह ने ठिकाने का अधिकार छीन लिया था, लालसिंह का हक़ ख़ारिज कराकर अपने पोते मानसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की. जो सफल न हुई। शार्दूलसिंह का तरफ़दार होने के कारण महाराणा लालसिंह से द्वेष रखता था, और उसपर जादू का अपराध लगाकर उसे मारने के लिए शाहपुरे के राजाधिराज माधवसिंह को गोगूंदे की हवेली पर जाने की आज्ञा दी। इससे बेगूं, सलूंबर, कोठारिया, आमेट आदि ठिकानों के सरदार बिगड़ उठे और उन्होंने महाराणा से लालसिंह का अपराध प्रमाणित हुए बिना उसपर सेना न भेजने की सलाह दी, जिसे उसने स्वीकार कर लिया। महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी में रीजेन्सी कौंसिल की स्थापना हुई तब सरदारों में से उसके जो सदस्य बनाये गये उनमें लालसिंह भी था। उसका छठा वंशज भेरूसिंह गोगूंदे का वर्तमान स्वामी है।

कानोड़

कानोड़ के सरदार सत्यव्रत चूंडा के भाई अज्जा[1] के वंशज हैं और रावत उनकी उपाधि है। महाराणा मोकल के समय उसकी माता हंसबाई की आज्ञा के अनुसार चूंडा मेवाड़ छोड़कर मांडू गया, उस समय अज्जा भी उसके साथ हो लिया। मांडू के सुलतान ने दोनों भाइयों को अलग अलग जागीर देकर बड़े सम्मान के साथ अपने यहां रखा। मालवे का सुलतान महमूद खिलजी महपा पँवार को महाराणा कुंभा के सुपुर्द न कर उससे लड़ने की तैयारी करने लगा तब उसने अज्जा से भी साथ चलने के लिए कहा, परन्तु इसे उसने स्वामिद्रोह समझकर स्वीकार न किया। जब चित्तोड़ की रक्षार्थ रावत चूंडा के साथ बुलाया गया तब वह चित्तोड़ लौट गया।

अज्जा का पुत्र सारंगदेव मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रखां के साथ की महाराणा रायमल की लड़ाई में महाराणा की सेना में रहकर लड़ा। महाराणा के तीनों कुंवरों—पृथ्वीराज, जयमल तथा संग्रामसिंह—की जन्मपत्रियां देखकर एक ज्योतिषी ने कहा कि मेवाड़ का भावी स्वामी तो संग्रामसिंह होगा। यह कथन पृथ्वीराज को इतना बुरा लगा कि उसने संग्रामसिंह को तलवार की हूल मार दी, जिससे उसकी एक आंख फूट गई। इसी अरसे में सारंगदेव जा पहुंचा। उसने पृथ्वीराज को बहुत फटकारा और संग्रामसिंह को अपने स्थान पर लाकर उसकी आंख का इलाज कराया। फिर एक दिन तीनों भाई सारंगदेव सहित भीमल गांव के देवी के मंदिर की पुजारिन के पास गये और उससे उक्त ज्योतिषी के कथन के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उसने भी कहा कि संग्रामसिंह ही राज्य का मालिक होगा। इस पर पृथ्वीराज ने संग्रामसिंह पर तलवार का वार किया, जिसे सारंगदेव ने अपने सिर पर ले लिया। इस प्रकार सख़्त घायल होने पर भी उसने संग्रामसिंह को घोड़े पर सवार कराकर वहां से सेवंत्री की तरफ़ रवाना कर दिया। इसके पीछे

---

(१) वंशक्रम—(१) अज्जा। (२) सारंगदेव। (३) जोगा। (४) नरबद। (५) नेतसिंह। (६) भाणसिंह। (७) जगन्नाथ। (८) मानसिंह। (९) महासिंह। (१०) सारंगदेव (दूसरा)। (११) पृथ्वीसिंह। (१२) जगत्सिंह। (१३) ज़ालिमसिंह। (१४) अजीतसिंह। (१५) उम्मेदसिंह। (१६) नाहरसिंह। (१७) केसरीसिंह।

महाराणा रायमल ने सारंगदेव पर प्रसन्न होकर उसे कई लाख रुपयों की भैंसरोड़गढ़ की जागीर दी। महाराणा की यह बात कुंवर पृथ्वीराज को पसन्द न आई और उसने सारंगदेव पर, जो कुंवर सांगा का पक्षपाती था, चढ़ाई की तब उस(सारंगदेव)ने उससे लड़ना उचित न समझा और भैंसरोड़गढ़ छोड़कर वह महाराणा के विरोधी रावत सूरजमल (प्रतापगढ़वालों के पूर्वज) से जा मिला।

फिर दोनों ने मांडू के सुलतान नासिरुद्दीन की सेना को साथ लेकर चित्तोड़ पर आक्रमण किया। गंभीरी नदी के तट पर स्वयं महाराणा तथा उसकी सेना से उनकी लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा, पृथ्वीराज, सूरजमल तथा सारंगदेव घायल हुए और सारंगदेव का ज्येष्ठ पुत्र लिम्बा मारा गया। सारंगदेव को उसके साथी राजपूत बाठरड़े ले गये जहां एक दिन उससे मिलने के लिये सूरजमल गया। उसी दिन रात को पृथ्वीराज भी ससैन्य वहां जा पहुंचा और कुछ देर तक सूरजमल तथा सारंगदेव से उसकी लड़ाई हुई। दूसरे दिन सवेरे पृथ्वीराज देवी के मंदिर में दर्शन करने का बहाना कर सारंगदेव को साथ ले गया और दर्शन करते समय उसकी छाती में कटार घुसेड़ दिया, जिससे वह वहीं तत्काल मर गया। सारंगदेव के इस प्रकार मारे जाने पर महाराणा रायमल ने उसके पुत्र जोगा को बाठरड़े की जागीर देकर संतुष्ट किया। महाराणा राय-मल के पीछे जब संग्रामसिंह (सांगा) मेवाड़ का स्वामी हुआ उस समय सारंगदेव की उत्तम सेवा का स्मरण कर उसके पुत्र जोगा को मेवल प्रदेश में भी जागीर दी और सारंगदेव के नाम को चिरस्थायी रखने के लिये यह आज्ञा दी कि अब से अज्जा के वंशज सारंगदेवोत कहलायंगे। तब से वे सारंगदेवोत कहलाने लगे।

बाबर के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में जोगा महाराणा की सेना में रहकर लड़ता हुआ मारा गया। महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई हुई उस समय जोगा के उत्तराधिकारी रावत नरबद (सारंगदेवोत), देवलिये के रावत बाघसिंह, दूदा तथा साईंदास (रत्नसिंहोत, चूंडावत), अर्जुन हाडा, रावत सत्ता आदि सर-दारों ने सलाह कर महाराणा को तो उसके भाई उदयसिंह सहित उसके ननि-

हाल बूंदी भेज दिया और रावत बाघसिंह को उसका प्रतिनिधि बनाया। नरबद महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर पाडल पोल पर लड़ता हुआ मारा गया। चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय उसकी रक्षा का भार अपने सरदारों पर छोड़कर उनकी सलाह के अनुसार महाराणा उदयसिंह (दूसरा) मेवाड़ के पहाड़ों की ओर जाने लगा तब नरबद के पुत्र रावत नेतसिंह को वह अपने साथ लेगया। नेतसिंह ने पहाड़ों में जाते समय अपने चाचा जगमाल को अपने बहुतसे राजपूतों सहित चित्तोड़ में ही रखा, जो वहीं काम आया। जब रावत किसनदास चूंडावत ने सलूंबर के स्वामी सिंहा राठोड़ पर आक्रमण किया उस समय रावत नेतसिंह किसनदास का सहायक रहा। इन दोनों ने सिंहा को मार डाला तब से सलूंबर पर किसनदास का अधिकार हो गया। कुंवर मानसिंह के साथ की महाराणा प्रतापसिंह की हल्दी घाटी की लड़ाई में नेतसिंह मारा गया।

महाराणा की आज्ञा के अनुसार उसके पुत्र भाणसिंह ने बांसवाड़े और डूंगरपुर पर, जिनके स्वामियों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, आक्रमण किया। सोम नदी के तट पर लड़ाई हुई, जिसमें भाणसिंह सख़्त ज़ख़्मी हुआ और उसका चाचा रणसिंह काम आया, परन्तु उक्त इलाक़ों के चौहान राजपूत हार गये और उनपर महाराणा का अधिकार हो गया। मेवाड़ पर शाह-ज़ादे खुर्रम की चढ़ाई के समय रावत भाणसिंह महाराणा अमरसिंह के साथ रह-कर लड़ा। महाराणा राजसिंह ने भाणसिंह के पोते मानसिंह, रावत रघुनाथसिंह, महाराज मोहकमसिंह आदि सरदारों को भेजकर डूंगरपुर आदि इलाक़ों के स्वामियों को, जो मेवाड़ से स्वतन्त्र बन बैठे थे, अपने अधीन किया। वि० सं० १७१६ (ई० स० १६६२) में मानसिंह आदि सरदारों ने मेवल के सरकश मीनों का दमन किया। उनकी इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उन्हें सिरोपाव आदि देकर उक्त प्रदेश को उन्हीं के अधीन कर दिया। मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई उस समय रावत मानसिंह देवारी के पास की लड़ाई में घायल हुआ और उसका काका ऊका मारा गया। कुंवर जयसिंह ने चित्तोड़ के पास शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण कर उसकी सेना का संहार किया उस समय वह (मानसिंह) कुंवर के साथ था। मानसिंह, सलूंबर के रावत रत्नसिंह और

राव केसरीसिंह चौहान ने मिलकर औरंगज़ेब के सेनापति हसनअलीख़ां पर आक्रमण कर उसे पराजित किया।

महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर रावत मानसिंह का पुत्र महासिंह कुंवर का तरफ़दार रहा, परन्तु अंत में जब महाराणा और कुंवर के बीच लड़ाई की नौबत पहुंची तब उसने तथा अन्य सरदारों ने महाराणा से अर्ज़ कराई कि लड़ाई में कुंवर मारा गया तो भी दुःख आपको ही होगा, अतः उसका अपराध क्षमा किया जाय। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, जिससे पितापुत्र में फिर मेल हो गया। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय मेवाड़ की हद में लूटमार मचानेवाले लखू चणावदा को महासिंह ने मारा, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको कुराबड़ और गुड़ली की दस हज़ार रुपयों की जागीर प्रदान की। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में बांदनवाड़े (अजमेर प्रांत में) के पास महाराणा और रणबाज़ख़ां की सेनाओं में लड़ाई हुई, जिसमें महासिंह तथा रणबाज़ख़ां दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये।

महासिंह की वीरता से प्रसन्न हो कर महाराणा ने उसके ज्येष्ठ पुत्र सारंगदेव (दूसरे) को कानोड़ की नई जागीर दी और उसकी वंशपरंपरागत बाठरड़े की जागीर उसके छोटे भाई सूरतसिंह को दी। सारंगदेव और उसके पुत्र पृथ्वीसिंह ने मालवे की तरफ़ के लुटेरे पठानों को, जो मंदसोर ज़िले में लूट खसोट करते थे, लड़ाई में हराकर वहां से भगा दिया, परन्तु इस युद्ध में पितापुत्र दोनों सख़्त ज़ख़्मी हुए। फिर उदयपुर में त्रिपोलिया बनवाने और अगड़ पर हाथी लड़ाने की अनुमति प्राप्त करने के लिए महाराणा की तरफ़ से पंचोली बिहारीदास के साथ रावत सारंगदेव बादशाह फर्रुख़सियर के पास भेजा गया। रामपुरे के राव गोपालसिंह का पुत्र रतनसिंह मुसलमान बनकर वहां का मालिक बन बैठा। उसके मारे जाने के बाद गोपालसिंह का रामपुरे पर अधिकार कराने के लिए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७७४ (ई० स० १७१७) में सेना भेजी, जिसमें रावत सारंगदेव भी शरीक था। उस सेना ने रामपुरे पर कब्ज़ा कर लिया। फिर महाराणा ने गोपालसिंह को अपना सरदार बनाकर उस इलाक़े का कुछ हिस्सा उसे दे दिया और बाक़ी का अपने राज्य

में मिला लिया। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय रावत पृथ्वीसिंह ने मरहटों से लड़कर उन्हें मेवाड़ से निकाल दिया और महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उस (पृथ्वीसिंह) के पुत्र जगत्सिंह ने भी मल्हारगढ़ पर आक्रमण कर मरहटों को वहां से मार भगाया।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय गोगूंदे के सरदार जसवंतसिंह (दूसरे) ने रत्नसिंह को मेवाड़ का स्वामी प्रसिद्ध किया तब जगत्सिंह महाराणा का तरफ़दार रहा। फिर उसने उज्जैन की लड़ाई में महाराणा की सहायता के लिए अपने चाचा सकतसिंह को ससैन्य भेजा, जो वहां पर मारा गया। महाराणा भीमसिंह के समय जगत्सिंह का उत्तराधिकारी रावत ज़ालिमसिंह हड़क्याखाल के पास की लड़ाई में मरहटों से लड़ा और ज़ख्मी हुआ। चेजाघाटी के पास झाला ज़ालिमसिंह के साथ की महाराणा की लड़ाई में रावत ज़ालिमसिंह का पुत्र अजीतसिंह महाराणा की सेना में रहकर लड़ा और सख्त घायल हुआ जिससे महाराणा ने उसे पालकी देकर कानोड़ पहुंचा दिया।

अजीतसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह हुआ। कानोड़ के सरदारों को तलवारबंदी नहीं लगती थी तो भी महाराणा सरूपसिंह ने उससे छः हजार रुपये वसूल कर लिये, जिसपर वह महाराणा के विरोधी सरदारों से मिल गया। इसपर महाराणा ने उसका मंडप्या गांव ज़ब्त कर लिया, परन्तु महाराणा शंभुसिंह के समय कानोड़ की तलवारबंदी की तहक़ीक़ात होने पर उक्त रावत से बेजा लिए हुए तलवारबंदी के छः हजार रुपये तथा मंडप्या गांव वापस दे दिये गये।

ई० स० १८५७ जनवरी (वि० सं० १९१३ माघ) में सिपाही-विद्रोह शुरू हुआ और नीमच की सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी तथा खज़ाना लूट लिया। क़रीब ४० अंग्रेज़ों ने, जिनमें औरतें और बच्चे भी शामिल थे, डूंगला गांव में जाकर शरण ली वहां भी बाग़ियों ने उन्हें घेर लिया। यह खबर पाते ही मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कप्तान शावर्स महाराणा की सेना के साथ बेदले के राव बख़्तसिंह व मेहता शेरसिंह सहित रवाना हुआ। उस समय महाराणा ने अपनी तरफ़ से वि० सं० १९१३ (चैत्रादि १९१४) ज्येष्ठ सुदि १४ (ता० ६ जून ई० स० १८५७) को खास रुक्का रावत उम्मेदसिंह के नाम इस आशय का लिखा कि आप स्वयं अपनी जमीयत सहित शीघ्र कप्तान शावर्स के

पास उपस्थित हो जावें और इसी आशय का एक पत्र मेहता शेरसिंह ने भी उसके पास भेजा। इसपर रावत उम्मेदसिंह बीमारी के कारण स्वयं तो उपस्थित न हो सका, परन्तु सरंगदेवोत महोवतसिंह की अध्यक्षता में अपनी जमीयत शावर्स के पास तुरन्त भेज दी, जो डूंगला गांव से बाग़ियों को हटाने में शरीक रही। वहां घेरे हुए अंग्रेज़ों को उदयपुर पहुंचाने की व्यवस्था कर शावर्स नीमच पहुंचा तथा वहां की रक्षा का प्रबंध कर वह बाग़ियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़, जहाज़पुर आदि स्थानों में होता हुआ पीछा नीमच लौट गया। नीमच का उपद्रव शांत हो जाने के कारण मेहता शेरसिंह ने मोहवतसिंह को सीख दे दी और कानोड़ की सेना की अच्छी सेवा की प्रशंसा का पत्र रावत उम्मेदसिंह के पास भेजा।

इन्हीं दिनों फ़ीरोज़ नाम के एक हाजी ने अपने को दिल्ली का शाहज़ादा प्रसिद्ध कर दो हज़ार बाग़ियों के साथ मंदसोर पर अधिकार कर लिया और नीम्बाहेड़े के मुसलमान हाकिम का बाग़ियों से मिल जाने का अंदेशा देखकर कप्तान शावर्स ने नीम्बाहेड़े पर कब्ज़ा करना उचित समझकर फिर महाराणा से सेना मांगी। इस समय रावत उम्मेदसिंह ने महाराणा को अर्ज़ कराया कि मेवाड़ के अधिकार से निकले हुए नीम्बाहेड़े पर फिर अधिकार करने का यह मौक़ा है। इसपर महाराणा ने एक खास रुक्का भेजकर उसकी तजवीज़ पसंद की और लिखा कि कप्तान शावर्स और मेहता शेरसिंह से खुद मिलकर उनकी राय के मुताबिक़ काम करना चाहिये। इसपर उम्मेदसिंह ने उन दोनों से मिलकर नीम्बाहेड़े के विषय में बातचीत की और अपनी सेना अपने भाई बैरीशाल की अध्यक्षता में फिर उनके पास भेज दी। महाराणा ने भी उदयपुर से पैदल सिपाही, तोपखाना आदि एवं अन्य सरदारों की और सेना भी नीमच भेजी। नीम्बाहेड़े के अफसर के बाग़ी हो जाने पर कप्तान शावर्स मेवाड़ी सेना के साथ वहां पहुंचा और दिन भर गोलन्दाजी होने के बाद नीम्बाहेड़े पर उसने अधिकार कर उसे मेवाड़वालों के सुपुर्द कर दिया, जो बैरीशाल एवं कितने एक अन्य सरदारों के प्रतिनिधियों के अधिकार में रहा। छः महीने तक बैरीशाल के वहां रहने के पश्चात् महाराणा के बुलाने पर वह उदयपुर गया तो महाराणा ने उसकी बड़ी क़दर की और घोड़ा, सिरोपाव एवं मोतियों की कंठी

देकर उसे सम्मानित किया। क़रीब २$\frac{१}{२}$ वर्ष तक नीम्बाहेड़े पर महाराणा का अधिकार रहने के पश्चात् सरकार अंग्रेज़ी ने फिर उसे टोंक के सुपुर्द कर दिया।

उम्मेदसिंह का पुत्र नाहरसिंह हुआ, जो वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा का मेम्बर रहा। उसके सन्तान न होने के कारण उसके भाई लक्ष्मणसिंह का पुत्र केसरीसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो कानोड़ का वर्त्तमान स्वामी और महद्राजसभा तथा वॉल्टरकृत राजपूत-हितकारिणी सभा का सदस्य है।

भींडर

भींडर के स्वामी महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तिसिंह[1] के मुख्य वंशज हैं और शक्तावत कहलाते हैं तथा 'महाराज' उनकी उपाधि है।

महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के समय शक्तिसिंह अपने पिता से अप्रसन्न होकर बादशाह अकबर से, जो मेवाड़ पर चढ़ाई करने का इरादा कर धौलपुर में ठहरा हुआ था, मिला। एक दिन बादशाह ने हँसी में उसे कहा 'बड़े बड़े ज़मींदार (राजा) मेरे अधीन हो चुके हैं, केवल राणा उदयसिंह अबतक नहीं हुआ है, अतएव उसपर चढ़ाई करने का मेरा विचार है, तुम इसमें मेरी क्या सहायता करोगे'? यह सुनकर शक्तिसिंह, इस विचार से कि बादशाह के पास मेरे चले आने से कहीं लोग यह न समझ लें कि मेरी ही सलाह से उसने मेवाड़ पर चढ़ाई की है, धौलपुर से भागकर चित्तोड़ लौट गया और महाराणा को अकबर के चित्तोड़ पर चढ़ाई करने के इरादे की खबर दी। फिर वह महाराणा के विरुद्ध बादशाही सेना में कभी उपस्थित न हुआ।

बादशाह जहांगीर के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों के समय शक्तिसिंह का तीसरा पुत्र बल्लू[2] बादशाही अधिकार में गये हुए ऊंटाले

१—वंशक्रम—(१) शक्तिसिंह। (२) भाण। (३) पूर्णमल। (४) सबलसिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) अमरसिंह। (७) जेतसिंह। (८) उम्मेदसिंह। (९) सुल्तानसिंह। (१०) मोहकमसिंह (दूसरा)। (११) ज़ोरावरसिंह। (१२) हम्मीरसिंह। (१३) मदनसिंह। (१४) केसरीसिंह। (१५) माधवसिंह। (१६) भूपालसिंह। (१७) मानसिंह।

(२) बल्लू के वंशज चढ़ियावली के शक्तावत हैं।

के क़िले के दरवाज़े पर, जिसके किंवाड़ों में तीच्ण भाले लगे हुए थे, जा अड़ा, परन्तु जब उसके हाथी ने, जो मुकना था, दरवाज़े पर मोहरा न किया तब उसने भालों पर खड़ा होकर महावत को आज्ञा दी कि हाथी को मेरे शरीर पर हूल दे। महावत के वैसा ही करने से बल्लू तो मर गया, परन्तु किंवाड़ टूट जाने से महाराणा की सेना का क़िले में प्रवेश हो गया। वहां घमसान युद्ध हुआ, जिसमें क़ायमखां आदि बहुतसे शाही सैनिक मारे तथा क़ैद कर लिए गए और ऊंटाले पर महाराणा का अधिकार हो गया।

अब्दुल्लाखां के साथ की राणपुर की लड़ाई में महाराज पूर्णमल, जो शक्तिसिंह का पोता तथा भाण का पुत्र था, वीरतापूर्वक लड़कर मारा गया। महाराणा राजसिंह के समय डूंगरपुर, बांसवाड़े आदि इलाकों के स्वामियों के स्वतन्त्र हो जाने पर पूर्णमल के पोते (सबलसिंह के पुत्र) महाराज मोहकमसिंह, रावत रघुनाथसिंह आदि सरदारों ने उनपर चढ़ाई कर उन्हें महाराणा के अधीन किया। बादशाह औरंगज़ेब के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में मोहकमसिंह महाराणा के साथ रहकर लड़ा और अन्य सरदारों के साथ उसने राजनगर के शाही थाने पर आक्रमण किया। फिर वह शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह के आक्रमण के समय कुंवर के साथ रहा।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसका पांचवां वंशधर मोहकमसिंह (दूसरा), जसवन्तसिंह आदि रत्नसिंह के तरफ़दार सरदारों से मिल गया, जिन्होंने महापुरुषों की सेना साथ लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई की, परन्तु उसमें उनकी हार हुई। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में उसके निर्बल होने के कारण चूंडावत सरदार निरंकुश हो गये, जिससे राजमाता ने मोहकमसिंह को अपने पक्ष में मिलाने की चेष्टा की। इसके पीछे भींडर पर महाराणा भीमसिंह की आज्ञानुसार कुराबड़ के रावत अर्जुनसिंह ने घेरा डाला, परन्तु उसी समय मोहकमसिंह के सहायक लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने कुराबड़ पर चढ़ाई कर दी, जिससे अर्जुनसिंह को भींडर पर से घेरा उठा लेना पड़ा। चूंडावतों और शक्तावतों के बीच विरोध हो जाने पर सोमचन्द गांधी ने, जो चूंडावतों का शत्रु था, मोहकमसिंह और लावे के शक्तावत सरदार को अपनी ओर मिला लिया तथा राजमाता से सिरोपाव आदि दिलाकर उन्हें

सम्मानित कराया। फिर उसकी सलाह से महाराणा भींडर जाकर मोहकमसिंह को अपने साथ उदयपुर ले आया। मेवाड़ को मरहटों से खाली कराने के लिए मोहकमसिंह और प्रधान सोमचन्द ने सलूंबर से रावत भीमसिंह को उदयपुर बुलाया[1]। सोमचन्द के मारे जाने पर उसके बध का बदला लेने के लिए आकोले के पास कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह से मोहकमसिंह तथा सोमचन्द के भाई सतीदास प्रधान की लड़ाई हुई, जिसमें मोहकमसिंह की जीत हुई और अर्जुनसिंह ने भागकर अपने प्राण बचाये। फिर चूंडावतों से मोहकमसिंह आदि शक्तावतों की खैरोदे के पास लड़ाई हुई, जिसमें शक्तावतों की हार हुई। इसके उपरान्त अर्जुनसिंह के छोटे पुत्र अजीतसिंह ने चूंडावतों से १००००० रु० दिलाने का वादा कर आंबाजी इंगलिया को अपनी ओर मिला लिया। तब उस (इंगलिया) ने अपने नायब गणेशपन्त को मोहकमसिंह आदि शक्तावतों का साथ छोड़कर चूंडावतों की सहायता करने के लिए लिखा, जिससे शक्तावतों का ज़ोर कम हो गया।

मोहकमसिंह के ज़ोरावरसिंह और फ़तहसिंह दो पुत्र थे, जिनमें से ज़ोरावरसिंह तो अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और फ़तहसिंह को महाराणा भीमसिंह ने बोहेड़े की जागीर दी। महाराज ज़ोरावरसिंह के कोई पुत्र न था, जिससे उसके मरने पर उसका बहुत दूर का रिश्तेदार हम्मीरसिंह पानसल से गोद गया। इसपर फ़तहसिंह के दत्तक पुत्र बख़्तावरसिंह ने ठिकाने का दावा किया और कई लड़ाइयां भी लड़ीं, परन्तु भींडर पर हम्मीरसिंह का ही अधिकार बना रहा। महाराणा शंभुसिंह के समय हम्मीरसिंह रीजेन्सी कौंसिल का सदस्य बनाया गया। हम्मीरसिंह के उत्तराधिकारी मदनसिंह के भी कोई पुत्र न होने के कारण हम्मीरसिंह के चौथे बेटे दूलहसिंह का ज्येष्ठ पुत्र केसरीसिंह गोद गया और उसके पुत्र माधवसिंह के निःसन्तान मर जाने पर उस (माधवसिंह) का छोटा भाई भूपालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। भूपालसिंह के भी पुत्र न होने से केसरीसिंह के छोटे भाई बलवंतसिंह का पुत्र मानसिंह भींडर का स्वामी हुआ, जो इस समय विद्यमान है।

१—इसका सविस्तर विवरण सलूंबर के इतिहास में लिखा जा चुका है।

बदनोर

बदनोर के सरदार मेड़तिये राठोड़ एवं मेड़तियों में मुख्य हैं। उनकी उपाधि ठाकुर है। जोधपुर बसानेवाले राव जोधा के अनेक पुत्रों में से दूदा और बरसिंह एक माता से उत्पन्न हुए थे। राव जोधा ने उन दोनों को शामिल में मेड़ते का परगना जागीर में दिया। तब से वहां के राठोड़ मेड़तिये कहलाये।

कुछ वर्षों पीछे बरसिंह ने दूदा को वहां से निकाल दिया, जिससे वह बीकानेर में जा रहा। बरसिंह ने क़हत के समय अजमेर के अधीन का सांभर शहर लूट लिया, जिसपर अजमेर के सूबेदार मल्लूखां ने बरसिंह को वचन दे-कर अजमेर बुलाया और उसे क़ैद कर लिया। यह खबर पाकर दूदा ने बीकानेर से जाकर बरसिंह को छुड़ा लिया। बरसिंह के पीछे उसका बेटा सीहा मेड़ते का स्वामी हुआ, परन्तु उसको अयोग्य देखकर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर कब्ज़ा कर लिया। बरसिंह की ठकुराणी सांखली ने, जो एक समझदार औरत थी, दूदा को बीकानेर से बुलाया। उसने मुसलमानों को वहां से निकाल दिया और मेड़ते पर अधिकार कर आधा अपने लिए रख शेष आधा अपने भतीजे सीहा को दे दिया। यह खबर पाकर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर चढ़ाई कर उस इलाक़े के गांवों को उजाड़ना शुरू किया, जिसपर दूदा ने सूबे-दार से लड़ाई कर पहले तो उसके हाथी छीन लिये और अजमेर के पास की लड़ाई में उसको मार डाला[1]।

दूदा के वीरमदेव, रत्नसिंह, रायमल आदि पुत्र हुए। महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) के ज्येष्ठ कुंवर भोजराज के साथ रत्नसिंह की पुत्री मीरांबाई का विवाह हुआ था। मुग़ल बादशाह बाबर के साथ की उक्त महाराणा की लड़ाई में वीरमदेव, रत्नसिंह और रायमल तीनों लड़े तथा रत्नसिंह व रायमल काम आये। वीरमदेव से जोधपुर के राव मालदेव ने मेड़ता छीन लिया, परन्तु दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूर ने जब मालदेव पर चढ़ाई की उस समय वह (मालदेव) बिना लड़े ही भाग गया और उसके राज्य पर सुलतान का अधिकार हो गया। उस समय उसने वीरमदेव को मेड़ता दे दिया। शेरशाह

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातों का संग्रह; संख्या ६२०-२६।

के मरने पर मालदेव ने जोधपुर आदि पर पीछा अधिकार कर लिया। वीरम-देव के पीछे उसका पुत्र जयमल मेड़ते का स्वामी हुआ। वि० सं० १६११ (ई० स० १५५४) में राव मालदेव ने राठोड़ देवीदास (जैतावत) और अपने पुत्र चन्द्रसेन को भेजकर जयमल से मेड़ता छीन लिया। इसपर जयमल महाराणा उदयसिंह की सेवा में जा रहा और महाराणा ने उसे जागीर देकर अपना सरदार बनाया, परन्तु अपना पैतृक ठिकाना मेड़ता पुनः प्राप्त करने के उद्योग के लिए जयमल बादशाह अकबर के पास जा रहा। फिर मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन को बादशाह ने उसकी सहायता के लिए सेना देकर मेड़ते पर भेजा। वि० सं० १६१८ (चैत्रादि १६१६) चैत्र सुदि ५ (ता० २० मार्च सन् १५६२) को मेड़ते में लड़ाई हुई और मालदेव के बहुतसे राजपूत काम आये तथा मेड़ते पर पीछा जयमल का अधिकार हो गया[1]।

मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन बादशाह से बाग़ी होकर भागा और जयमल के पुत्र विट्ठलदास को साथ लेकर मेड़ते पहुंचा, उस समय मिर्ज़ा का ज़नाना नागोर में था, जिसको मेड़ते लाने के लिए उसने जयमल सें कहा तो उसने अपने पुत्र सादूल को नागोर भेजा। सादूल वहां से मिर्ज़ा की औरतों को लेकर चला उस समय नागोर के हाकिम ने उसका पीछा किया। सादूल उससे लड़कर ४० राजपूतों सहित मारा गया, परन्तु मिर्ज़ा का ज़नाना मेड़ते पहुंच गया। इस प्रकार मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन की सहायता करने के कारण बादशाह अकबर जयमल से बहुत नाराज़ हुआ और मेड़ते पर सेना भेजकर उसे ले लिया, जिससे वह (जयमल[2]) पुनः महाराणा की सेवा में जा रहा और महाराणा ने बदनोर आदि उसको जागीर में देकर अपना सरदार बनाया।

वि० सं० १६२४ (ई० स० १५६७) में चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई हुई उस समय जयमल तथा सीसोदिया पत्ता के ऊपर क़िले की रक्षा का भार

---

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातों का संग्रह; संख्या ८३३-३४।

(२) वंशक्रम—(१) जयमल। (२) मुकुन्ददास। (३) मनमनदास। (४) सांवलदास। (५) जसवंतसिंह। (६) जयसिंह। (७) सुलतानसिंह। (८) अचयसिंह। (९) जैतसिंह। (१०) जोधसिंह। (११) प्रतापसिंह। (१२) केसरीसिंह। (१३) गोविन्दसिंह। (१४) गोपालसिंह।

छोड़कर महाराणा स्वयं मेवाड़ के पहाड़ों की ओर चला गया। इसके पीछे लड़ाई के समय जयमल हज़ारमेखी बख़्तर पहिने हुए लाखोटा दरवाज़े के सामने मोर्चे पर बादशाह के मुकाबले में जा डटा और रसद ख़तम हो जाने पर उसने सब सरदारों को क़िले में एकत्र कर कहा कि अब स्त्रियां तथा बच्चों को जौहर की आग में जलाकर क़िले के दरवाज़े खोल दिये जाय एवं हम सबको अपने देश तथा वंश के गौरव की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक लड़कर प्राणोत्सर्ग करना चाहिए। उसके कथन के अनुसार जौहर हो जाने के दूसरे ही दिन सवेरे क़िले के दरवाज़ खोल दिये गये और राजपूत शाही सेना पर टूट पड़े। उस समय जयमल ने, जो रात्रि को क़िले की मरम्मत कराते समय बादशाह की गोली लगने से लंगड़ा हो गया था, कहा कि मैं चल तो नहीं सकता, परंतु लड़ने की इच्छा अभी रह गई है। यह सुनकर उसके साथी कल्ला राठोड़ ने उसे अपने कन्धे पर बिठा लिया और उससे कहा कि अब अपनी आकांक्षा पूरी कर लो। फिर दोनों बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए हनुमान पोल और भैरव पोल के बीच काम आये, जहां एक दूसरे के निकट उनके स्मारक बने हुए हैं। जयमल तथा सीसोदिया पत्ता के विलक्षण पराक्रम और असाधारण युद्ध-कौशल से प्रसन्न होकर बादशाह ने हाथियों पर बैठी हुई उनकी पत्थर की मूर्तियां बनवाकर आगरे में क़िले के दरवाज़े पर खड़ी कराई।

जयमल का सातवां पुत्र रामदास हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया। झाला शत्रुशाल के मेवाड़ छोड़कर मारवाड़ चले जाने पर महाराणा प्रतापसिंह ने उसकी देलवाड़े की जागीर जयमल के उत्तराधिकारी बदनोर के ठाकुर मुकुन्ददास के ज्येष्ठ पुत्र मनमनदास को उसके पिता की जीवित दशा में दे दी थी। मुकुन्ददास तथा उसका भाई हरिदास दोनों महाराणा अमरसिंह के समय अब्दुल्लाखां के साथ की राणपुर की लड़ाई में लड़े और मारे गये। मुकुन्ददास के पुत्र मनमनदास ने केलवा गांव के पास अब्दुल्लाखां की फ़ौज पर छापा मारा। फिर वह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में लड़ा। महाराणा राजसिंह पर औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई उस समय मनमनदास का उत्तराधिकारी सांवलदास शाही सेना से लड़ा। फिर बादशाह के मेवाड़ से अजमेर चले जाने पर महाराणा की आज्ञा से उसने बदनोर के

शाही थाने पर ऐसा भीषण आक्रमण किया कि शाही सेनापति रुहिल्लाखां तथा उसके १२००० सवार अपना सारा सामान छोड़कर रात को ही वहां से भाग निकले और बादशाह के पास अजमेर पहुंचे। सांवलदास का पुत्र जसवंतसिंह महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय पुर, मांडल आदि शाही परगनों पर जो चढ़ाई हुई उसमें शामिल था। उस लड़ाई में बादशाही अफ़सर फ़िरोज़खां को बड़ा नुक़सान उठाकर भागना पड़ा और उन परगनों पर महाराणा का अधिकार हो गया। उस लड़ाई में जसवंतसिंह लड़ता हुआ मारा गया।

जसवंतसिंह का प्रपौत्र जयसिंह रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में बेदले के राव रामचन्द्र, गोगूंदे के झाला जसवंतसिंह (दूसरे) आदि अधिकांश सरदारों के रत्नसिंह के पक्ष में हो जाने पर भी जयसिंह का पोता अक्षयसिंह और अन्य कुछ उमराव महाराणा के ही तरफ़दार बने रहे। फिर उज्जैन तथा उदयपुर में रत्नसिंह के पक्षपाती माधवराव सिंधिया से महाराणा की जो लड़ाइयां हुई उनमें अक्षयसिंह महाराणा के पक्ष में रहकर लड़ा और महापुरुषों के साथ की महाराणा की पहली लड़ाई में उसने अपने छोटे पुत्र ज्ञानसिंह को अपनी जमीयत के साथ भेजा। महापुरुषों के साथ की महाराणा की दूसरी लड़ाई में अक्षयसिंह का पुत्र गजसिंह महाराणा के साथ रह-कर लड़ा। महाराणा भीमसिंह के समय आंबाजी इंगलिया के नायब गणेशपंत से लकवा की जो लड़ाइयां हुई उनमें अक्षयसिंह के उत्तराधिकारी जैतसिंह ने लकवा का साथ दिया। जैतसिंह के चौथे वंशधर गोविन्दसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर उसका निकट का कुटुम्बी गोपालसिंह गोद गया जो ठिकाने बदनोर का वर्तमान स्वामी और महद्राजसभा का मेम्बर है।

बानसी

बानसी के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के दूसरे कुंवर शक्तिसिंह के छोटे पुत्रों में से अचलदास के[1] वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

मेवाड़ पर शाहज़ादे परवेज़ की चढ़ाई की ख़बर पाकर महाराणा अमरसिंह ने मांडलगढ़, मांडल और चित्तोड़ की तलहटी की शाही सेनाओं पर आक्रमण किया उस समय अचलदास मांडलगढ़ की लड़ाई में लड़ा और मारा गया। उसके पीछे नरहरदास, जसवंतसिंह और केसरीसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। औरंगज़ेब के साथ की महाराणा राजसिंह की लड़ाइयों में केसरीसिंह लड़ा। केसरीसिंह के कुंवर गंगदास (गोपालदास) ने चित्तोड़ के पास शाही सेना पर आक्रमण कर उसके १८ हाथी, २ घोड़े और कई ऊंट छीन लिए। इसपर महाराणा ने प्रसन्न होकर उसे 'कुंवर' की उपाधि, सोने के ज़ेवर सहित उत्तम घोड़ा और गांव देकर सम्मानित किया। शाहज़ादे अकबर पर कुंवर जयसिंह का जब आक्रमण हुआ उस समय रावत केसरीसिंह तथा गंगदास कुंवर के साथ थे और महाराणा जयसिंह से कुंवर अमरसिंह का बिगाड़ हो जाने पर केसरीसिंह कुंवर का तरफ़दार रहा। रणबाज़ख़ां के साथ महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की जो लड़ाई हुई उसमें रावत गंगदास भी महाराणा की फ़ौज के साथ था।

उसके पीछे हरिसिंह और उसके बाद उसका पुत्र हठीसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। जयपुर के महाराजा जयसिंह का देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा, इसपर ईश्वरीसिंह को हटाकर माधवसिंह को जयपुर का स्वामी बनाने के लिए महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) और महाराजा ईश्वरीसिंह के बीच जो लड़ाइयां हुईं उनमें हठीसिंह भी विद्यमान था।

हठीसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अचलदास (दूसरे) के अपने पिता की जीवित

---

(१) वंशक्रम—(१) अचलदास। (२) नरहरदास। (३) जसवंतसिंह। (४) केसरीसिंह। (५) गंगदास। (६) हरिसिंह। (७) हठीसिंह। (८) पद्मसिंह। (९) केसरीसिंह (किशोरसिंह)। (१०) अमरसिंह। (११) अजीतसिंह। (१२) नाहरसिंह। (१३) प्रतापसिंह। (१४) मानसिंह। (१५) तख़्तसिंह।

दशा में ही मर जाने पर उस(अचलदास)का छोटा भाई पद्मसिंह[1] उसका उत्तराधिकारी हुआ। पद्मसिंह का सातवां वंशधर तख़्तसिंह बानसी का वर्तमान सरदार है।

भैंसरोड़गढ़

भैंसरोड़गढ़ के सरदार सलूंबर के रावत केसरीसिंह (प्रथम) के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

केसरीसिंह के द्वितीय पुत्र लालसिंह[2] को भैंसरोड़गढ़ की जागीर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने दी और वह दूसरी श्रेणी का सरदार बनाया गया। सरदारों से बिगाड़ हो जाने पर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने लालसिंह को उन(सरदारों)के मुखिये बागोर के महाराज नाथसिंह को मारने की आज्ञा दी, जिसका पालन करने में वह पहले कुछ समय तक टालमटूल करता रहा फिर महाराणा के बहुत दबाव डालने पर एक दिन बागोर पहुंचकर नर्मदेश्वर का पूजन करते समय नाथसिंह की छाती में उसने कटार घुसेड़ दिया, जिससे वह तुरन्त मर गया। इसके उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। इसके कुछ ही दिनों पीछे उस(लालसिंह)का भी देहान्त हो गया।

---

(१) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़ीकल स्केचीज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृष्ठ २६) में हठीसिंह के पीछे अचलदास (दूसरे) का नाम लिखा है और पद्मसिंह का छोड़ दिया है, परन्तु हठीसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अचलदास तो अपने पिता की विद्यमानता में ही गुज़र गया था, जिससे वि० सं० १८११ (ई० स० १७५४) में हठीसिंह का देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी उसका दूसरा पुत्र पद्मसिंह हुआ। महाराणा राजसिंह (दूसरे) का राज्याभिषेकोत्सव श्रावणादि वि० सं० १८१२ (चैत्रादि १८१३) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १७५६ ता० ३ जून) को हुआ। उस उत्सव में जो जो सरदार आदि प्रतिष्ठित पुरुष उपस्थित थे उनके नाम 'राजसिंहराज्याभिषेक काव्य' में दिये हुए हैं। उनमें बानसी के रावत पद्मसिंह का नाम है, न कि अचलदास (दूसरे) का—

बानसीनगरनायकः स्वयं वारितारिगणनायकश्च यः ।
पद्मसन्निभमुखो विराजते नामतोऽपि खलु पद्मसिंहजित् ॥

(२) वंशक्रम—(१) लालसिंह। (२) मानसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) अमरसिंह। (५) भीमसिंह। (६) प्रतापसिंह। (७) इन्द्रसिंह।

क्षिप्रा नदी के पास माधवराव सिंधिया के साथ की महाराणा की सेना की लड़ाई में लालसिंह का पुत्र मानसिंह घायल होकर क़ैद हुआ, परन्तु रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के भेजे हुए बावरी हिकमतअमली से उसे निकाल लाये। उसके निकल आने पर महाराणा को बड़ी प्रसन्नता हुई। मानसिंह का पुत्र रघुनाथसिंह हुआ। उसके पुत्र न होने से चावंड से रावत माधवसिंह का दूसरा पुत्र अमरसिंह गोद गया।

सिपाही-विद्रोह के समय उसने कप्तान शावर्स की सहायता के लिये बंबोई के विशनसिंह को अपनी जमीयत सहित भेजा, जिसने बहुत अच्छा काम दिया। इससे प्रसन्न होकर शावर्स ने सरकार की तरफ़ से ई० स० १८५७ ता० ७ नवम्बर (वि० सं० १९१४ मार्गशीर्ष वदि ६) को उसके ठिकाने के लिये खातिरी का पत्र लिखकर उसकी तसल्ली कर दी। अमरसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भीमसिंह और उसके पीछे उसका छोटा भाई प्रतापसिंह भैंसरोड़गढ़ का सरदार हुआ। प्रतापसिंह के कोई पुत्र न था, जिससे उसने अपने सम्बन्धी भदेसर के रावत भोपालसिंह के तीसरे पुत्र इन्द्रसिंह को गोद लिया, जो भैंसरोड़गढ़ का वर्तमान सरदार है।

पारसोली

पारसोली के सरदार बेदले के स्वामी रामचन्द्र चौहान के छोटे पुत्र केसरीसिंह[1] के वंशज हैं और 'राव' उनकी उपाधि है।

केसरीसिंह पर बड़ी कृपा होने के कारण महाराणा राजसिंह ने उसे पारसोली की जागीर देकर प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। फिर लोगों के बहकाने में आकर महाराणा सलूंबर के रावत रघुनाथसिंह से नाराज़ हो गया और उसकी जागीर का पट्टा भी केसरीसिंह के नाम लिख दिया, परन्तु वह (केसरीसिंह) सलूंबर पर अधिकार न कर सका। बादशाह औरंगज़ेब

(१) वंशक्रम—(१) केसरीसिंह। (२) नाहरसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) राजसिंह। (५) संग्रामसिंह। (६) सावंतसिंह। (७) लालसिंह। (८) लछमण-सिंह। (९) रत्नसिंह। (१०) लालसिंह (दूसरा)।

के साथ की महाराणा की लड़ाइयों में केसरीसिंह ने रावत रघुनाथसिंह के पुत्र रत्नसिंह के साथ रहकर मेवाड़ के पहाड़ों में हसनअलीखां पर आक्रमण किया, जिसमें वह (हसनअलीखां) हारकर बादशाह के पास चला गया। कुंवर जयसिंह का शाहज़ादे अकबर पर आक्रमण हुआ उस समय केसरीसिंह भी उसके साथ था। महाराणा जयसिंह के समय उसने तथा रावत रत्नसिंह (चूंडावत), राठोड़ दुर्गादास, सोनिंग आदि मेवाड़ और मारवाड़ के सरदारों ने बादशाह को परास्त करने के लिये शाहज़ादे मुअज़्ज़म को उसके विरुद्ध भड़काने की चेष्टा की, जो सफल न हुई। फिर महाराणा ने केसरीसिंह, दुर्गादास आदि सरदारों को गुप्त रूप से शाहज़ादे अकबर के पास भेजा। उन्होंने औरंगज़ेब को तख़्त से उतारकर उक्त शाहज़ादे को बादशाह बनाने का प्रलोभन दे उसे अपनी ओर मिला लिया। शाहज़ादे अकबर के बाग़ी हो जाने पर बादशाह की इच्छा के अनुसार शाहज़ादे आज़म ने महाराणा कर्णसिंह के पौत्र श्यामसिंह को, जो शाही सेना में नियुक्त था, सुलह के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये महाराणा के पास भेजा। उसने महाराणा को समझाया कि इस समय अनुकूल शर्तों पर सुलह हो सकती है, यह मौक़ा नहीं चूकना चाहिये। महाराणा ने भी उसकी सलाह को पसन्द किया और उक्त शाहज़ादे, श्यामसिंह, दिलेरखां तथा हसनअलीखां की सलाह के अनुसार अर्ज़ी लिखकर केसरीसिंह, रुक्मांगद चौहान और रावत घासीराम शक्तावत को बादशाह के पास भेजा। उन्होंने बादशाह से बातचीत की और उसने सन्धि करना स्वीकार कर लिया।

महाराणा जयसिंह और कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो जाने पर केसरीसिंह कुंवर का प्रधान सहायक रहा। पिता-पुत्र में मेल हो जाने के बाद भी वह कुंवर का ही तरफ़दार बना रहा, जिससे महाराणा उससे बहुत अप्रसन्न रहता और उसे मरवा डालना चाहता था। महाराणा ने सलूंबर के रावत रत्नसिंह के पुत्र रावत कांधल को, जो उसका विश्वासपात्र था, केसरीसिंह को मारने के लिये उद्यत किया। एक दिन उसने केसरीसिंह, कांधल और राठोड़ गोपीनाथ (घाणेराव का) को बादशाह के सम्बन्ध की किसी बात पर विचार कर अपनी अपनी सम्मति देने की आज्ञा दी। विचार करने का स्थान थूर का तालाब

नियत हुआ, जहां कांधल तथा केसरीसिंह दोनों पहुंचे। उस समय मौक़ा पाकर कांधल ने केसरीसिंह की छाती में अपना कटार घुसेड़ दिया और केसरीसिंह ने भी उसपर अपने कटार का वार किया। इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे के हाथ से मारे गये। महाराणा सज्जनसिंह के समय केसरीसिंह का सातवां वंशधर लक्ष्मणसिंह इजलास खास का मेम्बर चुना गया और उसका पुत्र रत्नसिंह उक्त महाराणा के राजत्वकाल में महद्राजसभा का सदस्य हुआ। रत्नसिंह का पुत्र देवीसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मर गया, जिससे उस (देवीसिंह) का पुत्र लालसिंह (दूसरा) उस (रत्नसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ जो पारसोली का वर्तमान स्वामी है।

कुरावड़

कुरावड़ के स्वामी सलूंबर के रावत केसरीसिंह के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय अर्जुनसिंह को कुरावड़ की जागीर मिली। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में ठेके पर सौंपे हुए मेवाड़ के परगनों की आमदनी तथा पेशवा का ख़िराज न भेजने के कारण मल्हारराव होलकर मेवाड़ पर आक्रमण कर ऊंटाले तक जा पहुंचा, तब महाराणा ने अर्जुनसिंह और अपने धायभाई रूपा को उसके पास भेजा, जिनके समझाने बुझाने से वह महाराणा से ५१००००० रु० लेकर वापस चला गया। माधवराव सिंधिया के साथ की उज्जैन की लड़ाई में बहुतसे सैनिकों एवं सहायक सरदारों के मारे जाने से महाराणा की सैनिक शक्ति कम हो गई, जिससे वह बहुत घबराया, परन्तु अर्जुनसिंह, भीमसिंह, अक्षयसिंह आदि सरदारों के धीरज बंधाने और उत्साह दिलाने पर सिंध तथा गुजरात के मुसलमान सैनिकों को अपनी सेना में भरती कर वह फिर लड़ने की तैयारी करने लगा। उदयपुर पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई हुई उस समय अर्जुनसिंह

---

(१) वंशक्रम—(१) अर्जुनसिंह। (२) जवानसिंह। (३) ईश्वरीसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) जैतसिंह। (६) किशोरसिंह। (७) बलवन्तसिंह। (८) नरवदसिंह।

उससे लड़ा। उदयपुर में रसद कम हो जाने पर अर्जुनसिंह सिंधिया से मिला और उस(सिंधिया)को महाराणा से सुलह कर लेने पर राज़ी किया।

देवगढ़ के राघवदेव, भींडर के मोहकमसिंह आदि विरोधी सरदारों ने महापुरुषों की सेना साथ लेकर जब मेवाड़ पर चढ़ाई की तब अर्जुनसिंह और सलूंबर के रावत भीमसिंह पर उदयपुर की रक्षा का भार छोड़कर महाराणा शत्रुओं से लड़ने गया। महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरे) के समय वेतन न मिलने के कारण सिंधी सैनिकों ने बड़ा उपद्रव मचाया तब राजमाता ने कुरावड़ से अर्जुनसिंह को बुला लिया, जो सैनिकों का वेतन चुकाने के लिये मेवाड़ की प्रजा एवं जागीरदारों से रुपये वसूल करने का विचार कर दस हज़ार सिंधियों के साथ चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ, जिसके निकट पहुंचने पर सिंधिया की मरहटी सेना से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें सिंधियों ने महाराणा के अल्पवयस्क भाई भीमसिंह के उत्साह दिलाने पर शत्रुओं से वीरतापूर्वक लड़कर उन्हें भगा दिया।

महाराणा की कमज़ोरी से अधिकांश सरदार स्वेच्छाचारी हो गये थे, इससे उन्हें दबाने के लिए राजमाता ने भींडर के शक्तावत सरदार मोहकमसिंह को अपनी ओर मिलाना चाहा। यह बात अर्जुनसिंह तथा भीमसिंह को बहुत बुरी लगी। इसके पीछे बेगूं के रावत मेघसिंह ने, जो झूठे दावेदार रत्नसिंह का तरफ़दार था, खालसे के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया। तब महाराणा के बुलाने पर माधवराव सिंधिया ने बेगूं को जा घेरा, परन्तु वह उसे जीत न सका। इसपर अर्जुनसिंह ने मेघसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को अपनी ओर मिला लिया, जिससे लाचार होकर मेघसिंह ने ४८१२१७ रु० और बहुतसे गांव गिरवी के तौर सौंपकर सिंधिया से सुलह कर ली। महाराणा भीमसिंह के समय अर्जुनसिंह राज्य का काम चलाने में सलूंबर के रावत भीमसिंह का सहायक हुआ। फिर उसने महाराणा की अनुमति से भींडर के शक्तावत सरदार मोहकमसिंह पर आक्रमण किया, परन्तु उसी समय लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने कुरावड़ पर चढ़ाई कर उसके पुत्र ज़ालिमसिंह को मार डाला। यह ख़बर पाकर अर्जुनसिंह भींडर से चलकर शिवगढ़ (छप्पन के पहाड़ों में) पहुंचा, जहां संग्रामसिंह के वृद्ध पिता लालसिंह से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें लालसिंह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

चूंडावतों और शक्तावतों के बीच बिगाड़ हो जाने पर महाराणा ने शक्तावतों का जब पक्ष लिया तब अर्जुनसिंह, रावत भीमसिंह, रावत प्रतापसिंह आदि चूंडावत सरदार अपने अपने ठिकानों को चले गये। फिर मेवाड़ को मरहटों से खाली कराने के लिए उनकी सहायता आवश्यक समझकर प्रधान सोमचन्द गांधी और भींडर के महाराज मोहकमसिंह ने महाराणा की अनुमति से रावत भीमसिंह को सलूंबर से बुलवाया उस समय अर्जुनसिंह भी उसके साथ उदयपुर गया। इसी अरसे में मोहकमसिंह भी कोटे से पांच हज़ार सवारों को साथ लेकर जा पहुंचा, जिससे अर्जुनसिंह आदि चूंडावत सरदार षड्यन्त्र का सन्देह कर वहां से तुरंत चल दिये, परन्तु राजमाता उन्हें पलाणा गांव से उदयपुर लौटा लाई।

शक्तावतों के बहकाने में आकर सोमचन्द ने चूंडावतों के कुछ गांव ख़ालसा कर लिए थे, जिससे वे उसके शत्रु होकर उसे मारने का अवसर ढूंढने लगे। एक दिन अर्जुनसिंह और चावंड का रावत सरदारसिंह महलों में गये। उस समय सोमचन्द भी वहां था। उसे दोनों सरदारों ने सलाह के बहाने अपने पास बुलाकर दोनों तरफ़ से उसकी छाती में कटार घुसेड़ दिये, जिससे वह तत्काल मर गया। फिर अर्जुनसिंह सोमचन्द के खून से भरे हुए अपने हाथों को बिना धोये ही महाराणा के पास पहुंचा। उसे देखते ही महाराणा आगबबूला हो गया, परन्तु अपनी असमर्थता के कारण उसे कोई दण्ड न दे सका। महाराणा को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर अर्जुनसिंह वहां से चला गया।

सोमचन्द गांधी के इस प्रकार मारे जाने पर उसका भाई सतीदास शत्रुओं से उसकी हत्या का बदला लेने के लिए मोहकमसिंह आदि शक्तावत सरदारों की सहायता से सेना एकत्र कर चित्तोड़ की ओर रवाना हुआ। यह खबर पाकर अर्जुनसिंह की अध्यक्षता में चूंडावतों ने चित्तोड़ से कूच किया। आकोले के पास लड़ाई हुई, जिसमें अर्जुनसिंह ने भागकर अपने प्राण बचाये।

रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालने के लिए महाराणा ने आंबाजी इंगलिया की मातहती में अर्जुनसिंह, किशोरदास देपुरा आदि को वहां ससैन्य भेजा। समीचा गांव में रत्नसिंह के साथी जोगियों से महाराणा की सेना की लड़ाई हुई, जिसमें वे (जोगी) हारकर केलवाड़े भाग गये, परन्तु उक्त सेना

ने वहां से भी उन्हें मार भगाया। फिर उसने कुंभलगढ़ से रत्नसिंह को निकालकर उसपर महाराणा का अधिकार करा दिया। रत्नसिंह के निकल जाने पर अर्जुनसिंह आदि सरदार सूरजगढ़ के राज जसवंतसिंह को कुंभलगढ़ सौंपकर उदयपुर वापस चले गये।

शक्तावतों से अपने पुराने वैर का बदला लेने के लिए चूंडावतों ने अर्जुनसिंह के छोटे पुत्र अजीतसिंह को आंबाजी इंगलिया के पास भेजा। चूंडावतों से १०००००० रु० दिलाने का वादा कर उसने इंगलिया को उनका मददगार बना लिया। इसपर उसकी आज्ञा के अनुसार उसके नायब गणेशपन्त ने शक्तावतों का साथ छोड़ दिया, जिससे चूंडावतों का ज़ोर फिर बढ़ गया। अर्जुनसिंह का सातवां वंशधर नरवदसिंह कुरावड़ का वर्तमान स्वामी है।

आसींद

आसींद के सरदार कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह के चौथे पुत्र ठाकुर अजीतसिंह[1] के वंशज थे और 'रावत' उनकी उपाधि थी।

अजीतसिंह को महाराणा भीमसिंह के समय गोरख्या की जागीर मिली। उसके कोई पुत्र न था, जिससे उसने साटोले के रावत के भतीजे दूलहसिंह को गोद लिया। फिर सोमचन्द गांधी के मारे जाने के बाद शक्तावतों का ज़ोर कम हो जाने पर उसने तथा उसके पुत्र दूलहसिंह और कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह के पौत्र जवानसिंह ने महाराणा की अनुमति से सोमचन्द गांधी के पुत्र साह सतीदास प्रधान को क़ैद कर लिया। अजीतसिंह दूसरे दर्ज़े का सरदार था और ठाकुर कहलाता था, परंतु उसका उत्तराधिकारी दूलहसिंह, जिसे गोद लिये जाने से पहले ही महाराणा के ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह ने 'रावत' की उपाधि और आसींद की जागीर दी थी, प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया गया। ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७४) में अंगरेज़ी सरकार के साथ महाराणा का अहदनामा हुआ जिसपर महाराणा की ओर से अजीतसिंह ने दस्तखत किये। उक्त

---

(१) वंशक्रम—(१) अजीतसिंह। (२) दूलहसिंह। (३) सुमाणसिंह। (४) अर्जुनसिंह। (५) रणजीतसिंह।

महाराणा के समय नवाब दिलेरखां ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तो उससे कुंवर अमरसिंह का युद्ध हुआ। उस समय रावत दूलहसिंह कुंवर के साथ था। इस लड़ाई में दिलेरखां तो हारकर भाग गया, परंतु दूलहसिंह घायल हुआ।

महाराणा सरूपसिंह के राजत्वकाल में सलूंबर के कुंवर केसरीसिंह ने दूलहसिंह को, जिसका प्रभाव बहुत बढ़ गया था, राज्यकार्य से अलग करने की चेष्टा की, परंतु उसमें सफलता न हुई। केसरीसिंह की इस कार्रवाई से उसका दुश्मन होकर दूलहसिंह ने उसके पिता पद्मसिंह से, जिसका सारा अधिकार उसने छीन लिया था, महाराणा के पास अर्ज़ी पेश कराकर उस (पद्मसिंह) को सलूंबर का अधिकार वापस दिला दिया, जिससे अप्रसन्न होकर केसरीसिंह सलूंबर चला गया। फिर केसरीसिंह के मित्र मेहता रामसिंह तथा गोगूंदे के झाला लालसिंह ने महाराणा से दूलहसिंह की शिकायत कर उसके कुछ गांव ज़ब्त करा लिये और दरबार में उसका आना जाना बंद करा दिया। अंत में महाराणा की आज्ञा के अनुसार वह अपने ठिकाने को वापस चला गया। इसके उपरान्त उसपर सरदारों को बहकाने का सन्देह कर महाराणा ने उसे पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा मेवाड़ से निकाल दिये जाने की धमकी दिलाई। अपुत्र होने के कारण दूलहसिंह ने चंगेड़ी के स्वामी दौलतसिंह के पुत्र खुंमाणसिंह को गोद लिया, जो उस (दूलहसिंह) के पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ।

महाराणा सज्जनसिंह के समय खुंमाणसिंह का पुत्र अर्जुनसिंह पहले इजलास खास का, फिर महद्राजसभा का मेम्बर चुना गया। उसके पुत्र रणजीतसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा फ़तहसिंह ने आसींद की जागीर खालसा कर ली।

सरदारगढ़

सरदारगढ़ के स्वामी शार्दूलगढ़ (काठियावाड़ में) के सिंह डोडिया के पुत्र धवल[1] के वंशज हैं और 'ठाकुर' उनका खिताब है।

---

(१) वंशक्रम—(१) धवल। (२) सल। (३) नाहरसिंह। (४) किसनसिंह। (५) कर्णसिंह। (६) भाण। (७) सांडा। (८) भीमसिंह। (९) गोपालदास।

महाराणा लक्षसिंह (लाखा) की माता के द्वारिका की यात्रा को जाते समय काठियावाड़ में काबों से घिर जाने पर राव सिंह मेवाड़ की सेना में शामिल होकर काबों से लड़ता हुआ मारा गया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसके पुत्र धवल को अपने यहां बुला लिया और रतनगढ़, नन्दराय, मसूदा आदि गांवों की पांच लाख की जागीर देकर अपना सरदार बनाया। मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन के सेनापति ज़फ़रख़ां से महाराणा रायमल की लड़ाई हुई, जिसमें धवल का प्रपौत्र किसनसिंह भी लड़ा। महाराणा विक्रमादित्य के समय चित्तोड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की दूसरी चढ़ाई हुई, तब किसनसिंह का पौत्र भाण सुलतान की सेना से लड़ कर मारा गया। वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) में शेरशाह सूर के सेनापति हाजीख़ां और जोधपुर के राव मालदेव की संयुक्त सेना से महाराणा उदयसिंह का युद्ध हुआ, जिसमें भाण का पोता भीम घायल हुआ।

चित्तोड़ पर अकबर की चढ़ाई के समय सरदारों ने उससे भाण के पुत्र सांडा और रावत साहिबखान के द्वारा सुलह की बातचीत की, जो निष्फल हुई। अंत में क़िले के दरवाज़े खोल दिये जाने पर सांडा गंभीरी नदी के पश्चिमी किनारे पर शाही फ़ौज से लड़ता हुआ मारा गया।

सांडा का उत्तराधिकारी भीमसिंह हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में लड़कर काम आया और उसका पोता जयसिंह शाहज़ादे खुर्रम के साथ की महाराणा अमरसिंह की लड़ाई में लड़ा। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय जयसिंह के प्रपौत्र सरदारसिंह को लावे का ठिकाना मिला। उसने लावे में क़िला बनवाकर उसका नाम सरदारगढ़ रखा। फिर महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में लालसिंह शक्तावत के पुत्र संग्रामसिंह ने लावे पर अधिकार कर सरदारसिंह के उत्तराधिकारी सामन्तसिंह को वहां से निकाल दिया। इसके पीछे महाराणा सरूपसिंह ने सामन्तसिंह के पोते ज़ोरावरसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में सरदारगढ़ पर

(१०) जयसिंह। (११) नवलसिंह। (१२) इन्द्रभाण। (१३) सरदारसिंह। (१४) सामंतसिंह। (१५) रोड़सिंह। (१६) ज़ोरावरसिंह। (१७) मनोहरसिंह। (१८) सोहनसिंह। (१९) लक्ष्मणसिंह। (२०) अमरसिंह।

उसका अधिकार करा दिया तथा उसे दूसरे दर्जे का सरदार बनाया और संग्रामसिंह के वंशज चत्रसिंह को निर्वाह के लिये पहाड़ी ज़िले के कोल्यारी आदि कुछ गांव दिये। ज़ोरावरसिंह का उत्तराधिकारी मनोहरसिंह हुआ।

महाराणा शंभुसिंह की नाबालिग़ी में चत्रसिंह के दावा करने पर रीजेन्सी कौंसिल ने फ़ैसला किया कि लावा शक्तावतों को वापस दे दिया जाय। मनोहर-सिंह ने लावा छोड़ना स्वीकार न कर एजेन्ट गवर्नर जनरल के पास कौंसिल के निर्णय की अपील की। इसपर एजेन्ट ने कौंसिल का फ़ैसला रद्द कर सरदारगढ़ पर मनोहरसिंह का ही अधिकार बहाल रखा। महाराणा सज्जनसिंह के राज-त्वकाल में इजलास खास की स्थापना होने पर मनोहरसिंह उसका सदस्य चुना गया। फिर वह महद्राजसभा का मेम्बर हुआ। उसकी योग्यता और कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया। मनोहरसिंह के दोनों पुत्र उसके सामने ही मर गये तब उसने अपने छोटे भाई शार्दूलसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया, परन्तु वह भी उसकी जीवित दशा में मर गया, जिससे उस (शार्दूलसिंह) का पुत्र सोहनसिंह उस (मनोहरसिंह) का उत्तराधिकारी हुआ।

सोहनसिंह का पौत्र (लक्ष्मणसिंह का पुत्र) अमरसिंह सरदारगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

महाराणा के नज़दीकी रिश्तेदार

बागोर

बागोर के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के दूसरे कुंवर नाथसिंह[1] के वंशज थे और 'महाराज' उनकी उपाधि थी।

बूंदी के कुंवर उम्मेदसिंह के छोटे भाई दीपसिंह को २५००० रु० वार्षिक आय की लाखोले की जागीर का पट्टा महाराणा की आज्ञा के बिना ही लिख देने के कारण महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने अपने कुंवर प्रतापसिंह से अप्रसन्न होकर उसे क़ैद करना चाहा और एक दिन उसे कृष्णविलास महल में बुलाया, जहां महाराणा के आदेशानुसार नाथसिंह ने उसे पीछे से पकड़ लिया। फिर महाराणा की मृत्यु से कुछ दिनों पहले नाथसिंह को यह खयाल हुआ कि कहीं उसके पीछे प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा तो वह मुझे अवश्य दंड देगा। राघवदेव झाला (देलवाड़े का), भारतसिंह (खैराबाद का), जसवंतसिंह (देवगढ़ का), और उम्मेदसिंह (शाहपुरे का) की सलाह से उसने प्रतापसिंह को विष देकर मार डालने का उद्योग किया, परन्तु उसमें सफलता न हुई। कितने एक सरदारों से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का विरोध हो जाने पर उसके आदेशानुसार भैंसरोड़गढ़ के सरदार लालसिंह ने नाथसिंह को, जो राजद्रोही सरदारों का सहायक माना जाता था, मार डाला।

नाथसिंह के पीछे उसके पुत्र भीमसिंह का बेटा शिवदानसिंह बागोर का स्वामी हुआ। शिवदानसिंह के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह पीछे से महाराणा जवानसिंह का और चौथा सरूपसिंह सरदारसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। शेष दो पुत्रों में से द्वितीय पुत्र सुजानसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से शेरसिंह ठिकाने का मालिक हुआ। शेरसिंह के पांच पुत्र शार्दूलसिंह, सौभागसिंह, समर्थसिंह, शक्तिसिंह और सोहनसिंह हुए। शार्दूलसिंह पर महाराणा सरूपसिंह को ज़हर दिलाने का दोष

---

(१) वंशक्रम—(१) नाथसिंह। (२) शिवदानसिंह (भीमसिंह का पुत्र)। (३) शेरसिंह। (४) शंभुसिंह। (५) समर्थसिंह। (६) सोहनसिंह। (७) शक्तिसिंह।

लगाया जाकर वह क़ैद किया गया और क़ैद की हालत में ही मरा। सौभाग-सिंह का बचपन में ही देहान्त होगया, इसलिए शेरसिंह का उत्तराधिकारी शार्दूलसिंह का पुत्र शंभुसिंह हुआ। महाराणा सरूपसिंह ने शंभुसिंह को गोद लिया तब शेरसिंह के तीसरे पुत्र समर्थसिंह को ठिकाने का अधिकार मिला। वि० सं० १६२६ (ई० स० १८६६) में समर्थसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर महाराणा शंभुसिंह ने उसके पांचवें भाई सोहनसिंह को पोलिटिकल एजेन्ट के विरोध करने पर भी बागोर का स्वामी बना दिया और उसके बड़े भाई शक्तिसिंह को, जो वास्तविक हक़दार था, ठिकाने में से ७००० रु० वार्षिक आय की जागीर दिये जाने की आज्ञा दी। इसपर शक्तिसिंह ने बड़ा फ़साद मचाया, जिससे वह सेना भेजकर उदयपुर लाया गया।

शंभुसिंह के निस्सन्तान मर जाने पर शक्तिसिंह का पुत्र सज्जनसिंह महाराणा हुआ। तब समर्थसिंह के यहां गोद जाने के कारण सोहनसिंह ने मेवाड़ की गद्दी का दावा किया, परन्तु अंग्रेज़ी सरकार ने उसका दावा स्वीकार न किया, जिसपर उसने यहांतक बखेड़ा मचाया कि अंग्रेज़ी सरकार ने सेना भेज उसे गिरफ़्तार कराकर बनारस भेज दिया और उसकी जागीर ज़ब्त हो गई। फिर उक्त सरकार की स्वीकृति से महाराणा ने उसे बनारस से वापस बुला लिया और उसके यह लिख देने पर कि भविष्य में मैं कभी मेवाड़ या बागोर का दावा न करूंगा उसके निर्वाह के लिए १०००० रु० वार्षिक नियत किये और अपने पिता शक्तिसिंह को बागोर का स्वामी बनाया। सोहनसिंह के कोई पुत्र न होने और शक्तिसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुजानसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से महाराणा फ़तहसिंह ने बागोर को ख़ालसे कर लिया।

करजाली

करजाली के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के तीसरे पुत्र बाघसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' उनकी उपाधि है।

---

(१) वंशक्रम—(१) बाघसिंह। (२) भैरवसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) अनूपसिंह। (५) सूरजसिंह। (६) लछमणसिंह।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय झूठे दावेदार रत्नसिंह के तरफ़दार सरदार जब माधवराव सिंधिया को उदयपुर पर चढ़ा लाये उस समय बाघसिंह ने तोपों की मार से शहर पर उसका अधिकार न होने दिया। इसपर सिंधिया ने तोपों की मार बन्द कराने के लिए उसके पास ५०००० रु० भिजवाये। उसने वे रुपये लेकर महाराणा के नज़र कर दिये पर तोपों की मार ज्यों की त्यों जारी रखी, जिससे मरहटों की बड़ी हानि हुई और वे लगातार छः महीने तक लड़ते रहे तो भी शहर पर कब्ज़ा न कर सके। महापुरुषों के साथ की उक्त महाराणा की पहली लड़ाई में बाघसिंह लड़ा। फिर गोड़वाड़ पर रत्नसिंह का अधिकार हो जाने की ख़बर पाकर महाराणा ने उसे ससैन्य वहां भेजा। उसने गोड़वाड़ से रत्नसिंह को निकाल दिया। महाराणा हम्मीरसिंह के बाल्यावस्था में ही गद्दी पाने से अमरचन्द बड़वा और मेहता अगरचन्द की सलाह से महाराज बाघसिंह तथा शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह ने राज्य की रक्षा एवं प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लिया।

बाघसिंह का उत्तराधिकारी भैरवसिंह हुआ, जो बन्दूकें तथा मूर्तियें बनाने में निपुण था। उदयपुर के सज्जननिवास बाग़ के निकट की काला व गोरा भैरवों में से गोरे की मूर्ति उस(भैरवसिंह)की बनाई हुई है। भैरवसिंह के निस्सन्तान होने के कारण उसके पीछे शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह का दूसरा पुत्र दौलतसिंह गोद गया।

मेवाड़ की अत्यन्त निर्बल दशा में जब महाराणा भीमसिंह की कुंवरी कृष्णकुमारी को मार डालने का प्रस्ताव अमीरख़ां ने रखा और महाराणा को अपनी निर्बलता के कारण उसे स्वीकार करना पड़ा (जिसका सविस्तर वृत्तान्त पहले लिखा जाचुका है) उस समय महाराज दौलतसिंह (भैरवसिंहोत) को कृष्णकुमारी का बध करने की आज्ञा दी गई तो उस क्षत्रिय वीर का क्रोध भड़क उठा और उसकी देह में आगसी लग गई, जिससे आवेश में आकर उसने कहा—"ऐसा क्रूर और अमानुषिक आदेश करनेवाले की जीभ कट कर गिरजानी चाहिये। निरपराध बाला पर हाथ उठाना मेरा धर्म नहीं है, यह तो हत्यारों का काम है"। ऐसा कहकर उसने उस आज्ञा का पालन करना स्वीकार न किया। दौलतसिंह के पीछे उसका पुत्र अनूपसिंह जागीर का

स्वामी हुआ। उसके भी कोई पुत्र न था जिससे उसने अपने छोटे भाई दलसिंह के, जो शिवरती गोद गया था, द्वितीय पुत्र सूरतसिंह को गोद लिया।

महाराणा सज्जनसिंह के निस्सन्तान होने के कारण उसके पीछे मेवाड़ की गद्दी का हक़दार महाराज सूरतसिंह ही समझा गया, परन्तु उसकी निस्पृह तथा उदासीन वृत्ति के कारण उसकी स्वीकृति से ही उसका छोटा भाई फ़तहसिंह मेवाड़ का स्वामी बनाया गया। महाराणा फ़तहसिंह ने सूरतसिंह को २००० रु० की आय का सुकेर गांव देकर अपनी कृतज्ञता का अल्प परिचय दिया। सूरतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र[1] हिम्मतसिंह के शिवरती गोद चले जाने पर उस (सूरतसिंह)के पीछे उसका दूसरा पुत्र लक्ष्मणसिंह करजाली का स्वामी हुआ जो इस समय विद्यमान है।

शिवरती

शिवरती के स्वामी महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के चौथे कुंवर अर्जुनसिंह[2] के वंशज हैं और 'महाराज' उनकी उपाधि है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय मेवाड़ पर माधवराव सिंधिया की चढ़ाई हुई उस समय अर्जुनसिंह ने उसकी सेना से युद्ध किया। फिर गंगराड़ में महापुरुषों के साथ महाराणा की जो लड़ाई हुई उसमें वह (अर्जुनसिंह) महाराणा के साथ हरावल में रहकर बड़ी बहादुरी के साथ लड़ा और उसके कई घाव लगे[3]। महाराणा हम्मीरसिंह की नाबालिग़ी के समय अगरचन्द मेहता, अमरचन्द बड़वा आदि मुसाहियों की सलाह से अर्जुनसिंह और करजाली

---

(१) महाराज सूरतसिंह का चतुर्थ पुत्र चतुरसिंह विद्वान् होने के अतिरिक्त बहुश्रुत और मेवाड़ी भाषा का उत्तम कवि था। उसका देहान्त कुछ समय पूर्व हो गया है।

(२) वंशक्रम—(१) अर्जुनसिंह। (२) सूरजमल। (३) दलसिंह। (४) गजसिंह। (५) हिम्मतसिंह। (६) शिवदानसिंह।

(३) लग्गि अजन महाराज के, समर पंचदस घाय।
कहुं तन देखिय सिलह कटि, खत्रवट छाप सुहाय॥
कृष्ण कवि; भीमविलास।

के महाराज बाघसिंह ने राज्य की रक्षा का सारा भार अपने ऊपर लिया। उसने अपनी अंतिम अवस्था में काशी-निवास किया और वहीं उसका शरीरान्त हुआ।

अर्जुनसिंह का ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह अपने पिता के जीतेजी मर गया, जिससे उसका उत्तराधिकारी शिवसिंह का पुत्र सूरजमल हुआ। सूरजमल महाराणा भीमसिंह का कृपापात्र था। महाराणा ने उसे सालेड़ा ग्राम भी दिया[1]। सूरजमल के पुत्र न था, जिससे उसका उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई दौलतसिंह का, जो करजाली गोद गया था, द्वितीय पुत्र दलसिंह हुआ। उसकी उत्तम सेवाओं एवं स्वामि-भक्ति से प्रसन्न होकर महाराणा सरूपसिंह ने उसे ऊथरदा, तीतरड़ी आदि गांव दिये।

दलसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र गजसिंह शिवरती का मालिक हुआ। महाराणा सज्जनसिंह की नाबालिगी के समय वह रीजेन्सी कौंसिल और पीछे से महद्राजसभा का सदस्य रहा। गजसिंह के पुत्र न था, जिससे उसने अपने सबसे छोटे भाई फ़तहसिंह को अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया, परन्तु फ़तहसिंह को मेवाड़ की गद्दी मिलने से उस (गजसिंह) का उत्तराधिकारी उसके छोटे भाई सूरतसिंह (करजालीवाले) का ज्येष्ठ पुत्र हिम्मतसिंह हुआ। उसका ज्येष्ठ पुत्र शिवदानसिंह शिवरती का वर्तमान स्वामी है।

कारोई

कारोई के सरदार महाराणा जयसिंह के तीसरे पुत्र उम्मेदसिंह[2] के वंशज हैं और 'महाराज' (बावा) उनका ख़िताब है।

---

(१) महाराज सूरजमल की उत्तम सेवा और राजनिष्ठा पर प्रसन्न हो महाराणा भीमसिंह ने प्रथम वर्ग के कतिपय सामन्तों के देहावसान पर उनके ठिकानों में जाकर उनके उत्तराधिकारियों को मातमपुर्सी के हेतु उदयपुर लाने तथा तलवारबन्दी के समय उनको महलों में लाने का कार्य उस (सूरजमल) से लेना आरम्भ किया, तब से यह कार्य उसके वंशज करते हैं।

(२) वंशक्रम—(१) उम्मेदसिंह। (२) बख़्तसिंह। (३) गुमानसिंह। (४) बख़्तावरसिंह। (५) सूरतसिंह। (६) फ़तहसिंह। (७) हम्मीरसिंह। (८) रत्नसिंह। (९) विजयसिंह।

जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के देहान्त के पीछे जयपुर की गद्दी के लिये ईश्वरीसिंह और माधवसिंह के बीच जब विरोध हुआ उस समय महाराणा ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाना चाहा और उसके लिये मल्हारराव होल्कर को अपना सहायक बनाने के विचार से उम्मेदसिंह के पुत्र बख़्तसिंह को उसके पास भेजा। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय जब माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर चढ़ाई की उस समय महाराज गुमानसिंह (बख़्तसिंह का पुत्र) रमणा पोल नामक दरवाज़े पर रहकर मरहटों से लड़ा। गुमानसिंह का छठा वंशधर विजयसिंह कारोई का वर्तमान सरदार है।

बावलास

बावलास के सरदार महाराणा जयसिंह के दूसरे पुत्र प्रतापसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनका ख़िताब है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरा) बूंदी के राव राजा अजीतसिंह के हाथ से मारा गया उस समय बावलास का महाराज दौलतसिंह भी बूंदीवालों के हाथ से मारा गया और उसका छोटा भाई अनूपसिंह घायल हुआ। जब माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर चढ़ाई की उस समय महाराज अनूपसिंह शिताब पोल पर तैनात रहकर लड़ा था।

अनूपसिंह का चौथा वंशधर भूपालसिंह हुआ, जिसका पुत्र रघुनाथसिंह बावलास का वर्तमान सरदार है।

बनेड़ा

बनेड़े के स्वामी महाराणा राजसिंह के चतुर्थ पुत्र भीमसिंह के वंशज हैं और 'राजा' उनका ख़िताब है। भीमसिंह[2] महाराणा जयसिंह से क़रीब सात महीने छोटा और बड़ा वीर था। महाराणा राजसिंह के समय मेवाड़ पर जब

---

(१) वंशक्रम—(१) प्रतापसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) श्यामसिंह। (४) दौलतसिंह। (५) अनूपसिंह। (६) इन्द्रसिंह। (७) भवानीसिंह। (८) गोपालसिंह। (९) भूपालसिंह। (१०) रघुनाथसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) भीमसिंह। (२) सूरजमल। (३) सुलतानसिंह। (४) सरदारसिंह। (५) रायसिंह। (६) हम्मीरसिंह। (७) भीमसिंह (दूसरा)। (८) उदयसिंह। (९) संग्रामसिंह। (१०) गोविन्दसिंह। (११) अक्षयसिंह। (१२) अमरसिंह।

औरंगज़ेब की चढ़ाई हुई तब भीमसिंह ने शाही सेना पर आक्रमण कर उसके कई थाने नष्ट कर दिये। शाहज़ादे अकबर के दबाव डालने पर सेनापति तहव्वरखां देसूरी के घाटे की ओर बढ़ा उस समय उस (भीमसिंह) ने उसका सामना किया। फिर महाराणा की आज्ञा से वह गुजरात पर चढ़ाई कर ईडर को तहस-नहस करता हुआ बड़नगर पहुंचा और उसे लूटकर वहां वालों से उसने ४०००० रु० दंड लिया। इसके बाद अहमदनगर पहुंचकर उसने दो लाख रुपयों का सामान लूटा और एक बड़ी तथा तीन सौ छोटी मसज़िदों को तोड़ फोड़कर मुसलमानों-द्वारा मेवाड़ के मन्दिर तोड़े जाने का बदला लिया।

औरंगज़ेब और महाराणा जयसिंह के बीच सुलह हो जाने पर वह (भीमसिंह) औरंगज़ेब के पास अजमेर चला गया और उसकी सेवा स्वीकार कर ली। बादशाह ने उसे राजा का ख़िताब, मन्सब, मेवाड़ में बनेड़ा तथा बाहर भी कई परगने जागीर में दिये। फिर बादशाह जब दक्षिण को गया तब वह भी वहां पहुंचा और वहीं वि० सं० १७५१ (ई० स० १६९४) में उसका देहान्त हुआ। उस समय तक उसका मन्सब पांच हज़ारी हो गया था। इस समय उसके वंशजों के अधिकार में बनेड़े का ठिकाना तो मेवाड़ में और अमलां आदि कई ठिकाने मालवे में हैं। भीमसिंह के पीछे उसका दूसरा पुत्र सूरजमल बनेड़े का स्वामी हुआ।

सूरजमल के पुत्र सुलतानसिंह तक तो बनेड़े के स्वामी दिल्ली के मुगल बादशाहों के नौकर रहे, पर सुलतानसिंह के उत्तराधिकारी सरदारसिंह से लगा कर अब तक वे महाराणा की नौकरी करते चले आ रहे हैं। ई० स० १७५० (वि० सं० १८०७) में सरदारसिंह ने बनेड़े में गढ़ बनवाया। ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१३) में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने उससे बनेड़ा छीन लिया, जिससे वह उदयपुर चला गया। उसके कुछ दिनों बाद वहां मर जाने पर महाराणा राजसिंह (दूसरे) ने बनेड़ा शाहपुरे से छुड़ाकर उसके बालक पुत्र रायसिंह को वापस दे दिया और उसकी रक्षा के लिए रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह राठोड़ की ज़मानत पर वहां कुछ सेना रख दी। सरदारों से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का बिगाड़ हो जाने पर रायसिंह महाराणा का तरफ़दार हुआ और उज्जैन की लड़ाई में मरहटी सेना से लड़कर मारा गया।

रायसिंह का उत्तराधिकारी हंमीरसिंह हुआ। उसने महापुरुषों से युद्ध कर गुमानभारती को मार डाला और उसका खांडा छीन लिया, जो अब तक बनेड़े में मौजूद है और दशहरे के दिन उसकी पूजा होती है।

हंमीरसिंह के पीछे भीमसिंह (दूसरा), उदयसिंह और संग्रामसिंह क्रमशः बनेड़े के स्वामी हुए।

महाराणा सरूपसिंह के समय राजा संग्रामसिंह के निस्सन्तान मरने पर बनेड़ावालों ने महाराणा की अनुमति के बिना ही गोविन्दसिंह को राजा बना दिया। इसपर महाराणा ने बनेड़े पर फ़ौज भेजे जाने की तजवीज़ की। यह ख़बर पाकर गोविन्दसिंह महाराणा की सेवा में उपस्थित हो गया और उसने यह इक़रार लिख दिया कि भविष्य में बिना महाराणा की अनुमति के बनेड़े की गद्दीनशीनी नाजायज़ समझी जायगी।

गोविन्दसिंह के पीछे उसका पुत्र अक्षयसिंह बनेड़े का स्वामी हुआ। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अमरसिंह हुआ जो बनेड़े का वर्तमान राजा है।

शाहपुरा[1]

शाहपुरे के स्वामी महाराणा अमरसिंह के द्वितीय पुत्र सूरजमल के वंशज हैं और 'राजाधिराज' उनकी उपाधि है।

सूरजमल[2] के दो पुत्र सुजानसिंह और वीरमदेव थे। बादशाह शाहजहां

---

(१) जैसे जयपुर राज्य के ठिकाने खेतड़ी का संबन्ध कोटपूतली परगने के लिये, जो सरकार अंग्रेज़ी से मिला है, सरकार अंग्रेज़ी से और खेतड़ी आदि की जागीर के लिये राज्य जयपुर से है, वैसे ही ठिकाने शाहपुरे का संबन्ध परगने फूलिया के लिये सरकार अंग्रेज़ी और परगने काछोला के लिये महाराणा से है। फूलिया परगने के लिये शाहपुरा-वाले सालाना ख़िराज़ के रु० १००००) सरकार अंग्रेज़ी को देते हैं और परगने काछोला के लिये अन्य सरदारों के समान महाराणा उदयपुर की नौकरी करते और उन्हें ख़िराज़ देते हैं।

फूलिया परगने के लिये शाहपुरे का संबन्ध पहले अजमेर ज़िले के इस्तमरारदारों की नाईं अजमेर के कमिश्नर से था, परन्तु ई० स० १८६६ से उसका संबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट हाड़ोती और टोंक से है।

(२) वंशक्रम—(१) सूरजमल। (२) सुजानसिंह। (३) हिम्मतसिंह। (४)

के राज्य के प्रारम्भ में सुजानसिंह मेवाड़ की सेवा छोड़कर बादशाही सेवा में चला गया तो बादशाह ने फूलिये[1] का परगना मेवाड़ से अलग कर ८०० ज़ात और ३०० सवार के मन्सब के साथ उसे जागीर में दिया। वि० सं० १७०० (ई० स० १६४३) में उसका मन्सब १००० ज़ात और ५०० सवार तक बढ़ा। वि० सं० १७०२ (ई० स० १६४५) में १५०० ज़ात और ७०० सवार का मन्सब पाकर वह शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कंदहार की चढ़ाई में गया। वि० सं० १७०८ (ई० स० १६५१) में उसका मन्सब २००० ज़ात और ८०० सवार हुआ और दूसरी बार कंदहार की चढ़ाई में गया। वि० सं० १७११ (ई० स० १६५४) में बादशाह शाहजहां ने चित्तोड़ के क़िले की नई की हुई मरम्मत को गिराने के लिये सादुल्लाख़ां को भेजा, उस समय सुजानसिंह भी उसके साथ था, जिसका बदला लेने के लिये संवत् १७१५ (ई० स० १६५८) में महाराणा राजसिंह ने शाहपुरे पर चढ़ाई कर २२००० रु० दंड के लिये और सुजानसिंह के भाई वीरमदेव का क़स्बा जला दिया। वि० सं० १७१३ (ई० स० १६५६) में औरंगज़ेब की मदद के वास्ते सुजानसिंह शाहज़ादे मुअज़्ज़म के साथ दक्षिण में भेजा गया। बादशाह शाहजहां के बीमार होने पर जब शाहज़ादे दाराशिकोह ने दक्षिण के सब शाही मन्सबदारों को दिल्ली चले आने की आज्ञा दी उस समय वह भी बादशाह के पास उपस्थित हो गया। फिर वह जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के साथ मालवे में भेजा गया, जहां धर्मातपुर (फतेहाबाद) की लड़ाई में शाहज़ादे औरंगज़ेब के तोपखाने पर उसने बड़ी वीरता के साथ आक्रमण किया और अपने पांच पुत्रों सहित वह काम आया[2]।

दौलतसिंह। (५) राजा भारतसिंह। (६) उम्मेदसिंह। (७) रणसिंह। (८) भीमसिंह। (९) राजाधिराज अमरसिंह। (१०) माधोसिंह। (११) जगतसिंह। (१२) लक्ष्मणसिंह। (१३) नाहरसिंह।

(१) सुजानसिंह ने बादशाह शाहजहां को प्रसन्न करने के लिये अपने अधीन के परगने फूलिया का नाम 'शाहपुरा' रखा और बादशाह के नाम से शाहपुरा नाम का क़स्बा आबाद किया जो उक्त ठिकाने का मुख्य स्थान है।

(२) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑफ़ दी चीफ़्स ऑफ़ मेवार' (पृष्ठ ११) में सूरजमल को बादशाह शाहजहां-द्वारा 'राजा' का ख़िताब मिलना

सुजानसिंह का भाई वीरमदेव भी महाराणा की नौकरी छोड़कर वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में बादशाह शाहजहां के पास चला गया, जिसने उसे ८०० ज़ात और ४०० सवार का मन्सब दिया। कन्दहार आदि देशों पर शाही सेना की चढ़ाइयां हुईं, जिनमें उसने बड़ी बहादुरी दिखाई। उसका मन्सब बढ़ते बढ़ते ३००० ज़ात तथा १००० सवार तक पहुंच गया। एक समय बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे १०००० रु० के रत्न प्रदान किये। फिर वह शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ दक्षिण में भेजा गया, परन्तु बादशाह के बीमार होने पर वापस बुला लिया गया। समूगढ़ की लड़ाई में वह दाराशिकोह की हरावल सेना का अफ़सर हुआ, परन्तु दारा के हार जाने पर औरंगज़ेब का तरफ़दार हो गया। शाहज़ादे शुजा तथा दारा के साथ औरंगज़ेब की जो लड़ाइयां हुईं उनमें वह खूब लड़ा। इसके बाद वह जयपुर के कुंवर रामसिंह के साथ आसाम भेजा गया। आसाम से लौटने पर वह सफ़शिकनखां के साथ मथुरा में तैनात हुआ और वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) के आसपास उसका देहान्त हुआ।

सुजानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र फतहसिंह भी छोटे शाही मन्सबदारों में था। धर्मातपुर की लड़ाई में वह अपने पिता के साथ रहकर लड़ता हुआ काम आया, जिससे उसका बालक पुत्र हिम्मतसिंह सुजानसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु क़रीब छः वर्ष बाद सुजानसिंह का चौथा पुत्र दौलतसिंह शाहपुरे का स्वामी बन बैठा। फ़तहसिंह के वंशज गांगावास और बरसलियावास में विद्यमान हैं।

बादशाह औरंगज़ेब ने महाराणा राजसिंह पर चढ़ाई की उस समय दौलतसिंह बादशाही फ़ौज में शामिल था। दौलतसिंह का उत्तराधिकारी भारतसिंह हुआ। वि० सं० १७६८ वैशाख सुदि ७ शनिवार (ई० स० १७११ ता० १४ अप्रेल) को बान्दनवाड़े के पास महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) और मेवाती रणबाजखां के बीच लड़ाई हुई जिसमें भारतसिंह महाराणा की सेवा[1] में रहकर लड़ा था।

लिखा है, जो भ्रम ही है। म-आ-सिरुल-उमरा तथा अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में सूरजमल को कहीं 'राजा' नहीं लिखा, उसको तो केवल 'सिसोदिया' लिखा है। राजा की उपाधि तो पहले पहल भारतसिंह को मिली थी (कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२७२)

(१) औरंगज़ेब के मरने के बाद फूलिये का इलाक़ा मेवाड़ में मिला लिया गया

भारतसिंह को उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने क़ैद किया और वह क़ैद ही में मरा[1]।

भारतसिंह का उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह हुआ। वह फूलिये का परगना बादशाह की तरफ़ से मिला हुआ समझकर महाराणा की आज्ञा की उपेक्षा करने लगा। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के दबाने पर वह शांत हो गया, परन्तु उक्त महाराणा की मृत्यु के समाचार सुनकर उसने फिर सिर उठाया और अपने आसपास के मेवाड़ के सरदारों से छेड़छाड़ करने लगा तथा अमरगढ़ के रावत दलेलसिंह को दबाना चाहा, परन्तु उसकी वीरता के आगे उस (उम्मेदसिंह) का कुछ बस न चला, तो एक दिन दावत में बुलाकर उसने उसको धोके से मार डाला। इसपर महाराणा ने उसको उदयपुर बुलाया, परन्तु उसके हाज़िर न होने के कारण उस (महाराणा) ने शाहपुरे पर चढ़ाई की तैयारी कर दी। इसकी ख़बर पाने पर बेगूं के रावत देवीसिंह के समझाने से वह उदयपुर जाकर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की सेवा में उपस्थित हो गया। महाराणा ने एक लाख रुपये तथा फ़ौज ख़र्च लेकर उसका अपराध क्षमा किया और उसकी जागीर के पांच गांव दलेलसिंह के पुत्र को 'मूंडकटी' में दिलवाये। फिर वह फूलिया परगने पर अपना स्वतन्त्र अधिकार बतलाने लगा और वि० सं० १७६४ (ई० स० १७३७) में जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के साथ बादशाह मुहम्मदशाह की सेवा में उपस्थित होकर फूलिये को मेवाड़ से फिर स्वतन्त्र कराने का उद्योग करने लगा। इसपर महाराणा ने बादशाह के पास अपना वकील भेजकर उक्त परगने को अपने नाम लिखवा लिया। वि० सं० १७६८ (ई० स० १७४१) में गगवाणा गांव के पास जयपुर के महाराजा जयसिंह और नागौर के महाराजा बख़्तसिंह के बीच लड़ाई हुई उस समय उम्मेदसिंह महाराजा जयसिंह की सेना में था। इस लड़ाई में उस (उम्मेदसिंह) के दो भाई शेरसिंह और कुशलसिंह मारे गये[2]। महाराजा

था, जो मरहटों के आख़िरी वक़्त में मेवाड़ से फिर अलग हुआ (वीरविनोद भाग १, पृष्ठ १४१), इसीसे भारतसिंह महाराणा की सेवा में रहता था।

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १८७८ और २१८२।

(२) वही; संख्या २१६०।

बख़्तसिंह के भागने पर उस(उम्मेदसिंह)ने उसका बहुतसा सामान लूटकर महाराजा जयसिंह के नज़र किया।

वि० सं० १८०४(ई० स० १७४७) में जब महाराणा जगत्‌सिंह (दूसरे) ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठाने के लिये मल्हारराव होलकर की सहायता लेकर जयपुर पर चढ़ाई की उस समय वह (उम्मेदसिंह) महाराणा की सेना में था।

जब महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) को राज्यच्युत कर बागोर के महाराज नाथसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बिठाने का प्रपंच रचा गया, उस समय उम्मेदसिंह आदि विरोधियों ने मेवाड़ के गांव लूटना शुरू किया, परन्तु उसमें उनको सफलता न हुई। महाराणा राजसिंह (दूसरे) को बालक देखकर उम्मेदसिंह ने फिर सिर उठाया और राजा सरदारसिंह से बनेड़ा छीन लिया, जिससे सरदारसिंह महाराणा के पास उदयपुर चला गया और वहीं उसका देहान्त हुआ। फिर महाराणा ने सेना भेजी और उम्मेदसिंह से बनेड़ा छुड़ाकर सरदारसिंह के पुत्र रायसिंह का उसपर अधिकार करा दिया।

उम्मेदसिंह ने अपने छोटे बेटे ज़ालिमसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाने के उद्योग में अपने ज्येष्ठ पुत्र उदोतसिंह को ज़हर देकर मार डाला और उस(उदोतसिंह)के बेटे रणसिंह को मारने के वास्ते एक सिपाही भेजा, जिसने उसपर तलवार का वार किया, जो उसके मुंह पर ही लगा। इतने में उस(रणसिंह)के १४ वर्ष के पुत्र भीमसिंह ने अपनी तलवार उठाई और सिपाही को मार डाला। इससे उम्मेदसिंह का ज़ालिमसिंह को शाहपुरे का मालिक बनाने का इरादा पूरा न होने पाया[1]। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के बुरे बर्ताव

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १८७१

ऐसी प्रसिद्धि है कि उम्मेदसिंह ने रणसिंह के वंश का नाश कर ज़ालिमसिंह को ही राजा बनाना ठान लिया था, परन्तु जब मेहडू चारण कृपाराम ने यह हाल सुना तो उसने जाकर उम्मेदसिंह को यह सोरठा सुनाया—

मिण चुग मोटोड़ाह, तैं आगे खाया घणा।
चेलक चीतोड़ाह, अब तो छोड़ उमेदसी॥

इस सोरठे का प्रभाव उसके चित्त पर ऐसा पड़ा कि उसने अपना वह दुष्ट विचार छोड़ दिया।

से अप्रसन्न होकर बहुत से उमराव उसके विरोधी हो गये, उस समय महाराणा ने उम्मेदसिंह को अपने पक्ष में मिलाने के लिये उसको काछोले का परगना दिया, जिससे वह महाराणा का सहायक बनकर उदयपुर गया और उज्जैन की लड़ाई में माधवराव सिंधिया की सेना से वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र (उदोतसिंह का पुत्र) रणसिंह हुआ। सात वर्ष शासन करने के पश्चात् उसका देहान्त होने पर राजा भीमसिंह और उसके पीछे उसका पुत्र अमरसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। महाराणा भीमसिंह के समय वि० सं० १८८२ (ई० स० १७२५) के माघ महीने में डाकुओं ने उदयपुर में डाका डाला और बहुतसा माल लूट लिया। उस समय वह (अमरसिंह) उदयपुर में था, इसलिये महाराणा ने उसे आज्ञा दी कि वह डाकुओं का पीछा कर उनसे माल ले आवे। महाराणा की आज्ञा पाते ही वह अपने राजपूतों सहित चढ़ा और गोगूंदे के पास डाकुओं को जा दबाया। कितने एक डाकू लड़ते हुए मारे गये और बाक़ी को गिरफ़्तार कर लूटे हुए माल सहित वह उदयपुर ले गया। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको 'राजाधिराज' की पदवी दी, जो अब तक उसके वंशजों में चली आती है।

वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में उसका उदयपुर में ही देहान्त होने पर उसका पुत्र माधोसिंह शाहपुरे का स्वामी हुआ, परन्तु अमरसिंह का देहान्त होने पर फूलिया ज़िले पर सरकार अंग्रेज़ी की ज़ब्ती आ गई, जिसका महाराणा जवानसिंह को बहुत रंज हुआ, क्योंकि वह (अमरसिंह) महाराणा का फ़र्मांबरदार सेवक था। इसलिये महाराणा ने वि० सं० १८८८ माघ सुदि ४ (ई० स० १८३२ ता० ५ फरवरी) को अजमेर में गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेन्टिङ्क से मुलाक़ात करते समय फूलिये पर की ज़ब्ती उठाने का आग्रह किया, जो स्वीकार हुआ और फूलिये पर से सरकारी ज़ब्ती उठ गई।

वि० सं० १९०२ (ई० स० १८४५) में माधोसिंह की मृत्यु होने पर जगत्सिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। वि० सं० १९१० (ई० स० १८५३) में उस (जगत्सिंह) के निस्सन्तान मरने पर कनेछण गांव से लक्ष्मणसिंह गोद गया। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के सिपाही-विद्रोह के समय नीमच की सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी और खज़ाना लूट लिया। उदयपुर के

पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शावर्स को यह सूचना मिलते ही वह महाराणा की सेना के साथ नीमच पहुंचा और बाग़ियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़, गंगरार और सांगानेर (मेवाड़ का) पहुंचा, जहां हम्मीरगढ़ तथा महुआ के स्वामिभक्त सरदार अपने सवारों सहित उक्त कप्तान से जा मिले, परन्तु जब सांगानेर से कूचकर वह शाहपुरे पहुंचा, जहां बाग़ी ठहरे हुए थे, तो वहां के स्वामी (लक्ष्मणसिंह) ने न तो क़िले के दरवाज़े खोले, न उक्त कप्तान की पेशवाई की और न रसद आदि की सहायता दी[1]।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६९) में लक्ष्मणसिंह का निस्सन्तान देहान्त होने पर धनोप के ठाकुर बलवन्तसिंह का पुत्र नाहरसिंह शाहपुरे का राजाधिराज बनाया गया, जो इस समय विद्यमान है।

राजाधिराज नाहरसिंह प्रबन्धकुशल, विद्यानुरागी, बहुश्रुत, मिलनसार, सादा मिजाज़ और नवीन विचार का सरदार है। इसके समय में शाहपुरे की बहुत कुछ उन्नति हुई। सरकार अंग्रेज़ी ने इसकी योग्यता की क़दर कर ई० स० १९०३ में दिल्ली दरबार के अवसर पर इसे के० सी० आई० ई० का खिताब प्रदान किया। इसने इङ्गलैंड की यात्रा कर वहां का अनुभव भी प्राप्त किया है। अंग्रेज़ी सरकार ने पुनः इसकी योग्यता की क़दर कर वंशपरंपरागत ९ तोपों की सलामी का सम्मान भी इसे दिया है।

यह महद्राजसभा का मेम्बर भी रहा। महाराणा फ़तहसिंह के समय इसने अपने को स्वतन्त्र बतलाकर मेवाड़ की नौकरी में जाना बन्द कर दिया, परन्तु अन्त में सरकार अंग्रेज़ी ने यह फ़ैसला दिया कि हर दूसरे साल राजाधिराज एक महीने के लिये महाराणा की सेवा में उदयपुर हाज़िर हुआ करे, पहले जो क़ुसूर किया उसके बाबत एक लाख रुपया जुर्माना महाराणा को दे और पहले के नियमानुसार जमीयत हरसाल भेजता रहे।

---

(१) शावर्स; ए मिसिंग चेप्टर आफ़ दी इंडियन म्युटिनी; पृष्ठ ३९-४०।

द्वितीय श्रेणी के सरदार

हंमीरगढ़

हंमीरगढ़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के कुंवर वीरमदेव[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। हंमीरगढ़ के सिवा ख़ैराबाद, महुआ, सनवाड़ आदि और कई द्वितीय श्रेणी के सरदार वीरमदेव के ही वंशधर हैं।

वीरमदेव का उत्तराधिकारी भोज हुआ, जिसे घोसुंडे और अठाणे की जागीर मिली और उस (भोज) के छोटे पुत्र रघुनाथसिंह को लांगछ का पट्टा दिया गया। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) और सरदारों के बीच बिगाड़ हो जाने पर रघुनाथसिंह के प्रपौत्र धीरतसिंह (धीरजसिंह) ने महाराणा का तरफ़दार होकर माधवराव सिंधिया की सेना तथा महापुरुषों से युद्ध किया। उसकी इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उसे २५००० रु० की बाकरोल (हंमीरगढ़[2]) की जागीर दी।

धीरतसिंह सलूंबर के रावत भीमसिंह का हिमायती और खास सलाहकार था। महाराणा भीमसिंह के समय प्रधान सोमचन्द और भींडर के महाराज मोहकमसिंह ने मरहटों से मेवाड़ को खाली कराने के लिये चूंडावतों की सहायता आवश्यक समझकर जब सलूंबर से रावत भीमसिंह को बुलवाया तब वह इस भय से कि कहीं शक्तावत हमें मरवा न डालें धीरतसिंह तथा आमेट के रावत प्रतापसिंह, कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह आदि कई चूंडावत सरदारों को साथ लेकर उदयपुर गया। फिर महाराणा की अनुमति से झाला ज़ालिमसिंह तथा सिंधिया के सेनापति आंबाजी इंगलिया ने हंमीरगढ़ पर चढ़ाई की। छः सप्ताह तक बड़ी बहादुरी के साथ दुश्मनों का सामना करने के बाद धीरत-

---

(१) वंशक्रम—(१) वीरमदेव। (२) भोज। (३) रघुनाथसिंह। (४) देवीसिंह। (५) उम्मेदसिंह। (६) धीरतसिंह (धीरजसिंह)। (७) वीरमदेव (दूसरा)। (८) शार्दूलसिंह। (९) नाहरसिंह। (१०) मदनसिंह।

(२) महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) की आज्ञा से बाकरोल का नाम हंमीरगढ़ रखा गया।

सिंह रावत भीमसिंह के पास चित्तोड़ चला गया और उसकी जागीर तथा क़िले पर मरहटों ने अधिकार कर लिया। लकवा के शेणवियों तथा आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपंत के बीच जो लड़ाइयां हुई उनमें धीरतसिंह शेणवियों का सहायक रहा और हंमीरगढ़ में शेणवियों से गणेशपंत के घिर जाने पर वह (धीरतसिंह) तथा कई चूंडावत सरदार १५००० सैनिक साथ लेकर शेणवियों की सहायता के लिये वहां जा पहुंचे। गणेशपंत ने बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं का सामना किया। उसने क़िले से बाहर निकलकर उनपर कई आक्रमण किये, जिनमें से एक में धीरतसिंह के दो पुत्र अभयसिंह और भवानीसिंह मारे गये।

वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१५) में धीरतसिंह के मर जाने पर उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र वीरमदेव (दूसरा) हुआ, जिसने पुत्र के अभाव में अपने जीते जी ही महुआ के कुंवर शार्दूलसिंह को गोद लिया। शार्दूलसिंह का पौत्र मदनसिंह हंमीरगढ़ का वर्तमान सरदार है।

चावंड

चावंड के सरदार सलूंबर के रावत कुबेरसिंह[1] के पांचवें पुत्र अभयसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में अभयसिंह के पुत्र सरदारसिंह को पहले नठारे की, फिर भदेसर और अन्त में चावंड की जागीर मिली। वि० सं० १८४६ (ई० स० १७८९) में सरदारसिंह तथा कुरावड़ के रावत अर्जुनसिंह दोनों ने मिलकर सोमचन्द गांधी को, जो शक्तावतों का तरफ़दार था, धोखे से मार डाला। तनख़्वाह न मिलने के कारण सिंधी सिपाहियों ने महाराणा के महलों में धरणा दिया उस समय सरदारसिंह ने उनसे कहा कि जब तक तुम्हारी तनख़्वाह न चुकाई जायगी तब तक मैं तुम्हारी हवालात में रहूंगा।

(१) वंशक्रम—(१) अभयसिंह। (२) सरदारसिंह। (३) रूपसिंह रावत। (४) माधोसिंह। (५) सौभाग्यसिंह। (६) गुमानसिंह। (७) मुकुन्दसिंह। (८) खुमाणसिंह।

इसपर उसे अपनी सुपुर्दगी में लेकर सिपाहियों ने धरणा तो उठा लिया, पर सोमचन्द के भाई सतीदास के इशारा करने से उसपर सख़्तियां होने लगीं। फिर सतीदास तथा उसके भतीजे जयचन्द ने पठानों की चढ़ी हुई तनख़्वाह चुकाकर सरदारसिंह को अपनी हिफ़ाज़त में ले लिया और उसे आहाड़ की नदी के किनारे लेजाकर मार डाला। इसके पीछे गांधियों का प्रभाव कम हो जाने पर ठाकुर अजीतसिंह, रावत जवानसिंह और दूलहसिंह ने महाराणा की आज्ञा से साह सतीदास को पहले कुछ दिनों तक महलों में क़ैद रखा, फिर रावत जवानसिंह और दूलहसिंह वहां से उसे निकालकर दिल्ली दरवाज़े के बाहिर आहाड़ ग्राम की नदी पर ले गये और उन्होंने वहां उसका सिर काटकर सरदारसिंह के बध का बदला लिया। यह खबर सुनकर जयचन्द अपने प्राण बचाने के लिये शहर से भागा, परन्तु चूंडावतों ने नाई गांव के पास पकड़कर उसे भी मार डाला।

सरदारसिंह के पीछे रूपसिंह, माधोसिंह, सौभाग्यसिंह, गुमानसिंह और मुकुन्दसिंह क्रमशः चावंड के स्वामी हुए। मुकुन्दसिंह के पुत्र न था, जिससे भैंसरोड़गढ़ से रावत इंद्रसिंह का दूसरा पुत्र खुमाणसिंह गोद गया, जो इस समय चावंड से सलूंबर गोद गया है।

भदेसर

भदेसर के सरदार सलूंबर के रावत भीमसिंह के दूसरे पुत्र भैरवसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह ने भैरवसिंह को भदेसर का ठिकाना दिया। वह अधिकतर सलूंबर में ही रहा करता था। वि० सं० १८७० (ई० स० १८१३) में सिंधियों की फ़ौज मेवाड़ की तरफ़ आई तो भैरवसिंह ने बसी (सलूंबर से दो कोस) के पास उससे लड़ाई कर उसे भगा दी, परन्तु वह वहीं काम आ गया। उसके पुत्र न होने से चावंड के रावत सरदारसिंह के दूसरे पुत्र हंमीर-

---

(१) वंशक्रम—(१) भैरवसिंह। (२) हंमीरसिंह। (३) उम्मेदसिंह। (४) भूपालसिंह। (५) तख़्तसिंह।

सिंह को, जिसको ठिकाना रायपुर (साहाड़ां के पास) मिला था, गोद लिया। उसके वक्त में अमीरखां ने भदेसर छीनकर वहां अपना थाना विठा दिया और ठिकाने को नींवाहेड़े में मिला लिया। हंमीरसिंह ने रायपुर से चढ़कर भदेसर से मुसलमानों का थाना उठा दिया और उसपर फिर अपना अधिकार जमा लिया। हंमीरसिंह का देहान्त वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र उम्मेदसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण चावंड के रावत सौभाग्यसिंह का पुत्र भूपालसिंह वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में गोद लिया गया। उसने भदेसर में महल आदि बनवाये। उसके तीन पुत्र मानसिंह, तेजसिंह और इन्द्रसिंह हुए। तेजसिंह को सलूंबर के रावत जोधसिंह ने गोद लिया, परन्तु उसका देहान्त जोधसिंह की विद्यमानता में ही हो जाने से उसका बड़ा भाई मानसिंह[1] सलूंबर गोद गया। उस(भूपालसिंह)के तीसरे पुत्र इंद्रसिंह को भैंसरोड़गढ़ के रावत प्रतापसिंह ने अपनी विद्यमानता में गोद लिया। इस तरह भूपालसिंह के पुत्र न रहने के कारण उसने चावंड से अपने भतीजे तख़्तसिंह को गोद लिया, जो भदेसर का वर्तमान रावत है।

बोहेड़ा

बोहेड़े के सरदार भींडर के महाराज मोहकमसिंह (दूसरे) के दूसरे पुत्र फ़तहसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह के समय फ़तहसिंह[2] को बोहेड़े की जागीर और 'रावत' का ख़िताब दिया गया। उसके निस्सन्तान मर जाने पर सकतपुरे से बख़्तावरसिंह गोद गया। उस(फ़तहसिंह)के बड़े भाई भींडर के महाराज ज़ोरावरसिंह के भी पुत्र न था, जिससे उसके देहान्त होने पर उसका बहुत दूर का रिश्तेदार हंमीरसिंह, जो वास्तविक हक़दार न था, पानसल से गोद गया।

(१) मानसिंह का देहान्त भी जोधसिंह की विद्यमानता में हो गया, जिससे बंबोरे से खोनाड़सिंह सलूंबर गोद गया।

(२) वंशक्रम—(१) फ़तहसिंह। (२) बख़्तावरसिंह। (३) अदोतसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) दौलतसिंह। (६) नाहरसिंह।

इसपर फ़तहसिंह का दत्तक होने के कारण बख़्तावरसिंह ने महाराणा जवान-सिंह के समय भींडर के लिए दावा किया और वह कई लड़ाइयां भी लड़ा, पर जब उनसे कोई फल न निकला तब वह भींडर के गांवों में लूटमार करने लगा। इसपर उसकी जागीर ज़ब्त करली गई, पर कुछ दिनों पीछे महाराणा की सेवा में उपस्थित हो जाने पर उसे लौटा दी गई।

बख़्तावरसिंह के पीछे उसका छोटा भाई अदोतसिंह, जिसे उस(बख़्तावर-सिंह)ने अपनी जीवित दशा में ही गोद लिया था, बोहेड़े का मालिक हुआ। अदोतसिंह के समय भींडर के महाराज हंमीरसिंह ने बोहेड़े पर चढ़ाई की, पर अदोतसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ उसका सामना किया, जिससे वह (हंमीरसिंह) उसकी जागीरपर अधिकार न कर सका। महाराणा शंभुसिंह के राजत्वकाल में हंमीरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र शक्तिसिंह को उक्त जागीर दिलाये जाने का दावा किया, जिसपर रिजेंसी कौंसिल ने शक्तिसिंह का हक़ स्वीकार करते हुए यह फ़ैसला दिया कि वह (शक्तिसिंह) अदोतसिंह का उत्तराधिकारी समझा जाय और कुंवरपदे में गुज़ारे के लिए उसे बोहेड़े की जागीर में से ३००० रु० वार्षिक आय के दो गांव-देवाखेड़ा और बांसड़ा-दिये जायें। इसके थोड़े ही दिनों पीछे शक्तिसिंह का देहान्त हो गया। तब महाराज हंमीरसिंह ने महाराणा शंभुसिंह की सेवा में दावा पेश किया कि मेरा तीसरा पुत्र रत्नसिंह अदोतसिंह का दत्तक समझा जाय। महाराणा ने उसका दावा स्वीकार कर लिया, पर अदोतसिंह ने महाराणा की अनुमति के बिना ही अपने भतीजे केसरीसिंह को गोद ले लिया। उसकी इस कार्रवाई से अप्रसन्न होकर महाराणा ने उसकी जागीर के दो गांव-बांसड़ा और देवाखेड़ा-ज़ब्त कर लिये। इसपर अदोतसिंह ने महाराणा की सेवा में अर्ज़ कराई कि आप तो हमारे स्वामी हैं दो गांव तो क्या बोहेड़े की सारी जागीर भी छीन लें तो भी मुझे कोई उज़्र नहीं, परन्तु भींडर-वालों को तो एक बीघा भूमि देना मुझे मंज़ूर नहीं, मेरे ठिकाने का मालिक तो केसरीसिंह ही होगा।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८४) में अदोतसिंह का देहान्त हो जाने पर महाराज हंमीरसिंह के पुत्र मदनसिंह ने अपने भाई रत्नसिंह को बोहेड़े की जागीर दिलाये जाने की प्रार्थना महाराणा सज्जनसिंह से की। इसपर केसरीसिंह

तलब किया गया, परन्तु जब वह हाज़िर न हुआ तब महाराणा की आज्ञा से राय मेहता पन्नालाल के छोटे भाई लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में उदयपुर से सेना भेजी गई, जिसका बड़ी बहादुरी के साथ सामना करने के बाद केसरी-सिंह और उसके साथी बोहेड़े से भाग निकले, परन्तु राज्य की सेना ने उनका पीछा कर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। इसके बाद महाराणा ने फ़ौज ख़र्च की वसूली के लिए बोहेड़े का मंगरवाड़ गांव तो अपने अधिकार में रखा और रावत रत्नसिंह को बोहेड़े का स्वामी बनाया।

रत्नसिंह स्वामिभक्त और प्रबन्धकुशल सरदार था। उसने उजड़े हुए ठिकाने को फिर से आबाद किया और सीमासम्बन्धी झगड़े मिटाकर उसका सुप्रबन्ध किया।

वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र दौलतसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

बुरी सोहबत में पड़ जाने से दौलतसिंह को शराब पीने की लत पड़ गई, जिससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वि० सं० १९५४ (ई० स० १८९७) में वह इस संसार से चल बसा। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नाहरसिंह हुआ, जो इस समय बोहेड़े का स्वामी है।

भूंणास

भूंणास के सरदार महाराणा राजसिंह के आठवें पुत्र बहादुरसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बावा) उनकी उपाधि है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) से बिगाड़ हो जाने पर मेवाड़ के कितने एक सरदार माधवराव सिंधिया को उदयपुर पर चढ़ा लाये। उस समय बहादुरसिंह का प्रपौत्र शिवसिंह महाराणा का तरफ़दार होकर मरहटों से लड़ा। उसका छठा वंशधर एकलिंगसिंह भूंणास का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) बहादुरसिंह। (२) अभयसिंह। (३) देवीसिंह। (४) शिवसिंह। (५) केसरीसिंह। (६) नाहरसिंह। (७) बाघसिंह। (८) किशनसिंह। (९) चतुरसिंह। (१०) एकलिंगसिंह।

पीपल्या

पीपल्या के सरदार महाराणा उदयसिंह (द्वितीय) के पुत्र महाराज शक्तिसिंह के १३ वें पुत्र राजसिंह के दूसरे बेटे कल्याणसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के समय इस ठिकाने पर हाथीराम चंद्रावत का अधिकार था। वि० सं० १६५६ (ई० स० १६०२) में हाथीराम ने महाराणा के एक ऊंट को, जिसपर उस (महाराणा) के कपड़े लदे हुए थे और जो पाटन से पीपल्या होता हुआ उदयपुर जा रहा था, पकड़ लिया। इसपर महाराणा की आज्ञा से कल्याणसिंह[1] ने पीपल्या जाकर हाथीराम को गिरफ़्तार कर लिया और उसे अपने साथ उदयपुर ले गया। इस सेवा के उपलक्ष्य में कल्याणसिंह को महाराणा की ओर से यह ठिकाना मिला। इसके पहले वह सतखंधे का स्वामी था।

महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के राजत्व-काल में रामपुरे के राव गोपालसिंह के पुत्र रत्नसिंह ने रामपुरे पर अधिकार कर लिया। इसपर गोपालसिंह ने बादशाह औरंगज़ेब से उसकी शिकायत की, परन्तु उस (रत्न-सिंह) ने अनिष्ट से बचने तथा बादशाह को प्रसन्न करने के लिये इस्लाम-धर्म स्वीकार कर अपना नाम इस्लामखां और रामपुरे का इस्लामाबाद रखा, जिससे बादशाह ने उसी को रामपुरे का ठिकाना दे दिया। तब गोपालसिंह महाराणा के पास जाकर शाही इलाक़ों में लूटमार करने लगा। उसे इस काम में महाराणा का इशारा पाकर कल्याणसिंह के भाई कीता[2] के पुत्र उदयभान ने पूरी मदद दी।

---

(१) वंशक्रम—(१) कल्याणसिंह। (२) हरिसिंह। (३) हठीसिंह। (४) बाघसिंह। (५) जयसिंह। (६) केसरीसिंह। (७) भीमसिंह। (८) ज़ालिमसिंह। (९) गोकुलदास। (१०) हिम्मतसिंह (रावत)। (११) लक्ष्मणसिंह। (१२) किशन-सिंह। (१३) जीवनसिंह। (१४) भीमसिंह। (१५) सज्जनसिंह।

(२) कीता के दो पुत्र शूरसिंह और उदयभान थे। शूरसिंह के वंशज विनोते के स्वामी हैं और उदयभान को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने मबकाबाजखां की जागीर दी थी।

कल्याणसिंह के पीछे हरिसिंह, हठीसिंह तथा बाघसिंह क्रमशः ठिकाने के मालिक हुए। महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के समय सतारे के कितने एक अधिकारी छत्रपति महाराज शाहू के विरोधी हो गये। तब छत्रपति की इच्छानुसार महाराणा ने रावत बाघसिंह को सतारे भेजा, जिसने उनके बीच मेल करा दिया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर राज्याभिषेक शक[1] ५२ (वि० सं० १७८३=ई० स० १७२६) में छत्रपति शाहू ने अपने सब हिन्दू तथा मुसलमान अधिकारियों के नाम आज्ञापत्र जारी कर बाघसिंह और उसके वंशजों की प्रतिष्ठा एवं मान-मर्य्यादा को बनाये रखने का आदेश करते हुए उसके सम्बन्ध में लिखा 'ये बड़े सत्पुरुष तथा मेरे कुल के हैं। इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है। इन्हीं के प्रताप से भारत में हिन्दू-राज्य अब तक स्थिर है। मेरा आदेश न मानकर कोई हिन्दू इनकी मर्यादा को तोड़ने की दुश्चेष्टा करेगा तो उसके सात पूर्वज नरकगामी होंगे और यदि मुसलमान इनकी इज़्ज़त बिगाड़ने की कोशिश करेगा तो उसे सूअर का मांस खाने का पाप लगेगा'।

बाघसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र जयसिंह हुआ, जिसको उक्त महाराणा ने अपना प्रतिनिधि बनाकर छत्रपति शाहू के पास भेजा। वह (शाहू) जयसिंह का भी उसके पिता की भांति बड़ा सम्मान करता और उसे 'काका' कहकर पुकारता था। वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में जयसिंह का देहान्त हो जाने पर उसका पुत्र केसरीसिंह पीपल्ये का स्वामी हुआ। वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में केसरीसिंह ने अपने गढ़ की मरम्मत कराई और इन्दौर के महाराज मल्हारराव के साथ भाई-चारे का सम्बन्ध स्थापित किया।

महाराणा अरिसिंह के समय माधवराव सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला और अन्त में सन्धि हुई उस समय जो रुपये उसको देने ठहरे उनमें से कई लाख रुपये सरदारों से वसूल करने की व्यवस्था हुई; तदनुसार पीपल्ये से ३५०००) रु० लेने की महाराणा ने आज्ञा दी, जिसका पालन न करने के कारण महाराणा ने उसकी जागीर ज़ब्त कर ली तो वह उदयपुर चला गया

(१) राज्याभिषेक संवत्, जिसको दक्षिणी लोग 'राज्याभिषेक शक' या 'राजशक' कहते हैं, प्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी के राज्याभिषेक के दिन अर्थात् वि० सं० १७३१ ज्येष्ठ शुक्ला १३ से चला था। अब इसका प्रचार नहीं रहा।

और वहीं उसका देहान्त हुआ, जिसपर महाराणा ने उसके पुत्र भीमसिंह को पीपल्ये की जागीर पीछी देदी।

भीमसिंह के पौत्र गोकुलदास के समय मरहटों की सेना मेवाड़ में लूटमार करती हुई पीपल्या जा निकली और उस(गोकुलदास)से कहलाया कि या तो फ़ौजखर्च दो या गढ़ खाली कर दो, परन्तु उसने इन दो बातों में से एक भी नहीं मानी। तब उक्त सेना ने उसके गढ़ पर घेरा डाल दिया और लड़ाई छिड़ गई, जो एक महीने तक जारी रही। अन्त में मरहटों को गढ़ से घेरा उठाना पड़ा। इस युद्ध में उसके २० या २५ रिश्तेदार काम आये। महाराणा सरूपसिंह और उसके सरदारों के बीच अनबन हो गई उस समय गोकुलदास का पुत्र हिम्मतसिंह उस(महाराणा)का सहायक रहा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे 'रावत' की उपाधि से सम्मानित किया। महाराणा का शरीरान्त हो जाने पर हिम्मतसिंह अपने पुत्र लक्ष्मणसिंह को ठिकाने का अधिकार सौंपकर वृन्दावन में जा रहा और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) में लक्ष्मणसिंह अपने भाइयों के हाथ से मारा गया और शेरसिंह का पुत्र किशनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। किशनसिंह का तीसरा वंशधर सज्जनसिंह पीपल्या का वर्तमान स्वामी है।

बेमाली

बेमाली के सरदार आमेट के स्वामी माधवसिंह के तीसरे पुत्र हरिसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

हरिसिंह[1] के पीछे ज़ोरावरसिंह, देवीसिंह, चतुर्भुज, नाथसिंह, भैरवसिंह और ज़ालिमसिंह क्रमशः बेमाली के स्वामी हुए।

महाराणा सरूपसिंह के समय आमेट के रावत पृथ्वीसिंह का वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५७) में देहान्त हो जाने पर ज़ालिमसिंह ने, जो पृथ्वी-

(१) वंशक्रम—(१) हरिसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) देवीसिंह। (४) चतुर्भुज। (५) नाथसिंह। (६) भैरवसिंह। (७) ज़ालिमसिंह। (८) लक्ष्मणसिंह। (९) शिवनाथसिंह। (१०) केसरीसिंह। (११) सोभागसिंह।

सिंह का दूर का रिश्तेदार था, अपने द्वितीय पुत्र अमरसिंह को ठिकाने का अधिकार दिलाना चाहा और तलवारबंदी के ४४००० तथा प्रधान की दस्तूरी के ४००० रु० देकर महाराणा की स्वीकृति प्राप्त कर ली। इसपर जीलोला के सरदार दुर्जनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र चत्रसिंह ने, जो पृथ्वीसिंह का सब से नज़दीकी रिश्तेदार होने के कारण ठिकाने का वास्तविक हक़दार था, महाराणा के गुप्त परामर्श के अनुसार आमेट पर चढ़ाई कर अधिकार कर लिया। ज़ालिमसिंह से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें उस (ज़ालिमसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र पद्मसिंह मारा गया। आमेट का अधिकार रावत चत्रसिंह को दिलाने की महाराणा की गुप्त कार्यवाही का पता चल जाने पर अमरसिंह के तरफ़दार सरदारों ने खैरवाड़े के असिस्टेन्ट पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान ब्रुक को लिखा कि अमरसिंह को आमेट का अधिकार न दिलाया जायगा तो मेवाड़ में भारी बखेड़ा खड़ा हो जायगा। अन्त में आमेट का स्वामी तो चत्रसिंह ही बनाया गया, पर महाराणा शंभुसिंह ने रावत अमरसिंह को आमेट तथा खालसे में से जागीर देकर मेजा का प्रथम श्रेणी का सरदार बनाया।

ज़ालिमसिंह को महाराणा शंभुसिंह ने रावत का ख़िताब दिया। उसके पीछे लक्ष्मणसिंह और उसके बाद शिवनाथसिंह बेमाली का मालिक हुआ। शिवनाथसिंह के निस्सन्तान मरने से केसरीसिंह गोद गया। केसरीसिंह के पीछे सोभागसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो विद्यमान है।

ताणा

ताणा के सरदार सादड़ी के स्वामी कीर्तिसिंह के दूसरे पुत्र नाथसिंह के वंशज हैं और 'राज' उनकी उपाधि है।

नाथसिंह[1] को महाराणा अमरसिंह के समय ताणा की जागीर और 'राज' का ख़िताब दिया गया। नाथसिंह का पांचवां वंशधर देवीसिंह महाराणा सज्जनसिंह के समय में इजलास खास एवं महद्राजसभा का सदस्य बनाया गया। उसका पौत्र रत्नसिंह ताणे का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) नाथसिंह। (२) गुलाबसिंह। (३) किशोरसिंह। (४) हम्मीरसिंह। (५) भैरवसिंह। (६) देवीसिंह। (७) अमरसिंह। (८) रत्नसिंह।

रामपुरा

रामपुरे के सरदार बदनोर के स्वामी जोधसिंह के पुत्र गिरधारीसिंह के वंशज हैं।

महाराणा सरूपसिंह के समय गिरधारीसिंह[1] को रामपुरे की जागीर दी गई। गिरधारीसिंह के पीछे संग्रामसिंह और उसके बाद गुलाबसिंह रामपुरे का स्वामी हुआ। गुलाबसिंह का पुत्र रामसिंह रामपुरे का वर्तमान सरदार है।

खैराबाद

खैराबाद के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के तीसरे पुत्र वीरमदेव[2] के वंशज हैं और 'बाबा' उनकी उपाधि है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय वीरमदेव का प्रपौत्र संग्रामसिंह रणबाज़खां के साथ की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा। जब महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठलाने के लिये चढ़ाई की और जामोली गांव में उसका ठहरना हुआ उस समय अवकाश देखकर उसने पास के देवली गांव को, जो पहले मेवाड़ का था, परन्तु सावर (अजमेर ज़िले में) के शक्तावत ठाकुर इन्द्रसिंह ने दबा लिया था, छुड़ाना चाहा। ठाकुर इन्द्रसिंह गांव देने को राज़ी हो गया, परन्तु उसका युवा पुत्र सालिमसिंह, जो विवाह कर लौटा ही था और विवाह के वस्त्राभूषण भी न उतरे थे, राज़ी न हुआ और शीघ्र ही अपने राजपूतों को एकत्र कर लड़ने को तैयार हो गया। महाराणा ने यह खबर सुनकर राणावत भारतसिंह (वीरमदेवोत) को तोपखाने के साथ कुछ सेना देकर उससे लड़ने के लिये भेजा। भारतसिंह ने सालिमसिंह

---

(१) वंशक्रम—(१) गिरधारीसिंह। (२) संग्रामसिंह। (३) गुलाबसिंह। (४) रामसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) वीरमदेव। (२) ईसरीदास। (३) सबलसिंह। (४) संग्रामसिंह। (५) भारतसिंह। (६) शक्तिसिंह। (७) मोहकमसिंह। (८) सालिमसिंह। (९) अजीतसिंह। (१०) लक्ष्मणसिंह। (११) किशोरसिंह। (१२) जोधसिंह। (१३) बाघसिंह।

को बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न मानी, तब भारतसिंह ने गोलन्दाज़ी शुरू की। तीन दिन तक तोपों और बन्दूकों से सामना हुआ, चौथे दिन सालिमसिंह दरवाज़े खोलकर बाहर आया और बड़ी वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया और भारतसिंह ने देवली पर अधिकार कर लिया।

जब महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय माधवराव सिन्धिया ने उदयपुर पर घेरा डाला उस समय शक्तिसिंह (भारतसिंहोत) एकलिङ्गगढ़ से दक्षिण की ओर की ताराबुर्ज़ पर नियत होकर लड़ा और उक्त महाराणा की टोपल गांव के पास महापुरुषों के साथ की लड़ाई में भी वह महाराणा की सेना में रहकर बड़ी वीरता से लड़ा।

शक्तिसिंह का सातवां वंशधर बाघसिंह खैराबाद का वर्तमान स्वामी है।

महुवा

महुवा के सरदार ख़ैराबाद के स्वामी बाबा संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र पृथ्वीसिंह के वंशज हैं और उनका ख़िताब 'बाबा' है।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में मेवाड़ के अधिकांश सरदार राजद्रोही होकर उदयपुर पर माधवराव सिंधिया को चढ़ा लाये उस समय पृथ्वीसिंह[1] के पुत्र सूरतसिंह ने मरहटों से युद्ध किया और महापुरुषों से महाराणा की जो लड़ाइयां हुई उनमें भी वह लड़ा। उसका पांचवां वंशधर हंमीरसिंह महुवा का वर्तमान सरदार है।

लूणदा

लूणदा के सरदार सलूंबर के रावत किसनदास के दसवें पुत्र विट्ठलदास के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

विट्ठलदास के पौत्र दयालदास का पुत्र रणछोड़दास[2] को महाराणा

---

(१) वंशक्रम—(१) पृथ्वीसिंह। (२) सूरतसिंह। (३) केसरीसिंह। (४) विशनसिंह। (५) शिवसिंह। (६) ग्यानसिंह। (७) हंमीरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) रणछोड़दास। (२) दौलतसिंह। (३) नाहरसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) शिवसिंह। (६) अजीतसिंह। (७) गुलाबसिंह। (८) जवानसिंह। (९) रणजीतसिंह।

अरिसिंह के समय लूणदा की जागीर दी गई। उसके दो पुत्र अजबसिंह और दौलतसिंह हुए। अजबसिंह को तो थाणे का ठिकाना मिला और दौलतसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। दौलतसिंह के पीछे नाहरसिंह जागीर का मालिक हुआ। रावत की उपाधि पहले पहल उसी ने प्राप्त की। उसका छठा वंशधर रणजीतसिंह लूणदा का वर्तमान स्वामी है।

थाणा

थाणे के सरदार लूणदा के स्वामी रणछोड़दास के ज्येष्ठ पुत्र अजबसिंह के वंशज हैं और 'रावत' उनका खिताब है।

अजबसिंह[1] के पीछे सिंहा, कुशलसिंह, कीर्तिसिंह और विजयसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। विजयसिंह को 'रावत' की पदवी मिली। उसके ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह के बाल्यावस्था में ही मर जाने से उस(विजयसिंह)का उत्तराधिकारी सूरजमल हुआ। सूरजमल का प्रपौत्र खुमाणसिंह थाणे का वर्तमान सरदार है।

जरखाणा (धनेर्या)

जरखाणे के सरदार शिवरती के महाराज अर्जुनसिंह के दूसरे पुत्र बहादुरसिंह के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है।

बहादुरसिंह[2] के पीछे जवानसिंह, जसवंतसिंह और मदनसिंह क्रमशः जागीर के स्वामी हुए। मदनसिंह के निस्सन्तान मरने पर उसका भाई पृथ्वीसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

पृथ्वीसिंह के पुत्र मोड़सिंह के भी पुत्र न होने के कारण उसका उत्तराधिकारी उसका भाई उदयसिंह हुआ, जो इस समय विद्यमान है।

---

(१) वंशक्रम—(१) अजबसिंह। (२) सिंहा। (३) कुशलसिंह। (४) कीर्तिसिंह। (५) विजयसिंह। (६) सूरजमल। (७) गंभीरसिंह। (८) प्रतापसिंह। (९) खुमाणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) बहादुरसिंह। (२) जवानसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) मदनसिंह। (५) पृथ्वीसिंह। (६) मोड़सिंह। (७) उदयसिंह।

केलवा

केलवे के सरदार मारवाड़ के राव सलखा के द्वितीय पुत्र जैतमाल के वंशज राठोड़ बीदा[1] के वंशधर हैं और ठाकुर कहलाते हैं।

वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में भीमल गांव में देवी के मन्दिर की पुजारिन का एक ज्योतिषी के इस कथन का समर्थन करने पर कि महाराणा रायमल का उत्तराधिकारी तो कुंवर संग्रामसिंह होगा, महाराणा के दो बड़े कुंवरों-पृथ्वीराज और जयमल-से संग्रामसिंह की लड़ाई हुई, जिसमें वह सख्त घायल होने पर वहां से भागता हुआ सेवंत्री गांव में पहुंचा। संयोगवश उस समय वहां बीदा सकुटुम्ब रूपनारायण के दर्शनार्थ गया हुआ था। उसने संग्रामसिंह को खून से तरबतर देखकर घोड़े से उतारा और उसके घावों पर पट्टियां बांधी। इसी अरसे में उस(संग्रामसिंह)का पीछा करता हुआ जयमल भी वहां पहुंच गया। उसने संग्रामसिंह को सुपुर्द कर देने के लिए बीदा से कहा, परन्तु शरणागत राजकुमार की रक्षा करना अपना धर्म समझकर उसे तो अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया और वह अपने छोटे भाई सीहा व अपने बेटों तथा बहुतसे राजपूतों सहित जयमल और उसके सैनिकों से लड़कर काम आया। उसके साथ उसकी धर्मपत्नी सती हुई, जिसका स्मारक रूपनारायण के मन्दिर के पास अबतक विद्यमान है। उस समय उस(बीदा)का एक पुत्र नेतसिंह, जो मारवाड़ में था, बचने पाया।

जब संग्रामसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ उस समय अपने लिए निस्वार्थ बुद्धि से सकुटुम्ब प्राण देनेवाले बीदा का उसको स्मरण आया और उसकी

---

(१) वंशक्रम—(१) बीदा। (२) नेतसिंह। (३) शंकरदास। (४) तेजमाल। (५) वीरभाण। (६) गोकुलदास। (७) सांवलदास। (८) किशनदास। (९) मोहकमसिंह। (१०) खुंमाणसिंह। (११) अनूपसिंह। (१२) माधवसिंह। (१३) बैरीसाल। (१४) धीरतसिंह। (१५) ओनाड़सिंह। (१६) मदनसिंह। (१७) रूपसिंह। (१८) दौलतसिंह।

बहुत कुछ प्रशंसा[1] कर उसके पुत्रों में से कोई जीवित हो तो उसका सम्मान कर बीदा के ऋण से मुक्त होने का विचार किया, परन्तु उस समय बीदा के पुत्र नेतसिंह का पता न लगने से बीदा के छोटे भाई सीहा के बेटे को बदनोर[2] की जागीर दी। अपने पिछले समय जब महाराणा को बीदा के पुत्र नेतसिंह के विद्यमान होने का पता लगा तब उसने आशिया चारण करमसी को उसे लाने के लिये भेजा, परन्तु उसके आने के पहले ही महाराणा का परलोकवास हो गया, जिससे महाराणा रत्नसिंह ने उसको बेमाली की जागीर दी। फिर बीदा की उक्त सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा उदयसिंह ने भी उसे बणोल की जागीर दी। नेतसिंह चित्तोड़ पर बादशाह अकबर की चढ़ाई के समय शाही सेना से लड़कर मारा गया और उसका पुत्र शंकरदास, उसके दो भाई केनदास और रामदास तथा उस(शंकरदास)का बेटा नरहरदास हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में काम आये।

शंकरदास का उत्तराधिकारी तेजमाल मुसलमानों के साथ की महाराणा प्रतापसिंह तथा महाराणा अमरसिंह की लड़ाइयों में लड़ा। उस(तेजमाल)का पुत्र वीरभाण मांडलगढ़ की चढ़ाई में महाराणा राजसिंह के साथ रहकर मारा गया। उसके पीछे गोकुलदास और उस(गोकुलदास)के उपरान्त सांवलदास बणोल का स्वामी हुआ। मेवाड़ पर औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय जब शाही सेना ने राजनगर की ओर कूच किया तब महाराणा ने यह संदेह कर कि वह राजसमुद्र के बांध को तोड़ने जा रही है, कई सरदारों को उसकी रक्षा के लिये वहां भेजा, जिनमें केलवे की तरफ़ से ठाकुर सांवलदास का चाचा आनन्दसिंह भी था, परन्तु पीछे से महाराणा को जब यह मालुम हुआ कि बादशाह केवल मन्दिरों को तुड़वाता है तालावों को नहीं तब उसने सरदारों

---

(१) सांच वचन अवसाण सुध नाहर ना नट्टे
जेतमाल कुल जनमिया मुख कह न पलट्टे।
जेमलरा दल जूझिया करवाळां कट्टे
सांगो भोगे चित्रकोट सर बीदा सट्टे॥
(प्राचीन पद्य)

(२) अब उसके वंश में मांडल के पास बावड़ी गांव है।

को पत्र लिखकर वापस बुला लिया। पत्र में भूल से आनन्दसिंह का नाम लिखना रह गया, जिससे उसने वापस जाने से इन्कार कर दिया और वह वहीं रह गया। दूसरे दिन वह और उसके साथी शाही सेना से लड़कर सबके सब मारे गये। उसका स्मारक राजसमुद्र के बांध के पास अबतक विद्यमान है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय भोमट के भोमिये बाग़ी हो गये तो महाराणा ने किशनदास को उनपर भेजा। उनके साथ की लड़ाई में किशनदास के बहुतसे कुटुम्बी काम आये, परन्तु भोमिये महाराणा के अधीन हो गये। इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा ने उस (किशनदास) को वि० सं० १७७१ (ई० स० १७१४) में बेमाली और बघोल के बदले देसूरी की बड़ी जागीर तथा उसके जो कुटुम्बी वहां मारे गये उनके पुत्रों को २७ गांव दिये, जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उनसे छूट गये, परन्तु अब तक वहां उनकी 'भोम' मौजूद है। फिर वि० सं० १७७९ (ई० स० १७२२) में उसे देसूरी के बदले केलवे का ठिकाना मिला।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में माधवसिंह के लिये जयपुर की सेना के साथ की राजमहल के पास की लड़ाई में किशनदास के उत्तराधिकारी मोहकमसिंह और उसके चाचा चतरसिंह ने बड़ी वीरता बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको आगरिया की जागीर देना चाहा, परन्तु उसी के अर्ज़ करने पर वह जागीर उसके चाचा (चतरसिंह) को दी गई, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है। मोहकमसिंह का नवां वंशधर दौलतसिंह केलवे का वर्तमान सरदार है।

बड़ी रूपाहेली

बड़ी रूपाहेली के सरदार बदनोर के स्वामी राव जयमल राठोड़ के प्रपौत्र श्यामलदास के तीसरे पुत्र साहबसिंह[1] के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

---

(१) वंशक्रम—(१) साहबसिंह। (२) शिवसिंह। (३) अनूपसिंह। (४) गोपालसिंह। (५) सालिमसिंह। (६) सवाईसिंह। (७) बलवन्तसिंह। (८) चतुरसिंह।

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) की डूंगरपुर, बांसवाड़ा आदि परगनों पर चढ़ाई हुई उस समय साहबसिंह उसके साथ था और वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय रणबाज़खां की सेना से लड़कर घायल हुआ।

साहबसिंह के पीछे उसका पुत्र शिवसिंह रूपाहेली का स्वामी हुआ। वि० सं० १८०० (ई० स० १७४३) में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह का देहान्त हो जाने पर माधवसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने के लिए महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने जयपुर पर चढ़ाई की उस समय वह उसके साथ था। इसके पीछे उसने महाराणा की आज्ञा से जोधपुर के महाराजा अभयसिंह से मिलकर उसे माधवसिंह का तरफ़दार बना लिया। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे एक गांव दिया।

वि० सं० १८१३ (ई० स० १७५६) में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने बनेड़े पर अधिकार कर लिया। तब उस(शिवसिंह)ने वहां के स्वामी सरदारसिंह को सकुटुम्ब अपने यहां रखा। फिर वह उसे उदयपुर ले गया जहां उस(सरदारसिंह)का देहान्त हो जाने पर महाराणा ने उदयपुर से सेना भेजकर बनेड़े पर उसके पुत्र रायसिंह का अधिकार करा दिया और वहां उस(रायसिंह)की रक्षा के लिए शिवसिंह की ज़मानत पर कुछ सेना रखे जाने की आज्ञा दी। उज्जैन में माधवराव सिंधिया के साथ जब युद्ध हुआ तब अनूपसिंह, कुबेरसिंह आदि उस(शिवसिंह)के पांच पुत्र तथा उसका पौत्र गोपालसिंह महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर मरहटों से लड़े। इस युद्ध में कुबेरसिंह काम आया और मेहता अगरचन्द तथा रावत मानसिंह (भैंसरोड़गढ़ का) क़ैद हुए, जिनको उस(शिवसिंह)के भेजे हुए बावरी लोग हिकमत-अमली से निकाल लाये। जब सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला तब वह अपने बेटे व पोते सहित हाथीपोल दरवाज़े पर नियुक्त था। फिर महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में भी वह लड़ा। वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६९) में मोखरूंदा गांव के पास महाराणा तथा राजद्रोही सरदारों के बीच की लड़ाई में भी वह (शिवसिंह) महाराणा की सेना में था।

शिवसिंह के पौत्र गोपालसिंह ने अपने दादा के साथ रहकर कई युद्धों में बड़ी वीरता दिखाई। इसके सिवा वह मेवाड़ पर तुलाजी सिंधिया तथा

थीभाई की चढ़ाई के समय महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर लड़ा। फिर आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि नाना गणेश से रूपाहेली में उसकी लड़ाई हुई, जिसमें वह सख़्त घायल हुआ और उसके तीन भाई, चार चाचा तथा १४० साथी काम आये।

गोपालसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र सालिमसिंह हुआ। मरहटों और पिंडारियों के उपद्रव से तंग आकर महाराणा भीमसिंह ने जब अंगरेज़ी सरकार से संधि की तब महाराणा ने संधि के नियम स्थिर करने के लिए आसींद के सरदार अजीतसिंह के साथ सालिमसिंह को दिल्ली भेजा। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान टॉड ने मेरवाड़े के उपद्रवी मेरों के दमन के लिए महाराणा से अनुरोध किया। इसपर महाराणा ने मेरवाड़े पर सालिमसिंह की अध्यक्षता में सरदारों की जमीयतें भेजीं। मेरों से मेवाड़ी सेना की कई लड़ाइयां हुईं, जिनमें बहुतसे मेर मारे गये और सालिमसिंह घायल हुआ, परन्तु उसने बोरवा, झाक, लुलुवा आदि मेरों के मुख्य स्थानों पर अधिकार कर मेरवाड़े में शांति स्थापित की। उसके लौट जाने पर मेरों ने फिर लूटमार आरम्भ कर दी। उन्होंने झाक के अंग्रेज़ी थानेदार को मार डाला और कई थाने उठा दिये। इसपर कप्तान टॉड ने फिर ठाकुर सालिमसिंह को मेरवाड़े पर भेजा और उधर नसीराबाद से कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची। दोनों सेनाओं ने मेरों को हराकर बोरवा, रामपुरा, सापोला, हथूण, बरार, बली, कूकड़ा, चांग, सारोठ, जवाजा आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया और वहां थाने बिठा दिये। रामगढ़ की लड़ाई में हथूण का खान तथा उसके साथ के २०० मेर बहादुरी से लड़कर मारे गये। मेवाड़ के सरदारों में से भगवानपुरे का रावत मोहकमसिंह खेत रहा। कप्तान टॉड ने ठाकुर सालिमसिंह को लिखा कि किसी थाने में १०० से कम आदमी न रखे जावें। इन्हीं दिनों मेरवाड़े में महाराणा भीमसिंह और कप्तान टॉड के नाम पर भीम-गढ़ तथा टॉडगढ़ बनाये गये। सारे प्रदेश में शान्ति स्थापित कर सेनाएं अपने अपने स्थानों को वापस लौट गईं। मेरों को भविष्य में किसान बनाने के विचार से उन्हें कई स्थानों में ज़मीन दी गई। इस प्रकार मेरवाड़े में शान्ति स्थापित किये जाने का अधिकांश श्रेय मेवाड़ की सेना को ही है। सालिमसिंह

की इस सेवा से प्रसन्न होकर कप्तान टॉड ने उसे प्रशंसापत्र दिया और महाराणा ने सदा के लिए 'अमरबलेणा' घोड़ा, बाड़ी तथा सीख का सिरोपाव देकर सम्मानित किया।

खैराड़ प्रदेश में मीनों के उपद्रव मचाने पर उनका दमन करने के लिए सालिमसिंह के पुत्र सवाईसिंह की अध्यक्षता में दो बार राज्य की सेना भेजी गई। उसके समय लांवे के सरदार बाघसिंह ने रूपाहेली की कुछ भूमि दबा ली। इसपर रूपाहेली और लांबावालों में लड़ाई हुई, जिसमें बाघसिंह के भाई लक्ष्मणसिंह एवं हंमीरसिंह, उसका दत्तक पुत्र बहादुरसिंह तथा न्यारा गांव का बाघसिंह गौड़ मारा गया और सवाईसिंह के तरफ़दारों में से छोटी रूपाहेली का शिवनाथसिंह तथा दो अन्य राजपूत काम आये।

सवाईसिंह के मरने पर उसका पुत्र बलवंतसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जिससे बाघसिंह ने अपने पुत्र आदि की मूंडकटी के बदले तसवारिया गांव लेना चाहा और उसे एजेन्ट गवर्नर जनरल कर्नल ब्रुक की सिफ़ारिश से महाराणा शंभुसिंह ने उक्त गांव दिलाये जाने की आज्ञा भी दे दी। इसी अर्से में ठाकुर बलवंतसिंह इस संसार से चल बसा और उसका उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र चतुरसिंह हुआ, जो इस समय विद्यमान है। अपनी आज्ञा का पालन न होने पर महाराणा ने मेहता गोकुलचन्द की मातहती में तसवारिये पर राज्य की सेना भेजी। तब चतुरसिंह की माता और चाचा ने महाराणा को फ़ौज-खर्च देकर उससे प्रार्थना की कि आप चाहें तो तसवारिया गांव अपने अधिकार में कर लें, परन्तु वह लांबावालों को न दिया जाय। महाराणा ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अबतक वह गांव राज्य के ही अधिकार में है।

भगवानपुरा

भगवानपुरे के सरदार देवगढ़ के स्वामी रावत जसवन्तसिंह के तीसरे पुत्र सरूपसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनका खिताब है।

---

(१) वंशक्रम—(१) सरूपसिंह। (२) ज़ोरावरसिंह। (३) मोहकमसिंह। (४) शिवदानसिंह। (५) सुजानसिंह।

देवगढ़ का इलाक़ा मगरा-मेरवाड़े से मिला हुआ होने के कारण वहां के उपद्रवी मेर लोग अकसर उधर के मेवाड़ के गांवों में लूटमार करते और मौका पाकर उनपर कब्ज़ा भी कर लेते थे। कालूखां नाम के मेर ने भगवानपुरा आदि गांवों पर कब्ज़ा कर लिया, परन्तु सरूपसिंह ने उनपर हमला कर कालूखां को मांडल के पास मार डाला और भगवानपुरे में गढ़ बनाकर वह वहीं रहने लगा। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने उसको वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १८००) वैशाख सुदि १३ (ई० स० १७४३ ता० २५ अप्रेल) को गोड़वाड़ में १५ गांवों सहित जोजावर की जागीर दी, जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय गोड़वाड़ का इलाक़ा जोधपुर के महाराजा को सौंपा गया उस समय जोधपुर की सेवा स्वीकार न करने के कारण ज़ब्त हो गई। तब से मेवाड़ में भगवानपुरे की ही जागीर उसके रही।

महाराणा अरिसिंह (दूसेर) के समय महाराणा और सरदारों के बीच के बखेड़े में देवगढ़ का रावत जसवन्तसिंह महाराणा के विरोधी सरदारों का मुखिया बना और जयपुर से महापुरुषों की सेना ले आया, जिससे उज्जैन की लड़ाई में सिन्धिया की विजय हुई। फिर उसने उदयपुर पर घेरा डाला और अन्त में उससे सुलह हो गई। फिर जसवन्तसिंह ने जयपुर जाकर फ्रान्सीसी सेनापति समरू को रुपयों का लालच देकर अपने पुत्र सरूपसिंह के साथ मेवाड़ पर भेजा। खारी नदी के किनारे लड़ाई होने के बाद समरू किशनगढ़ के राजा बहादुरसिंह के समझाने से महाराणा से सुलह कर लौट गया। तत्पश्चात् सरूपसिंह महाराणा की सेवा में आ गया और सरदारों में दाखिल हुआ। मरहटों वग़ैरह का उपद्रव देखकर महाराणा भीमसिंह ने संवत् १८३५ (ई० स० १७७८) में उस (सरूपसिंह) को लिखा कि हमारी स्वीकृति है कि तुम्हारी जागीर पर कोई हमला करे तो लड़ना और जागीर को मत छोड़ना। वि० सं० १८३६ (ई० स० १७७९) में रावत सरूपसिंह का देहान्त हुआ और उसका ५ वर्ष का बालक पुत्र ज़ोरावरसिंह भगवानपुरे का स्वामी हुआ।

वि० सं० १८४८ (ई० स० १७९१) में महाराणा भीमसिंह माधवराव सिन्धिया से मुलाक़ात करने के लिये उदयपुर से नाहर मगरे गया उस समय महाराणा के साथ के सरदारों में ज़ोरावरसिंह भी शामिल था और वहां पठान

सैनिकों ने उपद्रव कर महाराणा की ड्योढ़ी पर हमला किया उस वक्त उनसे लड़ने में वह भी शरीक़ था। दौलतराव सिंधिया का सैनिक अफ़सर शेणवी (सारस्वत) ब्राह्मण लकवा दादा मेवाड़ में था उस समय सिन्धिया के दूसरे अफ़सर आंबाजी इंगलिया का प्रतिनिधि गणेशपंत भी मेवाड़ में था। इन दोनों में हंमीरगढ़ के पास लड़ाई हुई। तब महाराणा ने १५००० सेना चूंडावतों की अध्यक्षता में लकवा की सहायतार्थ भेजी, जिसमें रावत ज़ोरावरसिंह भी शामिल था। फिर गणेशपंत की सहायता के लिये आंबाजी इंगलिया ने गुलाबराव कोदव को ससैन्य मेवाड़ पर भेजा, जिसके साथ की मूसामूसी गांव के पास की लड़ाई में चूंडावतों की हार हुई और कई राजपूत मारे गये, जिनमें रावत ज़ोरावरसिंह का कामदार भंडारी माणकचंद भी था।

वि० सं० १८५४ (ई० स० १७९७) में उपर्युक्त कालूखां का बदला लेने के लिये उसके कुटुम्बी शमशेरखां ने देवगढ़ जाते हुए मार्ग में कालेरी गांव के पास ज़ोरावरसिंह को घेर लिया और लड़ाई हुई, जिसमें शमशेरखां मारा गया और दौलतगढ़वालों का एक भाई मेघराज ज़ख़्मी हुआ, जिसको भगवानपुरे से जागीर दी गई, जो अबतक उसके वंशजों के अधिकार में है। ज़ोरावरसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा भीमसिंह ने उसे थाणा नाम का गांव दिया। वह गांव मगरा-मेरवाड़े से मिला हुआ होने के कारण उधर मेर लोग लूटमार किया करते थे, जिससे वह थाणे में रहने लगा। वि० सं० १८५५ (ई० स० १७९८) में मेर लोग थाणे की गायें घेर ले गये, जिसपर ज़ोरावरसिंह ने उनका पीछा किया तो बरार के पास लड़ाई हुई और ज़ोरावरसिंह मारा गया, जहां उसका चबूतरा बना हुआ है। उसके पुजारी को उसकी पूजा के निमित्त गांव अलगवास में माफ़ी की ज़मीन दी गई है।

ज़ोरावरसिंह का उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र मोहकमसिंह हुआ। मेरों की लड़ाई में उसके पिता के मारे जाने के कारण वि० सं० १८५६ भाद्रपद वदि ११ (ई० स० १७९९ ता० २७ अगस्त) को महाराणा भीमसिंह ने आलमास गांव उसको दिया, जो पीछे से बखेड़ों के समय उसके हाथ से निकल गया, परन्तु वहां उसके वंशजों की भौम चली आती है। वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) के मार्गशीर्ष में मरहटों की फ़ौज ने भगवानपुरे पर गोलन्दाज़ी

शुरू की और लड़ाई हुई, जिसमें कई आदमी मारे गये, परन्तु रावत सरूपसिंह के दूसरे पुत्र सोभागसिंह की वीरता के कारण मरहटे गढ़ पर अधिकार न कर सके। वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में दौलतराव सिंधिया ने अजमेर का इलाक़ा अंग्रेज़ सरकार के सुपुर्द किया और उसी वर्ष सरकार ने नसीराबाद में छावनी क़ायम की तथा मेरवाड़े के उपद्रवी मेरों को दबाने की आवश्यकता होने के कारण महाराणा को अपने हिस्से का प्रबन्ध करने के लिये लिखा। इसपर कप्तान टॉड ने महाराणा की सम्मति से मेरवाड़े पर रूपाहेली के ठाकुर सालिमसिंह की अध्यक्षता में उधर के सरदारों की जमीयत भेजी, जिसने मेरों को दबाकर शान्ति स्थापित की, परन्तु वि० सं० १८७६ (ई० स० १८२०) में फिर मेरों ने उपद्रव कर झाक के थानेदार को मार डाला और कई थाने उठा दिये। इसपर कप्तान टॉड ने फिर ठाकुर सालिमसिंह को मेरवाड़े पर भेजा और उधर से नसीराबाद से कुछ अंग्रेज़ी सेना भी आ पहुंची। दोनों सेनाओं ने मेरों को हराकर बोरवा आदि कई स्थानों में थाने बिठला दिये। रामगढ़ के पास बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें हथूण का खान तथा उसके साथ के २०० मेर मारे गये और मेवाड़ के सरदारों में से वि० सं० १८७६ (चैत्रादि १८७७) ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १८२० ता० २५ मई) को रावत मोहकमसिंह वीरता से लड़कर मारा गया।

उसका पुत्र शिवदानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। रावत मोहकमसिंह के मारे जाने के कारण महाराणा भीमसिंह ने प्रसन्न होकर उसके ठिकाने की तलवारबंदी तथा भोम की लागत वंशपरंपरा के लिये वि० सं० १८७७ श्रावण वदि ६ (ई० स० १८२० ता० ३१ जुलाई) को माफ़ कर दी और मापा नाम की वहां की लागत भी उसी को बख़्श दी। उसका देहान्त वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९१) में हुआ जिसके पहले उसका पुत्र हंमीरसिंह और पौत्र पृथ्वीसिंह दोनों मर गये थे, जिससे उसका प्रपौत्र सुजानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो भगवानपुरे का वर्तमान स्वामी है।

नेतावल

नेतावल के सरदार महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के छोटे पुत्र नाथसिंह के द्वितीय पुत्र सूरतसिंह[1] के वंशज हैं। उनकी उपाधि 'महाराज' है।

महाराज नाथसिंह के पांच पुत्र थे, उसमें से ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंह की सन्तान बागोर पर रही। दूसरे पुत्र सूरतसिंह के कोई औलाद नहीं हुई, इसलिये उसके छोटे भाई ज़ालिमसिंह का पौत्र रूपसिंह उसके गोद रहा[2]। रूपसिंह को महाराणा भीमसिंह ने सोनियाणा और चावंड्या नामक ग्राम अपनी ओर से जागीर में प्रदान किये, किन्तु मेवाड़ में उस समय मरहटों और पिंडारियों के उपद्रव के कारण उन गांवों के वीरान होने से वह जयपुर चला गया, जहां उसको उसके पूर्वजों की भांति सम्मान के साथ यथेष्ट आय की जागीर प्राप्त हुई और उस जागीर में के दो ग्रामों-गेणोली और भजेड़ा-पर अद्यावधि उसके वंशधरों का अधिकार है। शेष जागीर उसके ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह के मेवाड़ में लौट जाने पर ज़ब्त हो गई। महाराणा जवानसिंह और सरदारसिंह की गया-यात्रा के समय शिवसिंह उनके साथ रहा। गया से लौटते समय महाराणा सरदारसिंह ने उसे अपने साथ उदयपुर लाकर वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४०) में वर्तमान नेतावल की जागीर प्रदान की, जो पहले ज़ालिमसिंह को मिल चुकी थी।

महाराज शिवसिंह महाराणा सरूपसिंह का बड़ा विश्वासपात्र था। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में ग़दर के अवसर पर कर्नल शावर्स की अध्यक्षता में निम्बाहेड़े पर चढ़ाई हुई, जिसमें वह (शिवसिंह) अपनी जमीयत

---

(१) वंशक्रम—(१) सूरतसिंह। (२) रूपसिंह। (३) शिवसिंह। (४) समदरसिंह। (५) भूपालसिंह। (६) हरिसिंह।

(२) 'चीफ्स् एन्ड लीडिङ्ग फेमिलीज़ इन राजपूताना' नामक पुस्तक में सूरतसिंह के पीछे रूपसिंह का ईंते की जगत्सिंहोत राणावत शाखा से गोद आना लिखा है (ई० स० १९२४ का संस्करण), जो बिलकुल निराधार है। पुराने पत्रादि से स्पष्ट है कि रूपसिंह रणसिंह का औरस पुत्र था और रणसिंह बागोर के महाराज नाथसिंह के तृतीय पुत्र ज़ालिमसिंह का बेटा था। रणसिंह अपने पिता की विद्यमानता ही में मर गया, जिससे रूपसिंह प्रथम अपने दादा ज़ालिमसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, परन्तु बाद में गोद जाने से सूरतसिंह का उत्तराधिकारी हुआ।

सहित विद्यमान था। वि० सं० १६१५ (ई० स० १८५८) में बागोर के महाराज शेरसिंह का देहान्त होने पर उसके पुत्रों में परस्पर झगड़े की आशंका देख महाराणा ने उसको बागोर भेजा तो वह उन्हें समझाकर उदयपुर ले गया। वि० सं० १६१६ (ई० स० १८६२) में उसकी मृत्यु होने पर समदरसिंह नेतावल का स्वामी हुआ। समदरसिंह का पुत्र भूपालसिंह और उसका हरिसिंह हुआ, जो नेतावल का वर्तमान स्वामी है।

पीलाधर

पीलाधर के सरदार महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) के दूसरे पुत्र बागोर के महाराज नाथसिंह के चौथे पुत्र भगवत्सिंह[1] के वंशज हैं। भगवत्सिंह का उत्तराधिकारी गुलाबसिंह हुआ। उसका सातवां वंशधर जोधसिंह पीलाधर का वर्तमान स्वामी है।

नींबाहेड़ा (लीमाड़ा)

नींबाहेड़े के सरदार बदनोर के ठाकुर सांवलदास के पांचवें पुत्र अमरसिंह के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

सांवलदास के पुत्र अमरसिंह[2] राठोड़ को महाराणा अमरसिंह के राजत्वकाल में नींबाहेड़े की जागीर मिली। अमरसिंह का उत्तराधिकारी सूरजसिंह हुआ, जो रणबाज़खां और महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के बीच की बांदनवाड़े के समीप की लड़ाई में महाराणा की सेना में था। सूरजसिंह के पीछे महासिंह और उसके बाद उसका उत्तराधिकारी हरिसिंह हुआ। महाराणा

---

(१) वंशक्रम—(१) भगवत्सिंह। (२) गुलाबसिंह। (३) अभयसिंह। (४) विजयसिंह। (५) मुकुन्दसिंह। (६) मोहनसिंह। (७) बदनसिंह। (८) लछमणसिंह। (९) जोधसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) अमरसिंह। (२) सूरजसिंह। (३) महासिंह। (४) हरिसिंह। (५) किशनसिंह। (६) सोभागसिंह। (७) वीरमदेव। (८) अमरसिंह (दूसरा)। (९) दूलहसिंह। (१०) मोड़सिंह।

अरिसिंह (दूसरे) से महापुरुषों का जो युद्ध गंगार के समीप हुआ उसमें हरिसिंह बड़ी वीरता से लड़ा। हरिसिंह का पांचवां वंशधर दूलहसिंह हुआ। उसके निःसन्तान मरने पर मोड़सिंह गोद गया, जो नींबाहेड़े (लीमाड़े) का वर्तमान स्वामी है।

बाठरड़ा

बाठरड़े के स्वामी सारंगदेवोत रावत मानसिंह के छठे पुत्र सूरतसिंह[1] के वंशज हैं और उनकी उपाधि 'रावत' है।

महाराणा जयसिंह का अपने कुंवर अमरसिंह से बिगाड़ हो जाने पर कुंवर अमरसिंह अपने पिता पर चढ़ाई करने के लिए सेना लेने को अपने ननिहाल बूंदी गया उस समय सूरतसिंह उसके साथ था। इस बात से महाराणा उसपर अप्रसन्न हुआ, जिससे वह रामपुरे के रावत रत्नसिंह (इस्लामखां) के पास चला गया, जिसने उसको कनफेड़े का हाकिम बनाया, जहां वह कुछ वर्ष तक रहा। उसके ज्येष्ठ भ्राता महासिंह के अर्ज़ करने पर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में उसे पीछा मेवाड़ में बुला लिया और रावत का खिताब दिया। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय वि० सं० १७६८ (ई० स० १७११) में महाराणा की रणबाज़खां मेवाती के साथ बांदनवाड़े के पास लड़ाई हुई, जिसमें वह अपने ज्येष्ठ भ्राता महासिंह के साथ था। दोनों भाई बड़ी वीरता से लड़े और महासिंह रणबाज़खां को मारकर मारा गया और सूरतसिंह सख्त घायल हुआ। इन दोनों भाइयों की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने महासिंह के पुत्र सारंगदेव को बाठरड़े के एवज़ कानोड़ की बड़ी जागीर दी तथा सूरतसिंह को बाठरड़े की जागीर देकर दूसरी श्रेणी का सरदार बनाया। सूरतसिंह का पुत्र प्रतापसिंह अपने पिता की विद्यमानता ही में गुज़र गया, जिससे उस(सूरतसिंह)का पौत्र जोगीराम उसका क्रमानुयायी हुआ।

---

(१) वंशक्रम—(१) सूरतसिंह । (२) जोगीराम । (३) एकलिंगदास । (४) मोहबतसिंह । (५) दलेलसिंह । (६) मदनसिंह । (७) माधोसिंह । (८) दिलीपसिंह ।

वि० सं० १८०४ (ई० स० १७४७) में महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) ने माधोसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठलाने के लिए चढ़ाई की उस समय जोगीराम और उसका चाचा पद्मसिंह दोनों उसके साथ थे। बनास नदी के तट पर राजमहल के पास जयपुरवालों के साथ की लड़ाई में पद्मसिंह तो मारा गया और जोगीराम घायल हुआ। जोगीराम के पीछे उसका पुत्र एकलिंगदास ठिकाने का स्वामी हुआ। वि० सं० १८४८ (ई० स० १७९१) में सलूंबर के रावत भीमसिंह से चित्तोड़ का क़िला खाली कराने के लिए महाराणा भीमसिंह ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय एकलिंगदास महाराणा की सेना में था। एकलिंगदास के पुत्र मोहबतसिंह के समय आंबाजी इंगलिया ने ठिकाने बाठरड़े पर चढ़ाई कर उसे लूटा और मोहबतसिंह को क़ैद कर लिया, परन्तु महाराणा भीमसिंह ने आंबाजी से कह सुनकर उसे क़ैद से छुड़ा दिया। वि० सं० १८५९ (ई० स० १८०२) में महाराणा की झाला ज़ालिमसिंह आदि के साथ चेजा घाटी के पास लड़ाई हुई, जिसमें वह (मोहबतसिंह) वीरता से लड़ा। इससे प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे चार गांव और दिये।

उसके पुत्र कल्याणसिंह का देहान्त उसके सामने ही हो गया, जिससे उसका पौत्र दलेलसिंह उसके पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ। महाराणा सज्जनसिंह के समय मगरा ज़िले के भील बाग़ी हो गये, जिसपर महाराणा ने अपने मामा महाराज अमानसिंह की अध्यक्षता में सेना भेजी, जिसमें दलेलसिंह का पुत्र मदनसिंह भी शरीक था। दलेलसिंह ने महाराणा फ़तहसिंह को अपने यहां मेहमान किया उस समय उसके पुत्र मदनसिंह ने भेड़का के पहाड़ में शेर (सुनहरी) की शिकार कराई, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने मदनसिंह को सोने के तोड़े, घोड़ा, सिरोपाव आदि और उसके पिता को घोड़ा, सिरोपाव आदि देकर सम्मानित किया। वि० सं० १९५२ (ई० स० १८९५) में महाराणा की आज्ञा से दलेलसिंह सब अधिकार अपने पुत्र मदनसिंह को देकर काशी में जा रहा और आठ वर्ष पीछे वहीं उसकी मृत्यु हुई। मदनसिंह का उत्तराधिकारी माधवसिंह शिक्षित, प्रबन्धकुशल, अच्छा सवार और शिकारी था। उसने मेयो कॉलेज में शिक्षा पाई थी। उसका पुत्र दिलीपसिंह बाठरड़े का वर्तमान स्वामी है।

बंबोरी

बंबोरी के सरदार श्रीनगर(अजमेर ज़िले में)वाले कर्मचन्द परमार (पँवार) के वंशज हैं।

महाराणा रायमल का सब से छोटा कुंवर संग्रामसिंह (सांगा) भीमल गांव में अपने भाइयों के साथ की लड़ाई में घायल होकर सेवंत्री गांव में पहुंचा, जहां से राठोड़ बीदा ने उसको अपने घोड़े पर सवार कराकर गोड़वाड़ में पहुंचा दिया। वहां से वह श्रीनगर (अजमेर ज़िले में) के परमार (पँवार) कर्मचन्द की सेवा में जा रहा। एक दिन कर्मचन्द अपने साथियों सहित जंगल में आराम कर रहा था उस समय सांगा भी कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे सो रहा था। कुछ देर बाद उधर जाते हुए दो राजपूतों ने देखा कि एक सांप सांगा के सिर पर फन फैलाये हुए छाया कर रहा है। उन राजपूतों ने यह बात कर्म-चन्द से कही, जिसे सुनकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और उसने वहां जाकर अपनी आंखों से यह घटना देखी। यह देखकर सांगा के साधारण पुरुष होने के विषय में उसे सन्देह हुआ। बहुत पूछताछ करने पर उसने अपना सच्चा हाल कह दिया, जिससे कर्मचन्द बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उससे कहा कि आपको छिपकर नहीं रहना चाहिये था। फिर उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

जयमल और पृथ्वीराज की मृत्यु के पीछे महाराणा (रायमल) को सांगा का पता लग जाने पर कर्मचन्द और सांगा को अपने पास बुलाया और कर्मचन्द पर प्रसन्न होकर उसे अच्छी ज़ागीर दी।

जब महाराणा सांगा का राज्याभिषेक हुआ तब दूसरे ही साल उसने अपनी आपत्ति के समय में की हुई सेवा के निमित्त कर्मचन्द को परबतसर, मांडल, फूलिया, बनेड़ा आदि पन्द्रह लाख की वार्षिक आय के परगने जागीर में देकर उसे 'रावत' की उपाधि दी। कर्मचंद ने अपना नाम चिरस्थायी रखने के लिये उन परगनों के कई गांव ब्राह्मण, चारण आदि को दान में दिये, जिनमें से अबतक कितने ही उनके वंशजों के अधिकार में हैं। उसके पीछे उस (कर्मचंद) की बड़ी जागीर ज़ब्त हो गई। अब उसके वंश में बंबोरी की जागीर रह गई है।

कर्मचन्द का वंशज रूपसिंह[1] हुआ, जिसका ग्यारहवां वंशधर तेजसिंह बंबोरी का वर्तमान सरदार है।

सनवाड़

सनवाड़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के तीसरे पुत्र वीरमदेव[2] के वंशज होने से वीरमदेवोत राणावत कहलाते हैं और बावा (महाराज) उनका खिताब है। खेराबाद के बावा संग्रामसिंह के छोटे पुत्र शंभुसिंह को सनवाड़ की जागीर मिली।

कुंभलगढ़ की क़िलेदारी का काम वीरमदेवोतों के अधिकार में रहता है। इस समय भी क़िलेदार जसवंतसिंह है, जो सनवाड़ के छोटे भाइयों में है।

महाराज शंभुसिंह, मल्हारराव होल्कर की जयपुर पर चढ़ाई के समय, महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की आज्ञानुसार लड़ने को गया और वह माधवराव सिंधिया की मेवाड़ पर चढ़ाई के समय भी महाराणा की सेना में था।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) को बूंदीवाले अजीतसिंह ने अमरगढ़ के पास अचानक बर्छे से मारा उस समय शंभुसिंह भी काम आया।

महाराणा भीमसिंह का मरहटी सेना से हड़क्याखाल के पास युद्ध हुआ, जिसमें उस (शंभुसिंह) का पौत्र दौलतसिंह अपने भाई कुशलसिंह सहित शामिल था। इस लड़ाई में कुशलसिंह वीरतापूर्वक लड़कर काम आया। दौलतसिंह का पुत्र भैरवसिंह हुआ।

भैरवसिंह के तीसरे वंशधर नाहरसिंह के निःसन्तान मरने पर उसका भतीजा गोवर्द्धनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो सनवाड़ का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रूपसिंह। (२) मुकुन्दसिंह। (३) चन्द्रसिंह। (४) मालदेव। (५) पद्मसिंह। (६) दलेलसिंह। (७) जोधसिंह। (८) सोहनसिंह। (९) संग्रामसिंह। (१०) हम्मीरसिंह। (११) जयसिंह। (१२) तेजसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) शंभुसिंह। (२) जैतसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) भैरवसिंह। (५) गिरधारीसिंह। (६) लछमणसिंह। (७) नाहरसिंह। (८) गोवर्द्धनसिंह।

करेड़ा

करेड़े के सरदार देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह के पुत्र गोपालदास[1] के वंशज हैं और 'राजाबहादुर' उनकी उपाधि है। यह उपाधि उनको जयपुर दरबार की तरफ़ से मिली हुई है।

गोपालदास को महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में करेड़े की जागीर मिली। उस(गोपालदास)के पांचवें वंशधर दलेलसिंह के निस्सन्तान मरने पर अमरसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो करेड़े का वर्तमान सरदार है।

अमरगढ़

अमरगढ़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के पांचवें पुत्र काना[2] (कान्हसिंह) के वंशज (कानावत) हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

काना के नवें वंशधर दलेलसिंह को 'रावत' की उपाधि मिली। महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंह ने उस(दलेलसिंह)को मार डाला, जिसपर महाराणा ने उस(उम्मेदसिंह)को दण्ड दिया इतना ही नहीं, किन्तु उसके पांच गांव दलेलसिंह के पुत्र को मूंडकटी में दिलाये।

दलेलसिंह का तीसरा वंशधर गोविन्दसिंह अमरगढ़ का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) गोपालदास। (२) अजीतसिंह। (३) मोहनसिंह। (४) भवानीसिंह। (५) ज़ालिमसिंह। (६) दलेलसिंह। (७) अमरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कानसिंह। (२) परशुराम। (३) रामसिंह। (४) रत्नसिंह। (५) भगवत्सिंह। (६) नवलसिंह। (७) कोजूराम। (८) मेघसिंह। (९) रणसिंह। (१०) दलेलसिंह। (११) जवानसिंह। (१२) शिवसिंह। (१३) गोविन्दसिंह।

लसाणी

लसाणी के सरदार आमेट के रावत पत्ता के चौथे पुत्र शेखा[1] के वंशज हैं। शेखा के पुत्र दलपतसिंह को महाराणा राजसिंह (प्रथम) की तरफ़ से लसाणी की जागीर मिली।

दलपतसिंह का आठवां वंशधर गजसिंह टोपलमगरी और गंगार के पास महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में बहादुरी से लड़ा। उसका तीसरा वंशधर सुलतानसिंह महाराणा सरूपसिंह के समय आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के निःसन्तान मरने पर, चत्रसिंह व अमरसिंह के बीच हक़दारी का जो झगड़ा हुआ उसमें अमरसिंह का तरफ़दार रहा।

सुलतानसिंह के पौत्र केसरीसिंह का उत्तराधिकारी खुंमाणसिंह लसाणी का वर्तमान सरदार है।

धर्यावद

धर्यावद के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के तीसरे पुत्र सहसमल[2] के वंशज हैं और 'रावत' उनका खिताब है।

कुंवर कर्णसिंह ने शाही खज़ाना लूटने के लिए मारवाड़ के दूनाड़े गांव तक ख़ज़ाने का पीछा किया उस समय सहसमल कुंवर की सेना के शरीक था। बादशाह शाहजहां के समय दक्षिण में लड़ाई चल रही थी उस समय बादशाह की इच्छानुसार महाराणा जगत्सिंह ने सहसमल के पुत्र भोपतराम

(१) वंशक्रम—(१) शेखा। (२) दलपतसिंह। (३) मोहनसिंह। (४) ईसरदास। (५) उम्मेदसिंह। (६) अमरसिंह। (७) सामंतसिंह। (८) केसरीसिंह। (९) बुधसिंह। (१०) गजसिंह। (११) नाहरसिंह। (१२) जसकरण। (१३) सुलतानसिंह। (१४) जसवंतसिंह। (१५) केसरीसिंह। (१६) खुंमाणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सहसमल। (२) भोपतराम। (३) केसरीसिंह। (४) वीरमदेव। (५) विजयसिंह। (६) बख़्तसिंह। (७) सकतसिंह। (८) जोधसिंह (रावत)। (९) सूरजमल। (१०) पेमसिंह। (११) रायसिंह। (१२) रघुनाथसिंह। (१३) बख़्तावरसिंह। (१४) विजयसिंह। (१५) केसरीसिंह (दूसरा)। (१६) प्रतापसिंह। (१७) जसवंतसिंह। (१८) खुंमाणसिंह।

को अपनी सेना के साथ भेजा, जो बादशाही सेना में रहकर लड़ा। उस (भोपतराम) के छठे वंशधर जोधसिंह[1] को रावत का खिताब मिला।

जोधसिंह के चौथे वंशधर रघुनाथसिंह से प्रतापगढ़ (देवलिया) के रावत सामंतसिंह ने धर्यावद का परगना छीन लिया, जिसपर महाराणा भीमसिंह ने वि० सं० १८५० (ई० स० १७९३) में सामंतसिंह से दण्ड लेकर उस (रघुनाथसिंह) का परगना पीछा उसके सुपुर्द करा दिया। रघुनाथसिंह का चौथा वंशधर प्रतापसिंह हुआ। उसका पुत्र जसवंतसिंह निस्सन्तान मरा। जिसका उत्तराधिकारी खुंमाणसिंह धर्यावद का वर्तमान सरदार है।

फलीचड़ा

फलीचड़ा के सरदार कोठारिये के रावत रुक्माङ्गद के पुत्र हरिनाथ[2] के वंशज हैं और 'ठाकुर' कहलाते हैं।

---

(१) जोधसिंह का छोटा भाई उदयसिंह महाराजा माधवसिंह के पास जयपुर चला गया, जिसने उसको ३२००० रु० की आय की जागीर दी। उसका उत्तराधिकारी देवसिंह हुआ। उसके दो पुत्र गोपालसिंह और गोविन्दसिंह हुए। गोपालसिंह जयपुर की जागीर का स्वामी हुआ और गोविन्दसिंह को अलग जागीर मिली। गोविन्दसिंह के चार पुत्र गुलाबसिंह, बलवन्तसिंह, किशनसिंह और मोहब्बतसिंह हुए। अपनी जागीर छूट जाने पर गुलाबसिंह अलवर के राजा विनेसिंह के पास चला गया, जिसने उसको केसरोली की ६००० रु० की जागीर दी। गुलाबसिंह के पुत्र न होने के कारण उसने अपने छोटे भाई बलवंतसिंह के तीसरे पुत्र देवीसिंह को गोद लिया। उसको महाराजा रामसिंह ने जयपुर में करणवास की जागीर दी। देवीसिंह के दो पुत्र बहादुरसिंह और भीमसिंह हुए। बहादुरसिंह अपने पिता की जागीर करणवास का स्वामी हुआ और भीमसिंह अलवर की जागीर केसरोली का।

बहादुरसिंह वयोवृद्ध, बुद्धिमान्, विद्यानुरागी और पुराने ढंग का सरदार है। वह महाराजा रामसिंह और माधवसिंह का कृपापात्र रहा और राज्य के कई महकमों पर नियुक्त रहा। महाराजा माधवसिंह ने अपनी जीवित दशा में उसको अपने पुत्र मानसिंह का अतालीक (Guardian) बनाया था।

(२) वंशक्रम—(१) हरिनाथ। (२) नाथसिंह। (३) शोभानाथ। (४) जोरावरनाथ। (५) हरिनाथ (दूसरा)। (६) प्रतापनाथ। (७) बख़्तावरनाथ। (८) शंभुनाथ।

फलीचड़े का ठिकाना महाराणा राजसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में हरिनाथ के पुत्र नाथसिंह को जागीर में मिला। नाथसिंह का उत्तराधिकारी शोभानाथ हुआ। उसके चौथे वंशधर बख़्तावरनाथ का पुत्र शंभुनाथ फलीचड़े का वर्तमान सरदार है।

संग्रामगढ़

संग्रामगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र जयसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में जयसिंह को संग्रामगढ़ की जागीर मिली।

जयसिंह के उत्तराधिकारी साईंदास के पांचवें वंशधर सुजानसिंह का पुत्र कल्याणसिंह संग्रामगढ़ का वर्तमान सरदार है।

विजयपुर

विजयपुर के सरदार बानसी के रावत नरहरदास के चौथे पुत्र विजयसिंह[2] के वंशज हैं।

विजयसिंह का ग्यारहवां वंशधर नवलसिंह हुआ। उसका उत्तराधिकारी प्रतापसिंह विजयपुर का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) जयसिंह। (२) साईंदास। (३) नाथसिंह। (४) अमरसिंह। (५) गुलाबसिंह। (६) प्रतापसिंह। (७) सुजानसिंह। (८) कल्याणसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) विजयसिंह। (२) कुशलसिंह। (३) लालसिंह। (४) जैतसिंह। (५) अचलदास। (६) बख़्तसिंह। (७) बहादुरसिंह। (८) मोहकमसिंह। (९) भैरवसिंह। (१०) माधोसिंह। (११) जवानसिंह। (१२) नवलसिंह। (१३) प्रतापसिंह।

तृतीय श्रेणी के सरदार

द्वितीय श्रेणी के सरदार विजयपुर तक माने जाते हैं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि अलग अलग महाराणाओं की इच्छानुसार कुछ सरदारों की बैठकें ऊपर कर दी गईं, जिससे कितने एक द्वितीय श्रेणी के सरदार तीसरी श्रेणी में आ गये, परन्तु उनकी मान-मर्यादा पूर्ववत् बनी हुई है। ऐसे ही तीसरी श्रेणी के सरदारों में से कितने एक को ताज़ीम का सम्मान भी है। इस श्रेणी के सरदारों में से कितने एक का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

बंबोरा

बंबोरे के सरदार सलूंबर के रावत कांधल के पुत्र सामंतसिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय की रणबाज़खां के साथ की लड़ाई में सामंतसिंह घायल हुआ। उसकी वीरता से प्रसन्न होकर उक्त महाराणा ने उसे बंबोरे की जागीर दी। उसका पोता (खुंमाणसिंह का पुत्र) कल्याणसिंह उज्जैन की लड़ाई में लड़ा। उसके प्रपौत्र जोधसिंह के सलूंबर के रावत केसरीसिंह के उत्तराधिकारी होने पर उस (जोधसिंह) का पुत्र प्रतापसिंह बंबोरे का स्वामी हुआ और प्रतापसिंह के उत्तराधिकारी ओनाड़सिंह के सलूंबर गोद चले जाने पर उस (प्रतापसिंह) के पीछे ठिकाना नोली से मोड़सिंह गोद गया, जो इस समय विद्यमान है।

रूपनगर

रूपनगर के सरदार सोलंकी वंश के राजपूत हैं और वे 'ठाकुर' कहलाते हैं।

---

(१) वंशक्रम—(१) सामन्तसिंह। (२) खुंमाणसिंह। (३) कल्याणसिंह। (४) सालमसिंह। (५) हम्मीरसिंह। (६) जोधसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) ओनाड़सिंह। (९) मोड़सिंह।

सोलंकियों से गुजरात का राज्य छूटने पर देपा नाम का सोलंकी गुजरात से राण या राणक (भिणाय, अजमेर ज़िले में) में जा बसा। देपा का पुत्र भोज[1] या भोजराज राण से लास (लाछ) गांव (सिरोही राज्य में माल मगरे के पास) में जा बसा। भोज और सिरोही के राव लाखा के बीच शत्रुता हुई और उनकी लड़ाइयां होती रहीं। राव लाखा ने पांच या छः लड़ाइयों में हारने के पीछे ईडर के राव की सहायता से भोज को मारा और सोलंकियों से लास का ठिकाना छीन लिया। तब वे (सोलंकी) मेवाड़ में महाराणा रायमल के पास कुम्भलगढ़ पहुंचे। उस समय देसूरी का इलाक़ा मादड़ेचे चौहानों के अधिकार में था। वहां के चौहान महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करते थे, जिससे महाराणा तथा उसके कुंवर पृथ्वीराज ने भोज के पाता आदि पुत्रों को कहा कि मादड़ेचों को मारकर देसूरी का इलाक़ा लेलो। इसपर सोलंकी रायमल तथा उसके पुत्र सामन्तसिंह ने अर्ज़ की कि मादड़ेचे तो हमारे रिश्तेदार हैं। महाराणा ने उत्तर दिया कि दूसरी जागीर तो देने को नहीं है। तब उन्होंने मादड़ेचों को मारकर १४० गांव सहित देसूरी की जागीर ले ली। रायमल के चार पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र शंकर के वंशज जीलवाड़े के सोलंकी हैं और रूपनगरवाले छोटे पुत्र सामन्तसिंह के वंशज हैं।

सामन्तसिंह का भाई भैरवदास गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ की दूसरी चढ़ाई में भैरवपोल पर लड़ता हुआ काम आया और उस- (सामन्तसिंह)का पौत्र वीरमदेव खुर्रम के साथ की लड़ाई में महाराणा अमरसिंह के साथ रहकर खूब लड़ा। वीरमदेव का तीसरा वंशधर वीका (विक्रम) मेवाड़ पर बादशाह औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय महाराणा राजसिंह की सेवा में रहकर लड़ा और उसने शाहज़ादे अकबर और तहव्वरखां के साथ के युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई तथा उनका ख़ज़ाना लूट लिया। वीका का उत्तरा-

---

(१) वंशक्रम—(१) भोज। (२) पाता। (३) रायमल। (४) सामन्तसिंह। (५) देवराज। (६) वीरमदेव। (७) जसवन्तसिंह। (८) दलपतिसिंह। (९) वीका (विक्रम)। (१०) सूरजमल। (११) श्यामलदास। (१२) वीरमदेव (दूसरा)। (१३) जीवराज। (१४) कुबेरसिंह। (१५) रत्नसिंह। (१६) सरदारसिंह। (१७) नवलसिंह। (१८) बैरीसाल। (१९) भूपालसिंह। (२०) अजीतसिंह।

धिकारी सूरजमल हुआ। वह रणबाज़खां के साथ की महाराणा संग्रामसिंह की लड़ाई में शरीक था। सूरजमल का दसवां वंशधर अजीतसिंह रूपनगर का वर्त्तमान सरदार है।

बरसल्यावास

बरसल्यावास के स्वामी शाहपुरे के सरदार सुजानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र फ़तहसिंह[1] के वंशज हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है। फ़तहसिंह के सातवें वंशधर भवानीसिंह का प्रपौत्र मेघसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

केर्यां

केर्यां के सरदार महाराणा कर्णसिंह के दूसरे पुत्र गरीबदास[2] के वंशज हैं और 'बाबा' उनकी उपाधि है। गरीबदास के आठवें वंशधर भूपालसिंह का पौत्र गुलाबसिंह केर्यां का वर्तमान स्वामी है।

आमल्दा

इस ठिकाने के स्वामी महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के पांचवें पुत्र कान्हसिंह के वंशज होने के कारण कान्हावत कहलाते हैं और 'रावत' उनका ख़िताब है। कान्हसिंह के बेटे परशुरामसिंह के दूसरे पुत्र वैरीशाल को आमल्दे का ठिकाना मिला।

मंगरोप

मंगरोप के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के ग्यारहवें पुत्र पूरणमल[3]

(१) वंशक्रम—(१) फ़तहसिंह। (२) हिम्मतसिंह। (३) किशोरसिंह। (४) किशनसिंह। (५) शंभुनाथ। (६) चन्द्रसिंह। (७) सुजानसिंह। (८) भवानीसिंह। (९) फ़तहसिंह (दूसरा)। (१०) जसवंतसिंह। (११) मेघसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) ग़रीबदास। (२) मनोहरदास। (३) भूपसिंह। (४) उदोतसिंह। (५) पन्नासिंह। (६) सांवलदास। (७) सुजानसिंह। (८) फ़तहसिंह। (९) भूपालसिंह। (१०) रामसिंह। (११) गुलाबसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) पूरणमल (पूरा)। (२) नाथसिंह। (३) महेशदास।

(पूरा) के वंशज (पूरावत) हैं और 'महाराज' (बाबा) उनकी उपाधि है। कहा जाता है कि पूरणमल ने द्वारका जाते समय लूनावाड़े (गुजरात में) के सोलंकी राजा की, जिसपर जूनागढ़ का मुसलमान सूबेदार चढ़ आया था, सहायता की और मुसलमानों से वीरतापूर्वक लड़कर उन्हें हरा दिया। उसकी इस सेवा के बदले वहांवालोंने उसके छोटे पुत्र सबलसिंह को अपने यहां रख लिया और उस(सबलसिंह)को बतौर जागीर के मलिकपुर, आडेर आदि गांव दिये, जो अबतक पूरावतों के कथनानुसार उसके वंशजों के अधिकार में है।

पूरणमल के उदयपुर लौट जाने पर महाराणा अमरसिंह ने उसे मंगरोप की जागीर दी। पूरणमल ने जंगल साफ़ कर मंगरोप गांव बसाया। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र नाथसिंह हुआ। नाथसिंह के महेशदास तथा मोहकमसिंह दो पुत्र हुए, जिनमें से पहला तो उसके पीछे ठिकाने का स्वामी हुआ और दूसरे को महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) ने अर्जने की जागीर दी।

महेशदास के वंशज महेशदासोत और मोहकमसिंह के मोहकमसिंहोत कहलाते हैं। मंगरोप तथा आठूण के ठिकाने तो महेशदासोतों और गुरला, गाड़रमाला, सिंगोली एवं सूरावास के ठिकाने मोहकमसिंहोतों के हैं। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के समय महाराज महेशदास ने नंदराय में अजमेर के मुसलमान सूबेदार की सेना से लड़कर उसे तितर-बितर कर दिया। उक्त महाराणा की आज्ञा से महेशदास ने सरकश भीलों के नठारा और भोराई की पालों पर चढ़ाई कर उनका दमन किया, परन्तु इस चढ़ाई में उसके गले में एक तीर लगा, जिससे वह मर गया। उसके पीछे मंगरोप का स्वामी उसका पुत्र जसवंतसिंह हुआ।

बादशाह औरंगज़ेब ने पुर, मांडल और बदनोर के परगने, जो जज़िये के एवज़ में ख़ालसा किये गये थे, राठोड़ सुजानसिंह (मोटे राजा उदयसिंह के वंशज) के पुत्र जुझारसिंह और कर्ण को दे दिये। जुझारसिंह के भतीजे राजसिंह ने, जो उन परगनों के प्रबन्ध के लिये वहां रहता था, कई चूण्डावतों को

---

(४) जसवंतसिंह। (५) रत्नसिंह। (६) भवानीसिंह। (७) विशनसिंह। (८) बिरदसिंह। (९) मर्यादसिंह। (१०) गिरिवरसिंह। (११) रणजीतसिंह। (१२) ईसरीसिंह। (१३) भूपालसिंह। (१४) नाहरसिंह।

मारकर पुर के पास की अधरशिला नाम की गुफ़ा में डाल दिया और वह आमेट के रावत दूलहसिंह के चार भाइयों को पकड़कर ले गया। इसपर क्रुद्ध हो-कर महाराणा अमरसिंह ने महाराज जसवन्तसिंह तथा देवगढ़ के सरदार द्वारकादास रावत को गुप्त रूप से आज्ञा दी कि राठोड़ों पर चढ़ाई कर उन्हें मेवाड़ से निकाल दो। महाराणा की आज्ञा के अनुसार द्वारकादास अपनी सेना साथ लेकर रवाना हुआ, परन्तु बागोर के पास लसवा गांव में ठहर जाने के कारण नियत स्थान पर जसवन्तसिंह से मिल न सका। जसवन्तसिंह ने पुर पर अकेले चढ़ाई कर राठोड़ों को पराजित किया। किशनसिंह[1] के पुत्र राजसिंह ने पुर से भागकर मांडल में शरण ली, परन्तु जसवन्तसिंह और उसके भतीजे बख़्तसिंह ने वहां से भी उस (राजसिंह) को भगा दिया। इस चढ़ाई में दोनों पक्ष के बहुतसे राजपूत काम आये। जसवन्तसिंह के चार या पांच सौ साथी मारे गये, जिनमें उसका छोटा भाई प्रेमसिंह भी था।

जसवन्तसिंह की उक्त सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा अमरसिंह ने उसे आटूण गांव दिया, जो अबतक मंगरोप के महाराज के कुटुम्बियों के अधिकार में है। जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी रत्नसिंह हुआ। अपने भानजे माधवसिंह को जयपुर की गद्दी दिलाने के लिये ईसरीसिंह से महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) की जो लड़ाई खारी नदी के किनारे हुई उसमें महाराज रत्नसिंह और उसका भाई रणसिंह, जो आर्ज्यां का सरदार था, महाराणा की सेवा में रहकर लड़ा। उसकी इस सेवा के बदले मेवाड़ राज्य की ओर से रत्नसिंह को दांदू-थल और रणसिंह को सिंगोली गांव मिला। दांदूथल अब खालसे के अन्तर्गत है, परन्तु वहां मंगरोप के कुटुम्बियों की अबतक भौम है तथा सिंगोली अबतक रणसिंह के वंशजों के अधिकार में है। रत्नसिंह के पीछे भवानीसिंह और उसके उपरान्त विशनसिंह मंगरोप का स्वामी हुआ।

वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६६) में उज्जैन के पास माधवराव सिंधिया से महाराणा अरिसिंह (दूसरे) का जो युद्ध हुआ उसमें विशनसिंह के नाबा-लिग होने के कारण उसकी जमीयत महाराणा की सेना में सम्मिलित होकर लड़ी। इस लड़ाई में मंगरोप के बहुतसे राजपूत काम आये। इसके उपरान्त

(१) किशनसिंह के वंशज इस समय जूनिया (अजमेर ज़िले में) के इस्तमरारदार हैं।

महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से महाराज विशनसिंह ने अपने भाई पद्मसिंह को, जो आर्ज्या का सरदार था तथा मुहब्बतसिंह को, जो गाडरमाले का अधिकारी था, साथ लेकर पुर पर चढ़ाई की और वहां से मरहटों को निकाल दिया। इस चढ़ाई में विशनसिंह तथा उसके भाइयों के बहुत से आदमी मारे गये। महाराज विशनसिंह के पीछे विरदसिंह, मर्यादसिंह, गिरवरसिंह और रणजीतसिंह क्रमशः ठिकाने के स्वामी हुए। रणजीतसिंह का प्रपौत्र नाहरसिंह मंगरोप का वर्तमान सरदार है।

मोई

जयसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री से महाराणा राजसिंह का विवाह हुआ था। इस सम्बन्ध के कारण उस(मनोहरदास)के पौत्र सबलसिंह का एक पुत्र महासिंह[1] मेवाड़ में गया और उसको मोई की जागीर मिली। मोई के सरदार महासिंह के वंशज हैं।

महासिंह के पीछे जुझारसिंह, सुरताणसिंह, पृथ्वीसिंह और अजीतसिंह क्रमशः ठिकाने के मालिक हुए। वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२)में जसवन्तराव होल्कर सिंधिया से गहरी हार खाकर मेवाड़ में गया, जहां सिंधिया की सेना उसका पीछा करती हुई जा पहुंची। तब होल्कर ने नाथद्वारे जाकर वहां के गोस्वामियों से रुपये वसूल करना और मंदिरों की सम्पत्ति लूटना चाहा। यह खबर पाकर महाराणा भीमसिंह ने कई सरदारों आदि के साथ भाटी अजीतसिंह को भी वहां भेजा। वहां से वे लोग गोस्वामी तथा मंदिरों की मूर्तियों को साथ लेकर चल दिये और ऊनवास होते हुए उदयपुर लौट गये। अजीतसिंह के चौथे वंशधर किशोरसिंह के निःसन्तान मर जाने पर मोरवण से दीपसिंह गोद गया, जिसका उत्तराधिकारी अमरसिंह मोई का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) महासिंह। (२) जुझारसिंह। (३) सुरताणसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) अजीतसिंह। (६) इन्द्रसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) भूपालसिंह। (९) किशोरसिंह। (१०) दीपसिंह। (११) अमरसिंह।

गुरलां

इस ठिकाने के सरदार मंगरोप के स्वामी महेशदास के छोटे भाई मोहकमसिंह के वंशज (मोहकमसिंहोत पूरावत) हैं और 'बावा' इनकी उपाधि है।

डाबला

डाबले के सरदार बदनोर के ठाकुर मनमनदास के छठे पुत्र सबलसिंह के वंशज हैं। यह ठिकाना राठोड़ हरिसिंह को महाराणा राजसिंह के समय में मिला था।

झाडौल

इस ठिकाने के सरदार सादड़ी के स्वामी झाला देदा के द्वितीय पुत्र श्यामसिंह[1] के वंशज हैं और 'राज' उनकी उपाधि है। श्यामसिंह का तेरहवां वंशधर कुबेरसिंह झाडौल का वर्तमान सरदार है।

जामोली

जामोली के सरदार महाराणा उदयसिंह (दूसरे) के नवें पुत्र जगमाल के द्वितीय पुत्र विजयसिंह[2] के वंशज हैं और 'बावा' उनका खिताब है। विजयसिंह का सातवां वंशधर फ़तहसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) श्यामसिंह। (२) महासिंह। (३) अमरसिंह। (४) अगरसिंह। (५) मोहकमसिंह। (६) महासिंह (दूसरा)। (७) अमरसिंह (दूसरा)। (८) दुर्जनशाल। (९) नाहरसिंह। (१०) सालमसिंह। (११) बदनसिंह। (१२) देवीसिंह। (१३) सरदारसिंह। (१४) कुबेरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) विजयसिंह। (२) अगरसिंह। (३) पृथ्वीसिंह। (४) देवीसिंह। (५) नाथसिंह। (६) सरूपसिंह। (७) प्रतापसिंह। (८) फ़तहसिंह।

गाडरमाला

इस ठिकाने के स्वामी गुरलां के पूरावत बावा बख़्तसिंह के भाई भूपतसिंह के वंशधर हैं और उनकी भी उपाधि 'बावा' है। भूपतिसिंह के वंशज केसरीसिंह के निःसन्तान मर जाने से उक्त ठिकाने पर राज्य का अधिकार है।

मुरोली

मुरोली के स्वामी जयसलमेर से आये हुए भाटी अमरसिंह के वंशज हैं। अमरसिंह[1] का आठवां वंशधर मोहनसिंह ठिकाने का वर्तमान सरदार है।

दौलतगढ़

दौलतगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत गोकुलदास (प्रथम) के चौथे पुत्र दौलतसिंह[2] के वंशज हैं।

दौलतगढ़ की जागीर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में दौलतसिंह को दी गई। वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय रणबाज़ख़ां के साथ की लड़ाई में बांदनवाड़े के पास बड़ी वीरता से लड़ता हुआ अपने पुत्र कल्याणसिंह सहित मारा गया। उस(दौलतसिंह)का दूसरा वंशधर ईशरदास माधवराव सिंधिया के उदयपुर के घेरे के समय जलबुर्ज़ के मोर्चे पर नियुक्त होकर लड़ा। उसने महापुरुषों के साथ की टोपलमगरी और गंगार की लड़ाइयों में भी बड़ी वीरता दिखलाई।

ईशरदास के पांचवें वंशधर मदनसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह दौलतगढ़ का वर्तमान सरदार है।

---

(१) वंशक्रम—(१) अमरसिंह। (२) केसरीसिंह। (३) भारतसिंह। (४) किशनसिंह। (५) माधवसिंह। (६) शिवसिंह। (७) सुमेरसिंह। (८) शिवनाथसिंह। (९) मोहनसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) दौलतसिंह। (२) जगत्सिंह। (३) ईशरदास। (४) विशनसिंह। (५) विजयसिंह। (६) रघुनाथसिंह। (७) नवलसिंह। (८) मदनसिंह। (९) उम्मेदसिंह।

साटोला

साटोले के सरदार सलूंबर के रावत केसरीसिंह के चौथे पुत्र रोड़सिंह[1] के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। यह जागीर महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय रोड़सिंह को मिली, जिसका छठा वंशधर दलपतसिंह साटोले का वर्तमान स्वामी है।

बसी

बसी के स्वामी देवगढ़ के रावत गोकुलदास (प्रथम) के छोटे पुत्र सबलसिंह[2] के वंशज हैं।

सबलसिंह के ग्यारहवें वंशधर वैरीसाल का पौत्र दौलतसिंह बसी का वर्तमान स्वामी है।

जीलोला

इस ठिकाने के सरदार आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के छोटे पुत्र नाथसिंह के वंशज हैं। महाराणा राजसिंह (दूसरे) ने उसको जीलोले की जागीर दी।

गुड़लां

गुड़लां के सरदार कोठारिये के चौहानों के वंशज हैं और 'राव' उनकी उपाधि है। रत्नसिंह[3] के वंशधर पद्मसिंह का प्रपौत्र सोहनसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रोड़सिंह। (२) उम्मेदसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) चमनसिंह। (५) चतरशाल। (६) तख़्तसिंह। (७) दलपतसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सबलसिंह। (२) अचलदास। (३) अभयराम। (४) भोपसिंह। (५) पृथ्वीराज। (६) मेघराज। (७) भारतसिंह। (८) शिवसिंह। (९) डूंगरसिंह। (१०) रोड़सिंह। (११) अर्जुनसिंह। (१२) वैरीसाल। (१३) रतनसिंह। (१४) दौलतसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) रत्नसिंह। (२) उदयसिंह। (३) पद्मसिंह। (४) हम्मीरसिंह। (५) रत्नसिंह (दूसरा)। (६) सोहनसिंह।

ताल

ताल के सरदार आमेट के रावत पृथ्वीसिंह के पुत्र मानसिंह के छोटे पुत्र रामसिंह[1] के वंशज हैं। रामसिंह का आठवां वंशधर मोहकमसिंह ताल का वर्तमान स्वामी है।

परसाद

परसाद के सरदार महाराणा प्रतापसिंह के वंशज हैं। यह ठिकाना महाराणा राजसिंह (द्वितीय) के समय चन्द्रसेन के पुत्र कल्याणसिंह[2] को दिया गया। कल्याणसिंह का सातवां वंशधर शिवसिंह परसाद का वर्तमान स्वामी है।

सिंगोली

सिंगोली के सरदार मंगरोप के स्वामी महेशदास के छोटे भाई मोहकमसिंह के वंशज (मोहकमसिंहोत पूरावत) हैं और उनका खिताब 'बाबा' है।

वि० सं० १८२६ (ई० स० १७६९) में महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने नवलसिंह[3] को सिंगोली की जागीर दी। नवलसिंह के पुत्र जगत्सिंह का प्रपौत्र हरिसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

बांसड़ा

बांसड़े के सरदार केर्यावालों के वंशज हैं। यह जागीर उर्जनसिंह[4] को महाराणा भीमसिंह ने दी। उर्जनसिंह के पुत्र लक्ष्मणसिंह का प्रपौत्र मोहबतसिंह बांसड़े का वर्तमान अधिकारी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) रामसिंह। (२) प्रतापसिंह। (३) ज़ोरावरसिंह। (४) जयसिंह। (५) नाहरसिंह। (६) उर्जनसिंह। (७) बख़्तावरसिंह। (८) शिवदानसिंह। (९) मोहकमसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कल्याणसिंह। (२) जसवंतसिंह। (३) मोहकमसिंह। (४) पृथ्वीसिंह। (५) नवलसिंह। (६) दीपसिंह। (७) रायसिंह। (८) शिवसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) नवलसिंह। (२) जगत्सिंह। (३) मानसिंह। (४) शिवदानसिंह। (५) हरिसिंह।

(४) वंशक्रम—(१) उर्जनसिंह। (२) लक्ष्मणसिंह। (३) श्यामलसिंह। (४) हंमीरसिंह। (५) मोहबतसिंह।

कणतोड़ा

कणतोड़े के सरदार छप्पन्या (छप्पन प्रदेश) के राठोड़ हैं। छप्पन्या राठोड़ों की दो शाखाएं-कोलावत और जगावत—हैं। कणतोड़े के स्वामी कोलावत राठोड़ हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है। भूपालसिंह ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

मर्च्याखेड़ी

इस ठिकाने के सरदार भूपसिंह[1] सोलंकी के, जिसे महाराणा भीमसिंह के समय यह ठिकाना मिला, वंशज हैं और 'राव' उनका खिताब है। भूपसिंह का प्रपौत्र विजयसिंह मर्च्याखेड़ी का वर्तमान स्वामी है।

ग्यानगढ़

ग्यानगढ़ के सरदार देवगढ़ के रावत जसवंतसिंह के दूसरे पुत्र गोपालदास (करेड़ावाले) के वंशज हैं और 'रावत' उनकी उपाधि है।

महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में गोपालदास के दूसरे पुत्र ग्यानसिंह[2] को ग्यानगढ़ की जागीर दी गई। ग्यानसिंह के प्रपौत्र रणजीतसिंह का पुत्र शंभुसिंह ग्यानगढ़ का वर्तमान सरदार है।

नीमड़ी

नीमड़ी के सरदार मारवाड़ के राव सलखा के ज्येष्ठ पुत्र मल्लीनाथ (माला) के वंशज हैं और महेचे राठोड़ कहलाते हैं। मल्लीनाथ के वंश में मेघराज हुआ, जिसका पुत्र कल्ला[3] महाराणा उदयसिंह की सेवा में जा रहा,

(१) वंशक्रम—(१) भूपसिंह। (२) माधवसिंह। (३) बख़्तावरसिंह। (४) विजयसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) ग्यानसिंह। (२) रूपसिंह। (३) रघुनाथसिंह। (४) रणजीतसिंह। (५) शंभूसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) कल्ला। (२) बाघसिंह। (३) चन्दनसिंह। (४) मोहनदास। (५) अमरसिंह। (६) भीमसिंह। (७) मेघराज। (८) पृथ्वीराज।

उसने उसको कोशीथल की जागीर दी। वह अकबर की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय राठोड़ जयमल के साथ रहकर लड़ता हुआ मारा गया। कल्ला का पुत्र बाघसिंह हल्दीघाटी की लड़ाई में काम आया। उसके पुत्र चन्दनसिंह ने महाराणा अमरसिंह की सेवा में रहकर लड़ते हुए वीरगति पाई। उसका उत्तराधिकारी मोहनदास ऊंटाले की लड़ाई में खेत रहा। मोहनदास के पुत्र अमरसिंह को महाराणा अमरसिंह ने भैंसरोड़गढ़ में जागीर दी। अमरसिंह का क्रमानुयायी उसका पुत्र भीमसिंह हुआ। जब महाराणा राजसिंह ने मालपुरे को लूटा उस समय बहुतसा द्रव्य भीमसिंह के हाथ लगा। उसका उत्तराधिकारी मेघराज महाराणा राजसिंह की सेना में रहकर औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयों में लड़ा। महाराणा जयसिंह के वक्त में वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में नीमड़ी की तरफ़ के भीलों ने उपद्रव किया, जिसपर उक्त महाराणा ने उस(मेघराज)को सेना सहित उनपर भेजा। उसने बहुत से भीलों को मारकर उनका उपद्रव शान्त किया। जिससे महाराणा ने नीमड़ी की जागीर उसको दी।

मेघराज का उत्तराधिकारी पृथ्वीराज और उसका नाथसिंह हुआ। महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिंधिया के साथ की उज्जैन की लड़ाई में नाथसिंह सख़्त घायल हुआ, जिसपर महाराणा ने ख़ास रुक्का लिखकर उसकी सान्त्वना की। उसके पीछे उम्मेदसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ, जो महाराणा भीमसिंह के समय होलकर की सेना के साथ की हड़क्याखाल की लड़ाई में लड़ा और घायल हुआ। उसके उत्तराधिकारी विजयसिंह के समय कुछ चन्द्रावतों ने कोटा के एक सेठ की अफ़ीम मार्ग में लूटली और वे उस (विजयसिंह)की शरण में चले गये। इसकी शिकायत होने पर महाराणा जवानसिंह ने उनको सौंप देने के लिए विजयसिंह से कहलाया, परन्तु उसके वैसा न करने पर महाराणा ने नीमड़ी पर सेना भेजी और लड़ाई हुई, जिसमें वह लड़ता हुआ मारा गया। फिर महाराणा ने उसके पुत्र लक्ष्मणसिंह को ठिकाना दे दिया। उसका प्रपौत्र धोकलसिंह नीमड़ी का वर्तमान स्वामी है।

(९) नाथसिंह। (१०) उम्मेदसिंह। (११) विजयसिंह। (१२) लक्ष्मणसिंह। (१३) हंमीरसिंह। (१४) तेजसिंह। (१५) धोकलसिंह।

हींता

हींता के सरदार महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह के चौथे पुत्र चतुर्भुज शक्तावत के वंशज हैं।

पहले पहल महाराणा जगत्सिंह के तीसरे पुत्र अरिसिंह को हींता जागीर में मिला था। उसके पीछे भगवत्सिंह, सूरतसिंह, सुन्दरसिंह और सामन्तसिंह हींता के स्वामी रहे। फिर महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय हींता राणावतों से खालसे कर लिया गया और वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में महाराणा भीमसिंह ने उपर्युक्त चतुर्भुज शक्तावत के आठवें वंशधर केसरीसिंह को प्रदान किया। केसरीसिंह[1] का पांचवां वंशधर अमरसिंह इस समय हींते का स्वामी है।

सेंमारी

सेंमारी के सरदार बानसी के रावत नरहरदास शक्तावत के वंशज हैं और उनका खिताब 'रावत' है। नरहरदास के वंशधर दुर्जनसिंह[2] को यह ठिकाना महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के राजत्वकाल में मिला। दुर्जनसिंह का छठा वंशधर खुमाणसिंह सेंमारी का वर्तमान स्वामी है।

तलोली

तलोली के स्वामी देवगढ़वालों के कुटुम्बी सुलतानसिंह[3] चूंडावत के वंशज हैं। सुलतानसिंह को यह जागीर महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) के समय मिली। सुलतानसिंह के वंशधर बुधसिंह का प्रपौत्र वैरीशाल इस जागीर का वर्तमान अधिकारी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) केसरीसिंह। (२) दीपसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) लालसिंह। (५) शिवनाथसिंह। (६) अमरसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) दुर्जनसिंह। (२) सामन्तसिंह। (३) जसवंतसिंह। (४) ज़ालिमसिंह। (५) ज़ोरावरसिंह। (६) नाहरसिंह। (७) खुंमाणसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) सुलतानसिंह। (२) खुंमाणसिंह। (३) चतुर्भुज। (४) फ़तहसिंह। (५) बुधसिंह। (६) रघुनाथसिंह। (७) अर्जुनसिंह। (८) वैरीशाल।

रूद

यह ठिकाना शक्तावत देवीसिंह[1] को महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने प्रदान किया। देवीसिंह के पौत्र सुजानसिंह का प्रपौत्र इन्द्रसिंह रूद का वर्तमान स्वामी है।

सिआड़

यह ठिकाना सूरजमल[2] शक्तावत को, महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने प्रदान किया। सूरजमल के वंशधर दलपतिसिंह का प्रपौत्र भूपालसिंह सिआड़ का वर्तमान सरदार है।

पानसल

पानसल के सरदार महाराणा उदयसिंह के पुत्र शक्तिसिंह के बेटे भाण के कनिष्ठ पुत्र वैरीशाल के वंशज हैं। उसका सातवां वंशधर किशनसिंह[3] हुआ, जिसको यह ठिकाना मिला। किशनसिंह के रामसिंह, हंमीरसिंह तथा सोहनसिंह तीन पुत्र हुए, जिनमें से रामसिंह तो अपने पिता के पीछे उसकी जागीर का मालिक हुआ और द्वितीय पुत्र हंमीरसिंह महाराज मोहकमसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ज़ोरावरसिंह के निःसंतान मर जाने पर भींडर गोद गया।

रामसिंह के पुत्र हरनाथसिंह के कोई संतति न थी, जिससे उस (हरनाथसिंह) का उत्तराधिकारी सोहनसिंह का पौत्र कल्याणसिंह हुआ। कल्याणसिंह ने भी कोई पुत्र न होने के कारण भींडर के महाराज केसरीसिंह के द्वितीय पुत्र तेजसिंह को गोद लिया, जो उस (कल्याणसिंह) के पीछे पानसल का स्वामी हुआ।

---

(१) वंशक्रम—(१) देवीसिंह। (२) जवानसिंह। (३) सुजानसिंह। (४) गोपालसिंह। (५) निर्भयसिंह। (६) इंद्रसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) सूरजमल। (२) हम्मीरसिंह। (३) बख़्तावरसिंह। (४) दलपतिसिंह। (५) शक्तिसिंह। (६) उदयसिंह। (७) भूपालसिंह।

(३) वंशक्रम—(१) किशनसिंह। (२) रामसिंह। (३) हरनाथसिंह। (४) कल्याणसिंह। (५) तेजसिंह।

भादू

भादू के सरदार आमेट की छोटी शाखावाले भारतसिंह चूंडावत (जयसिंहोत) के, जिसे यह जागीर महाराणा राजसिंह ने प्रदान की, वंशज हैं। भारतसिंह का वंशधर फ़तहसिंह इस ठिकाने का वर्तमान सरदार है।

कूंथवास

इस ठिकाने के सरदार भींडर के महाराज पूरणमल शक्तावत के दूसरे पुत्र चतरसाल[1] के वंशज हैं। चतरसाल का दसवां वंशधर ओंकारसिंह कूंथवास का वर्तमान स्वामी है।

पीथावास

पीथावास के सरदार आमेट के रावत मानसिंह चूंडावत के कनिष्ठ पुत्र रत्नसिंह[2] के, जिसे महाराणा जयसिंह के समय यह ठिकाना मिला, वंशज हैं। रत्नसिंह के वंशधर जयसिंह का प्रपौत्र अमरसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

जगपुरा

जगपुरे के सरदार बदनोर के ठाकुर जयसिंह राठोड़ के छोटे पुत्र संग्रामसिंह के वंशज हैं। संग्रामसिंह का वंशधर गजसिंह इस ठिकाने का वर्तमान स्वामी है।

---

(१) वंशक्रम—(१) चतरसाल। (२) गोपीनाथ। (३) केसरीसिंह। (४) पृथ्वीराज। (५) सूरजमल। (६) बुधसिंह। (७) भगवत्सिंह। (८) चतुरसिंह। (९) हम्मीरसिंह। (१०) महासिंह। (११) ओंकारसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) रत्नसिंह। (२) उदयभानु। (३) दुर्जनशाल। (४) रूपसिंह। (५) संग्रामसिंह। (६) भारतसिंह। (७) तख़्तसिंह। (८) जयसिंह। (९) चतुरसिंह। (१०) ज़ालिमसिंह। (११) अमरसिंह।

आटूंण

आटूंण के सरदार मंगरोप के बाबा (महाराज) जसवंतसिंह पूरावत के कनिष्ठ पुत्र चतरसिंह[1] के वंशज हैं और उनकी उपाधि 'बाबा' है। चतरसिंह को यह ठिकाना वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) ने प्रदान किया था।

उसका उत्तराधिकारी गुमानसिंह हुआ। उसके साथ महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) की गद्दीनशीनी के पहिले से ही शत्रुता थी, जिससे वि० सं० १८२६ (ई० स० १७७३) में महाराणा ने उसपर चढ़ाई कर उसका क़िला घेर लिया। महाराणा उसे गिरफ़्तार कर अपमानित करना चाहता है यह जानकर उस वीर ने तेल से तराबोर अंगरखा तथा पाजामा पहना और उनमें आग लगा दी। फिर वह हाथ में नंगी तलवार लेकर क़िले से बाहर निकला और महाराणा की सेना पर टूट पड़ा। जीवित दशा में उसके पकड़े जाने की संभावना न होने से महाराणा ने उसपर गोली चलाने की आज्ञा दी। अन्त में उसने बहुत से शत्रुओं का संहार कर वीरगति पाई। इसके उपरान्त माघ सुदि ६ (ता० १ फरवरी) को महाराणा ने उसका ठिकाना अमरचन्द बड़वा को दे दिया, परन्तु थोड़े ही समय पीछे यह ठिकाना पूरावतों को वापस मिल गया। गुमानसिंह के पुत्र दौलतसिंह का प्रपौत्र गुलाबसिंह आटूंण का वर्तमान स्वामी है।

आर्ज्या

आर्ज्या के सरदार महाराणा जवानसिंह के मामा बरसोड़े (महीकांठा, गुजरात) के स्वामी जगत्सिंह के वंशज हैं। जगत्सिंह के दो पुत्र कुबेरसिंह[2] और ज़ालिमसिंह उक्त महाराणा के समय उदयपुर चले गये, जिनको उसने आर्ज्या और कलड़वास की जागीर शामिल में दीं।

---

(१) वंशक्रम—(१) चतरसिंह। (२) गुमानसिंह। (३) दौलतसिंह। (४) सुजानसिंह। (५) देवीसिंह। (६) गुलाबसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) कुबेरसिंह। (२) फ़तहसिंह। (३) प्रतापसिंह। (४) ज़ोरावरसिंह। (५) अमरसिंह। (६) नाहरसिंह।

आर्ज्या की जागीर पहले पहल महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) के छोटे पुत्र पूरणमल (पूरा) के पोते मोहकमसिंह को मिली थी। उसके प्रपौत्र (रणसिंह के पुत्र) प्रतापसिंह को मारकर उसका छोटा भाई पद्मसिंह वहां का स्वामी बन गया, पर पानसल के शक्तावतों ने वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में बालेराव की सहायता से आर्ज्या का ठिकाना उससे छीन लिया। इसके अनन्तर आर्ज्या की भौम प्रतापसिंह के ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह के वंशजों के अधिकार में रही। महाराणा भीमसिंह के राज्य-समय आर्ज्या की जागीर शक्तावतों से छीनकर उम्मेदसिंह के पुत्र खुंमाणसिंह को दी गई।

खुंमाणसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चन्दनसिंह हुआ। महाराणा भीमसिंह का विवाह वरसोड़ा (गुजरात) के जगत्सिंह चावड़े की कन्या से हुआ था। इसलिये वि० सं० १८९१ (ई० स० १८३४) में महाराणा जवानसिंह ने चन्दनसिंह से आर्ज्ये का ठिकाना छीनकर अपने मामा कुबेरसिंह और ज़ालिमसिंह चावड़ा को दे दिया। इसपर चन्दनसिंह ने बागी होकर आर्ज्ये से चावड़ों को मार भगाया। तब महाराणा ने वि० सं० १९०९ कार्तिक बदि १४ (ई० स० १८५२ ता० १० नवम्बर) को आर्ज्ये पर सेना भेजी। लड़ाई होने पर चन्दनसिंह मारा गया और उसके साथी क़ैद कर लिये गये। इसके बाद आर्ज्या पर चावड़ों का फिर अधिकार करा दिया गया।

कुबेरसिंह के वंश में आर्ज्या और ज़ालिमसिंह के वंश में कलड़वास की जागीर है। कुबेरसिंह का पुत्र फ़तहसिंह और उसके तीन पुत्र प्रतापसिंह, नाथसिंह और बख़्तावरसिंह हुए। प्रतापसिंह के कोई पुत्र न था, इसलिये उसके छोटे भाई नाथसिंह का पुत्र ज़ोरावरसिंह उसका उत्तराधिकारी बनाया गया। ज़ोरावरसिंह के भी कोई पुत्र न होने के कारण प्रतापसिंह के तीसरे भाई बख़्तावरसिंह का पुत्र अमरसिंह गोद गया। वह भी निःसन्तान मर गया, जिससे उसका उत्तराधिकारी कलड़वास के लक्ष्मणसिंह का पुत्र नाहरसिंह हुवा।

कलड़वास

कलड़वासवाले आर्ज्या के सरदार कुबेरसिंह के भाई ज़ालिमसिंह[1] के वंशज हैं। ज़ालिमसिंह का उत्तराधिकारी कोलसिंह हुआ, जिसकी पुत्री से महाराणा फ़तहसिंह का विवाह हुआ और उसी के गर्भ से वर्तमान महाराणा भूपालसिंहजी का जन्म हुआ। कोलसिंह का उतराधिकारी अभयसिंह हुआ। उसके दो पुत्र हिम्मतसिंह और लछमणसिंह हुए। हिम्मतसिंह का निःसन्तान देहान्त होने पर उसका भाई लछमणसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जो इस समय विद्यमान है। वर्तमान महाराणा भूपालसिंहजी ने उसे कोदूकोटा नाम का गाव भी जागीर में दिया है।

---

(१) वंशक्रम—(१) ज़ालिमसिंह। (२) कोलसिंह। (३) अभयसिंह। (४) हिम्मतसिंह। (५) लछमणसिंह।

मेवाड़ के प्रसिद्ध घराने

भामाशाह का घराना

भामाशाह कावड़िया गोत्र के ओसवाल जाति के महाजन भारमल का बेटा था। महाराणा सांगा ने उस(भारमल)को रणथंभोर का क़िलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल (बूंदीवाला) वहां का क़िलेदार नियत हुआ उस समय भी रणथंभोर का बहुतसा काम उसी के सुपुर्द रहा। उसका बेटा भामाशाह वीर प्रकृति का पुरुष था और वह प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में कुंवर मानसिंह की सेना से लड़ा था। पीछे से महाराणा प्रतापसिंह ने महासानी रामा के स्थान पर उसको अपना प्रधान मंत्री बनाया।

(भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द)

महाराणा ने चावंड में रहते समय भामाशाह को मालवे पर चढ़ाई करने के लिये भेजा, जहां से वह २५ लाख रुपये और २० हज़ार अशर्फ़ियां दण्ड में लेकर चूलिया गांव में महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ और वह सारी रक़म उसने महाराणा को भेट की। फिर बादशाह अकबर ने मिर्ज़ाखां (खानखाना) को फौज देकर मालवे की ओर भेजा, जिससे भामाशाह जाकर मिला। मिर्ज़ाख़ां ने महाराणा को बादशाही सेवा में ले जाने का बहुत कुछ यत्न किया, परन्तु उस(भामाशाह)ने उसे स्वीकार न किया। जब दीवेर के शाही थाने पर आक्रमण किया गया उस वक्त भामाशाह भी महाराणा के राजपूत सरदारों के साथ लड़ने को गया था।

महाराणा कुंभा और सांगा की संचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढ़ाई के पूर्व ही मुसलमानों के हाथ न लगे इस विचार से चित्तोड़ से हटाकर पहाड़ी प्रदेश में सुरक्षित की गई थी। इसी से बहादुरशाह और अकबर को चित्तोड़ विजय करने पर कुछ भी द्रव्य वहां से हाथ न लग सका। भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड़ राज्य का ख़ज़ाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से

रखा जाता था, जिसका ब्यौरा वह (भामाशाह) एक बही में रखा करता था और आवश्यकता पड़ने पर उन स्थानों से द्रव्य निकालकर लड़ाई का खर्च चलाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा अमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार वही करता रहा। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों उसने उपर्युक्त बही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसमें राज्य के ख़ज़ाने का ब्यौरेवार विवरण है, इसलिये इसको महाराणा के पास पहुंचा देना। भामाशाह की मृत्यु वि० सं० १६५६ माघ सुदि ११ (ई० स० १६०० ता० १६ जनवरी) को हुई।

भामाशाह का नाम मेवाड़ में वैसा ही प्रसिद्ध है जैसा गुजरात में वस्तुपाल-तेजपाल का। वह वीर, राज्यप्रबन्धकुशल, सच्चा स्वामिभक्त और विश्वासपात्र सेवक था। महाराणा प्रतापसिंह और अमरसिंह ने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसकी बहुत कुछ ख़ातिर की। उसकी हवेली चित्तोड़ में तोपख़ाने के मकान के सामनेवाले क़वायद के मैदान के पश्चिमी किनारे पर थी, जिसको महाराणा सज्जनसिंह ने क़वायद का मैदान तैयार कराते समय तुड़वा दिया।

भामाशाह का भाई ताराचन्द भी वीर प्रकृति का पुरुष था और हल्दीघाटी की लड़ाई में वह अपने भाई के साथ रहकर लड़ा था। महाराणा प्रतापसिंह की आज्ञा से ताराचन्द सेना लेकर मालवे में रामपुरे की ओर गया, जिसको लौटते समय शाहबाज़खां ने घेर लिया। वह (ताराचन्द) वहां से लड़ता हुआ बसी के समीप पहुंचा, जहां घायल होकर घोड़े से गिर गया, परन्तु बसी का स्वामी देवड़ा साईदास उसको उठाकर अपने क़िले में ले गया और उसने उसका इलाज़ कराया।

ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम भी रहा था और उस समय सादड़ी में रहता था। उसने सादड़ी के बाहर एक बारादरी और बावड़ी बनवाई। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार स्त्रियें, एक खवास, छः गायनियां, एक गवैया और उस(गवैये)की औरत की मूर्तियां पत्थरों पर खुदी हुई हैं।

महाराणा अमरसिंह ने भामाशाह के देहान्त होने पर उसके पुत्र जीवाशाह को अपना प्रधान बनाया, जो अपने पिता की लिखी हुई बही के अनुसार जगह जगह से ख़ज़ाना निकालकर लड़ाई का खर्च चलाता रहा। सुलह होने

पर कुंवर कर्णसिंह जब बादशाह जहांगीर के पास अजमेर गया उस समय यह राजभक्त प्रधान (जीवाशाह) भी उसके साथ था। उसका देहान्त हो जाने पर महाराणा कर्णसिंह ने उसके पुत्र अक्षयराज को प्रधान नियत किया। इस प्रकार तीन पुश्त तक स्वामिभक्त भामाशाह के घराने में प्रधान-पद रहा।

इस घराने के सभी पुरुष राज्य के शुभचिन्तक रहे। उसके वंश में इस समय कोई प्रसिद्ध पुरुष नहीं रहा, तो भी उसके मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही कि जब महाजनों में समस्त जाति-समुदाय का भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछे से महाजनों ने उसके वंशवालों के तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा सरूपसिंह ने उसके पूर्वजों की अच्छी सेवा का स्मरण कर इस विषय की जांच कराई और यह आज्ञा दी कि महाजनों की जाति में बावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा में पहले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर के ही किया जाय। इस विषय का एक परवाना उक्त महाराणा ने वि० सं० १९१२ (चैत्रादि १९१३) ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १८५६) को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़िया के नाम कर दिया। तब से भामाशाह के मुख्य वंशधर के पीछा तिलक होने लगा। फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन न किया, जिससे महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १८९५) को मुक़द्दमा फैसल होकर उसके तिलक किये जाने की फिर आज्ञा दी गई।

संघवी दयालदास का घराना

दयालदास संघवी (सरूपरया) गोत्र के ओसवाल महाजन तेजा का प्रपौत्र, गज्जू का पौत्र एवं राजू का चौथा पुत्र था। उसके पूर्व पुरुष सीसोदिये क्षत्रिय थे, परन्तु जब से उन्होंने जैनधर्म स्वीकार किया, तब से उनकी गणना ओसवालों में हुई। इसके अतिरिक्त उसके पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध में और कोई वृत्तान्त नहीं मिलता।

दयालदास पहिले उदयपुर के एक ब्राह्मण पुरोहित के यहां नौकर था, उसकी उन्नति के बारे में यह प्रसिद्धि है कि महाराणा राजसिंह की एक राणी ने

जिससे कुंवर सरदारसिंह का जन्म हुआ था, ज्येष्ठ कुंवर सुल्तानसिंह को मरवाने और अपने पुत्र को राज्य दिलाने का प्रपंच रचा। उसके शक दिलाने पर महाराणा ने कुंवर सुल्तानसिंह को मार डाला। फिर उस(राणी)ने महाराणा को विष दिलाने के लिए उसी पुरोहित को, जिसके यहां दयालदास नौकर था, पत्र लिखा, जो उसने अपने कटार के खीसे में रख लिया। संयोगवश एक दिन किसी त्यौहार के अवसर पर दयालदास ने अपने ससुराल देवाली नामक ग्राम में जाते समय रात्रि हो जाने से पुरोहित से अपनी रक्षा के लिए कोई शस्त्र मांगा। पुरोहित ने भूलकर वह कटार उसे दे दिया, जिसके खीसे में उपर्युक्त पत्र था। दयालदास कटार लेकर वहां से रवाना हुआ, घर जाने पर उस कटार के खीसे में कोई कागज़ होना दीख पड़ा और आश्चर्य के साथ वह उस कागज़ को निकालकर पढ़ने लगा। जब उसे उक्त पत्र से महाराणा की जान का भय दीख पड़ा तब उसने तत्काल महाराणा के पास पहुंचकर वह पत्र उसे बतलाया, इसपर उक्त महाराणा ने राणी और पुरोहित को मार डाला। जब इस घटना का हाल कुंवर सरदारसिंह ने सुना तब उसने भी विष खाकर आत्मघात कर लिया।

दयालदास की उक्त सेवा से प्रसन्न हो महाराणा ने उसे अपनी सेवा में रखा और बढ़ते बढ़ते वह उसका प्रधान (मन्त्री) हो गया। वह वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण, बादशाह औरंगज़ेब की मेवाड़ पर की चढ़ाई के समय शाही सेना-द्वारा कई मंदिर तोड़े गये, जिनका बदला लेने के लिए ससैन्य मालवे में भेजा गया। उस(दयालदास)ने वीरतापूर्वक उधर की शाही सेना से मुक़ाबला किया। उसने कई स्थानों से पेशकश लेकर वहां पर महाराणा के थाने नियत किये। कई मस्जिदें गिरवा दीं और मालवे की लूट से कई ऊंट सोने के भरे हुए लाकर महाराणा के नज़र किये।

उस(दयालदास)ने महाराणा जयसिंह के राजत्वकाल में चित्तोड़स्थित शाहज़ादे आज़म की सेना पर रात्रि को आक्रमण किया। शाहज़ादे के सेनापति दिलावरखां और उसके बीच युद्ध हुआ, जिसमें उसकी बड़ी हानि हुई। वह (दयालदास) अपनी स्त्री को मुसलमानों के हाथ में न पड़े इस विचार से मारकर लौट गया। उसने राजसमन्द की पाल के समीप पहाड़ी पर संगमर्मर

का आदिनाथ का एक विशाल चतुर्मुख जैन-मंदिर बड़ी लागत से बनवाया, जो उसकी कीर्ति का स्मारक है। उसका पुत्र सांवलदास हुआ, पीछे से इस वंश में कोई प्रसिद्ध पुरुष हुआ हो ऐसा पाया नहीं जाता।

पंचोली बिहारीदास का घराना

बिहारीदास भटनागर जाति का पंचोली (कायस्थ) था। उसके पूर्वज पहले जालोर (जोधपुर राज्य में) में रहते थे। जालोर का राज्य चौहानों से अलाउद्दीन ख़िलजी ने वि० सं० १३६८[1] (ई० स० १३१२) में छीन लिया, जिसके पीछे वे मेवाड़ में चले गये और महाराणाओं की सेवा में उनका प्रवेश हुआ। लाला कान्हा के तीन पुत्र—रूपा, बिहारीदास और देवीदास—हुए। बिहारीदास पढ़ा लिखा और बुद्धिमान होने के कारण महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का कृपापात्र बना। जब बादशाह औरंगज़ेब दक्षिण की लड़ाइयों में फंसा हुआ था उस समय ज़ुल्फ़िकारख़ां बख़्शी ने महाराणा की तरफ़ से पंचोली बिहारीदास और सलामतराय मुन्शी की मारफ़त दक्षिण में जमीयत भेजने को कहलाया, जिसपर महाराणा ने अपने काका कीर्तिसिंह को मय जमीयत के रवाना किया[2]। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह अपने अपने राज्य पीछे पाने की आशा से बादशाह बहादुरशाह के साथ, जो दक्षिण में जा रहा था, मंडलेश्वर तक रहे, परन्तु जब देखा कि राज्य मिलने की कोई आशा नहीं है और उनपर बादशाह की तरफ़ से निगरानी की जाती है तब उसे बिना सूचना दिये ही वे अपने डेरे-डंडे छोड़कर उदयपुर की ओर चले, और उन्होंने अपने आने की सूचना पंचोली बिहारीदास-द्वारा महाराणा को दी।

बादशाह फ़र्रुख़सियर गद्दी पर बैठा उस समय बिहारीदास ने मेवाड़ का वकील बनकर बादशाह के दरबार में अच्छी प्रतिष्ठा पाई।

---

(१) मुहणोत नैणसी के अनुसार यह घटना वि० सं० १३६८ और फ़िरिश्ता के अनुसार वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) में हुई।

(२) महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का बख़्शी ज़ुल्फ़िकारख़ां के नाम का वि० सं० १७२१ का पत्र। वीरविनोद, भाग २, पृष्ठ ७४८।

जब अपने पिता गोपालसिंह (चन्द्रावत) से रामपुरा छीननेवाला रत्नसिंह (इस्लामखां) मालवे के सूबेदार अमानतखां के साथ की सारंगपुर के पास की लड़ाई में मारा गया तब महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने अपनी सेना भेजकर गोपालसिंह को पीछा रामपुरे पर बिठला दिया और उसे इलाक़े का कुछ हिस्सा देकर बाक़ी अपने राज्य में मिला लिया, जिसका फ़रमान बिहारीदास पंचोली ने बादशाह फ़र्रुख़सियर से प्राप्त किया। इससे उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और वह उदयपुर राज्य का प्रधान बनाया गया।

दिल्ली में त्रिपोलिया बनने के बाद और जगह त्रिपोलिया बनाने व अगड़ पर हाथी लड़ाने की अन्य राजाओं को मनाई थी[1]। वि० सं० १७७३ में बिहारीदास बादशाह फ़र्रुख़सियर से इन दोनों बातों की स्वीकृति ले आया।

जब महाराजा अजीतसिंह ने राठोड़ दुर्गादास का सारा उपकार भूल-कर उसको मारवाड़ से निकाल दिया तब वह महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की सेवा में जा रहा। महाराणा ने उसे विजयपुर की जागीर और १५००० रु० मासिक वेतन देकर अपने पास बड़े सम्मान से रखा, फिर उसको रामपुरे का हाकिम नियुक्त किया। वहां से उसने अपने ठिकाने पर की छोटी छोटी लागतों को छुड़ाने की सिफ़ारिश का पत्र वि० सं० १७७४ कार्तिक वदि ६ को दीवान बिहारीदास के नाम लिखा था।

उक्त महाराणा के समय डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के स्वामी महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करते थे, इसलिये महाराणा ने उस(बिहारी-दास)को सेना सहित उनपर भेजा। वह अपनी बुद्धिमानी से उन तीनों राजाओं को समझाकर महाराणा की सेवा में ले आया।

जब महाराजा सवाई जयसिंह अपने दूसरे कुंवर माधोसिंह को महाराणा से रामपुरे का परगना दिलाने की इच्छा से उदयपुर गया और धायभाई नग-राज की मारफ़त उसके लिये कोशिश की तब बिहारीदास ने उसका विरोध

(१) उदयपुर राज्य में त्रिपोलिया बनाने तथा अगड़ पर हाथी लड़ाने की रीति पहले से चली आती थी, क्योंकि चित्तोड़ और कुंभलगढ़ पर त्रिपोलिये, एवं जयसमुद तथा राज-समुद के महलों के नीचे पुराने अगड़ विद्यमान हैं। यह स्वीकृति केवल सरिश्ते के विचार से प्राप्त की हो, ऐसा पाया जाता है।

किया, जिसपर महाराजा ने उसके घर जाकर उसको समझाया कि हमारे घर का बखेड़ा मिटाना आपके हाथ में है, इसलिये इस काम में मेरी सहायता करें। इससे अनुमान हो सकता है कि उस समय बिहारीदास की प्रतिष्ठा कहां तक बढ़ी हुई थी। बिहारीदास की सलाह से ही वह परगना महाराणा ने अपने भानजे माधोसिंह को दे दिया।

वि० सं० १७९३(ई० स०१७३६) में बिहारीदास का देहान्त होना बतलाते हैं। वह बड़ा बुद्धिमान्, स्वामि-भक्त और राजनीति में कुशल था। उदयपुर राज्य में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और जयपुर, जोधपुर आदि के महाराजा भी उसका बड़ा सम्मान करते थे। उसके पीछे उसके वंशजों में से कोई भी राज्य के उच्च पद पर नियत हुआ हो ऐसा पाया नहीं जाता। 'लखणा' नाम का एक कर मेवाड़ के गांवों पर लगाया गया है, जिसकी आमद का कुछ भाग अबतक उसके वंशजों को मिलता है।

बड़वा अमरचन्द का घराना

बड़वा अमरचन्द सनाढ्य ब्राह्मण था। उसके पूर्वज बाहर से मेवाड़ में आकर बसे थे। शंभुराम महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय महाराणा के 'रसोड़े' (पाकशाला) का अध्यक्ष था। उसका पुत्र अमरचन्द हुआ। जब उक्त महाराणा का कुंवर प्रतापसिंह करणविलास में नज़र क़ैद रखा गया उस समय उस(अमरचन्द)ने उसकी अच्छी सेवा की, इसलिये प्रतापसिंह ने गद्दी पर बैठते ही उस(अमरचन्द)की अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में उसे 'ठाकुर' का ख़िताब और ताज़ीम देकर अपना मुसाहिब बनाया।

जब महाराणा अरिसिंह और सरदारों के बीच विरोध खड़ा हुआ और कितने एक सरदारों को महाराणा ने छल से मरवा डाला, उस समय मल्हारराव होलकर मेवाड़ पर चढ़ाई कर ऊंटाले तक चला गया और ५१००००० रु० लेने के बाद लौटा, जिससे मेवाड़ की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। महाराणा ने अपने पक्ष के सरदारों की सेना की कमी देखकर गुजरात आदि से अरब और सिंधी सिपाहियों को अपनी सेना में भरती किया। विरोधी सरदारों ने

रत्नसिंह को गद्दी पर बिठाने के उद्योग में माधवराव सिंधिया को अपना मददगार बनाया और उज्जैन की लड़ाई में महाराणा के विरोधी सरदारों द्वारा लाई हुई महापुरुषों (नागों) की बड़ी सेना की सहायता से मेवाड़ की सेना की हार हुई।

माधवराव के उदयपुर पर चढ़ आने का विचार सुनकर महाराणा और उसके पक्ष के सरदारों ने, उस समय की शोचनीय स्थिति को सम्भाल सके ऐसे किसी योग्य व्यक्ति को प्रधान बनाना आवश्यक समझा, अतः महाराणा ने अमरचन्द के घर जाकर पुनः प्रधान के पद को ग्रहण करने के लिए उससे आग्रह किया। इसपर अमरचन्द ने उत्तर दिया, "मैं स्पष्टवक्ता और मिज़ाज का तेज़ हूं। मैंने पहले भी जब काम किया तब पूरे अधिकार के साथ ही। आप किसी की सलाह मानते नहीं और अपनी इच्छा से सब कुछ करते हैं। इस समय की अवस्था बहुत विकट, वेतन न मिलने से सिपाही विद्रोही, खज़ाना खाली और प्रजा ग़रीब है अतएव यदि आप मुझे पूरे अधिकार दें तो कुछ उपाय किया जा सकता है"। महाराणा ने कहा "जो कुछ तुम कहोगे वही हम करेंगे"। इसपर उसने उस पद को स्वीकार कर लिया। उसने सोने चांदी के बर्तन मंगवाकर उनके कम क़ीमत के सिक्के बनवाये तथा रत्नों को गिरवे रखकर सेना का वेतन चुका दिया और माधवराव से लड़ने की सब प्रकार से तैयारी कर ली।

जब माधवराव की उदयपुर पर चढ़ाई हुई उस समय उसने गोला, बारूद, अन्न वग़ैरह सब सामान इकट्ठा कर अलग अलग मोर्चों पर सरदारों आदि को नियत किया और स्वयं कमल्यापोल (उदयपोल) पर ५०० अरब सिपाहियों सहित लड़ने को डटा रहा। छः महीने तक लड़ाई होती रही, परन्तु शहर उदयपुर पर माधवराव का अधिकार न हो सका। अन्त में सत्तर लाख रुपये लेकर माधवराव ने घेरा उठाकर लौट जाने की बात स्वीकार कर ली, परन्तु फिर उसने यह सोचकर कि शहर की लूट से हमें ज्यादा रुपये मिलेंगे उसने बीस लाख रुपये और लेना चाहा। इसपर क्रुद्ध होकर अमरचन्द ने, जो सन्धि-पत्र लिखा गया था, उसे फाड़ डाला और लड़ाई जारी रखी। कुछ दिनों बाद माधवराव ने अपनी तरफ़ से सुलह के लिए कहलाया तो अमरचन्द ने यही

उत्तर दिया कि अब तो हम सत्तर लाख रुपये नहीं देंगे। अन्त में साठ लाख रुपये लेकर सिंधिया को सुलह करनी पड़ी। फिर उसने साढ़े तीन लाख रुपये दफ़्तर खर्च अर्थात् अहलकारों की रिश्वत के मांगे, जो अमरचन्द ने स्वीकार किये। इस प्रकार अमरचन्द ने उदयपुर शहर की रक्षा कर ली।

सिंधिया के लौटने के बाद महाराणा के विरोधी सरदारों ने महापुरुषों के बड़े भारी सैन्य को एकत्र कर मेवाड़ पर चढ़ाई की और महाराणा के पक्ष के सरदारों को धमकियां देना व उनके गांवों को लूटना शुरू किया। यह खबर सुनते ही महाराणा अपने सरदारों तथा सैनिकों सहित उनसे लड़ने को चला तो अमरचन्द स्वयं भी लड़ने की इच्छा से महाराणा के साथ हो गया। टोपल-मगरी के पास दोनों सेनाओं का संघर्ष हुआ, जिसमें विद्रोही सेना भाग निकली।

महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय तो बड़वा अमरचन्द ने राज्य का काम अपनी इच्छानुसार कर राज्य की स्थिति संभाली, परन्तु अरिसिंह के पीछे उसका पुत्र हम्मीरसिंह बहुत छोटी अवस्था में मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ, जो देश की विकट स्थिति को संभालने में बिलकुल असमर्थ था। महाराणा के बालक होने के कारण राजमाता ने शासन प्रबन्ध अपनी इच्छानुसार कराना चाहा और उसके लिए उसने शक्तावत सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाना शुरू किया। शनैः शनैः उनकी सहायता से उसका प्रभाव इतना अधिक हो गया कि उसकी दासियों का भी हौसला बहुत बढ़ गया, जिससे वे किसी को कुछ नहीं समझती थीं।

अमरचन्द इसके विरुद्ध था। एक दिन उसकी कृपापात्री गूजर जाति की दासी रामप्यारी, जो बहुत वाचाल और घमंडिन थी, अमरचन्द से कुछ बुरी तरह पेश आई, जिसपर स्पष्टवक्ता अमरचन्द ने भी क्रोधावेश में उसे 'कहां की रांड' कह दिया। रामप्यारी ने इस बात को बढ़ाकर राजमाता से उसकी शिकायत की। वह इसपर बहुत क्रुद्ध हुई और अमरचन्द को दूर करने के लिए सलूंबर के रावत भीमसिंह से सहायता मांगी। अमरचन्द पहले से ही यह सोचकर अपने घर गया और अपना कुल ज़ेवर व असबाब छकड़ों में भरवाकर उसने ज़नानी ड्योढ़ी पर भिजवा दिया तथा वहां जाकर कहा 'मेरा कर्तव्य तो आप और आपके पुत्रों का हितचिन्तन करना है, उसमें चाहे

कितनी ही बाधाएं क्यों न उपस्थित हों। आपको तो यह चाहिये था कि मुझसे विरोध करने की अपेक्षा मेरी सहायता करतीं', परन्तु वह तो राज्याधिकार को अपने हाथ में रखना चाहती थी और अपनी दासियों आदि के हाथ का खिलौना बन जाने के कारण योग्यायोग्य का विचार न कर उसने अमरचन्द को विष दिलाने का प्रपंच रचा। उसी के परिणामस्वरूप कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हुई। उस समय उसके घर में से कफ़न के लिए पैसा भी न निकला, जिससे उसकी उत्तरक्रिया राज्य की तरफ़ से हुई। यह दुःखद घटना वि० सं० १८३१ के आस पास हुई।

अमरचन्द बुद्धिमान्, तेज़ मिज़ाज, स्पष्टवक्ता, वीर, अपनी बात पर दृढ़ रहनेवाला, निस्वार्थी और राज्य का सच्चा हितचिन्तक मन्त्री था और राज्य-हितचिन्तन में ही उसका प्राणान्त हुआ। उसने अपने समय में पीछोला तालाब के एक हिस्से को, जो अमरकुण्ड नाम से प्रसिद्ध है, जनता के आराम के लिए दोनों तरफ़ सुन्दर घाट सहित बनवाया, जो अब तक उसकी स्मृति को जीवित रखे हुए है।

उसके वंशज अद्यावधि महाराणा के 'रसोड़े' (पाकशाला) पर नियत हैं।

मेहता अगरचन्द का घराना

अगरचन्द के पूर्वज चौहानों की देवड़ा शाखा के राजपूत थे। देवड़ा वंश में सागर नाम का पुरुष हुआ। उसका पुत्र बोहित्थ हुआ, जिससे उसके वंशज 'बोहिथरे' कहलाये। वह ११०० वीर पुरुषों को लेकर चित्तोड़ (चित्रकूट) के राजा राजसिंह(?) के पक्ष में लड़ता हुआ काम आया। बोहित्थ के पश्चात् उसका पुत्र श्रीकर्ण हुआ। उसने मत्स्येन्द्र दुर्ग को छीना और राणा की उपाधि धारण की। वह अपने ७०० राजपूतों के साथ किसी मुसलमान सुलतान के साथ की लड़ाई में काम आया। उसके समधर आदि चार पुत्र लड़ाई से पहिले ही अपनी माता के साथ अपने ननिहाल खेड़ी गांव में चले गये थे, जहां खरतर-गच्छ के जिनेश्वरसूरि (?) ने उनको जैन-धर्म की दीक्षा दी तब से वे जैन धर्मावलम्बी हुए और ओसवालों में उनकी गणना हुई।

समधर के पुत्र तेजपाल ने गुजरात के सुलतान को घोड़े आदि भेंट कर

उससे कुछ भूमि प्राप्त की और अणहिलपत्तन (पाटन) में रहने लगा। उस (तेजपाल)ने अनेक तीर्थों की यात्रा की। तेजपाल का पुत्र वील्हा मेवाड़ में गया और महाराणा से सम्मान प्राप्त कर चित्तोड़ में रहने लगा। राज्य से उसका सम्बन्ध क्रमशः बढ़ने लगा और महाराणा ने उसको अपना प्रधान बनाया। वहां से वह फिर पाटण में जा रहा और वहां उसने जैन प्रतिमा स्थापित कराई। वील्हा का सातवां वंशधर वत्सराज मारवाड़ के राव रणमल के पास जा रहा। रणमल के पीछे उसका पुत्र जोधा मारवाड़ का स्वामी हुआ। जोधा के ज्येष्ठ पुत्र विक्रम (बीका) के साथ वह जांगल देश को गया। बीका ने अपने बाहुबल से वहां नवीन राज्य स्थापित कर विक्रमपुर (बीकानेर) शहर बसाया और उसको अपनी राजधानी बनाया। वत्सराज उसका मंत्री रहा, जिसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। वत्सराज के वंशज बच्छावत मेहता कहलाये।

उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्मसिंह हुआ, जो बीका के पुत्र लूणकरण का मंत्री बना। उसने बीकानेर में नमीनाथ का मन्दिर बनवाया। कर्मसिंह का छोटा भाई वरसिंह राव लूणकरण के ज्येष्ठ पुत्र जैतसिंह का मंत्री बना। वरसिंह के पीछे उसका चौथा पुत्र नगराज भी राव जैतसिंह का मंत्री रहा। जोधपुर के राव मालदेव का बीकानेर पर चढ़ाई करने का विचार सुनकर जैतसिंह ने नगराज को शेरशाह की सहायता लेने के लिये दिल्ली भेजा, परन्तु उसके लौटने से पहिले ही मालदेव का आक्रमण हो गया और जैतसिंह मारा गया। पीछे से नगराज शेरशाह की सहायता लेकर आया। शेरशाह ने मालदेव से जांगल देश छुड़ाकर जैतसिंह के कुंवर कल्याणमल (कल्याणसिंह) को बीकानेर की गद्दी पर बिठाया। नगराज शेरशाह के साथ दिल्ली गया, जहां से लौटते समय अज-मेर में उसका देहान्त हुआ।

नगराज का सबसे छोटा पुत्र संग्राम शेरशाह के पास रहा, परन्तु कल्या-णसिंह ने उसे बीकानेर बुला लिया। वह एक बार तीर्थ-यात्रा करता हुआ चित्तोड़ गया तो महाराणा उदयसिंह ने उसका सम्मान किया। संग्राम का पुत्र कर्मचन्द भी कल्याणसिंह का मंत्री हुआ। कल्याणसिंह के पीछे रायसिंह बीकानेर का स्वामी हुआ। उसका भी मंत्री कर्मचन्द ही रहा। उसके दो पुत्र सौभाग्यचन्द्र (सोभागचंद) और लक्ष्मीचन्द्र (लक्ष्मीचन्द) हुए। रायसिंह के

किसी कारण[1] उसपर अप्रसन्न हो जाने से वह सपरिवार बादशाह अकबर के पास दिल्ली चला गया और बादशाह ने उसे सम्मान के साथ अपने यहां रखा[2]। कर्मचन्द्र दिल्ली में रहते समय बादशाह से राजा रायसिंह की शिकायतें करने लगा, जिससे बादशाह उस(रायसिंह)से नाराज़ हो गया। रायसिंह दिल्ली गया उस समय कर्मचन्द्र बीमार था, इसलिये वह उसकी सान्त्वना करने के लिये उसके वहां गया और बहुत कुछ खेद प्रकट किया तथा आंखों में आंसू भर लाया। रायसिंह के चले जाने पर उसने अपने बेटों से कहा कि महाराजा के आंसू आने का कारण मेरी तकलीफ़ नहीं है, किन्तु वास्तविक कारण यह है कि वह मुझे सज़ा नहीं दे सका, इसलिये तुम उसके धोके में आकर बीकानेर मत जाना।

कर्मचन्द्र की मृत्यु के पीछे रायसिंह ने उसके पुत्रों की बहुत कुछ ख़ातिर की, परन्तु जब वह बुरहानपुर में बीमार हुआ उस समय उसने अपने छोटे बेटे सूरसिंह से कहा कि कर्मचन्द्र तो मर गया, परन्तु उसके बेटों को तुम मारना और मुझको मारने के लिये रचे हुए षड्यन्त्र में और जो जो लोग शरीक थे उनको भी दण्ड देना, क्योंकि वे दलपत को राज्य दिलाना चाहते थे। इसपर सूरसिंह ने अर्ज़ किया कि यदि मुझे राज्य मिला तो मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उन लोगों को अवश्य दंड दूंगा। रायसिंह के पीछे बादशाह जहांगीर ने दलपत को बीकानेर का राज्य दिया, परन्तु जब वह उससे अप्रसन्न हो गया तो उसने उसको क़ैद कराकर सूरसिंह को वि० सं० १६७० (ई० स० १६१३) में राजा बनाया। जब वह बादशाह से रुख़सत होकर बीकानेर जाने लगा तब उसने भागचन्द और लक्ष्मीचन्द को अपने पास बुलाकर पूरी तसल्ली दी। वे दोनों भी उसके दम में आ गये और सपरिवार बीकानेर चले गये। सूरसिंह

(१) जयसोम ने राजा रायसिंह के कर्मचन्द से अप्रसन्न होने का कारण नहीं बतलाया, परन्तु ऐसा माना जाता है कि रायसिंह को दग़े से मारकर उसके पुत्र दलपत को गद्दी पर बिठाने का कितने एक लोगों ने षड्यन्त्र रचा, जिसमें उसका प्रधान कर्मचन्द भी शामिल था।

(२) यहांतक का वृत्तान्त 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकम्' नामक संस्कृत काव्य के आधार पर लिखा गया है। उसकी रचना माणिक्यमणि के शिष्य जयसोम ने वि० सं० १६५० (ई० स० १५९३) में लाहोर में की थी।

ने उन दोनों को मन्त्री-पद पर नियत किया और दो महीने तक ऐसी कृपा बतलाई कि वे पुरानी दुश्मनी को भूलकर बिलकुल ग़ाफ़िल हो गये। फिर एक दिन रात के वक्त सूरसिंह ने ४००० राजपूतों को उनको मारने के लिए भेजा तो वे भी अपने बालबच्चों और औरतों को मारकर अपने पास रहनेवाले ५०० राजपूतों सहित लड़कर काम आये। कर्मचन्द्र की एक स्त्री, जो भामाशाह की पुत्री थी, अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर में थी जिससे उसका वही पुत्र बचने पाया[1]।

भाण का पुत्र जीवराज, उसका लालचन्द और उस (लालचन्द) का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। उसके दो पुत्र अगरचन्द और हंसराज हुए, जो राज्य के बड़े पदों पर रहे। महाराणा अरिसिंह ने अगरचन्द को मांडलगढ़ का क़िलेदार तथा उक्त ज़िले का हाकिम नियत किया। तब से मांडलगढ़ की क़िलेदारी उसके वंशजों में बराबर चली आ रही है। वह उक्त महाराणा का सलाहकार था और फिर मन्त्री बनाया गया। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) की उज्जैन की माधवराव सिंधिया के साथ की लड़ाई में वह (अगरचन्द) लड़ा और घायल होने के बाद क़ैद हुआ, परन्तु रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह के भेजे हुए बावरी लोग उसको हिकमत से निकाल लाये। जब माधवराव सिंधिया ने उदयपुर पर घेरा डाला और लड़ाई शुरू हुई उस समय महाराणा ने उसको अपने साथ रखा। टोपलमगरी और गंगार के पास की महापुरुषों के साथ की लड़ाइयों में भी वह महाराणा की सेना के साथ रहकर लड़ा।

मेहता अगरचन्द

महाराणा हंमीरसिंह (दूसरे) के समय की मेवाड़ की विकट स्थिति सम्भालने में वह बड़वा अमरचन्द का सहायक रहा। जब शक्तावतों और चूंडावतों के झगड़ों के बाद आंबाजी इंगलिया की आज्ञानुसार उसके नायब गणेशपन्त ने शक्तावतों का पक्ष करना छोड़ दिया और प्रधान सतीदास तथा

(१) उदयपुर के मेहताओं की तवारीख़ में भाण को भोजराज का बेटा लिखा है। सम्भव है कि भोजराज या तो कर्मचन्द्र का तीसरा पुत्र हो या भागचन्द और लखमीचन्द में से किसी एक का पुत्र हो। यदि यह अनुमान ठीक हो तो भामाशाह की पुत्री का विवाह भागचन्द या लखमीचन्द में से किसी एक के साथ होना मानना पड़ेगा।

सोमचन्द गांधी का पुत्र जयचन्द क़ैद किये गये उस समय महाराणा भीमसिंह ने फिर अगरचन्द मेहता को अपना प्रधान बनाया। जब सिंधिया के सैनिक लकवा दादा और आंबाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के बीच मेवाड़ में लड़ाइयां हुई और उस(गणेशपन्त)ने भागकर हंमीरगढ़ में शरण ली तो लकवा उसका पीछा करता हुआ वहां भी जा पहुंचा। लकवा की सहायता के लिए महाराणा ने कई सरदारों को भेजा, जिनके साथ अगरचन्द भी था।

वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) के पौष महीने में मांडलगढ़ में अगरचन्द का देहान्त हुआ। महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय से लगाकर महाराणा भीमसिंह तक उसने स्वामिभक्त रहकर उदयपुर राज्य की बहुत कुछ सेवा की और कई लड़ाइयों में वह लड़ा। उसने अपने अन्तिम समय अपने वंशजों के लिए राज्य की सेवा में रहते हुए किस प्रकार रहना, क्या करना और क्या न करना इत्यादि के सम्बन्ध में जो उपदेश लिखवाया है वह वास्तव में उसकी दूरदर्शिता, सच्ची स्वामिभक्ति और प्रकाण्ड अनुभव का सूचक है।

मेहता देवीचन्द — अगरचन्द के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द मन्त्री बना और जहाज़पुर का क़िला उसके अधिकार में रखा गया। थोड़े ही दिनों पीछे देवीचन्द के स्थान पर मौजीराम प्रधान बनाया गया और उसके पीछे सतीदास। उन दिनों आंबाजी इंगलिया का भाई बालेराव शक्तावतों तथा सतीदास प्रधान से मिल गया और उसने महाराणा के भूतपूर्व मन्त्री देवीचन्द को चूंडावतों का तरफ़दार समझकर क़ैद कर लिया, परन्तु थोड़े ही दिनों में महाराणा ने उसको छुड़ा दिया। झाला ज़ालिमसिंह ने बालेराव आदि को महाराणा की क़ैद से छुड़ाने के लिए मेवाड़ पर चढ़ाई की, जिसके खर्च में उसने जहाज़पुर का परगना अपने अधिकार में कर लिया और मांडलगढ़ का क़िला भी वह अपने हस्तगत करना चाहता था। महाराणा (भीमसिंह) ने उसके दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उसके नाम लिख तो दिया, परन्तु तुरन्त ही एक सवार को ढाल तलवार देकर मेहता देवीचन्द के पास मांडलगढ़ भेज दिया। देवीचन्द ने ढाल तलवार अपने पास भेजे जाने से अनुमान कर लिया कि महाराणा ने ज़ालिमसिंह के दबाव में आकर मांडलगढ़ का क़िला उस(ज़ालिमसिंह)को सौंपने की आज्ञा दी है, परन्तु ढाल और तलवार भेजकर मुझे लड़ाई

लिखा पढ़ी कर गवर्नमेन्ट की स्वीकृति प्राप्त कर ली, जिससे सरूपसाही रुपया बनने लगा।

वि० सं० १६०७ (ई० स० १८५०) में बीलख आदि की पालों के भीलों और वि० सं० १६१२ (ई० स० १८५५) में पश्चिमी प्रांत के कालीवास आदि के भीलों को सज़ा देने के लिये शेरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह भेजा गया, जिसने उनको सख़्त सज़ा देकर सीधा किया।

वि० सं० १६०८ में लुहारी के मीनों ने सरकारी डाक लूट ली, जिसकी गवर्नमेन्ट की तरफ़ से शिकायत होने पर महाराणा (सरूपसिंह) ने उनका दमन करने के लिये मेहता शेरसिंह के पौत्र (सवाईसिंह के पुत्र) अजीतसिंह को, जो उस समय जहाज़पुर का हाकिम था, भेजा और उसकी सहायता के लिये जालंधरी के सरदार अमरसिंह शक्तावत को भेजा। अजीतसिंह ने धावा कर छोटी और बड़ी लुहारी पर अधिकार कर लिया। मीने भागकर मनोहरगढ़ तथा देव का खेड़ा की पहाड़ी में जा छिपे, पर उनका पीछा करता हुआ वह भी वहां जा पहुंचा। मीनों की सहायता के लिये जयपुर, टोंक और बूंदी इलाक़ों के ४-५ हज़ार मीने भी आ पहुंचे। उनके साथ की लड़ाई में कुछ राजपूत मारे गये और कई घायल हुए, जिससे महाराणा ने अपने प्रधान शेरसिंह की अध्यक्षता में और सेना भेजी, जिसने मीनों का दमन किया। वि० सं० १६१३ (ई० स० १८५६) में महाराणा ने मेहता शेरसिंह को अलग कर उसके स्थान में मेहता गोकुलचन्द को नियत किया, परन्तु सिपाही-विद्रोह के समय नीमच की सरकारी सेना ने भी बाग़ी होकर छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया। डा० मरे आदि कई अंग्रेज़ वहां से भागकर मेवाड़ के केसुन्दा गांव में पहुंचे। वहां भी बाग़ियों ने उनका पीछा किया। कप्तान शावर्स ने यह ख़बर पाते ही महाराणा की सेना सहित नीमच की तरफ़ प्रस्थान किया। महाराणा ने अपने कई सरदारों को भी उक्त कप्तान के साथ कर दिया इतना ही नहीं, किन्तु ऐसे नाज़ुक समय में कार्यकुशल मंत्री का साथ रहना उचित समझकर महाराणा ने उस(शेरसिंह)को प्रधान की हैसियत से उक्त पोलिटिकल एजेन्ट के साथ कर दिया और जब तक विद्रोह शान्त न हुआ तब तक वह उसके साथ रहकर उसे सहायता देता रहा।

नींबाहेड़े के मुसलमान अफ़सर के बाग़ियों से मिल जाने की ख़बर सुनकर कप्तान शावर्स ने मेवाड़ी सेना के साथ वहां पर चढ़ाई की, जिसमें मेहता शेरसिंह अपने पुत्र सवाईसिंह सहित शामिल था। जब नींबाहेड़े पर कप्तान शावर्स ने अधिकार कर लिया, तब वह (शेरसिंह) सरदारों की जमीयत सहित वहां के प्रबन्ध के लिए नियत किया गया।

महाराणा ने शेरसिंह को पहले ही अलग तो कर दिया था, अब उससे भारी जुर्माना भी लेना चाहा। इसकी सूचना पाने पर राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल (जॉर्ज लॉरेन्स) वि० सं० १६१७ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १८६० ता० १ दिसम्बर) को उदयपुर पहुंचा और शेरसिंह के घर जाकर उसने उसको तसल्ली दी। जब महाराणा ने शेरसिंह के विषय में उस(लॉरेन्स) से चर्चा की तब उसने उस(महाराणा)की इच्छा के विरुद्ध उत्तर दिया। उसी तरह मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर ने भी शेरसिंह से जुर्माना लेने का विरोध किया। इससे महाराणा और पोलिटिकल अफ़सरों में मनमुटाव हो गया, जो दिनों दिन बढ़ता ही गया। महाराणा ने शेरसिंह की जागीर भी ज़ब्त करली, परन्तु फिर पोलिटिकल अफ़सरों की सलाह के अनुसार वह महाराणा शंभुसिंह के समय उसे पीछी दे दी गई।

महाराणा सरूपसिंह के पीछे महाराणा शंभुसिंह के नाबालिग़ होने के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिए मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौन्सिल स्थापित हुई, जिसका एक सदस्य शेरसिंह भी था। महाराणा सरूपसिंह के समय मेहता शेरसिंह से जो तीन लाख रुपये दण्ड के लिए गये थे वे इस कौन्सिल के समय उस(शेरसिंह)की इच्छा के विरुद्ध उसके पुत्र सवाईसिंह ने राज्य के ख़ज़ाने से पीछे ले लिए। इसके कुछ ही वर्ष बाद मेहता शेरसिंह के जिम्मे चित्तोड़ ज़िले की सरकारी रक़म बाक़ी होने की शिकायत हुई। वह सरकारी रक़म जमा नहीं करा सका और जब ज्यादा तकाज़ा हुआ, तब सलूंबर के रावत की हवेली में जा बैठा, जहां पर उसकी मृत्यु हुई। राज्य की बाक़ी रही हुई रक़म की वसूली के लिए उसकी जागीर राज्य के अधिकार में लेली गई। शेरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सवाईसिंह उसकी विद्यमानता ही में मर गया, तब अजीतसिंह उसके गोद

गया, पर वह भी निःसन्तान रहा, जिससे मांडलगढ़ से चतरसिंह उसके गोद गया, जो कई वर्षों तक मांडलगढ़, राशमी, कपासन और कुंभलगढ़ आदि ज़िलों का हाकिम रहा। उसका पुत्र संग्रामसिंह इस समय महद्राजसभा का असिस्टेन्ट सेक्रेटरी है।

महाराणा सरूपसिंह ने मेहता शेरसिंह की जगह मेहता गोकुलचन्द को, जो मेहता अगरचन्द के ज्येष्ठ पुत्र देवीचन्द का पौत्र और सरूपचन्द का मेहता गोकुलचन्द पुत्र था, प्रधान बनाया। फिर वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में महाराणा ने उसके स्थान पर कोठारी केसरीसिंह को प्रधान नियत किया। महाराणा शंभुसिंह के समय वि० सं० १९२० (ई० स० १८६३) में मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट ने सरकारी आज्ञा के अनुसार रीजेन्सी कौन्सिल को तोड़कर उसके स्थान में 'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' नाम की कचहरी स्थापित की और उसमें मेहता गोकुलचन्द तथा पण्डित लक्ष्मणराव को नियत किया। वि० सं० १९२२ (ई० स० १८६५) में महाराणा शंभुसिंह को राज्य का पूरा अधिकार मिला। वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में अहलियान राज्य मेवाड़ की कचहरी टूट गई और उसके स्थान में 'ख़ास कचहरी' क़ायम हुई। उस समय गोकुलचन्द मांडलगढ़ चला गया। वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में कोठारी केसरीसिंह ने प्रधान पद से इस्तीफ़ा दे दिया तो महाराणा ने वह काम मेहता गोकुलचन्द और पंडित लक्ष्मणराव को सौंपा। बड़ी रूपाहेली और लांबावालों के बीच कुछ ज़मीन के बाबत झगड़ा होकर लड़ाई हुई, जिसमें लांबावालों के भाई आदि मारे गये। उसके बदले में रूपाहेली का तसवारिया गांव लांबावालों को दिलाना निश्चय हुआ, परन्तु रूपाहेलीवालों ने महाराणा शंभुसिंह की आज्ञा न मानी, जिसपर गोकुलचन्द की अध्यक्षता में तसवारिये पर सेना भेजी गई। वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में महाराणा शंभुसिंह ने मेहता पन्नालाल को क़ैद किया, तब उसके स्थान पर मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह महकमा ख़ास के कार्य पर नियत हुए। उसमें अर्जुनसिंह ने तो शीघ्र ही इस्तीफ़ा दे दिया और वह (गोकुलचन्द) कुछ समय तक इस कार्य को करता रहा, फिर वह मांडलगढ़ चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई।

वि० सं० १६२६ (ई० स० १८६९) में महाराणा शंभुसिंह ने 'ख़ास कच-हरी' के स्थान में 'महक्मा खास' कायम किया तो पण्डित लक्ष्मणराव ने अपने दामाद मार्तण्डराव को उसका सेक्रेटरी बनाने का उद्योग किया, परन्तु उससे काम न चलता देखकर महाराणा ने मेहता पन्नालाल[1] को, जो पहले खास कचहरी में असिस्टेन्ट (नायब) के पद पर नियत था, योग्य देख-कर सेक्रेटरी बनाया। कुछ समय पश्चात् प्रधान का काम भी महक्मा ख़ास के सेक्रेटरी के सुपुर्द हो गया और प्रधान का पद उठ गया। जब महाराणा को कितने एक स्वार्थी लोगों ने यह सलाह दी कि बड़े बड़े अहलकारों से १०-१५ लाख रुपये इकट्ठे कर लेना चाहिये तब महाराणा ने उनके बहकाने में आकर कोठारी केसरीसिंह, छगनलाल तथा मेहता पन्नालाल आदि से रुपये लेना चाहा। पन्नालाल से १२०००० रु० का रुक्का लिखवा लिया, परन्तु श्यामल-दास (कविराजा) तथा पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल निक्सन के कहने से उनके बहुतसे रुपये छोड़ दिये और पन्नालाल से सिर्फ़ ४०००० रु० वसूल किये। उस(पन्नालाल)ने अपनी प्रबन्धकुशलता, परिश्रम और योग्यता से राज्य-प्रबंध की नींव दृढ़ कर दी और खानगी में वह महाराणा को हरएक बात का हानि-लाभ बताया करता था, इसलिये बहुतसे रियासती लोग उसके शत्रु हो गये। उसे हानि पहुंचाने के लिये उन्होंने महाराणा से शिकायत की कि वह खूब रिश्वत लेता है और उसने आप पर जादू कराया है। महाराणा बीमार तो था ही, इतने में जादू कराने की शिकायत होने पर मेहता पन्नालाल वि० सं० १९३१ भाद्रपद वदि १४ (ई० स० १८७४ ता० ६ सितम्बर) को कर्णविलास में क़ैद किया गया, परन्तु तहक़ीक़ात होने पर दोनों बातों में वह निर्दोष सिद्ध हुआ, तो भी उसके इतने दुश्मन हो गये थे कि महाराणा की दाहक्रिया के समय

(१) मेहता पन्नालाल मेहता अगरचन्द के छोटे भाई हंसराज के ज्येष्ठ पुत्र दीपचंद के द्वितीय पुत्र प्रतापसिंह का पौत्र (मुरलीधर का बेटा) था । जब हड़क्याखाल की लड़ाई में होल्कर की राजमाता अहिल्याबाई के भेजे हुए तुलाजी सिंधिया और श्रीभाई के साथ की मरहटी सेना से मेवाड़ी सेना की हार हुई और मरहटों से छीने हुए सब स्थान छूट गये उस समय दीपचन्द ने जावद पर एक महीने तक उनका अधिकार न होने दिया। अन्त में तोप आदि लड़ाई के सारे सामान तथा अपने सैनिकों को साथ लेकर वह मरहटी सेना को चीरता हुआ मांडलगढ़ चला गया।

उसके प्राण लेने की कोशिश भी हुई। यह हालत देखकर मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट ने उसे कुछ दिन के लिये अजमेर जाकर रहने की सलाह दी, जिस पर वह वहां चला गया।

मेहता पन्नालाल के क़ैद होने पर महकमा खास का काम राय सोहनलाल कायस्थ के सुपुर्द हुआ, परन्तु उससे कार्य होता न देखकर वह काम मेहता गोकुलचन्द और सहीवाला अर्जुनसिंह को सौंपा गया।

पन्नालाल के अजमेर चले जाने के बाद महकमे खास का काम अच्छी तरह न चलता देखकर महाराणा सज्जनसिंह के समय पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल हर्बर्ट ने वि० सं० १९३२ भाद्रपद सुदि ४ (ई० स० १८७५ ता० ४ सितम्बर) को अजमेर से उसको पीछा बुलाकर महकमा खास का काम उसके सुपुर्द किया।

महाराणी विक्टोरिया के कैसरे-हिन्द (Empress of India) की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने ई० स० १८७७ ता० १ जनवरी (वि० सं० १९३३ माघ वदि २) को दिल्ली में एक बड़ा दरबार किया उस प्रसंग में उस (पन्नालाल) को 'राय' का ख़िताब मिला। जब महाराणा ने वि० सं० १९३७ में 'महद्राजसभा' की स्थापना की उस समय उसको उसका सदस्य भी बनाया। महाराणा सज्जनसिंह के अन्त समय तक वह महकमा खास का सेक्रेटरी (मंत्री) बना रहा और उसकी योग्यता तथा कार्य-दक्षता से राज्य-कार्य बहुत अच्छी तरह चला। उसके विरोधी महाराणा से यह शिकायत करते रहे कि वह रिश्वत बहुत लेता है, परन्तु महाराणा ने उनके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया।

महाराणा सज्जनसिंह के पीछे महाराणा फ़तहसिंह को मेवाड़ का स्वामी बनाने में उसका पूरा हाथ था। उक्त महाराणा के समय ई० स० १८८७ की महाराणी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर उसको सरकार ने सी० आई० ई० के खिताब से सम्मानित किया।

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में उसने यात्रा जाने के लिये ६ मास की छुट्टी ली तब उसके स्थान पर कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह नियत हुए। यात्रा से लौटने पर उसने अपने पद का इस्तीफ़ा दे दिया तब वे दोनों स्थायी रूप से महकमा खास के मंत्री नियत हुए।

वि० सं० १६७५ के चैत्र कृष्णा ३० को पन्नालाल ने इस संसार से कूच किया। राजा, प्रजा और सरदारों के साथ उसका व्यवहार प्रशंसनीय रहा और वे सब उससे प्रसन्न रहे। पोलिटिकल अफ़सरों ने उसकी योग्यता, कार्य-कुशलता एवं सहनशीलता आदि की समय समय पर बहुत कुछ प्रशंसा की है। उसका पुत्र फ़तेलाल महाराणा फ़तेहसिंह के पिछले समय उसका विश्वास-पात्र रहा। उस(फ़तेलाल)का पुत्र देवीलाल उक्त महाराणा के समय महकमा देवस्थान का हाकिम भी रहा।

इस प्रकार मेहता अगरचन्द और उसके भाई हंसराज के घरानों में उपर्युक्त चार पुरुष प्रधान मंत्री रहे और उनके वंश के अन्य पुरुष भी मांडलगढ़ की क़िलेदारी के अतिरिक्त राज्य के अलग अलग पदों पर अबतक नियुक्त होते रहे हैं।

मेहता रामसिंह का घराना

इस ख़ानदानवाले पहले राजपूत थे। फिर जैन मत के उत्कर्ष के समय उन्होंने उसे स्वीकार किया और उनकी गणना ओसवालों में हुई। जाल मेहता जालोर के राव मालदेव चौहान का विश्वासपात्र सेवक था। रावल रत्नसिंह के समय सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ पर चढ़ाई कर वह क़िला एवं मेवाड़ का कितना एक प्रदेश अपने अधीन कर लिया और अपने बड़े शाहज़ादे खिजरखां को वहां का शासक बनाया। क़रीब १० वर्ष तक खिज़रखां वहां रहा। फिर सुलतान ने वह प्रदेश सोनगरे मालदेव को दे दिया। सीसोदे का राणा हंमीर अपना पैतृक राज्य हस्तगत करने का विचारकर मालदेव के अधीनस्थ मेवाड़ के इलाक़ों में लूटमार करता रहा। उसे शान्त करने के लिए मालदेव ने उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर उसे मेवाड़ का कुछ इलाक़ा भी दहेज़ में दिया और अपने विश्वासपात्र सेवक जाल मेहता को अपनी पुत्री का कामदार बनाकर सीसोदे भेज दिया। तब से मेवाड़ के वर्तमान राजवंश और इस मेहता खानदान के बीच स्वामी-सेवक का सम्बन्ध चला आता है।

महाराणा हंमीर ने मालदेव के मरने पर उसके पुत्र जेसा से चित्तोड़

का राज्य छीन लिया तभी से मेवाड़ पर गुहिलवंश की सीसोदिया शाखा का अधिकार चला आता है। चित्तोड़ का राज्य प्राप्त करने में हंमीर को जाल मेहता से बड़ी सहायता मिली, जिसके उपलक्ष्य में उसने उसे अच्छी जागीर दी और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के मध्य में इस वंश में मेहता ऋषभदास हुआ, जो धर्मशील और सहृदय था। उसका पुत्र मेहता रामसिंह हुआ। रामसिंह कार्यदक्ष, नीतिकुशल, बुद्धिमान् और स्वामिभक्त था। उसने मेवाड़ में अच्छी ख्याति प्राप्त की और उसके अच्छे गुणों पर रीझकर वि० सं० १८७५ श्रावणादि आषाढ़ सुदि ३ (ई० स० १८१६ ता० २५ जून) को महाराणा भीमसिंह ने उसे बदनोर इलाक़े का अरणा गांव दिया। उक्त महाराणा के राजत्वकाल में मेवाड़ का शासन-प्रबन्ध उसके और अंग्रेज़ी सरकार दोनों के हाथ में था। प्रत्येक ज़िले में महाराणा की ओर से तो कामदार और उक्त सरकार की तरफ़ से चपरासी नियुक्त रहते थे। दोनों मिलकर प्रजा से हांसिल उगाहते थे। इस द्वैध-शासन से तंग आकर मेवाड़ की प्रजा ने अंग्रेज़ी सरकार से शिकायत की तब वि० सं० १८८१ (ई० स० १८२४) में मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान कॉब ने शिवदयाल गलूंड्या को, जो उन दिनों मेवाड़ का प्रधान था, शासन की अव्यवस्था का मूल कारण ठहराकर अलग कर दिया और उसके स्थान पर रामसिंह को नियुक्त किया।

उक्त कप्तान तथा रामसिंह के सुप्रबन्ध से मेवाड़ राज्य की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा कुछ सुधर गई और अंग्रेज़ी सरकार के चढ़े हुए खिराज में से ४००००० रु० तथा अन्य छोटे बड़े कर्ज़ राज्य की आय से ही अदा कर दिये गये। रामसिंह की कारगुज़ारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे वि० सं० १८८३ कार्तिक सुदि ३ को ४ गांव जयनगर, ककरोल, दौलतपुरा और बलदरखा दिये। महाराणा जवानसिंह को गद्दीनशीनी के बाद फ़ुजूल खर्च करने तथा शराब पीने की लत पड़ गई। इससे थोड़े ही दिनों में राज्य की आय घट गई और अंग्रेज़ी सरकार के खिराज़ के ७००००० रु० चढ़ गये। खिराज़ चुका देने के लिए पोलिटिकल एजेन्ट के ताक़ीद करने पर राज्य-व्यवस्था की ओर महाराणा का ध्यान आकृष्ट हुआ और उसने उसे सुधारने का विचारकर

रामसिंह की सलाह के अनुसार महासानी बक़्ता, कायस्थ विशननाथ और पुरोहित रामनाथ को रियासत का खर्च घटाने का काम सौंपा, परन्तु उन्होंने एक फ़र्ज़ी फ़र्द तैयार कर महाराणा के सामने पेश की, जिसमें राज्य की सालाना आमदनी १२००००० रु० और खर्च ११००००० रु० बतलाया गया। उसको देखकर उसे यह सन्देह हुआ कि रामसिंह प्रति वर्ष बचत के १००००० रु० हज़म कर जाता है। अन्त में महाराणा ने रामसिंह के स्थान पर मेहता शेरसिंह को नियुक्त किया, परन्तु शेरसिंह ने अल्पकाल में ही राज्य की सारी आय खर्च कर दी और उसके समय में रियासत पर ऋण का बोझ पहले से भी अधिक हो गया, जिससे महाराणा ने उसे अलग कर रामसिंह को फिर प्रधान बनाया।

उसने पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा अंग्रेज़ी सरकार से लिखा पढ़ी कर २००००० रु०, जो उक्त सरकार की ओर से मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेशों के प्रबन्ध के लिये महाराणा को मिले तथा एजेन्ट के निर्देश के अनुसार खर्च हुए थे, माफ़ करा दिये और चढ़ा हुआ खिराज भी चुका दिया, जिससे उसकी बड़ी नेकनामी हुई और महाराणा ने उसको सिरोपाव आदि देकर सम्मानित किया। उसकी मान-वृद्धि और उत्कर्ष को देखकर उसके शत्रुओं को बड़ी जलन हुई। वे महाराणा से उसकी शिकायत करने लगे, जिसका फल यह हुआ कि महाराणा का उसपर पहले का सा विश्वास न रहा, जिससे उस(महाराणा)ने उसे उसके पद से हटाना चाहा, परन्तु जबतक कप्तान कॉब, जो उसकी योग्यता को जानता था, मेवाड़ में रहा तबतक रामसिंह अपने स्थान पर बना ही रहा। वि० सं० १८८८ में उक्त कप्तान के उदयपुर से चले जाने पर रामसिंह का प्रभाव घट गया और उसे अपने काम से इस्तीफ़ा देना पड़ा। महाराणा ने उसके स्थान पर मेहता शेरसिंह को फिर नियुक्त किया। कप्तान कॉब रामसिंह की कार्यकुशलता से भलीभांति परिचित था, इसलिये उसने कलकत्ते से पत्र-द्वारा रामसिंह के अच्छे कामों की याद दिलाते हुए महाराणा से उसकी मान-मर्यादा की रक्षा करने की सिफ़ारिश की।

वि० सं० १८९५ (ई० स० १८३८) में महाराणा का देहान्त होने पर मेहता शेरसिंह ने कुछ सरदारों से मिलकर बागोर के महाराज शिवदानसिंह

के तृतीय पुत्र शेरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शार्दूलसिंह को गद्दी दिलाने की कोशिश की, इसलिये उक्त महाराज के ज्येष्ठ पुत्र सरदारसिंह ने महाराणा होने के कुछ दिनों पीछे शेरसिंह को क़ैद कर लिया और रामसिंह को प्रधान बनाया। महाराणा सरदारसिंह रामसिंह का बड़ा मान करता था। उसके सिफ़ारिश करने पर महाराणा ने गोगून्दे के सरदार झाला लालसिंह का, जिसपर महाराणा पर जादू कराने का अपराध लगाया गया था और जिसको मारने की आज्ञा भी दे दी गई थी, अपराध क्षमा कर दिया। जब लालसिंह के पिता शत्रुशाल ने, जिससे लालसिंह ने गोगून्दे का ठिकाना छीन लिया था, उदयपुर जाकर महाराणा की सेवा में इस आशय की अर्ज़ी पेश की कि लालसिंह का हक़ खारिज कर मेरा उत्तराधिकारी मेरा पोता मानसिंह माना जाय उस समय रामसिंह की सिफ़ारिश से ही महाराणा ने उक्त अर्ज़ी पर कुछ ध्यान न दिया।

महाराणा भीमसिंह के समय से ही महाराणाओं और सरदारों के बीच छटूंद एवं चाकरी के सम्बन्ध में झगड़ा चला आ रहा था। उसे मिटाने के लिये वि० सं० १८८४ (ई० स० १८२७) में रामसिंह की सलाह से मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान कॉब ने महाराणा और मेवाड़ के सरदारों के बीच एक क़ौलनामा तैयार किया, परन्तु उसपर किसी पक्ष के हस्ताक्षर न हुए, इसलिये रामसिंह ने वि० सं० १८९६ (ई० स० १८४०) में मेजर रॉबिन्सन से, जो उन दिनों मेवाड़ का पोलिटिकल एजेन्ट था, कह सुनकर नया क़ौलनामा तैयार कराया। रामसिंह के उद्योग से ही वि० सं० १८९७ (ई० स० १८४१) में खेरवाड़े में भीलों की सेना संगठित किये जाने का काम शुरू हुआ। वि० सं० १८९७ में उसका ज्येष्ठ पुत्र बख़्तावरसिंह बीमार हुआ उस समय महाराणा सरदारसिंह बख़्तावरसिंह का हाल दर्याफ़्त करने के लिये उसकी हवेली पर गया।

महाराणा सरूपसिंह ने गद्दी पर बैठते ही भेद-नीति से काम लेना शुरू किया। उसने मेवाड़ के सब से अधिक शक्तिशाली सरदार आसींद के रावत दूलहसिंह तथा उसके सहायक मेहता रामसिंह का ज़ोर तोड़ने के लिए सलूंबर के कुंवर केसरीसिंह को अपना कृपापात्र बनाया। केसरीसिंह ने गोगूंदे के कुंवर लालसिंह को मिलाकर रामसिंह को अलग करने का उद्योग

किया, परन्तु वह सफल न हुआ। तदुपरान्त रामसिंह ने लालसिंह को अपनी ओर मिला लिया। फिर वे दोनों महाराणा से दूलहसिंह की शिकायत करने लगे और उसको दूलहसिंह के विरुद्ध इतना भड़काया कि उसने क्रुद्ध होकर महाराणा जवानसिंह के राजत्वकाल में उस(दूलहसिंह)को छोटे छोटे गांवों के बदले जो बड़े गांव मिले थे उन्हें ज़ब्त कर लिये और उनके बदले उसे उसके पुराने गांव वापस दिलाए जाने की आज्ञा दी तथा दरबार में उसका आना जाना बन्द कर दिया। इससे दूलहसिंह अपने ठिकाने को लौट गया। इस प्रकार उदयपुर से उसके चले जाने पर रामसिंह का प्रभाव दिन दिन बढ़ता ही गया।

वि० सं० १९०० चैत्र वदि २ (ई० स० १८४४ ता० ६ मार्च) को महाराणा ने उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसकी मानवृद्धि की और उसे ताज़ीम तथा 'काकाजी' की उपाधि देकर सम्मानित किया। रामसिंह के इस सम्मान से प्रसन्न होकर कर्नल रॉबिन्सन ने महाराणा के पास एक पत्र भेजा, जिसमें उसने मुक्तकंठ से महाराणा की गुणग्राहकता की प्रशंसा की। इसी वर्ष राज्य की आर्थिक स्थिति की ओर, जो अच्छी न थी, महाराणा का ध्यान गया और उसने आमद खर्च के हिसाब की जांच कर उसे सुधारना चाहा तथा इस काम के लिए मेहता शेरसिंह को, जो महाराणा सरदारसिंह के समय मेवाड़ से भाग गया था, वापस बुलाकर उससे गुप्त रीति से राज्य के आय-व्यय का सारा हिसाब तैयार करा लिया। हिसाब की जांच पड़ताल करने पर महाराणा को सन्देह हुआ कि रामसिंह रियासत के कई लाख रुपये ग़बन कर गया है, इसलिए उसने वि० सं० १९०१ (ई० स० १८४५) में शेरसिंह को प्रधान बनाया और मेवाड़ की प्राचीन प्रथा के अनुसार रामसिंह से १०००००० रु० का रुक्क़ा लिखा लिया।

वि० सं० १९०३ (ई० स० १८४६) में उदयपुर में यह अफ़वाह उड़ी कि बागोर के महाराज शेरसिंह का पुत्र शार्दूलसिंह महाराणा को ज़हर दिलाने की कोशिश कर रहा है, जिसमें कई व्यक्ति सम्मिलित हैं। जब यह बात महाराणा के कानों तक पहुंची तब उसने शार्दूलसिंह को पकड़वा मंगाया। जब उसको धमकाया गया तो उसने डर के मारे रामसिंह आदि कई व्यक्तियों के नाम लिखा दिये। रामसिंह यह ख़बर पाते ही मेवाड़ से भागकर नीमच, शाह-

पुरा आदि स्थानों में होता हुआ ब्यावर (ज़िला अजमेर) चला गया। उदयपुर से उसके चले जाने पर उसकी सारी जायदाद ज़ब्त करली गई और उसके बालबच्चे भी वहां से निकाल दिये गये। बीकानेर के तत्कालीन महाराजा सरदारसिंह ने, जो रामसिंह की कार्यदक्षता आदि गुणों से पूर्ण परिचित था, उससे बीकानेर चले आने का आग्रह किया, परन्तु उसने इस अनुग्रह के लिए महाराजा को धन्यवाद देते हुए लिखा "महाराणा साहब को मेरी सेवाओं का पूरा ध्यान है। वे मेरे शत्रुओं के झूठी ख़बर फैलाने से इस समय मुझसे अप्रसन्न हैं तो भी कभी न कभी उनकी अप्रसन्नता अवश्य दूर होगी। उस समय वे मुझे अपनी सेवा में अवश्य पीछा बुला लेंगे।" जब यह बात महाराणा सरूपसिंह को मालूम हुई तब उसने रामसिंह को फिर उदयपुर में बुलाना चाहा, परन्तु उसके पूर्व ही वह इस संसार से चल बसा था।

रामसिंह के ५ पुत्र बख़्तावरसिंह, गोविन्दसिंह, ज़ालिमसिंह, इन्द्रसिंह और फ़तहसिंह हुए। बख़्तावरसिंह अपने पिता की जीवित दशा में ही मर गया। गोविन्दसिंह के वंश में उसके द्वितीय पुत्र रत्नसिंह का पुत्र चिमनसिंह ब्यावर में विद्यमान है और कई वर्ष तक वहां का म्यूनीसिपल कमिश्नर रहा है। चौथे पुत्र इन्द्रसिंह को तो बीकानेर के महाराज ने अपने यहां और तृतीय पुत्र ज़ालिमसिंह को वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में महाराणा शंभुसिंह ने अपने पास उदयपुर बुला लिया। ज़ालिमसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मेवाड़ के कई ज़िलों में हाकिम रहा और उसने राशमी प्रांत में 'माळ' की ज़मीन में काश्तकारी का सिलसिला जारी कर एक गांव बसाया, जो उसके नाम पर ज़ालिमपुरा कहलाता है।

वि० सं० १९२५ में वह छोटी सादड़ी का हाकिम हुआ और उस पद पर तीन साल तक रहा, पर तनख़्वाह कभी न ली। जब प्रधान कोठारी केसरीसिंह ने उक्त ज़िले के आय-व्यय के हिसाब की जांच की तब उसने उसकी कारगुज़ारी से प्रसन्न होकर उसके भोजन-ख़र्च के लिये प्रतिदिन ३ रु० दिये जाने की व्यवस्था करा दी और तीनों साल का वेतन भी दिला दिया। वि० सं० १९२८ में राज्य के महकमों का सुधार हुआ। उस समय ज़ालिमसिंह 'हिसाब दफ़्तर' का हाकिम बनाया गया। उसकी कार्यदक्षता से प्रसन्न होकर

महाराणा ने उसके निर्वाह के लिये १००० रु० की आय का बरोड़ा गांव और रहने के लिये उसकी हवेली के पीछे का एक 'नौहरा' प्रदान किया। वि० सं० १६३१ में वह जहाज़पुर का हाकिम नियत हुआ, परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह स्वयं वहां न जा सका और अपने ज्येष्ठ पुत्र अक्षयसिंह को भेज दिया।

वि० सं० १६३६ (ई० स० १८७६) में उसकी मृत्यु हुई। उसके तीन पुत्र अक्षयसिंह, केसरीसिंह और उम्रसिंह हुए।

कई बरसों तक मेवाड़ के कई ज़िलों में अपने पिता के साथ काम करने से अक्षयसिंह को राजकाज का अच्छा अनुभव हो गया था। नींबाहेड़े के सरहद्दी मामले का फ़ैसला होने के समय महाराणा शंभुसिंह ने उसे अपना मोतमिद बना कर वहां भेजा। जब वह जहाज़पुर का हाकिम हुआ उस समय उसने उस ज़िले की आय बढ़ाई और अपने तथा अपने भाई व पुत्र के नाम पर वहां तीन गांव अक्षयपुरा, केसरपुरा और जीवनपुरा बसाये। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा सज्जनसिंह ने उसे कुंभलगढ़ का हाकिम बनाया। साथ ही मगरे तथा छोटी सादड़ी का भी प्रबन्ध उसके ही सुपुर्द किया। ये दोनों ज़िले एक दूसरे से दूर होने के कारण अक्षयसिंह ने महाराणा से छोटी सादड़ी का ज़िला किसी अन्य व्यक्ति के सुपुर्द किये जाने की प्रार्थना की, जो स्वीकृत हुई और अक्षयसिंह के हाथ में सिर्फ़ मगरा ज़िले का इन्तिज़ाम रखा गया। उसने वहां की आबादी बढ़ाई और लुटेरे भीलों को खेती के काम में लगा कर राज्य की आय-वृद्धि की।

ई० स० १८८१ की मर्दुमशुमारी के समय खेरवाड़े की तरफ़ के मगरा ज़िले के जंगली भील अनेक प्रकार का सन्देह होने से उत्तेजित होकर बाग़ी हो गये और उन्होंने कई थाने, चौकियां, दूकानें आदि जला दीं, कुछ अहल-कारों एवं सिपाहियों को मार डाला और परसाद गांव में अक्षयसिंह को घेर लिया। अन्त में धूलेव के बनियों के समझाने बुझाने और कविराजा श्यामल-दास के आधा बराड़ माफ़ करा देने का वादा करने पर भील शान्त हो गये। अक्षयसिंह ने समय समय पर महाराणा की सेवा में मगरा ज़िले के प्रबन्ध के सम्बन्ध में तजवीज़ें पेश कीं, जिन्हें पसन्द कर महाराणा ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

वि० सं० १९४० (ई० स० १८८३) में अक्षयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जीवन-सिंह के विवाह के प्रसंग पर महाराणा ने उसकी हवेली पर मेहमान होकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८०) में अक्षयसिंह मांडलगढ़ का हाकिम हुआ। फिर वि० सं० १९४१ (ई० स० १८८४) में महाराणा फ़तहसिंह के राजत्वकाल में वह भीलवाड़े का हाकिम बनाया गया।

वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९९) के अकाल के समय उसने ग़रीबों की जान बचाने का बहुत कुछ उद्योग किया।

इसके पीछे वि० सं० १९६० (ई० स० १९०३) में वह भींडर का मुन्तज़िम नियत हुआ। उसने उक्त ठिकाने का सुप्रबन्ध कर उसपर जो कर्ज़ था उसके चुकाये जाने की व्यवस्था की।

उसने समय समय पर ख़ज़ाने, 'निज सैन्य सभा' और माल, फ़ौज, हद-बस्त आदि महकमों का कार्य किया। अपनी मिलनसारी के कारण वह सदा लोक-प्रिय रहा। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में उसका देहान्त हुआ। उसके दो पुत्र जीवनसिंह और जसवन्तसिंह हुए। जोधपुर के महाराजा सर-दारसिंह के साथ महाराणा (फ़तहसिंह) की राजकुमारी का विवाह होने पर जसवंतसिंह राजकुमारी का कामदार बनाकर जोधपुर भेजा गया। उक्त कुमारी की मृत्यु हो जाने पर महाराणा ने उसे पीछा बुलाकर सहाड़ां ज़िले का हाकिम किया और इन दिनों वह भीलवाड़े का हाकिम है।

जीवनसिंह समय समय पर कुंभलगढ़, सहाड़ां, कपासन, जहाज़पुर, चित्तोड़, आसींद, भीलवाड़ा, मगरा आदि मेवाड़ के अनेक प्रान्तों का हाकिम रहा और जहां वह रहा वहां की प्रजा उसके अच्छे बरताव से सदा प्रसन्न रही।

उसकी योग्यता एवं प्रबन्ध-कुशलता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उसे समय समय पर पुरस्कार आदि प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। लगातार ३५ साल तक हाकिम का काम करने से उसकी प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता प्रसिद्धि में आई, जिससे मेवाड़ के रेज़िडेन्टों तथा अन्य अंग्रेज़ अफ़सरों ने भी, जिनके साथ रहकर काम करने का उसे सुयोग प्राप्त हुआ है, उसकी योग्यता एवं अनुभव की सराहना की है। उसपर वर्तमान महाराणा सर भूपालसिंहजी

की भी पूर्ण कृपा है और हाल में उसको महद्राजसभा का मेम्बर नियुक्त किया है।

उसके तीन पुत्र तेजसिंह, मोहनसिंह और चन्द्रसिंह हैं। तेजसिंह ने, जो बी० ए०, एलएल० बी० है, कुछ समय तक सीतापुर में वकालत की। फिर महाराणा फ़तहसिंह ने वि० सं० १९७५ (ई० स० १९१८) में उसे कुंभलगढ़ तथा सायरा प्रान्त का हाकिम नियत किया। वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१) में वह महाराजकुमार भूपालसिंहजी का प्राइवेट सेक्रेटरी नियत हुआ। वि० सं० १९८७ (ई० स० १९३०) में उनके महाराणा होने के समय से ही वही उनका प्राइवेट सेक्रेटरी है। उक्त महाराणा ने उसके काम से प्रसन्न होकर उसको सोने के लंगर प्रदान कर सम्मानित किया।

मोहनसिंह प्रयाग विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पासकर कुछ काल तक इलाहाबाद, आगरा व अजमेर में प्रोफ़ेसर रहा। फिर वि० सं० १९७८ (ई० स० १९२१) में कुंभलगढ़ और सायरे का हाकिम हुआ। मेवाड़ में जब बन्दोबस्त का काम शुरू हुआ उस समय वह सेटलमेन्ट अफ़सर का मुख्य असिस्टेन्ट नियत हुआ। वि० सं० १९८२ (ई० स० १९२५) में उसने इंगलैंड जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा पास की और लंडन यूनिवर्सिटी से पी० एच० डी० की डिगरी प्राप्त की। राजपूताने में यह पहला व्यक्ति है, जिसने विद्वत्ता-सूचक ऐसी उच्च डिगरी प्राप्त की। मेवाड़ में स्काउट संस्था का जन्म उसी के सदुद्योग का फल है। इस समय यह महकमा माल का हाकिम (Revenue Officer) है।

सेठ जोरावरमल बापना का घराना

जोरावरमल बापना (पटवा) गोत्र का ओसवाल महाजन था। उसके पूर्वजों का मूलनिवास-स्थान जैसलमेर था। उसके पूर्वज देवराज के गुमानचंद नाम का पुत्र हुआ। गुमानचंद के बहादुरमल, सवाईराम, मगनीराम, जोरावर-मल और प्रतापचंद नामक पांच पुत्र थे। चौथे पुत्र जोरावरमल ने व्यापार में अच्छी उन्नति कर कई बड़े बड़े शहरों में दूकानें क़ायम कीं और बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की। इन्दौर राज्य के कई महत्वपूर्ण कार्यों में उसका हाथ रहा। उसी की

कोशिश से अंग्रेज़ी सरकार और होल्कर में अहदनामा हुआ। इस सेवा से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ी सरकार तथा होल्कर ने उसे परवाने देकर सम्मानित किया।

ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में कर्नल टाड मेवाड़ का पोलिटिकल एजेन्ट होकर उदयपुर गया। उस समय मेवाड़ की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी, अतएव उक्त कर्नल की सलाह के अनुसार महाराणा भीमसिंह ने इन्दौर से सेठ जोरावरमल को उदयपुर बुलाया। उसके उदयपुर जाने पर महाराणा ने उसे वहां सम्मानपूर्वक रखकर उसकी दूकान क़ायम कराने के लिये उससे कहा "राज्य के कामों में जो रुपये ख़र्च हों, वे तुम्हारी दूकान से दिये जायें और राज्य की सारी आय तुम्हारे यहां जमा रहे"। महाराणा के कथनानुसार जोरावरमल ने उदयपुर में अपनी दूकान खोली, नये खेड़े बसाये, किसानों को सहायता दी और चोरों एवं लुटेरों को दंड दिलाकर राज्य में शान्ति स्थापित कराने में मदद दी। उसकी इन सेवाओं के उपलक्ष्य में वि० सं० १८८३ (चैत्रादि १८८४) ज्येष्ठ सुदि १ (ई० स० १८२७ ता० २६ मई) को महाराणा ने उसे पालकी तथा छड़ी के सम्मान के साथ वंशपरम्परा के लिये बदनोर परगने का परासोली गांव और 'सेठ' की उपाधि दी। पोलिटिकल एजेन्ट ने भी उसे प्रबन्धकुशल देखकर अंग्रेज़ी ख़ज़ाने का प्रबन्ध उसके सुपुर्द कर दिया। वि० सं० १८८९ मार्गशीर्ष सुदि १० रविवार (ई० स० १८३२ ता० २ दिसंबर) के दिन प्रसिद्ध केसरियानाथ के मन्दिर पर उसने ध्वजा-दंड चढ़ाया और दरवाज़े पर नक्कारख़ाना बनवाया।

वि० सं० १८९० में महाराणा जवानसिंह गया-यात्रा को गया उस समय जोरावरमल ने उस (महाराणा) की इच्छा के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतानमल को उसके साथ कर दिया, जिसके सुपुर्द यात्रा के खर्च का प्रबन्ध रहा। उस (जोरावरमल) ने तथा उसके भाइयों ने वि० सं० १८९१ में १३००००० रुपये व्यय कर आबू, तारंगा, गिरनार, शत्रुंजय आदि के लिये बड़ा संघ निकाला। उस (संघ) की रक्षा के लिये उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, टोंक और इन्दौर राज्यों तथा अंग्रेज़ी सरकार ने सेनाएं भेजीं, जिनमें ४००० पैदल, १५० सवार और ४ तोपें थीं। इस संघ पर जैसलमेर के महारावल ने उसे 'संघवी सेठ' की उपाधि दी।

महाराणा सरूपसिंह के समय राज्य पर २०००००० से अधिक रुपयों का कर्ज़ था, जिसमें अधिकांश सेठ जोरावरमल बापना का ही था। महाराणा ने उसके कर्ज़ का निपटारा करना चाहा। उसकी यह इच्छा देख कर वि० सं० १६०३ चैत्र सुदि १ (ई० स० १८४६ ता० २८ मार्च) को जोरावरमल ने उसे अपनी हवेली पर मेहमान किया और जिस प्रकार उसने चाहा वैसे ही उस (जोरावरमल)ने अपने कर्ज़ का फ़ैसला कर लिया। इसपर प्रसन्न होकर महाराणा ने उसको कुण्डाल गांव, उसके पुत्र चांदणमल को पालकी और पोतों (गंभीरमल और इन्दरमल) को भूषण, सिरोपाव आदि दिये। दूसरे लेनदारों ने भी जोरावरमल का अनुकरण कर महाराणा की इच्छा के अनुसार अपने रुपयों का फ़ैसला कर दिया। इस प्रकार रियासत का भारी कर्ज़ सहज ही बेबाक हो गया और सेठ जोरावरमल की बड़ी नेकनामी हुई।

वि० सं० १६०६ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८५३ ता० २६ फरवरी) को इन्दौर में उसका देहान्त होने पर वहां के महाराजा ने बड़े समारोह के साथ 'छत्री बाग़' में उसकी दाह-क्रिया कराई।

जोरावरमल बड़ा ही सम्पतिशाली होने के अतिरिक्त राजनीतिज्ञ भी था, जिससे उदयपुर राज्य में उसकी प्रधान से भी अधिक प्रतिष्ठा रही इतना ही नहीं किन्तु जोधपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, टोंक और इन्दौर आदि राज्यों में उसका बहुत कुछ सम्मान रहा। देशी राज्यों के अंग्रेज़ी राज्य के साथ के सम्बन्ध में, तथा देशी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध में उसकी सलाह और मदद ली जाती थी।

जोरावरमल के दो पुत्र सुल्तानमल और चांदणमल हुए। सिपाही-विद्रोह के समय चांदणमल ने जगह जगह अंग्रेज़ी सरकार के लिये खज़ाना पहुंचा कर उसकी अच्छी सेवा की, जिससे सरकार उससे बहुत प्रसन्न हुई।

चांदणमल के दो पुत्र जुहारमल और छोगमल हुए। महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १६५० (ई० स० १८६३) तक उदयपुर और चित्तौड़ के बीच रेल न थी और चित्तोड़ का स्टेशन उदयपुर से ६६ मील दूर होने से मुसाफ़िरों को उक्त स्टेशन तक पहुंचने में बड़ी असुविधा एवं कठिनाई उठानी पड़ती थी, इसलिये उनके सुबीते के लिये महाराणा ने शहर उदयपुर तथा चित्तोड़गढ़

स्टेशन के बीच 'मेल कार्ट' चलाना स्थिर कर, इस काम को सेठ जुहारमल की निगरानी में रखा। कई बरसों तक मेल कार्ट चला, परन्तु उस काम में बड़ा नुक़सान रहा। इसपर महाराणा ने जुहारमल को हानि की पूर्ति करने तथा पहले का बक़ाया निकाला हुआ राज्य का ऋण चुका देने की आज्ञा दी। उस समय उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, जिससे वह महाराणा की आज्ञा का पालन न कर सका। इसपर महाराणा ने राज्य के रुपयों की वसूली तक के लिये उसका परासोली गांव अपने अधिकार में कर लिया। इस मामले में उसे बड़ी हानि पहुंची।

छोगमल का दूसरा पुत्र सिरेमल हुआ। उसने वि० सं० १९५९ (ई० स० १९०२) में बी० ए० और बी० एस० सी० की परीक्षाओं में एक साथ सफलता प्राप्त की और विज्ञान विषय में वह सर्वप्रथम रहा, जिसपर प्रयाग विश्वविद्यालय ने उसको 'इलियट छात्रवृत्ति' और 'जुबिली पदक' प्रदान किया। वि० सं० १९६१ (ई० स० १९०४) में प्रथम स्थान प्राप्त कर एलएल० बी० की परीक्षा में वह सफल हुआ। पहले उसने अजमेर में वकालत की और बाद में वह इन्दौर राज्य की सेवामें प्रविष्ट हुआ, जहां पहले महीदपुर का जज, फिर सेशन जज रहकर महाराजा तुकोजीराव (तृतीय) होल्कर का क़ानूनी शिक्षक नियत हुआ। वह उक्त महाराजा के साथ दो बार यूरोप भी गया। महाराजा को अधिकार मिलने पर वह उनका सेक्रेटरी और तत्पश्चात् होम सेक्रेटरी (गृहसचिव) बना। १९२१ ई० में जब उसने इन्दौर राज्य से त्यागपत्र दिया तो राज्य ने उसकी ख़ासतौर से पेन्शन कर दी। इसके बाद वह पटियाला राज्य में भिन्न भिन्न पदों पर रहा। जब पटियाला और नाभा के बीच के झगड़े की जांच अंग्रेज़ी सरकार ने की उस समय वह प्रारम्भ में पटियाले का मुख्य प्रतिनिधि रहा।

वि० सं० १९८० (ई० स० १९२३) में महाराजा होल्कर ने उसे फिर अपने यहां बुलाकर उपसचिव (Deputy Prime minister) बनाया। वर्तमान महाराजा यशवन्तराव (द्वितीय) के नाबालिग़ी के समय वह प्रधान मन्त्री और केबिनेट के प्रेसीडेन्ट के पद पर नियत हुआ। इस अरसे में उसने ऐसी योग्यता के साथ राज्य का उत्तम प्रबन्ध किया कि राज्य की प्रजा और अंग्रेज़ी सरकार

दोनों उससे सन्तुष्ट रहे। वर्तमान नरेश के राज्याधिकार के दरबार में एजेन्ट गवर्नर जनरल सेन्ट्रल इंडिया और स्वयं महाराजा ने उसके कार्य की बहुत कुछ प्रशंसा की। इस समय भी वह प्रधान मन्त्री और केबिनेट का प्रेसीडेन्ट है।

उसकी योग्यता और सेवा से प्रसन्न होकर तुकोजीराव (तृतीय) ने उसे 'ऐतमादुद्दौला' का और सरकार अंग्रेज़ी ने वि० सं० १९७१ (ई० स० १९१४) में रायबहादुर का ख़िताब दिया। वर्तमान इन्दौर नरेश ने उसे 'वज़ीर उद्दौला' के और ता० १ जनवरी ई० स० १९३१ को सरकार अंग्रेज़ी ने सी० आई० ई० के ख़िताब से भूषित किया है। सन् १९३१ की दूसरी राउन्डटेबल कान्फ्रेन्स में इन्दौर महाराजा यशवन्तराव (द्वितीय) की नियुक्ति होने पर वह उनकी सहायतार्थ फिर इङ्गलैंड गया। उसके दो पुत्र कल्याणमल और प्रतापसिंह हैं, जो दोनों इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के बी० ए०, एलएल० बी० हैं।

पुरोहित राम का घराना

पुरोहित राम के पूर्वज अजमेर के सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के पुरोहित थे। वे पृथ्वीराज के मारे जाने और उसके साम्राज्य पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने के पीछे उसके वंशज हम्मीर तक रणथंभोर के चौहानों के पुरोहित रहे। अलाउद्दीन खिलजी के हाथ में रणथंभोर का राज्य चले जाने पर वहां के चौहान जब इटावा, मैनपुरी, गुजरात आदि की तरफ़ चले गये उस समय उनके पुरोहित भी उनके साथ उधर गये। फिर वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में जब खानवे में बाबर के साथ महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) की लड़ाई हुई उस समय राजोर का स्वामी माणिकचन्द चौहान चार हज़ार सेना सहित महाराणा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसके साथ उसका पुरोहित वागीश्वर भी था। माणिकचन्द तथा वागीश्वर दोनों महाराणा की सेना में रहकर बाबर से लड़े और मारे गये। इस सेवा के उपलक्ष्य में माणिकचन्द के वंशजों को मेवाड़ राज्य की ओर से कोठारिये की जागीर मिली। वागीश्वर के वंशज कोठारिये के पुरोहित रहे।

वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) में महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के दासीपुत्र वणवीर ने महाराणा विक्रमादित्य को मार डाला और

उसके छोटे भाई उदयसिंह को भी बध करने के लिए उसकी धाय पन्ना के, जो खीची जाति की थी, पास गया, परन्तु उसको वणवीर की बुरी नियत की सूचना पहले ही मिल चुकी थी, इसलिये उदयसिंह को वहां से निकाल कर उसके बिस्तर पर अपने पुत्र को सुला दिया, जिसे उदयसिंह समझकर वणवीर ने मार डाला। फिर धाय पन्ना उदयसिंह को साथ लेकर कुंभलगढ़ चली गई। वि० सं० १५९४ (ई० स० १५३७) में वणवीर से अनबन हो जाने के कारण कोठारिये का रावत खान, जो उन दिनों चित्तोड़ में था, कुंभलगढ़ में उदयसिंह से जा मिला और उसने सलूंबर के रावत सांईदास, केलवे के सरदार जग्गा, बागोर के रावत सांगा आदि सरदारों को बुलाकर वहीं उसका राज्याभिषेक किया। रावत खान पर महाराणा का पूरा विश्वास था, इसलिए उससे ही उसने अपने भरोसे के सेवक लिए, जिनमें वागीश्वर के पौत्र नरू का द्वितीय पुत्र राम भी था। उसी समय से राम तथा उसके वंशज पुरोहिताई का पुश्तैनी पेशा छोड़कर चित्तोड़ एवं उदयपुर में महाराणाओं की सेवा में रहने लगे और पीछे से महाराणा के दरबार के प्रबन्धकर्त्ता (Master of Ceremony) रहे।

वि० सं० १६३४ मार्गशीर्ष वदि ३ (ई० स० १५७७ ता० २९ अक्टोबर) के एक दान-पत्र से विदित है कि उक्त पुरोहित तथा उसके पुत्र भगवान तथा काशी को महाराणा प्रतापसिंह ने ओडा गांव दिया। यह गांव उन्हें महाराणा उदयसिंह ने दिया था, परन्तु गोगूंदे की लड़ाई के समय उसका ताम्रपत्र खो गया, जिससे महाराणा प्रतापसिंह ने उसका नया दानपत्र कर दिया।

भगवान का प्रपौत्र सुखदेव महाराजकुमार कर्णसिंह का कृपाभाजन रहा। वह उक्त महाराजकुमार के साथ दिल्ली तथा दक्षिण में रहा था। गद्दीनशीनी के बाद महाराणा कर्णसिंह ने उसे अरड़क्या गांव तथा कर्णपुर में भूमि दी।

सुखदेव के जगन्नाथ आदि पुत्रों ने महाराणा जयसिंह की अच्छी सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने उन्हें अलग अलग गांव दिये। जब महाराणा तथा कुंवर अमरसिंह के बीच बिगाड़ हो गया और दोनों लड़ाई की तैयारी करने लगे उस समय पुरोहित जगन्नाथ ने पिता-पुत्र के बीच मेल कराने में राठोड़ गोपीनाथ एवं दुर्गादास का साथ दिया, जिससे प्रसन्न होकर महाराणा ने

घाणेराव में रहते समय उसे वि० सं० १७४८ फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १६९२ ता० ३ फरवरी) को निकोड़ और उदयपुर लौट आने के बाद वि० सं० १७५१ द्वितीय आषाढ़ वदि ३ (ई० स० १६९५ ता० १९ जून) को लालवास गांव दिया।

महाराणा जगत्सिंह (दूसरे) के समय जगन्नाथ का पुत्र दीनानाथ जहाज़पुर का हाकिम हुआ। उसके सुप्रबन्ध से प्रसन्न होकर महाराणा अरिसिंह (द्वितीय) ने उसे वि० सं० १८२२ माघ वदि ७ (ई० स० १७६६ ता० ३ जनवरी) को दो गांव केसर तथा पद्राड़ा दिये। महाराणा भीमसिंह के राजत्वकाल में मरहटों तथा पिंडारियों ने मेवाड़ में बड़ा उपद्रव मचाया तो उसने चित्तोड़ की रक्षा के लिये कुंवर अमरसिंह को भेजा और दीनानाथ के पौत्र रामनाथ को उसके साथ कर दिया।

डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह से महाराणा नाराज़ था। उसकी नाराज़गी दूर कराने के उपलक्ष्य में रावल ने वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में रामनाथ को बीज़ावरु गांव दिया। कर्नल टॉड के समय उसकी अच्छी सेवा से प्रसन्न होकर महाराणा ने निकोड़ गांव पर, जो उसके परदादा जगन्नाथ को मिला था और जो महाराणा अरिसिंह (दूसरे) के समय उसके हाथ से निकल गया था, फिर उसका दखल करा दिया और वि० सं० १८७८ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० स० १८२२) को उसे हाथी, सोने के लंगर तथा उमंड गांव देना चाहा, परन्तु उसने हाथी लेने और पैर में सोना पहिनने से इन्कार कर उनके बदले सदाव्रत जारी किये जाने की महाराणा से प्रार्थना की, जिसे स्वीकार कर महाराणा ने उदयपुर में बड़ी पोल के बाहर लंगर का कोठार क़ायम कराकर सदाव्रत दिये जाने की व्यवस्था कर दी। महाराणा जवानसिंह की भी रामनाथ पर बड़ी कृपा थी। उस (महाराणा) के समय रियासत की आमद ख़र्च की जांच करने के लिये तीन पुरुष नियुक्त हुए, जिनमें रामनाथ भी था। रामनाथ के दो पुत्र श्यामनाथ और प्राणनाथ[1] हुए। रामनाथ का देहान्त हो जाने पर उसका काम उसके पुत्र श्यामनाथ को सौंपा गया, जिसे वि० सं०

(१) प्राणनाथ का पुत्र अक्षयनाथ हुआ, जिसके तीन पुत्र सुन्दरनाथ, सरूपनाथ और शोभानाथ इस समय विद्यमान हैं।

१८८८ वैशाख वदि ११ (ई० स० १८३२) को महाराणा ने ज़ालिमपुरा गांव दिया और वह महाराणा जवानसिंह तथा सरूपसिंह के समय मुसाहिबों में था।

वि० सं० १८८६ में महाराणा हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिङ्क से मुलाक़ात करने अजमेर गया, उस समय श्यामनाथ उसके साथ था। फिर वि० सं० १८६० (ई० स० १८३३) में गया जाते समय भी महाराणा श्यामनाथ को साथ ले गया।

वि० सं० १६०३ चैत्र सुदि ३ (ई० स० १८४७ ता० ६ एप्रिल) को महाराणा सरूपसिंह ने श्यामनाथ को उसके कामों से प्रसन्न होकर ओवरां गांव दिया। वि० सं० १६०७ (ई० स० १८५०) में महाराणा सरदारसिंह की राजकुमारियों के साथ कोटे के महाराव रामसिंह तथा रीवां के महाराजकुमार रघुराजसिंह का विवाह हुआ। उस समय विवाह सम्बन्धी सारी बातचीत मेहता शेरसिंह और श्यामनाथ के द्वारा ही स्थिर हुई। इसलिये दोनों नरेशों ने उन्हें पुरस्कार दिये। महाराणा और सरदारों के आपसी झगड़े मिटाने के लिये जब राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल सर हेनरी लारेन्स नीमच गया और सलूंबर का रावत केसरीसिंह आदि विरोधी सरदार एकत्र हुए उस समय वहां महाराणा की तरफ़ से बेदले का राव बख़्तसिंह, मेहता शेरसिंह प्रधान तथा श्यामनाथ भेजे गये।

महाराणा सरूपसिंह ने किसी न किसी बहाने प्रधान आदि जिन प्रतिष्ठित पुरुषों से रुपये वसूल किये उनमें श्यामनाथ भी था। उसके इस बर्ताव से नाराज़ होकर वह (श्यामनाथ) सिरोही, द्वारका, नड़ियाद आदि स्थानों में होता हुआ ईडर चला गया। वहां उक्त राज्य के तत्कालीन स्वामी ने उसे प्रतिष्ठापूर्वक रक्खा। अन्त में महाराणा का देहान्त हो जाने पर राजपूताने का एजेन्ट गवर्नर जनरल जार्ज लारेन्स उसे अपने साथ उदयपुर वापस लाया।

महाराणा शंभुसिंह की नाबालिगी के समय वह रीजेन्सी कौन्सिल का सदस्य नियुक्त हुआ। राज्य के कुछ अहलकार कौन्सिल के सरदारों से मेलजोल बढ़ाकर अपना घर बनाने तथा सुन्दरनाथ पुरोहित आदि महाराणा के निजी सेवक मुसाहिब बनकर हुक्म चलाने लगे और बेमाली का रावत ज़ालिमसिंह आदि व्यक्ति अल्पवयस्क महाराणा को दुर्व्यसनों में फंसा कर स्वार्थसिद्धि में

लग गये। श्यामनाथ के स्पष्टवक्ता तथा सच्चा स्वामिभक्त होने के कारण वे उसके दुश्मन हो गये, जिससे उसे मेवाड़ से बाहर चला जाना पड़ा। अन्त में जब महाराणा को दुर्व्यसनों का कड़वा फल चखना पड़ा तब उसकी आंखें खुलीं। वि० सं० १६२८ (ई० स० १८७१) में उसने ज़ालिमसिंह को उदयपुर से निकाल दिया और श्यामनाथ को वापस बुला कर उससे कहा—"तुम्हारी नेक सलाह न मानने और स्वार्थी लोगों के जाल में फंस जाने से ही मेरी तन्दुरुस्ती बरबाद हुई। यदि तुम मेरे पास बने रहते तो कभी ऐसा न होता"।

श्यामनाथ योगाभ्यासी था। उसने अपने अन्तिम दिनों में संन्यास ग्रहण कर शरीर छोड़ा। श्यामनाथ का पुत्र पद्मनाथ महाराणा सज्जनसिंह के राजत्व-काल में पहले इजलास खास, फिर महद्राजसभा का मेम्बर रहा। वह देशहितकारिणी सभा का भी सदस्य था और भूतपूर्व महाराणा फ़तहसिंह के समय वॉल्टरकृत राजपूतहितकारिणी सभा का मेम्बर चुना गया। इस समय पद्मनाथ के तीन पुत्र-शंभुनाथ, मथुरानाथ और देवनाथ-विद्यमान हैं। शंभुनाथ पर भी महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराणा फ़तहसिंह की कृपा रही। देवनाथ को मेवाड़ के इतिहास से विशेष अनुराग है।

कोठारी केसरीसिंह का घराना

कोठारी छगनलाल और केसरीसिंह के पूर्वज राजपूत थे, परन्तु पीछे से जैनधर्म ग्रहण करने से उनकी गणना ओसवालों में हुई।

वि० सं० १६०२ (ई० स० १८४५) में महाराणा सरूपसिंह के समय 'रावली दूकान' (State Bank) क़ायम हुई और कोठारी केसरीसिंह उसका हाकिम नियत हुआ। वि० सं० १६०८ (ई० स० १८५१) में वह महकमे 'दाण' (चुंगी) का हाकिम बनाया गया और महाराणा के इष्टदेव एकलिङ्गजी के मन्दिर सम्बन्धी प्रबन्ध भी उसी के सुपुर्द हुआ[1]। वह महाराणा का खानगी सलाहकार भी रहा। उसके कामों से प्रसन्न होकर महाराणा ने वि० सं० १६१६

---

(१) जब से यह काम कोठारी केसरीसिंह के सुपुर्द हुआ तब से वह तथा उसके वंशज जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी एकलिङ्गजी को अपना इष्ट-देवता मानते हैं।

में उसे नेतावला गांव जागीर में दिया और उसकी हवेली पर मेहमान हो कर उसका सम्मान बढ़ाया। फिर उसी साल मेहता गोकुलचंद के स्थान पर उसको प्रधान बनाया और बोराव गांव तथा पैरों में पहनने के सोने के तोड़े प्रदान किये। महाराणा शंभुसिंह की बाल्यावस्था के कारण राज्य-प्रबन्ध के लिये मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मेजर टेलर की अध्यक्षता में रीजेन्सी कौन्सिल (पंचसरदारी) क़ायम हुई, जिसका एक सदस्य कोठारी केसरीसिंह भी था और माल (Revenue) के काम का निरीक्षण भी उसी के अधीन रहा।

उस समय कौन्सिल के सरदारों से मेलजोल बढ़ाकर कुछ अहलकार अपनी स्वार्थसिद्धि में लगे हुए थे, परन्तु कोठारी केसरीसिंह के स्पष्टवक्ता और राज्य का सच्चा हितैषी होने के कारण उसके आगे उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता था, जिससे बहुतसे लोग उसके दुश्मन होकर उसको हानि पहुंचाने का उद्योग करने लगे। कौंसिल के सरदार जब किसी को जागीर दिलाना चाहते तो वह यह कहकर उन्हें इस काम से रोकने की चेष्टा करता कि जागीर देने का अधिकार कौंसिल को नहीं, किन्तु महाराणा को है। इसके सिवा वह पोलिटिकल एजेन्ट को सरदारों की अनुचित कार्रवाइयों से भी परिचित कर देता और उचित सलाह देकर शासन-सुधार में भी उसकी सहायता करता था। उसकी इन बातों से अप्रसन्न होकर सरदार उसके विरुद्ध पोलिटिकल एजेन्ट को भड़काने लगे। उन्होंने उससे कहा "केसरीसिंह की ही सलाह पर महाराणा चलते हैं और उस(केसरीसिंह)ने राज्य के २००००० रु० ग़बन कर लिये हैं"। पोलिटिकल एजेन्ट ने बिना जांच किये ही सरदारों के इस कथन पर विश्वास कर लिया और उसको पदच्युत कर उदयपुर से निकाल दिया, जिससे वह एकलिंगजी चला गया। महाराणा को केसरीसिंह पर पूर्ण विश्वास था इसलिये उसने उसपर लगाये हुए ग़बन की जांच कराई, जिसमें निर्दोष सिद्ध होने पर उसने उसको पुनः प्रधान बनाया।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के भयंकर अकाल के समय महाराणा की आज्ञा से उसने सब व्यापारियों से कहा कि बाहर से अन्न मंगाओ इसमें राज्य आपको रुपयों की सहायता देगा। इसपर व्यापारियों ने पर्याप्त मात्रा में बाहर से अन्न मंगवाया, जिससे लोगों को अन्न सस्ता मिलने लगा। वि० सं०

१९२६ (ई० स० १८६९) में बागोर के महाराज समर्थसिंह का देहान्त हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण कई लोगों ने महाराज शेरसिंह के कनिष्ठ पुत्र सोहनसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने की कोशिश की, इसपर बेदले के राव बख़्तसिंह और कोठारी केसरीसिंह ने महाराणा से निवेदन किया कि जब समर्थसिंह का छोटा भाई शक्तिसिंह विद्यमान है तो सबसे छोटे भाई सोहनसिंह को बागोर की जागीर न मिलना चाहिये। यदि आपकी उसपर अधिक कृपा हो और उसे कुछ देना ही है तो जैसे उसे पहले जागीर दी थी वैसे ही उसे और दे दी जाय। पोलिटिकल एजेन्ट ने भी सोहनसिंह का विरोध किया तो भी महाराणा ने उसी को बागोर का स्वामी बना दिया।

वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में उस(केसरीसिंह)ने प्रधान के पद से इस्तीफ़ा दे दिया तब महाराणा (शंभुसिंह) ने उसका काम मेहता गोकुलचन्द और पंडित लक्ष्मणराव को सौंपा। कोठारी केसरीसिंह पर महाराणा विशेष कृपा रखता था, जिससे कुछ पुरुषों ने द्वेष के कारण महाराणा को यह सलाह दी कि किसी तरह बड़े बड़े राज्य कर्मचारियों से १०-१५ लाख रुपये एकत्र कर लेने चाहिये। उन लोगों की बहकावट में आकर महाराणा ने अन्य कर्मचारियों के साथ साथ कोठारी केसरीसिंह और उसके बड़े भाई छगनलाल से ३०००० रुपयों का रुक्का लिखवा लिया, परन्तु श्यामलदास (कविराजा) और पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल निक्सन के कहने से उस(महाराणा)ने उनसे १०००० रु० छोड़ दिये। अपने पासवालों की बहकावट में आकर राजा लोग अपने विश्वासपात्रों के साथ भी कैसा व्यवहार कर बैठते हैं इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।

महाराणा ने उसके निरीक्षण में अलग अलग कारख़ानों (विभागों) की सुव्यवस्था की और किसानों से अन्न का हिस्सा (लाटा या कूंता) लेना बन्द कर ठेके के तौर पर नक़द रुपये लेना चाहा। सब रियासती अहलकार इसके विरुद्ध थे, क्योंकि इससे उनकी स्वार्थसिद्धि में बाधा पड़ती थी, इसलिए इस नई प्रथा का चलना कठिन था। इसी से महाराणा ने कोठारी केसरीसिंह को, जो योग्य और अनुभवी था, यह काम सौंपा। इस कार्य में अनेक बाधाएं उपस्थित हुई, परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता और कुशलता से वे दूर हो गई और

उसकी मृत्यु के बाद भी चार साल तक वही प्रबन्ध सुचारुरूप से चलता रहा।

उसकी अन्तिम बीमारी के दिनों महाराणा शंभुसिंह उसकी अच्छी सेवाओं का स्मरण कर उसके वहां गया और उसको तथा उसके कुटुम्ब को तसल्ली दी। उसका देहान्त वि० सं० १९२८ फाल्गुन वदि ३ (ई० स० १८७२ ता० २७ फरवरी) को हुआ।

केसरीसिंह स्पष्टवक्ता, निर्भीक, ईमानदार, योग्य, अनुभवी, प्रबन्धकुशल और स्वामिभक्त था। उसको अपने मालिक का नुकसान कभी सहन नहीं होता था। इन्हीं उत्तम गुणों के कारण अनेक शत्रु होते हुए भी वह राजा और प्रजा का प्रीतिपात्र हुआ।

उसके पुत्र न होने से उसने बलवन्तसिंह को गोद लिया। महाराणा सज्जनसिंह ने वि० सं० १९३८ (ई० स० १८८१) में इस (बलवन्तसिंह) को महकमा देवस्थान का हाकिम किया और महाराणा फ़तहसिंह ने वि० सं० १९४५ में इसे महद्राजसभा का सदस्य बनाया तथा सोने के लंगर प्रदान कर इसे सम्मानित किया। फिर 'रावली दुकान' (State Bank) का काम भी इसी के सुपुर्द हुआ। राय मेहता पन्नालाल के महकमे खास के पद से इस्तीफ़ा देने पर वह काम इसके और सहीवाले अर्जुनसिंह के सुपुर्द किया गया। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में इन दोनों का इस्तीफ़ा पेश होने पर महकमा खास का काम मेहता भोपालसिंह तथा महासानी हीरालाल पंचोली को सौंपा गया, परन्तु कुछ वर्षों पीछे उन दोनों की मृत्यु होने पर वि० सं० १९६९ (ई० स० १९१२) में पुनः इस (बलवन्तसिंह) को उनके स्थान पर नियुक्त किया, जो क़रीब तीन वर्ष तक उस महकमे का कार्य करता रहा। महकमे देवस्थान के अतिरिक्त टकसाल का काम भी कई वर्षों तक इसके सुपुर्द रहा। कई वर्षों तक इतनी बड़ी सेवा करते हुए भी इसने राज्य से कभी तनख़्वाह नहीं ली। इसका पुत्र गिरधारीसिंह सहाड़ां, भीलवाड़ा तथा चित्तोड़ व गिर्वा का हाकिम रहा और इस समय महकमा देवस्थान का हाकिम है।

कोठारी केसरीसिंह के बड़े भाई छगनलाल को महाराणा सरूपसिंह ने संवत् १९०० (ई० स० १८४३) में खज़ाने का काम सौंपा और बाद में कोठार और फ़ौज का काम भी उसी के सुपुर्द हुआ। उसके काम से प्रसन्न होकर

महाराणा ने संवत् १६०५ में उसको मुरजाई[1] गांव बख़्शा। उसके अधीन समय समय पर अलग अलग कई परगनों तथा एकलिंगजी के भंडार का काम भी रहा। केसरीसिंह की मृत्यु के बाद महकमे माल (Revenue) का काम भी उसके सुपुर्द हुआ। महाराणा शंभुसिंह ने संवत् १६३० में उसको पैरों में पहनने के सोने के तोड़े प्रदान किये। वि० सं० १६३३ (ई० स० १८७७) में महाराणी विक्टोरिया के क़ैसरे-हिन्द की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली दरबार के अवसर पर सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से उसको 'राय' की उपाधि मिली। वि० सं० १६३८ (ई० स० १८८१) में उसका देहान्त हुआ।

छगनलाल का दत्तक पुत्र मोतीसिंह इस समय विद्यमान है, जो कई वर्षों तक ख़ज़ाने का हाकिम रहा और उसका दत्तक पुत्र दलपतसिंह सिरोही राज्य का नायब दीवान भी रहा है।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास का घराना

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास दधवाड़िया गोत्र का चारण था। उसके पूर्वज रूंण के सांखले राजाओं के 'पोलपात' थे। उनको दधिवाड़ा गांव शासन (उदक) में मिला, जिससे वे दधवाड़िये कहलाये। जब सांखलों का राज्य जाता रहा तब वे मेवाड़ के महाराणा की सेवा में जा रहे। उनके साथ उनका पोलपात चारण जैतसिंह भी मेवाड़ में चला गया, जिसको महाराणा ने नाहरमगरे के पास धारता और गोठिपा गांव दिये। जैतसिंह के चार पुत्र महपा, मांडन, देवा और बरसिंह हुए। महाराणा संग्रामसिंह प्रथम ने महपा को ढोकलिया और मांडन को शावर गांव दिया, जिससे धारता देवा के और गोठिपा बरसिंह के रहा। देवा के वंशज धारता और खेमपुर में हैं और बरसिंह के गोठिपे में। महपा का पुत्र आसकरण और उसका चत्रा हुआ। बादशाह अकबर ने मांडलगढ़ का क़िला लेकर चित्तोड़ पर हमला किया उस समय ढोकलिया गांव भी शाही खालसे में चला गया, परन्तु कई वर्षों बाद चत्रा

---

[1] वि० सं० १६३५ (ई० स० १८७८) में इस गांव के बदले में उसको सेतूरिया गांव दिया गया।

दिल्ली गया और जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के द्वारा अर्ज़ करवा कर उसने अपना गांव फिर बहाल करा लिया।

चत्रा का चावंडदास और उसका हरिदास हुआ। महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने उससे नाराज़ होकर उसका गांव ढोकलिया खालसे कर लिया, परंतु हरिदास के पुत्र अर्जुन को महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने उसका वह गांव पीछा प्रदान किया। अर्जुन का पुत्र केसरीसिंह और उसका मयाराम हुआ। मयाराम के पुत्र कनीराम को महाराणा भीमसिंह ने जैसिंहपुरा और झालरा गांव प्रदान किये। कनीराम के पौत्र (रामदान के पुत्र) कायमसिंह के चार पुत्र ओनाड़सिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह हुए। ओनाड़सिंह खेमपुर गोद गया और श्यामलदास अपने पिता का क्रमानुयायी हुआ। वह (श्यामलदास) अपने पिता के साथ महाराणा सरूपसिंह की सेवा में रहता था।

वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में महाराणा शंभुसिंह ने श्यामलदास और पुरोहित पद्मनाथ को उदयपुर राज्य का इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इन दोनों ने उक्त इतिहास का लिखना शुरू किया, परन्तु उक्त महाराणा का देहान्त हो जाने से उसका लिखा जाना रुक गया। महाराणा सज्जनसिंह के समय वह (श्यामलदास) उसका प्रीति-पात्र और मुख्य सलाहकार हुआ। उक्त महाराणा ने प्रसन्न होकर उसको कविराजा की उपाधि, ताज़ीम आदि प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और पैरों में सोने के आभूषण पहनने का सम्मान प्रदान किया। महाराणा ने उसको महद्राजसभा का सदस्य भी नियत किया। जब मगरा ज़िले में भीलों का उपद्रव हुआ उस समय उस (महाराणा) ने अपने मामा महाराज अमानसिंह को ससैन्य उनपर भेजा और उस (श्यामलदास) को भी उसके साथ कर दिया। लड़ाई होने के बाद भील कविराजा श्यामलदास के समझाने और उनका आधा बराड़ (ज़मीन का महसूल) माफ़ होने की शर्त पर शांत हो गये।

मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी ने मेवाड़ का इतिहास बनाने के लिये महाराणा से आग्रह किया तो महाराणा ने उस (श्यामलदास) को वीर-विनोद नामक एक बड़ा इतिहास लिखने की आज्ञा दी। और उस (इतिहास) के लिये १००००० रु० स्वीकृत किये। उसने अपने अधीन इतिहास-कार्यालय

स्थापित कर अपनी सहायता के लिये संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी आदि भाषाओं के विद्वानों को उक्त कार्यालय में नियत किया। फिर शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के, संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों, भाषा के काव्यों तथा ख्यातों, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषा के ऐतिहासिक ग्रन्थों, पुराने पट्टे, परवाने, फ़रमान, निशान तथा पत्रव्यवहार आदि का बड़ा संग्रह किया और वीरविनोद नाम का बृहद् इतिहास लिखकर छपवाना आरम्भ किया, जिसकी समाप्ति महाराणा फ़तहसिंह के समय हुई। अंग्रेज़ी सरकार ने भी उसकी योग्यता की क़दर कर उसको महामहोपाध्याय का ख़िताब दिया।

महाराणा सज्जनसिंह ने विद्या की उन्नति, राज्य का सुधार, सेटलमेन्ट (बन्दोबस्त), जमाबन्दी का प्रबन्ध, महद्राजसभा आदि न्यायालयों की स्थापना, नई नई इमारतें बनाकर शहर की शोभा बढ़ाने और प्रजा को लाभ पहुंचाने आदि अनेक अच्छे काम किये, जिनमें उसका मुख्य सलाहकार वही (श्यामलदास) था। वह विद्यानुरागी, गुणग्राहक, स्पष्टवक्ता, भाषा का कवि, इतिहास का प्रेमी, अपने स्वामी का हितैषी और नेक सलाह देनेवाला था। उसकी स्मरणशक्ति इतनी तेज़ थी कि किसी भी ग्रन्थ से एक बार पढ़ी हुई बात उसको सदा स्मरण रहती थी। महाराणा सज्जनसिंह के समय अनेक विद्वानों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों का बहुत कुछ सम्मान होता रहा, जिसमें उसका हाथ मुख्य था। महाराणा फ़तहसिंह के समय भी उसकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् ही बनी रही। उसके पीछे उसके पुत्र जसकरण को महाराणा फ़तहसिंह ने कविराजा की पदवी दी।

सहीवाले अर्जुनसिंह का घराना

सहीवाला अर्जुनसिंह जाति का कायस्थ था। उसके पूर्वज भटनेर में (बीकानेर राज्य में) रहने से भटनागर कायस्थ कहलाये। दिल्ली के निकट डासन्या गांव से उसके पूर्वज मेवाड़ के खेराड़ ज़िले में और वहां से चित्तोड़ गये। फिर किसी समय उनको महाराणा की तरफ़ से पट्टे, परवाने आदि लिखने और उनपर 'सही' कराने का काम सुपुर्द हुआ, इसलिये उनका खानदान

सहीवाला कहलाया। उस वंश के नाथा के पुत्र शिवसिंह के अर्जुनसिंह और बख़्तावरसिंह दो पुत्र हुए। अर्जुनसिंह ने बाल्यावस्था में पहले हिन्दी पढ़ी, फिर फ़ारसी पढ़ना शुरू किया।

महाराणा स्वरूपसिंह के समय वह उसकी सेवा में रहने लगा और धीरे धीरे उसकी उन्नति होती गई। वि० सं० १९१२ (ई० स० १८५५) में महाराणा ने उसको मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट के पास अपना वकील नियत किया। सिपाही-विद्रोह के समय वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में नीमच के सरकारी सिपाहियों ने बाग़ी होकर वहां की छावनी जला दी और ख़ज़ाना लूट लिया, जिसपर वहां के अंग्रेज़ों ने नीमच के क़िले में आश्रय लिया। बाग़ियों ने वहां से भी उन्हें भगा दिया, तब वे वहां से मेवाड़ के केसुन्दा गांव में पहुंचे। नीमच के ग़दर की ख़बर मिलते ही मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान शावर्स ने नीमच जाने का निश्चय किया और महाराणा से बातचीत की। मेवाड़ के पास होने के कारण नीमच की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझकर महाराणा ने अपने विश्वस्त सरदार बेदले के राव बख़्तसिंह की अध्यक्षता में मेवाड़ की सेना कप्तान शावर्स के साथ भेज दी और सहीवाला अर्जुनसिंह वकील होने से उसके साथ गया। नीमच से बाग़ियों के भाग जाने पर वहां की रक्षा का भार उस (कप्तान शावर्स) ने कप्तान लॉयड तथा मेवाड़ के वकील सहीवाले अर्जुनसिंह पर छोड़ा और मेहता शेरसिंह आदि सहित वह (शावर्स) बाग़ियों का पीछा करता हुआ चित्तोड़ वग़ैरह की तरफ़ होकर १५-२० दिन में नीमच लौट गया। इस अरसे में मेवाड़ की सेना में, जिसपर अंग्रेज़ों को पूरा भरोसा था, शत्रुओं ने यह अफ़वाह फैलाई कि हिंदुओं का धर्म-भ्रष्ट करने के लिए अंग्रेज़ों ने आटे में मनुष्यों की हड्डियां पिसवाकर मिला दी हैं। इस बात की सूचना मिलते ही अर्जुनसिंह ने नीमच के बाज़ार में जाकर बनियों से आटा मंगवाया और उक्त सैनिकों के सामने उसकी रोटी बनवाकर खाई, जिससे सिपाहियों का सन्देह दूर हो गया। अर्जुनसिंह की इस कार्यतत्परता से नीमच का सुपरिन्टेन्डेन्ट कप्तान लॉइड बहुत प्रसन्न हुआ और उसने महाराणा के पास एक ख़रीता भेजकर उसकी सिफ़ारिश की। उस समय उसके काम की बहुत कुछ प्रशंसा हुई।

महाराणा शंभुसिंह के समय मेहता पन्नालाल के क़ैद होने पर महकमा ख़ास का काम राय सोहनलाल के सुपुर्द हुआ, परन्तु उससे कार्य न होता देखकर वह काम वि० सं० १९३१ में मेहता गोकुलचन्द और सहीवाले अर्जुनसिंह के सुपुर्द हुआ। महाराणा सज्जनसिंह की बाल्यावस्था के कारण राज्य-कार्य के लिये रीजेन्सी कौंसिल स्थापित हुई तो मेहता गोकुलचन्द के साथ अर्जुनसिंह भी उसका कार्यकर्त्ता नियत हुआ। इन दोनों के अधीन साधारण दैनिककार्य रहा, परन्तु महत्व के विषय और सरदारों के मामले कौंसिल के अधीन रहे। महाराणा सज्जनसिंह के समय जब इजलास ख़ास और महद्राजसभा की स्थापना हुई तो वह (अर्जुनसिंह) उन दोनों का सदस्य रहा। महाराणा फ़तहसिंह के समय वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में जब राय मेहता पन्नालाल ने महकमा ख़ास से इस्तीफ़ा दे दिया तब कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह दोनों महकमा ख़ास के सेक्रेटरी नियत हुए। उस समय महाराणा ने उस(अर्जुनसिंह)को सोने के लंगर प्रदान किये। वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में कोठारी बलवन्तसिंह और अर्जुनसिंह ने इस्तीफ़ा दे दिया और ता० २५ अप्रेल सन् १९०६ ई० (वैशाख शुक्ला २ वि० सं० १९६३) को उस(अर्जुनसिंह)का देहान्त हो गया।

अर्जुनसिंह मिलनसार, समझदार, अनुभवी, सरलप्रकृति का पुराने ढंग का पुरुष था। उसके दो पुत्र गुमानसिंह और भीमसिंह हुए। भीमसिंह राजनगर, कुंभलगढ़ और मांडलगढ़ के ज़िलों का हाकिम रहा।

अर्जुनसिंह का भाई बख़्तावरसिंह एजेन्ट गवर्नर जनरल राजपूताना के यहां वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में उदयपुर राज्य की ओर से वकील नियत हुआ। वि० सं० १९४९ (ई० स० १८९२) में उसको सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से रायबहादुर का ख़िताब मिला। उसका पुत्र हंमीरसिंह, जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट था, कई वर्षों तक महाराणा फ़तहसिंह का प्राइवेट सेक्रेटरी रहा। उस(हंमीरसिंह)का देहान्त युवावस्था में ही हो गया।

मेहता भोपालसिंह का घराना

इस घराने के लोग ओसवाल महाजन हैं। मेहता शेरसिंह और उसका भाई सवाईराम महाराणा भीमसिंह के समय राज्य की सेवा में थे। शेरसिंह महाराजकुमार जवानसिंह का खानगी कामदार हुआ। उसके पीछे वह काम उसके भाई सवाईराम को मिला। सवाईराम के पुत्र का बाल्यावस्था में देहान्त हो जाने से उसने अपने भाई के पुत्र गणेशदास के तीसरे बेटे गोपालदास को गोद लिया। मेहता सवाईराम की एक दासी की पुत्री पेजांबाई महाराणा सरूपसिंह की प्रीति-पात्री उपपत्नी (पासवान) हुई। महाराणा ने उस (गोपालदास) को पोटलां व रेलमगरा का हाकिम बनाया और उसे सोने के लंगर प्रदान कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

सरकार अंग्रेज़ी ने सती की प्रथा बन्द कर दी, तदनुसार महाराणा सरूपसिंह ने अपने राज्य में भी वैसी आज्ञा प्रचलित की, परन्तु पेजांबाई महाराणा के साथ सती हो गई, जिससे पोलिटिकल एजेन्ट मेवाड़ ने गोपालदास को, यद्यपि उस काम में उसका कोई हाथ नहीं था, तो भी उसके लिये दोषी ठहराया, जिससे उसने भागकर कोठारिये[1] में शरण ली।

महाराणा सज्जनसिंह ने मेहता लक्ष्मीलाल की अध्यक्षता में बोहेड़े पर सेना भेजी उस समय गोपालदास उस (लक्ष्मीलाल) के साथ था। इस सेवा के उपलक्ष्य में उक्त महाराणा ने उसे कंठी, सिरोपाव आदि प्रदान कर सम्मानित किया। उसका पुत्र भोपालसिंह पहले राशमी और मांडलगढ़ आदि ज़िलों का हाकिम रहा। फिर वि० सं० १६५१ (ई० स० १८६४) में महाराणा फ़तहसिंह ने उसे महद्राजसभा का मेम्बर और वि० सं० १६६२ (ई० स० १६०५) में उसको तथा महासानी हीरालाल को महकमा खास का सेक्रेटरी बनाया। वि० सं० १६६३ (ई० स० १६०६) में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की इच्छा से महाराणा

(१) मेवाड़ में यदि कोई अपराधी सलूंबर या कोठारियावालों के यहां शरण लेता तो वह राज्य की तरफ़ से पकड़ा नहीं जाता था। यह प्रथा बहुत पहिले से चली आती थी। अन्त में वहां के सरदार मध्यस्थ बनकर उसका फैसला करा देते। इसमें यद्यपि उनको बड़ी हानि उठानी पड़ती थी तो भी वे इसमें अपने ठिकाने का गौरव समझते थे।

ने उसे सोने के लंगर प्रदान किये। वि० सं० १६६६ (ई० स० १६१२) के वैशाख में उसका देहान्त हुआ।

उसके पुत्र जगन्नाथसिंह को महाराणा ने वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१४) में रावबहादुर पंडित सुखदेवप्रसाद के साथ महकमा खास का सेक्रेटरी बनाया और सोने के लंगर दिये। फिर पंडित सुखदेवप्रसाद के स्थान पर दीवान-बहादुर मुन्शी दामोदरलाल नियुक्त हुआ, जिसके साथ भी यह (जगन्नाथसिंह) महकमा खास का कार्यकर्ता रहा। इस समय यह शिशुहितकारिणी सभा (Court of wards) के दो अधिकारियों में से एक है।

दसवां अध्याय

राजपूताने से बाहर के गुहिल (सीसोदिया) वंश के राज्य

मेवाड़ के गुहिलवंशियों का राज्य लगभग १४०० वर्ष से एक ही प्रदेश पर चला आ रहा है। इतने दीर्घकाल तक एक ही भूमि पर एक ही वंश का राज्य चला आता हो ऐसा दूसरा उदाहरण संसार के इतिहास में शायद ही मिले। इस बड़े प्राचीन राज्य के राजवंशियों ने समय समय पर राजपूताने से बाहर भारतवर्ष के अलग अलग विभागों में जाकर अपने राज्य स्थापित किये, जिनका बहुत ही संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है।

काठियावाड़ आदि के गोहिल

मेवाड़ के राजवंश का संस्थापक गुहिल (गुहदत्त) हुआ, जिसके वंशजों को संस्कृत लेखों में गुहिल, गुहिलपुत्र, गोभिलपुत्र, गुहिलोत और गौहिल्य लिखा है तथा भाषा में उन्हें गुहिल, गोहिल, गहलोत और गैहलोत कहते हैं। संस्कृत के गोभिल[1] और गौहिल्य[2] शब्दों का भाषा में 'गोहिल' रूप बना है।

काठियावाड़ के गोहिलों के दो प्राचीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक मांगरोल (काठियावाड़ में) की सोढली वाव (वापी, बावली) में लगा हुआ वि० सं० १२०२ (वर्तमान) और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ सोमवार (ई० स० ११४४ ता० २८ अगस्त) का है[3] और दूसरा मांगरोल के पास के

---

(१) अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्रन्तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपालः ॥
भेराघाट का शिलालेख (ए० इं०; जि० २, पृ० ११)

(२) यस्माद्धौ गुहिलवर्णनया प्रसिद्धां गौहिल्यवंशभवराजगणोऽत्र जातिम् ।
रावल समरसिंह की वि० सं० १३३१ (ई० स० १२७४) की चितोड़ की प्रशस्ति (भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ७५)

(३) भावनगर प्राचीन शोधसंग्रह; भाग १, पृ० ५-७ ।
भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १५८-५६ ।

घेलाणा गांव के कामनाथ के मंदिर का वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७= ई० स० १२३०) का[1] है।

पहले लेख का आशय यह है कि (सोलंकी राजा) सिद्धराज(जयसिंह) अपनी उत्तम कीर्ति से पृथ्वी को अलंकृत कर स्वर्ग को गया तो उसके राज्य-सिंहासन पर कुमारपाल बैठा। गुहिल के वंश में बड़ी कीर्तिवाला साहार हुआ। उसका पुत्र सहजिग (सेजक) चौलुक्य राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके बलवान् पुत्र सौराष्ट्र (सोरठ) की रक्षा करने में समर्थ हुए। उनमें से वीर सोमराज ने अपने पिता के नाम पर सहजिगेश्वर नामक शिवालय बनाया, जिसकी पूजा के लिए उसके ज्येष्ठ भाई मूलुक (मूलु) ने, जो सौराष्ट्र का शासक (हाकिम) था, शासन दिया अर्थात् राज्य के मांगरोल, चोरवाड़, वलेज, लाठोदरा, वंथली, जूगटा, तलारा (तलोदरा) आदि स्थानों में उस मंदिर के लिए अलग अलग कर लगाये (जिनका विस्तृत वर्णन उस लेख में है)। उक्त लेख में सहजिग और मूलुक के पूर्व 'ठ०' लिखा है, जो 'ठक्कुर' (ठाकुर) पदवी का सूचक है।

दूसरे शिलालेख से, जो वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) का है, पाया जाता है कि ठ० मूलु के पुत्र राणक (राण) के राज्य समय वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) में भृगुमठ में देवपूजा के लिए आसनपट्ट दिया गया।

इन दोनों लेखों से निश्चित है कि गुहिलवंशी (गोहिल) सेजक सोलंकी राजा का अंगरक्षक हुआ। उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से दो के नाम-मूलुक (मूलु) और सोमराज-उक्त लेख में दिये हैं। मूलुक वि० सं० १२०२ (ई०स० ११४४) में सौराष्ट्र का शासक था। मूलुक का पुत्र राणक (राण) हुआ, जो वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) तक जीवित था। उसके वंश में भावनगर के राजा हैं।

इन पुराने लेखों से यह स्पष्ट होता है कि काठियावाड़ के गोहिल गुहिल-वंशी हैं और वि० सं० की १२ वीं शताब्दी के आसपास सोलंकी राजा सिद्ध-राज (जयसिंह) और कुमारपाल की सेवा में रहकर सौराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी

(१) भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १६१।

काठियावाड़) पर शासन करते थे। उनके वंशज गोहिलों के राज्य अब भी काठियावाड़ में हैं और उनके अधीन का काठियावाड़ का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा अबतक गोहिलवाड़ नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १६०० के पीछे भाटों ने अपनी पुस्तकें बनाना शुरू किया और उन्होंने अनिश्चित जनश्रुति के आधार पर प्राचीन इतिहास लिखा, जिसमें उन्होंने कई राजवंशों का सम्बन्ध किसी न किसी प्रसिद्ध राजा से मिलाने का उद्योग किया, कई नाम कल्पित धर दिये और उनके मनमाने संवत् लिख डाले, जिनके निराधार होने के कई प्रमाण मिलते हैं। ऐसे राजवंशों में काठियावाड़ के गोहिल भी हैं। भाटों की पुस्तकों के आधार पर लिखी हुई अंग्रेज़ी, गुजराती आदि भाषाओं की पुस्तकों में लिखा मिलता है "विक्रमादित्य को जीतनेवाले पैठण (प्रतिष्ठान) नगर (दक्षिण) में के चन्द्रवंशी शालिवाहन के वंशज गोहिल हैं। उनका प्रथम निवासस्थान मारवाड़ में लूनी नदी के किनारे जूना खेरगढ़ (खेड़) था। उन्होंने वह प्रदेश खेरवा नाम के भील को मारकर लिया और २० पुश्त तक वहां राज्य किया। फिर राठोड़ों ने उनको वहां से निकाल दिया[1]"।

उन्होंने यह भी लिखा है, "राठोड़ सीहा ने गोहिल मोहदास को मारा, जिससे उसके बेटे झांझर के पुत्र सेजक (सहजिग) की अध्यक्षता में वे ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७) के आस पास सौराष्ट्र (सोरठ, दक्षिणी काठियावाड़) में आये। उस समय राव महिपाल वहां राज्य करता था और उसकी राजधानी जूनागढ़ थी। उसने तथा उसके कुंवर खेंगार ने सेजक को आश्रय दिया और अपनी सेवा में रखकर शाहपुर के आसपास के १२ गांव उसे जागीर में दिये। फिर सेजक ने अपनी कुंवरी वालमबा का विवाह खेंगार के साथ किया और महिपाल की आज्ञा से अपने नाम से सेजकपुर गांव बसाकर आसपास के कितने एक गांव जीत लिये। सेजक की मृत्यु ई० स० १२९० (वि० सं० १३४७) में हुई। उसके राणो, साहो और सारंग नाम के तीन पुत्र हुए। राणो के वंश में भावनगर के, साहो के वंश में पालीताणा के और सारंग के वंश में लाठी के राजा हैं[2]"।

(१) फॉर्ब्स, रासमाला; जिल्द १, पृ० २६५ (ऑक्सफर्ड संस्करण, ई० स० १६२४)।
(२) अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द-

भाटों की पुस्तकों के आधार पर लिखा हुआ उपर्युक्त कथन अधिकांश में कल्पित ही है। विक्रम को जीतनेवाला एवं शक संवत् का प्रवर्त्तक जो शालिवाहन माना जाता है उसका राज्य कभी मारवाड़ में हुआ ही नहीं। वह तो दक्षिण के प्रसिद्ध पैठण नगर का राजा था। वह न तो चन्द्रवंशी और न सूर्यवंशी, किन्तु आन्ध्र (सातवाहन) वंशी था। जैन-लेखक उसका जन्म एक कुम्हार (कुम्भकार) के घर में होना और पीछे से प्रतापी होना बतलाते हैं[1]। पुराणों में सूर्य और चन्द्रवंशों के अन्तर्गत उस वंश का समावेश नहीं है। भाटों को इतना तो मालूम था कि काठियावाड़ के गोहिल शालिवाहन नामक किसी राजा के वंशधर हैं, परन्तु किस शालिवाहन के, यह ज्ञात न होने से उन्होंने दक्षिण के प्रसिद्ध शालिवाहन को उनका पूर्वपुरुष मान लिया। वास्तव में जिस शालिवाहन को भाट लोग गोहिलों का पूर्वज बतलाते हैं वह दक्षिण का आन्ध्रवंशी नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी नरवाहन का पुत्र शालिवाहन था। राजपीपला के गोहिलों के भाट की पुस्तक में शालिवाहन के पुत्र का नाम नरवाहन लिखा है[2], परन्तु ये दोनों नाम उलट पुलट हैं। खेड़ इलाके पर मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं का अधिकार था, न कि आन्ध्रवंशियों का। भाटों की ख्यातों में "गोहिल" नाम की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा, परन्तु मांगरोल के उपर्युक्त शिलालेख में साहार और सहजिग का गुहिलवंशी[3] होना स्पष्ट लिखा है और ये ही गुहिलवंशी गोहिल नाम से प्रसिद्ध हुए।

राजस्थान (गुजराती); पृ० ११३-१४। मार्कंड नंदशंकर मेहता और मनु नंदशंकर मेहता; हिन्दराजस्थान (अंग्रेज़ी); पृष्ठ ४८७-८८। वॉट्सन्; बॉम्बे गेज़ेटियर; जिल्द ८, काठियावाड़; पृ० ३८७ ८८ (ई० स० १८८४ का संस्करण)। नर्मदाशंकर लालशंकर; काठियावाड़ सर्वसंग्रह (गुजराती); पृ० २१२-१३। कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६-४७।

(१) मेरुतुङ्ग; प्रबन्धचिन्तामणि; पृ० २४—३० (टिप्पण)।

(२) बॉम्बे गेज़ेटियर; जिल्द ६, पृ० १०६, टिप्पण १।

(ई० स० १८८० का संस्करण)

(३) राज्येऽमुष्य महीभुजो भवदिह श्रीगूहिलाख्यान्वये।
श्रीसाहार इति प्रभूतगरिमाधारो धरामंडनम्॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १५८।

राठोड़ सीहा-द्वारा खेड़ के गोहिल मोहदास के मारे जाने की कथा एवं उसके पौत्र (झांझर के पुत्र) सेजक का ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७) के आसपास सौराष्ट्र (सोरठ) में जाना और वि० सं० १३४७ (ई० स० १२९०) में उसकी मृत्यु होना भी कल्पित ही है, क्योंकि सेजक (सहजिग) भाटों के कथनानुसार झांझर का पुत्र नहीं, किन्तु साहो (साहार) का पुत्र था और वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) के पूर्व ही उसका देहान्त हो चुका था। उक्त संवत् में तो उसका पुत्र मूलुक (मूलु) सौराष्ट्र में शासन कर रहा था। राठोड़ सीहा की मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में हुई ऐसा उसके मृत्यु-स्मारक-शिलालेख से निश्चित है[1]। सीहा की मृत्यु से लगभग १२५ वर्ष पूर्व ही सेजक की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसी दशा में सेजक के दादा का राठोड़ सीहा के हाथ से मारा जाना कैसे सम्भव हो सकता है।

सोरठ में जाने पर जूनागढ़ के राजा महिपाल और उसके पुत्र खेंगार का सेजक को अपनी सेवा में रखना और १२ गांव जागीर में देना भी सर्वथा निराधार कल्पना है, क्योंकि गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने वि० सं० ११७२ (ई० स० १११५) के आसपास सोरठ पर चढ़ाई कर जूनागढ़ के राजा खेंगार को मारा और वहां पर अपनी तरफ़ का शासक नियत किया था, जो संभवतः सेजक ही होना चाहिये। उसके पीछे उसका पुत्र मूलु वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४४) में सौराष्ट्र (सोरठ) का शासक था, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। ऐसी स्थिति में सेजक का महिपाल और खेंगार की सेवा में रहना और उनसे जागीर पाने की बात भी कल्पित ही है।

भाटों का सेजक के तीन पुत्र—राणो, साहो और सारंग—बतलाना भी गढ़न्त ही है, क्योंकि साहो (साहार) तो सेजक का पिता था और राणो (राणक) उसके पुत्र मूलुक (मूलु) का पुत्र था और वलभी सं० ९११ (वि० सं० १२८७) में राज्य कर रहा था, जैसा कि उसके थेलाणा के शिलालेख से निश्चित है। सेजक के कई पुत्र थे क्योंकि मांगरोल के लेख में 'पुत्र' शब्द बहुवचन में रखा है, किन्तु नाम दो-मूलुक और सोमराज-के ही दिये हैं। ऐसी दशा में सारंग के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

(१) इंडियन एन्टिक्केरी; जिल्द ४०; पृ० ३०१।

खेड़ के गोहिलों का राज्य राठोड़ सीहा ने नहीं, किन्तु उसके पुत्र आस्थान ने गोहिलों के मंत्री डाभी राजपूतों के विश्वासघात करने पर वि० सं० १३४० (ई० स० १२८३) के आसपास लिया था। उससे लगभग १५० वर्ष पूर्व ही सेजक के पूर्वज (गोहिल) मारवाड़ छोड़कर गुजरात में चले गये थे और जो गोहिल वहां (खेड में) रहे उनका राज्य आस्थान ने लिया था[1]। अब भी जोधपुर राज्य में 'गोहिलों की ढाणी' नाम का एक छोटासा ठिकाना है, जहां के गोहिल मेवाड़ के राजाओं के वंशज माने जाते हैं[2]। अतएव काठियावाड़ आदि के गोहिलों का मेवाड़ के गुहिलवंशी राजाओं के वंशज और सूर्यवंशी होना सिद्ध है, जैसा कि काठियावाड़ में पहले माना जाता था।

वि० सं० की १५ वीं शताब्दी के बने हुए 'मंडलीककाव्य' में, जिसमें जूनागढ़ (गिरनार) के राजाओं का इतिहास है, काठियावाड़ के गोहिलों का सूर्यवंशी और झालों का चंद्रवंशी होना लिखा है[3]। कर्नल टॉड[4], कर्नल वॉट्सन[5], दीवानबहादुर रणछोड़भाई उदयाराम[6] आदि विद्वानों ने भी उनको सूर्यवंशी ही माना है।

ऊपर उद्धृत किये हुए प्रमाणों से स्पष्ट है कि काठियावाड़ आदि के गोहिल शक संवत् के प्रवर्तक आन्ध्र (सातवाहन) वंशी शालिवाहन के वंशज नहीं, किन्तु मेवाड़ के गुहिलवंशी शालिवाहन के वंशज हैं और सूर्यवंशी हैं। भाटों ने अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण उनको चन्द्रवंशी बना दिया है।

---

(१) एपिग्राफ़िया इण्डिका; जि० २० के परिशिष्ट में प्रकाशित इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ़ नॉर्दर्न इण्डिआ; पृ० १३२; लेखसंख्या ९८२।

(२) तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़; पृ० २४८।

(३) रविविधूद्भवगोहिलझल्लकैर्व्यजनवानरभाजनधारव ।
विविधवर्तनसंवितकारणैः ससमदैः समदैः समसेव्यत ॥
गंगाधर कविरचित 'मंडलीककाव्य' (मंडलीकचरित); ६। २३।

(४) टॉड राजस्थान; जिल्द १, पृ० १२३; कलकत्ता संस्करण।

(५) वॉट्सन; बाम्बे गेज़ेटियर; जि० ८; काठियावाड़; पृ० २८२।

(६) रासमाला (गुजराती अनुवाद); दूसरा संस्करण, पृ० ७१०, टिप्पण १।

काठियावाड़ में गुहिलवंशियों के राज्य

भावनगर

काठियावाड़ के प्रथम श्रेणी के राज्यों में एक भावनगर भी है। वहां के महाराजा मेवाड़ के सूर्यवंशी शालिवाहन के वंशज हैं। उनका मूल निवास मारवाड़ के खेड़ ज़िले में था। वहां के साहार नामक सामंत का पुत्र सहजिग (सेजक) अणहिलवाड़े के सोलंकी राजाओं के यहां जा रहा और संभवतः सिद्धराज (जयसिंह) का अंगरक्षक[1] हुआ। जब सिद्धराज ने गिरनार के यादव राजा खेंगार को मारा और सोरठ को अपने अधीन किया उस समय सेजक को सौराष्ट्र का शासक (हाकिम) नियत किया हो। उसने अपने नाम से सेजकपुरा बसाया। उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से दो के नाम मुलुक (मूलु) और सोमराज मांगरोल के शिलालेख में मिलते हैं। वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) के पूर्व सेजक का देहान्त हो चुका था और उक्त संवत् में उसका पुत्र मूलुक (मूलु) वहां का शासक था। मूलु का पुत्र राणक (राण) हुआ, जो वलभी संवत् ९११ (वि० सं० १२८६=ई० स० १२३०) तक तो जीवित था ऐसा उसके समय के शिलालेख से पाया जाता है। भावनगर के राजा उसी राणक (राण) के वंशज हैं।

राण का पुत्र मोखड़ा हुआ उसने अपना राज्य बढ़ाया और पीरम में रहा। उसके दो पुत्र डूंगरसिंह और समरसिंह हुए। डूंगरसिंह ने घोघा में अपना राज्य स्थापित किया और समरसिंह राजपीपले (रेव कांठे में) का स्वामी हुआ। डूंगरसिंह के पीछे बीजा, काना और सारंग हुए। काना के

(१) मांगरोल के सोढली 'वाव' के लेख में केवल इतना ही लिखा है कि सहजिग (सेजक) चौलुक्य राजा का अंगरक्षक हुआ, परन्तु किसका यह स्पष्ट नहीं है। सोढली वाव का लेख वि० सं० १२०२ का है। उस समय सहजिग का पुत्र मूलु काठियावाड़ का शासक था। वि० सं० ११९९ में सिद्धराज जयसिंह का देहान्त हुआ और कुमारपाल राजा हुआ। सिद्धराज ने सौराष्ट्र (सोरठ) देशको विजय कर वहां अपना शासक नियत किया था। ऐसी स्थिति में यही अनुमान होता है कि वह (सहजिग) सिद्धराज का अंगरक्षक रहा हो। मूल लेख में यह विषय बहुत संक्षेप से लिखा है।

समय अहमदाबाद के सुलतान की फ़ौज ख़िराज लेने गई। उसको पूरे रुपये न देने पर वह सारंग को अपने साथ ले गई तो उसका काका राम राज्य को दबा बैठा। सारंग अहमदाबाद से भागकर चांपानेर के रावल की सहायता लेकर उमराले जा पहुंचा और फिर लाठी आदि के अपने रिश्तेदारों की सहायता से उसने अपना राज्य पीछा ले लिया तथा रावल की उपाधि धारण की। सारंग के पीछे शिवदास, जेठा और रामदास गद्दी पर बैठे। रामदास ने ई० स० १५०० (वि० सं० १५५७) में राज्य पाया और ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) तक शासन किया[1]।

---

(१) मोखड़ा से रामदास तक के राजाओं का समय और वृत्तान्त, जो भावनगर के इतिहास की अंग्रेज़ी, गुजराती आदि पुस्तकों में मिलता है, बहुधा विश्वास के योग्य नहीं है। रामदास के विषय में लिखा है "उसने ई० स० १५०० (वि० सं० १५५७) में राज्य पाया. उसका विवाह चित्तोड़ के राणा सांगा की कुंअरी से हुआ था और जब मालवा के बादशाह (सुलतान) महमूदशाह ख़िलजी ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय वह राणा की मदद के लिये चित्तोड़ गया और ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) में वहीं मारा गया"। ये सब कथन सर्वथा कल्पित हैं। सेजक की मृत्यु वि० सं० १२०२ (ई० स० ११४५) के पूर्व ही हो चुकी थी। उसके पीछे रामदास तक ९ राजाओं के लिये लगभग ४०० वर्ष होते हैं, जिससे प्रत्येक राजा का राजत्वकाल ४५ वर्ष के क़रीब होता है, जो मानने योग्य नहीं है।

राणा सांगा की पुत्री से रामदास का विवाह होना भाटों की गढंतमात्र ही है। मालवा के सुलतान महमूदशाह ख़िलजी (दूसरे) ने, कभी चित्तोड़ पर चढ़ाई नहीं की। वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) में महाराणा सांगा तो मर चुका था। गुजरात के बहादुरशाह ने ई० स० १५३१ (वि० सं० १५८८) में महमूदशाह ख़िलजी (दूसरे) को क़ैद कर मालवा गुजरात के राज्य में मिला लिया था और वह (महमूद ख़िलजी) क़ैद में ही मारा गया। ऐसी अवस्था में ई० स० १५३५ (वि० सं० १५९२) में मालवा के महमूदशाह की महाराणा सांगा के साथ चित्तोड़ में लड़ाई होना और रामदास का मारा जाना भाटों की कपोल कल्पना के सिवाय क्या हो सकता है?

ऐसे ही रामदास के पूर्वज सारंग का ई० स० १४२० (वि० सं० १४७७) में गद्दी पर बैठना लिखा है वह भी विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि भावनगर राज्य के तलाजा नामक स्थान से 'विष्णु-भक्तिचन्द्रोदय' नामक हस्तलिखित पुस्तक मिली है, जो वि० सं० १४६९ की लिखी हुई है। उसमें लिखा है कि उक्त संवत् में घोघा बंदर पर मलिक श्रीउस्मान और रावल सारंगदेव का अधिकार था (संवत् १४६९ वर्षे फाल्गुनशुदि १२ रवावद्येह घोघावेळाकुले महामलिकश्रीउस्मानतथाराउलश्रीसारंगदेवपंचकुलप्रतिपत्तौ)। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स पृ० १६१।

रामदास के पीछे सरतान (सुरताण) और वीसा ने क्रमशः राज्य पाया। वीसा ने सीहोर पर अधिकार कर उसको अपनी राजधानी स्थिर किया। वीसा के पीछे धूणा, रतन और हरभम क्रमशः राज्य के स्वामी हुए। हरभम की मृत्यु ई० स० १६२२ (वि० सं० १६७६) में हुई और उसका बालक पुत्र अखेराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। हरभम का भाई गोविन्द उस(अखेराज)का राज्य दबा बैठा, परन्तु अखेराज ने गोविन्द के मरने पर उसके पुत्र सत्रशाल से अपना राज्य पीछा ले लिया। ई० स० १६६० (वि० सं० १७१७) में अखेराज की मृत्यु हुई। उसके पीछे रतन (दूसरा) और उसके पीछे भावसिंह राज्य का स्वामी हुआ।

भावसिंह ने ई० स० १७२३ (वि० सं० १७८०) में भावनगर बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया और घोघे की तरफ़ की भूमि दबाकर अपना राज्य बढ़ाया। भावसिंह ने अपने राज्य में व्यापार की वृद्धि की और अपने पास के समुद्र के लुटेरों का दमन किया, जिससे भावनगर राज्य और बम्बई की गवर्नमेन्ट में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। रावल भावसिंह ने खंभात के नवाब से रक्षा करने के निमित्त सूरत के सीदी को भावनगर के बन्दरगाह की चुंगी में से चौथाई देना स्वीकार किया, जो ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१६) से अंग्रेज़ी सरकार को दी जाने लगी।

भावसिंह के पांच पुत्रों में से ज्येष्ठ अखेराज उसका उत्तराधिकारी हुआ और वीसा वळा का स्वामी हुआ। रावल अखेराज ने लुटेरे कोलियों से तलाजा और महुवा छुड़ाने में बम्बई सरकार की सहायता की, जिससे उन ज़िलों पर सरकार का अधिकार हो जाने पर उसने तलाजे का क़िला अखेराज को देना चाहा, परन्तु उसके अस्वीकार करने पर वह खंभात के नवाब को दिया गया। अखेराज का ई० स० १७७२ (वि० सं० १८२६) में देहान्त हो जाने पर वक़्तसिंह उसका क्रमानुयायी हुआ। उसने तलाजे का क़िला छीन लिया, परन्तु अन्त में उसके लिये ७५००० रु० उसके लिये देने पड़े।

मरहटों के उत्कर्ष के समय गुजरात और काठियावाड़ पेशवा और गायकवाड़ के बीच बँट गये, तब भावनगर राज्य का पश्चिमी अर्थात् बड़ा विभाग गायकवाड़ के और पूर्वी अर्थात् छोटा विभाग, जिसमें भावनगर था, पेशवा के

अधिकार में माना गया। ई० स० १८०२ (वि० सं० १८५९) में बसीन की सन्धि के अनुसार धुंधुका और घोघा के परगने सरकार अंग्रेज़ी के अधीन हुए। तब से इस राज्य का सम्बन्ध सरकार अंग्रेज़ी तथा गायकवाड़ के साथ रहा।

अंग्रेज़ों को ११६५० रु० और गायकवाड़ को ७४५०० रु० सालाना देना पड़ता था। ई० स० १८०७ (वि० सं० १८६४) में गायकवाड़ ने फ़ौज खर्च के लिये भावनगरवाली रक़म सरकार अंग्रेज़ी को सौंप दी। ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६९) में वख़्तसिंह ने वृद्धावस्था के कारण राज्याधिकार अपने पुत्र विजयसिंह को दे दिये।

विजयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र भावसिंह का देहान्त अपने पिता की विद्यमानता ही में हो जाने के कारण उसका पुत्र अखेराज (तीसरा) ई० स० १८५२ (वि० सं० १९०९) में अपने दादा का उत्तराधिकारी हुआ। उसके पीछे उसका भाई जसवन्तसिंह ई० स० १८५४ (वि० सं० १९११) में उसका क्रमानुयायी हुआ।

ई० स० १८६७ (वि० सं० १९२४) में उसे के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला और ई० स० १८७० (वि० सं० १९२७) में उसका देहान्त हुआ। उसके बाद उसका बालक पुत्र तख़्तसिंह राज्य का स्वामी हुआ। वह पढ़ने के लिये राजकुमार कॉलेज (राजकोट) में भेजा गया और राज्य का काम एक अंग्रेज़ अफ़सर और दीवान गौरीशंकर उदयशंकर ओझा सी० आई० ई० चलाते रहे। ई० स० १८७८ (वि० सं० १९३५) में उसको राज्याधिकार और ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में जी० सी० एस० आई० का ख़िताब मिला। उसने इंगलैंड की सैर की और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से एलएल० डी० की डिग्री (Honorary) प्राप्त की। ई० स० १८९६ (वि० सं० १९५३) में उसका देहान्त हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र भावसिंह (दूसरा) गद्दी पर बैठा। उसका प्रथम दीवान विट्ठलदास श्यामलदास हुआ और उसके इस्तीफ़ा देने पर विजयशंकर गौरीशंकर ओझा और उसके बाद (सर) प्रभाशंकर दलपतराम पट्टनी सी० आई० ई० प्रधान हुआ। उसके समय राज्य की बहुत कुछ उन्नति हुई। उसको 'महाराजा' एवं 'के० सी० एस० आई०' का ख़िताब मिला। उसका देहान्त होने पर उसके पुत्र कृष्णकुमारसिंहजी ई० स० १९१९ (वि० सं० १९७६) में सात वर्ष की आयु में भावनगर राज्य के स्वामी हुए।

इस राज्य में २८६० वर्गमील भूमि, ४२६४०४ मनुष्यों की आबादी (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ११०८५००० रु० की आमद है। सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से यहां के राजा को १३ तोपों की सलामी है।

पालिताणा

पालिताणा काठियावाड़ में दूसरे दर्जे का राज्य है। पालिताणा नगर के पास ही शत्रुंजय (शत्रुंजा) पर्वत जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है।

भाटों की ख्यातों के अनुसार गोहिल सेजक के पुत्र साहा (साहो) को मांडवी की जागीर मिली, पीछे उसने गारियाधर बसाया और वहीं रहने लगा। हम ऊपर गोहिलों के हाल में बतला चुके हैं कि साहा (साहार) सेजक का पुत्र नहीं किन्तु पिता था। मांडवी की जागीर पानेवाला सेजक का कोई दूसरा ही पुत्र हो। उसके पीछे सरजण, अरजण और नौघण हुए।

जब भावनगरवालों के पूर्वज सारंग को अहमदाबाद के सुलतान की फ़ौज अपने साथ ले गई उस वक़ उसका काका राम उसका राज्य दबा बैठा। फिर वह (सारंग) वहां से भागा और चांपानेर के रावल से सहायता लेकर उमराले पर चढ़ा उस समय नौघण ने उसकी सहायता की, जिसके उपलक्ष्य में उसने उसको १२ गांव दिये, जिससे गारियाधर के राज्य का विस्तार बढ़ा। नौघण के पीछे भारा, बन्ना, शिवा, हद्दा, खांधा और नौघण (दूसरा) क्रमशः गारियाधर के स्वामी हुए। नौघण (दूसरे) के समय केरड़ी के काठी सरदार लोमा(खुंमाण)ने गारियाधर छीन लिया, परन्तु सिहोर के स्वामी की मदद से उसने अपनी राजधानी वापस ले ली। उसके पीछे अर्जुन (दूसरा), खांधा (दूसरा) और शिवा (दूसरा) क्रमशः राज्य के मालिक हुए। शिवा (दूसरा) काठी कुमा (खुंमाण) के साथ की लड़ाई में खारा गांव के पास मारा गया।

शाहजहां बादशाह के समय यह इलाक़ा मुग़ल राज्य के अन्तर्गत रहा, जिसको मुरादबख़्श ने शान्तिदास नाम के एक जैन जौहरी को दे दिया। शान्तिदास के कोठीवालों ने दारा और औरंगज़ेब के बीच की लड़ाइयों में दारा की रुपयों से सहायता की। औरंगज़ेब के मरने के पीछे मुग़ल राज्य की अवनति

के समय यह इलाक़ा गारियाधर के गोहिलों के हाथ में गया और पालीताणा उनकी राजधानी हुई।

शिवा (दूसरा) के बाद सुरताण, खांधा (तीसरा), पृथ्वीराज, नौघण (तीसरा) और सुरताण (दूसरे) ने क्रमशः राज्य पाया। सुरताण को उसके कुटुम्बी अल्लू भाई ने ई० स० १७६६ (वि० सं० १८२३) में पालीताणा के पास छल से मारकर उसका राज्य दबा लिया। इसपर उस (सुरताण) के भाई उनड़ ने उस (अल्लू) को मारकर राज्य पीछा अपने अधीन कर लिया। उसके समय भावनगर और पालीताणा के बीच लड़ाई हुई, जिसमें पालीताणा-वालों की हार हुई, परन्तु अन्त में सुलह हो गई।

इन लड़ाइयों में पालीताणा राज्य को अहमदाबाद के सेठ वख़तचन्द खुशालचन्द से, जो शान्तिदास जौहरी का वंशधर था, बहुत कर्ज़ लेना पड़ा और उसके एवज़ में राज्य का अधिकांश उसके यहां गिरवी रखना पड़ा। ई० स० १८२० (वि० सं० १८७७) में उनड़ का देहान्त हुआ। मरहटों के उत्कर्ष के समय यह इलाक़ा गायकवाड़ के अधीन हुआ। उनड़ के पीछे उसका पुत्र खांधा (चौथा) इस राज्य का स्वामी हुआ। ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) से ई० स० १८३१ (वि० सं० १८८८) तक कर्ज़दारी के कारण इस राज्य की आमद सेठ वख़तचन्द खुशालचन्द के ठेके में रही। अंग्रेज़ों के समय यह ठेका ई० स० १८४३ (वि० सं० १९००) तक वख़तचन्द के पुत्र हेमचन्द के हाथ में रहा। ई० स० १८४० (वि० सं० १८९७) में खांधा का देहान्त होने पर उसका पुत्र नौघण (चौथा) उसका क्रमानुयायी हुआ। वह भी अपने पिता के समान निर्बल था, जिससे राज्य कर्ज़ में डूबा हुआ जैन सेठ के हाथ में रहा। उसके समय कुंवर प्रतापसिंह राज्य का काम संभालने लगा। उसने देखा कि जब तक कर्ज़ चुकाकर जैन सेठ के हाथ से राज्य छुड़ाया न जायेगा तब तक उसके राज्य का उद्धार न होगा। ई० स० १८४४ (वि० सं० १९०१) में उसने अधिकांश कर्ज़ चुकाकर राज्य की आय सेठ के हाथ से अपने हाथ में ले ली। ई० स० १८६० (वि० सं० १९१७) में उसके पिता के देहान्त होने पर वह राज्य का स्वामी हुआ, परन्तु उसी साल उसकी मृत्यु हो गई, जिससे उसका पुत्र सूरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी बुद्धिमानी और योग्यता से अपने राज्य को सम्पन्न बनाया।

उसको घोड़ों का बड़ा शौक़ था, जिससे वह अपने यहां अच्छे अच्छे घोड़े रखता था। ई० स० १८८५ (वि० सं० १९४२) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह पालीताणा का स्वामी हुआ। वह विद्वान् और मिलनसार था। ई० स० १९०५ (वि० सं० १९६२) में उसका देहान्त होने पर उसके पुत्र बहादुरसिंहजी राज्य के स्वामी हुए, जो इस समय वहां के ठाकुर हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल २८९ वर्गमील के क़रीब, आबादी ५७९२९ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय १०५३००० है। यहां के राजाओं की सलामी ९ तोपों की और 'ठाकुर' उनका खिताब है।

लाठी

काठियावाड़ के राज्यों में लाठी चौथे दर्जे के राज्यों में से एक है। गोहिल सेजक के पुत्र सारंग के वंश में लाठीवाले माने जाते हैं।

भाटों के कथनानुसार सारंग को आर्थिला का परगना जागीर में मिला था। उसका पुत्र जस्सा हुआ। उस (जस्सा) के पुत्र नौघण ने लाठी को विजय किया। नौघण के पीछे उसका भाई भीम गद्दी पर बैठा। भीम के अर्जुन और दूदा नाम के दो पुत्र हुए[1]। मंडलीक महाकाव्य में लिखा है—"अर्जुन ने मुसलमानों के बहुतसे सैन्य को मारा और अन्त में लड़कर मारा गया।

(१) गुजरात राजस्थान में लिखा है कि भीम के दो पुत्र-बड़ा दूदा और छोटा अर्जुन-हुए, परन्तु मंडलीक महाकाव्य से पाया जाता है कि भीम के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र अर्जुन उसका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु उसके वीरता-पूर्वक मुसलमानों से लड़कर मारे जाने के पश्चात् उसका छोटा भाई दूदा राज्य का स्वामी हुआ।

कुलेन किंचित्सदृशो हि राजन् गोहिल्लभीमक्षितिपालपुत्रः ।
राजार्जुनो योऽर्जुनतुल्यतेजा(स्)तुरुष्कधानुष्कबलान्यघाक्षीत् ॥ ५१ ॥
स चार्जुनक्षोणिपतिस्तुरुष्कनाथस्य सैन्यानि बहूनि हत्वा ।
स्नात्वारिनिस्त्रिंशजलेन देवो दिव्याङ्गनालिङ्गनलालसोऽभूत ॥ ५२ ॥
तस्यानुजः शास्ति तदीयराज्यं तेनैव पुत्रत्वपदेऽभिषिक्तः ।
.................दूदावनीशः सदुदारचित्तः ॥ ५४ ॥

मंडलीक काव्य; सर्ग ३ (नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ३, पृ० ३३८)।

उसके पीछे उसका भाई दूदा उसके राज्य का स्वामी हुआ। अर्जुन के कुन्ता नाम की पुत्री थी, जिसका पालन दूदा अपनी पुत्री के समान करता था। उसका विवाह गिरनार के राजा महिपाल के पुत्र मंडलीक के साथ हुआ। दूदा मुसलमान सुलतान की भूमि को अपने अधीन करता जाता था। सुलतान से महिपाल की मैत्री थी, इसलिये उसने महिपाल से कहलाया कि तुम्हारा रिश्तेदार मेरी भूमि छीनता जाता है, इसलिये उसे रोकना चाहिये। महिपाल ने सुलतान की सहायता करना निश्चय किया। इसपर उसके कुंवर मंडलीक ने दूदा के राज्य पर चढ़ाई कर उसके गांव जलाना शुरू कर दिया। दूदा भी उसके सामने आ खड़ा हुआ और दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। दूदा ने मंडलीक से कहा कि मेरी (मेरे भाई की कन्या) भतीजी तुमको व्याही है, इसलिये मैं तुमसे युद्ध न करूंगा, परन्तु मंडलीक ने इसे स्वीकार नहीं किया। अन्त में लड़ाई हुई और दूदा मारा गया।" इस लड़ाई से आर्थिले का नाश हुआ, जिससे दूदा के पुत्र लूणशाह (जीजीबावा) ने लाठी को अपनी राजधानी बनाया।

भावनगरवालों के पूर्वज सारंग को उसका गया हुआ राज्य पीछा प्राप्त कराने में लूणशाह ने सहायता दी, जिसके बदले में उस(सारंग)ने उसको १२ गांव दिये। लाठी के स्वामी बड़े बहादुर थे और उन्होंने आसपास के गांव जीतकर अपना राज्य बढ़ाया, परन्तु पिछले समय में भावनगर, पालिताणा और काठियों के बड़े आक्रमणों से राज्य का अधिकांश हिस्सा उनके हाथ से निकल गया और बाकी का ऊजड़ हो गया, जिससे लाखा गायकवाड़ को खिराज न दे सका। ऐसी स्थिति में उसने अपनी पुत्री का विवाह दामाजी गायकवाड़ के साथ कर दिया। इस सम्बन्ध से लाठी के राज्य का अन्त होता बच गया। गायकवाड़ ने उसका तमाम खिराज छोड़ दिया और सालाना केवल एक घोड़ा लेना स्वीकार किया।

लाखा के पीछे सूरसिंह हुआ। फिर उसका वंशज तख़्तसिंह लाठी का स्वामी हुआ। उसके बाद सूरसिंह (दूसरा, बापूभा) उसका उत्तराधिकारी हुआ। प्रतापसिंह का पुत्र प्रह्लादसिंह लाठी का वर्तमान ठाकुर है।

इस राज्य का क्षेत्रफल क़रीब ४२ वर्गमील, आबादी ८२३५ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय २१२००० रु० है।

वळा

काठियावाड़ के तीसरे दर्जे के राज्यों में से एक वळा है। सुप्रसिद्ध प्राचीन नगर वलभीपुर के स्थान पर इस समय वळा नगर है। यह नगर (वलभीपुर) जैन और बौद्ध आचार्यों का निवासस्थान था। वहां अनेक बौद्ध-मठ थे, जिनमें कई भिक्षुक और भिक्षुणियां रहती थीं। ऐसी प्रसिद्धि है कि ई० स० की पांचवीं शताब्दी के मध्य में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वलभी में धर्म-परिषद् स्थापित की थी और जैनों के सूत्र-ग्रन्थों को लिपिबद्ध कराया था। भट्टिकाव्य भी इसी नगर में रचा गया था। भावनगर के राजाओं के पूर्वज भावसिंह के, जिसने भावनगर बसाया था, पांच पुत्रों में से अखेराज तो उसका उत्तराधिकारी हुआ और वीसा को वळा की जागीर मिली। उसने अपनी वीरता से बहुतसे और गांव जीतकर एक अलहदा राज्य स्थापित किया। ई० स० १७७४ (वि० सं० १८३१) में उसकी मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नथुभाई वळा का स्वामी हुआ। नथुभाई के पीछे उसका पुत्र मघाभाई उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपना राज्य और भी बढ़ाया। ई० स० १८१४ (वि० सं० १८७१) में उसका देहान्त होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र हरभम राज्य का मालिक हुआ।

हरभम का ज्येष्ठ पुत्र कल्याणसिंह अपने पिता की विद्यमानता में ही मर गया, जिससे ई० स० १८३८ (वि० सं० १८९५) में हरभम की मृत्यु हो जाने पर उसका दूसरा पुत्र दौलतसिंह वळा की गद्दी पर बैठा।

दौलतसिंह भी दो वर्ष राज्य करके छोटी उम्र में ही गुज़र गया तो हरभम का भाई पथाभाई उसका उत्तराधिकारी हुआ। राज्य-कार्य की ओर उसका लक्ष्य न होने से उसका कुंवर पृथ्वीराज राज्य का काम चलाता था। पृथ्वीराज ई० स० १८५३ (वि० सं० १९१०) में अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और उसके देहान्त के समय उसके कुंवर मेघराज के बालक होने के कारण राज्य का प्रबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट के नियत किये हुए अधिकारी करते रहे। उसको अधिकार मिलने पर उसने बहुतसा कर्ज़ कर लिया, जिससे राज्य का प्रबन्ध एक एडमिनिस्ट्रेटर के द्वारा होने लगा। मेघराज का देहान्त होने पर ११ वर्ष की उम्र का उसका कुंवर बखतसिंह राज्य का स्वामी हुआ। उसने राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा पाई है।

वळा का क्षेत्रफल १९० वर्गमील भूमि, आबादी ११३८९ मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय ३४२००० है।

उपर्युक्त राज्यों के अतिरिक्त काठियावाड़ के गोहिलवाड़ प्रदेश में नीचे लिखे बहुतसे छोटे बड़े ठिकाने भी गोहिलों के हैं—आलमपुर, भोजावदर, चमारड़ी, चित्रावाव, धौला, गढाली, मढूला, गन्धोल, काटोडिया, खिजड़िया दोसाजी, लीमड़ा, पच्छेगांव, रामणका, रतनपुर धामणका, समढीयाला, सोहनगढ़, टोडाटोडी, बड़ोद, वांगधा, वावड़ी धरवाला और वावड़ी वछाणी। इन सब ठिकानों का सम्बन्ध सरकार अंग्रेज़ी से है।

गुजरात में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

राजपीपला

गुजरात के रेवाकांठा इलाके में राजपीपला नामक गोहिलों का राज्य है जो भावनगर के राजवंश से निकला हुआ है। उनके भाटों के कथन के आधार पर लिखी हुई अंग्रेज़ी और गुजराती भाषा की पुस्तकों में उनको दक्षिण के सूर्यवंशी[1] शालिवाहन के वंशज लिखे हैं। भावनगरवालों का पूर्वज मोखड़ा पीरम में रहता था। उसका ज्येष्ठ पुत्र डूंगरसिंह घोघा में रहा और दूसरा समरसिंह राजपीपले का स्वामी हुआ। समरसिंह, जो अपने ननिहाल में रहता था, परमार जाति के अपने नाना की मृत्यु के पीछे राजपीपला राज्य का मालिक हुआ और उसने अपना नाम अर्जुनसिंह रखा।

उसके पीछे भाणसिंह और गेमलसिंह हुए। गेमलसिंह के समय गुजरात के सुलतान ने राजपीपला छीन लिया, परन्तु उसके पुत्र विजयपाल ने राज्य पीछा अपने अधीन कर लिया। विजयपाल के पीछे उसका पुत्र रामशाह (हरिसिंह) राजा हुआ। हरिसिंह के समय सुलतान अहमदशाह ने उसका

---

(१) मार्कण्ड नन्दशंकर मेहता और मनु नन्दशंकर मेहता; हिन्दराजस्थान (अंग्रेज़ी); पृ० ७३३। काळीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० १५६।

राज्य छीन लिया जो १२ वर्ष के बाद पीछा मिला। उसके पीछे पृथ्वीराज, दीपा, करण, अभयराज, सुजानसिंह और भैरवसिंह[1] क्रमशः राजा हुए। भैरवसिंह की मृत्यु के पीछे पृथ्वीराज (दूसरा) गद्दी पर बैठा।

बादशाह अकबर ने गुजरात को अपने अधीन कर राजपीपले के राजा को दबाने के लिए नांदोद में थाना रखा। अन्त में राज्य ने ३५५५६ रु० सालाना खिराज के देना स्वीकार किया। पृथ्वीराज के पीछे दिलीपसिंह, दुर्गशाह, मोहराज, रायसाल, चन्द्रसेन, गंभीरसिंह, सुभेराज, जयसिंह, मूलराज, सुरमाल, उदयकरण, चन्द्र, छत्रसाल और वैरीसाल क्रमशः राजपीपले के राजा हुए। वैरीसाल के समय वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में मरहटों ने गुजरात के दक्षिण भाग पर चढ़ाई कर देश को उजाड़ना शुरू किया, इसपर बादशाह औरंगज़ेब ने अपने दो अफ़सरों को ससैन्य मरहटों पर भेजा।

वि० सं० १७७२ (ई० स० १७१५) में वैरीसाल की मृत्यु होने पर उसके ज्येष्ठ पुत्र जीतसिंह ने राज्य पाया। उसने मुगलों की अवनति और मरहटों का उदय देख नांदोद का परगना अपने राज्य में मिला लिया और वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में नांदोद नगर को अपनी राजधानी बनाया। वि० सं० १८११ (ई० स० १७५४) में जीतसिंह की मृत्यु हुई और उसका पुत्र प्रतापसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय दामाजी गायकवाड़ ने पेशवा की आज्ञा लेकर राजपीपला राज्य के चार परगनों-नांदोद, भालोद, वरीटी और गोवाली-की आय का आधा हिस्सा लेना स्थिर किया। प्रतापसिंह का उत्तराधिकारी रायसिंह हुआ। उसकी भतीजी से दामाजी गायकवाड़ ने शादी की, जिससे उसने उन परगनों की आय के बदले सालाना केवल ४०००० रु० लेना स्वीकार किया, परन्तु फ़तेहसिंह राव गायकवाड़ ने नांदोद

(१) राजपीपला के इतिहास में लिखा है कि जब बादशाह अकबर ने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय महाराणा उदयसिंह राजपीपला राज्य में आया और कुछ काल तक भैरवसिंह के आश्रय में रहा (गुजरात राजस्थान १२८); परन्तु यह कथन कल्पित है। महाराणा उदयसिंह राजपीपले के राजा के यहां नहीं, किन्तु उदयपुर राज्य में ही भोमट के पहाड़ों में रहा था। बड़ोदे से भी दक्षिण के दूरस्थित राजपीपला तक जाने की उसे आवश्यकता ही नहीं थी।

पर आक्रमण कर ४६००० रु० छूटूंद के ठहराये। ई० स० १७८६ (वि० सं० १८४३) में रायसिंह से उसके भाई अजबसिंह ने राज्य छीन लिया। उसके समय राज्य की बहुत बरबादी हुई और गायकवाड़ ने अपना ख़िराज बढ़ाकर ७८००० रु० कर लिया। अजबसिंह के चार कुंवरों में से ज्येष्ठ तो उसकी विद्यमानता ही में मर गया। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह राज्य का हक़दार था, परन्तु उसका छोटा भाई नाहरसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु गायकवाड़ की सेना ने उसको निकालकर रामसिंह को ही राजा बनाया। उसको वेश्याश और शराबी देखकर गायकवाड़ ने वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में राज्य पर सेना भेजकर ख़िराज बढ़ा दिया, एवं वि० सं० १८६७ (ई० स० १८१०) में उसको पदच्युत कर उसके पुत्र प्रतापसिंह को राज्य का स्वामी बनाया। उसके समय उसके चाचा नाहरसिंह ने राज्य के लिये दावा किया और यह ज़ाहिर किया कि प्रतापसिंह मेरे भाई की राणी से उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु एक राजपूत का लड़का है। इस दावे की तहकीक़ात में गायकवाड़ ने कई वर्ष लगा दिये और राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। अन्त में गायकवाड़ के असिस्टेन्ट रेज़िडेन्ट ने प्रतापसिंह को झूठा दावादार बताकर नाहरसिंह का हक़ स्वीकार किया, परन्तु उसके अन्धा होने के कारण उसका पुत्र वैरीसाल वि० सं० १८७७ (ई० स० १८२१) में नांदोद का राजा बनाया गया।

गायकवाड़ को महिकांठा और काठियावाड़ के समान यह राज्य भी सरकार अंग्रेज़ी को सौंपना पड़ा और वि० सं० १८८० (ई० स० १८२३) में यह निश्चय हुआ कि राजपीपला का राजा सरकार अंग्रेज़ी की मारफ़त ६५००१ रु० गायकवाड़ को दे। उस समय राज्य कर्ज़ में डूबा हुआ था और कमज़ोर हो रहा था, इसलिये राज्यप्रबन्ध सरकार अंग्रेज़ी की निगरानी में रहा, जिससे उसकी हालत सुधरती गई। वि० सं० १८६४ (ई० स० १८३७) में वैरीसाल को राज्य का अधिकार सौंप दिया गया। उसने वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में सरकार अंग्रेज़ी की स्वीकृति से अपने पुत्र गंभीरसिंह को गद्दी पर बिठाया, किन्तु राज्य का काम अपने हाथ में रखा। थोड़े दिनों पीछे पिता-पुत्र में अनबन हुई और अन्त में सरकार ने बीच में पड़कर गंभीरसिंह को ही राजा माना।

गंभीरसिंह का ज्येष्ठ पुत्र छत्रसिंह हुआ। उसके पुत्र विजयसिंहजी राजपीपला के वर्तमान महाराणा हैं। इनको के० सी० एस० आई० का खिताब मिला है और सेना में कप्तान का पद है।

इस राज्य में क़रीब १५१८ वर्गमील भूमि, १६८४५४ मनुष्यों की आबादी (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय २५३२००० रु० की है। यहां के राजाओं का ख़िताब महाराणा है और उनको १३ तोपों की सलामी है।

धरमपुर

गुजरात के सूरत ज़िले में गुहिलवंशियों का धरमपुर राज्य है। चित्तोड़ के स्वामी रणसिंह (कर्णसिंह) का उत्तराधिकारी क्षेमसिंह हुआ। उसके दो भाई माहप और राहप थे। माहप को सीसोदे की जागीर मिली। उसके पीछे उसकी जागीर का स्वामी उसका छोटा भाई राहप हुआ। सीसोदे में रहने के कारण ये लोग सीसोदिये और चित्तोड़ की छोटी शाखा में होने के कारण राणा कहलाये।

राहप के वंश में से रामशाह[1] (रामराजा) नाम का एक पुरुष गुजरात में गया, जिसके वंश में धरमपुर के स्वामी हैं। ई० स० १६६२ (वि० सं०

---

(१) अंग्रेज़ी और गुजराती इतिहास की पुस्तकों में लिखा है कि रामशाह (रामराजा) चित्तोड़ से गुजरात में आया उस समय उसके साथ उसका एक भाई भी था, जो अलीराजपुर (मध्य-भारत में) के राजाओं का मूल पुरुष हुआ; हिन्द-राजस्थान (गुजराती); पृ० १०४। गुजरात राजस्थान पृ० २३६। हिन्द राजस्थान (अंग्रेज़ी) पृ० ८४४। इससे पाया जाता है कि अलीराजपुर के राजा भी सीसोदिये थे। इस बात की और भी पुष्टि होती है, क्योंकि गुमानदेव और अभयदेव अलीराजपुर से ही धरमपुर गोद गये थे, जहां उनके नाम क्रमशः नारायणदेव और सोमदेव रखे गये थे। कप्तान लुआर्डकृत अलीराजपुर के गेज़ेटियर में भी उनका धरमपुर के राज्य का स्वामी होना लिखा है। सेन्ट्रल इंडिया गेज़ेटियर, जिल्द ५, भाग १, पृ० ५६७ के पास का अलीराजपुर के राजाओं का वंश-वृक्ष।

यदि वे सीसोदिये न होते तो धरमपुर गोद न जाते। संभव है कि इतिहास के अन्धकार में वहां के सीसोदिये राजाओं ने अपने को पीछे से राठोड़ मान लिया हो। इम्पीरियल गेज़ेटियर में लिखा है "उदयदेव (आनन्ददेव) ने इस राज्य की स्थापना की। उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह उसी वंश का राठोड़ था जिस वंश में जोधपुर के राजा हैं, परन्तु इस सम्बन्ध को राजपूताने के बड़े राजवंशी स्वीकार नहीं करते। इम्पीरियल गेज़ेटियर ऑफ़ इंडिया जिल्द ५, पृ० २२३।

१३१६)में उसने[1] वहां के भील राजा को मारकर उसका राज्य छीन लिया और उसका नाम रामनगर रखा। उसके पीछे सोमशाह, पुरंदरशाह, धर्मशाह, भोपशाह, जगत्शाह, नारायणशाह, धर्मशाह (दूसरा) और जगत्शाह (दूसरा, जयदेव) क्रमशः वहां के स्वामी हुए। जगत्शाह (जयदेव) का देहान्त वि० सं० १६२३ (ई० स० १५६६) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र लक्ष्मणदेव उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके समय बादशाह अकबर ने गुजरात के सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह से गुजरात छीन लिया तब से यह राज्य अकबर के साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया और राज्य ने उसको सालाना खिराज देना स्वीकार किया। लक्ष्मणदेव के पीछे उसके पुत्र सोमदेव ने राज्य पाया। उसके उत्तराधिकारी रामदेव ने छत्रपति शिवाजी को सूरत की चढ़ाई में अच्छी सहायता दी। रामदेव के पीछे सहदेव और उसके पीछे रामदेव (दूसरा) राजा हुआ। रामदेव के समय मरहटों का आक्रमण हुआ और उन्होंने राज्य पर चौथ (खिराज) लगाई तथा ७२ गांव छीन लिये, जो पेशवा ने पोर्चुगीज़ों के जहाज़ लूटे तब उनके हरजाने में उनको दिये। अब तक उनमें से बहुतसे गांव पोर्चुगीज़ों के अधीन के दंमन परगने में हैं।

रामदेव का देहान्त वि० सं० १८२१ (ई० स० १७६४) में हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र धर्मदेव हुआ। उसने अपने नाम से धर्मपुर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। वि० सं० १८३१ (ई० स० १७७४) में धर्मदेव का निस्सन्तान देहान्त होने पर अलीराजपुर से गुमानदेव गोद लिया जाकर

(१) गुजराती और अंग्रेज़ी की पुस्तकों में धरमपुर के राजा रामशाह (रामराजा) से रामदेव (दूसरे) तक १४ राजाओं में से प्रत्येक का राजत्वकाल भाटों के अनुसार दिया है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि रामराजा के राज्य का प्रारम्भ ई० स० १२६२ में और रामदेव (दूसरे) के राज्य की समाप्ति ई० स० १७६४ में होना लिखा है, जिससे इन १४ राजाओं का राजत्वकाल ५०२ वर्ष अर्थात् प्रत्येक राजा का राजत्वकाल क़रीब ३६ वर्ष आता है, जो अधिक है। इसीसे हमने उन राजाओं के संवत् छोड़ दिये हैं। वास्तव में रामदेव (दूसरे) के पीछे के राजाओं के ही संवत् विश्वास के योग्य हैं, क्योंकि धरमदेव के राज्य का प्रारम्भ ई० स० १७६४ (वि० सं० १८२१) और मोहनदेव का देहान्त ई० स० १६२१ (वि० सं० १६७८) में हुआ। इन आठ राजाओं का राजत्वकाल १५७ वर्ष आता है, जिससे प्रत्येक राजा का राज्य-समय क़रीब १६ वर्ष होता है।

उसका नाम नारायणदेव रखा गया। तीन वर्ष बाद उसकी भी मृत्यु हो गई। उसके भी कोई पुत्र न था, इसलिये उसका भाई अभयदेव अलीराजपुर से गोद गया और उसका नाम सोमदेव रखा गया। वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र रूपदेव उसका क्रमानुयायी हुआ।

वि० सं० १८५६ (ई० स० १८०२) में पेशवा और अंग्रेज़ी सरकार के बीच बसीन की सन्धि हुई, तब से इस राज्य का सम्बन्ध पेशवाओं से छूटकर अंग्रेज़ों से हुआ। वि० सं० १८६४ (ई० स० १८०७) में विजयदेव रूपसिंह का उत्तराधिकारी हुआ, जिसके उदार प्रकृति का होने के कारण राज्य पर कर्ज़ हो गया, तो बम्बई के गवर्नर ने मध्यस्थ होकर उसके गांवों आदि की आय में से कर्ज़ का अधिकांश बेबाक करा दिया। वि० सं० १८७७ (ई० स० १८२०) में बम्बई के गवर्नर माउन्ट एल्फ़िन्स्टन ने उसको खिलअत आदि देकर सम्मानित किया। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में विजयदेव का देहान्त होने पर उसका पुत्र रामदेव (तीसरा) राज्य का स्वामी हुआ, परन्तु तीन वर्ष बाद उसका भी देहान्त हो गया, जिससे उसका पुत्र नारायणदेव (दूसरा) ता० २६ जनवरी १८६० में धरमपुर का राज्याधिकारी हुआ। उसने अपनी योग्यता से राज्य को उन्नत बनाया और पहले का कर्ज़ चुकाया। विद्यानुरागी होने से वह विद्वानों का भी सम्मान करता था। उसके ज्येष्ठ पुत्र धर्मदेव का देहान्त उसकी जीवित दशा में ही हो गया, जिससे उसका दूसरा पुत्र मोहनदेव राज्य का स्वामी हुआ। उसके पुत्र विजयदेवजी इस समय धरमपुर के वर्तमान महाराणा हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल ७०४ वर्गमील, जनसंख्या ९५१७१ (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और १२४८००० रु० सालाना आय है। यहां के राजाओं को ९ तोपों की सलामी है और महाराणा उनका खिताब है। वर्तमान महाराणा की ज़ाती सलामी ११ तोपों की है।

——

मध्यभारत में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

बड़वानी

बड़वानी के राजाओं का प्राचीन इतिहास अंधकार में है। राणा भीमजी से उनका इतिहास शृंखलाबद्ध मिलता है। धनुक (धुंधुक) का २६ वां वंशधर मालसिंह हुआ। उसके तीन पुत्र वीरमसिंह, भीमसिंह और अर्जुन हुए। वीरमसिंह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। उसके पुत्र कनकसिंह ने अलीराजपुर राज्य और रतनमाल की बहुतसी भूमि दबाकर अपना राज्य बढ़ाया। उसने आवासगढ़ का राज्य अपने चाचा भीमसिंह को दे दिया और वह रतनमाल में रहने लगा, जो अबतक उसके वंशधरों के अधिकार में है।

भीमसिंह के पीछे अर्जुनसिंह, बाघसिंह और प्रसन्नसिंह क्रमशः उसके राज्य के स्वामी हुए। प्रसन्नसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में ही अपना राज्य अपने पुत्र भीमसिंह (दूसरे) को सौंप दिया। भीमसिंह के पीछे बछराजसिंह, प्रसन्नसिंह (दूसरा) और लीमजी क्रमशः राज्याधिकारी हुए। राणा लीमजी बड़ा विद्यानुरागी था। उसके समय में गोविन्द पंडित ने आवासगढ़ के राजाओं का इतिहास 'कल्पग्रन्थ' नाम से लिखा। लीमजी के पांच पुत्र-चन्द्रसिंह, लक्ष्मणसिंह, हम्मीरसिंह, भावसिंह और मदनसिंह-हुए। उसका देहान्त वि० सं० १६६७ (ई० स० १६४०) में हुआ, जिससे चन्द्रसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। चन्द्रसिंह के पीछे उसके पुत्र सूरसिंह ने राज्य पाया। उसका क्रमानुयायी उसका भाई जोधसिंह हुआ और उसके पीछे उस(जोधसिंह)का पुत्र परवतसिंह राज्य का स्वामी हुआ। वि० सं० १७६५ (ई० स० १७०८) में उसके चाचा मोहनसिंह ने उससे राज्य छीन लिया। मोहनसिंह के समय होल्कर ने उसके कई परगने दबा लिये।

मोहनसिंह के तीन पुत्र-माधवसिंह, अनूपसिंह और पहाड़सिंह-हुए। उस(मोहनसिंह)ने अपने दूसरे पुत्र अनूपसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपने जीतेजी ही उसको राज्य सौंप दिया। माधवसिंह ने, जो वास्तविक हक़दार था, अपने पिता को ज़हर दिलाने का उद्योग किया और

अपने भाई अनूपसिंह को कैद किया, लेकिन उसके भाई पहाड़सिंह ने उसको कैद से छुड़ाकर उसको पीछा राजा बना दिया। अनूपसिंह के मरने पर गद्दी के लिये फिर झगड़ा खड़ा हुआ, जो पेशवा ने बीच में पड़कर निपटा दिया और अनूपसिंह का पुत्र उम्मेदसिंह राज्य का स्वामी रहा। उम्मेदसिंह के मरने पर फिर राज्य की गद्दी के लिये झगड़ा हुआ तो प्रसिद्ध अहल्याबाई होल्कर ने वहां के प्रबन्ध के लिये अपनी तरफ़ से अधिकारी भेजे। अन्त में उस (उम्मेदसिंह) का पुत्र मोहनसिंह (दूसरा) वहां का स्वामी हुआ। वि० सं० १८९६ (ई० स० १८३९) में उसका देहान्त होने पर उसका पुत्र जसवन्तसिंह और उसके पीछे उसका भाई इन्द्रजीतसिंह बड़वानी का स्वामी हुआ।

वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में इन्द्रजीतसिंह का देहान्त होने पर उसका बालक पुत्र रणजीतसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने डेली कॉलेज (इन्दोर) और मेयो कॉलेज (अजमेर) में शिक्षा प्राप्त की। उसको के० सी० आई० ई० का खिताब मिला और सेना में कप्तान का पद था। उसका देहान्त ता० ३ मई ई० स० १९३० को होने पर उसका बालक पुत्र देवीसिंह राज्य का स्वामी हुआ।

इस राज्य का क्षेत्रफल ११७८ वर्गमील भूमि, १२०१५० मनुष्यों की आबादी (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और १०८९००० रु० की वार्षिक आय है। यहां के राजाओं को ११ तोपों की सलामी है और राणा उनका खिताब है।

रामपुरा के चन्द्रावत

सीसोदे के राणा वंश में भीमसिंह हुआ, जिसके एक पुत्र चन्द्रसिंह (चन्द्रा) के वंशज चन्द्रावत कहलाये। चन्द्रा को आंतरी परगने में जागीर मिली थी। उसके पीछे सज्जनसिंह, झांझणसिंह और भाखरसिंह हुए। भाखरसिंह की उसके काका छाजूसिंह से तकरार हुई, जिससे वह (छाजूसिंह) आंतरी छोड़कर मिलसिया खेड़ी के पास जा रहा। उसका बेटा शिवसिंह बड़ा वीर और हट्टाकट्टा जवान था। मांडू के सुलतान हुशंग गोरी ने दिल्ली की एक शाहज़ादी के साथ विवाह किया था। हुशंग के आदमी उस बेगम को लेकर मांडू जा रहे थे ऐसे में आन्तरी के पास नदी पार करते हुए बेगम की नाव

टूट गई उस समय शिवा ने, जो वहां शिकार खेल रहा था, अपनी जान झोंक-कर उसका प्राण बचाया। इसके उपलक्ष्य में बेगम ने होशंग से शिवा को 'राव' का ख़िताब और १४०० गांव सहित आमद का परगना जागीर में दिलाया। उसके पीछे रायमल वहां का स्वामी हुआ। चित्तोड़ के महाराणा कुंभा ने उसको अपने अधीन किया।

उसका पुत्र अचलदास हुआ और उसका उत्तराधिकारी उसका पौत्र (प्रतापसिंह का पुत्र) दुर्गभाण हुआ। उसने रामपुरा शहर बसाया और उसको सम्पन्न बनाया। बादशाह अकबर ने चित्तोड़ को घेरा उस समय बादशाह की यह इच्छा रही कि राणा का बल तोड़ने के लिये उसके अधीन के बड़े बड़े सरदारों को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये। इसी उद्देश्य से उसने आसफ़ख़ां को फ़ौज देकर रामपुरे पर भेजा। उसने उस शहर को बरबाद किया, जिसपर दुर्गभाण को मेवाड़ की सेवा छोड़कर बादशाही सेवा स्वीकार करनी पड़ी। बादशाह ने उसे ख़ास अमीरों में रखा। वि० सं० १६३८ (ई० स० १५८१) में मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम पर चढ़ाई हुई उस समय वह शाहज़ादे मुराद के साथ भेजा गया। दो वर्ष बाद मिर्ज़ाख़ान के साथ गुजरात के बाग़ियों को दबाने के लिये वह गुजरात गया और दक्षिण की लड़ाइयों में भी शामिल रहा।

वि० सं० १६४८ (ई० स० १५६१) में जब मालवे का सूबा शाहज़ादे मुराद के सुपुर्द हुआ उस समय वह उसके साथ रहा। वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में शेख़ अबुल्फ़ज़्ल के साथ वह नासिक में नियत हुआ, जहां से छुट्टी लेकर वह रामपुरे गया। दूसरे वर्ष वह अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ और फिर दक्षिण में भेजा गया। ४० से अधिक वर्ष तक बादशाही सेवा कर ८२ वर्ष की आयु में बादशाह जहांगीर के समय वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में उसका देहान्त हुआ। उसकी वीरता के कारण उसका मन्सब चार हज़ारी तक पहुंच गया था।

राव दुर्गभाण (दुर्गा) का बेटा चांदा (चन्द्रसिंह दूसरा) उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसको प्रारम्भ में ७०० का मन्सब मिला, जो बाद में बढ़ता गया एवं उसे 'राव' का ख़िताब भी दिया गया। बादशाह जहांगीर की उसने बहुत कुछ सेवा की। उसके तीन पुत्र—दूदा, हरिसिंह और रणछोड़दास (रूप-

मुकुन्द)-हुए। उसका ज्येष्ठ पुत्र दूदा उसका क्रमानुयायी हुआ। वह शाहजहां बादशाह के समय आज़मखां के साथ खानेजहां लोदी पर भेजा गया और उसका मन्सब बढ़कर २००० ज़ात और १५०० सवार का हुआ। उसके बाद वह यमीनुद्दौला आसिफ़खां के साथ आदिलखां पर भेजा गया। वि० सं० १६६० (ई० स० १६३३) में दौलताबाद के किले पर लड़ाई हुई उस समय दूदा ने जिसके कई कुटुम्बी उस लड़ाई में मारे गये थे उनकी लाशों को उठाने की इजाज़त सेनापति से मांगी। उसकी आज्ञा न होने पर भी वह (दूदा) उनकी लाशें उठाने लगा, इतने में शत्रुओं ने उसको घेर लिया तो उसी वक्त वह अपने साथियों सहित घोड़े से उतर गया और तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ा तथा वीरता से लड़ता हुआ मारा गया। उसकी इस वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहां ने उसके बेटे हठीसिंह को खिलअत, १५०० ज़ात और १००० सवार का मन्सब एवं 'राव' का ख़िताब प्रदान किया। फिर वह खानेजहां के साथ दक्षिण की चढ़ाई में शरीक हुआ, पर कुछ दिनों बाद मर गया।

हठीसिंह के निस्सन्तान होने के कारण राव चन्द्रभाण (चांदा) के पुत्र रूपमुकुन्द (रणछोड़दास) का बेटा रूपसिंह उसका क्रमानुयायी हुआ। ज्येष्ठ वदि १ वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४ ता० १२ मई) को वह बादशाही सेवा में उपस्थित हुआ तब बादशाह ने उसको 'राव' का ख़िताब और ६०० ज़ात तथा ६०० सवार का मन्सब दिया। तत्पश्चात् वह शाहज़ादे मुराद के साथ बलख की चढ़ाई में शामिल होकर फ़ौज की हरावल में रहा, जिससे उसका मन्सब १५०० ज़ात और १००० सवार का हो गया। उसने औरंगज़ेब के साथ रहकर उज़बकों की लड़ाई में बड़ी वीरता बतलाई। वह औरंगज़ेब के साथ कंदहार भी भेजा गया, जहां कज़लबाशों के साथ की लड़ाई में वह हरावल में रहा और उसने बड़ी वीरता बतलाई, जिससे उसका मन्सब २००० ज़ात और १२०० सवार का हो गया। वि० सं० १७०७ (ई० स० १६५०) में उसका देहान्त हुआ। उसके सन्तान न होने के कारण राव चांदा के बेटे हरिसिंह का पुत्र अमरसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसको बादशाह शाहजहां ने १००० ज़ात और ६०० सवार का मन्सब, 'राव' का ख़िताब तथा चांदी के सामान समेत एक घोड़ा दिया। वह पहले शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ और

बाद में दाराशिकोह के साथ कंदहार की चढ़ाई में रहा, जहां वीरता बतलाने के कारण उसका मन्सब बढ़कर १५०० ज़ात और १००० सवार का हो गया। वि० सं० १७१५ (ई० स० १६५८) में वह महाराजा जसवन्तसिंह के साथ शाहज़ादे औरंगज़ेब और मुराद से लड़ने के लिये मालवे की तरफ़ भेजा गया और लड़ाई के समय वह महाराजा की सेना की हरावल में रहा, परन्तु महाराजा के हारने पर वह रामपुरे चला गया। जब औरंगज़ेब बादशाह हुआ तब वह उसके पास हाज़िर हो गया। फिर वह मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुआ, जहां वि० सं० १७२५ (ई० स० १६६८) में साल्हेर के क़िले के नीचे लड़ता हुआ मारा गया और उसका बेटा मोहकमसिंह, जो उसके साथ था, उसी लड़ाई में क़ैद हुआ। कुछ दिनों बाद क़ैद से छूटकर वह बहादुरखां कोका (नाज़िम दक्षिण) के पास पहुंचा और बादशाह से मन्सब व 'राव' का ख़िताब पाया तथा उम्र भर बादशाही सेवा में बना रहा। वह राजपूताने में बड़ा प्रसिद्ध और उदार राजा गिना गया।

उसके पीछे उसका पुत्र गोपालसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। वि० सं० १७४६ (ई० स० १६८६) में वह बादशाह औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुआ। उसका बेटा रत्नसिंह, जो रामपुरे में था, अपने बाप से विरुद्ध होकर रामपुरे का स्वामी बन बैठा और वहां की आमदनी को अपने बाप के पास भेजना बन्द कर दिया। इसपर राव गोपालसिंह ने बादशाह से उसकी शिकायत की तो बादशाह की नाराज़गी से बचने के लिये उस (रत्नसिंह) ने वि० सं० १७५५ (ई० स० १६६८) में मालवा के सूबेदार मुख़्तारखां के द्वारा मुसलमान होकर अपना नाम इस्लामखां और रामपुरे का नाम इस्लामपुर रखा। इसपर बादशाह उसका तरफ़दार हो गया और उसने उसको रामपुरे का स्वामी स्वीकार कर लिया। उसके मुसलमान होने पर उसके दो बेटे बदनसिंह और संग्रामसिंह गोपालसिंह के पास चले गये। जब गोपालसिंह को अपना राज्य पीछा पाने की उम्मेद न रही तब वह शाहज़ादा बेदारबख़्त के पास से भागकर महाराणा अमरसिंह (दूसरे) की शरण में जा रहा और शाही इलाक़ों में लूटमार करने लगा। महाराणा के इशारे से मलका बाजणा के जागीरदार उदयभान शक्तावत ने उसको सहायता दी।

रत्नसिंह केवल रामपुरे से ही सन्तुष्ट न हुआ, किन्तु उसने उधर के दूसरे शाही इलाक़ों और उज्जैन पर भी अधिकार कर लिया। जब अमानतखां ने उससे उज्जैन आदि छुड़ाना चाहा तब वह लड़ने को तैयार हो गया और ३०-४० हज़ार सेना लेकर सारंगपुर के पास उससे लड़ा और मारा गया। यह अवसर पाकर गोपालसिंह ने रामपुरे पर पीछा अपना अधिकार कर लिया, परन्तु वृद्धावस्था के कारण उससे वहां का प्रबन्ध ठीक होता न देखकर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने अपने प्रधान कायस्थ बिहारीदास को बादशाह फ़र्रुख़सियर के पास भेजकर रामपुरा अपने नाम लिखा लिया और उदयपुर से सेना भेजकर उसे अपने अधिकार में कर लिया तथा राव गोपालसिंह को एक परगना देकर अपना सरदार बनाया।

गोपालसिंह के पीछे उसका बड़ा पोता बदनसिंह उसकी जागीर का स्वामी हुआ और महाराणा की सेवा में रहा। उसके पुत्र न होने के कारण उसके भाई संग्रामसिंह को वह जागीर मिली। फिर महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने यह परगना अपने भानजे माधवसिंह को अन्य सरदारों के समान सेवा करने की शर्त पर दे दिया।

महाराजा जयसिंह की मृत्यु के पीछे जयपुर की गद्दी के लिये ईश्वरीसिंह और माधवसिंह के बीच झगड़ा हुआ। ईश्वरीसिंह ने उसके मंत्री केशवदास को उसके शत्रुओं की बहकावट में आकर विष-प्रयोग द्वारा मरवा डाला। यह समाचार पाकर होलकर, जो केशवदास का सहायक था, सेना लेकर जयपुर पर चढ़ आया। ईश्वरीसिंह ने उसे रोकना चाहा, किन्तु उसके मंत्री हरगोविन्द नाटाणी ने, जो अपनी पुत्री के साथ के महाराजा के अनुचित सम्बन्ध के कारण नाराज़ था, जयपुर की सेना को तैयार न किया, जिससे होलकर से लड़ने में अपने को असमर्थ देखकर ईश्वरीसिंह ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। होलकर ने जयपुर पर अपना अधिकार कर लिया और माधवसिंह वहां का राजा हुआ। रामपुरे का परगना, जो महाराणा ने माधवसिंह को सेवा की शर्त पर दिया था उसने फ़ौजख़र्च में होलकर को दे दिया। तब से रामपुरे के चन्द्रावत होलकर के अधीन हुए।

संग्रामसिंह के बाद लछमनसिंह, भवानीसिंह, मोहकमसिंह (दूसरा),

नाहरसिंह, तेजसिंह, किशोरसिंह और खुंमाणसिंह क्रमशः वहां के स्वामी हुए। जब से यह परगना होल्कर के हस्तगत हुआ तब से चन्द्रावत अपनी भूमि (रामपुरा) प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। अन्त में तुकोजीराव होल्कर ने रामपुरा १०००० रु० वार्षिक आय के गांवों सहित उन्हें दे दिया, जो अब तक उनके अधीन है।

महाराष्ट्र में गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

मुधोल

चित्तोड़ के रावल रणसिंह (कर्णसिंह) के तीन पुत्र-क्षेमसिंह, माहप और राहप-हुए। क्षेमसिंह अपने पिता रणसिंह का उत्तराधिकारी हुआ और माहप को सीसोदे की जागीर मिली, जिसका विस्तार केलवाड़े तक था। मेवाड़ के स्वामी 'रावल' और सीसोदे के सरदार 'राणा' कहलाते रहे। माहप के पीछे सीसोदे की जागीर का स्वामी उसका छोटा भाई राहप हुआ और रावल क्षेमसिंह के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह मेवाड़ के राज्य का स्वामी हुआ। रावल सामंतसिंह के पीछे आठवां राजा रावल रत्नसिंह चित्तोड़ का स्वामी हुआ और राहप का दसवां वंशधर राणा लक्ष्मसिंह (लक्ष्मणसिंह) सीसोदे की जागीर का मालिक हुआ।

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने रत्नसिंह पर चढ़ाई की और क़रीब छः महीने तक चित्तोड़ के क़िले पर घेरा रहने के पश्चात् रावल रत्नसिंह मारा गया और सुलतान का उस क़िले पर वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४ (ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को अधिकार हो गया। सीसोदे का राणा लक्ष्मणसिंह अपने ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह आदि आठ पुत्रों सहित अलाउद्दीन से लड़ने को गया था। इस लड़ाई में वह अपने सात पुत्रों सहित मारा गया और केवल अजयसिंह नाम का उसका एक पुत्र घायल होकर बचा, जो अपने पिता की सीसोदे की जागीर का स्वामी हुआ।

राणा लक्ष्मणसिंह के ज्येष्ठ कुंवर अरिसिंह ने अपने पिता की आज्ञा के विना ऊनवा गांव के एक चंदाणा राजपूत की बलवती पुत्री से विवाह किया,

जिससे हंमीर (हंमीरसिंह) का जन्म हुआ, जो अपने ननिहाल ही में रहा करता था। अरिसिंह के मारे जाने के पश्चात् जब यह बात अजयसिंह को मालूम हुई तब उसने हंमीर को अपने पास बुला लिया। राणा अजयसिंह के दो पुत्र सज्जनसिंह और क्षेमसिंह हुए। गोड़वाड़ ज़िले (जोधपुर) का रहनेवाला मुंजा नाम का बालेचा राजपूत अपने पड़ोस के अजयसिंह के अधीन के इलाक़े में लूटमार किया करता था, जिससे उस (अजयसिंह) ने अपने दोनों पुत्रों को आज्ञा दी कि वे उसको सज़ा देवें, परन्तु उनसे वह काम नहीं हो सका। इसपर अप्रसन्न हो उसने अपने भतीजे हंमीर को, जिसकी अवस्था तो छोटी थी परन्तु जो साहसी और वीर प्रकृति का था, वह काम सौंपा। जब हंमीर को यह सूचना मिली कि मुंजा गोड़वाड़ ज़िले के सामेरी गांव में किसी जलसे में गया हुआ है, तब उसने वहां जाकर उसको मार डाला और उसका सिर काटकर अजयसिंह के सामने ला रखा। हंमीर की वीरता को देखकर अजयसिंह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने बड़े भाई का पुत्र होने के कारण सीसोदे के ठिकाने का वास्तविक अधिकारी भी वही है ऐसा सोचकर उसने मुंजा के रुधिर से तिलक कर उसको अपना उत्तराधिकारी स्थिर किया। इसपर अप्रसन्न होकर उस (अजयसिंह) के दोनों पुत्र सज्जनसिंह और क्षेमसिंह मेवाड़ छोड़कर दक्षिण को चले गये।

क्षेमसिंह का उधर का कोई विश्वस्त वृत्तान्त नहीं मिलता। सज्जनसिंह दक्षिण में जाकर मुसलमानों से जा मिला। उसने गुलबर्गा के बहमनी राज्य के संस्थापक ज़फ़रखां (हसनगंगू) की सेवा में रहकर वीरता बतलाई। उसके पुत्र दुलेहसिंह (दिलीपसिंह) को हसनगंगू ने उसकी वीरता और अच्छी सेवाओं के उपलक्ष्य में देवगिरि की तरफ़ मीरत प्रान्त में दस गांव दिये, जिनके फ़रमान[1] में राणा दिलीपसिंह को सज्जनसिंह का पुत्र और अजयसिंह का पौत्र लिखा है। इनमें से कुछ गांव अब तक उसके वंशजों के अधिकार में हैं। दिलीपसिंह ने विजयनगर और बहमनी राज्य के बीच की लड़ाइयों में भी बड़ी वीरता दिखलाई थी।

---

(१) सुल्तान अल्लाउद्दीन (हसनगंगू) का दिलीपसिंह के नाम हि० स० ७५३ (वि० सं० १४०९=ई० स० १३५२) का फ़रमान। यह फ़रमान जीर्ण शीर्ण दशा में है।

हसनगंगू के मरने के बाद उसके राज्य में कई प्रपंच रचे गये और थोड़े ही समय में कई सुल्तान गद्दी पर बैठे। दिलीपसिंह के पुत्र सिद्धजी (सिंहा) हुआ, जो सागर का थानेदार नियत हुआ। फ़ीरोज़शाह बहमनी के गद्दी पर बैठने के पहिले के बखेड़ों में जब कि राज्य के बहुतसे सरदार उसके विरोधी हो गये थे सिंहा तथा उसका पुत्र भैरवसिंह (भोंसला, भोंसाजी) उसके पक्ष में रहे और उसके शत्रुओं के साथ की लड़ाइयों में सिंहा मारा गया। भैरवसिंह का उपनाम भोंसला होने से उसके वंशज भोंसले कहलाये। सुल्तान फ़ीरोज़-शाह ने गद्दी पर बैठने पर भैरवसिंह को ८४ गांवों सहित मुधोल की जागीर दी, जिसके फ़रमान में लिखा है, 'पहले के सुल्तान की असावधानी और अमीरों के कुप्रबन्ध से राज्य के कई सेवक राज्य के विरोधी हो गये। इस स्थिति को ठीक करने के लिए हमने पूरा यत्न किया और राज्यभक्त सेवकों की सलाह और सहायता से विरोधियों का दमन करने का विचार कर हम सागर के क़िले को गये। वहां का थानेदार राणा सिद्धजी (सिंहा) हमारा सहायक हुआ और हमारे लिये लड़ता हुआ शत्रुओं-द्वारा मारा गया। हमारे गद्दीनशीन होने के पीछे राणा भैरवसिंह को, जो अपने पिता के साथ रहकर बड़ी वीरता से लड़ा था, उसकी उत्तम सेवा के लिए ८४ गांव सहित रायबाग़ की तरफ़ मुधोल की जागीर उसे प्रदान की गई''[1]।

राणा भैरवसिंह (भोंसला) का उत्तराधिकारी देवराज हुआ। राणा देवराज के उग्रसेन (इन्द्रसेन) और प्रतापसिंह दो पुत्र हुए, जिनमें से उग्रसेन अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। फ़ीरोज़शाह के उत्तराधिकारी अहमद-शाह की विजयनगर के राजा के साथ की लड़ाई में राणा उग्रसेन ने अच्छी बहादुरी बतलाई, जिसकी प्रशंसा स्वयं अहमदशाह ने अपने फ़रमान में की है, इतना ही नहीं, किन्तु उसने उसके पूर्वजों की स्वामिभक्ति और वीरता का उल्लेख भी किया है[2]। राणा उग्रसेन कोंकण की लड़ाई में अपने स्वामी के

(१) फ़ीरोज़शाह रोज़अफ़ज़ूं का भैरवसिंह के नाम का हि० स० समामता (८००) ता० २६ रवि-उल्-आख़िर (माघ वदि १२ वि० सं० १४५४=ता० १५ जनवरी ई० स० १३६८) का फ़रमान।

(२) अहमदशाह का उग्रसेन (इन्द्रसेन) के नाम का ता० ८ शव्वाल हि० स०

लिए लड़ता हुआ मारा गया। उसके दो पुत्र कर्ण (कर्णसिंह प्रथम) और शुभकृष्ण (शुभकर्ण) हुए, जिनके विषय में सुल्तान अलाउद्दीन (दूसरा) बहमनी ने उनके पिता की सेवा से प्रसन्न होकर अपने फ़रमान में लिखा है "दूसरी सेना की सहायता न मिलने पर भी उग्रसेन शत्रुओं से लड़ा और मारा गया, इसलिए उसकी सब पुरानी जागीर उसके पुत्र कर्णसिंह, शुभकृष्ण और उनके चचा प्रतापसिंह के नाम बहाल की जाती है[1]"। राणा उग्रसेन का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह हुआ, जिसके वंश में मुधोल के राजा हैं। दूसरे पुत्र शुभकृष्ण के वंश में प्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी हुए। कोंकण में मुहम्मदशाह (दूसरा) के वक़्त लड़ाइयां चल रही थीं उस समय एक सीधी दिवालवाले क़िले को फ़तह करने की आवश्यकता हुई तो राणा कर्णसिंह और उसके पुत्र आदि ने सैकड़ों गोहों (मराठी में 'घोरपड़') के गलों में रस्सियां डालकर उन्हें दिवाल पर फेंका और उनके द्वारा उन्होंने क़िले में प्रवेश कर लिया। क़िला तो फ़तह हुआ, किन्तु राणा कर्णसिंह मारा गया। इस सेवा के उपलक्ष्य में सुल्तान ने उसके लड़के भीमसिंह को राणा के बदले 'राजा घोरपड़े बहादुर' की उपाधि दी और रायबाग़ तथा बेन के परगनों के दो क़िले एवं 'घोरपड़' (गोह) के चिह्नवाला झंडा दिया[2]। इसी समय से मुधोल के स्वामियों ने राणा के स्थान पर अपना ख़िताब 'राजा' और वंश का नाम भोंसले के स्थान पर 'घोरपड़े' रखा।

राजा भीमसिंह का पुत्र खेलोजी हुआ। मुहम्मदशाह के बाद महमूदशाह (दूसरा) सुल्तान हुआ उसने राजा खेलोजी को उसके पूर्वजों की राज-

८२७ (भाद्रपद शुक्ला १० वि० सं० १४८१=ता० ३ सितम्बर ई० स० १४२४) का फ़रमान।

(१) कर्णसिंह (प्रथम) और शुभकृष्ण (शुभकर्ण) के नाम का अलाउद्दीन (दूसरा) का हि० स० समन खमसैन् समनमता (८५८=वि० सं० १५११=ई० स० १४५४) का फ़रमान।

(२) मुहम्मदशाह बहमनी का भीमसिंह के नाम का ता० ७ जमादि-उल-अव्वल हि० स० ८७६ (कार्तिक सुदि ६ वि० सं० १५२८=ता० २२ अक्टूबर ई० स० १४७१) का फ़रमान। इस फ़रमान में गोहों (घोरपड़ों) की सहायता से क़िला फ़तह होने का पूरा उल्लेख है।

भक्ति, वीरता आदि की प्रशंसा कर उनकी सम्पूर्ण जागीर का स्वामी किया[1]।

महमूदशाह दूसरे के समय ज़िलों के हाकिम एक के बाद एक स्वतन्त्र से होते गये और बहमनी राज्य में से बरार में इमादशाही, बीजापुर में आदिलशाही, अहमदनगर में निज़ामशाही, गोलकोंडा में कुतुबशाही और बिदर में बरीदशाही नाम के पांच स्वतन्त्र राज्य क़ायम हो गये। इस प्रकार बहमनी राज्य केवल नाममात्र को ही रह गया। ये नये राज्य भी अपनी अपनी प्रभुता के लिये परस्पर लड़ते थे। जब निज़ामशाही आदि राज्यों ने मिलकर बीजापुर के इस्माइल आदिलशाह पर चढ़ाई की उस समय राजा खेलोजी बीजापुर के पक्ष में रहकर लड़ा। बीजापुर के निकट अलपपुर की लड़ाई में शत्रुओं की हार हुई, किन्तु राजा खेलोजी उसमें मारा गया। इस समय से घोरपड़े खानदान का सम्बन्ध बीजापुर के साथ हुआ।

राजा खेलोजी का पुत्र मालोजी (प्रथम) हुआ। उसने बीजापुर के स्वामी इस्माइल आदिलशाह की बड़ी सहायता की, जिसके सम्बन्ध में वह अपने फ़रमान में मालोजी की स्वामिभक्ति और वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए लिखता है, "जब तिमराज की अध्यक्षता में विजयनगर की बड़ी सेना कृष्णानदी के किनारे आ पहुंची और हमारी दशा बड़ी गंभीर एवं शोचनीय हो गई ऐसे अवसर पर तुमने अपनी जान पर खेलकर बारम्बार शत्रुओं पर आक्रमण कर हमारे प्राणों की रक्षा की। तुम राज्य के स्तम्भ हो। तुम्हारी वीरता-पूर्ण सेवाओं के उपलक्ष्य में हम तुम्हें कुर्निसात (निश्चित प्रथा के अनुसार प्रणाम) से रिहा करते हैं और दो मोर्च्छल रखने का सम्मान देते हैं[2]"।

मालोजी के बाद अखेसिंह (प्रथम) मुधोल राज्य का स्वामी हुआ। वह भी बीजापुर के सुलतान का स्वामि-भक्त बना रहा। उसके बाद उसके दो पुत्र कर्णसिंह और भीमसिंह ने सुलतान अली आदिलशाह (प्रथम) के समय

(१) महमूदशाह बहमनी का खेलोजी के नाम का ता० २२ रजब हि० सन् सत तसैन् समनमता (८६६ = आषाढ़ बदि ६ वि० सं० १५४८=ता० ३१ मई ई० स० १४६१) का फ़रमान।

(२) इस्माइल आदिलशाह का मालोजी के नाम का हि० स० समन अशरीन् व तसामता (६२८=वि० सं० १५७६=ई० स० १५२२) का फ़रमान।

विजयनगर के साथ की प्रसिद्ध तालीकोट की लड़ाई में बड़ी वीरता और साहस के काम किये। इस लड़ाई में कर्णसिंह (दूसरा) ने अपने प्राण अपने स्वामी के लिये अर्पण कर दिये। इस उत्तम सेवा से प्रसन्न होकर सुलतान ने उसके पुत्र चोलराज को उसकी पुरानी जागीर के अतिरिक्त तोरगल का परगना तथा सात हज़ारी मन्सब दिया[1]।

चोलराज के तीन पुत्र पीलाजी, कानोजी और वल्लभसिंह हुए। उसकी मृत्यु के बाद पीलाजी भी सुलतान इब्राहीम की ओर से लड़ता हुआ मारा गया। इस सेवा से प्रसन्न होकर सुलतान ने अपने फ़रमान में उसका उल्लेख करते हुए उसके पुत्र प्रतापसिंह (प्रतापराव) के नाम ७००० सेना के मन्सब के साथ मुधोल आदि की जागीर बहाल की[2]।

इन दिनों मुग़लों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और उनके आक्रमण दक्षिण के उक्त राज्यों पर भी होने लगे थे। शाहजी (प्रसिद्ध शिवाजी के पिता) ने निज़ाम (अहमदनगर) की सेवा छोड़ने के बाद बीजापुर की सेवा स्वीकार कर ली और उसका प्रभाव भी उस राज्य में दिन दिन बढ़ता जा रहा था। फिर उसने सुलतान मुहम्मद आदिलशाह के समय मुधोल राज्य में से अपने पूर्वजों का हिस्सा लेने की कोशिश की, जिसके विषय में सुलतान ने चोलराज के पौत्र प्रतापराव के नाम के अपने फ़रमान में लिखा है "वह ८४ गांवों सहित मुधोल का परगना, तोरगल का परगना, कर्नाटक की आधी जागीर और सात हज़ारी मन्सब पर सन्तुष्ट रहे। बेन का आधा परगना तथा कराड़ के २६ गांव, एवं कर्नाटक की आधी जागीर और पांच हज़ारी मन्सब शाहजी के रहे तथा वल्लभसिंह के पोते भैरवसिंह के बेटे मालोजी को विजयनगर के निकट के ३० गांव और दो हज़ारी मन्सब रहे। इनकी सनदें अलग अलग दी जायेंगी[3]"। इस प्रकार भोंसला वंश की पुरानी जागीर का बँटवारा हुआ।

(१) अली आदिलशाह (प्रथम) का चोलराज के नाम का हि० स० ९७२ (वि० सं० १६२१=ई० स० १५६४) का फ़रमान।

(२) इब्राहीम (द्वितीय) का प्रतापराव के नाम ता० ११ रबि-उल-अव्वल हि० स० १००७ (आश्विन शु० १३ वि० सं० १६५५=ता० २ अक्टूबर ई० स० १५९८) का फ़रमान।

(३) मुहम्मद आदिलशाह का प्रतापराव (प्रतापसिंह) के नाम का ता० १८ रजब

प्रतापसिंह दरबारियों के षड्यन्त्र से मारा गया और उसका पुत्र बाजी-राव (बाजीराजे) उसका उत्तराधिकारी हुआ। सुल्तान ने उसके पूर्वजों की बहमनी राज्य से लगा कर उस समय तक की उत्तम सेवा, वीरता आदि की प्रशंसा कर उसको अपना वज़ीर बनाया और उसकी जागीर व मन्सब बहाल रखा[1]।

इन दिनों दिल्ली के बादशाह शाहजहां की दक्षिण के राज्यों पर क्रूर दृष्टि पड़ी। उसने निज़ामशाही को तो नष्ट कर ही दिया था और आदिलशाही आदि राज्यों को भी वह मिटाना चाहता था। उस समय बीजापुर की सेना ने मुस्त-फ़ाखां की अध्यक्षता में कर्नाटक पर आक्रमण किया और लौटते वक्त उसने जिंजी के क़िले पर घेरा डाला, किन्तु वह क़िला सर न हुआ। इस चढ़ाई में बाजीराव घोरपड़े और शाहजी दोनों बीजापुर की सेना में थे। इन्हीं दिनों शाहजी के प्रसिद्ध पुत्र शिवाजी स्वतन्त्रता से अपना राज्य बढ़ा रहे थे और उन्होंने बीजापुर के कुछ क़िले भी अपने हस्तगत कर लिये थे। इसपर सुल्तान को यह संदेह हुआ कि शाहजी की प्रेरणा से ही शिवाजी ऐसा कर रहा है। इसलिये उसने कूटनीति से बाजीराव-द्वारा शाहजी को क़ैद करवाकर इस कलंक का टीका उस(बाजीराव)के सिर लगवा दिया। अन्त में शिवाजी ने बाजीराव को मारकर उसका बदला लिया।

बाजीराव के मालोजी और जयसिंह (शंकरा) दो पुत्र हुए। उस (बाजीराव) के बाद मालोजी (दूसरा) अपने पिता की जागीर का स्वामी हुआ। अपने पिता के मारे जाने पर उसको अपनी जागीर के सिवा धौलेश्वर आदि पांच और परगने इनाम में दिये गये[2]। मालोजी की और भी

हि० सं० १०४७ (पौष बदि ४ वि० सं० १६९४=ता० २६ नवम्बर ई० स० १६३७) का फ़रमान।

(१) मुहम्मद आदिलशाह का बाजीराजे (बाजीराव) के नाम का ता० १९ शाबान हि० स० १०५७ (आसोज बदि ५ वि० सं० १७०४=ता० ९ सितम्बर ई० स० १६४७) का फ़रमान।

(२) नज़फ़शाहअली (अली) का मालोजी (द्वितीय) के नाम ता० १८ जमादिउल-आख़िर हि० स० १०८१ (मार्गशीर्ष बदि २ वि० सं० १७२७=ता० २० अक्टूबर ई० स० १६७०) का फ़रमान।

उत्तम सेवाओं के उपलक्ष्य में सुलतान सिकन्दरशाह ने भी उसे कुलवाय गांव इनाम में दिया[1]।

इस समय बीजापुर राज्य का ह्रास हो रहा था। राज्य के पठान सरदार उच्छृङ्खल हो रहे थे और औरंगज़ेब भी उसे हड़प करना चाहता था। इस स्थिति में मालोजी अपने स्वामी के पक्ष में बना रहा। शिवाजी ने उसे एक पत्र लिखकर भोंसले और घोरपड़े एक ही वंश के होने से परस्पर मिल जाने की सलाह दी, किन्तु मालोजी ने उसे नहीं माना। औरंगज़ेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और ई० स० १६८६ (वि० सं० १७४३) में उसे ले लिया। मालोजी औरंगज़ेब की सेना से खूब लड़ा, जिसपर बादशाही अफ़सर सय्यद-अली मुहम्मद उसके पास भेजा गया और उससे बादशाही सेवा स्वीकार करने का आग्रह किया गया, जिसको उसने स्वीकार कर लिया। इसपर बादशाह ने प्रसन्न होकर अपने फ़रमान में उसकी तथा उसके पूर्वजों की वंशपरंपरागत वीरता और स्वामिभक्ति की सराहना कर उसकी जागीर, प्रतिष्ठा और मन्सब आदि को पूर्ववत् बना रक्खा[2]। राव दलपत बुन्देला और राव गोपालसिंह चन्द्रावत के साथ मालोजी बादशाही सेना में रहकर दक्षिण की लड़ाइयों में लड़ा। ई० स० १७०० (वि० सं० १७५७) में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अखैजी (दूसरा) उसकी जागीर का स्वामी हुआ। वह बीजापुर का शासक भी नियुक्त हुआ था। उसके बाद उसके पुत्र पीराजी को वही स्थान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, किन्तु जब वह अपने भाई बाजी के हाथ से मारा गया तब उसका स्थान और पद उसके पुत्र मालोजी (तीसरा) को मिला। मालोजी के नाम के बादशाह मुहम्मदशाह के फ़रमान में उसके पूर्वजों की जागीर और अधिकार उसके नाम पर बहाल किये जाने का उल्लेख है[3]।

---

(१) सिकन्दर का मालोजी के नाम ता० २८ शाबान हि० स० १०८९ (आश्विन वदि अमावस्या वि० सं० १७३५=ता० ५ अक्टूबर ई० स० १६७८) का फ़रमान।

(२) औरंगज़ेब का मालोजी के नाम का सन् जुलूस २९ (हि० स० १०९६= वि० सं० १७४३=ई० स० १६८६) का फ़रमान।

(३) अब्दुलफ़ते नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह का मालोजी के नाम ता० ८ शाबान सन् जलूस १९ (हि० स० ११४९=मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० १७९३=ता० १ दिसंबर ई० स० १७३६) का फ़रमान।

इन दिनों दिल्ली की बादशाहत जर्जर हो रही थी। दक्षिण में निज़ाम ने प्रबल होकर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। मरहटे पेशवाओं के नेतृत्व में प्रबल हो रहे थे। घोरपड़ों की जागीर निज़ाम राज्य में भी थी, इसलिए मालोजी का पुत्र गोविन्दराव तो निज़ाम की सेवा में रहा और मालोजी पेशवा के पक्ष में रहा। जब पेशवा और निज़ाम के बीच लड़ाई हुई तब पिता-पुत्र प्रतिपक्षी हुए। वे आपस में वैर-भाव से नहीं किन्तु कुल-परंपरागत स्वामि-भक्ति के भाव से लड़े। इस लड़ाई में मालोजी के हाथ से गोविन्दराव घायल होकर मर गया तो निज़ाम ने उधर की जागीर उस(गोविन्दराव)के पुत्र नारायण-राव को दी[1]।

मालोजी जीवन पर्यन्त पेशवा की सेवा में रहा और अनेक लड़ाइयां लड़ा। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में पेशवा की ओर से उसे नई जागीर भी मिली, जो उसकी मृत्यु के बाद ज़ब्त हो गई। मालोजी के चार पुत्र-गोविन्दराव, महरराव, बाजीराव और राणोजी-हुए। गोविन्दराव ऊपर लिखे अनुसार मर चुका था और राणोजी अंग्रेज़ों और पेशवाओं के बीच की वड़गांव की ई० स० १७७६ (वि० सं० १८३६) की लड़ाई में मारा गया। मालोजी अपने पौत्र नारायणराव के साथ पूना में रहा करता था, इसलिए मुधोल की जागीर का प्रबन्ध अपने पुत्र महरराव को सौंप रखा था, किन्तु उसकी क्रूर प्रकृति के कारण उसकी प्रजा ने उसका विरोध कर उसके भतीजे नारायणराव को मुधोल पर नियत किया। महरराव ने कोल्हापुर से सहायता ली, किन्तु अन्त में हारकर वह ग्वालियर में जा रहा। मालोजी की सारी उम्र लड़ाइयों में गुज़री और ६५ वर्ष की अवस्था में ई० स० १८०५ (वि० सं० १८६२) में उसका देहान्त हुआ।

उसके पीछे नारायणराव, जो अपने दादा की जीवित दशा से ही मुधोल राज्य का प्रबन्ध करता था, वहां का स्वामी हुआ। उसके परमार और सोलंकी वंश की दो राणियों से तीन पुत्र-गोविन्दराव, वेंकटराव और लक्ष्मणराव-हुए।

---

(१) निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह का ता० ४ शव्वाल हि० स० ११८४ (माघ सुदि ५ वि० सं० १८२७=ता० २१ जनवरी सन् १७७१ ई०) का नारायणराव के नाम का फ़रमान।

नारायणराव के पीछे उनमें राज्य के लिए झगड़ा हुआ। गोविन्दराव ने पेशवा की मदद ली, परन्तु वह पेशवा के पक्ष में लड़ता हुआ अंग्रेज़ों के साथ की अष्टी की लड़ाई में ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में मारा गया, जिससे वेंकटराव (प्रथम) निष्कंटक मुधोल का राजा हुआ। उसने अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसका उत्तराधिकारी उसका बालक पुत्र बलवन्तराव हुआ, किन्तु वह भी अठारह वर्ष की आयु में एक छोटे बच्चे को छोड़कर मर गया, जिसका नाम वेंकटराव (द्वितीय) था। उसे ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में अधिकार प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकारी उसके पुत्र सर मालोजी राव (चतुर्थ, नाना साहिब) मुधोल के वर्तमान स्वामी हैं। इनको के० सी० आई० ई० का ख़िताब और सेना में लेफ़्टिनेन्ट का पद है। इस राज्य को सरकार अंग्रेज़ी की ओर से ९ तोपों की सलामी है।

इस राज्य का क्षेत्रफल ३६८ वर्गमील, आबादी ६०१४० मनुष्यों की (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ४११००० रु० की वार्षिक आय है।

कोल्हापुर

ऊपर मुधोल के इतिहास में राणा अजयसिंह के दक्षिण में गये हुए वंशजों का वृत्तान्त लिखते समय यह बतलाया गया है कि इन्द्रसेन (उग्रसेन) के दो पुत्र कर्ण (कर्णसिंह) और शुभकृष्ण (शुभकर्ण) हुए। कर्ण के वंश में मुधोल के राजा और शुभकर्ण के वंश में प्रसिद्ध शिवाजी हुए। कर्ण के पुत्र भीमसिंह को मुहम्मदशाह बहमनी ने 'राजा घोरपड़े बहादुर' की उपाधि दी, जिससे उसके वंशज घोरपड़े कहलाये और शुभकर्ण (शुभकृष्ण) के वंशधर अपने पुराने खानदानी नाम के अनुसार भोंसले ही कहलाते रहे।

शुभकर्ण के पीछे क्रमशः रूपसिंह, भूमीन्द्र, रापा, बरहट (बरड़, बाबा) खेला, कर्णसिंह, संभा, बाबा और मालूजी हुए। मालूजी ने वि० सं० १६५७ (ई० स० १६००) में अहमदनगर के सुलतान की सेवा स्वीकार की। उसके शाहजी नामक पुत्र हुआ, जिसका विवाह उसने मरहटे जादू (जादव) सरदार की पुत्री के साथ किया। उसकी जागीर का उत्तराधिकारी उसका पुत्र शाहजी हुआ।

जब शाहजी ने बीजापुर की सेवा स्वीकार की और वहां उसका प्रभाव बढ़ा तब उसने अपने पूर्वजों की जागीर का बँटवारा कराने के लिए सुलतान मुहम्मद आदिलशाह के समय कोशिश की, जिसपर सुलतान ने जागीर का बँटवारा कर दिया, जिसका व्यौरा उसने अपने ता० १८ रजब हि० स० १०४७ (पौष वदि ५ वि० सं० १६६४=नवम्बर ता० २६ ई० स० १६३७) के मुधोल-वालों के पूर्वज प्रतापराव के नाम के फ़रमान में दिया है।

शाहजी के पुत्र प्रसिद्ध शिवाजी हुए, जिनका वृत्तान्त पहले 'मरहटों का सम्बन्ध' के प्रसंग में संक्षेप से लिखा जा चुका है। शिवाजी के दो पुत्र–बड़ा संभाजी और छोटा राजाराम–थे। संभाजी के दुश्चरित्र होने के कारण शिवाजी ने उसको क़ैद कर लिया। उन (शिवाजी) के देहान्त होने पर सरदारों ने राजाराम को गद्दी पर बिठाया, किन्तु उन (शिवाजी) की मृत्यु के समाचार पाते ही संभाजी रायगढ़ जाकर अपने पिता की गद्दी पर बैठ गया और राजाराम को क़ैद कर लिया। औरंगज़ेब के हाथ से संभाजी के मारे जाने पर बादशाही सेनापति एतक़ादखां ने रायगढ़ फ़तेह कर लिया और संभाजी की राणी अपने बालक पुत्र शाहू सहित क़ैद हुई। उस समय शिवाजी का दूसरा पुत्र राजाराम किसी तरह भाग निकला और गद्दी पर बैठकर उसने बादशाही सेना से लड़ाइयां कीं, परन्तु ज़ुल्फ़िक़ारख़ां से हारकर वह वि० सं० १७५४ (ई० स० १६९७) में सतारे चला गया।

राजाराम के मरने पर उसका बालक पुत्र शिवाजी (दूसरा) गद्दी पर बैठा और राज्य का काम उसकी माता ताराबाई चलाने लगी। वि० सं० १७६४ (ई० स० १७०७) में जब बादशाह औरंगज़ेब अहमदनगर में मर गया तब शाहज़ादे आज़म ने संभाजी के पुत्र शाहू को क़ैद से छोड़ दिया। उसने आते ही ताराबाई से सतारे का राज्य छीन लिया, जिससे वह अपने पुत्रों–शिवा और संभा–को लेकर कोल्हापुर चली गई। कई बरसों तक कोल्हापुर और सतारा के बीच झगड़ा चलता रहा। अन्त में ई० स० १७३० (वि० सं० १७८७) में सुलह हुई और सतारावालों ने कोल्हापुर राज्य की स्वतन्त्रता स्वीकार की।

राजाराम के बाद शिवाजी ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वि० सं० १७६९ (ई० स० १७१२) में उसकी मृत्यु होने पर उसका भाई संभाजी कोल्हापुर का

स्वामी हुआ। वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) में संभाजी भी मर गया। उसके मरने से शिवाजी की मूल शाखा नष्ट हो गई। इससे उसकी बड़ी राणी जीजाबाई ने अपने पति की इच्छा के अनुसार शिवाजी के वंश के दूर के भोंसला खानदान में से एक लड़के को गोद लेना चाहा। इस विषय में पेशवा ने पहले तो रुकावट की, परन्तु बाद में उसे स्वीकार कर लिया। उस लड़के का नाम शिवाजी रखा गया और जीजाबाई राज्य का काम चलाने लगी। जीजाबाई के राज्य करते समय कोल्हापुर राज्य पर बहुत कुछ आपत्ति आई। उस(जीजाबाई)के देहान्त होने पर एवं शिवाजी (दूसरे) के बालक होने के कारण दीवान यशवन्तराव शिन्दे राज्य का काम चलाता था। यशवन्तराव की मृत्यु के पीछे रत्नाकरपन्त आप्पा दीवान हुआ। उसके समय राज्य में शान्ति रही।

उस(शिवाजी)की मृत्यु ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६६) में हुई, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र संभाजी (आबा साहब) उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह बहुत शान्त प्रकृति का राजा था। उसके समय पेशवा और अंग्रेज़ों के बीच लड़ाइयां हुई, जिनमें उसने अंग्रेज़ों की सहायता की, जिसके बदले में चिकोड़ी और मनोली के दो परगने अंग्रेज़ों ने उसको दिये। ई० स० १८२१ (वि० सं० १८७८) में आबा साहब निर्दयता के साथ मारा गया। उसके बाद उसका छोटा भाई शाहजी (बुवा साहिब) गद्दी पर बैठा। वह दुष्ट प्रकृति का एवं क्रूर था। उसके समय प्रजा पर बहुत जुल्म हुआ और वह अंग्रेज़ों के साथ भी छेड़छाड़ करने लगा, जिससे अंग्रेज़ों ने उसपर सेना भेजकर उसको दबाया। ई० स० १८३७ (वि० सं० १८९४) में उसकी मृत्यु हुई। उसके बाद उसका बालक पुत्र शिवाजी (तीसरे, बाबा साहब) ने राज्य पाया। उसकी बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध पोलिटिकल एजेन्ट की निगरानी में रहा।

ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२३) में बाबा साहब भी मर गया, जिससे उसका दत्तक पुत्र राजाराम उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसका देहान्त यूरोप के प्रवास के समय फ्लोरेन्स नगर में हुआ। उसके दत्तक पुत्र शिवाजी (चौथे) के विक्षिप्तसा होने के कारण राज्य का काम रीजेन्सी कौंसिल-द्वारा चलता रहा। ई० स० १८८५ (वि० सं० १९४२) में उसका देहान्त होने पर शाहजी कागल

से गोद गया, जिसके बालक होने के कारण राज्य का काम रीजेन्सी कौंसिल करती रही। उसने राजकुमार कॉलेज (राजकोट) में शिक्षा पाई और ई० स० १८६४ (वि० सं० १६५१) में उसको राज्य का पूर्णाधिकार प्राप्त हुआ। उसने बड़ी योग्यता से राजकाज चलाया। उसकी निम्न वर्ण के लोगों के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। वह अपने पूर्वज छत्रपति शिवाजी के समान कुलाभिमानी और क्षत्रिय वंश में होने का गौरव रखता था। जब ब्राह्मण पुरोहितों ने धार्मिक क्रियाएं वैदिक रीति से कराना स्वीकार न किया तब उसने उनकी जागीरें छीन लीं और अपने यहां की धार्मिक क्रियाएं वैदिक रीति से कराना आरम्भ कर दिया। उसने राज्य की बहुत कुछ सुव्यवस्था एवं उन्नति की। उसने शहर के बाहर दरबार के लिए एक विशाल भवन बनाया, जिसके ऊपर की तमाम खिड़कियों में छत्रपति शिवाजी के जीवन पर्यन्त की तमाम घटनाएं रंगीन काचों में बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित की गई हैं। जब उक्त महाराजा ने ये सब घटनाएं मुझे बतलाईं तो मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। विद्यानुरागी होने से उसने अपने राज्य में विद्या की बहुत कुछ उन्नति की। ई० स० १६२२ (वि० सं० १६७६) में उसका देहान्त हुआ। उसके पुत्र राजाराम (दूसरे) कोल्हापुर राज्य के वर्तमान स्वामी हैं। इनको जी० सी० आई० ई० का खिताब और सेना में लेफ्टिनेन्ट का पद है।

इस राज्य का क्षेत्रफल ३२१७ वर्गमील भूमि, आबादी ८३३७२६ मनुष्यों की (ई० स० १६२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और वार्षिक आय १४०१२००० रु० हैं। इस राज्य को १६ तोपों की सलामी का सम्मान है।

सावन्तवाड़ी

सावंतवाड़ी का इलाक़ा पहले बीजापुर के सुलतानों के अधिकार में था। ई० स० १५५४ (वि० सं० १६११) में भोंसला वंश का मांग सावंत बीजापुर की सेवा छोड़कर वाड़ी नामक गांव में जा रहा, तो बीजापुरवालों ने उसपर सेना भेजी, जिसको उसने परास्त किया और अपनी मृत्यु तक वह स्वतन्त्र रहा।

उसके पीछे उसके वंशजों को फिर बीजापुर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, परन्तु फोंड सावंत के पुत्र भोंसला खेम सावंत ने फिर स्वतन्त्र होकर ई० स० १६२७ से १६४० (वि० सं० १६८४ से १६९७) तक राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सोम सावंत हुआ, परन्तु डेढ़ वर्ष के पीछे उसका देहान्त होने पर उसका भाई लखम सावंत वहां का राजा हुआ।

ई० स० १६५० (वि० सं० १७०७) में उसने छत्रपति शिवाजी की अधीनता स्वीकार की और वह सारे दक्षिणी कोंकण का सर-देसाई माना गया। लखम सावंत का उत्तराधिकारी उसका भाई फोंड सावंत (दूसरा) हुआ। उसके उत्तराधिकारी खेम सावंत (दूसरे) ने छत्रपति शिवाजी को कोंकण से निकालने के लिए मुग़लों का पक्ष लिया और कई बार गोआ की सीमा पर आक्रमण कर अपना राज्य बहुत बढ़ाया।

जब छत्रपति शिवाजी के पौत्र साहूजी का कोल्हापुर से झगड़ा हुआ उस वक्त उस (खेम सावंत) ने साहूजी का पक्ष लिया, जिससे उसकी सर-देशमुखी स्वीकार की गई और कुंडाल तथा पंच-महाल के परगने उसको दिये गये। उसके पीछे उसका भतीजा फोंड सावंत (तीसरा) राज्य का स्वामी हुआ, जिसने ई० स० १७३० (वि० सं० १७८७) में कोलाबा के कान्होजी आंगरिया को, जो सामुद्रिक लुटेरों का मुखिया था, दबाने के लिए अंग्रेज़ों के साथ सन्धि की।

ई० स० १७३७ (वि० सं० १७९४) में उसका देहान्त होने पर उसका पोता रामचन्द्र सावंत गद्दी पर बैठा। उसका क्रमानुयायी उसका पुत्र खेम सावंत (तीसरा) हुआ। उसने जयाजी सिंधिया की पुत्री से विवाह किया और दिल्ली के बादशाह से "राजा बहादुर" का ख़िताब पाया।

इस सम्मान की ईर्ष्या के कारण कोल्हापुर के राजा ने वाड़ी पर हमला किया और उसके कई गढ़ छीन लिए, जो सिंधिया ने पीछे उसको दिला दिये। उसने कोल्हापुर, पेशवा, पोर्चुगीज़ और अंग्रेज़ों से भी लड़ाइयां कीं।

ई० स० १८०३ (वि० सं० १८६०) में उसका देहान्त हुआ और उसके उत्तराधिकारी के लिए झगड़ा रहा। ई० स० १८०५ (वि० सं० १८६२) में उसकी विधवा राणी लक्ष्मीबाई ने रामचन्द्र सावंत (भाऊ साहिब) नामक

बालक को गोद लिया। यह बालक भी तीन वर्ष बाद मर गया और फोंड सावंत (चौथा) उसका क्रमानुयायी हुआ।

इन दिनों सामुद्रिक लुटेरों के कारण उधर अंग्रेज़ों के व्यापार को बड़ी हानि पहुंचने लगी, जिससे फोंड सावंत (चौथे) को ई० स० १८१२ (वि० सं० १८६६) में अंग्रेज़ों से सन्धि कर वैंगुरला का बंदरगाह उनको सौंपना पड़ा और सब लड़ाई के जहाज़ भी देने पड़े। उसके पीछे खेम सावंत (चौथे) ने बाल्यावस्था में राज्य पाया, परन्तु राज्य-प्रबन्ध में कुशल न होने के कारण राज्य में कई बखेड़े हुए, जिससे राज्य-प्रबन्ध अंग्रेज़ों के सुपुर्द करना पड़ा।

ई० स० १८६१ (वि० सं० १९१८) में राज्य का अधिकार पीछा उसको मिला और ई० स० १८६७ (वि० सं० १९२४) में उसका देहान्त हुआ। उसका पुत्र फोंड सावंत (पांचवां, आना साहिब) राज्य का स्वामी हुआ।

ई० स० १८६६ (वि० सं० १९२६) में उसके देहान्त होने पर उसके पुत्र रघुनाथ सावंत (बावा साहिब) ने राज्य पाया।

ई० स० १८९९ (वि० सं० १९५६) में उसकी मृत्यु होने पर श्रीराम उसका उत्तराधिकारी हुआ। ई० स० १९१३ (वि० सं० १९७०) में उसका बालक पुत्र खेम सावंत (पांचवां, बापू साहिब भोंसले) राजा हुए।

इनका विद्याभ्यास एवं सैनिक शिक्षा इंगलैंड में हुई और गत यूरोपीय महासमर के समय इन्होंने मैसोपोटामिया में अच्छा काम किया, जिससे इनको हिज़ हाईनेस की उपाधि और सेना में कप्तान का पद मिला। ये सावंतवाड़ी के वर्तमान स्वामी हैं।

इस राज्य में ९२५ वर्गमील भूमि, २०६४४० मनुष्यों की आबादी (ई० स० १९२१ की मनुष्यगणना के अनुसार) और ६९३००० रु० की वार्षिक आय है। सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़ से ९ तोपों की सलामी है और यहां के राजा 'सर-देसाई' कहलाते हैं।

मध्यप्रदेश का गुहिल (सीसोदिया) वंशी राज्य

नागपुर

नागपुर के राजा छत्रपति शिवाजी के परदादा बाबाजी के छोटे भाई परसोजी के वंश में थे। परसोजी का पौत्र मुधोजी निज़ामशाही में नौकर था और उमरावती व भामगांव उसके जागीर में थे, फिर वह शंभाजी की सेवा में रहा। उसका दूसरा पुत्र परसोजी उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसने बराड़ आदि ज़िलों पर अपना अधिकार जमा लिया, जिसपर राजाराम ने उसको ख़िलअत देकर उन प्रान्तों का स्वामी मान लिया। शंभाजी का पुत्र शाहूजी दिल्ली से लौटते समय नर्मदा पारकर खानदेश में पहुंचा उस समय परसोजी १५००० सवारों के साथ उससे जा मिला। जब वह (शाहूजी) गद्दी पर बैठा तब उसने उसको 'सेना-साहिब-सूबा' का ख़िताब और बराड़ आदि की बड़ी जागीर दी।

परसोजी का पुत्र कान्होजी और उस(परसोजी)के भाई बापूजी का पौत्र राघोजी भोंसला हुआ। उस समय छिंदवाड़ा ज़िले के देवगढ़ में गोंडों का राज्य था। वहां के राजा बख़्तबुलन्द ने नागपुर शहर बसाया। उसके पुत्र चांद सुलतान ने नागपुर में अपनी राजधानी स्थिर की। ई० स० १७३९ (वि० सं० १७९६) में चांद सुलतान के मरने पर उसकी गद्दी के लिये दो दावेदार खड़े हुए। इसपर उस(चांद सुलतान)की विधवा राणी ने राघोजी भोंसले को, जो पेशवा की तरफ़ से बरार का शासक था, बुलाया। वह चांद सुलतान के दोनों बेटों को राजा बनाकर पीछा बरार को चला गया। तदनन्तर उन दोनों भाइयों के बीच झगड़ा खड़ा हुआ तो राघोजी ई० स० १७४३ (वि० सं० १८००) में फिर बुलाया गया। उसने बड़े भाई बरहानशाह का पक्ष लिया और उसे वहां का राजा बनाया, परन्तु उसको नाममात्र का ही राजा रखकर कुछ दिनों पीछे वह स्वयं वहां का मालिक बन बैठा। इस प्रकार नागपुर के गोंडों का राज्य भोंसलों के अधिकार में गया। वह वीर प्रकृति का पुरुष था। उसने दो बार बंगाल पर चढ़ाई की और कटक ज़िला प्राप्त किया। ई० स० १७४५ से ई० स० १७५५ (वि० सं० १८०२ से वि० सं० १८१२) तक उसने चांदा, छत्तीसगढ़

और संभलपुर ज़िले अपने राज्य में मिला लिए। ई० स० १७५५ (वि० सं० १८१२) में उसका देहान्त होने पर उसका उत्तराधिकारी जानोजी हुआ। वह पेशवा और निज़ाम के बीच की लड़ाइयों में लड़ा, परन्तु वे दोनों उससे अप्रसन्न हो गये और फिर उन दोनों ने मिलकर नागपुर पर चढ़ाई की तथा उसे ई० स० १७६५ (वि० सं० १८२२) में जला दिया।

जानोजी के मरने पर उसके दो भाइयों में गद्दी के लिए झगड़ा हुआ और नागपुर से ६ मील दक्षिण को पांचगांव की लड़ाई में वे एक दूसरे के हाथ से मारे गये तो जानोजी के भाई मुधोजी का बालक पुत्र राघोजी (दूसरा) नागपुर के राज्य का स्वामी हुआ। उसके समय में हुशंगाबाद और नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश उसके राज्य में मिलाया गया। वि० सं० १८६० (ई० स० १८०३) में वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध सिंधिया से मिल गया, परन्तु असई और आरगांव की लड़ाइयों में उन दोनों के हार जाने पर राघोजी को कटक, दक्षिणी बरार और संभलपुर अंग्रेज़ों को देना पड़ा। इस प्रकार राघोजी के राज्य का एक तिहाई हिस्सा उसके हाथ से निकल गया, जिससे उसको अपनी सेना क़ायम रखने के लिए प्रजा पर नये नये कर लगाने पड़े। ऐसे समय में पिंडारियों ने ई० स० १८११ (वि० सं० १८६८) में नागपुर पर आक्रमण कर उसका कुछ हिस्सा जला दिया।

ई० स० १८१६ में राघोजी (दूसरे) का देहान्त होने पर उसका पुत्र परसोजी (दूसरा) नागपुर का स्वामी हुआ, जो कमज़ोर था। उसको उसके चाचा व्यंकोजी के पुत्र आपा साहब (मुधोजी) ने मार डाला और वह नागपुर का स्वामी हो गया। उसने अंग्रेज़ों से सुलह की और ई० स० १७९९ (वि० सं० १८५६) से नागपुर में अंग्रेज़ी रेज़िडेन्ट रहने लगा। ई० स० १८१७ (वि० सं० १८७४) में अंग्रेज़ों और पेशवा के बीच लड़ाई छिड़ जाने पर उसने पेशवा का पक्ष लेकर अंग्रेज़ी सेना पर आक्रमण किया, परन्तु सीताबल्दी और नागपुर की लड़ाइयों में उसकी हार हुई, जिससे बरार का बाक़ी का हिस्सा और नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश अंग्रेज़ों को सौंपना पड़ा। फिर वह नागपुर की गद्दी पर बिठलाया गया, परन्तु अंग्रेज़ों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के अपराध में गद्दी से खारिज किया जाकर इलाहाबाद भेजा जाने वाला था, किन्तु मार्ग में से ही

वह भागकर महादेव की पहाड़ियों में होता हुआ पंजाब की ओर चला गया। वहां से वह जोधपुर जा रहा, जहां ई० स० १८४० (वि० सं० १८९७) में उसका देहान्त हुआ।

आपा साहब के भाग जाने पर नागपुर का रहा-सहा राज्य भी रेज़िडेन्ट के अधिकार में हो गया। तत्पश्चात् राघोजी (दूसरे) का दौहित्र बाजीराव (राघोजी तीसरा) ई० स० १८१८ (वि० सं० १८७५) में गोद लिया गया, परन्तु उसके नाबालिग़ होने के कारण राज्य का काम रेज़िडेन्ट के निरीक्षण में होने लगा। ई० स० १८२६ (वि० सं० १८८३) में एक नया अहदनामा होकर उसको अधिकार दिया गया, जिसके अनुसार उसको ८ लाख रुपये अंग्रेज़ी फ़ौज ख़र्च का सालाना देना पड़ा। ई० स० १८५३ (वि० सं० १९१०) में उसका देहान्त हो गया। उसके कोई पुत्र न होने से नागपुर का राज्य लॉर्ड डलहौज़ी ने अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

बाजीराव की मृत्यु होने पर राघोजी की विधवा स्त्री ने जानोजी (दूसरा) को ई० स० १८५५ में गोद लिया। ई० स० १८५७ (वि० सं० १९१४) के सिपाही-विद्रोह में इस वंश ने सरकार अंग्रेज़ी की ख़ैरख़्वाही की। इसलिये इस वंशवालों को सतारा के ज़िले में देवर का इलाक़ा और 'राजा बहादुर' का खिताब वंशपरंपरा के लिये मिला तथा २३३००० रुपये की वार्षिक पेन्शन मुक़र्रर कर दी गई। जानोजी के दो पुत्र राघोजीराव और लक्ष्मणराव हुए, जो विद्यमान हैं। राघोजीराव के दो पुत्र फतेहसिंहराव और जयसिंहराव हैं।

———

मद्रास इहाते के गुहिलवंशियों (सीसोदियों) के राज्य

तंजावर (तंजोर)

तंजोर के राजा भी उसी भोंसला वंश के हैं जिसमें प्रसिद्ध छत्रपति शिवाजी हुए। वहां पर पहले नायक वंश के राजा राज्य करते थे। उन्होंने बहुत से किले और विष्णुमंदिर बनाये। उस वंश के अन्तिम राजा पर मदुरा के नायक चौक्कनाथ ने ई० स० १६६२ (वि० सं० १७१६) में आक्रमण किया। बचाव की सूरत न देखकर वह अपने रणवास और राजमहल को नष्ट करने के बाद लड़ता हुआ मारा गया। उसका एक बालक पुत्र बचने पाया, जो बीजापुर के सुलतान के पास पहुंचा। सुलतान ने अपने सेनापति वेंकाजी को, जो छत्रपति शिवाजी का भाई था, उस बालक को उसका राज्य पीछा दिलाने के लिए तंजोर पर भेजा। उसने चौक्कनाथ से उसका राज्य छुड़ाकर उस बालक नायक को गद्दी पर विठा दिया, परन्तु ई० स० १६७४ (वि० सं० १७३१) के आसपास वह स्वयं वहां का स्वामी बन बैठा।

उसके मरने पर उसका पुत्र शाहजी ई० स० १६८२ (वि० सं० १७३६) में वहां का राजा हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण उसका भाई शरफोजी उसका उत्तराधिकारी हुआ। ई० स० १७२८ (वि० सं० १७८५) में शरफोजी का देहान्त हो गया तो उसका भाई तुकोजी उसका क्रमानुयायी हुआ। वह राजकार्य में अधिक निपुण और विद्यानुरागी था। उसके पीछे येकोजी (बाबा साहिब) राज्य का स्वामी हुआ। उसके निस्सन्तान होने से उसकी राणी सुजानबाई, जो बड़ी चतुर और धर्मनिष्ठ थी, राजकार्य चलाने लगी। उसने तीन वर्ष तक राज्य का प्रबन्ध किया। उस समय राज्य के लिए अनेक हक़दार खड़े हुए। अन्त में ई० स० १७३६ (वि० सं० १७६६) में काटराजा तंजोर का राजा बन बैठा, परन्तु दूसरे ही वर्ष तुकोजी का दूसरा पुत्र सयाजी गद्दी पर विठलाया गया, किन्तु वह नाममात्र का ही राजा रहा। तुकोजी के दासी-पुत्र प्रतापसिंह ने उससे राज्य छीन लिया। उसके समय में कर्नाटक के नवाब अन्वरुद्दीन ने उसपर चढ़ाई की तो सरकार अंग्रेज़ी ने बीच में

पड़कर राजा से नवाब को ४०००० रु० सालाना ख़िराज दिलाये जाने की शर्त पर आइन्दा के लिए सुलह करा दी। प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र तुलजा ने राज्य पाया। उसने वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में रामनाड़ पर चढ़ाई की, जो कर्नाटक के अधीन था। इसपर कर्नाटक के नवाब ने राजा पर फ़ौज भेजी, किन्तु बाद में सुलह होने पर राजा ने वेल्लम का क़िला और कुछ परगने नवाब को दे दिये। इसके बाद हैदरअली से सम्बन्ध होना पाया जाने पर तंजोर का राज्य सरकार अंग्रेज़ी ने छीन लिया, किन्तु वि० सं० १८३३ (ई० स० १७७६) में वापस दे दिया।

वि० सं० १८४४ (ई० स० १७८७) में तुलजा का देहान्त हो जाने पर उसका भाई अमरसिंह गद्दी पर बैठा। तुलजा ने शरफ़ू को गोद लिया था, परन्तु अमरसिंह ही राज्य का स्वामी बन बैठा। अन्त में अमरसिंह अलग कर दिया गया और शरफ़ू ही वास्तविक हक़दार माना गया, एवं अमरसिंह की पेंशन कर दी गई। शरफ़ू केवल नाममात्र का ही राजा रहा। उसका देहान्त वि० सं० १८८९ (ई० स० १८३२) में हुआ। इससे उसका पुत्र शिवाजी उसका उत्तराधिकारी हुआ जो लाऔलाद मरा, जिससे तंजोर का राज्य लॉर्ड डलहौज़ी ने अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

शिवाजी ने कई विवाह किये थे, किन्तु उसके कोई पुत्र न हुआ। उसकी विधवा राणी कामाक्षाबाई ने राज्य पाने का बड़ा प्रयत्न किया, जो असफल हुआ। उसकी एक दूसरी राणी से दो कन्याएं हुईं, जिनमें से एक तो मर गई और दूसरी विजयमोहना मुक्तांबा को सरकार अंग्रेज़ी ने 'तंजोर की कन्या' का ख़िताब, ७२००० रु० वार्षिक पेन्शन एवं १३ तोपों की सलामी का सम्मान दिया। उसकी कन्या लक्ष्मीबाई विद्यमान महाराजा सियाजी राव गायकवाड़ को ब्याही गई।

विज़ियानगरम्

विज़ियानगरम् मद्रास इहाते के उत्तरी हिस्से के विज़गपट्टम् ज़िले में एक बड़ी ज़मींदारी है। वहां के स्वामी भी गुहिलवंशी (सीसोदिया) हैं। ई० स० १८८३ (वि० सं० १९४०) में उक्त राज्य का एक छोटासा इतिहास विज़ियानगरम्

से प्रकाशित हुआ, जिससे पाया जाता है कि वहां के राजा गुहिलवंशी हैं। जब महाराजकुमारी विज़ियानगरम् का विवाह रींवा होना निश्चय हुआ उस समय तहक़ीक़ात होकर यह निश्चय हुआ कि उदयपुर और विज़ियानगरम् के राजा एक ही वंश के हैं। तत्सम्बन्धी काग़ज़ों पर उदयपुर के महाराणा शंभुसिंह और जयपुर के महाराजा रामसिंह की मोहर और दस्तख़त हैं।

वहां का प्राचीन इतिहास अंधकार में है। वहां के राजाओं का मूल-पुरुष माधववर्मा हुआ, उसके वंश में ई० स० १६५२ (वि० सं० १७०६) में पशुपति माधववर्मा नाम के एक पुरुष ने विज़गपट्टम् में प्रवेश कर अपना राज्य स्थापित किया एवं उसने तथा उसके वंशजों ने उसे बढ़ाया। उसके कई वर्ष बाद विजयरामराज हुआ, जो बहुत ही पराक्रमी एवं प्रसिद्ध था। वह फ्रेंच सेनापति जनरल बूसी का मित्र और सहायक था। ई० स० १७१० (वि० सं० १७६७) में उसका उत्तराधिकारी पेद्दविजयरामराज हुआ। उसने पोतनूर के बदले विज़ियानगरम् को अपनी राजधानी बनाया तथा राज्य का विस्तार बढ़ाया। उसने भी बूसी के साथ मित्रता की और ई० स० १७५७ (वि० सं० १८१४) में बोबिली के ज़मींदारों को परास्त कर उनकी राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु तीन ही दिन के बाद वह वहीं अपने डेरे में शत्रुओं के हाथ से मारा गया।

उसके बाद उसका पुत्र आनन्दराज उसका क्रमानुयायी हुआ। उसने फ्रेंच लोगों से सम्बन्ध विच्छेद कर विज़गपट्टम् लेकर अंग्रेज़ों को सौंप दिया। कर्नल फ़ोर्ड के साथ वह दक्षिण की लड़ाइयों में शामिल रहा, किन्तु लौटते समय मार्ग में उसका देहान्त हो गया, जिससे उसके दत्तक पुत्र विजयरामराज ने राज्य पाया। वह नाममात्र का राजा रहा। उसके सौतेले भाई सीताराम ने, जो बड़ा पराक्रमी था, आसपास के जागीरदारों को अधीन कर लिया। उसने कम्पनी की बड़ी सहायता की, किन्तु वह मद्रास बुला लिया गया, जहां से वह वापस कभी नहीं लौटा। उसका भाई (विजयरामराज) राज्य का काम योग्यता से नहीं कर सकता था, इसलिये सरकार ने उसे मसलपिट्टम् भेज दिया, जिसपर उसने सिर उठाया। अन्त में वह पद्मनाभम् की लड़ाई में मारा गया। उसका पुत्र नारायण बाबू ज़मींदारों की शरण में चला गया, किन्तु बाद में

कार्रवाई होने पर सरकार अंग्रेज़ी ने राज्य का अधिकांश ज़ब्त कर ११५७ गांव-वाले २४ परगने उसे दिये।

उसकी मृत्यु ई० स० १८४५ (वि० सं० १९०२) में काशी में हुई। उसका उत्तराधिकारी विजयराम गजपतिराज हुआ। उसने राज्यप्रबन्ध बड़ी कुशलता से किया, जिसके उपलक्ष्य में सरकार अंग्रेज़ी ने उसे महाराजा एवं के० सी० एस० आई० का खिताब प्रदान किया। उसका क्रमानुयायी उसका पुत्र आनंद-राज (दूसरा) हुआ। उसको भी सरकार ने महाराजा एवं जी० सी० आई० ई० के खिताब से सम्मानित किया। उसकी मृत्यु ई० स० १८९७ (वि० सं० १९५४) में हुई। उसके बाद उसके पुत्र राजा पशुपतिविजयराम गजपतिराज ने राज्य पाया, किन्तु उसके नाबालिग़ होने के कारण राज्य का प्रबन्ध सरकार अंग्रेज़ी-द्वारा होता रहा। ई० स० १९०४ (वि० सं० १९६१) में उसे पूर्णाधिकार प्राप्त हुए।

नेपाल का राज्य

नेपाल के महाराजाओं का मूलपुरुष चित्तोड़ के रावल समरसिंह के ज्येष्ठ कुंवर रत्नसिंह का छोटा भाई कुंभकरण माना जाता है। रावल रत्नसिंह के समय दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तोड़ पर आक्रमण कर वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में उसे ले लिया और अपने बड़े शाहज़ादे खिजरखां को वहां का शासक नियत किया। चित्तोड़ का राज्य छूट जाने से रत्नसिंह के भाई-बेटे इधर उधर चले गये। उसके भाई कुंभकर्ण के वंशज समय पाकर कमाऊं के पहाड़ी प्रदेश में होते हुए पहले पाल्पा में जा बसे, फिर क्रमशः वे अपना राज्य बढ़ाने लगे और पृथ्वीनारायणशाह ने नेपाल को अपने हस्तगत कर लिया[1]। कुंभकर्ण से लगाकर नरभूपालशाह तक का इतिहास बहुधा अंधकार में ही है। पृथ्वीनारायणशाह के वंशज महाराजाधिराज राजेन्द्रविक्रमशाह ने 'राजकल्पद्रुम' नाम का तंत्र ग्रन्थ लिखा, जिसमें विक्रम (जिल्लराज का पिता) से लगाकर अपने समय तक की वंशावली दी है[2], जो वीरविनोद में दी हुई वंशावली से बहुत कुछ मिलती हुई है। उक्त पुस्तक में उसने अपने पूर्वज विक्रम का चित्रकूट (चित्तोड़) से आना बतलाया है।

---

(१) कुंभकर्ण से लगाकर पृथ्वीनारायणशाह तक की नामावली वीरविनोद में इस तरह लिखी मिलती है—

(१) कुंभकर्ण। (२) अयुत। (३) परावर्म। (४) कविवर्म। (५) यशवर्म। (६) उदुम्बरराय। (७) महराय। (८) जिल्लराय। (९) अजलराय। (१०) अटलराय। (११) तुत्थाराय। (१२) भामसीराय। (१३) हरिराय। (१४) ब्रह्मनिकराय। (१५) मनमन्थराय। (१६) भूपालखान। (१७) मीचाखान। (१८) जयन्तखान। (१९) सूर्यखान। (२०) मियाखान। (२१) विचित्रखान। (२२) जगदेवखान। (२३) कुलमण्डनशाह। (२४) आसोवनशाह। (२५) द्रव्यशाह। (२६) पुरन्दरशाह। (२७) पूर्णशाह। (२८) रामशाह। (२९) डंबरशाह। (३०) श्रीकृष्णशाह। (३१) पृथ्वीपतिशाह। (३२) वीरभद्रशाह। (३३) नरभूपालशाह और (३४) पृथ्वीनारायणशाह।

(२) राजकल्पद्रुम के अनुसार वंशावली इस प्रकार है—

(१) विक्रम। (२) जिल्लराज। (३) अजित। (४) अटलराज। (५) तुथाराज। (६) विमिकिराज। (७) हरिराज। (८) श्रीब्रह्मराज। (९) मन्मथ। (१०) जैनखान। (११) सूर्यखान। (१२) मीचाखान। (१३) विचित्र। (१४) ब्रह्मशाही। (१५) द्रव्यशाही। (१६)

पृथ्वीनारायणशाह ने अपना इलाक़ा बढ़ाना शुरू किया और वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६८) में उसने नेपाल पर चढ़ाई की। कुछ समय तक लड़ाई होने के बाद उसने काठमांडू को लेकर उसे अपनी राजधानी बनाया। वह नेपाल का गुहिलवंशी पहला महाराजाधिराज हुआ। फिर उसने पाटन और भक्तपुर (भाटगांव) आदि के राज्य छीनकर अपने राज्य को बहुत बढ़ाया। इस कार्य में उसके मुख्य सेनापति राणा रामकृष्ण ने, जो उसी (गुहिल) वंश का था, बड़ी वीरता एवं स्वामिभक्ति बतलाई, जिससे प्रसन्न होकर उस (पृथ्वीनारायणशाह) ने उसके पीछे उसके पुत्र राणा रणजीतकुमार को अपने मन्त्रियों में से एक नियत किया। वि० सं० १८२८ (ई० स० १७७१) में वह वीर राजा नवाकोट के जंगल में शिकार खेलते समय एक शेर से मारा गया। उसके दो पुत्र सिंहप्रतापशाह और बहादुरशाह थे।

सिंहप्रतापशाह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। वह भी अपने पिता के समान वीर था। उसने गद्दी पर बैठने के बाद अपने छोटे भाई को देश से निकाल दिया। उसके समय राणा रणजीतकुमार ने सोमेश्वर और उपद्रंग के प्रांतों को जीतकर नेपाल राज्य में मिलाया। उस (सिंहप्रतापशाह) के दो पुत्र रणबहादुरशाह और शेरबहादुरशाह हुए। वि० सं० १८३२ (ई० स० १७७५) में उसका ज्येष्ठ पुत्र रणबहादुरशाह, जो बालक था, नेपाल का स्वामी हुआ। उसके बालक होने के कारण बहादुरशाह, जो नेपाल से निकाला हुआ बेतिया में रहता था, सिंहप्रतापशाह की मृत्यु के समाचार पाते ही काठमांडू में आकर मन्त्री के तौर पर राज्य का काम करने लगा, परन्तु रणबहादुरशाह की माता राजेन्द्रलक्ष्मी से सदा अनबन रहने के कारण वह फिर राज्य से निकाल दिया गया और राज्य का काम राजमाता चलाने लगी। वह बड़ी वीर प्रकृति की और नीति-कुशल थी। उसके समय राणा रणजीतकुमार ने गोरखा राज्य से पश्चिम के पाल्पा, तन्हू, लमजंग और

पूर्णशाही। (१७) रामशाही। (१८) डंबर। (१९) कृष्णशाही। (२०) रुद्रशाह। (२१) पृथ्वीपतिशाही। (२२) वीरभद्र। (२३) नरभूपालशाह और (२४) पृथ्वीनारायणशाह।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री; केटलॉग ऑफ़ पाम लीफ़ एण्ड सिलेक्टेड पेपर मैनुस्क्रिप्ट्स; दरबार लाइब्रेरी नेपाल; पृ० २४२-४३।

काशकी आदि के कई छोटे छोटे राज्य जीतकर नेपाल में मिला लिये। वि० सं० १८४३ (ई० स० १७८६) में उस (राजमाता) के देहान्त होने के कारण बहादुरशाह फिर नेपाल में आया और रणबहादुरशाह के अतालीक के तौर पर राज्य का प्रबन्ध करने लगा। उसने अपने नज़दीक के पहाड़ी जाति के क्षत्रियों की रियासतों को नेपाल में मिला लिया। उसके समय बेतिया की तराई का प्रदेश, जिसको वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में कप्तान किन्लॉक ने नेपाल के पहले के राजाओं से जीतकर अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया था, पीछा नेपाल राज्य में मिल गया। इसके बाद वि० सं० १८४६ (ई० स० १७६२) में नेपाल राज्य की सरकार अंग्रेज़ी से व्यापारिक संधि हुई, परन्तु उसका पालन न हुआ। रणबहादुरशाह के समय चीन साम्राज्य के अधीनस्थ तिब्बत देश पर चढ़ाई हुई और वहां का एक नगर लूट लिया गया, जिसपर चीन की तरफ़ से तुत्थांग की मातहती में ७०००० के लगभग सेना नेपाल को रवाना हुई। इस सेना के साथ की लड़ाइयों में नेपालवालों की बड़ी हार हुई। उस समय राणा रणजीतकुमार ने बड़ी वीरता बतलाई। अन्त में प्रति पांचवें वर्ष खिराज के तौर पर चीन के बादशाह के पास भेट भेजने की शर्त पर चीनवालों से सुलह हो गई। फिर कमाऊं के राजा से लड़ाई हुई, जिसमें राणा रणजीतसिंह वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

रणबहादुरशाह ने अन्त में बहादुरशाह को क़ैद कर चितवन की झाड़ी में भेज दिया, जहां एकाएक ज्वर होने से वह मर गया। उस (रणबहादुरशाह) को अपनी एक महाराणी पर अधिक प्रेम था, जिससे उसकी मृत्यु होने पर उसका चित्त बहुत ही खिन्न रहने लगा तो उसने काशीवास करना निश्चय कर वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में अपने ज्येष्ठ पुत्र गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह को राज्य का स्वामी बनाकर काशी को प्रस्थान कर दिया। कुछ समय तक काशी में रहने के बाद उसने फिर नेपाल को प्रस्थान किया और किसी तरह वहां पहुंचकर उसने राजा तो अपने पुत्र को ही रखा, किन्तु राज्य का कार्य फिर अपने हाथ में ले लिया। उसने देवालयों पर हस्ताक्षेप किया और ब्राह्मणों को दी हुई भूमि को खालसा कर लिया। उसकी सख़्ती से तंग आकर कुछ रियासती लोगों ने उस महाराजा को मरवाने का प्रपञ्च रचा। उन्होंने शेरबहादुर को

उसमें अग्रणी किया। इसकी खबर पाते ही उसने उस(शेरबहादुर)को उस सेना में जाने की आज्ञा दी जो पश्चिमी इलाके में भेजी गई थी। उसने उस आज्ञा का पालन न कर सख़्ती के साथ उत्तर दिया, जिसपर महाराजा ने उसको मार डालने की आज्ञा दी तो क्रुद्ध होकर उसने महाराजा की छाती में कटार घुसेड़ दिया, जिससे उसका तो देहान्त हो गया, किन्तु राणा रणजीतकुमार के ज्येष्ठ पुत्र बालनरसिंह ने तत्क्षण उसको भी वहीं मार डाला।

गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह के, जो अपने पिता की जीवित अवस्था से ही राज्य करता आ रहा था, समय प्रधान मंत्री भीमसिंह थापा के भाई नैनसिंह की अध्यक्षता में कोटकांगड़े पर सेना भेजी गई। वहां के राजा संसारचन्द्र ने अपना राज्य छीने जाने के भय से अपनी पुत्री का विवाह महाराजा के साथ करना चाहा और ख़िराज देना भी स्वीकार किया, किन्तु ये बातें नेपाल के अधिकारियों ने स्वीकार न कीं और युद्ध छिड़ गया, जिसमें संसारचन्द्र का सेनापति कीर्तिसिंह मारा गया और उसकी सेना भाग निकली। नैनसिंह थापा सालकांगड़े पर अधिकार करने के लिये शहर में घुसा, जहां वह कीर्तिसिंह की स्त्री के हाथ की गोली से मारा गया। उसके स्थान पर अमरसिंह थापा नियत हुआ। उसने कोटकांगड़े को ले लिया और संसारचन्द्र को वहां से निकाल दिया। इसपर वह वहां से पंजाब के राजा रणजीतसिंह से सहायता ले आया और नेपालियों से फिर लड़ा, जिससे उनको पीछे हटना पड़ा और अन्त में सुलह होकर सालकांगड़े तक नेपाल की सीमा स्थिर हुई।

संसारचन्द्र से सुलह हो जाने के पश्चात् अमरसिंह ने दक्षिणी सीमा के पास अंग्रेज़ों से लड़ाई करना चाहा। इसपर अंग्रेज़ों ने अमरसिंह थापा के पास अपना एलची भेजा, परन्तु नेपालवालों ने सुलह करना स्वीकार न कर अंग्रेज़ी सेना से लड़ाई ठान ली। इसपर जनरल ऑक्टरलोनी ७०००० सेना सहित लड़ने को नियत किया गया। उसने जनरल गिलेस्पी (Gillespie) को पाल्पा की तरफ़ वज़ीरसिंह (नैनसिंह थापा का पुत्र) से मुक़ाबला करने को भेजा और आप अमरसिंह से लड़ने के लिये सालकांगड़ा की तरफ़ गया। वज़ीरसिंह की साथ की लड़ाई में अंग्रेज़ी सेना की हार हुई, जनरल गिलेस्पी मारा गया और रही सही सेना जनरल ऑक्टरलोनी के पास लौट गई। जनरल ऑक्टर-

लोनी को भी सालकांगड़ा की तरफ़ की लड़ाई में हार जाने के कारण अंग्रेज़ी सीमा में लौटना पड़ा। कुछ समय बाद उसी की मातहती में नेपाल पर दुबारा सेना भेजी गई। उस समय उसने अपनी सेना के अलग अलग टुकड़े कर अलग अलग स्थानों पर भेजे और स्वयं अमरसिंह की तरफ़ बढ़ा। अमरसिंह की हार हुई और नेपाली सेना को सालकांगड़ा छोड़कर काली नदी तक हट जाना पड़ा। जनरल ऑक्टरलोनी काठमांडू से १८ कोस इस तरफ़ चीरवा की घाटी तक चला गया। वहां सरदार रणवीरसिंह थापा से उसकी लड़ाई हुई, जिसमें नेपाली सेना की हार हुई। अन्त में वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१६) में सुलह हुई, जिसमें काली नदी दोनों के बीच की सीमा स्थिर हुई और तराई का प्रदेश नेपालवालों को दे दिया गया। फिर भीमसेन थापा के भाई रणवीर-सिंह की मारफ़त जनरल ऑक्टरलोनी के उद्योग से १०० वर्ष तक के लिये परस्पर की मैत्री का अहदनामा हुआ और अंग्रेज़ी रेज़िडेन्ट नेपाल में एवं नेपाली वकील कलकत्ते में रहने लगा।

इसके थोड़े ही समय पीछे गीर्वाणयुद्धविक्रमशाह का २१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। उक्त महाराजाधिराज का एक ही पुत्र राजेन्द्र-विक्रमशाह था, जिसकी अवस्था उस समय अनुमानतः दो वर्ष की थी। राजे-न्द्रविक्रमशाह की बाल्यावस्था के कारण राज्य का काम भीमसेन थापा बड़ी योग्यता से करता रहा। वह एक बड़ा योग्य पुरुष था और उसने राज्य की आमद और सेना की बहुत कुछ उन्नति की।

इस समय थापा लोगों का प्रभाव बहुत कुछ बढ़ा हुआ था और पांडे लोग उनके विरोधी थे। इन दोनों दलों के बीच संघर्ष चला और वि० सं० १८६४ (ई० स० १८३७) में भीमसिंह थापा पर मिथ्या दोष लगाया जाकर वह क़ैद किया गया, जिससे उसे आत्मघात करना पड़ा। इसपर उसका भतीजा मातवरसिंह थापा पंजाब को चला गया। वि० सं० १८६६ (ई० स० १८३९) में रणजंग पांडे वज़ीर नियत हुआ। उस समय उसने बड़ी महारानी की सलाह के अनुसार रुपये एकत्र करने के लिये रियासती लोगों पर ज़ुल्म करना शुरू किया और सेना की तनख़्वाह घटाना चाहा। इसपर सेना बिगड़ उठी और उस(सेना)ने महाराजाधिराज से उसकी शिकायत की, परन्तु उस(महाराजा)ने टालमटूल का ही उत्तर दिया। रणजंग

पांडे पागलसा होगया, जिससे राज्य का काम रघुनाथ पंडित और फ़तेहजंग चौतरिया[1] के सुपुर्द हुआ। इन लोगों के कामों में महाराजाधिराज और महाराजकुमार सुरेन्द्रविक्रमशाह के, जिसकी उम्र १२ वर्ष की थी, हस्ताक्षेप करने के कारण राज्य का प्रबन्ध शिथिल होता गया। महाराजकुमार पाण्डे लोगों की सलाह पर चलता था। बड़ी महाराणी की मृत्यु के पीछे छोटी महाराणी भी राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप करने लगी। रघुनाथ पण्डित महाराणी का सलाहकार रहा। कुछ समय पीछे महाराजाधिराज को पदच्युत करने का प्रपंच रचा गया। इस समय पाल्पा के सूबेदार गुरुप्रसादशाह ने, जो महाराजाधिराज का रिश्तेदार था, राज्य के कुल सरदारों को इकट्ठा कर एक बड़ी सभा की, जिसमें सब लोगों की तरफ़ से यह कहा गया कि महाराजकुमार की ओर से हम पर बड़ा ज़ुल्म होता है और महाराजाधिराज उसको नहीं रोकते, इसलिये उनसे प्रार्थना की जावे कि वे प्रजा की जान-माल की रक्षा और राज्य का उत्तम प्रबन्ध करें। महाराजाधिराज का विचार युवराज को अपनी विद्यमानता में ही महाराजा बनाने का था और महाराणी चाहती थी कि महाराजाधिराज के पीछे मेरे दो पुत्रों में से एक राजा बने। महाराजाधिराज में राज्यप्रबन्ध करने की कुशलता न थी और न वह एक बात पर दृढ़ रहता था, इसलिये राज्य की दशा शोचनीय हो गई। यह देखकर वि० सं० १८६६ (ई० स० १८४२) में महाराजाधिराज ने मातबरसिंह को नेपाल में वापस बुला लिया। उसने काठमांडू में जाकर अपने चाचा भीमसिंह पर मिथ्या दोषारोपण करानेवालों को सज़ा दिलाना चाहा। उस बात की तहक़ीक़ात होकर कई एक को सज़ा दी गई और थापा लोगों का ज़ब्त किया हुआ माल उन्हें लौटा दिया गया। फिर मातबरसिंह वज़ीर नियत हुआ। युवराज की यह इच्छा थी कि वह अपने पिता को पदच्युत कर राज्य का कुल काम अपने हाथ में ले, परन्तु उसकी यह इच्छा पूरी न होने के कारण वह काठमाण्डू छोड़कर तराई में जा रहा। महाराणी राज्य का कुल काम अपने हाथ में लेने का विचार कर रही थी। इस बात के ज्ञात होते ही मातबरसिंह ने चाहा कि महाराणी का दखल बिलकुल उठा देना चाहिये। इस विचार से वह युवराज को वापस ले आया, जिससे महाराणी उससे अप्रसन्न हो गई। उसने महाराजा-

(१) नेपाल में महाराजा के ख़ानदानी रिश्तेदार चौतरिया कहलाते हैं।

धिराज को बहकाकर उससे मातबरसिंह को मरवाना स्वीकार करा लिया। महाराणी ने सीढ़ी से गिरजाने के बहाने से मातबरसिंह को अपने पास बुलाया और जब उसने सलाम करने को सिर झुकाया उस वक़्त पर्दे की ओट से बंदूकें चलीं और वह वहीं मारा गया। उपर्युक्त बालनरसिंह के बेटे जंगबहादुर ने उसी वक़्त महल से बाहर आकर मातबरसिंह के बाल-बच्चों को उनके माल असबाब सहित उनके घर से अपने पास बुला लिया और प्रातःकाल होते ही उनको वहां से अन्यत्र रवाना कर दिया।

मातबरसिंह के मारे जाने के बाद फ़तेहजंग मुख्य मंत्री बनाया गया और गगनसिंह खवास तथा जंगबहादुर उसके सलाहकार नियत हुए। महाराणी को गगनसिंह खवास पर स्नेह और बड़ा विश्वास था, जिससे वह उसी के कहने के अनुसार काम करती थी, इसलिये उसको मारने के लिये महाराजाधिराज ने एक आदमी नियत किया। उसने उसके मकान पर जाकर उसको गोली से मार डाला। यह खबर उसके पुत्र वज़ीरसिंह ने महाराणी के पास पहुंचाई तो उसने उसकी जांच कराने के लिये ब्युगल बजवाया, जिसकी आवाज़ सुनते ही जंगबहादुर अपने भाइयों तथा तीन पल्टनों सहित वहां उपस्थित हुआ। महाराणी ने उसको तहक़ीक़ात करने की आज्ञा दी, तो उसने निवेदन किया कि अगर सब सरदार तहक़ीक़ात के समय शस्त्र छोड़कर आवें तो तहक़ीक़ात हो सकती है। महाराणी ने उसे स्वीकार किया, जिसपर जंगबहादुर अपनी तीन पल्टनों का बाड़ा बांधकर आप तो महाराणी के पास बैठ गया और सेना के बीच अपने भाई बंबहादुर, बदरीनरसिंह, कृष्णबहादुर, रणोद्दीपसिंह, जगत्शमशेर आदि को तहक़ीक़ात के लिये बिठा दिया। जब जांच शुरू हुई तब बंबहादुर और कृष्णबहादुर ने कहा कि गगनसिंह को चौतरिया लोगों ने मारा या मरवाया होगा। इसपर फ़तेहजंग के बेटे खड्गविक्रमशाह ने क्रोध कर कृष्णबहादुर और बंबहादुर पर अपने छुरे का प्रहार किया, इसपर कोलाहल मच गया और महाराणी ने कुल चौतरिया लोगों को क़त्ल करने की आज्ञा दी, जिससे २७ बड़े बड़े अफ़सर और बहुतसे आदमी मारे गये। इसके बाद महाराणी ने राज्य का काम जंगबहादुर को सौंप दिया। महाराणी ने युवराज सुरेन्द्रविक्रमशाह और उसके भाई उपेन्द्रविक्रमशाह को क़ैद करा लिया,

परन्तु वज़ीर जंगबहादुर युवराज की जान बचाना चाहता था। इसपर महाराणी ने जंगबहादुर को अपने पास बुलाकर मरवा डालने और वीरध्वज को मंत्री बनाने का उद्योग किया, जो निष्फल हुआ।

महाराजाधिराज और युवराज ने उस (जंगबहादुर) पर राज्य की रक्षा करने और युवराज के शत्रुओं को नष्ट करने का भार छोड़ा और महाराणी से कहलाया कि वह अपने दोनों पुत्रों सहित नेपाल से बाहर चली जावे। महाराणी ने अन्य कोई उपाय न देखकर महाराजाधिराज को अपने साथ चलने को तैयार किया, जिससे महाराजाधिराज, महाराणी और उसके दोनों पुत्र काशी को चले गये।

युवराज सुरेन्द्रविक्रमशाह नेपाल का महाराजाधिराज हुआ और उसने जंगबहादुर को पूरे अधिकार के साथ वज़ीर नियत किया। कुछ दिनों पीछे महाराणी की सलाह के अनुसार महाराजाधिराज नेपाल में जाने की इच्छा कर वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में सिंगोली नामक स्थान पर पहुंचा और महाराणी समेत नेपाल में पहुंचने का उद्योग करने लगा। इसपर युवराज और जंगबहादुर ने उससे कहलाया कि आप नेपाल में आना चाहें तो अकेले आ सकते हैं, परन्तु महाराणी वग़ैरह को छोड़कर वहां जाना उसने स्वीकार न किया और वह जंगबहादुर को मरवाने का उद्योग करने लगा। उस विषय का एक पत्र नेपाली अफ़सरों और सैनिकों के पास एक पुरुष के साथ भेजा गया जो मार्ग में ही पकड़ा गया और जंगबहादुर ने उसे अफ़सरों और सैनिकों को सुनाकर कहा कि आप चाहें तो मुझे मार डालें मैं मरने को तैयार हूं। इसपर उन्होंने एकमत होकर कहा कि महाराजाधिराज की आज्ञा पालन के योग्य नहीं है। फिर उनके विचारानुसार महाराजाधिराज को पकड़ने के लिये कप्तान सनकसिंह सेना सहित भेजा गया। वह महाराजाधिराज को वि० सं० १८९४ (ई० स० १८३७) में अपने साथ राजधानी में ले आया। उसके साथी गुरुप्रसादशाह आदि मारे गये और बाक़ी के भाग गये। जब वह काठमाण्डू लाया गया तो उसकी प्रतिष्ठा में कोई कमी न की गई, किन्तु वह भाटगांव के महलों में रखा गया। बाद में वह उसकी इच्छानुसार काठमाण्डू में लाया गया, परन्तु राजकार्य में उसका कोई दखल न रहा।

उक्त महाराजाधिराज के समय जंगबहादुर का प्रभाव बहुत कुछ बढ़ा और राज्य का सारा काम उसी की इच्छा के अनुसार होता रहा। कुछ दिनों तक महाराजाधिराज का भाई उपेन्द्रविक्रमशाह भी राज्य का कुछ काम करता रहा। उसके समय पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह की राणी चन्द्रकुंवरी, जो चुनारगढ़ में नज़रबंद थी, भागकर काठमांडू चली गई तो महाराजाधिराज ने उसके खानपान आदि के खर्च के अतिरिक्त उसके लिये ८०० रु० माहवार हाथखर्च के कर दिये।

वि० सं० १६०६ (ई० स० १८५०) में महाराणी विक्टोरिया की सालगिरह पर जंगबहादुर अपने भाई कर्नल जगत्शमशेरजंग, धीरशमशेरजंग तथा कप्तान रणमिहरसिंह आदि अधिकारियों सहित नेपाल राज्य की तरफ़ से इंगलैंड गया और अङ्गरेज़ों के साथ दोस्ती बढ़ाना शुरू किया। उसकी इस अनुपस्थिति में राज्य का काम उसका भाई बंबहादुर चलाता रहा।

वि० सं० १६०७ (ई० स० १८५१) में जंगबहादुर इंगलैंड से वापस आया और महाराणी विक्टोरिया की तरफ़ से एक सम्मानपत्र महाराजाधिराज के लिये लाया, जो दरबार में २१ तोपों की सलामी होकर पढ़ा गया। फिर कप्तान करवीर खत्री ने महाराजा के छोटे भाई उपेन्द्रविक्रमशाह, जंगबहादुर के भाई बद्रीनरसिंह आदि को कहा कि जंगबहादुर ने इंगलैंड में रहते समय खानपान में धर्म के विरुद्ध आचरण किया है, इसलिये उसको मरवा डालना चाहिये। यह बात बंबहादुर को मालूम होते ही उसने जंगबहादुर से कही तो उसने उन लोगों को अंग्रेज़ों के द्वारा पांच वर्ष तक के लिये प्रयाग के जेलखाने में भिजवा दिया।

वि० सं० १६११ (ई० स० १८५४) में नेपाल के किसी सौदागर की लासा में लेनदेन के बारे में व्यापारियों से तक़रार हुई, जिसमें नेपाली सौदागरों का बहुतसा माल लूट लिया गया और एक दो आदमी भी मारे गये। इसका वहां कोई इन्साफ़ न हुआ तब नेपाल की तरफ़ से उसकी हानि की पूर्ति करने को लिखा गया, परन्तु उसपर कुछ ध्यान न दिया गया तो तिब्बत की सीमा पर बंबहादुर, धीरशमशेरजंग और जगत्शमशेरजंग की अध्यक्षता में सेना भेजी गई, जो आगे बढ़ती गई। लड़ाई होने पर तिब्बतवालों की हार हुई और

उनकी बहुतसी भूमि पर नेपालवालों का अधिकार हो गया। चीनी अंबान (प्रतिनिधि) ने आपस में सुलह कराने का उद्योग किया, परन्तु नेपालवालों की मांग बहुत ज्यादा होने के कारण वह स्वीकार न हुआ तो उस (अंबान) ने कहा कि मैं चीन से बहुत बड़ी सेना मंगवाकर नेपाल को नष्ट करा दूंगा। इस धमकी का जंगबहादुर पर कुछ भी असर न हुआ और लड़ाई होती रही। अन्त में तिब्बतवालों ने १०००० रु० सालाना नेपाल के महाराजा को देना, नेपाली व्यापारियों के माल पर कुछ भी महसूल न लेना और नेपाली व्यापारियों के मुक़द्दमे फ़ैसल करने के लिये तिब्बत में नेपाली रेज़िडेन्ट रखने की शर्त पर सुलह कर ली।

वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५६) में जंगबहादुर ने वज़ीर का काम अपने छोटे भाई बंबहादुर को सौंप दिया, जिसपर महाराजाधिराज ने उस (जंगबहादुर) को 'महाराजा' का ख़िताब और १००००० रु० सालाना आमद के काशकी और लमजंग के दो सूबे प्रदान किये। वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में बंबहादुर का देहान्त होनेपर जंगबहादुर को वज़ीर का काम फिर अपने हाथ में लेना पड़ा।

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) के सिपाही-विद्रोह के समय जंगबहादुर अपने भाई रणोदीपसिंह और धीरशमशेरजंग तथा १२००० नेपाली सेना के साथ सरकार अंग्रेज़ी की सहायता के लिए हिन्दुस्तान में आया। इस सेना की सहायता से अंग्रेज़ों ने गोरखपुर और लखनऊ पीछे ले लिये और उधर के विद्रोहियों को दबाया। इसके उपलक्ष्य में जंगबहादुर को सरकार अंग्रेज़ी से जी० सी० बी० की उपाधि मिली और वि० सं० १९१७ (ई० स० १८६०) में नेपाल को अवध की सीमा की तरफ़ का पर्वतीय प्रदेश वापस दे दिया गया। वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७४) में सरकार अंग्रेज़ी की ओर से जंगबहादुर को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब और १९ तोपों की ज़ाती सलामी का सम्मान प्राप्त हुआ।

वि० सं० १९३३ (ई० सं० १८७७) के शीतकाल में जंगबहादुर अपने भाई जगत्शमशेरजंग के बेटे जनरल अमरजंग तथा ज़नाना सहित शिकार के लिए तराई में गया, जहां नेपाल से ४० कोस दूर बाघमती नदी के किनारे

पत्थरघटा नामक स्थान पर दस्त लगने से फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १८७७ ता० २५ फरवरी) को उसका देहान्त हुआ। जंगबहादुर बड़ा ही साहसी, वीर, युद्धकुशल, नीति-निपुण और राज्य का सच्चा हितचिन्तक था। उसके समय में नेपाल राज्य की बहुत कुछ उन्नति हुई। उसके अनेक शत्रु होते हुए भी उसने निर्भीक होकर काम किया और उनके एक भी षड्यन्त्र को चलने न दिया। उसने जीवनपर्यन्त निस्वार्थभाव से राजा, प्रजा और देश की सेवा की और अपने सद्गुणों के कारण वह राजा और प्रजा दोनों का प्रीतिपात्र बना रहा।

उसकी मृत्यु के बाद उसके भाइयों ने उसका बेटा जगत्जंग वज़ीर न बने यह सोचकर उसके भाई रणोद्दीपसिंह को महाराजाधिराज से कहकर वज़ीर बनवाया और राज्य का सब काम वह तथा उसके भाई जगत्शमशेरजंग और धीरशमशेरजंग करने लगे। महाराजकुमार त्रैलोक्यविक्रमशाह उन लोगों के काम में हस्ताक्षेप करने लगा, जो उनको सहन न हुआ। इसपर उनको मरवाने का प्रपंच रचा गया, जो निष्फल हुआ। वि० सं० १९३४ चैत्र वदि १२ (ता० ३० मार्च ई० स० १८७८) को युवराज का अचानक देहान्त हो गया।

युवराज की मृत्यु के पीछे रणोद्दीपसिंह ने उसके सलाहकारों के पद में कमी करना और उनका अपमान करना शुरू किया, जिससे कई लोगों ने अप्रसन्न होकर छोटे कुंवर नगेन्द्रविक्रमशाह से सलाह कर रणोद्दीपसिंह को मारने तथा श्रीविक्रम थापा को वज़ीर बनाने का उद्योग किया। इन लोगों में जंगबहादुर का पुत्र पद्मजंग भी शामिल था। त्रैलोक्यविक्रमशाह की राणियों ने जगदीश, रामेश्वर और द्वारका की यात्रा के लिए प्रस्थान किया उस वक़्त रणोद्दीपसिंह उनके साथ था। उनके जगदीश व रामेश्वर से दलबल सहित बंबई पहुंचने पर उनको महाराजाधिराज सुरेन्द्रविक्रमशाह की बीमारी के समाचार मिलते ही वे सब नेपाल चले गये। उनके वहां पहुंचने के बाद वि० सं० १९३८ ज्येष्ठ शु० १५ (ई० स० १८८१ ता० १२ जून) को सुरेन्द्रविक्रमशाह की मृत्यु हो गई और उसका ७ वर्ष का बालक पौत्र पृथ्वीवीरविक्रमशाह नेपाल का स्वामी हुआ। उसकी बाल्यावस्था के समय रणोद्दीपसिंह आदि राज्य का काम करने लगे, किन्तु नगेन्द्रविक्रमशाह आदि ने रणोद्दीपसिंह आदि को

मारने और दूसरा वज़ीर नियत करने का उद्योग किया। इस षड्यन्त्र में कर्नल श्रीविक्रम थापा, कर्नल अमरविक्रम थापा, कर्नल इन्द्रसिंह आदि कई फ़ौजी अफ़सर शरीक थे। इसकी सूचना गगनसिंह खवास के पोते उत्तरध्वज ने रणोद्दीपसिंह को दी, जिसपर उन षड्यन्त्रकारियों में से २० से अधिक पुरुष क़त्ल किये गये और कई एक पाल्पा में क़ैद किये गये। कुंवर नगेन्द्रविक्रमशाह, जनरल बंविक्रम और जनरल पद्मजंग भी क़ैद किये गये। जगत्‌जंग पर इस षड्यन्त्र में शरीक होने का सन्देह किया गया, परन्तु वह हिन्दुस्तान में होने से क़ैद नहीं किया जा सका। रणोद्दीपसिंह ने उसके पास तसल्ली का परवाना भेजकर उसे नेपाल में बुला लिया और उसके वहां पहुंचते ही वह क़ैद कर लिया गया, लेकिन कुछ दिनों बाद वह छूट गया। फिर कुछ समय तक रणोद्दीपसिंह ने निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार काम किया। इसके बाद वह जगत्‌जंग को राज्य का काम सौंपकर तीर्थयात्रा करने को तैयार हुआ। इस बात से अप्रसन्न होकर महाराजाधिराज की माता ने उसकी रवानगी से एक दिन पहले उसको, जगत्‌जंग को और उसके बेटे युद्धप्रतापजंग को वि० सं० १९४२ (ई० स० १८८५) में मरवा डाला। रणोद्दीपसिंह के मारे जाने के बाद वज़ीर का काम धीरशमशेरजंग के बड़े बेटे वीरशमशेरजंग के सुपुर्द हुआ।

उसके समय में शान्ति रही, जिससे राज्य में बहुत कुछ उन्नति हुई। उसने काठमांडू और भाटगांव में नल-द्वारा जल पहुंचाने का प्रबन्ध किया, प्रजा के लिए अस्तपाल और पाठशालाएं खोलीं और अच्छे अच्छे भवन बनवाये। उसने अंग्रेज़ों के साथ की मैत्री को अच्छी तरह निभाया और अंग्रेज़ी सेना में गोरखों को भरती कराया। उसका देहान्त वि० सं० १९५८ (ई० स० १९०१) में हुआ। उसके बाद उसका भाई देवशमशेरजंग वज़ीर बना, परन्तु तीन ही महीनों पीछे उसके भाई चन्द्रशमशेरजंग ने उसको पदच्युत कर दिया। वह (चन्द्रशमशेरजंग) अपने भाई व अन्य राज्यकर्मचारियों सहित ई० स० १९०३ के देहली दरबार में सरकार अंग्रेज़ी-द्वारा निमन्त्रित होकर उपस्थित हुआ। उसके समय में नेपाल राज्य और अंग्रेज़ों के बीच का घनिष्ठ संबन्ध पूर्ववत् बना रहा। महाराजाधिराज पृथ्वीवीरविक्रमशाह का देहान्त ११ दिसम्बर ई० स० १९११ को हुआ।

उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र त्रिभुवनवीरविक्रमशाह हुआ। उसका भी प्रधान मन्त्री चन्द्रशमशेरजंग रहा।

उसने राज्य के प्रत्येक विभाग में बहुत कुछ सुधार किया। न्याय के लिए हाईकोर्ट एवं प्रिवी कौंसिल जैसी अदालत कायम की और उच्च शिक्षा के लिए त्रिभुवनचन्द्र कॉलेज स्थापित किया, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। इसके अतिरिक्त वैद्यक, क़ानून, व्यापार आदि की पढ़ाई की व्यवस्था भी उसने की। उसको सरकार अंग्रेज़ी से जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० एम० जी०, जी० सी० वी० ओ०, डी० सी० एल० (ऑक्सफोर्ड) की पदवियां मिलीं और अंग्रेज़ी सेना में लेफ्टिनेन्ट जनरल (Honorary) का पद रहा तथा चीन राज्य की ओर से भी उसको एक लम्बी चौड़ी उपाधि[1] मिली। उसके पीछे राणा भीमशमशेरजंग जी० सी० एस० आई०, के० सी० वी० ओ० नेपाल के प्रधान-मन्त्री और सेनापति हुए। इनको ता० १ जनवरी ई० स० १९३२ को भारत सम्राट् की तरफ़ से नाइट ग्रेन्ड क्रॉस (Honorary) की उपाधि मिली। नेपाल में राज्य का पूर्ण अधिकार प्रधानमन्त्री (वज़ीर) के ही हाथ में कई वर्षों से चला आ रहा है।

---

(1) Thong Lin Pimma Kokang Wang Syan. (Honorary)

ग्यारहवां अध्याय

मेवाड़ की संस्कृति

धर्म

वैदिक धर्म

प्राचीन काल से ही मेवाड़ में वैदिक (ब्राह्मण) धर्म का प्रचार रहा है। ईश्वरोपासना, यज्ञ करना, वर्ण-व्यवस्था वैदिक धर्म के मुख्य अंग हैं। यज्ञ में पशु-हिंसा भी होती थी। ज्योंही भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का डंका बजने लगा, त्योंही वैदिक धर्म का प्रचार घटने लगा, परन्तु उसकी जड़ जमी ही रही। मौर्य राजा अशोक ने अपने साम्राज्य में यज्ञों का होना बन्द कर दिया था, किन्तु मौर्य साम्राज्य का अन्त होते ही शुङ्ग वंश का सितारा चमकने पर बौद्ध धर्म की अवनति के साथ ही पुनः अश्वमेधादि यज्ञ होने लगे।

चित्तोड़ से क़रीब १० मील उत्तर घोसुंडी नामक ग्राम से मिले हुए वि० सं० के पूर्व की दूसरी शताब्दी के लेख से प्रकट है कि वर्तमान नगरी नामक स्थान के, जो प्राचीन काल में 'मध्यमिका' नाम से विख्यात था, राजा सर्वतात ने अश्वमेध यज्ञ किया था। सहाड़ां ज़िले के नांदसा ग्राम के तालाब के तटवर्ती विशाल यूप (यज्ञस्तम्भ) पर वि० सं० २८२ (ई० स० २२५) के दो लेख खुदे हैं, जिनमें से एक पर शक्ति-गुण-गुरु-द्वारा षष्टिरात्र यज्ञ करने का उल्लेख है। नगरी से वि० सं० की चौथी शताब्दी की लिपि का दोनों किनारों से टूटा हुआ एक शिलाखंड मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि वहां········ ने वाजपेय यज्ञ किया था और उसके पुत्रों ने उसका यूप (यज्ञस्तम्भ) खड़ा करवाया था। लेख खंडित होने से यज्ञ करनेवाले का नाम जाता रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक धर्म पर बौद्ध और जैन धर्म का प्रभाव अवश्य पड़ा, पर उसका अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। इस परिवर्त्तन के युग में

वैदिक-धर्म में कई नवीन बातों का समावेश होकर वह नये सांचे में ढाला गया। बौद्धों की देखादेखी मूर्तिपूजा की प्रथा चल पड़ी और विष्णु के चौबीस अवतारों में बुद्ध और ऋषभदेव की भी गणना की गई। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न आचार्यों ने क्रमशः अपने उपास्य देवताओं के नाम पर विभिन्न सम्प्रदायों की सृष्टि की। परिणाम यह हुआ कि वैदिक-धर्म अनेक शाखाओं में बँट गया और उसके स्थान में पौराणिक-धर्म प्रचलित हुआ।

वैष्णव धर्म

भगवद्गीता में उल्लिखित विराट्स्वरूप को लक्ष्य में रखकर सात्वतों (यादवों) ने वासुदेव की भक्ति के प्रचारार्थ विष्णु की उपासना चलाई, जो सात्वत अर्थात् भागवत सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। वह वैष्णव सम्प्रदायों में सब से प्राचीन है। उपर्युक्त घोसुंडी ग्रामवाले शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा सर्वतात ने भगवान् संकर्षण और वासुदेव की पूजा के निमित्त शिलाप्राकार (मन्दिर) बनवाया था। इससे निश्चित है कि मेवाड़ में विक्रम संवत् पूर्व की दूसरी शताब्दी से भी पूर्व मूर्तिपूजा का प्रचार था और विष्णु की पूजा होती थी। भागवत सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ पंचरात्र संहिता है। इस सम्प्रदायवाले मन्दिरों में जाना, पूजा करना, मन्त्रों का पढ़ना और योग-द्वारा भगवान् का साक्षात् होना मानते थे। सृष्टि का पालनकर्त्ता विष्णु होने से वैष्णव-धर्म का प्रचार अधिकता से होने लगा, क्योंकि बौद्ध और जैनों की भांति इसमें दया का प्राधान्य था। पीछे से विष्णु की अनेक प्रकार की चतुर्भुज मूर्तियां बनने लगीं, फिर हाथों की संख्या यहां तक बढ़ती गई कि कहीं चौदह, कहीं सोलह, कहीं बीस और कहीं चौबीस हाथवाली मूर्तियां देखने में आती हैं।

मेवाड़ के नागदा, आहाड़, चित्तोड़गढ़ और कुंभलगढ़ आदि स्थानों में विष्णु-मंदिर भिन्न भिन्न समय के बने हुए हैं, जहां से विष्णु के पृथक् पृथक् अवतारों की कई मूर्तियां मिली हैं। समय समय पर इस सम्प्रदाय की कई शाखाएं हुईं, जिनमें मेवाड़ में मुख्यतः वल्लभ, रामानुज और निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। विक्रम् संवत् की अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल से मेवाड़ में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रवेश हुआ और नाथद्वारा तथा कांकरोली में इस सम्प्रदाय के आचार्य लोग रहने लगे। मेवाड़ में विष्णु के प्राचीन मंदिर चित्तोड़गढ़,

बाडोली, नागदा, आहाड़ आदि अनेक स्थलों में विद्यमान हैं, जिनमें सबसे प्राचीन बाडोली का शेषशायी विष्णु का मंदिर है, जो विक्रम की दसवीं शताब्दी से भी पूर्व का बना हुआ है। नगरी से वि० सं० ४८१ (ई० स० ४२४) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें एक विष्णुमन्दिर के बनने का उल्लेख है, परन्तु अब वह मंदिर नहीं रहा।

शैव सम्प्रदाय

शिव की पूजा मेवाड़ में दीर्घकाल से चली आती है। ऋषभदेव से कुछ मील दूर कल्याणपुर नामक प्राचीन नगर के खण्डहर से मिले हुए विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी की लिपि के एक लेख में कदर्थिदेव-द्वारा शिव-मन्दिर बनाये जाने का उल्लेख है। शिव-मंदिर सम्बन्धी मेवाड़ से मिले हुए शिलालेखों में यह लेख सबसे प्राचीन है। मेवाड़ के स्वामी शिव को ही अपना उपास्यदेव मानते हैं। शिव के उपासक सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता और हर्ता शिव को ही मानते हैं। शैव सम्प्रदाय सामान्य रूप से पाशुपत सम्प्रदाय कहलाता है। विष्णु की भांति शिव की भी भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियां मिलती हैं। शिव की मूर्त्तियां प्रायः लिङ्गाकार या ऊपर से गोल और नीचे चार मुखवाली होती हैं। इन चारों मुखों में से पूर्व का मुख सूर्य, उत्तर का ब्रह्मा, पश्चिम का विष्णु और दक्षिण का रुद्र का सूचक होता है। मध्य का गोल भाग ब्रह्माण्ड अर्थात् विश्व का बोधक है। इस कल्पना का तात्पर्य यह है कि ये चारों देवता ईश्वर के ही भिन्न भिन्न नामों के रूप हैं। शिव की विशालकाय त्रिमूर्तियां सुप्रसिद्ध चित्तोड़गढ़ के दो मंदिरों में हैं, जिनमें से परमार राजा भोज के बनवाए हुए त्रिभुवननारायण (समिद्धेश्वर) के मंदिर की मूर्ति सब से प्राचीन है। इस मंदिर का महाराणा मोकल ने जीर्णोद्धार कराया, जिससे यह मोकलजी का मंदिर कहलाता है।

इस सम्प्रदायवाले शिव के कई अवतार मानते हैं, जिनमें से लकुलीश अवतार का प्रभाव मेवाड़ में विशेष रहा। एकलिङ्गजी, मेनाल, तिलिस्मा, बाड़ोली आदि स्थानों के प्राचीन शिवमंदिर इसी सम्प्रदाय के हैं। इन मंदिरों के पुजारी कनफड़े साधु होते थे, जो शरीर पर भस्म रमाते और आजन्म ब्रह्मचारी रहते थे। लकुलीश के ४ शिष्यों-कुपिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य-से चार सम्प्रदाएं चलीं। उसमें से एकलिङ्गजी के मंदिर के मठाधीश कुपिक सम्प्रदाय

के अनुयायी थे। कई शैव सम्प्रदाय के मंदिरों के द्वार पर लकुलीश की मूर्तियां बनी हुई हैं, जो पद्मासन-स्थित और जैन-मूर्तियों की भांति शिर पर केशों से आच्छादित हैं। उनके दाहिने हाथ में बीजोरा और बायें में लकुट (दण्ड) होता है। इस सम्प्रदाय के साधु वर्तमान समय में लकुलीश का नाम तक भूल गये हैं और वे (कनफड़े, नाथ) अपने को गोरखनाथ आदि के शिष्यों में मानने लग गये हैं।

यज्ञादिक में यद्यपि ब्रह्मा को अवश्य स्थान दिया जाता है, परन्तु मेवाड़ में ब्रह्मा का मन्दिर कहीं पर नहीं है। इससे अनुमान होता है कि इस देश

ब्रह्मा

में ब्रह्मा के मन्दिर बनाने और उसके पूजने की रूढ़ि न रही हो।

सूर्य की पूजा का मेवाड़ में अधिक प्रचार था, जिसके अनेक प्रमाण हैं। चित्तोड़गढ़ का प्रसिद्ध कालिका माता का मंदिर सूर्य का ही मंदिर था। वर्त-

सूर्य-पूजा

मान समय में वहां पर जो कालिका की मूर्ति है वह पीछे से बिठलाई गई है। आहाड़, नादेसमा आदि स्थानों में प्राचीन समय के सूर्य के मंदिर और मूर्तियां मिली हैं। सूर्य की मूर्ति खड़ी हुई द्विभुज होती है, दोनों हाथों में कमल, पैरों में घुटने से कुछ नीचे तक लंबे बूट, छाती पर कवच और सिर पर किरीट होता है। राणपुर के जैनमंदिर के निकट एक सूर्य का प्राचीन मंदिर है, जिसके बाहिरी भाग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य की मूर्तियां बनी हुई हैं, जिन सब के नीचे सात घोड़े और पैरों में लम्बे बूट हैं।

केवल परमात्मा के भिन्न भिन्न नामों को ही देवता मानकर उपासना प्रारम्भ हुई इतना ही नहीं, किन्तु ईश्वर की मानी हुई शक्ति एवं ब्रह्मा, विष्णु,

शाक्त-संप्रदाय

शिव आदि देवताओं की पत्नियों की शक्तिरूप में कल्पना की जाकर उनकी पृथक् पृथक् पूजा होने लगी। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से देवियों के भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं जैसे कि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री। इन सात शक्तियों को मातृका कहते हैं। देवियों की कल्पना में दुर्गा अर्थात् महिषासुरमर्दिनी मुख्य है और जगह जगह उसकी पूजा होती है।

मेवाड़ के छोटी सादड़ी नामक क़स्बे से दो मील दूर भंवर माता के मन्दिर से वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० (जनवरी ई० स० ४९१) का

एक शिलालेख मिला है, जिसमें गौरवंशी क्षत्रिय राजा यशगुप्त-द्वारा देवी का मन्दिर बनाये जाने का उल्लेख है। सामोली गांव से मिले हुए मेवाड़ के राजा शीलादित्य के समय के वि० सं० ७०३ (ई० स० ६४६) के शिलालेख में लिखा है कि वहां के निवासी जेंतक महत्तर-द्वारा अरण्यवासिनी देवी का मन्दिर बनाया गया। इन लेखों से निश्चित है कि मेवाड़ में देवी की पूजा भी विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्व से चली आती थी। तांत्रिक ग्रन्थों में देवियों की अनेक प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख है। मातृकाओं की मूर्तियां चित्तोड़गढ़, कुंभलगढ़, उदयपुर आदि स्थानों में देखने में आई हैं और दुर्गा की मूर्तियां तो जगह जगह मिलती हैं, उनके चार, आठ, बारह, सोलह और बीस तक भुजाएं होती हैं।

देवी के उपासकों में एक दल वाममार्गी कहलाता है, जो बड़े ही गुप्त-रूप से उपासना करता है। मद्य, मांस और स्त्री-सेवन करना इस मत का मुख्य सिद्धान्त है। मेवाड़ में इस मत का पहिले विशेष प्रचार था और कुछ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ और शूद्र लोग निःसंकोच ऐसी उपासनाओं में भाग लेते थे। समय के परिवर्तन से अब इस मत का प्रभाव घटता जाता है, किन्तु फिर भी यत्र तत्र इस उपासना के कुछ चिह्न विद्यमान हैं। क्षत्रिय लोग प्रायः देवी के उपासक होते हैं और नवरात्रि आदि अवसरों पर देवी के आगे भैंसों तथा बकरों का बलिदान करते हैं। अन्य लोग भी इस मत के उपासक हैं, पर उनकी उपासना का मार्ग भिन्न है।

गणेश-पूजा

पौराणिक युग में जब मूर्ति-पूजा का प्रवाह चल निकला तब शिव के पुत्र गणेश की पूजा भी प्रत्येक माङ्गलिक कार्य में सब से प्रथम होने लगी और सर्वसिद्धिदाता मानकर लोग उसकी उपासना करने लगे। मेवाड़ में गणेश के मंदिर कई जगह पर बने हुए हैं, किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व का कोई मंदिर देखने में नहीं आया। शिव तथा विष्णु के कितने ही मंदिरों के द्वार पर गणेश की मूर्तिया खुदी हुई मिलती हैं। उससे विदित होता है कि गणेश की पूजा भी दीर्घकाल से होती है।

विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति और गणेश की पूजा पंचायतन नाम से प्रसिद्ध है और उसके उपासक स्मार्त कहलाते हैं। जावर, उदयपुर, सीसारमा आदि

स्थानों में विष्णु और शिव के पंचायतन मंदिर बने हुए हैं। ऐसे मंदिरों में जिस देवता का मंदिर मुख्य हो उसकी मूर्ति मध्य के बड़े मंदिर में और अन्य चार मूर्तियां बाहर के भाग में परिक्रमा के चारों कोनों पर बने हुए छोटे मंदिरों में स्थापित की जाती हैं।

अन्य देवी देवताओं की पूजा

मूर्तिपूजा के प्रवाह के साथ इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, कुबेर आदि दिक्पाल तथा रेवंत, भैरव, हनुमान, नाग आदि देवताओं की भी उपासना प्रारम्भ होकर उनकी मूर्तियां बनने लगीं, इतना ही नहीं, किन्तु ग्रह, नक्षत्र, प्रातः, मध्याह्न, सायं, ऋतु, शस्त्र, नदियां और युगों तक की मूर्तियां बनाई जाकर उनके पूजने की प्रथा चल निकली। उनका धार्मिक विश्वास यहां तक बढ़ गया कि वे वृक्षों तक को पूजने लगे। मेवाड़ में बहुधा इन उपरोक्त देवताओं की मूर्तियां मिलती हैं। महाराणा कुंभा का बनाया हुआ वि० सं० १५०५ (ई० स० १४४८) का चित्तोड़गढ़ का प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ तो ऐसी मूर्तियों का भंडार है।

बौद्ध धर्म

मेवाड़ में निरीश्वरवादी बौद्ध धर्म का प्रचार नाममात्र का रहा। नगरी में एक स्तूप और मौर्य राजा अशोक के समय की लिपि में खुदा हुआ शिलालेख का एक छोटासा टुकड़ा मिला है, जिसमें '[स]व भूतानं दयाथं का' 'सर्व जीवों की दया के लिए' लेख है। जीवदया की प्रधानता बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में समान रूप से थी, इसलिए यह स्पष्टरूप से नहीं कहा जा सकता कि यह लेख किस धर्म से सम्बन्ध रखता है।

चित्तोड़ के क़िले पर जयमल की हवेली के सामनेवाले तालाब पर ठोस पत्थर के छः बौद्ध स्तूप मिले हैं। उनके सिवाय बौद्धों के सम्बन्ध का कोई चिह्न नहीं मिलता, पर इन स्तूपों से निश्चित है कि मेवाड़ में बौद्ध धर्म का कुछ प्रभाव अवश्य रहा था।

जैन धर्म

जैन धर्म बौद्ध धर्म से भी प्राचीन है और मेवाड़ में वैदिकधर्म के साथ साथ इसका पूरा प्रचार रहा। जैनधर्मावलम्बी जीव, अजीव, आश्रव (मन, वचन और शरीर का व्यापार एवं शुभाशुभ के बन्धन का हेतु), सम्वर (आश्रव का रोकनेवाला), बन्ध, निर्जरा (बन्धकर्मों का क्षय), मोक्ष, पुण्य और पाप इन नौ तत्त्वों को मानते हैं। जीव अर्थात् चैतन्य आत्मा कर्म का कर्त्ता और फल का भोक्ता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सब व्यक्त और अव्यक्तरूप से चैतन्य गुणवाले हैं। काल, स्वभाव, नियति, कर्म और उद्यम उत्पत्ति के मुख्य कारण हैं। इन्हीं पांच निमित्तों से परमाणु (पुद्गल) नियमपूर्वक आपस में मिलते हैं, जिससे जगत् की प्रवृत्ति होती है और यही कर्म के फल देते हैं। ये लोग ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते। इनके मतानुसार यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। इस धर्म के अनुयायी लोग अपने चौबीस तीर्थंकरों, कई देवियों और अपने धर्माचार्यों आदि की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं। इनके अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी हैं। जैनधर्म के भी मुख्यतः दो फ़िर्के–दिगम्बर और श्वेताम्बर–हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय की मूर्तियां नग्न होती हैं और श्वेतांबरों की कोपीनवाली। दिगंबर लोग तीर्थंकरों को वीतराग मानते हैं अतः वे मूर्तियों को आभूषण आदि से अलंकृत नहीं करते, किन्तु श्वेतांबर लोग रत्नजटित सुवर्ण आदि की बनी हुई अंगिया आदि भूषण पहिनाकर उन्हें सराग बनाने में भक्ति समझते हैं। दिगंबर मत के साधु नग्न रहते हैं और शहरों से दूर जंगलों में निवास करते हैं, पर मेवाड़ में ये साधु नहीं हैं। श्वेतांबर साधु उपासरों में रहते हैं और श्वेत तथा पीत वस्त्र पहिनते हैं। समय पाकर जैन आचार्यों ने भी कई गच्छों की सृष्टि की, जिनमें से किसी न किसी गच्छ के आचार्य को प्रत्येक जैन अपना कुलगुरु मानता है।

स्थानकवासी (ढूंढिये) श्वेतांबर सम्प्रदाय से पृथक् हुए हैं, जो मंदिरों और मूर्तियों को नहीं मानते। इस शाखा के भी दो भेद हैं, जो बारापंथी और तेरहपंथी कहलाते हैं। ढूंढियों का सम्प्रदाय बहुत प्राचीन नहीं है। लगभग ३०० वर्ष से यह प्रचलित हुआ है। जैनधर्म की उन्नति के समय में कई राजपूत जैनधर्मावलम्बी होकर महाजनों में मिल गये और उनकी गणना ओसवालों में हुई।

मेवाड़ में सैकड़ों जैनमंदिर बने हुए हैं, उनमें से कितने एक मौर्य राजा संप्रति के समय के बतलाये जाते हैं, परन्तु उनके इतने पुराने होने का कोई चिह्न नहीं मिलता। वस्तुतः विक्रम की दसवीं शताब्दी से पूर्व का बना हुआ कोई जैनमंदिर इस समय मेवाड़ में विद्यमान नहीं है।

चित्तोड़ का प्रसिद्ध जैन कीर्त्तिस्तम्भ (जिसको दिगम्बर सम्प्रदाय के बघेरवाल महाजन जीजा ने बनवाया था), ऋषभदेव (केसरियानाथ), करेड़ा, कुम्भलगढ़, चित्तोड़ के सतबीस देवलां आदि अनेक प्रसिद्ध मंदिर मेवाड़ में जैनधर्म के उत्कर्ष के सूचक हैं।

इस्लाम धर्म

सुल्तान शहाबुद्दीन गौरी ने वि० सं० १२५१ (ई० स० ११९४) में अजमेर के चौहान-राज्य को अपने हस्तगत किया, उस समय मेवाड़ का पूर्वी हिस्सा, जो चौहानों के अधिकार में था, सुल्तान के अधिकार में चला गया। तब से इस्लामधर्म का प्रवेश होकर क्रमशः मेवाड़ में मस्जिदें बनने लगीं तथा मुसलमान शासक बलात् हिन्दुओं को मुसलमान बनाने लगे। मेवाड़ में इस्लाम धर्म के शिया और सुन्नी नामक दो फ़िर्के हैं, जिनमें सुन्नी अधिक हैं। दाऊदी बोहरे शिया फ़िर्के के अनुयायी हैं।

ईसाई धर्म

वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में अंग्रेज़ी सरकार से सन्धि होकर कर्नल जेम्स टॉड पोलिटिकल एजेन्ट होकर मेवाड़ में आया और वह उदयपुर से ६ मील दूर डबोक में रहने लगा। उसके बाद कई पोलिटिकल अफ़सर नियत होकर आये, परन्तु स्थायी रूप से ईसाईधर्म की नींव नहीं लगी। महाराणा सज्जनसिंह के समय स्कॉटिश प्रेसबिटेरियन मिशन का पादरी डा० शेपर्ड उदयपुर में आया और उसने वहां ईसाई मिशन क़ायम किया तथा मेवाड़ में शिक्षा के हेतु कई मदरसे खोले। उक्त मिशन की ओर से स्त्री-शिक्षा के लिये भी प्रयत्न किया जाकर राजधानी उदयपुर में मदरसा खोला गया

और चिकित्सा के लिए अस्पताल भी बनाया गया। राज्य की ओर से गिरजाघर बनाने को हाथीपोल के बाहर ज़मीन दी गई, जहां गिरजाघर बनाया जाकर नियमबद्ध उपासना होने लगी। मिशन के उद्योग से कतिपय भील तथा थोड़े से अन्त्यजों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। उसी समय से ईसाईधर्म की बुनियाद मेवाड़ में पड़ी और क्रमशः उसकी वृद्धि होती जाती है।

सामाजिक परिस्थिति

वर्णव्यवस्था

भारतीय लोगों के सामाजिक जीवन में वर्णव्यवस्था मुख्य है और इसी भित्ति पर हिन्दू-समाज का भवन खड़ा है, जो अनन्त बाधाओं का सामना करने पर भी अक्षुण्ण रहा। वर्णव्यवस्था का उल्लेख यजुर्वेद में भी है। बौद्ध और जैनों के द्वारा यद्यपि इसको बड़ा धक्का पहुंचा तथापि वह नष्ट न हुई और हिन्दू-धर्म के पुनरभ्युदय के साथ प्रतिदिवस उसकी उन्नति होती गई। वेदों में चार वर्ण बतलाये गये हैं, जिनका वर्णन यहां पर किया जाता है।

वर्णव्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणसमाज चारों वर्णों में मुख्य है। ब्राह्मणों का मुख्य कर्त्तव्य पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और लेना है। मेवाड़ में ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान रहा और समय समय पर सैकड़ों गांव, कुएं और हज़ारों बीघा ज़मीन उनको दी गई। उनके बनाये हुए काव्य, साहित्य, शिल्प, इतिहास, चरित्र और वैद्यक आदि पर कई ग्रंथ हैं और उनकी रची हुई अनेक प्रशस्तियां अब तक विद्यमान हैं। ब्राह्मण लोग सदा से विद्या के अनुरागी रहे, इसीलिये शिक्षक का पद इनको मिलता था और प्रायः यही राजकुमारों आदि के शिक्षक होते थे। पुरोहित का पद तो ब्राह्मणों की पैतृक सम्पत्ति रही। राजा से लगाकर सामान्य व्यक्ति तक का पुरोहित ब्राह्मण ही होता है। मन्त्री और मुसाहिब के पद पर भी समय समय पर ये लोग नियत होते रहे हैं। सामान्यतः इन लोगों का कार्य पूजा-पाठ आदि भी रहा, पर देश और अपने स्वामी की रक्षार्थ युद्ध में भी ब्राह्मणों के भाग

ब्राह्मण

लेने के कई उदाहरण मिलते हैं। पिछले समय में ब्राह्मणों में विद्या का ह्रास होने लगा और वे कृषिकर्म करने लगे। इसपर महाराणा मोकल ने उनको साङ्गवेद पढ़ाने की व्यवस्था की, जैसा कि कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है (श्लोक संख्या २१७)। कई ब्राह्मणों ने व्योपार और शिल्पकारी का कार्य करना आरम्भ किया और जब पेशों के अनुसार जातियां बनने लगीं तब शिल्प का कार्य करनेवाले ब्राह्मण 'खाती' और व्योपार करनेवाले ब्राह्मण 'बोहरा' कहलाने लगे; जैसे ननवाणा बोहरा, पल्लीवाल बोहरा आदि। पिछले समय में ब्राह्मणों में गांव आदि के नाम पर अनेक उपजातियां हुईं और उनका परस्पर का खान-पान का सम्बन्ध छूट गया, जिससे उनकी बड़ी क्षति हुई और होती जाती है। वर्त्तमान समय में मेवाड़ राज्य के उच्च पदों तथा अहलकारों में ब्राह्मणों की संख्या पर्याप्त है। कई पुरोहिताई, पूजापाठ, कथावाचन, अध्यापन, वैद्यक, व्योपार, शिल्पकारी आदि कार्यों से जीवन निर्वाह करते हैं और उनकी बड़ी संख्या कृषिजीवी है।

ब्राह्मणों की भांति क्षत्रियों का भी समाज में ऊंचा स्थान चला आता है। उनका मुख्य कर्त्तव्य प्रजा-पालन, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन आदि थे। क्षत्रिय शासक और सेनापति का पद क्षत्रियों का ही रहा है। ब्राह्मणों के संसर्ग से उनमें शिक्षा का प्रचार अच्छा रहा और उन्होंने संस्कृत तथा भाषा में कई ग्रन्थों की रचना की। देश पर आनेवाली विपत्ति के समय प्राण देना वे (क्षत्रिय) अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते रहे और मेवाड़ के क्षत्रियों ने तो समय समय पर अद्भुत शौर्य प्रकट किया है। दरवाज़ों के किवाड़ों पर लगे हुए लम्बे लम्बे तीक्ष्ण भालों के सामने खड़े हो मदमत्त हाथी को अपने बदन पर हुलवाना मेवाड़ के क्षत्रियों का ही काम था। छुरी, कटारी, तलवार, ढाल, बर्छी, तीर-कमान और घोड़ा राजपूतों की प्रिय वस्तु थी। पुरुषों की भांति क्षत्राणियों ने भी वीरता के कार्य किये हैं और सतीत्व-रक्षा के लिये उनके जौहर करने के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। राजपूत[1] युद्धविद्या में कुशल होने के अतिरिक्त अन्य कई विषयों के ज्ञाता होते थे। कविता से

(१) मुसलमानों के आगमन के पश्चात् क्षत्रियवर्ग राजपूत शब्द से संबोधित होने लगा, जो राजपुत्र का अपभ्रंश है।

उन्हें बड़ा अनुराग था और वे स्वयं कविता करते थे। इसीसे वे अपने यहां ब्राह्मण, चारण, राव (भाट) आदि को आश्रय देते थे। शरण आये हुए की रक्षा करना वे अपने जीवन का मुख्य मन्त्र मानते थे। शस्त्र छोड़कर शत्रु भी उनके पास चला आता तो वे उसकी रक्षा करते थे। राजपूतों का स्त्री-समाज अपढ़ नहीं होता था। अध्यापिकाएं रख उनको शिक्षा दिलाई जाती थी और व्यावहारिक ज्ञान में वे बड़ी निपुण होती थीं। चाहे सर्वस्व नष्ट हो जाय राजपूत वचन का पालन करते थे। आत्माभिमान और वंश-गौरव राजपूतों में अवश्य होता था। मेवाड़ में शायद ही ऐसा कोई ग्राम होगा, जहां लड़ाई में मारे गये वीर क्षत्रियों के स्मारक की छत्रियां तथा चबूतरे न हों। मेवाड़ में ही नहीं, किन्तु सारे भारतवर्ष में केवल एक क्षत्रिय वर्ण ही ऐसा रहा है, जिसमें उपजातियां नहीं बनीं और न उसके परस्पर के खान-पान या विवाह-सम्बन्ध में कोई बाधा पड़ी।

वैश्य

वैश्यों के मुख्य कार्य पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीद (व्याजवृत्ति) और कृषि थे। बौद्ध काल में वर्णव्यवस्था शिथिल होने से उसका रूपान्तर हो गया। बौद्धों और जैनों के मतानुसार कृषि करना पाप माना गया, जिससे वैश्य लोगों ने पीछे से उसे छोड़ दिया और दूसरे धंधे करना इख़्तियार किया। उनके राज्य-कार्य करने, राजमंत्री होने, सेनापति बनने और युद्धों में लड़ने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। विक्रम की ११ वीं शताब्दी के आसपास से उनमें उपजातियां बनने लगीं और उनके परस्पर के विवाहादि सम्बन्ध छूटते गये।

शूद्र

प्राचीन काल में सेवा करनेवाले वर्ग का नाम शूद्र था। वह वर्ण हलका नहीं समझा जाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की तरह शूद्रों को भी पंच-महायज्ञ करने का अधिकार था ऐसा पतंजलि के महाभाष्य और उसके टीकाकार कैयट के 'महाभाष्य प्रदीप' नाम के ग्रन्थ से पाया जाता है। बौद्धों की अवनति के समय हिन्दू-समाज में बहुतसे कार्यों—कृषि, दस्तकारी, कारीगरी आदि—का करना तुच्छ समझा जाने लगा और वैश्यों ने कृषि और शिल्प का काम छोड़ दिया तो इन कामों को शूद्र लोग करने लगे। वे ही किसान, लुहार, दरजी, धोबी, तक्षक, जुलाहे, कुम्हार और बढ़ई हो गये। पीछे

से इस वर्ण के लोगों में पेशों के अनुसार अलग अलग जातियां बन गईं और उनका परस्पर का विवाह आदि सम्बन्ध भी मिट गया।

कायस्थ शब्द का अर्थ लेखक है जैसा कि प्राचीन शिलालेखों से पाया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जो लोग लेखक या अहलकारी का काम करते थे वे कायस्थ कहलाये। ये लोग सरकारी दफ़्तरों में अधिक संख्या में

कायस्थ

नौकर होते थे। पीछे से अन्य पेशेवालों के समान इनकी भी एक जाति बन गई। प्राचीन काल में राजकीय कर उगाहने के लिए एक समिति होती थी, जिसका नाम 'पंचकुल' था और उसका प्रत्येक सदस्य 'पंचकुली' (पंचोली) कहलाता था। राज्य के अहलकारों में इनकी संख्या विशेष होने से पंचकुल में भी ये लोग अन्य वर्ण की अपेक्षा अधिक होते थे, जिससे मेवाड़ में पंचोली शब्द बहुधा कायस्थों का सूचक हो गया है, परन्तु वास्तव में ऐसा ही नहीं है। ब्राह्मणों, वैश्यों और गूजरों तक में पंचोली उपनाम पाये जाते हैं। कायस्थों में उनके निकासस्थान आदि के नाम से अलग अलग भेद हो गये हैं, जैसे मथुरा से निकले हुए माथुर, श्रावस्ती से निकले हुए श्रीवास्तव, वलभी से निकले हुए वालभ[1], भटनेर (भटनगर) से निकले हुए भट्नागर आदि। सूरजधज कायस्थ अपने को शाकद्वीपी ब्राह्मण और वालभ क्षत्रिय बतलाते हैं।

भील एक जंगली जाति है और मेवाड़ में उनकी बड़ी आबादी है। इस जाति के लोग बहुधा शहरों से दूर पहाड़ी प्रदेश में पहाड़ियों की चोटियों पर

भील

एक दूसरे से दूर झोंपड़े बनाकर रहते हैं। बहुतसे झोंपड़े मिलकर एक पाल (पल्ली) कहलाती है और उसका मुखिया पालवी (पल्लीपति) या गमेती कहलाता है, जिसकी आज्ञा में प्रत्येक पाल के लोग रहते हैं। ये लोग पशुपालन, खेती, शिकार और घास या लकड़ी बेचकर अपना निर्वाह करते हैं और कभी कभी चोरी या डकैती भी करते हैं। उदयपुर के राज्यचिह्न में एक तरफ़ राजपूत और दूसरी तरफ़ भील बना हुआ है, जिसका अभिप्राय यही है

(१) अब तो कायस्थ लोग वालभ नाम भी भूल गये हैं और वालभ को वाल्मीक कहने लगे हैं, परन्तु वास्तव में शुद्धरूप वालभ है। कई शिलालेख वालभ कायस्थों के लिखे हुए मिलते हैं। 'उदयसुन्दरीकथा' का कर्ता सोड्ढल अपने को वालभ कायस्थ लिखता है और वलभी के राजा के भाई के वंश में अर्थात् क्षत्रिय होना प्रकट करता है।

कि उक्त राज्य के मुख्य रक्षक राजपूत और भील रहे हैं। प्राचीन काल से ही ये स्वामिभक्त लोग युद्ध आदि के समय राजाओं की बड़ी सेवा करते; पहाड़ों में रहे हुए लोगों, राजपरिवारों और सरदारों के परिवारों की रक्षा करते; शत्रु की रसद आदि लूटते तथा मौके मौके पर उनसे लड़ते भी थे। राजा के राज्याभिषेकोत्सव के अन्त में एक भील-मुखिया अपने अंगूठे को तीर से चीरकर अपने रुधिर से राजा के राज्य-तिलक करता था। इस रीति का पता महाराणा अमरसिंह (दूसरे) तक तो लगता है। ये लोग भैरव, देवी, नाग, शिव, ऋषभदेव आदि देवताओं के उपासक होते हैं। इनके शस्त्र तीर, 'कामठा' (बांस का बना हुआ धनुष), तलवार और कटार हैं अब बन्दूक का भी ये लोग उपयोग करने लगे हैं तथा बचाव के लिए ढाल रखते हैं। ये एक लड़ाकू जाति है। इनकी स्त्रियां भी लड़ाई के समय अपने पतियों के साथ रहकर उनको भोजन देने, जल पिलाने और शत्रु की तरफ़ से आये हुए तीरों को एकत्र कर उनको देने की सहायता करती हैं एवं कभी कभी वे लड़ती भी हैं। महाराणा सज्जनसिंह के समय ई० स० १८८१ (वि० सं० १९३८) में भीलों का उपद्रव हुआ और राज्य की सेना से लड़ाई हुई उस समय एक भीलनी ने ऐसे ज़ोर से तीर चलाया कि वह एक ऊंट का पेट फोड़कर पार निकल गया। इनके बालक लड़के भी अपने पशु चराते समय छोटे छोटे कामठों से तीर चलाने का अभ्यास करते हैं। एक लड़का आकाश में कंडा फेंकता है तो दूसरा उसको नीचे आते हुए अपने तीर से बेधने का प्रयत्न करता है। मेवाड़ में जिनको आजकल भील कहते हैं वे सब के सब भील नहीं हैं, किन्तु उनमें मीने भी हैं। साधारण जनता और राजकीय अहलकार उन सबको भील कहते हैं, परन्तु ये दोनों जातियां भिन्न भिन्न हैं और विशेष जांच करने से ही उनके बीच का भेद मालूम हो सकता है। मीने, मेव और मेरों के समान क्षत्रपों के सैनिकों में से हैं और भील यहां के आदि निवासी, जिनमें कुछ राजपूत भी मिल गये हैं। भील और भीलनियां नाचने, गाने और मद्य पीने के बड़े शौक़ीन होते हैं और वे बहुधा अपनी जाति के वीर पुरुषों के संबन्ध के गीत गाते हैं। इनका विवाह अग्नि की साक्षी से पुरोहित (गुरु) द्वारा होता है। ये लोग प्रत्येक जानवर का मांस खाते हैं और क़हत वग़ैरह के समय गाय को भी खा

जाते हैं। इनमें एकता विशेषरूप से होती है और ढोल बजाने या किलकारी करने से ये लोग सशस्त्र एकत्र हो जाते हैं। ये लोग स्त्रियों का बड़ा आदर करते हैं और आपस की लड़ाइयों में शत्रु की स्त्री पर कभी प्रहार नहीं करते। शपथ पर भी ये लोग बड़े दृढ़ होते हैं। केसरियानाथ (ऋषभदेव) के केसर का जल पीने पर कभी झूंठ नहीं बोलते। अपने घर आये शत्रु का भी ये स्वागत करते हैं। ये लोग मेवाड़ में अस्पृश्य नहीं माने जाते।

प्राचीनकाल में भिन्न भिन्न जातियों या वर्णों में परस्पर छुतछात नहीं थी। वे एक दूसरे के हाथ का भोजन करते थे। छूतछात और खानपान के परहेज़ का प्रभाव पीछे से पड़ा है। प्रथम परस्पर के खानपान का भेद मांसाहार और शाकाहार से पड़ा। फिर वैष्णव संप्रदायों के प्रभाव से इसकी वृद्धि होती गई। अब तो एक वर्ण के लोग भी अपनी उपजातियों के साथ खाने पीने में बहुत कुछ संकोच करते हैं।

छूतछात

यहां के लोगों का भौतिकजीवन बहुत अच्छा रहा। राजा, सरदार और सम्पन्न लोग बड़े बड़े महलों और मकानों में रहते चले आते हैं। उनके मकानों में प्रकाश, वायुसंचार आदि का पर्याप्त ध्यान दिया जाता है और अलग अलग कामों के लिए अलग अलग कमरे होते हैं। अलग अलग समय पर राजाओं या सरदारों की सवारियों, धार्मिक उत्सवों, मेलों आदि के प्रसंगों पर हज़ारों लोग सम्मिलित होते हैं। कितने एक मेलों में व्यापार के लिए दूर दूर के व्यापारी आते हैं। होली के दिनों में फाग आदि खेलने का रिवाज़ प्राचीनकाल से चला आता है। हाथियों, भैंसों और मेंढों आदि की लड़ाइयों को लोग उत्साह से देखते हैं। दोलोत्सव स्त्री-पुरुषों के आह्लाद का सूचक है। शतरंज, चौपड़ आदि खेल लोगों के मनोरंजन के साधन हैं। प्राचीनकाल में जूआ भी होता था, जिसपर राज्य का कर लगता था, जैसा कि सारणेश्वर के मंदिर के वि० सं० १०१० के शिलालेख से पाया जाता है। क्षत्रिय लोग आखेट-प्रिय होते हैं और उसमें बड़ा आनन्द मानते हैं। सूअरों का शिकार वे प्रायः घोड़ों पर सवार होकर भालों से करते हैं और कभी कभी बन्दूक से भी उसको मारते हैं। शिकार के समय वे कुत्ते भी साथ रखते हैं। नटों के शारीरिक खेल और रामलीला आदि भी प्राचीनकाल से शहरों और ग्रामों में लोगों के मनो-

भौतिकजीवन

रंजन के लिए समय समय पर होते रहे हैं। उत्सवों और त्यौहारों के प्रसंग पर स्त्री और पुरुष अपनी हैसियत के अनुसार सोने, चांदी आदि के ज़ेवर तथा रंग बिरंगे वस्त्रों का विशेष उपयोग करते हैं।

दास-प्रथा प्राचीनकाल से चली आती है। राजाओं, सरदारों और धनाढ्य लोगों के यहां दास-दासियां रहते हैं। यहां की दासप्रथा कलुषित या घृणित नहीं रही। ये लोग परिवार के अंग की तरह रहते हैं और त्यौहार आदि प्रसंगों पर उनपर विशेष कृपा बतलाई जाती है। उनके वस्त्र, खानपान आदि का सुप्रबन्ध रहता है, जिससे वे असन्तुष्ट नहीं रहते। यदि वे स्वामी को छोड़कर अन्यत्र जाना चाहें तो किसी प्रकार का उनपर बलात्कार नहीं होता।

दासप्रथा

यहां की साधारण जनता में वहम का प्रवेश प्राचीनकाल से ही पाया जाता है। लोग जादू, टोने, भूत, प्रेत आदि पर विश्वास करते हैं और स्त्रियों में यह भाव विशेष रूप से पाया जाता है। भील लोगों में किसी किसी जीवित स्त्री को डाइन बतलाकर उसे बहुत कष्ट दिया जाता था, परन्तु अब राज्य की तरफ़ से उसकी रोक है। बहुतसी स्त्रियां अपने बच्चों आदि की बीमारी के समय दवा की अपेक्षा झाड़ा-फूंका या जादू-टोने पर अधिक विश्वास करती हैं, जिससे उनका यथोचित उपचार नहीं होता।

वहम

प्राचीनकाल से ही राजाओं, सरदारों और धनाढ्यों के यहां लड़कियों को भी पढ़ाने की प्रथा चली आती है और साथ ही उनके सदाचरण की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्त्री-शिक्षा के लिये पहले पाठशालाएं तो नहीं थीं, किन्तु अनेक कुटुम्बों में अपने परिवार के पुरुषों या गुरुओं अथवा स्त्रियों-द्वारा कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी और वे धार्मिक ग्रन्थों, कथाओं आदि को विशेष रूप से पढ़ती थीं। जैन आर्याएं, जैन स्त्री-समाज में साधारण शिक्षा के अतिरिक्त धार्मिक-शिक्षा का प्रचार भी करती रही हैं। कई स्त्रियों के रचे हुए भाषा के गद्य-ग्रन्थ, कविता के ग्रन्थ एवं अनेक भजन, गीत व पद उपलब्ध होते हैं। गीतों की रचना करना तो स्त्रियों के लिये एक आसान बात है। मीरांबाई के भजन और पद भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

स्त्री-शिक्षा

मेवाड़ में पहले पर्दे की प्रथा बिलकुल नहीं थी। राजाओं, सरदारों और धनाढ्यों के यहां स्त्रियों के रहने के स्थान पुरुषों से अलग अवश्य होते थे,

पर्दा जहां साधारण पुरुषों का प्रवेश नहीं होता था, परन्तु पुरोहित, आचार्य आदि के लिये कोई रोक-टोक न थी। कई राजघरानों की स्त्रियां लड़ाइयों में लड़ी हैं एवं शिकार में अपने पति के साथ भाग लेती रही हैं। जब मेवाड़ के राजाओं का प्राचीन रीति के अनुसार राज्याभिषेकोत्सव होता था उस समय राजा और मुख्य राणी एक सिंहासन पर आरूढ़ होते थे और राजसभा के सम्मुख उनपर अभिषेक होता था। राज्याभिषेक की इस रीति के महाराणा राजसिंह (दूसरे) तक प्रचलित रहने का तो पता चलता है। दिल्ली में मुग़लों का राज्य क़ायम होने के बाद जब हिन्दू राजाओं का वहां रहना होने लगा तब से जयपुर, जोधपुर आदि राज्यों में मुग़लों की देखादेखी पर्दे की प्रथा का प्रवेश हुआ, परन्तु मेवाड़ में उसका प्रचार महाराणा राजसिंह (दूसरे) के पीछे से हुआ। जब राजाओं के यहां यह प्रथा चली तो छोटे बड़े राजपूत सरदारों, मंत्रियों एवं धनाढ्यों के यहां भी उसका अनुकरण होने लगा। पर्दे की प्रथावाले सम्पन्न लोगों की स्त्रियां त्यौहार, देवदर्शन, विवाह आदि प्रसंगों पर कुछ स्त्रियों को साथ लेकर बाहर निकलने में संकोच नहीं करतीं। साधारण जनता में इस प्रथा का रिवाज़ बिलकुल नहीं है। यह प्रथा उन्हीं देशों में है, जहां मुसलमानों की प्रबलता विशेष रूप से रही।

सती की प्रथा भी प्राचीन है। वि० सं० की छठी शताब्दी के आसपास से लगाकर १६ वीं शताब्दी तक के सतियों के स्मारकस्तम्भ मिलते हैं। सती पहले प्रत्येक जाति में यह रीति प्रचलित थी, परन्तु विशेष रूप से नहीं। कोई स्त्री किसी के बहकाने या आग्रह करने पर सती नहीं होती थी, किन्तु पति के साथ विशेष प्रेम होने से वह स्वयंही पति के साथ जल मरती थी। सामान्यतः सती होनेवाली स्त्रियों की संख्या सैकड़े पीछे १ या २ से अधिक नहीं रही। राजाओं में बहुविवाह की प्रथा होने के कारण उनके साथ अधिक राणियां या उपपत्नियां सती होती थीं, जैसा कि उनके स्मारकशिलाओं से पाया जाता है। ई० स० १८२९ (वि० सं० १८८६) में लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क ने भारत के अंग्रेज़ी राज्य में इस प्रथा को बन्द किया। फिर सरकार ने देशी राज्यों में भी उसे बन्द कराने का प्रयत्न किया। महाराणा सरूपसिंह ने बरसों तक टालमटूल करने के बाद वि० सं० १९१८ (ई० स० १८६१) में अंग्रेज़ी सरकार की इच्छा

के अनुसार अपने राज्य में इस प्रथा की रोक कर दी तो भी उसके साथ उसकी उपपत्नी एजांबाई सती हो गई। तत्पश्चात् यह प्रथा मेवाड़ से बिलकुल उठ गई।

साहित्य

इस राज्य में संस्कृत, डिंगल और राजस्थानी साहित्य का प्रचार बहुत कुछ रहा। संस्कृत में कविता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था और कविता भी अधिकांश में बहुत सुन्दर होती थी, जैसा कि छोटी सादड़ी के पास के भंवरमाता के मन्दिर से मिले हुए वि० सं० ५४७ (ई० स० ४६०) के गौरवंशी क्षत्रिय राजा यशगुप्त के, वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के राजा अपराजित के तथा वि० सं० १०१० (ई० स० ६५३) के राजा अल्लट के लेखों एवं चित्तोड़, कुंभलगढ़, एकलिंगजी आदि की विस्तृत प्रशस्तियों से पाया जाता है। ऐतिहासिक काव्य भी कई लिखे गये, जिनका उल्लेख प्रसङ्ग प्रसङ्ग पर किया गया है। महाराणा कुंभा ने चार नाटकों की रचना की थी। उसके समय सूत्रधार मंडन ने देवतामूर्तिप्रकरण, प्रासादमंडन, राजवल्लभ, रूपमंडन, वास्तुमंडन, वास्तुशास्त्र, वास्तुसार और रूपावतार तथा उसके भाई नाथा ने वास्तुमंजरी और उसके पुत्र गोविन्द ने उद्धारधोरिणी, कलानिधि एवं द्वारदीपिका नामक शिल्प के ग्रन्थ रचे थे। स्वयं महाराणा कुंभा ने कीर्तिस्तंभों के विषय का एक ग्रन्थ रचा और उसको शिलाओं पर खुदवाकर अपने प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ पर लगवाया था, जो नष्ट हो गया, परन्तु उसकी पहली शिला का ऊपर का आधा हिस्सा मिला है, जिससे पाया जाता है कि उसने जय और अपराजित के मतों को देखकर उस ग्रन्थ की रचना की थी। संगीत सम्बन्धी कई ग्रन्थों की रचना यहां हुई। महाराणा कुंभा ने संगीतराज, संगीतमीमांसा आदि ग्रन्थों की रचना की। वैद्यक और ज्योतिष सम्बन्धी कितने एक ग्रन्थ भी यहां लिखे गये। डिंगल और राजस्थानी भाषा में गीत तथा ऐतिहासिक काव्यों की रचना विशेष रूप से मिलती है। खुम्माणरासा, राणारासा, रायमलरासा, भीमविलास आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जैसा कि पहले कई स्थानों पर बतलाया जा चुका है। संस्कृत ग्रन्थों की रचना विशेष कर ब्राह्मणों की की हुई

मिलती है और डिंगल तथा राजस्थानी की रचना रावों, चारणों, भाटों, मोती-सरों तथा कई जैन साधुओं आदि द्वारा हुई है। अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के पहले राजाओं, सरदारों, राजकीय पुरुषों, श्रीमन्तों आदि को डिंगल या राजस्थानी भाषा की कविता से विशेष अनुराग रहा और वे स्वयं कविता की रचना भी करते थे, इतना ही नहीं, किन्तु कविता से विशेष अनुराग होने के कारण वे कवियों का यथेष्ट आदर करते और गांव, कुएं आदि समय समय पर उनको देते रहे, जिनमें से अधिकतर अबतक उनके वंशजों के अधिकार में चले आते हैं।

शासन

मेवाड़ में प्राचीनकाल से ही राजा क्षत्रिय रहे हैं। वे अपने सामन्त, अमात्य (प्रधानमन्त्री), सेनापति, सान्धिविग्रहिक[1], अक्षपटलिक[2] आदि अधिकारियों की सलाह से राज्यकार्य करते थे। यदि प्रजा को कोई शिकायत होती तो उसकी सुनाई होकर उसके निराकरण का उद्योग किया जाता था। राज्य के अलग अलग विभागों पर अलग अलग अध्यक्ष नियत रहते थे। सेना की व्यवस्था इस प्रकार होती थी कि राजा के कुटुम्बियों और सरदारों को राज्य की तरफ़ से जागीरें दी जाती थीं, जिनकी आय के अनुसार नियत सेना से उनको राजा की सेवा करनी पड़ती थी। शत्रु के साथ के युद्ध के समय आवश्यकतानुसार उन्हें अपनी सेना के साथ लड़ने को जाना पड़ता था। उन लोगों को नियत खिराज भी देना पड़ता था। इस सेना के अतिरिक्त कई राजपूत आदि खास तौर से तनख़्वाह पर नियत किये जाते थे।

शासन

शत्रुओं के साथ की लड़ाई, अपने राज्य पर के आक्रमण या पड़ोसी राज्यों पर हमला करने के समय सेनापति सेना की व्यवस्था करता था। सेना का मुख्य अंग हाथी, घोड़े और पैदल होते थे। लड़ाई के समय हाथी आड़ के तौर पर आगे खड़े किये जाते थे, परन्तु पीछे से लड़ाई में उनका उप-

युद्ध

(१) जिस राजकर्मचारी या मन्त्री के अधिकार में अन्य राज्यों से सन्धि या युद्ध करने का कार्य रहता था, उसको सान्धिविग्राहिक कहते थे।

(२) राज्य के आय-व्यय के विभाग का अध्यक्ष अक्षपटलिक कहलाता था।

योग कम होता गया और घोड़ों का प्रचार बढ़ता गया। लड़नेवाले योद्धाओं के शस्त्र पहले तलवार, कटार, बरछा, भाला और तीर-कमान होते थे एवं बचाव के लिए ढाल रहती थी। कई योद्धा अपने परतलों में दो दो तलवारें इस अभिप्राय से रखते थे कि लड़ते समय यदि एक टूट जाय तो दूसरी से काम लिया जाय। महाराणा सांगा के समय तक मेवाड़ में बन्दूकों या तोपों का प्रचार नहीं हुआ था, क्योंकि उस समय तक राजपूत बारूद[1] के उपयोग से अपरिचित थे। उनको बन्दूकों और तोपों का सामना पहले पहल बाबर के साथ की खानवे की लड़ाई में करना पड़ा था। उसके बाद मेवाड़ में बारूद का प्रचार हुआ और बन्दूकें तथा तोपें बनने लगीं। लड़ाई के समय राजपूत योद्धा अपने बचाव के लिए सिर पर लोहे की कड़ियोंवाले टोप, जिनपर कलगियां लगी रहती थीं, गर्दन से जंघा तक लोहे की कड़ियों के भिन्न भिन्न प्रकार के बख़्तर और पैरों की रक्षा के लिए वैसे ही पायजामे पहनते थे। अपने घोड़ों की रक्षा के लिए उनकी पीठ पर मोटे वस्त्रों की बनी हुई भीतर लोहे की

---

(१) बाबर के भारत में आने के पहिले मेवाड़ के पड़ोसी गुजरात के सुल्तानों के यहां बारूद का प्रवेश हो चुका था। उनका परिचय अरब और मिश्र के तुर्कों से था और रूमी मुसलमान उनकी सेना में रहते थे। सुल्तान महमूदशाह बेगड़ा के समय गुजरात में रूमियों की अध्यक्षता में तोपख़ाना बना और पोर्चुगीज़ों के साथ की लड़ाई में उनका एक बड़ा जहाज़ तोपों से उड़ाया गया था। महाराणा विक्रमादित्य के समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई हुई, उस समय गुजराती सेना के साथ तोपख़ाना था। अकबर के समय मेवाड़ में बन्दूकें और तोपें बन गई थीं। वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) में महाराणा प्रतापसिंह के समय बादशाह अकबर के सेनापति शाहबाज़ख़ां ने कुंभलगढ़ को घेरा तब क़िले के अन्दर की एक बड़ी तोप के फट जाने से लड़ाई का बहुतसा सामान जल गया था। तोपों के आविष्कार के पहले चित्तोड़, रणथंभोर आदि क़िलों में पत्थर के बड़े बड़े गोले शत्रु पर फेंकने के लिये 'मकरी' नाम का एक यन्त्र रहता था, जिसको फ़ारसी में मंजनीक और अंग्रेज़ी में केटेपुल्ट (Catapult) कहते थे। इस यन्त्र के द्वारा नीचे से क़िलों में और क़िलों से नीचे की तरफ़ पत्थर के बड़े बड़े गोले फेंके जाते थे। चित्तोड़, रणथंभोर आदि क़िलों में ऐसे गोलों के ढेर अबतक कई जगह देखने में आते हैं। गिरनार (जूनागढ़, काठियावाड़) के क़िले के एक तहख़ाने के अन्दर मन मन भर के गोले भी मैंने देखे हैं। पृथ्वीराजरासे में चौहान राजा पृथ्वीराज के समय तोपों और बन्दूकों का वर्णन है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि वह पुस्तक वि० सं० १६०० के कुछ पीछे की बनी हुई है।

शलाका लगी हुई पाखरें (प्रखरा) डालते थे, गर्दन के बचाव के लिए मोटे चमड़े की दोनों तरफ़ लटकती हुई गर्दनियां रहती थीं और सिर की रक्षा के लिए भी वैसे ही चमड़े के आवरण रहते थे, जिनके आगे कभी कभी हाथी की सूंड बनाई जाती थी, जैसी कि पत्ता के चित्र में दीख पड़ती है। इस प्रकार सजधज कर शत्रु पर धावा करते समय भाले या तलवार का उपयोग करते थे। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर घोड़ों को छोड़कर वे पैदल हो जाते और तलवार से लड़ते थे। दूरी के युद्ध में वे तीर-कमान का उपयोग करते थे। वे युद्ध से भागने की अपेक्षा लड़कर मरना पसन्द करते थे, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि युद्ध में मरा हुआ पुरुष सीधा सूर्यमंडल को जाता है। लड़ाई में घायल हुए शत्रुओं को वे उठाकर अपने यहां ले जाते और उनका इलाज़ कराते, परन्तु जो शत्रु ऐसा घायल होता कि जिसके बचने की कोई आशा न रहती तो उसको मार डालते, जिसको वे 'दूध पिलाना' कहते थे। कटार का उपयोग बहुत पास पास भिड़ जाने पर होता था अथवा घायल होकर गिरने पर यदि शत्रु मारने को निकट आ जाता तो किया जाता था। जब शत्रु क़िले के नज़दीक आ जाता तब उसकी दीवार के सीधे और तिरछे छिद्रों में से तीर या गोली मारते और उनके सीढ़ियां लगाकर दीवार पर चढ़ने की कोशिश करने पर उबलता हुआ तेल एवं उसमें तर कर जलती हुई रुई या कपड़े उनपर डालते थे। क़िलों में संग्रह किये हुए खाद्य पदार्थ के खूट जाने पर स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर कर जल जातीं और राजपूत गंगाजल पी, केसरिया वस्त्र, शिर में तुलसी और गले में रुद्राक्ष की माला धारण कर तथा 'कसूंबा' (जल में घोला हुआ अफ़ीम) पीकर हाथ में तलवार लिए दरवाज़ा खोल देते और शत्रु पर टूट पड़ते थे। उस समय वे प्राणों का मूल्य सस्ता और वीर-कीर्ति का महँगा समझते थे। राजपूत प्राण रहते हुए अपना बख़्तर[1] शस्त्र या

---

(१) अकबर से पराजित गुजरात के सुलतान मुजफ़्फ़रशाह के बंगाल से भागकर फिर गुजरात में पहुंचने और वहां उपद्रव मचाने की ख़बर पाकर बादशाह (अकबर) जगन्नाथ कछवाहा, रायसल दरबारी (शेखावत), जयमल कछवाहा और मानसिंह आदि को साथ लेकर उसपर चढ़ा। लड़ाई के समय कछवाहा जयमल, जो रूपसिंह का पुत्र और भारमल का भतीजा था, एक भारी बख़्तर पहने हुए था। अकबर ने उस बख़्तर को उसके लिये उपयुक्त

घोड़ा[1] शत्रु को कभी नहीं देता था। लड़ाइयों के समय रणवाद्य बजाये जाते और चारण, भाट आदि लोग पहले के पुरुषों की वीरगाथा के छन्द उच्चस्वर से सुना सुनाकर उनके रणोत्साह को बढ़ाते रहते थे।

राजपूत वीरों की वीरलीला का मुख्य क्षेत्र मेवाड़ रहा है। चित्तोड़ के क़िले की रज का एक एक कण राजपूत वीरों के रुधिर से अनेक वार तर हुआ है। कुंभलगढ़, मांडलगढ़, हल्दीघाटी, दीवेर, गोगूंदा आदि अनेक रणभूमियां प्रसिद्ध हैं। हज़ारों ग्रामों में युद्ध में प्राण देनेवाले वीरों के स्मारकस्तंभ अब-तक विद्यमान हैं, जो उनकी वीरता एवं कीर्ति को जीवित रखे हुए हैं।

न देखकर उतरवा दिया और अपने निजी बख़्तरों में से एक अच्छा और हलका बख़्तर उसे पहना दिया। उस समय राठोड़ मालदेव के पोते करण के बख़्तर न देखकर बादशाह ने वह भारी बख्तर उसे दे दिया। जब जयमल नये बख़्तर को पहने हुए अपने पिता के पास पहुंचा तो उस(पिता)ने उससे पूछा कि अपना बख्तर कहां है? इसपर जयमल ने सारा वृत्तान्त उसे कह सुनाया।

कछवाहों और राठोड़ों में वैर-भाव था, जिससे जयमल के पिता(रूपसिंह)को यह बात बुरी लगी और उसने बादशाह से,यह कहकर अपना बख़्तर मांगा कि वह मेरे पूर्वजों का है और शुभ तथा विजय का चिह्न है। बादशाह ने उसे कहा कि मैंने भी अपना शुभ और विजय देनेवाला बख्तर तुम्हें दिया है, तो भी रूपसिंह को सन्तोष न हुआ और वह विना बख़्तर के ही लड़ने लगा। इसपर बादशाह भी अपना बख़्तर उतारकर युद्ध के लिये तैयार हुआ, जिससे कछवाहा भगवानदास ने बहुत समझा बुझाकर रूपसिंह को बख़्तर पहना दिया और बादशाह से यह कहा कि रूपसिंह ने भंग के नशे में इतनी बात कही थी अतएव उसे क्षमा की जाय।

(१) जसवन्तराव होल्कर सिन्धिया से हारकर मेवाड़ में आया और उसने नाथद्वारे को लूटना चाहा। इसकी सूचना वहां के गुसांई ने महाराणा भीमसिंह को दी। इसपर महाराणा ने अपने कई सरदारों को सेना सहित वहां भेजा। वे लोग गुसांई और मूर्तियों को लेकर चले, इतने में कोठारिये का रावत विजयसिंह भी उनकी सहायता के लिये जा पहुंचा। पहले वे लोग ऊनवास गांव में ठहरे। वहां से आगे कुछ भय न देखकर विजयसिंह अपने ठिकाने को रवाना हुआ। मार्ग में जसवन्तराव होल्कर की सेना ने उस बहादुर को घेरकर कहा 'शस्त्र और घोड़े दे जाओ'। शस्त्र और घोड़ों को देने में अपना अपमान समझकर उस वीर रावत ने अपने घोड़ों को मार डाला और स्वयं वीरतापूर्वक शत्रुओं पर टूट पड़ा। शत्रु सेना में हज़ारों सैनिक थे, जो विजयसिंह की बहादुरी पर शाबास! शाबास! बोलते और अपनी जान का ख़तरा समझते थे। अन्त में वह वीर अपने राजपूतों सहित वहीं मारा गया।

न्याय के लिए वर्तमान शैली की अदालतें पहले नहीं थीं और न विशेष लिखा पढ़ी होकर बड़ी बड़ी मिस्लें बनती थीं। कभी कभी राजा और विशेष-

न्याय और दंड

कर न्यायाधीश सब प्रकार के मुक़द्दमे फ़ैसल करते थे। न्याय मिताक्षरा टीकासहित याज्ञवल्क्यस्मृति या उनके मेवाड़ी भाषानुवाद के आधार पर होता था। गांवों के कितने ही मुक़द्दमे तो वहां की पंचायतों से फ़ैसल हो जाते थे और कुछ ज़िलों के हाकिम ते कर देते थे। संगीन जुर्म का फ़ैसला न्यायाधीश देता था। अलग अलग प्रकार के अपराधों के लिए अलग अलग तरह की सज़ाएं दी जाती थीं। शिरश्छेद, अंगच्छेद, देशनिर्वासन, कारागार, जुर्माना आदि सज़ाएं भी होती थीं। अदालती काम पहले आज के जैसा जटिल न था। मुसलमानों के संबन्ध के ख़ास दावे उनकी शरह के अनुसार फ़ैसल होते थे।

राज्य की आय कई प्रकार से होती थी, जिनमें विशेष तो भूमिकर से होती थी। पहले भूमि की पैदाइश का छठा हिस्सा अनाज के रूप में लिया

आय-व्यय

जाता था। पीछे से कुछ अधिक लिया जाने लगा। दूसरी आय राज्य में आनेवाले और उससे बाहर जानेवाले माल पर का कर (चुंगी) था, जो नक़द रुपयों में लिया जाता था। आय का तीसरा ज़रिया चांदी, शीशे और लोहे आदि की खानें थीं। पहले जावर की चांदी की खान से राज्य को बड़ी आय होती थी। सरदारों से नियत खिराज (छटूंद) लिया जाता था। इनके अतिरिक्त दंड, पशुविक्रय और ज़ुर का कर तथा कई अन्य छोटी बड़ी लागतों से भी आय होती थी। जंगल राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थी, परन्तु पशुओं के लिए गोचर भूमि छोड़ी जाती थी और पहाड़ी प्रदेश के भीलों के लिए घास-लकड़ी एकत्र करने और उनको बेचने का प्रतिबन्ध न था। राज्य की तरफ़ से बनवाये हुए मन्दिरों आदि के निर्वाह के लिए गांव, कुएं या भूमि दी जाती थी और उनका साधारण ख़र्च दुकानों, घरों, कुओं, वस्तुओं आदि पर के नियत कर से चलता था।

व्यय के मुख्य अंग राज्यकार्य, तालाब आदि सार्वजनिक कार्य, सेना-विभाग तथा धार्मिक संस्थाएं थे। पहले देनलेन में आज के समान रुपयों की विशेष आवश्यकता नहीं रहती थी। कई सैनिकों, नौकरों आदि को वेतन में

विशेषरूप से अन्न और थोड़े से रुपये मिलते थे। साधारण जनता में भी बहुतसी वस्तुएं अन्न देकर या एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु ली जाती थी। रुपयों का उपयोग कम होता था।

राज्य के अधिकांश लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा, इसलिए कृषकों की सुविधा का पूरा खयाल रखा जाता था। काली मिट्टी की ज़मीन की, जिसको 'माळ' कहते हैं, सिंचाई के लिए कुओं की ज़रूरत नहीं होती। उसमें विना सिंचाई के ही दोनों फ़सलें हो जाती हैं, परन्तु अन्यत्र खेती की सिंचाई के लिए जगह जगह कुए बने हुए हैं, जिनपर के अरहट या चरसों के द्वारा खेतों में जल पहुंचाया जाता है। जगह जगह छोटे बड़े तालाब बने हुए हैं, जिनसे सिंचाई होती है और पानी कम होने पर उनके अन्दर के भागों में भी खेती होती है। जयसमुद्र, राजसमुद्र, उदयसागर, पीछोला, फ़तहसागर आदि बड़े बड़े तालाबों की नहरों से भी बहुत कुछ आबपाशी होती है। नदियों से भी नालियां काटकर कई जगह खेतों में जल पहुंचाया जाता है। पहाड़ों के ढालों आदि पर, जहां हल नहीं चलाये जा सकते, भील लोग जगह जगह लकड़ियें काटकर उनके ढेर लगाते और उनको जला देते हैं, जिसकी राख खाद का काम देती है। फिर वे लोग वहां की ज़मीन को खोदकर उसमें मक्का वग़ैरह अन्न बोते हैं। ऐसी खेती को वालरा (वल्लर) कहते हैं। इस प्रकार की खेती प्राचीन काल से होती आई है। पहले अफ़ीम की खेती से किसानों की बड़ी आय होती थी, परन्तु पिछले वर्षों उसके बन्द हो जाने से उनकी वह आय कम हो गई।

कृषि और सिंचाई का प्रबन्ध

पहले देश की उत्पन्न वस्तुओं से ही विशेषकर जनसाधारण का काम चल जाता था, जिससे लोग सन्तुष्ट रहते और उनकी आर्थिक स्थिति साधारणतया अच्छी रहती थी। अलबत्ता क़हतसाली के वर्षों में बाहर से खाद्य-पदार्थ लाने के साधन कम होने के कारण बहुत से ग़रीब लोग मर जाते थे। मुसलमानों और मरहटों के आक्रमण के समय प्रजा के लुट जाने से देश का अधिकांश भाग ऊजड़ और निर्धन सा हो गया। पीछे शांति के समय देश की दशा सुधरती गई, किन्तु जब से भड़कीली और विशेष सुन्दर चीज़ें बाहर से आने लगीं और लोगों की रुचि उनकी तरफ़ बढ़ी तब से बहुतसे

आर्थिक स्थिति

देशी व्यवसाय नष्ट हो गये। व्यापार के मार्ग की सहूलियत होने के कारण देश की उत्पन्न वस्तुएं बाहर जाने लगीं, जिससे बाहर से द्रव्य तो आने लगा, परन्तु महँगाई बढ़ती गई, जिससे लोगों की स्थिति पहले जैसी न रही, तो भी लोग सामान्यतः संतुष्ट हैं।

शिल्पकला

प्राचीनकाल में मेवाड़ में शिल्प-कला बहुत ही उन्नत दशा में थी। बाड़ोली, मैनाल, तिलिस्मा, बीजोल्यां, घोड़, नागदा, चित्तोड़ आदि के कई मन्दिरों में तक्षणकला के अपूर्व नमूने मिलते हैं। बाड़ोली के मंदिरों की, जो आबू (देलवाड़ा) के जैनमंदिरों से भी प्राचीन हैं, शिल्प-कला के विषय में कर्नल टॉड ने लिखा है "उनकी विचित्र और भव्य बनावट का यथावत् वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। यहां मानो हुनर का ख़ज़ाना खाली कर दिया गया है। उसके स्तम्भ, छतें और शिखर का एक एक पत्थर छोटे से मंदिर का दृश्य बतलाता है। प्रत्येक स्तम्भ पर खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। यह मंदिर सैकड़ों वर्षों का पुराना होने पर भी अबतक अच्छी स्थिति में खड़ा है"। इसी तरह बहुतसे अन्य स्थानों के मंदिरों में शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं। वि० सं० ७१८ के राजा अपराजित के समय के कुटिल लिपि के शिलालेख के छोटे अक्षरों और स्वरों की मात्राओं को ऐसी सुन्दरता से खोदा है कि उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। ऐसा ही कई अन्य शिलालेखों के बारे में भी कहा जा सकता है। अनेक स्थानों से प्राप्त कितनी एक पाषाण और धातु की प्राचीन मूर्त्तियां भी तक्षणकला के उत्तम नमूने हैं। मुसलमानों के समय से राजमहलों, मन्दिरों और सम्पन्न लोगों के भवनों में मुसलमानी (सारसैनिक्) शैली का मिश्रण होता गया और अब उनमें अंग्रेज़ी शैली का भी मिश्रण होने लगा है।

चित्रकला

मेवाड़ में वि० सं० की १३ वीं शताब्दी के पूर्व का कोई चित्र देखने में नहीं आया। उस काल से पूर्व के राजाओं आदि के कई चित्र मिलते हैं, जो वास्तव में समकालीन नहीं, किन्तु पीछे के बने हुए हैं। राज्य में और सरदारों तथा सम्पन्न पुरुषों के यहां चित्रों के संग्रह मिलते हैं, जिनमें अनेक देवी-देवताओं, राजाओं, सरदारों, वीर एवं धनाढ्य पुरुषों, धर्माचार्यों,

राजाओं के दरबारों, सवारियों, तुलादानों, राजमहलों, जलाशयों, उपवनों, रण-खेत की लड़ाइयों, शिकार के दृश्यों, पर्वतीय छटाओं, महाभारत और रामायण के कथा-प्रसंगों, साहित्य शास्त्र, नायक-नायिकाओं, रसों, ऋतुओं, राग-रागिनियों आदि के कई सुन्दर चित्र पाये जाते हैं। ये चित्र बहुधा मोटे काग़ज़ों पर मिलते हैं। ऐसे संग्रह छूटे पत्रों की हस्तलिखित पुस्तकों के समान ऊपर नीचे लकड़ी की पाटी रखकर कपड़े के वेष्टनों से बंधे रहते हैं, जिनको 'जोत-दान' कहते हैं। कई राजाओं आदि के पुराने पूरे कद के चित्र भी मिलते हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त कामशास्त्र या नायक नायिका भेद के लिखित ग्रन्थों, गीतगोविन्द, भागवत आदि धार्मिक पुस्तकों, शृंगाररस आदि की वार्ताओं एवं धार्मिक कथाओं की हस्तलिखित पुस्तकों में भी प्रसंग प्रसंग पर भिन्न भिन्न विषयों के भावसूचक सुन्दर चित्र भी मिलते हैं, जिनमें कितने ही चित्र-कला के सुन्दर नमूने हैं। नाथद्वारा के वर्तमान टीकायत गोस्वामी महाराज गोवर्धनलालजी ने एक लाख से अधिक रुपये व्यय कर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत को नाथद्वारा के प्रसिद्ध चित्रकारों से सचित्र तैयार करवाया है। यह अमूल्य ग्रन्थ भी चित्रकला की दृष्टि से देखने योग्य है। वर्तमान समय में नाथद्वारा और उदयपुर दोनों चित्रकला के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं, जिनमें नाथद्वारा उद-यपुर से इस विषय में बढ़कर है। राजाओं के महलों, गृहस्थों की हवेलियों आदि में दीवारों पर तथा कई मंदिरों की छतों और गुंबज़ों में समय समय के भिन्न भिन्न चित्राङ्कण देखने में आये हैं।

संगीत में गीत (गाना), वाद्य (बजाना) और नाट्य (नाचना) का समावेश होता है। मेवाड़ के राजाओं के यहां गाने और बजाने की चर्चा ठेठ से चली आती है और उसके लिये अच्छे अच्छे गवैये नौकर रहते हैं। नृत्य नाटकों में होता था और स्त्रियां भी नाचती थीं। भारत में राज-कुमारियों को संगीत की शिक्षा देने के लिये पुराने उदाहरण मिलते हैं। शिव का तांडव नृत्य तो प्रसिद्ध ही है।

संगीत

महाराणा कुंभा संगीत में बड़ा निपुण था। उसने संगीतराज और संगीतमीमांसा नाम के दो संगीत के ग्रन्थों की रचना की थी और उसकी बनाई हुई जयदेव के संगीत के ग्रन्थ गीतगोविन्द और शारङ्गदेव के संगीतरत्नाकर

की टीकाएं उपलब्ध हुई हैं। एकलिङ्गमाहात्म्य के अन्त में अलग अलग देवताओं की स्तुतियों का एक अध्याय है, जिसकी रचना महाराणा कुंभा ने अलग अलग रागों में की थी. और प्रत्येक स्तुति में उस(कुंभा)का नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि कुंभा संगीत का अच्छा ज्ञाता और प्रेमी था। महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के ज्येष्ठ कुंवर भोजराज की स्त्री मीरांबाई संगीत में बड़ी निपुण थी। उसके रचे हुए भजन व पद अबतक भारत में प्रसिद्ध हैं, इतना ही नहीं, किन्तु उसका बनाया हुआ 'मीरांबाई का मलार' नामक राग भी अबतक प्रचलित है। मेवाड़ में संगीतवेत्ताओं का सदा आदर रहा और कई अच्छे अच्छे गवैये राज्य में नौकर रहते चले आ रहे हैं। प्रसंग प्रसंग पर राजा लोग उनका गान श्रवण कर अपना दिल बहलाव करते आ रहे हैं। बड़े बड़े सरदारों के यहां भी ऐसा ही होता आ रहा है।

शिव का ताण्डव नृत्य उद्धत माना गया, परन्तु पार्वती का मधुर एवं सुकुमार नृत्य 'लास्य' नाम से प्रसिद्ध रहा। पर्दे की प्रथा के साथ साथ स्त्रियों में नृत्यकला की अवनति होती गई, परन्तु राजाओं की राणियों से लगाकर साधारण लोगों की स्त्रियां तक विवाह आदि शुभ अवसरों पर अपने अपने स्थानों में नाचती हैं, किन्तु उनका नृत्य प्राचीन शैली के अनुसार नहीं। अब तो उसकी प्राचीन शैली दक्षिण के तंजोर आदि स्थानों में तथा कहीं कहीं अन्यत्र ही पाई जाती है।

परिशिष्ट-संख्या १

गुहिल से लगाकर वर्तमान समय तक की मेवाड़ के राजाओं की वंशावली

१ गुहिल (गुहदत्त)
२ भोज
३ महेन्द्र
४ नाग (नागादित्य)
५ शीलादित्य (शील) वि० सं० ७०३
६ अपराजित वि० सं० ७१८
७ महेन्द्र (दूसरा)
८ कालभोज (बापा) वि० सं० ७९१, ८१०
९ खुम्माण वि० सं० ८१०
१० मत्तट
११ भर्तृभट (भर्तृपट्ट)
१२ सिंह
१३ खुमाण (दूसरा)
१४ महायक
१५ खुमाण (तीसरा)
१६ भर्तृभट (भर्तृपट्ट, दूसरा) वि० सं० ९९९, १०००
१७ अल्लट वि० सं० १००८, १०१०
१८ नरवाहन वि० सं० १०२८
१९ शालिवाहन
२० शक्तिकुमार वि० सं० १०३४
२१ अंबाप्रसाद
२२ शुचिवर्मा
२३ नरवर्मा
२४ कीर्तिवर्मा

२५ योगराज
२६ वैरट
२७ हंसपाल
२८ वैरिसिंह
२९ विजयसिंह वि० सं० ११६४, ११७३
३० अरिसिंह
३१ चोड़सिंह
३२ विक्रमसिंह
३३ रणसिंह (कर्णसिंह)
मेवाड़ की रावल शाखा
सीसोदे की राणा शाखा
३४ क्षेमसिंह
३५ सामन्तसिंह
वि० सं० १२२८
डूंगरपुर की शाखा
३६ कुमारसिंह
३७ मथनसिंह
३८ पद्मसिंह
३९ जैत्रसिंह वि० सं० १२७०, १३०९.
४० तेजसिंह वि० सं० १३१७, १३२४.
४१ समरसिंह वि० सं० १३३०, १३५८.
४२ रत्नसिंह वि० सं० १३५९, १३६०.
१ माहप
२ राहप
३ नरपति
४ दिनकर
५ जसकरण
६ नागपाल
७ पूर्णपाल
८ पृथ्वीमल्ल
९ भुवनसिंह
१० भीमसिंह
११ जयसिंह
१२ लक्ष्मणसिंह
वि० सं० १३६०
अरिसिंह
४३ हंमीरसिंह
१३ अजयसिंह

४३ महाराणा हंमीरसिंह वि० सं० १३८३(?)-१४२१ (?)
४४ „ क्षेत्रसिंह वि० सं० १४२१(?)-१४३९
४५ „ लक्षसिंह वि० सं० १४३९-१४७८ (?)
४६ „ मोकल वि० सं० १४७८(?)-१४९०
४७ „ कुंभकर्ण (कुंभा) वि० सं० १४९०-१५२५
४८ „ उदयसिंह (ऊदा) वि० सं० १५२५-१५३०
४९ „ रायमल वि० सं० १५३०-१५६६
५० „ संग्रामसिंह (सांगा) वि० सं० १५६६-१५८४
५१ „ रत्नसिंह (दूसरा) वि० सं० १५८४-१५८८
५२ „ विक्रमादित्य वि० सं० १५८८-१५९३
बणवीर वि० सं० १५९३-९४
५३ „ उदयसिंह (दूसरा) वि० सं० १५९४-१६२८
५४ „ प्रतापसिंह वि० सं० १६२८-१६५३
५५ „ अमरसिंह वि० सं० १६५३-१६७६
५६ „ कर्णसिंह वि० सं० १६७६-१६८४
५७ „ जगत्सिंह वि० सं० १६८४-१७०६
५८ „ राजसिंह वि० सं० १७०६-१७३७
५९ „ जयसिंह वि० सं० १७३७-१७५५
६० „ अमरसिंह (दूसरा) वि० सं० १७५५-१७६७
६१ „ संग्रामसिंह(दूसरा) वि० सं० १७६७-१७९०
६२ „ जगत्सिंह (दूसरा) वि० सं० १७९०-१८०८
६३ „ प्रतापसिंह (दूसरा) वि० सं० १८०८-१८१०
६४ „ राजसिंह (दूसरा) वि० सं० १८१०-१८१७
६५ „ अरिसिंह (दूसरा) वि० सं० १८१७-१८२९
६६ „ हम्मीरसिंह (दूसरा) वि० सं० १८२९-१८३४
६७ „ भीमसिंह वि० सं० १८३४-१८८५
६८ „ जवानसिंह वि० सं० १८८५-१८९५
६९ „ सरदारसिंह वि० सं० १८९५-१८९९

७० महाराणा सरूपसिंह वि० सं० १८९९–१९१८
७१ „ शंभुसिंह वि० सं० १९१८–१९३१
७२ „ सज्जनसिंह वि० सं० १९३१–१९४१
७३ „ फ़तहसिंह वि० सं० १९४१–१९८७
७४ „ सर भूपालसिंहजी वि० सं० १९८७ (विद्यमान)

परिशिष्ट–संख्या २

गौर नामक अज्ञात क्षत्रिय-वंश

अनेक पुरातत्ववेत्ताओं और पुरातत्व विभागों के प्रयत्न से अब तक हज़ारों शिलालेख प्रसिद्धि में आये हैं, किन्तु गौरवंश का कोई शिलालेख नहीं मिला था, जिससे उस वंश का अस्तित्व अंधकार में ही रहा। महाराणा रायमल के समय के वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) के एकलिङ्गजी के मंदिर के दक्षिण द्वार के सामनेवाली बड़ी प्रशस्ति में रायमल और मांडू के सुलतान ग़यासशाह खिलजी के बीच की लड़ाई का वर्णन करते हुए लिखा है "इस लड़ाई में एक गौर वीर प्रतिदिन बहुत से शकों (मुसलमानों) को मारता था, इसलिये क़िले के उस शृंग (बुर्ज़) का नाम गौरशृंग (गोराबुर्ज़) रखा गया। फिर रायमल ने उसी शृंग पर चार और गौर योद्धाओं को नियत किया। बड़ी ख्याति पाया हुआ वह (पहला) गौर वीर मुसलमानों के रुधिर-स्पर्श से अपने को अपवित्र हुआ जानकर उसकी शुद्धि के लिये सुरसरित् (स्वर्गगंगा) के जल में स्नान करने की इच्छा से स्वर्ग को सिधारा[1]" अर्थात् मारा गया। इस अवतरण से

---

(१) तन्वानं तुमुलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गलद्-
गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लो नृपः ॥ ६८ ॥
कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकौघं युद्धेष्वस्मिन् प्रत्यहं संजहार ।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्राकारांशश्चित्रकूटैकशृंगं ॥ ६९ ॥

यह तो पाया जाता है कि इसमें 'गौर' शब्द वंशसूचक है न कि व्यक्तिसूचक।

काव्य की चार रीतियों में एक गौडी, मद्यों में गौडी (गुड़ से बना हुआ मद्य), गौडवध (काव्य), गौडपाद (आचार्य), गौड (देश) आदि शब्दों से संस्कृत के विद्वान् भलीभांति परिचित थे। ऐसी दशा में प्रशस्तिकार गौड के स्थान में गौर शब्द का प्रयोग करे यह संभव नहीं। गौर क्षत्रिय-वंश का कोई लेख न मिलने और उस वंश का नाम अज्ञात होने के कारण महाराणा रायमल का वृत्तान्त लिखते समय मुझे लाचार गौर क्षत्रियों को गौड क्षत्रिय अनुमान करना पड़ा, जो अब मुझे पलटना पड़ता है।

ई० स० १९३० (वि० सं० १९८७) में मुझे एक मित्र-द्वारा यह सूचना मिली कि उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी से दो मील दूरी पर एक पहाड़ी पर के भमर माता के मंदिर में एक शिलालेख है, जो किसी से पढ़ा नहीं जाता। सादड़ी का ज़िला पहले दक्षिणी ब्राह्मणों की जागीर में रहा था, इसलिये उस लेख का मोड़ी लिपि में होना मैंने अनुमान किया, परन्तु अनुसंधान करने पर यह उत्तर मिला कि उसकी लिपि मोड़ी नहीं, किन्तु उड़िया है और उसकी एक पंक्ति सीधी तो दूसरी फ़ारसी के समान उलटी अर्थात् दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी हुई है। इस कल्पित बात पर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि कोई आर्य लिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को कभी नहीं लिखी गई। इस वास्ते मैंने स्वयं वहां जाकर उस लेख को पढ़ा तो ज्ञात हुआ कि वह लेख उस समय की

योधानमुत्र चतुरश्चतुरो महोद्यान्
गौराभिधान् समधिशृंगमसावचैषीत्।
श्रीराजमल्लनृपतिः प्रतिमल्लगर्व-
सर्वस्वसंहरणचंडभुजानिवाद्रौ ॥ ७० ॥

मन्ये श्रीचित्रकूटाचलशिखरशिरोध्यासमासाद्य सद्यो
यो योधो गौरसंज्ञो सुविदितमहिमा प्रापदुच्चैर्नभस्तत्।
प्रध्वस्तानेकजामच्छकविगलदसृक्पूरसंपर्कदोषं
निःशेषीकर्तुमिच्छुर्व्रजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥ ७१ ॥

भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स्, पृष्ठ १२१.

ब्राह्मी लिपि का है और भाषा उसकी संस्कृत है। वह गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का है और एक काली शिला पर खुदा हुआ है। उसमें १७ पंक्तियां हैं, जिनमें १६ पंक्तियां श्लोकबद्ध हैं और अन्तिम पंक्ति गद्य की है। भमर माता का मंदिर बहुत प्राचीन होने से उसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ पाया जाता है और निजमंदिर (गर्भगृह) का नीचे का थोड़ासा हिस्सा ही प्राचीन रूप में बचने पाया है। मंदिर के टूट जाने पर यह शिलालेख अरक्षित दशा में पड़ा रहा और लोगों ने उसपर मसाला पीसा, जिससे उसका लगभग एक चौथाई अंश अस्पष्ट हो गया है, तो भी जो अंश बचने पाया है वह भी बड़े महत्व का है। पीछे से उक्त मंदिर के जीर्णोद्धार के समय वह शिलालेख एक ताक़ में लगाया गया, जहां मेरे देखने में आया। बचे हुए अंश का आशय इस प्रकार है—

प्रारम्भ के दो श्लोक देवी के वर्णन के हैं। आगे गौरवंश के क्षत्रिय राजाओं का वंशक्रम दिया हुआ है। उक्त वंश में राजा धान्यसोम अभिषिक्त हुआ। उसके पीछे राज्यवर्द्धन हुआ। उसका पुत्र राष्ट्र हुआ, जिसने शत्रुओं के राष्ट्रों को मथ डाला। उसका पुत्र यशगुप्त हुआ। वह बड़ा प्रतापी, दानी, यज्ञकर्ता और शत्रुओं का विजेता था। उस गौर महाराज ने वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० (ई० स० ४९१ जनवरी) को पहाड़ पर अपने माता-पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मंदिर बनवाया[1]। इस लेख से निश्चित है कि गौर

---

(१) तस्याः प्रणम्य प्रकरोम्यहमेव·····जस्रं
[कीर्ति शु]भां गुणगणौघम[यीं नृपाणाम्] [२]
·············कुलो[द्भ]व व[ङ्श]गौराः
क्षात्रे प[दे] सतत दीक्षित···शौंडाः।
·························
···धान्यसोम इति क्षत्रगणस्य मध्ये [४]
·························
·············किल राज्यजितप्रतापो
यो राज्यवर्द्धण(न) गुणैः कृतनामधेयः
···························· [५]

नामक क्षत्रिय वंश वि० सं० की ६ ठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादड़ी के आसपास के प्रदेश पर उसके वंशवालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय भी गौरवंशी क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और बड़ी वीरता से लड़े थे, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। वि० सं० की १४ वीं शताब्दी में भी गौरवंशी राजपूत मेवाड़ के राजाओं की सेवा में थे। चित्तोड़ के क़िले पर पद्मिनी के महलों से कुछ दूर दक्षिण पूर्व में दो गुंबज़दार मकान हैं, जिनको लोग गोरा बादल के महल कहते हैं। अलाउद्दीन खिलजी के साथ की चित्तोड़ के महारावल रत्नसिंह की लड़ाई में गोरा और बादल बड़ी वीरता से लड़ते हुए मारे गये ऐसा पिछले ग्रन्थों में लिखा मिलता है। हि० स० ६४७ (वि० सं० १५६७=ई० स० १५४०) में मलिक महम्मद जायसी ने पद्मावत नाम

....

जातः सुतो करिकरायतदीर्घबाहुः ।
यस्यारिराष्ट्रमथनोद्यतदीप्तचक्रः
नाम्ना स राष्ट्र इति प्रोद्गतपुन्य(ण्य)कीर्तिः [६]

सोयम् यशोभरणभूषितसर्वगात्रः
प्रोत्फुल्लपद्म···तायतचारुनेत्रः ।
दक्षो दयालुरिह शासितशत्रुपक्षः
क्ष्मां शासति····यशगुप्त इति क्षितीन्दुः [८]

तेनेयं भूतधात्री क्रतुभिरिह चिता[पूर्व]शृंगेव भाति
प्रासादैरद्रितुङ्गैः शशिकरवपुषैः स्थापितैः भूषिताद्य
नानादानेन्दुशुभ्रैर्द्विजवरभवनैर्येन लक्ष्मीर्व्विभक्ता
········ स्थितयशवपुषा श्रीमहाराजगौरः [११]

यातेषु पंचसु शतेष्वथ वत्सराणाम्
द्वे विंशती समधिकेषु सत्सप्तकेषु
माघस्य शुक्लदिवसे सगमत्प्रतिष्ठां
प्रोत्फुल्लकुन्दधवलोज्वलिते दशम्याम् [१२]

मूललेख की छाप से

की कथा बनाई तथा वि० सं० १६८० (ई० स० १६२३) में कवि जटमल ने गोरा बादल की कथा रची। इन दोनों पुस्तकों में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है, परन्तु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की मृत्यु से क्रमशः २३७ और ३२० वर्ष पीछे बनी हैं। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा और बादल दो पुरुष नहीं, किन्तु एक ही पुरुष का सूचक नाम होना संभव है, जैसा कि राठोड़ दुर्गादास, सीसोदिया पत्ता आदि। गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौर(गोरा)वंश के बादल नामक पुरुष से हो। वंशसूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से ये दो नाम अलग अलग मान लिये हों।

परिशिष्ट-संख्या ३

पद्मावत का सिंहलद्वीप

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की बड़ी मनोरंजक कथा लिखी, जिसका आधार तो ऐतिहासिक घटना है, किन्तु ऊपर की भित्ति अपनी रचना को रोचक बनाने के लिए विशेषकर कल्पना से खड़ी की गई है। उसमें लिखा है "सिंहलद्वीप (सिंहल, लंका) में गंध्रवसेन (गंधर्वसेन) नामक राजा था। उसकी पटरानी चंपावती से पद्मावती (पद्मिनी) नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। उसके पास हीरामन नाम का एक सुन्दर और चतुर तोता था। एक दिन वह पिंजरे से उड़ गया और एक बहेलिये-द्वारा पकड़ा जाकर एक ब्राह्मण को बेचा गया। उस(ब्राह्मण)ने उसको चित्तोड़ के राजा रतनसेन (रत्नसिंह) को एक लाख रुपये में बेचा। रतनसेन की राणी नागमती ने एक दिन शृंगार कर तोते से पूछा, क्या मेरे जैसी सुन्दरी जगत् में कोई है ? इसपर तोते ने उत्तर दिया कि जिस सरोवर में हंस नहीं आया वहां बगुला भी हंस कहलाता है। रतनसेन तोते के मुख से पद्मिनी के रूप, गुण

आदि की प्रशंसा सुनकर उसपर मुग्ध हो गया और योगी बनकर तोते सहित सिंहल को चला। अनेक राजकुमार भी उसके चेलों के रूप में उसके साथ हो लिए। कई संकट सहता हुआ राजा सिंहल में पहुंचा। तोते ने पद्मावती के पास जाकर रतनसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की प्रशंसा कर कहा कि तेरे योग्य वर तो वही है और वह तेरे प्रेम से मुग्ध होकर यहां आ पहुंचा है। वसंत पंचमी के दिन वह बनठनकर उस मंदिर में गई, जहां रतनसेन ठहरा हुआ था। वहां वे दोनों एक दूसरे को देखते ही परस्पर प्रेम-बद्ध हो गये, जिससे पद्मावती ने उसी से विवाह करना ठान लिया। अन्त में गंधर्वसेन ने उसके वंश आदि का हाल जानने पर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया और रतनसेन बड़े आनन्द के साथ कुछ समय तक वहीं रहा। उधर चित्तोड़ में उसकी वियोगिनी राणी नागमती ने अपने पति की राह देखते हुए एक वर्ष बीत जाने पर एक पक्षी के द्वारा अपने दुःख का सन्देश राजा के पास पहुंचाया। इसपर वह वहां से विदा होकर अपनी राणी सहित चला और समुद्र के भयंकर तूफ़ान आदि आपत्तियां सहता हुआ अपनी राजधानी को लौटा। राघवचेतन नाम के एक ब्राह्मण ने पद्मिनी के रूप की तारीफ़ दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से की, जिसपर वह (अलाउद्दीन) चित्तोड़ पर चढ़ आया। गोरा, बादल आदि अनेक सामंतों सहित रत्नसिंह मारा गया और पद्मिनी उसके साथ सती हुई"।

इस कथा में सिंहलद्वीप का समुद्र के बीच होना बतलाया है और उसी को लंका भी कहा है। अब हमें यह निश्चय करना आवश्यक है कि पद्मावत का सिंहलद्वीप वास्तव में समुद्रस्थित लंका है अथवा जायसी ने भ्रम में पड़कर किसी अन्य स्थान को समुद्रस्थित लंका मानकर अपने वर्णन को मनोहर बनाने का उद्योग किया है। इसका निश्चय करने के पूर्व हमें चित्तोड़ के स्वामी रत्नसिंह के राजत्वकाल की ओर दृष्टि डालना आवश्यक है। रत्नसिंह चित्तोड़ के रावल समरसिंह का पुत्र था। रावल समरसिंह के समय के ८ शिलालेख अब तक मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० कार्तिक सुदि १ का चीरवे गांव का और अन्तिम वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० का चित्तोड़ का है। इन शिलालेखों से निश्चित है कि वि० सं० १३५८ माघ सुदि

१० तक तो समरसिंह जीवित था। रत्नसिंह के समय का केवल एक शिलालेख वि० सं० १३५९ माघ सुदि ५ बुधवार का उदयपुर-चित्तोड़-रेलवे के कांकरोली रोड स्टेशन से ८ मील दूर दरीवा स्थान के माता के मंदिर के स्तम्भ पर खुदा हुआ है। इन लेखों से निश्चित है कि समरसिंह की मृत्यु और रत्नसिंह का राज्याभिषेक वि० सं० १३५८ माघ सुदि १० और वि० सं० १३५९ माघ सुदि ५ के बीच किसी समय होना चाहिये।

रत्नसिंह को राज्य करते हुए एक वर्ष भी नहीं होने पाया था कि पद्मिमी के वास्ते चित्तोड़ की चढ़ाई के लिए सुलतान अलाउद्दीन ने सोमवार ता० ८ जमादि उस्सानी हि० स० ७०२ (वि० सं० १३५९ माघ सुदि ९=ता० २८ जनवरी ई० स० १३०३) को प्रस्थान किया, छः महीने के क़रीब लड़ाई होती रही, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और सोमवार ता० ११ मुहर्रम हि० स० ७०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदि १४=ता० २६ अगस्त ई० स० १३०३) को अलाउद्दीन का चित्तोड़ पर अधिकार हो गया।

रत्नसिंह लगभग एक वर्ष ही चित्तोड़ का राजा रहा उसमें भी अंतिम छः मास तो अलाउद्दीन के साथ लड़ता रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल (लंका) जाना, वहां एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी को लेकर चित्तोड़ लौटना सर्वथा असंभव है अतएव जायसी का सिंहलद्वीप (सिंहल) लंका का सूचक नहीं हो सकता।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित जायसी ग्रन्थावली (पद्मावत और अखरावट) के विद्वान् सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी भूमिका में लिखा है "पद्मिनी क्या सचमुच सिंहल की थी? पद्मिनी सिंहल की हो नहीं सकती। यदि सिंहल नाम ठीक मानें तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा[1]"। उक्त विद्वान् का यह कथन बहुत ठीक है और उसका पता लगाना आवश्यक है। उक्त भूमिका में गोरा बादल के विषय में यह भी लिखा है कि गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था[2]। कर्नल टॉड ने गोरा और बादल को सीलोन (सिंहल) के राजा के कुटुम्बी

(१) जायसी-ग्रन्थावली; काशी नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण, भूमिका, पृ० २६।

(२) वही; पृष्ठ २९।

वि० सं०	ई० स०	
१०३४	६७७	राजा शक्तिकुमार के समय का आहाड़ (आटपुर) का शिलालेख।
(१०५०)	(६६३)	„ अंबाप्रसाद का समय।
(१०६४)	(१००७)	„ शुचिवर्मा का समय।
(१०७८)	(१०२१)	„ नरवर्मा का समय।
(१०६२)	(१०३५)	„ कीर्तिवर्मा का समय।
(११०८)	(१०५१)	„ योगराज का समय।
(११२५)	(१०६८)	„ वैरट का समय।
(११४५)	(१०८८)	„ हंसपाल का समय।
(११६०)	(११०३)	„ वैरिसिंह का समय।
(११६४)	(११०७)	„ विजयसिंह का कदमाल का दानपत्र।
११७३	१११६	„ „ का पालड़ी का शिलालेख।
(११८४)	(११२७)	„ अरिसिंह का समय।
(११६५)	(११३८)	„ चोड़सिंह का समय।
(१२०५)	(११४८)	„ विक्रमसिंह का समय।
(१२१५)	(११५८)	रावल रणसिंह (कर्णसिंह) का समय।
(१२२५)	(११६८)	„ क्षेमसिंह का समय।
१२२८	११७२	„ सामन्तसिंह के समय का जगत का शिलालेख।
(१२३६)	(११७६)	„ कुमारसिंह का समय।
(१२४८)	(११६१)	„ मथनसिंह का समय।
(१२६८)	(१२११)	„ पद्मसिंह का समय।
१२७०	१२१३	„ जैत्रसिंह के समय का एकलिंगजी का शिलालेख।
१२७६	१२२२	„ „ „ नादेसमा का शिलालेख।
१२८४	१२२८	„ „ „ 'ओघनिर्युक्ति' का लिखा जाना।
१३०६	१२५३	„ „ „ 'पाक्षिकवृत्ति' का लिखा जाना।
१३१७	१२६१	„ तेजसिंह के समय 'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र-चूर्णि' का लिखा जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१३२२	१२६५	रावल तेजसिंह के समय का घाघसे का शिलालेख।
१३२४	१२६७	,, ,, ,, गंभीरी नदी के पुल का शिलालेख।
१३३०	१२७३	,, समरसिंह के समय का चीरवे का शिलालेख।
१३३१	१२७४	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१३३५	१२७८	,, ,, ,, ,, ,,
१३४२	१२८५	,, ,, ,, आबू का शिलालेख।
१३४४	१२८७	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१३५६	१२९९	,, ,, ,, दरीबे का शिलालेख।
१३५६	१२९९	उलगखां का मेवाड़ में होकर जाना।
१३५८	१३०२	रावल समरसिंह के समय का चित्तोड़ का शिलालेख।
१३५९	१३०३	,, रत्नसिंह के समय का दरीबे का शिलालेख।
१३५९	१३०३	अलाउद्दीन का चित्तोड़ के लिए दिल्ली से प्रस्थान करना।
१३६०	१३०३	रावल रत्नसिंह का मारा जाना।
१३६०	१३०३	खिज़रखां का चित्तोड़ का शासक होना।
१३६७	१३१०	अलाउद्दीन के समय का चित्तोड़ का शिलालेख।
(१३७०)	(१३१३)	खिज़रखां का चित्तोड़ छोड़ना।
(१३७१)	(१३१४)	मालदेव सोनगरे (चौहान) को चित्तोड़ मिलना।
(१३८३)	(१३२६)	महाराणा हंमीरसिंह का चित्तोड़ लेना।
१३९८	१३४१	,, ,, का राव देवा को बूंदी दिलाना।
१४२३	१३६६	,, क्षेत्रसिंह के समय का गोगूंदे का शिलालेख।
१४३६	१३७९	,, ,, का अमीशाह को जीतना।
१४३९	१३८२	,, लक्षसिंह की गद्दीनशीनी।
१४६२	१४०६	,, ,, के समय का जावर का ताम्रपत्र।
१४६८	१४११	,, ,, ,, आबू का शिलालेख।
१४७५	१४१८	,, ,, ,, कोटसोलंकियान का शिलालेख।

वि० सं०	ई० स०	
१४७८	१४२१	महाराणा मोकल के समय का जावर का शिलालेख।
१४८५	१४२८	,, ,, ,, चित्तोड़ का शिलालेख।
१४८८	१४३१	,, ,, की सुलतान अहमदशाह पर चढ़ाई।

महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा)

१४९०	१४३३	महाराणा कुंभा का राज्य पाना।
१४९१	१४३४	,, ,, के समय का देलवाड़े का शिलालेख।
१४९४	१४३७	,, ,, के समय का नांदिया का ताम्रपत्र।
,,	,,	,, ,, के समय का नागदे का शिलालेख।
,,	,,	,, ,, की सुलतान महमूद के साथ की लड़ाई।
१४९५	१४३८	चूंडा का मेवाड़ में आना और रणमल का मारा जाना।
१४९६	१४३९	महाराणा कुंभा के समय का राणपुर का शिलालेख।
१५०५	१४४९	महाराणा कुंभा के कीर्तिस्तम्भ की प्रतिष्ठा।
१५०६	१४४९	,, ,, के समय का आबू का शिलालेख।
१५०९	१४५२	,, ,, का आबू पर अचलगढ़ बनाना।
१५१३	१४५६	,, ,, की नागोर पर चढ़ाई।
१५१५	१४५८	,, ,, की नागोर पर दूसरी बार चढ़ाई।
१५१५	१४५९	कुंभलगढ़ की प्रतिष्ठा।
१५१७	१४६०	चित्तोड़ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति।
,,	,,	कुंभलगढ़ की प्रशस्ति।
१५१८	१४६१	,, की दूसरी प्रशस्ति।
,,	,,	अचलगढ़ के आदिनाथ की मूर्ति का लेख।
१५२५	१४६८	महाराणा कुंभा का मारा जाना।

महाराणा उदयसिंह

१५२५	१४६८	महाराणा उदयसिंह (प्रथम, ऊदा) का राज्य लेना।
१५३०	१४७३	ऊदा का चित्तोड़ से भागकर कुंभलगढ़ जाना।

महाराणा रायमल

वि० सं०	ई० स०	
१५३०	१४७३	महाराणा रायमल की गद्दीनशीनी।
१५३९	१४८२	कुंवर संग्रामसिंह का जन्म।
१५४५	१४८८	एकलिंगजी की प्रशस्ति।
१५५४	१४९७	रमाबाई के बनवाये हुए जावर के मंदिर की प्रशस्ति।
१५५७	१५००	नारलाई के आदिनाथ के मंदिर का शिलालेख।
१५६०	१५०३	नासिरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई।
१५६१	१५०४	घोसूंडी की बावड़ी की प्रशस्ति।
१५६३	१५०६	झालों का मेवाड़ में जाना।
१५६६	१५०९	महाराणा रायमल की मृत्यु।

महाराणा संग्रामसिंह (सांगा)

वि० सं०	ई० स०	
१५६६	१५०९	सांगा की गद्दीनशीनी।
१५७१	१५१४	गुजरात के सुलतान से लड़ाई।
१५७३	१५१६	कुंवर भोजराज का मीरांबाई के साथ विवाह।
१५७४	१५१७	चित्तोड़ का शिलालेख।
१५७६	१५१९	महाराणा का मालवे के सुलतान महमूद को क़ैद करना।
१५७७	१५२०	महाराणा का निज़ामुल्मुल्क को हराना।
,,	,,	गुजरात के सुलतान का मेवाड़ पर आक्रमण।
१५८३	१५२६	बाबर की इब्राहीम लोदी के साथ की पानीपत की लड़ाई।
१५८४	१५२७	सांगा की बाबर के साथ की खानवे की लड़ाई।
,,	,,	डिग्गी के कल्याणरायजी के मंदिर का शिलालेख।
,,	,,	सांगा का चन्देरी को प्रस्थान।
,,	,,	सांगा का देहान्त।

महाराणा रत्नसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१५८४	१५२७	रत्नसिंह (द्वितीय) का राज्यारोहण।
१५८७	१५३०	रत्नसिंह के समय का शत्रुंजय का शिलालेख।
१५८८	१५३१	रत्नसिंह का मारा जाना।

महाराणा विक्रमादित्य

वि० सं०	ई० स०	
१५८८	१५३१	महाराणा का राज्याभिषेक।
१५८९	१५३३	बहादुरशाह की चित्तोड़ पर चढ़ाई।
,,	,,	महाराणा के समय का ताम्रपत्र।
१५९२	१५३५	,, का चित्तोड़ पर अधिकार होना।
१५९३	१५३६	,, का वणवीर के हाथ से मारा जाना और उसका राज्य लेना।

महाराणा उदयसिंह (दूसरा)

१५९४	१५३७	महाराणा का राज्यारोहण।
१५९७	१५४०	कुंवर प्रतापसिंह का जन्म।
१६००	१५४३	शेरशाह सूर का चित्तोड़ की तरफ़ जाना।
(१६०३)	(१५४६)	मीरांबाई का देहान्त।
१६१३	१५५७	महाराणा का हाजीख़ां पठान के साथ युद्ध।
१६१६	१५५९	कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह का जन्म।
१६२१	१५६४	उदयसागर का बनना।
१६२४	१५६८	बादशाह अकबर का चित्तोड़ लेना।
१६२६	१५६९	,, ,, का रणथंभोर लेना।
१६२८	१५७२	महाराणा का देहान्त।

महाराणा प्रतापसिंह

१६२८	१५७२	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६३०	१५७३	कुंवर मानसिंह कछवाहे का उदयपुर जाना।
,,	,,	महाराणा के समय का शिलालेख।
१६३३	१५७६	हल्दीघाटी की लड़ाई।
,,	,,	बादशाह अकबर का गोगूंदे जाना।
१६३४	१५७७	महाराणा के समय का दानपत्र।
१६३५	१५७८	बादशाह अकबर का शाहबाज़ख़ां को मेवाड़ पर भेजना और कुंभलगढ़ पर उसका अधिकार होना।

वि० सं०	ई० स०	
१६३९	१५८२	महाराणा के समय का दानपत्र।
१६४०	१५८३	जगमाल का राव सुरताण के हाथ से लड़ाई में मारा जाना।
१६४०	१५८४	कुंवर अमरसिंह के पुत्र कर्णसिंह का जन्म।
१६४१	१५८४	जगन्नाथ कछवाहे का मेवाड़ में भेजा जाना।
१६४३	१५८६	महाराणा का फिर मेवाड़ पर अधिकार होना।
१६५३	१५९७	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा अमरसिंह

१६५३	१५९७	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६५६	१६००	मंत्री भामाशाह का देहान्त।
१६५७	१६००	शाहज़ादे सलीम की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१६६०	१६०३	सलीम का मेवाड़ की दूसरी चढ़ाई के लिये नियत होना।
१६६२	१६०५	परवेज़ की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१६६४	१६०७	कुंवर कर्णसिंह के पुत्र जगत्सिंह का जन्म।
१६६५	१६०८	महाबतखां का मेवाड़ पर भेजा जाना।
१६६६	१६०९	अब्दुल्लाखां का मेवाड़ पर भेजा जाना।
१६६८	१६११	राणपुर की लड़ाई।
१६७०	१६१३	बादशाह जहांगीर का खुर्रम को मेवाड़ पर भेजना।
१६७१	१६१४	महाराणा की बादशाह जहांगीर से संधि।
१६७१	१६१५	कुंवर कर्णसिंह का बादशाही सेवा में उपस्थित होना।
१६७२	१६१५	महाराणा के पौत्र जगत्सिंह का बादशाह के पास जाना।
१६७३	१६१६	कुंवर कर्णसिंह का दूसरी बार बादशाही सेवा में जाना।
१६७६	१६२०	महाराणा का देहान्त।

महाराणा कर्णसिंह

१६७६	१६२०	महाराणा का राज्याभिषेक।
१६७९	१६२२	शाहज़ादे खुर्रम का महाराणा के पास जाना।
१६८४	१६२८	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा जगत्सिंह

वि० सं०	ई० स०	
१६८४	१६२८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१६८५	१६२८	देवलिये (प्रतापगढ़) का मेवाड़ से अलग होना।
१६८५	१६२८	ठिकरिया गांव का दानपत्र।
१६८६	१६२९	कुंवर राजसिंह का जन्म।
१६८७	१६३०	नारलाई और नाडोल के आदिनाथ की मूर्तियों के लेख।
१७००	१६४३	कुंवर राजसिंह का बादशाह के पास अजमेर जाना।
१७०५	१६४८	ओंकारनाथ का शिलालेख।
१७०५	१६४८	धाय के मंदिर की प्रशस्ति।
१७०९	१६५२	जगन्नाथ के मंदिर की प्रतिष्ठा।
१७०९	१६५२	जगन्नाथ के मंदिर का शिलालेख।
१७०९	१६५२	रूपनारायण के मंदिर का शिलालेख।
१७०९	१६५२	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा राजसिंह

१७०९	१६५२	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१७१४	१६५७	महाराणा के समय का दानपत्र।
१७१५	१६५८	औरंगज़ेब का बादशाह होना।
१७१६	१६५९	महाराणा का बांसवाड़े पर सेना भेजना।
१७१७	१६५९	संतू की पहाड़ी के स्तम्भ का लेख।
१७१७	१६६०	महाराणा का चारुमती से विवाह होना।
१७१७	१६६०	भवांणा की बावड़ी का शिलालेख।
१७१९	१६६२	मीनों का दमन।
१७२०	१६६३	सिरोही के राव अखेराज को क़ैद से छुड़ाना।
१७२२	१६६४	अंबा माता की चरणचौकी का लेख।
१७२६	१६६९	बड़ी के तालाव की प्रशस्ति।
१७३१	१६७४	देवारी का शिलालेख।
१७३२	१६७५	छाणी गांव के आदिनाथ की मूर्ति का लेख।

वि० सं०	ई० स०	
१७३२	१६७५	राजनगर के आदिनाथ के मंदिर की ४ मूर्तियों के ४ लेख।
”	”	राजप्रशस्ति महाकाव्य।
१७३३	१६७६	देबारी की त्रिमुखी बावड़ी की प्रशस्ति।
१७३४	१६७७	म० रा० का सिरोही के राव वैरीशाल की सहायता करना।
१७३५	१६७६	कुंवर जयसिंह का बादशाही सेवा में जाना।
”	”	महाराजा जसवंतसिंह का देहान्त और अजीतसिंह का महाराणा की शरण में जाना।
१७३६	१६७६	बादशाह औरंगज़ेब का 'जज़िया' लगाना।
”	”	महाराणा का जज़िया का विरोध।
”	”	औरंगज़ेब की महाराणा पर चढ़ाई।
”	”	औरंगज़ेब के साथ की लड़ाइयां।
१७३७	१६८०	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा जयसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१७३७	१६८०	महाराणा का राज्याभिषेक।
१७३७	१६८१	महाराणा की औरंगज़ेब के साथ की लड़ाई।
१७३८	१६८१	महाराणा की बादशाह से संधि।
१७४१	१६८४	पुर आदि परगनों का प्राप्त होना।
१७४४	१६८७	थूर के तालाब की प्रतिष्ठा।
१७४७	१६९०	कुंवर अमरसिंह के पुत्र संग्रामसिंह का जन्म।
१७४८	१६९१	जयसमुद्र की प्रतिष्ठा।
”	”	महाराणा का कुंवर अमरसिंह से विरोध।
१७५५	१६९८	महाराणा का देहान्त।

महाराणा अमरसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
१७५५	१६९८	महाराणा का राज्याभिषेक।
१७६३	१७०७	बादशाह औरंगज़ेब की मृत्यु।
१७६४	१७०८	महाराजा जयसिंह और अजीतसिंह का महाराणा के पास जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१७६६	१७०६	महाराणा का पुर, मांडल पर अधिकार होना।
”	”	कुंवर संग्रामसिंह के पुत्र जगत्सिंह का जन्म।
१७६७	१७१०	महाराणा का स्वर्गवास।
		महाराणा संग्रामसिंह (दूसरा)
१७६७	१७१०	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१७६८	१७११	रणबाज़खां का मारा जाना।
”	”	ऋषभदेव के मंदिर की वासुपूज्य की मूर्ति का लेख।
”	”	” ” की दूसरी मूर्ति का लेख।
१७६९	१७१३	फ़र्रुख़सियर का जज़िया लगाना।
१७७०	१७१३	उदयपुर का शिलालेख।
१७७१	१७१४	महाराणा का दानपत्र।
१७७४	१७१७	बेदले की बावड़ी का लेख।
”	”	रामपुरे पर महाराणा का अधिकार होना।
”	”	राठोड़ दुर्गादास का मेवाड़ में जाना और रामपुरे का हाकिम होना।
१७७६	१७१९	सीसारमा की प्रशस्ति।
१७८१	१७२४	कुंवर जगत्सिंह के पुत्र प्रतापसिंह का जन्म।
१७८४	१७२७	ईडर का मेवाड़ में मिलाया जाना।
१७८६	१७२९	माधवसिंह को रामपुरा दिया जाना।
१७९०	१७३४	महाराणा का देहान्त।
		महाराणा जगत्सिंह (दूसरा)
१७९०	१७३४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
”	”	उदयपुर के हरवेनजी के मंदिर की प्रशस्ति।
१७९८	१७४१	मरहटों से लड़ाई।
१७९९	१७४२	गोवर्धनविलास के कुंड की प्रशस्ति।
१८००	१७४३	उदयपुर के पंचोलियों के मंदिर की प्रशस्ति।
”	”	कुंवर प्रतापसिंह के पुत्र राजसिंह का जन्म।

वि० सं०	ई० स०	
१८०७	१७५०	भटियाणी की सराय का शिलालेख।
,,	,,	रामपुरे का मेवाड़ से निकल जाना।
१८०८	१७५१	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा)

१८०८	१७५१	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८१०	१७५३	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा राजसिंह (दूसरा)

१८१०	१७५४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८१२	१७५५	संध्यागिरि के मठ के निकटवर्ती शिवालय का शिलालेख।
१८१६	१७५६	मरहटों का मेवाड़ पर आक्रमण।
१८१७	१७६१	महाराणा का देहान्त।

महाराणा अरिसिंह (दूसरा)

१८१७	१७६१	महाराणा का राज्याभिषेक।
१८१६	१७६२	उदयपुर का शिलालेख।
१८१६	१७६३	उदयपुर की पार्श्वनाथ की मूर्ति का लेख।
१८२०	१८६३	देवारी के मंदिर का शिलालेख।
,,	,,	मल्हारराव होल्कर का मेवाड़ पर आक्रमण।
१८२१	१७६४	धायभाई के मंदिर का शिलालेख।
१८२४	१७६८	कुंवर भीमसिंह का जन्म।
१८२५	१७६६	उज्जैन की लड़ाई।
,,	,,	सालेड़ा गांव का शिलालेख।
१८२६	१७७०	माधवराव सिन्धिया का उदयपुर को घेरना।
१८२८	१७७१	गोड़वाड़ परगने का मेवाड़ से अलग होना।
,,	,,	समरू के साथ की लड़ाई।
१८२६	१७७३	महाराणा का आटूंण आदि पर आक्रमण।
,,	,,	महाराणा का देहान्त।

महाराणा हम्मीरसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
१८२६	१७७३	महाराणा का राज्यारोहण।
१८३३	१७७७	महाराणा का विवाह।
१८३४	१७७८	महाराणा का देहान्त।

महाराणा भीमसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१८३४	१७७८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८३८	१७८२	रावत राघवदास का महाराणा की सेवा में जाना।
१८४४	१७८७	महाराणा की मरहटों पर चढ़ाई।
१८४४	१७८८	हड़क्याखाल की लड़ाई।
१८४६	१७८९	सोमचन्द गांधी का मारा जाना।
१८४८	१७९१	महाराणा से सिंधिया की मुलाक़ात।
१८४९	१७९२	रत्नसिंह को कुंभलगढ़ से निकालना।
१८५०	१७९४	डूंगरपुर तथा बांसवाड़े पर महाराणा की चढ़ाई।
१८५३	१७९६	प्रधान सतीदास तथा जयचन्द का क़ैद होना।
१८५६	१७९९	लकवा और टॉमस की लड़ाइयां।
१८५६	१७९९	मेहता देवीचन्द का प्रधान नियत होना।
१८५७	१८००	कुंवर जवानसिंह का जन्म।
१८५८	१८०२	चेजा घाटी की लड़ाई।
१८५९	१८०२	जसवन्तराव होल्कर की मेवाड़ पर चढ़ाई।
१८६०	१८०३	होल्कर का मेवाड़ को लूटना।
१८६२	१८०५	मेवाड़ में सिंधिया और होल्कर का जाना।
१८६६	१८०९	अमीरखां आदि का मेवाड़ में जाना।
१८६७	१८१०	कृष्णकुमारी का आत्म-बलिदान।
१८७२	१८१५	प्रधान सतीदास और जयचन्द का मारा जाना।
१८७३	१८१६	दिलेरखां की चढ़ाई।
१८७४	१८१८	अंग्रेज़ों से सन्धि।
१८७६	१८१९	मेरों का दमन।

वि० सं०	ई० स०	
१८७८	१८२१	शिवलाल गलूंड्या का प्रधान नियत होना।
१८८३	१८२६	कप्तान सदरलैंड के सुधार।
१८८४	१८२७	कप्तान कॉब का क़ौलनामा।
१८८५	१८२८	महाराणा की मृत्यु।
		महाराणा जवानसिंह
१८८५	१८२८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८८५	१८२८	मेहता रामसिंह का प्रधान बनाया जाना।
,,	,,	भोमट का प्रबन्ध।
१८८६	१८२९	बेगूं के रावत की होल्कर के इलाक़े पर चढ़ाई।
१८८८	१८३१	शेरसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१८८८	१८३१	महाराणा की लॉर्ड विलियम बेंटिङ्क से मुलाक़ात।
१८९०	१८३३	महाराणा की गया-यात्रा।
१८९३	१८३६	चढ़े हुए खिराज का फ़ैसला होना।
१८९३	१८३७	महाराणा की आबू-यात्रा।
१८९५	१८३८	महाराणा की मृत्यु।
		महाराणा सरदारसिंह
१८९५	१८३८	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१८९६	१८३९	भोमट के भीलों का उपद्रव।
१८९६	१८४०	महाराणा की गया-यात्रा।
१८९८	१८४१	महाराणा का सरूपसिंह को गोद लेना।
१८९९	१८४२	महाराणा की मृत्यु।
		महाराणा सरूपसिंह
१८९९	१८४२	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१९००	१८४४	मेहता शेरसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१९०१	१८४५	सरदारों के साथ का क़ौलनामा।
१९०४	१८४७	लावे पर चढ़ाई।
१९०६	१८४९	सरूपशाही सिक्के का जारी होना।

वि० सं०	ई० स०	
१९०९	१८५२	चावड़ों को आज्यें की जागीर वापस मिलना।
१९११	१८५४	नया क़ौलनामा बनाना और उसका रद्द होना।
"	"	मीनों का उपद्रव।
१९१३	१८५६	बीजोल्यां का मामला।
१९१३	१८५७	आमेट का झगड़ा।
१९१४	१८५७	सिपाही-विद्रोह।
१९१५	१८५८	महाराणी विक्टोरिया का घोषणापत्र।
१९१६	१८५९	कोठारी केसरीसिंह का प्रधान बनाया जाना।
१९१६	१८६०	खेराड़ में शान्ति स्थापन।
१९१८	१८६१	सतीप्रथा का बन्द किया जाना।
"	"	शंभुसिंह का गोद लिया जाना।
"	"	महाराणा का स्वर्गवास।
"	"	मेवाड़ में अंतिम सती।

महाराणा शंभुसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१९१८	१८६१	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१९१९	१८६२	सलूंबर का मामला।
१९२०	१८६३	'अहलियान श्रीदरबार राज्य मेवाड़' का स्थापित होना।
१९२२	१८६५	महाराणा को राज्याधिकार मिलना।
१९२३	१८६६	खास कचहरी का क़ायम होना।
१९२५	१८६८	मेवाड़ में भीषण अकाल।
१९२६	१८६९	सोहनसिंह को बागोर की जागीर मिलना।
१९२६	१८६९	महक़मा खास का क़ायम होना।
१९२७	१८७०	महाराणा का अजमेर जाना।
१९२८	१८७१	महाराणा को जी० सी० एस० आई० का खिताब मिलना।
१९३१	१८७४	महाराणा का स्वर्गवास।

महाराणा सज्जनसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१९३१	१८७४	महाराणा की गद्दीनशीनी।

वि० सं०	ई० स०	
१९३२	१८७५	मेहता पन्नालाल की पुनर्नियुक्ति।
”	”	मेवाड़ में अति-वृष्टि।
”	”	महाराणा का बंबई जाना।
”	”	लॉर्ड नॉर्थब्रुक का उदयपुर जाना।
१९३३	१८७७	महाराणा का दिल्ली-दरबार में जाना।
१९३३	१८७७	इज़लास ख़ास की स्थापना।
१९३४	१८७८	अंग्रेज़ी सरकार और महाराणा के बीच नमक का समझौता।
१९३५	१८७८	शाहपुरे के साथ की क़लमबन्दी।
”	”	ज़मीन का बन्दोबस्त जारी होना।
१९३७	१८८०	महद्राजसभा की स्थापना।
१९३८	१८८१	भीलों का उपद्रव।
”	”	लॉर्ड रिपन का चित्तोड़ जाना और महाराणा को जी० सी० एस० आई० का ख़िताब मिलना।
१९४०	१८८४	बोहेड़े का मामला।
१९४१	१८८४	महाराणा का देहान्त।

महाराणा फ़तहसिंह

वि० सं०	ई० स०	
१९४१	१८८४	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१९४२	१८८५	लॉर्ड डफ़रिन का उदयपुर जाना।
१९४६	१८८९	ड्यूक ऑफ़ केनॉट का उदयपुर जाना।
”	”	बागोर का ख़ालसा किया जाना।
१९४६	१८९०	शाहज़ादे एलबर्ट विक्टर का उदयपुर जाना।
१९५०	१८९३	बन्दोबस्त का काम पूरा होना।
”	”	उदयपुर-चित्तोड़-रेलवे का बनाया जाना।
१९५३	१८९६	लॉर्ड एलगिन का उदयपुर जाना।
१९५४	१८९७	म०रा० की ज़ाती सलामी की वृद्धि और महाराणी को ऑर्डर आफ़ दी क्राउन ऑफ़ इन्डिया का सम्मान मिलना।

वि० सं०	ई० स०	
१९५६	१८९९	मेवाड़ में भीषण अकाल।
१९५९	१९०३	दिल्ली दरबार।
१९६१	१९०४	मेवाड़ में प्लेग का प्रकोप।
१९६६	१९०९	महाराणा की हरिद्वार-यात्रा।
१९६६	१९०९	मेवाड़ में घोर-वृष्टि।
१९६८	१९११	महाराणा का जोधपुर जाना।
१९६८	१९११	दिल्ली-दरबार।
१९७५	१९१८	महाराणा को जी० सी० वी० ओ० की उपाधि मिलना।
,,	,,	मेवाड़ में इन्फ्लुएञ्ज़ा का भयानक प्रकोप।
१९७६	१९१९	महाराजकुमार (भूपालसिंहजी) को के० सी० आई० ई० का खिताब मिलना।
१९७८	१९२१	महाराणा का महाराजकुमार को राज्याधिकार सौंपना।
,,	,,	महाराजकुमार की घोषणा।
,,	,,	प्रिन्स ऑफ़ वेल्स का उदयपुर जाना।
१९८७	१९३०	महाराणा की मृत्यु।

महाराणा सर भूपालसिंहजी (विद्यमान)

१९८७	१९३०	महाराणा की गद्दीनशीनी।
१९८७	१९३१	महाराणा को जी० सी० एस० आई० का खिताब मिलना।

परिशिष्ट-संख्या ५

उदयपुर राज्य के इतिहास के प्रणयन में जिन जिन पुस्तकों से सहायता ली गई उनकी सूची।

संस्कृत और प्राकृत

अग्निपुराण।

अमरकाव्य।

अमरकोष (अमरसिंह)।

अमरनृपकाव्यरत्न (हरदेव सूरि)।

अमरसिंहाभिषेककाव्य (वैकुण्ठ)।

अर्थशास्त्र (कौटिल्य)।

आवश्यकवृहद्वृत्ति।

उदयसुन्दरीकथा (सोड्ढल)।

एकलिङ्गपुराण।

एकलिङ्गमाहात्म्य।

ओघनिर्युक्ति (पाक्षिकसूत्रवृत्ति)।

कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकम् (जयसोम)।

गणरत्नमहोदधि (वर्धमान)।

गीतगोविन्द (जयदेव)

गोत्रप्रवरनिबन्धकदम्बम्।

गोत्रप्रवरनिर्णय (बौद्धायन)।

जगत्प्रकाश (विश्वनाथ)।

तीर्थकल्प (जिनप्रभ सूरि)।

देवकुलपाटक (विजयधर्म सूरि)।

पिंगलसूत्रवृत्ति (हलायुध)।

पृथ्वीचन्द्रचरित्र (माणिक्यसुन्दरगणि)।

पृथ्वीराजविजयमहाकाव्य (जयानक)।

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग)।

ब्रह्माण्डपुराण ।

भागवतपुराण ।

मंडलीकमहाकाव्य (गंगाधर)।

मत्स्यपुराण ।

मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका, विज्ञानेश्वर)।

मुण्डकोपनिषद् ।

रघुवंश (कालिदास)।

रसिकप्रिया (गीतगोविन्द की टीका, कुंभकर्ण)।

राजकल्पद्रुम (राजेन्द्रविक्रमशाह)।

राजप्रशस्तिमहाकाव्य (रणछोड़भट्ट)।

राजसिंहप्रभोर्वर्णनम् (लालभट्ट)।

राजसिंहराज्याभिषेक (सोमेश्वर)।

लिंगपुराण ।

वस्तुपालप्रशस्ति (जयसिंह सूरि)।

यजुर्वेद ।

वायुपुराण ।

वास्तुशास्त्रम् (विश्वकर्मावतार)।

विजयप्रशस्तिकाव्य (हेमविजय)।

विधिपक्षगच्छीयप्रतिक्रमणसूत्र ।

विष्णुपुराण ।

वीरमित्रोदय (मित्रमिश्र)।

शत्रुञ्जयमाहात्म्य (धनेश्वर सूरि)।

सर्वदर्शनसंग्रह (माधवाचार्य)।

संगीतरत्नाकर (शार्ङ्गधर)।

सुरथोत्सवकाव्य (सोमेश्वर)।

सोमसौभाग्यकाव्य ।

सौन्दरनंदकाव्य (अश्वघोष)।

हम्मीरमदमर्दन (जयसिंह सूरि)।

हरिभूषणमहाकाव्य (गंगाराम)।

हिन्दी, डिंगल, गुजराती आदि भाषाओं के ग्रन्थ।

अमरविनोद (धन्वन्तरी)।

आमेर के राजा पृथ्वीराजजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।

इतिहास राजस्थान (रामनाथ रत्नू)।

औरंगज़ेबनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।

काठियावाड़-सर्वसंग्रह (नर्मदाशंकर लालशंकर)-गुजराती।

खुम्माणरासा [दौलत (दलपत) विजय]-हस्तलिखित।

गुजरात राजस्थान (कालीदास देवशंकर पंड्या)-गुजराती।

गोहिलवंश नो इतिहास (हस्तलिखित)-गुजराती।

चंडूपंचांगसंग्रह।

चतुरकुलचरित्र (चतुरसिंह)।

चित्तोड़ की गज़ल (कवि खेता)।

जगद्विलास (नेकराम)

जयसिंहचरित्र (राम कवि)

जिवबा दादा बक्षी यांचे जीवन-चरित्र (नरहर व्यंकाजी राजाध्यक्ष)-मराठी।

जहांगीरनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।

जोधपुर की ख्यात।

टॉड राजस्थान (खड्गविलास प्रेस बांकीपुर का संस्करण)।

डूंगरपुर की ख्यात।

तारीख बीकानेर (मुन्शी सोहनलाल)।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)—त्रैमासिक।

पद्मावत (मलिकमुहम्मद जायसी)।

पृथ्वीराजरासा (चन्द बरदाई)—नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित।

प्राचीन गुर्जर-काव्यसंग्रह (गुजराती)।

प्राचीन जैनलेखसंग्रह (आचार्य जिनविजय)।
देवीदान की ख्यात।
बाबरनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।
भारतीय प्राचीन लिपिमाला (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा)-द्वितीय संस्करण।
भावनगर नो बालबोध इतिहास (देवशंकर वैकुण्ठजी भट्ट)—गुजराती।
भावनगर प्राचीनशोधसंग्रह (विजयशंकर गौरीशंकर ओझा)—संस्कृत-गुजराती।
भीमविलास (कृष्ण कवि)।
महाराणा प्रतापसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।
महाराणायशप्रकाश (भूरसिंह शेखावत)।
महाराणा रत्नसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।
„ संग्रामसिंहजी का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।
माधुरी
मारवाड़ की ख्यात।
माहवजशप्रकाश (आशिया मानसिंह)।
मीरांबाई का जीवनचरित्र (मुन्शी देवीप्रसाद)।
मुहणोत नेणसी की ख्यात।
राजरसनामृत (मुन्शी देवीप्रसाद)।
राजविलास (मान कवि)-नागरीप्रचारिणी सभा का संस्करण।
राणारासा।
रायमलरासा।
रीवां की ख्यात।
वंशप्रकाश (पंडित गंगासहाय)।
वंशभास्कर (मिश्रण सूर्यमल्ल)।
वीरविनोद (महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास)।
शाहजहांनामा (मुन्शी देवीप्रसाद)।
सहीवाला अर्जुनसिंहजी का जीवनचरित्र।
सिरोही राज्य का इतिहास (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा)।

सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग (गौरीशंकर हीराचन्द ओझा)।
हिन्द राजस्थान (अमृतलाल गोवर्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या)-गुजराती ।

फ़ारसी तथा उर्दू पुस्तकें ।

अकबरनामा (अबुल्फ़ज़ल)।
अदबे आलमगीरी ।
आइने अकबरी (अबुल्फ़ज़ल)।
इकबालनामा जहांगीरी (मौतमिदखां)।
इन्शाए ब्राह्मण ।
तज़ियतुल् अम्सार (अब्दुल्ला वस्साफ़)।
तबक़ाते अकबरी (निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी)।
तबक़ाते नासिरी (मिन्हाजुस्सिराज)।
तारीख़ अलफ़ी (मौलाना अहमद आदि)।
तारीखे अलाई (अमीर खुसरो)।
तारीखे दाउदी (अब्दुल्ला)।
तारीखे फ़िरिश्ता (मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता)।
तारीखे फ़ीरोज़शाही (ज़ियाउद्दीन बर्नी)।
तारीखे बहादुरशाही (साम सुल्तान बहादुर गुजराती)।
तारीखे सलातीने अफ़ग़ाना (अहमद यादगार)।
तुज़ुके बाबरी (बाबर बादशाह)।
फ़तुहाते आलमगीरी (ईसरीदास)।
बादशाहनामा (अब्दुलहमीद लाहोरी)।
बिसाइतुल ग़नाइम (लक्ष्मीनारायण औरंगाबादी)।
मासिरुल उमरा (शाहनवाज़ख़ां)।
मासिरे आलमगीरी (मुहम्मद साक़ी मुस्ताइदख़ां)।
मिराते अहमदी (हसनमुहम्मदख़ां)।

मिराते सिकन्दरी (सिकन्दर)।
मुन्तखबुत्तवारीख़ (अल्बदायूनी)।
मुन्तख़बुल्लुबाब (ख़ाफ़ीख़ां)।
वक़ाये राजपूताना (मुन्शी ज्वालासहाय)।
वाक़ेआते मुश्ताक़ी (शेख़ रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी)।

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

Aitchison, C. U.—Treaties, Engagements and Sanads.
Annual Administration Report of the Rajputana States.
Annual Reports of the Rajputana Museum, Ajmer.
Archeological Survey of India, Annual Reports.
Aufrecht, Theodor—Catalogus Catalogorum.
Bele—History of Gujrat.
Bendal, Cecil—Journey of Literary and Archeological Research in Nepal and Northern India.
Beniprasad, Dr.—History of Jahangir.
Beveridge, A.S.—Translation of Tuzuk-i-Babari.
Bhandarkar, Shridhar Ramkrishna—Report of the Second tour in search of Sanskrit MSS. in Rajputana and Central India, 1904—6.
Bhavnagar Inscriptions.
Blochmann—Ain-i-Akbari.
Bombay Gazetteer.
Briggs, John—History of the Rise of the Mohammadan power in India (Translation of Tarikh-i-Ferishta of Mahomed Kasim Ferishta).
Brook—History of Mewar.
Buckland—Dictionary of Indian Biography.
Central India Gazetteer.
Chiefs and Leading Families of Rajputana.
Compton, H.—European Military Adventurers of Hindustan.
Cunningham—Archeological Survey of India, Reports.
Dow, Alexender—History of India.
Duff, C. Mabel—Chronology of India.
Duff, J. G.—History of the Marhattas.
Elliot, Sir H. W.—The History of India as told by its own Historians

Elphinston, M.—The History of India.
Encyclopædia Britanica.
Epigraphia Indica.
Erskine, K. D.—Gazetteer of the Dungarpur State.
Fleet—Gupta Inscriptions.
Forbes—Ras Mala.
Foster, William—The Embassy of Sir Thomas Roe.
Franklin, William—Military Memoirs of Mr. George Thomas (1805 Edition).
Har Bilas Sarda, Dewan Bahadur—Maharana Kumbha.
" " " " " —Maharana Sanga.
Harprasad Shastri, M.M.—Catalogue of Palm-Leaf and Selected MSS. in the Darbar Library, Nepal.
Hiralal, Rai Bahadur.—Descriptive Lists of Inscriptions in the Central Provinces and Berar.
Imperial Gazetteer of India.
Indian Antiquary.
Irvine—Later Mughals.
Journal of the Asiatic Society of Bengal.
Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society.
Lane-Pool, Stanely—Baber.
Leward (Captain) and Kashinath Krishṇa Lele—Parmars of Dhar and Malwa.
Markand Nand Shankar Mehta and Manu Nand Shankar Mehta—Hind-Rajasthan.
Malcolm, John—History of Persia.
Memorandum on the Indian States—1930.
Modern Review.
Orme—Fragments.
Peterson, P.—Reports in search of Sanskrit Manuscripts.
Princep, J.—Essays on Indian Antiquities.
Progress Reports of the Archeological Survey of India, Western Circle.
Rushbrook Williams—An Empire builder of the Sixteenth Century.
Raverty, H. G.—Translation of Tabakat-i-Nasiri.
Rogers, A.—Memoirs of Jahangir.
Sacred Books of the East.
Sarkar, J. N.—History of Aurangzeb.
Smith, V.A.—Akbar the Great Moghul.
" " —Bernier's Travels.
" " —Oxford History of India.

Showers—A missing Chapter in the Indian Mutiny.
Stratton, J.P.—Chitor and the Mewar Family.
Tessitory, L.P.—Descriptive Catalogues of Bardic and Historical MSS.
Thomas, Edward.—The Chronicles of the Pathan Kings of Delhi.
Tod, James.—Annals and Autiquities of Rajasthan.
Walter, Colonel—Biographical sketches of the Chiefs of Meywar.
Webb, W.W.—The currencies of the Hindu States of Rajputana.

अनुक्रमणिका

अ

आ

उ

ऊ

ऋ

ए

ख

ग

घ

च

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

ष

स

ह

उदयपुर राज्य के इतिहास में नामों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि उन सबका परिचय सहित अनुक्रमणिका में उल्लेख किया जावे तो विस्तार बहुत बढ़ जाता है, इसलिए इसमें आवश्यक नाम ही दर्ज़ किये गये हैं।

सूचना

उदयपुर राज्य के इतिहास की छपाई महाराणा फ़तहसिंहजी के समय प्रारम्भ हुई थी और उनकी विद्यमानता में पृ० ८२६ तक छपे थे, अतएव पृ० ८२६ तक जहां कहीं "वर्तमान महाराणा" आया हो उसका अभिप्राय उक्त महाराणा से समझना चाहिये।